श्रीमार्कण्डेयपुराण भाषा टीका

।। श्रीः ।।

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

७८

****

श्रीमार्कण्डेयपुराण भाषा टीका

टीकाकारः

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९

वाराणसी २२१००१

मूल्य ४००-०० रु. पत्राकार ३५०-०० रु.

संस्करण १९९५

भूमिका ।

उस सच्चिदानन्द करुणावरुणालय आनन्दकन्द ब्रजचन्दके चारुचरणोंमें वारंवार प्रणाम है कि, जिसकी कृपाकोरसे मूक वाचाल और पंगुगण पर्वतोंपर आरोहण कर जाते हैं। यह उसहीकी महिमाका विकास है कि, आजकल संपूर्ण भारतवर्षमें संस्कृत विद्याके प्रचारकी ध्वनि प्रतिध्वनित होकर सनातन धर्मावलम्बियोंको प्रमुदित कररही है ।

इस भारतवर्षमें वेदार्थको लेकर प्रतिद्वापर युगके अन्तमें भगवान् श्रीवेदव्यासजी पुराणोंका विभाग करते हैं, वे ब्रह्मपुराण आदि अष्टादश पुराण हैं, जिनमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित, यह पांच विषय होते हैं। इनही पांच, विषयोंके क्रमसे पुरातन कालके समस्त इतिहास; राजाओंके चरित्र, सृष्टि आदि विषय, तथा वेद शास्त्रोंका आद्योपान्त समस्त सिद्धान्त आजाता है और ऐसे ऐसे गूढ विषय, मोक्षप्राप्तिके उपाय सरलतासे पुराणोंमें वर्णन किये जाते हैं कि जिसमें चारों वर्णके नरनारी भगवद्भक्तिलाभ कर मुक्तिके अधिकारी होते हैं, इस कारण उपनिषदादिमें इतिहास पुराणको पांचवा वेद कहकर निरूपण किया है। यदि पुराण विद्या न होती, तो पुरातन तत्वके विना यह भारत वर्ष अन्धकारसे ढक जाता और पुराणोंका आशय केवल पुरातन इतिवृत्त वर्णन करनेहीका नहीं है, किन्तु उपासक की उपासना दृढ करते हुए उसको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करनाही इष्ट है; पुराणपाठ करनेसे लोक और परलोक दोनोंही बनते हैं, यह शंका कभी नहीं करनी चाहिये कि; पुराणोंमें भिन्न भिन्न देवताओंकी उपासना लिखी है, तथा जो पुराण जिस देवताकी महिमा वर्णन करता है वह दूसरे देवता को न्यून कहता है, यह नहीं, पुराणकी निन्दा करनेको प्रवृत्त नहीं है, किन्तु उत्कर्षता विधान करती है। जैसे कोई नेत्रोंकी महिमा वर्णन करते हुए कहे कि, तुम्हारी समान कान नहीं हैं, तो उसका वह कहना सत्यही है,इसी प्रकार पुराणोंमें परमेश्वरका भिन्न भिन्न शक्तिरूपसे वर्णन है। जैसे लिखा है कि "शिवकी समान दूसरा नहीं, विष्णुकी समान दूसरा नहीं, देवीकी समान दूसरा नहीं इसीके भजनसे मुक्ति होती है" इस बातके देखनेसे यह बात निश्चय हुई कि, नाममात्रका भेद है, परन्तु शक्ति सबकी बराबर है, तब विचारनेसे विदित होता है, यह सब परमेश्वरकेही रूपान्तर हैं, इससे सबही पुराण परमेश्वरके प्रतिपादक हैं, यह बात सिद्ध है और पुराणोंमें अष्टादश भेद इस कारण हैं कि सत्, रज, तमके सम, विषम न्यून भेदसे प्राणियोंके स्वभाव अठारह प्रकारके होते हैं, जिसका स्वभाव जैसा होता है, वैसीही कथा और देवतामें उसका मन लगता है, इससे भगवान् श्रीवेदव्यासजीने यह विचार कर कि सबकी ही चित्तवृत्ति उस परमात्मामें लगजाय, अठारह प्रकारसे पुराणोंका संग्रह किया है।

यह पुराणभी संस्कृत विद्यामें होनेके कारण सर्व साधारण इनके रहस्योंको नहीं समझ सकते; यही विचार कर इनका टीका सर्वसाधारणके समझने योग्य हिन्दी भाषामें शंका समाधानके सहित होना परम आवश्यक है और हमारे परम माननीय ज्येष्ठ भ्राता पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्रने श्रीमद्भागवत, हरिवंश, शिव पुराण आदि कई पुराणोंका इसी प्रकार टीका भी किया है और हमने जिस पुराण का टीका किया है, इसकी शैली भी भ्रातृवर्यके टीकेके अनुसार रक्खी है और एकवार इस टीकेको प्रकाश होनेसे पहिले उनके दृष्टिगोचर भी करदिया है ।

जिसका टीका करनेमें हम प्रवृत्त हुए हैं, यह पुराणमें सातवां पुराण मार्कण्डेय नामक है, इसमें महाभारतकी अनेक शंकाओंका समाधान तथा भारतवर्षकी अनेक सुरीतियोंके गुप्त रहस्य, अनेक प्रकारकी शिक्षा, उपदेश, बालकोंकी सुरक्षा, उनको सुयोग्य बनाना, अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि चारों पदार्थोंकी प्राप्तिके उपाय, ब्रह्मविद्या, ईश्वरभक्ति, पातिव्रत्यधर्म, स्त्रियोंके सुधारके उपाय, वर्णाश्रमके धर्म, विद्युत, अग्निविद्या आदि ऐसे ऐसे अद्भुत विषय इसमें वर्णन किये हैं कि, देखते ही मनुष्यका अन्तःकरण परम आनन्दित होजाता है । इस टीकेके निर्माण करनेमें कहीं कहीं गूढ विषयोंका विवरण तथा शंकित स्थलोंका समाधान भलीभाँतिसे किया है; अक्षरार्थ, भावार्थको बहुत स्पष्ट दिखला दिया है । साथमें महामाया भगवती दुर्गा चरित्रका टीका भी बडे विस्तारित अर्थोंमें किया है ।

इस ग्रंथके टीका करनेमें मेरे परम मित्र चन्दौसीनिवासी पण्डित मुन्नालालजीशर्मा और मुरादाबादनिवासी पण्डित कन्हैयालालजी तंत्रवैद्यने विशेष उत्साह दिलाया था, अत एव उक्त महाशयोंको अन्तःकरणसे धन्यवाद देकर आशा करताहूं कि वह सदैव इसी प्रकार मुझको उत्साहित करते रहेंगे ।

अब यह ग्रंथ सब प्रकारसे अलंकृत कर सब प्रकारके स्वत्वसहित परम माननीय जगद्विख्यात "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदयको समर्पण किया है जो सब प्रकारके सन्मानसहित नित्य हमारे उत्साहको बढाते रहते हैं ।

पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि, हमने कई पुराणोंको मिलाकर इस पुराणका टीका निजमतिके अनुसार किया है, यदि आप लोग इसमें कहीं भूल पावें तो कृपाकर सुधार ले, कारण कि, सर्वज्ञ परमेश्वर है ।

जेहि मारुत गिरिमेरु उडाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥

परन्तु इसके पाठसे आपको अनेक विषयोंमें दक्षता और भगवद्भक्तिकी प्राप्ति होगी, ऐसी मुझे दृढ आशा है ।

सज्जनोंका अनुगृहीत पं० कन्हैयालाल मिश्र, मोहल्ला—दीनदारपुरा, मुरादाबाद—सिटी.

अथ मार्कण्डेयपुराणभाषाटीकाकी-विषयानुक्रमणिका।

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता।

10

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ अथ मार्कण्डेयपुराणभाषाटीकाप्रारंभः ॥ ॥ मङ्गलाचरणम्—श्लोकः ॥ ॥ गौरीपुत्रं नमस्कृत्य शारदाम्बिकां तथा । ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ सुखानन्दतनूजेन कन्हैयालालशर्मणा । मार्कण्डेयपुराणस्य भाषाटीका विरच्यते ॥

जो संसारके भय और दुःखके नाश करनेमें योग्य हैं, एकान्तचित्तवाले योगीजन और संन्यासी जिनके चरणोंको ध्यानद्वारा प्राप्त करके प्रणाम करते हैं, जिन्होंने प्रगट होकर भूलोक भुवर्लोक स्वर्लोकको वामनरूपसे अतिक्रमण किया है, वह नारायणके चरणकमल आपको पवित्र करें ॥ १ ॥ सब पापसमूहों के नाश करने में चतुर, क्षीरसागरमें शेषजीके शरीरपर मूर्त्तिमान् हो शयन करनेवाले, जिनके श्वाससे जलके कराल कणिका कम्पित होती हैं जिसमें ऐसा समुद्र जिनके संगसे नृत्य करतासा दिखाई देता है, वह अविनाशी तुम्हारी रक्षा करें ॥ २ ॥ नारायणनर, नरोत्तम और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जयकीर्तन अर्थात् पुराणादि पाठ करें॥ ३॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीमद्वेङ्कटेशाय नमः ॥ ॥ अथ मार्कण्डेयपुराणप्रारंभः ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्यवंदितमतीवविविक्तचित्तैः ॥ तद्वःपुनातुहरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलंघितभूर्भुवःस्वः ॥ १ ॥ पायात्सवःसकलकल्मषभेददक्षःक्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः ॥ श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुःप्रनृत्यमिवयस्यकरोतिसंगात् ॥ २ ॥ नारायणंनमस्कृत्यनरंचैवनरोत्तमम् ॥ देवींसरस्वतीं व्यासंततोजयमुदीरयेत् ॥ ३ ॥ तपःस्वाध्यायनिरतंमार्कण्डेयंमहामुनिम् ॥ व्यासशिष्योमहातेजाजैमिनिःपर्यपृच्छत ॥ १ ॥ भगवन्भारताख्यानंव्यासेनोक्तंमहात्मना ॥ पूर्णमस्तमलैःशुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः ॥ २ ॥ जातिशुद्धिसमायुक्तंसाधुशब्दोपशोभितम् ॥ पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥३ ॥ त्रिदशानांयथाविष्णुर्द्विपदांब्राह्मणोयथा ॥ भूषणानांचसर्वेषांयथाचूडामणिर्वरः ॥ ४ ॥ यथायुधानांकुलिशमिन्द्रियाणांयथामनः ॥ तथेहसर्वशास्त्राणांमहाभारतमुत्तमम् ॥ ५ ॥

एक समय महर्षि वेदव्यासजीके शिष्य महातेजा जैमिनिने परम तपस्वी, वेदादि पढनेमें निरत, महामुनि मार्कण्डेयजीसे पूँछा ॥ १ ॥ हे भगवन्! महात्मा वेदव्यासजीने भारत नामक जो ग्रंथ वर्णन किया है, वह सब अनेक शास्त्रोंके मर्मार्थसे युक्त ॥ २ ॥ विशुद्ध शब्दोंसे परिपूर्ण छन्द और अलंकारादिसे युक्त, कानोंको सुखदायक शब्दोंसे संयुक्त और उसमें जो सब प्रश्न कहे हैं उनका भी यथार्थ उत्तर सन्निवेशित हुआ है ॥ ३ ॥ जैसे देवताओंमें विष्णु, मनुष्योंमें ब्राह्मण संपूर्ण गहनोंमें जैसे चूडामणि ॥ ४ ॥ अस्त्रोंमें जैसे वज्र और सब इन्द्रियोंमें जैसे मन प्रधान है; इसीप्रकार सब शास्त्रोंमें यह महाभारतही एकमात्र

इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबही परस्पर मिले हुए और प्रकटित रूपमें तथा पृथक् पृथक् वर्णित हुएहैं ॥ ६ ॥ अतएव यही धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र कामशास्त्र और मोक्षका साधन शास्त्र है ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! बुद्धिमान् महर्षिवेदव्यासजीने चारों आश्रमोंका आचार अवस्थान और साधन सबही इसमें विशेष रूपसे वर्णन किया है ॥ ८ ॥ हे तात ! उदारकर्मा महर्षि वेदव्यासजीने इस महा भारत नामक महाशास्त्रकी इस प्रकार रचना करी है कि, यह अत्यन्त विस्तृत होनेपर भी इसमें किसी स्थलका परस्पर विरोध नहीं हुआ है ॥ ९ ॥ वासुदेवके वचनरूपी इस जलराशिने वेदरूपी पर्वतसे निकलकर कुतर्करूपी वृक्षोंको उखाड़ पृथ्वीको रजरहित करदिया है ॥ १० ॥ कृष्ण द्वैपायनप्रणीत पंचमवेदस्वरूप यह महाह्रद (तालाब) मधुर शब्दरूप महाहंस और महाआख्यानरूपी कमलोंके,

अत्रार्थश्चैवधर्मश्चकामोमोक्षश्चवर्ण्यते ॥ परस्परानुबन्धाश्चसानुबन्धाश्चतेपृथक् ॥ ६ ॥ धर्मशास्त्रमिदंश्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदंपरम् ॥ कामशास्त्रमिदंचाग्र्यंमोक्षशास्त्रंतथोत्तमम् ॥ ७ ॥ चतुराश्रमधर्माणामाचारस्थितिसाधनम् ॥ प्रोक्तमेतन्महाभागवेदव्यासेनधीमता ॥ ८ ॥ तथातातकृतंह्येतद्व्यासेनोदारकर्मणा ॥ यथा व्याप्तंमहाशास्त्रंविरोधैर्नाभिभूयते ॥ ९ ॥ व्यासवाक्यजलौघेनकुतर्कतरुहारिणा ॥ वेदशैलावतीर्णेननीरजस्कामहीकृता ॥ १० ॥ कलशब्दमहाहंसंमहाख्यानपराम्बुजम् ॥ कथाविस्तीर्णसलिलंकार्ष्णवेदंमहाह्रदम् ॥ ११ ॥ तदिदं भारताख्यानंबह्वर्थंश्रुतिविस्तरम् ॥ तत्त्वतोज्ञातुकामोहंभगवंस्त्वामुपस्थितः ॥ १२ ॥ कस्मान्मानुषतांप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दनः ॥ वासुदेवोजगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् ॥ १३ ॥ कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेकासाद्रुपदात्मजा ॥ पञ्चानांमहिषीकृष्णाह्यत्रनःसंशयोमहान् ॥ १४ ॥ भेषजंब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबलः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्चक्रेहलायुधः ॥ १५ ॥ कथंचद्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथाः ॥ पाण्डुनाथामहात्मानोवधमापुरनाथवत् ॥ १६ ॥

द्वारा शोभायमान और विस्तीर्ण कथारूपी जलके द्वारा पूर्ण हुआ है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जो वेदार्थ और श्रुतियोंसे युक्त है उस महाभारतनामक शास्त्रका यथार्थ रूपसे अर्थ जाननेके निमित्तही मैं आपके पास आया हूं ॥ १२ ॥ जो जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं वह जनार्दन वासुदेव[1] निर्गुण होकर भी किस कारण मनुष्यत्वको प्राप्त हुए थे ? ॥ १३ ॥ अकेली द्रुपदपुत्री द्रौपदी कृष्णा जिस प्रकार पांच पांडवोंकी महिषी हुई थी ? इस विषयमें मुझको महान् संदेह है ॥ १४ ॥ और महाबलशाली बलदेवजीने तीर्थयात्राके प्रसंगमें किस प्रकार ब्रह्महत्याके पापका प्रायश्चित्त किया था ? ॥ १५ ॥ और पाण्डव जिनके सहायक

१ जिनके रुँवोंके छिद्रमें संपूर्ण जगत् अवस्थान करताहै और जो सदाही क्रीडा करते हैं अर्थात् सच्चिदानंद स्वरूप हैं, उनकोही वासुदेव कहते हैं ।

थे, उन महारथ द्रौपदीके पुत्रोंने अविवाहित अवस्थामें किस प्रकार अनाथकी समान प्राण त्याग किया ? ॥ १६ ॥ यह सब आप मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये क्योंकि आपही अबोध पुरुषोंको ज्ञानोदय कराते हैं ॥ १७ ॥ योगशास्त्रोक्त अठारह दोषरहित महामुनि मार्कण्डेयजी जैमिनि मुनिके इस प्रकार वचन सुनकर कहनेलगे ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुनिसत्तम ! मेरे संध्यावन्दनादि करनेका समय उपस्थित हुआ है,यह विस्तारसहित कहनेका समय नहीं है ॥ ॥ १९ ॥ हे जैमिने ! जो पक्षी यह विषय तुमसे कहेंगे, उनका वर्णन करताहूं, वह पक्षी यह विषय सुनाकर तुमको संदेहहीन करेंगे ॥ २० ॥ पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख इत्यादि खगश्रेष्ठ द्रोणके पुत्र शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले ॥ २१ ॥ पक्षी विन्ध्यपर्वतकी कन्दरामें वास करते हैं, वेदशास्त्रार्थज्ञानमें उनकी बुद्धि

एतत्सर्वंविस्तरशोममाख्यातुमिहार्हसि ॥ भवन्तोमूढबुद्धीनामवबोधकराःसदा ॥ १७ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वामार्कण्डेयो महामुनिः ॥ दशाष्टदोषरहितोवक्तुं समुपचक्रमे ॥ १८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ क्रियाकालोऽयमस्माकंसंप्राप्तो मुनिसत्तम ॥ विस्तरेचापिवक्तव्येनैषकालःप्रशस्यते ॥ १९ ॥ येतुवक्ष्यन्तिवक्ष्येऽद्यतानहंजैमिनेतव ॥ तथाचनष्टसन्देहंत्वांकरिष्यन्तिपक्षिणः ॥ २० ॥ पिङ्गाक्षश्चविबोधश्चसुपुत्रःसुमुखस्तथा ॥ द्रोणपुत्राःखगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाः शास्त्रचिन्तकाः ॥ २१ ॥ वेदशास्त्रार्थविज्ञानेयेषामव्याहतामतिः ॥ विंध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्यचपृच्छच ॥ २२ ॥ एवमुक्तस्तदातेनमार्कण्डेयेनधीमता ॥ प्रत्युवाचर्षिशार्दूलोविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ २३ ॥ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्खगवागिवमानुषी ॥ यत्पक्षिणस्तेविज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम् ॥ २४ ॥ तिर्य्यग्योन्यांयदिभवस्तेषांज्ञानंकुतोऽभवत् ॥ कथंचद्रोणतनयाःप्रोच्यन्तेतेपतत्रिणः ॥ २५ ॥ कश्चद्रोणः प्रविख्यातोयस्यपुत्रचतुष्टयम् ॥ जातंगुणवतांतेषांधर्मज्ञानंमहात्मनाम् ॥ २६ ॥

कभी नहीं रुकती है, तुम उनकी उपासना करके पूछो तो सब विषय जान सकोगे ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके इसप्रकार कहनेपर उन ऋषिशार्दूल जैमिनिने विस्मयोत्फुल्लनेत्र होकर फिर पूछा ॥ २३ ॥ जैमिनिने कहा—हे ब्रह्मन् ! पक्षी मनुष्यके समान कथा कह सकते हैं; प्रथम तो यही आश्चर्य है और फिर इसपर भी उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ शास्त्रज्ञान प्राप्त कियाहै ॥ २४ ॥ जो हो. यदि तिर्यग्योनिमें उनका जन्म हुआ है, तो फिर उनको ऐसा ज्ञान कहां से हुआ और किस लिये उनको द्रोणपुत्र कहते हैं ॥ २५ ॥ यह चार पक्षी जिसके पुत्र हैं वह द्रोण कौन है और इन गुणवान् महात्मा पक्षियों

१ निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, मोह, मद, उन्माद, प्रमाद, विस्मय, सन्देह, लोभ, असूया, मात्सर्य, कपटता, मिथ्या, नास्तिकता, अगमदर्शिता और अशिक्षा ।

को किस प्रकार धर्मज्ञान हुआ ? ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे जैमिने ! पूर्वकालमें नन्दनवनमें इन्द्र, नारद और अप्सराओं के एकत्र मिलित होनेपर जो घटना हुई थी, वह एकाग्र चित्तसे सुनो ॥ २७ ॥ एक दिन देवर्षि नारदजीने हठात् उपस्थित होकर देखा कि, देवराज इन्द्र कितनीही वेश्याओंसे परिवेष्टितहो उनके मुखकी ओर देखरहे हैं ॥ २८ ॥ शचीपति इन्द्रने उन महर्षिश्रेष्ठको देखतेही उठकर अत्यन्त आदर किया और बैठनेके लिये उनको अपना आसन दिया ॥ २९ ॥ इन्द्रको उठता हुआ देखकर स्वर्गकी वेश्याओं ने भी उठकर महर्षिको प्रणाम किया और विनीतभावसे नीचेको मस्तक किये खड़ी रहीं ॥ ३० ॥ नारद इसप्रकार उनसे पूजित हो जब इन्द्रके सहित बैठे, तब परस्पर यथायोग्य अनेकप्रकारकी वार्ता करने लगे ॥ ३१ ॥ इसी बीचमें शचीपति इन्द्रने महा

मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वायद्वृत्तंनन्दनेपुरा ॥ शक्रस्याप्सरसांचैवनारदस्यचसंगमे ॥ २७ ॥ नारदोनन्दनेऽपश्यत्पुंश्चलीगणमध्यगम् ॥ शक्रंसुराधिराजानंतन्मुखासक्तलोचनम् ॥ २८ ॥ सतेनर्षिवरिष्ठेनदृष्टमात्रःशचीपतिः ॥ समुत्तस्थौस्वकंचास्मैददावासनमादरात् ॥२९॥ तंदृष्ट्वाबलवृत्रघ्नमुत्थितंत्रिदशाङ्गनाः ॥ प्रणेमुस्ताश्चदेवर्षिविनयावनताः स्थिताः ॥३०॥ ताभिरभ्यर्चितःसोऽथ उपविष्टेशतक्रतौ ॥ यथार्हकृतसंभाषःकथाश्चक्रेमनोरमाः ॥ ॥ ३१ ॥ ततः कथान्तरेशक्रस्तमुवाचमहामुनिम् ॥ शक्र उवाच ॥ ॥ देह्याज्ञांनृत्यतामासांतवयाभिमतेतिवै ॥ ३२ ॥ रम्भावाकर्कशावाथउर्वश्यथ तिलोत्तमा ॥ घृताचीमेनकावापियत्रवाभवतोरुचिः ॥३३॥ एतच्छ्रुत्वाद्विजश्रेष्ठोवाचंशक्रस्यनारदः ॥ विचिन्त्याप्सरसःप्राहविनयावनताःस्थिताः ॥ ३४ ॥ युष्माकमिहसर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकम् ॥ आत्मानंमन्यतेयातुसानृत्यतुममाग्रतः ॥ ३५ ॥ गुणरूपविहीनायाःसिद्धिर्नाट्यस्यनास्तिवै ॥ चार्वधिष्ठानवन्नृत्यंनृत्यमन्याद्विडम्बनम् ॥३६॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तद्वाक्यसमकालंचएकैकास्तानतास्ततः ॥ अहंगुणाधिकानत्वंनत्वंचान्याब्रवीदिदम् ॥ ३७॥

मुनिसे कहा, इन्द्र बोले—हे महाभाग ! जिसको आपकी इच्छाहो गाने की आज्ञादो ॥ ३२ ॥ रंभा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा, उर्वशी, घृताची वा मेनका इनमें जिसकी अभिलाषाहो उसीको नृत्य करनेकी आज्ञादो ॥ ३३ ॥ द्विजश्रेष्ठ नारदजीने देवराज इन्द्रके यह वचन सुन, कुछ काल चिन्ता कर विनय करती हुई अप्सराओंसे कहा ॥ ३४ ॥ देखो, तुममें जो रमणी रूपवती और उदारता इत्यादि गुणों में अपनेको गुणवती विचारतीहो वही मेरे सन्मुख नृत्य करे ॥ ३५ ॥ क्योंकि रूपवती और गुणवतीके अतिरिक्त नाटयशास्त्रमें अन्यकी सिद्धि नहीं होती। एवं हाव, भाव और कटाक्ष विक्षेपादि युक्त नृत्यकोही नृत्य कहते हैं, अन्य नृत्य वृथा है॥ ३६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-अनन्तर उनका यह वचन सुनकर एक एक अप्सरा परस्पर कहने लगी"मैं ही सबसे गुणोंमें अधिकहूं तुम नहीं" ॥ ३७ ॥

उनमें इसप्रकार विवाद उपस्थित हुआ देखकर भगवान् पाकशासन (इन्द्र) ने कहा, तुम इन मुनिसेही पूछो, तुममें कौन गुणवती है, सो यही कह सकते हैं ॥ ३८ ॥ हे जैमिने ! इन्द्रकी इच्छानुसार चलनेवाली वेश्याओंके पूछनेपर महर्षि नारदजीने उस समय जो कहा था, वह कहताहूं सुनो ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले—देखो. मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा पर्वतके ऊपर तपस्या करते हैं, उनको जो मोहित कर सकेगी, तुममें वही अधिक गुणशालिनी है ॥ ४० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उनका यह वचन सुनकर सब अप्सराओंने मस्तक कम्पायमान करके कहा,इस कार्यके करनेमें हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४१ ॥ तिनमें वपुनामक एक अप्सराने अनेक वार अनेक मुनियोंका तप भंग किया था,इसी कारण उसने गर्व सहित कहा—आज्ञा कीजिये, जहां दुर्वासा मुनि स्थित हैं, मैं वहीं जाऊंगी ॥ ४२ ॥ मैं

तासांसंभ्रममालोक्य भगवान्पाकशासनः ॥ पृच्छ्यतांमुनिरित्याहवक्तायांवोगुणाधिकाम् ॥ ३८ ॥ शक्रच्छन्दानुयाताभिःपृष्टस्ताभिःसनारदः ॥ प्रोवाचयत्तदावाक्यंजैमिनेतन्निबोधमे ॥ ३९ ॥ तपस्यंतंनगेन्द्रस्थंयावःक्षोभयतेबलात् ॥ दुर्वाससंमुनिश्रेष्ठं तांवोमन्येगुणाधिकाम् ॥ ४० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासर्वावेपितकन्धराः ॥ अशक्यमेतदस्माकमितिताश्चक्रिरेकथाः ॥४१॥ तत्राप्सरावपुर्नाममुनिक्षोभणगर्विता ॥ प्रत्युवाचानुयास्यामियत्रासौसंस्थितोमुनिः ॥ ४२ ॥ अद्यतंदेहयन्तारंप्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ॥ स्मरशस्त्रगलद्रश्मिंकरिष्यामिकुसारथिम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजनार्दनोवापियदिवानीललोहितः ॥ तमप्यद्यकरिष्यामिकामबाणक्षतान्तरम् ॥४४॥ इत्युक्त्वाप्रजगामाथप्रालेयाद्रिंवपुस्तदा ॥ मुनेस्तपःप्रभावेणप्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥ ४५ ॥ सापुंस्कोकिलमाधुर्यायत्रास्तेसमहामुनिः ॥ क्रोशमात्रंस्थितातस्मादगायतवराप्सराः ॥ ४६॥ तद्गीतध्वनिमाकर्ण्यमुनिर्विस्मितमानसः ॥ जगामतत्रयत्रास्तेसाबालारुचिरानना ॥ ४७ ॥ तांदृष्ट्वाचारुसर्वाङ्गींमुनिःसंस्तभ्यमानसम् ॥ क्षोभणायागतांज्ञात्वाकोपामर्षसमन्वितः ॥ ४८ ॥

अभी कामबाणके आघातसे उनकी मनोरूप लगामको छेदन कर इन्द्रियरूपी घोडोंको उन्मार्गगामी करके देहरूपी रथको बुद्धिरूप सारथी विहीन करूंगी ॥ ॥ ४३ ॥ यदि ब्रह्मा, विष्णु वा महादेव भी हों, तो भी निःसन्देह इस समय उनका अन्तर कामबाणसे जर्जरित करूंगी ॥ ४४ ॥ वपु नामक अप्सरा यह कहकर हिमालय पर्वतमें गई, वहां मुनिकी तपस्याके प्रभावसे आश्रमवासी हिंसक जीव भी अत्यन्त शान्त थे ॥ ४५ ॥ अप्सराओंमें श्रेष्ठ वपु जहां महामुनि दुर्वासा वास करते थे, वहांसे एक कोशमात्रके अन्तरमें अवस्थानकरके पुंस्कोकिलके समान मनोहर कंठसे गान करने लगी ॥ ४६ ॥ मुनिवर दुर्वासा इस गीतको सुनकर जहां वह कोकिलकंठी बाला स्थित थी, आश्चर्यचित्तसे वहां गये ॥ ४७ ॥ मुनिवर दुर्वासाने उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनी को देख, मन

को रोक "मेरे तपमें विघ्न करने के लियेही आई है" यह समझ अत्यन्त क्रोध युक्त होकर ॥ ४८ ॥ महातपा महर्षि ने उससे कहा ॥ ४९ ॥ रे मदोन्मत्त खेचारि ! मेरी इस दुःखोपार्जित तपस्यामें तू विघ्न करनेके लियेही आई है ॥ ५० ॥ इस कारण रे दुर्बुद्धे ! तू मेरे क्रोधसे कलुषित होकर सोलहवर्षतक पक्षियोंके कुलमें जन्म ग्रहण करके रहेगी ॥ ५१ ॥ रे अप्सराधम ! तू अपना रूप त्याग कर पक्षीरूप धारण करेगी तेरे चार पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ५२ ॥ तू पुत्र उत्पन्न करने की प्रीति प्राप्त करनेमें वंचित होगी और शस्त्राघातसे विनष्टपापहोकर फिर स्वर्ग में जायगी, देखना इसमें अब कोई उत्तर न करना ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ महर्षि दुर्वासा क्रोधसे लाल नेत्रहो चंचल मनोरम कंकणधारिणीमानिनी वपुको यह वचन सुना कर, पृथ्वीको छोड़, प्रसिद्ध गुणों से युक्त आकाश

उवाचेदंततोवाक्यंमहर्षिस्तांमहातपाः॥४९॥यस्माद्दुःखार्जितस्येहतपसोविघ्नकारणात् ॥ आगतासिमदोन्मत्तेममदुःखायखेचारि॥५०॥तस्मात्सुपर्णगोत्रेत्वं मत्क्रोधकलुषीकृता॥जन्मप्राप्स्यसिदुष्प्रज्ञेयावद्वर्षाणिषोडश॥५१॥निजरूपंपरित्यज्यपक्षिणीरूपधारिणी॥चत्वारस्तेचतनयाजनिष्यन्तेऽधमाप्सरः॥५२॥ अप्राप्यतेषुचप्रीतिंशस्त्रपूतापुनर्दिवि ॥ वासमाप्स्यसिवक्तव्यंनोत्तरंतेकथंचन॥५३॥ इतिवचनमसह्यंकोपसंरक्तदृष्टिश्चलकलवलयांतांमानिनींश्रावयित्वा॥ तरलतरतरङ्गांगांपरित्यज्यविप्रःप्रथितगुणगणौघांसंप्रयातःखगङ्गाम् ॥५४॥ ॥ इतिमार्कण्डेयपुराणेवपुशापकथनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडोनामपक्षिराट् ॥ गरुडस्याभवत्पुत्रःसम्पातिरितिविश्रुतः ॥ १ ॥ तस्याप्यासीत्सुतःशूरःसुपार्श्वोवायुविक्रमः॥ सुपार्श्वतनयःकुन्तिःकुन्तिपुत्रःप्रलोलुपः ॥२॥ तस्यापितनयावास्तांकङ्कःकन्धरएवच ॥ ३ ॥ कङ्कःकैलासशिखरेविद्युद्रूपेतिविश्रुतम् ॥ ददर्शाम्बुजपत्राक्षंराक्षसंधनदानुगम् ॥ ४ ॥ आपानासक्तममलस्रग्दामाम्बरधारिणम् ॥ भार्यासहायमासीनंशिलापट्टेऽमलेशुभे॥ ५ ॥

गंगाको चलेगये ॥ ५४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां वपुशापवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, सब पक्षियोंके राजा गरुड अरिष्टनेमिके पुत्र हुए, गरुड का पुत्र सम्पाति हुआ ॥ १ ॥ अत्यन्त बलवान् और वायुके समान विक्रमशाली सुपार्श्व सम्पाति का पुत्र हुआ, इसका पुत्र कुन्ति और कुन्तिका पुत्र प्रलोलुप हुआ॥ २ ॥ प्रलोलुपके दो पुत्र हुए. कंक और कन्धर ॥३॥ कंकने एक दिन कैलास पर्वतमें जाकर पद्मपत्रके समान विशाल नेत्रवाले कुबेरके अनुचर विद्युद्रूप नामक राक्षसको देखा ॥ ४ ॥ यह राक्षस उस समय निर्मल माला और अच्छे अच्छे

वस्त्र धारण किये स्वच्छ शिलापर भार्याके संग बैठा हुआ मद्यपान कर रहा था ॥ ॥ ५ ॥ विद्युद्रूप राक्षस कंकको देखतेही अत्यन्त क्रोधित होकर कहनेलगा, रे पक्षियों में अधम ! तू किसलिये यहां आयाहै? ॥ ६ ॥ मैं स्त्रीके संग बैठाहूं इस समय किस कारण तू मेरे समीप आया है? क्योंकि रहस्यकार्यमें बुद्धिमान् पुरुषोंको ऐसा आचरण नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ कंकने कहा—इस पर्वतपर सब का समान अधिकार है, इसमें जिसप्रकार तुम्हारा अधिकार है वैसाही मेरा है. और अन्यान्यज न्तुवोंका भी उसीप्रकार है, फिर इस विषय में तुमको इतनी ममता क्यों है? ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—कंकके इस प्रकार कहनेपर उस राक्षसने अत्यन्त क्रोधि- तहो खड्गाघातसे उसका शिर काट डाला, शिर कटनेके कारण रुधिरके गिरनेसे अतिभयंकर कार्य हुआ, तब कंक विचेतन होकर मर गया ॥ ९ ॥ इसके पीछे

तद्दृष्टमात्रं कङ्केनरक्षःक्रोधसमन्वितम् ॥ प्रोवाचकस्मादायातस्त्वमितोह्यण्डजाधम ॥ ६ ॥ स्त्रीसन्निकर्षेतिष्ठन्तंकस्मान्मामुपसर्पसि ॥ नैषधर्मःसुबुद्धीनांमि थोनिष्पाद्यवस्तुषु ॥ ७ ॥ कङ्कउवाच ॥ ॥ साधारणोऽयंशैलेन्द्रोयथातवतथामम ॥ अन्येषांचैवजन्तूनांममताभवतोऽत्रका ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ८ ॥ ब्रुवाणमित्थंखड्गेनकङ्कंचिच्छेदराक्षसः ॥ क्षरत्क्षतजबीभत्संविस्फुरन्तमचेतनम् ॥ ९ ॥ कङ्कंविनिहतंश्रुत्वाकन्धरःक्रोधमूर्छितः ॥ विद्युद्रूपवधायाशुमनश्च क्रेण्डजेश्वरः ॥१०॥ सगत्वाशैलशिखरंकङ्कोयत्रहतःस्थितः ॥ तस्यसंकलनंचक्रेभ्रातुर्ज्येष्ठस्यखेचरः ॥ कोपामर्षविवृत्ताक्षोनागेन्द्रइवनिःश्वसन् ॥ ११ ॥ जगामाथसयत्रास्तेभ्रातृहातस्यराक्षसः ॥ पक्षवातेनमहताचालयन्भूधरान्वरान् ॥ १२ ॥ वेगात्पयोदजालानिविक्षिपन्क्षतजेक्षणः ॥ क्षणात्क्षयितशत्रुः सपक्षाभ्यांक्रान्तभूधरः ॥ १३ ॥ पानासक्तमतिंतत्रतंददर्शनिशाचरम् ॥ आताम्रवक्त्रनयनंहेमपर्यङ्कमाश्रितम् ॥ १४ ॥ स्रग्दामापूरितशिखंहरिचन्दनभू षितम् ॥ केतकीपत्रगर्भाभैर्दन्तैर्घोरतराननम् ॥ १५ ॥

पक्षियों में श्रेष्ठ कन्धरने कंकको मरा हुआ सुन अत्यन्त क्रोधसहित विद्युद्रूप राक्षसके मारनेकी इच्छा करी ॥ १० ॥ अनन्तर बड़ा भाई कंधर कंक जहां मारागया था, कैलास पर्वतके उसी स्थानमें जाकर उसका अन्त्येष्टि कर्म किया और विस्फारितनेत्रोंसे सर्पकी समान श्वास लेता हुआ ॥ ११ ॥ भ्राताका मारनेवाला विद्युद्रूप राक्षस जहां स्थित था, वहां गया, उसके गमनसमयमें पंखोंकी वायुके वेगसे आहत होकर बड़े बड़े पर्वत चलायमान होने लगे ॥ १२ ॥ और समुद्रका जल इधर उधर बिखरने लगा कंधरने इसप्रकार एकमात्र पंखोंके आश्रयसे क्षणमात्रमेंही पर्वतको आक्रमण किया ॥ १३ ॥ पक्षी श्रेष्ठ कंधरने पर्वतके ऊपर पहुंचकर देखा कि, निशाचर विद्युद्रूप सुवर्णमय शय्यापर बैठा हुआ मद्यपान कर रहा है ॥ १४ ॥ उसके मुखमण्डल और दोनों नेत्रोंने

कुछेक लालवर्ण धारण किया है और उसका मस्तक मालासे युक्त, सर्वाङ्ग हरिचंदनके द्वारा चर्चित और मुखमण्डल केतकीपुष्पके गर्भपत्रकी समान सफेद दांतोंकी पंक्तिसे शोभायमान हो रहा है ॥ १५ ॥ और यह भी देखा कि, एक सर्वाङ्गसुन्दरी कोकिलकंठी नितम्बिनी उसके समीप बैठी है, यही उसकी पत्नी है। कामिनीके दोनों नेत्र बड़े और उसका नाम मदनिका है ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ कन्धरने अत्यन्त क्रोधित होकर पर्वतकी कन्दरामें बैठे हुए निशाचरको बुलाकर कहा रे दुष्टात्मन् ! शीघ्र आनकर मुझसे युद्धकर ॥ १७ ॥ जो कि, तैं ने मदोन्मत्त होकर मेरे बड़े भाई कंकको वध किया है, इस कारण अब तुझको निःसन्देह यमालय भेजूंगा ॥ १८ ॥ विश्वासघातकता, स्त्रीहत्या और बालकोंकी हत्या करनेवाले पातकी जिन नरकोंमें जाते हैं, तू भी इस समय मेरे

वामोरुमाश्रितांचास्यददर्शायतलोचनाम् ॥ पत्नींमदनिकांनामपुंस्कोकिलकलस्वनाम् ॥ १६ ॥ ततोरोषपरीतात्माकन्धरःकन्दरस्थितम् ॥ तमुवाचसुदुष्टात्मन्नेहियुध्यस्ववैमया ॥ १७ ॥ यस्माज्ज्येष्ठोममभ्राताविश्रब्धोघातितस्त्वया ॥ तस्मात्त्वांमदसंसक्तंनयिष्येयमसादनम् ॥ १८ ॥ विश्वस्तघातिनांलोकायेचस्त्रीबालघातिनाम् ॥ यास्यसेनिरयान्सर्वांस्तांस्त्वमद्यमयाहतः ॥ १९ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्येवंपतगेन्द्रेणप्रोक्तःस्त्रीसन्निधौतदा॥ रक्षःक्रोधसमाविष्टंप्रत्यभाषतपक्षिणम् ॥ २० ॥ यदितेनिहतोभ्रातापौरुषंतद्धिदर्शितम् ॥ त्वामप्यद्यहनिष्येहंखड्गेनानेनखेचर ॥ २१ ॥ तिष्ठक्षणंनात्रजीवन्पतगाधमयास्यसि ॥ इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभंविमलंखड्गमाददे ॥ २२ ॥ ततःपतगराजस्ययक्षाधिपभटस्यच ॥ बभूवयुद्धमतुलंयथागरुडशक्रयोः ॥ २३ ॥ ततःसराक्षसःक्रोधात्खड्गमाविध्यवेगवत् ॥ चिक्षेपपतगेन्द्रायनिर्वाणाङ्गारवर्चसम् ॥ २४ ॥ पतगेन्द्रश्चतंखड्गंकिंचिदुत्प्लुत्यभूतलात् ॥ वक्रेणजग्राहतदागरुडःपन्नगंयथा ॥ २५ ॥

हाथसे मरकर उन्हीं नरकोंमें जायगा ॥ १९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—वह निशाचर विद्युद्रूप पक्षिश्रेष्ठ कंधरके यह वचन अपनी पत्नीके निकट सुन, अत्यन्त क्रोधित होकर पक्षीसे कहनेलगा ॥ २० ॥ रे खेचर ! तेरे भाईके मारनेमें मेरा पौरुषही प्रकाश पाता है, अत एव अब इस खड्गसे तुझकोभी निहत करूंगा ॥ २१ ॥ रे पतगाधम ! क्षणकाल ठहर, मेरे निकटसे जीवित अवस्थामें नहीं जा सकेगा यह कह कर उस राक्षसने अंजनपुंजकी समान कृष्ण वर्ण निर्मल खड्ग ग्रहण किया ॥ २२ ॥ पूर्वकालमें जिसप्रकार इन्द्रके संग गरुडका तुमुल युद्ध हुआ था, वैसेही इस राक्षसके संग पक्षी कंधरका संग्राम होने लगा ॥ २३ ॥ अनन्तर उस राक्षसने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अग्निकी समान चमकता हुआ कृष्णवर्ण खड्ग वेगसहित पक्षीके ऊपर चलाया ॥ २४ ॥ पक्षीने भी वैसेही पृथ्वीसे कुछेक कूदकर गरुड जिसप्रकार सर्पोंको चोंचमें

पकड़ते हैं उसीप्रकार उस खड्गको चोंचमें धारण कर लिया॥ २५॥पक्षिश्रेष्ठ कंधर चोंचमें खड्ग धारणपूर्वक पैरोंसे उसको तोड़कर अत्यन्त क्रोधित हुआ और फिर उनका बाहुयुद्ध होने लगा ॥ २६ ॥ अनन्तर निशाचर पक्षीकेद्वारा वक्ष स्थलमें आक्रान्त होकर पक्षीके प्रहारसे जर्जरित हुआ और उसकी नाड़ी हाथ पैर तथा मस्तक देहसे पृथक् होगया ॥ २७ ॥ उस राक्षसके मरनेपर उसकी पत्नी मदनिकाने भयाकुलचित्तसे खगराजकी शरणागत होकर कहा—हे महाशय ! मैं आप की भार्या हुई ॥ २८ ॥ खगश्रेष्ठ कन्धरने—निशाचरको मारकर भ्रातृवध जनित शोकसे निष्कृति लाभ की और मदनिकाको संगलेकर अपने घर आया ॥ २९ ॥ मेनकाकी पुत्री निशाचरी मदनिका अपनी इच्छानुसार रूप धारणकर लेतीथी, इस कारण कंधरके घर आनकर पक्षीरूप अवलम्बन किया ॥ ३० ॥ इसी पक्षिणीके उदरसे दुर्वासा मुनिकी शापानलसे युक्त वपु अप्सराने जन्म ग्रहण किया, खगपति कंधरने उसका नाम तार्क्षी रक्खा ॥ ३१ ॥ हे द्विजसत्तम ! मन्दपाल

वक्रपादतलैर्भङ्क्त्वाचक्रेक्षोभमथाण्डजः ॥ तस्मिन्भग्नेततःखड्गेबाहुयुद्धमवर्तत ॥२६॥ ततःपतगराजेनवक्षस्याक्रम्यराक्षसः ॥ हस्तपादकैराशुशिरसाच वियोजितः ॥ २७॥ तस्मिन्विनिहतेसास्त्रीखगंशरणमभ्यगात् ॥ किञ्चित्सञ्जातसन्त्रासाप्राहभार्याभवामिते ॥२८॥ तामादायखगश्रेष्ठःस्वकंगृहमगात्पुनः ॥ गत्वासनिष्कृतिंभ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात् ॥ २९ ॥ कन्धरस्यचसावेश्मप्राप्येच्छारूपधारिणी ॥ मेनकातनयासुभ्रूःसौपर्णरूपमाददे ॥ ३० ॥ तस्यां सजनयामासतार्क्षींनामसुतांतदा ॥ मुनिशापाग्निविप्लुष्टांवपुमप्सरसांवराम् ॥ तस्यानामतदाचक्रेतार्क्षीमितिविहंगमः ॥ ३१ ॥ मन्दपालसुताश्चासंश्चत्वारोऽमितबुद्धयः ॥ जरितारिप्रभृतयोद्रोणान्ताद्विजसत्तमाः ॥ ३२ ॥ तेषांजघन्योधर्मात्मावेदवेदांगपारग· ॥ उपयेमेसतांतार्क्षींकन्धरानुमतेशुभाम् ॥ ३३ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यतार्क्षीगर्भमवापह ॥सप्तपक्षाहितेगर्भेकुरुक्षेत्रंजगामसा ॥ ३४ ॥ कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्तमानेसुदारुणे ॥ भावित्वाच्चैवकार्यस्यरथमध्ये विवेशसा ॥ ३५ ॥ तत्रापश्यतयुद्धंसासर्वेषांपृथिवीक्षिताम् ॥ शरशक्त्यृष्टिभिर्भीमंयथादेवासुरंरणम् ॥ ३६ ॥

नामक ब्राह्मणके चार पुत्रथे, उनमें बड़ेका नाम जितारि और छोटेका नाम द्रोण था वह सब अत्यन्त बुद्धिमान्थे ॥ ३२॥ तिनमें वेदवेदाङ्गका तत्त्व जानने वाले धर्मात्मा द्रोणके संग खगराज कंधरकी अनुमतिसे उस सर्वाङ्गसुन्दरी तार्क्षीका विवाह कर दिया था ॥ ३३ ॥ अनन्तर कुछदिन बीतनेपर उस तार्क्षीको गर्भ रहा गर्भ धारणके दिनसे सात पक्ष बीतनेपर तार्क्षी कुरुक्षेत्रमें धारणके दिनसे सात पक्ष बीतनेपर तार्क्षी कुरुक्षेत्रमें गई ॥ ३४ ॥ उस समय कौरव पाण्डवोंका दारुण युद्ध होरहाथा, किन्तु जो अवश्य होनेवाली बातहै उसको कोई खंडन नहीं कर सकता, इसीसे तार्क्षी उस युद्धस्थलमें गई ॥ ३५ ॥ पक्षिणी ने वहां पहुंचकर देखा कि, भगदत्त और अर्जुन तुमुल संग्राम कर रहे हैं, उनके निरन्तर छूटतेहुए बाणोंसे आकाशमण्डल टीढीकी समान व्याप्त हुआ है ॥ ३६ ॥

इधर पार्थके धनुषसे छूटेहुए वेगसहित एक बाणने आनकर तार्क्षीके जठरकी त्वक् (खाल) बींध डाली ॥ ३७ ॥ पक्षिणीकी कुक्षि विदीर्ण होनेपर चंद्रमाकी समान श्वेतवर्ण चार अंडे अत्यन्त ऊँचे स्थानसे गिरकर भी आयुकाल विशेष विद्यमान होनेके कारण रूईकी समान भूमिमें गिरे ॥ ३८ ॥ इसी समयमें भगदत्तके सुप्रतीक नामक गजराजका महाप्रमाण गलघंटा बाणसे छिन्नबंधन होकर गिरा ॥ ३९ ॥ यद्यपि दोनों एक ही कालमें पृथ्वीपर प्राप्त हुए, किन्तु घंटा इस प्रकार गिरा कि, उस मांसपिंडके उपरिस्थ सब अंडोंके चारों ओर भलीभांतिढक्कन हो गया ॥ ४० ॥ नरपतिश्रेष्ठ भगदत्तके उस युद्धमें मारेजानेपर भी कौरव और पांडवोंकी सेनाका बहुत दिनोंतक युद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ अनन्तर युद्ध समाप्त होनेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिर धर्मविषयक नानाप्रकारके उपदेश ग्रहण करनेको

तत्रापश्यत्तदायुद्धंभगदत्तकिरीटिनोः ॥ निरंतरंशरैरासीदाकाशशलभैरिव ॥ ३७ ॥ पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् ॥ तस्याभल्लमहिश्यामंत्वचंचिच्छेदजाठरीम् ॥ ३८ ॥ भिन्नेकोष्ठेशशाङ्काभंभूमावण्डचतुष्टयम् ॥ आयुषःसावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत् ॥ ३९ ॥ तत्पातसमकालंचसुप्रतीकाद्गजोत्तमात् ॥ पपातमहतीघण्टावाणसंछिन्नबन्धना ॥ ४० ॥ सर्मसमन्तात्प्राप्तातुनिर्भिन्नधरणीतला ॥ छादयन्तीखमण्डानिस्थितानिपिशितोपरि ॥ ४१ ॥ हतेचतस्मिन्नृपतौभगदत्तेनरेश्वरे ॥ बहून्यहान्यभूद्युद्धंकुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥ ४२ ॥ वृत्तेयुद्धेधर्मपुत्रेगतेशान्तनवान्तिकम् ॥ भीष्मस्यगदतोऽशेषाञ्श्रोतुंधर्मान्महात्मनः ॥ ४३ ॥ घण्टागतानितिष्ठन्तियत्राण्डानिद्विजोत्तम ॥ आजगामतमुद्देशंशमीकोनामसंयमी ॥ ४४ ॥ सतत्रशब्दमशृणोच्चिचीकुचीतिवाशताम् ॥ बाल्यादस्फुटवाक्यानांविज्ञानेऽपिपरेसति ॥ ४५ ॥ अथर्षिःशिष्यसहितोघण्टामुत्पाट्यविस्मितः ॥ अमातृपितृपक्षाणिशिशुकानिददर्शह ॥ ४६ ॥ तानितत्रतथाभूमौशमीकोभगवान्मुनिः ॥ दृष्ट्वासविस्मयाविष्टःप्रोवाचानुगतान्द्विजान् ॥ ४७ ॥

शन्तनुपुत्र महात्मा भीष्मके निकट गये ॥ ४२ ॥ इसके पीछे जहां घंटेसे ढके हुए पक्षीके बच्चे विद्यमान थे, अकस्मात् संयमचित्त ब्राह्मणश्रेष्ठ शमीकमुनि उस स्थानमें आये ॥ ४३ ॥ और घंटेके भीतर पक्षीके बच्चोंका " चिची कुची " शब्द उन्होंने सुना यद्यपि बालकोंको अत्यन्त ज्ञान हो गया था, किन्तु तो भी वह बाल्यकालवशतः अस्फुट अर्थात् जो समझमें न आवें, ऐसे शब्द उच्चारण करते थे ॥ ४४ ॥ अनन्तर शिष्योंके सहित ऋषिश्रेष्ठने अकस्मात् पक्षिशावकोंका शब्द सुनकर आश्चर्ययुक्तचित्तसे घंटा उठाया और माता पिता तथा पंखहीन पक्षीके बच्चोंको देखा ॥ ४५ ॥ मुनिश्रेष्ठ भगवान् शमीकमुनिने भूतलमें यथावत स्थित पक्षीके बच्चोंको देखकर अनुगत ब्राह्मणोंसे आश्चर्ययुक्त होकर कहा ॥ ४६ ॥ हे ब्राह्मणो ! पूर्वकालमें देवताओंसे ताडितहोकर जब दैत्योंकी सेना इधर उधर

भागने लगी, उस समय द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यजीने उससे सत्यही कहा था ॥४७॥ "हे दैत्यगण ! तुम मत भागो" निवृत्तहोओ ! इसप्रकार कातर होकर किस लिये जातेहो ? शौर्य और यश त्यागकर कहां जाओगे ? तुम क्या कभी नहीं मरोगे? ॥ ४८ ॥ पूर्व में विधाताने जब तुमको उत्पन्न किया है, तो जबतक उनकी इच्छा न हो, तबतक युद्ध करो ना भागो, किसी प्रकार तुम नहीं मरोगे ॥४९॥ देखो, कोई अपने घर रहनेपरभी मरताहै कोई भागकर भी मरता है कोई पान भोजन करते करते ही प्राण त्याग करता है ॥ ५० ॥ और कोई कामगामी व सुस्थ शरीरसे विद्यमान रहकरभी दिव्यविलास वासना भोगताहुआ शस्त्रादिसे अविद्ध होकर भी कालके करालगालमें गिरता है ॥ ५१ ॥ और कोई तपस्यामें निरत तथा कोई योगाभ्यास करते यमालयमें गया है, किन्तु अमर कोई भी नहीं हुआ॥

सम्यगुक्तंद्विजाग्र्येणशुक्रेणोशनसास्वयम् ॥ पलायनपरंदृष्ट्वादैत्यसैन्यंसुरार्दितम् ॥ ४८ ॥ नगन्तव्यंनिवर्तध्वंकस्माद्व्रजतकातराः ॥ उत्सृज्यशौर्य्ययशसी क्वगतानमरिष्यथ ॥ ४९ ॥ नश्यतोयुध्यतोवापितावद्भवतिजीवितम् ॥ यावद्धातासृजत्पूर्वंनयावन्मनसेप्सितम् ॥ ५० ॥ एकेम्रियन्तेस्वगृहेपलायन्तोऽपरे जनाः ॥ भुञ्जन्तोऽन्नंतथैवापःपिबन्तोनिधनंगताः ॥ ५१ ॥ विलासिनस्तथैवान्येकामयानानिरामयाः ॥ अविक्षतांगाःशस्त्रैश्चप्रेतराजवशंगताः ॥ ५२ ॥ अन्येतपस्यभिरतानीताःप्रेतनृपानुगैः ॥ योगाभ्यासेरताश्चान्येनैवप्रापुरमृत्युताम् ॥ ५३ ॥ शम्बरायपुराक्षिप्तंवज्रंकुलिशपाणिना ॥ हृदयेऽभिहतस्तेनतथापि नमृतोसुरः ॥ ५४ ॥ तेनैवखलुवज्रेणतेनैवेन्द्रेणदानवाः ॥ प्राप्तेकालेहतादैत्यास्तत्क्षणान्निधनंगताः ॥ ५५ ॥ विदित्वैवंनसंत्रासःकर्तव्योविनिवर्तत ॥ ततोनिवृत्तास्तेदैत्यास्त्यक्त्वामरणजंभयम् ॥ ५६ ॥ इतिशुक्रवचःसत्यंकृतमेभिःखगोत्तमैः ॥ येयुद्धेऽपिनसंप्राप्ताःपञ्चत्वमतिमानुषे ॥ ५७ ॥

॥ ५२ ॥ पहिले वज्रपाणि इन्द्रने शम्बरके प्रति वज्र चलाया और उस वज्रसे उसकी छाती फट जानेपरभी उस असुरका प्राण नष्ट नहीं हुआ ॥ ५३ ॥ किन्तु उसी इन्द्रने फिर उसी वज्रसे सब असुरों के प्रति आघात किया किन्तु उनका समय उपस्थित हुआथा, इसकारण वह यमसदनके अतिथि हुए ॥ ५४ ॥ अत एव तुम यह सब जानकर भी किस लिये ऐसे त्रसित होतेहो? निवृत्त होओ निवृत्त होओ" दैत्यगण यह सुन मरनेका भय त्यागकर निवृत्त हुएथे ॥ ५५ ॥ हे विप्रगण ! इन पक्षिशावकोंने भी शुक्राचार्यके यह सब वचन सत्य कियेथे ॥ देखो, इस अलौकिक युद्धमेंभी इनका प्राण नहीं गया ॥ ५६ ॥ क्या आश्चर्य है, देखो, कहां तो सब अंडोंका गिरना, कहां उसी समय घंटेका गिरना, और कहां मांस वसा (चरबी) और रक्तसे पृथ्वीका आच्छादन परस्पर

अत्यन्त अन्तर होनेपर भी एकही कालमें सबका संघटन हुआ ॥ ५७ ॥ यह कौन हैं ? हे विप्रगण ! बोध होता है कि, यह सामान्य पक्षी नहीं हैं, दैवके अनुकूल होनेपर महाभाग्यता उपस्थित होती है ॥५८॥ यह कहकर महर्षि शमीकने उनको फिर देखकर कहा—हे द्विजगण ! तुम निवृत्त होओ और पक्षिशावकोंको लेकर फिर आश्रममें जाओ ॥ ५९ ॥ जहां बिल्ली, चूहा, नकुल वा बाज पक्षीका भय उपस्थित न हो, वहां इन पक्षियोंको रक्खो अथवा॥६०॥ हे ब्राह्मणों ! अधिक यत्नकी क्या आवश्यकता है, क्योंकि जीवमात्रही अपने अपने कर्मसे निहत और रक्षित होते हैं, यह पक्षीके बच्चे यहां किससे रक्षित हुए हैं ? ॥ ६१ ॥ किन्तु तोभी सब कार्योंमेंही मनुष्यको यत्न करना चाहिये, नहीं तो पुरुषार्थ न करनेसे साधुओंके निकट निन्दनीय होना पड़ता है ॥ ६२ ॥ मुनि

काण्डानांपतनंविप्राःक्वघण्टापतनंसमम् ॥ क्वचमांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ॥ ५८ ॥ केऽप्येतेसर्वथाविप्रानैतेसामान्यपक्षिणः ॥ दैवानुकूलतालोके महाभाग्यप्रदर्शिनी ॥ ५९ ॥एवमुक्त्वासतान्वीक्ष्यपुनर्वचनमब्रवीत् ॥ निवर्तताश्रमंयातगृहीत्वापक्षिबालकान् ॥ ६० ॥ मार्जाराखुभयंयत्रनैषामण्डजजन्मनाम् ॥ श्येनतोनकुलाद्वापिस्थाप्यतांतत्र पक्षिणः ॥ ६१ ॥ द्विजाःकिंवातियत्नेनमार्यन्तेकर्मभिःस्वकैः ॥ रक्ष्यन्तेचाखिलाजीवायथैतेपक्षिबालकाः ॥ ६२ ॥ तथापियत्नःकर्तव्योनरैःसर्वेषुकर्मसु ॥ कुर्वन्पुरुषकारंतुवाच्यतांयातिनोसताम् ॥ ६३ ॥ इतिमुनिवरचोदितास्ततस्तेमुनितनयाः परिगृह्यपक्षिणस्तान् ॥ तरुविटपसमाश्रितालिसंघंययुरथतापसरम्यमाश्रमंस्वम् ॥ ६४ ॥ सचापिवन्यंमनसाभिकामितंप्रगृह्यमूलंकुसुमंफलंकुशान् ॥ चकारचक्रायुधरुद्रवेधसांसुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ॥ ६५ ॥ अपांपतेर्गोष्पतिवित्तरक्षिणोःसमीरणस्यापितथाद्विजोत्तमः ॥ धातुर्विधातुस्त्वथवैश्वदेविकाःश्रुतिप्रयुक्ताविविधास्तुसत्क्रियाः ॥ ६६ ॥ ॥ इतिमार्कण्डेयपुराणेचटकोत्पत्तिकथनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

बालकोंने महर्षिके यह वचन सुन, पक्षिशावकोंको ग्रहण कर वृक्षोंकी शाखाओंमें गूँजते हुए भौरोंसे युक्त रमणीय अपने तपके आश्रममें प्रस्थान किया ॥ ६३ ॥ महर्षि शमीकने भी इच्छानुसार वनके फल मूल पुष्प और कुश ग्रहण करके ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्र यम अग्निकी पूजा की ॥ ६४ ॥ वरुण, बृहस्पति, कुबेर, वायु, धाता और विधाताको पूजा और वेदोक्त विधिके अनुसार उनके होमादि विविध कार्य संपादन किये ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासि कन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां चटकोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे विप्रेन्द्र ! मुनिश्रेष्ठ शमीकऋषि प्रतिदिन आहारदान जलदान, और रक्षाद्वारा उनका पोषण करने लगे ॥ १ ॥ पक्षियोंके बच्चे मुनिके द्वारा इसप्रकार पालित होकर एक मासके भीतर ही आकाशमार्गमें जाने लगे मुनिकुमार कौतूहलाक्रान्त हो उनको देखने लगे ॥ २ ॥ तिर्यक् योनिमें उत्पन्न हुए महात्मा पक्षी नद, नदी, सागर और नगरादि द्वारा परिपूर्ण रथके पहियेकीसमान पृथ्वीको देख अत्यन्त थकजानेपर फिर आश्रममें लौट आये । मुनिके प्रभावसे क्रमशः उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ ४ ॥ एक समय महर्षि शमीक शिष्योंके ऊपर कृपा करके धर्मोपदेश कर रहे थे, उसी समय पक्षियोंने प्रदक्षिणा करके उनके चरणोंमें अभिवादन अर्थात् प्रणाम किया ॥ ५ ॥ और कहा—"हे मुने ! आपने हमको घोर मृत्युके कष्टसे छुड़ाया है, आपहीने हमको वासस्था

मार्कंण्डेयउवाच॥अहन्यहनिविप्रेन्द्रसतेषांमुनिसत्तमः॥ चकाराहारपयसातथागुप्त्याचपोषणम् ॥१॥ मासमात्रेणजग्मुस्तेभानोः स्यन्दनवर्त्मनि ॥ कौतूहलविलोलाक्षैर्दृष्टामुनिकुमारकैः॥२॥दृष्ट्वामहींसनगरांसाम्भोनिधिसरिद्वराम् ॥ रथचक्रप्रमाणांतेपुनराश्रममागताः ॥३॥श्रमक्लांतांतरात्मानोमहात्मानोवियोनिजाः॥ ज्ञानंचप्रकटीभूतं तत्रतेषांप्रभावतः ॥ ४ ॥ ऋषेःशिष्यानुकम्पार्थंवदतोधर्मनिश्चयम् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंसर्वेचरणावभ्यवादयन् ॥५॥ ऊचुश्चमरणाद्धोरान्मोक्षिताःस्मस्त्वयामुने ॥आवासभक्ष्यपयसांत्वंनोदातापितागुरुः ॥ ६ ॥ गर्भस्थानांमृतामातापित्रानैवापिपालिताः ॥ त्वयानोजीवितंदत्तंशिशवोयेनरक्षिताः ॥७॥ क्षितावक्षततेजास्त्वंक्रुमीणामिवशुष्यताम् ॥ गजघंटांसमुत्पाट्यकृतवान्दुःखरेचनम् ॥ ८ ॥ कथंवर्द्धेयुरबलाःखस्थान्द्रक्ष्याम्यहंकदा ॥ कदाभूमेर्द्रुमंप्राप्तान्द्रक्ष्येवृक्षांतरंगताम् ॥९॥ कदामेसहजाकान्तिःपांसुनानाशमेष्यति ॥ एषांपक्षानिलोत्थेनमत्समीपविचारिणाम् ॥१०॥ इतिचिन्तयतातातभवताप्रतिपालिताः ॥ तेसांप्रतंप्रवृद्धाःस्मःप्रबुद्धाःकरवामकिम् ॥ ११ ॥

न आहार और जल दियाहै इस कारण आपही हमारे पिता और गुरु हैं ॥ ६ ॥ गर्भवासके समयही हमारी माता मरगई पिताने भी हमारा पालन नहीं किया, आपने ही हमारी बाल्यअवस्थासे आजतक रक्षा की है ॥ ७ ॥ हे अक्षततेजा ! हम जिस समय पृथ्वीमें पड़ेहुए कृमिके समान सूखते थे, उस काल आपनेही हाथीका घंटा उठाकर हमारा दुःख दूर किया था ॥ ८ ॥ "यह दुर्बल पक्षियोंके बच्चे किसप्रकारसे वर्द्धित हों. कब आकाशमें उड़ें पृथ्वीसे वृक्षके उपर जायँ और कब एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर जायँगे" ॥९॥ और "कब मेरे समीप विचरण करते करते उड़ेंगेकब इनके पंखसंचालनकी वायुसे उठीहुई रजद्वारा मेरी स्वाभाविक कान्ति विनष्ट होगी" ? ॥ १० ॥ हे तात ! इसप्रकार विचार कर आपने हमारा पालन किया है, अब हम बड़े हुए हैं और आपकी कृपासे ज्ञान पाया है, इस समय हम

क्या करें ? सो आज्ञा कीजिये ॥ ११ ॥ शिष्योंसे युक्त महर्षि शमीक उनकायह संस्कारयुक्त प्रस्फुट वचन सुनकर अपने पुत्र शृंगीके सहित अत्यन्त अचंभेमें हुए ॥ १२ ॥ और अत्यन्त कौतूहलके कारण पुलकित देहकरके पक्षियोंसे कहने लगे ॥ १३ ॥ कि, सत्य कहो, तुमने ऐसे स्पष्टवचन किसप्रकार उच्चारण किये और किसके शापसे तुम्हारे वाक्य और रूपकी ऐसी विक्रिया उत्पन्न हुईहै ? ॥ १४ ॥ पक्षियोंने कहा—हे मुनिसत्तम ! पूर्वकालमें विपुलस्वान् नामक एक मुनि थे सुकृष और तुम्बुरु नामक उनके दो पुत्र हुए ॥ १५ ॥ हम सब उन महात्माजितेन्द्रिय सुकृषके पुत्र हैं. विनय, आचार, भक्ति और नम्रता अवलम्बन करके हम सदाही उनके निकट रहतेथे ॥ १६ ॥ वह जब संयतचित्तसे तपस्या करते तब हम उनकी अभिलाषानुसार वस्तु लादेते ॥ १७ ॥ समिध, पुष्प

इत्यृषिर्वचनंतेषांश्रुत्वासंस्कारवत्स्फुटम् ॥ शिष्यैःपरिवृतःसर्वैःसहपुत्रेणशृङ्गिणा ॥ १२ ॥ कौतूहलपरोभूत्वारोमांचपटसंवृतः ॥ उवाच तत्त्वतोभूतप्रवृत्तेःकारणंगिरः ॥ १३ ॥ कस्य शापादियंप्राप्ताभवद्भिर्विक्रियापरा ॥ रूपस्यवचसश्चैवतन्मेवक्तुमिहार्हथ ॥ १४ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ विपुलस्वानितिख्यातः प्रागासीन्मुनिसत्तमः ॥ तस्यपुत्रद्वयंजज्ञेसुकृषस्तुंबुरुस्तथा ॥ १५ ॥ ॥ सुकृषस्यवयंपुत्राश्चत्वारःसंयतात्मनः ॥ तस्यर्षेर्विन याचारभक्तिनम्राःसदैवहि ॥ १६ ॥ तपश्चरणशक्तस्यशास्यमानेन्द्रियस्यच ॥ यथाभिमतमस्माभिस्तदातस्योपपादितम् ॥ १७ ॥ समित्पुष्पादिकंसर्वंयच्चै वाभ्यवहारिकम् ॥ एवंतत्राथवसतांतस्यास्माकंचकानने ॥ १८ ॥ आजगाममहावर्ष्माभग्नपक्षोजरान्वितः ॥ आताम्रनेत्रःस्रस्तात्मापक्षीभूत्वासुरेश्वरः ॥ १९ ॥ सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसम् ॥ जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवायच ॥ २० ॥ ॥ पक्ष्युवाच ॥ ॥ द्विजेन्द्रमांक्षुधाविष्टंपरित्रातुमिहार्हसि ॥ भक्षणार्थीमहाभागगतिर्भवममातुला ॥ २१ ॥ विन्ध्यस्यशिखरेतिष्ठन्पत्रिपत्रेरितेनवै ॥ पतितोऽस्मिमहाभागश्वसनेनातिरंहसा ॥ २२ ॥

और संपूर्ण भोजनकी सामग्री लाते. वह इसप्रकार हमारे संग वनमें वासकरतेथे ॥ १८ ॥ सुरेश्वर इन्द्र एक दिन बड़ा देह वृद्ध पक्षीका रूप धारणकर हमारे निकट आये उनके पंख सब टूटे हुए, नेत्र ताम्रवर्ण और आत्मा शिथिल होरहाथा ॥ १९ ॥ वह सत्य, शौच, क्षमा और आचारसंपन्न उदारचित्त मुनिसे कोई विषय पूछने लगे और जानाजाता है कि, हमारे प्रति पितृशाप होनेकेकारणही आयेथे ॥ २० ॥ पक्षी बोला—हे द्विजेन्द्र ! मैं भूँखसे अत्यन्त आतुर हुआहूं मेरी रक्षा करो हेमहाभाग ! मैं नितान्त भक्षणार्थी हूं आपही मेरी गतिस्वरूपहैं ॥ २१ ॥ हे महाभाग ! मैं विन्ध्यपर्वतके शिखरचूडामें वास करताहूं अकस्मात् पक्षिराज

गरुड़के पंखोंकी उठी वायुद्वारा इस स्थानमें गिरतेही मूर्च्छित होगया ॥ २२ ॥इस अवस्थामें एक सप्ताह काल बीतनेपर आठवें दिन मुझको चैतन्यता प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ कुछ देरके पीछे सुस्थहुआ और क्षुधासे आतुर होकर आपकी शारणमें आया हे महाभाग ! मेरा हृदय भूखसे अत्यन्त कातर होकर मुझको निरानन्द करे डालता है ॥ २४ ॥ हे विप्रर्षे ! मेरी रक्षा करनेकी चेष्टा कीजिये और जिससे मेरी क्षुधा नष्ट हो ऐसा आहार दीजिये ॥ २५ ॥ उन महर्षिने पक्षीसे इसप्रकार सुनकर पक्षीरूपी इन्द्रसे कहा हे खग ! प्राणधारणके उपयोगी तुमको किसआहारकी अभिलाषा है ? तुम्हारे आहारके उपयुक्त किस द्रव्यको लाऊं ॥२६ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह कहकर फिर मुनिने कहा कि, कहिये क्या भोजन करोगे ? मैंतुम्हारे निमित्त किस आहारको लाऊं ? तब उसने उत्तर दिया कि, मनुष्यका मांस

सोहंमोहसमाविष्टोभूमौसप्ताहमस्मृतिः ॥ स्थितस्तत्राष्टमेनाह्नाचेतनांप्राप्तवानहम् ॥ २३ ॥ प्राप्तचेताःक्षुधाविष्टोभवंतंशरणंगतः ॥ भक्ष्यार्थीविगतानंदो दूयमानेनचेतसा ॥ २४ ॥ तत्कुरुष्वामलमतेमत्त्राणायाचलां मतिम् ॥ प्रयच्छभक्ष्यंविप्रर्षेप्राणयात्राक्षमंमम ॥ २५ ॥ यएवमुक्तःप्रोवाचतमिन्द्रंपक्षिरूपिणम् ॥ प्राणसन्धारणार्थायदास्येभक्ष्यंतवेप्सितम् ॥ २६॥ इत्युक्त्वापुनरप्येनमपृच्छत्सद्विजोत्तमः ॥ आहारःकस्तवार्थायउपकल्प्योभवेन्मया ॥ सचाहनरमांसेनतृप्तिर्भवतिमेपरा ॥ २७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ कौमारंतेव्यतिक्रांतमतीतंयौवनंचते ॥ वयसःपरिणामस्तेवर्ततेनूनमंडज ॥२८॥ यस्मिन्नराणांसर्वेषामशेषेच्छानिवर्त्तते ॥ सकस्माद्वृद्धभावेऽपिसुनृशंसात्मकोभवान् ॥ २९ ॥ क्वमानुषस्यपिशितंक्ववयश्चरमंतव ॥ सर्वथादुष्टभावानांप्रथमोनोपपद्यते ॥ ३० ॥ अथवाकिंममैतेनप्रोक्तेनास्तिप्रयोजनम् ॥ प्रतिश्रुत्यसदादेयमितिनोभावितंमनः ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वातंसविप्रेंद्रस्तथेतिकृतनिश्चयः ॥ शीघ्रमस्मान्समाहूय गुणतोऽनुप्रशस्यच ॥ ३२ ॥

खानेसे मेरी परम तृप्ति होगी ॥ २७ ॥ ऋषि बोले—हे अण्डज ! तुम्हारी कौमारअवस्था बीतकर यौवन अवस्था हुई, वह भी अब बीतकर वृद्धावस्था आई है॥ २८॥ जिसमें मनुष्यकी भी समस्त वासना शेष होती हैं, किन्तु तोभी तुम वृद्धहोकरइतने नृशंसात्मक क्यों हो ॥ २९ ॥ देखो नरमांसभक्षण और वृद्धावस्था इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है, तथापि दुष्ट पुरुषोंकी दुराशा निवृत्त नहीं होती ॥ ३० ॥अथवा मुझकोही इन सब बातोंके आलोचना करनेकी क्या आवश्यकता है ? "अंगीकार किया हुआ विषय अवश्य देना चाहिये" यही मनमें विचारना उचित है ॥ ३१ ॥ हे द्विजेन्द्र ! उस पक्षीसे यह कहकर कृतनिश्चय मुनिने

शीघ्र हमको बुलाया और गुणसे प्रशंसाकर ॥ ३२ ॥ हमारे विनयनम्र और भक्तियुक्तहो हाथ जोड़कर खड़े होनेपर पिताने क्षुब्ध चित्तसे अति निष्ठुर यह वचन कहे ॥३३॥ तुम सभी विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ और सन्तानोत्पादनद्वारामेरी समान ऋणसे मुक्त हुए हो तुम जिसप्रकार मेरी सन्तान हो ऐसेही तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥३४॥ मैं तुम्हारा पिताहूं तुम यदि मुझको गुरु और पूज्य विचारतेहो तो अकपटचित्तसे मेरे वचन प्रतिपालन करो ॥३५॥ तब हमने भी सादर कहा हे पिता ! आप जो आज्ञा करेंगे उसको हमारे द्वारा संपादित हुआ ही समझिये ॥ ३६ ॥ ऋषि बोले—हे बालको ! यह पक्षी भूख प्याससे युक्त होकर मेरी शरणमें आया है इससमय तुम्हारा मांस भोजन करनेसे क्षण कालके लिये इसकी तृप्ति ॥३७॥और रक्तके पीनेसे प्यास निवृत्त होगी इस कारण तुम शीघ्र यही करो तब

उवाचक्षुब्धहृदयोमुनिर्वाक्यंसुनिष्ठुरम् ॥ विनयावनतान्सर्वान्भक्तियुक्तान्कृतांजलीन् ॥३३॥ कृतात्मानोद्विजश्रेष्ठऋणैर्युक्तामयासह ॥ जातंश्रेष्ठमपत्यंवोयूयं ममयथाद्विजाः॥३४॥ गुरुःपूज्योयदिमतोभवतांपरमःपिता ॥ ततःकुरुतमेवाक्यंनिर्व्यलीकेनचेतसा ॥ ३५ ॥ तद्वाक्यसमकालंचप्रोक्तमस्माभिराहतैः ॥ यद्वक्ष्यतिभवांस्तद्वैकृतमेवावधार्यताम् ॥ ३६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मामेषशरणंप्राप्तोविहंगःक्षुत्तृषान्वितः ॥ युष्मन्मांसेनयेनास्यक्षणंतृप्तिर्भवेतवै ॥३७॥ तृष्णाक्षयश्चरक्तेनतथाशीघ्रंविधीयताम् ॥ ततोवयंप्रव्यथिताःप्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः ॥ कष्टंकष्टमितिप्रोच्यनैतत्कर्मेतिचाब्रुवन् ॥ ३८ ॥ कथंपरशरीरस्यहेतोर्देहंस्वकंबुधः ॥ विनाशयेद्घातयेद्वायथाह्यात्मातथासुतः ॥ ३९ ॥ पितृदेवमनुष्याणांयान्युक्तानिऋणानिवै ॥ तान्यपाकुरुतेपुत्रोनशरीरप्रदःसुतः ॥४०॥ तस्मान्नैतत्करिष्यामोनोचीर्णयत्पुरातनैः ॥ जीवन्भद्राण्यवाप्नोतिजीवन्पुण्यंकरोतिच ॥ ४१ ॥ मृतस्यदेहनाशश्चधर्माद्युपरतिस्तथा ॥ आत्मानंसर्वतोरक्ष्यमाहुर्धर्मविदोजनाः ॥ ४२ ॥

हमने अत्यन्त व्यथितहृदय और भयसे कांपते २ कहा—यह अतीव कष्टदायककार्य हमसे नहीं होसकेगा ॥३८॥ कौन पण्डितजन होकर पराया देह पुष्ट करनेके लिये अपना जीवन नष्ट वा निहित करेगा ? क्योंकि आत्माका सन्तानकी समानयत्न करना चाहिये ॥ ३९ ॥ पितृऋण देवऋण और मनुष्यऋण जो शास्त्रमें कहा गया है, संतान उसकोही छुडाती है परन्तु पुत्र देह नहीं दे सकता ॥ ४० ॥ इसलिये हमसे यह कार्य नहीं हो सकेगा. क्योंकि पहिले भी किसीने ऐसा आचरण नहीं किया है, जीवन होनेसे ही श्रेयःप्राप्ति होती है और पुण्यादिकाआचरण कर सकता है॥४१॥मृत पुरुषके देहका विनाश होता है और धर्माचारादि

नष्ट होते हैं, इसी कारण धर्मके जाननेवाले पण्डितों ने कहा है कि, आत्माकी सबप्रकार से सदा रक्षा करे ॥ ४२ ॥ मुनिवर हमारे यह वचन सुनते ही क्रोधसे जलने लगे और क्रोधसे लाल नेत्रकर मानों हमको दग्धकरनेके लिये फिर बोले॥ ४३॥ रे दुर्वृत्तगण! मैं ने इसके निकट प्रतिज्ञाकी है और तुमने मेरा वचन प्रतिपालन नहीं किया,इस कारण मेरे शापसे दग्ध होकर तिर्यग् योनिमें जाओगे ॥ ४४ ॥ हे द्विजसत्तम !उन्हों ने हमसे यह कहकर शास्त्रानुसार अपनी ऊर्द्ध्वदैहिक अंत्येष्टि क्रिया सम्पादन करके उस पक्षीसे कहा ॥ ४५ ॥ हे खग ! तुम विश्वस्त चित्तसे मुझको भक्षण करो मैंने अपने देहको तुम्हारा आहार किया ॥ ४६ ॥ हे पतगश्रेष्ठ ! ब्राह्मण जबतक अपना सत्य प्रतिपालन करता है, तबतकही उसको ब्राह्मण कहाजाता है ॥४७॥सत्यप्रतिपालनमें जिसप्रकार पुण्य संचय होता है, दक्षिणा युक्त यज्ञानुष्ठानसे वा

इत्थंश्रुत्वावचोऽस्माकंमुनिःक्रोधादिवज्वलन् ॥ प्रोवाचपुनरप्यस्मान्निर्दहन्निवलोचनैः ॥ ४३ ॥ प्रतिज्ञातंवचोमह्यंयस्मान्नैतत्कारिष्यथ ॥ तस्मान्मच्छाप निर्दग्धास्तिर्यग्योनौप्रयास्यथ ॥ ४४ ॥ एवमुक्त्वातदासोस्मांस्तंविहंगममब्रवीत् ॥ अन्त्येष्टिमात्मनःकृत्वाशास्त्रतश्चौर्ध्वदैहिकम् ॥ ४५ ॥ भक्षयस्वसुविश्र ब्धोमामत्रद्विजसत्तम ॥ आहारीकृतमेतत्तेमयादेहमिहात्मनः ॥४६॥ एतावदेवविप्रस्यब्राह्मणत्वंप्रचक्ष्यते ॥ यावत्पतगजात्यग्र्यस्वसत्यपरिपालनम् ॥४७॥ नयज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यंप्राप्यतेमहत् ॥ कर्मणान्येनवाविप्रैर्यत्सत्यपरिपालनात्॥४८॥ इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वासोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः ॥ प्रत्युवाचमुनिंशक्रःपक्षि रूपधरस्तदा ॥४९॥ योगमास्थाय विप्रेन्द्रत्यज्येदंस्वंकलेवरम् ॥ जीवज्जंतुंहिविप्रेन्द्रनभक्षामिकदाचन ॥५०॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वायोगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ तंतस्यनिश्चयंज्ञात्वाशक्रोऽप्याहस्वदेहभृत् ॥ ५१ ॥ भोभोविप्रेन्द्रयुध्यस्वबुद्ध्याबोध्यंबुधात्मक ॥ जिज्ञासार्थंमयाऽयंतेअपराधःकृतोऽनघ ॥ ५२ ॥

अन्य किसी कर्मद्वारा वैसा पुण्य प्राप्त नहीं होता ॥ ४८ ॥ उन पक्षीरूपी इन्द्रने ऋषिश्रेष्ठके यह वचन सुन, मनमें अत्यन्त विस्मितः हो उनसे कहा ॥ ४९ ॥ हे विप्रेन्द्र ! पहिले योगावलम्बन करके अपना कलेवर त्याग कीजिये, फिर आपकामांस भक्षण करूंगा, क्योंकि मैंने जीवित प्राणीको कभी भोजन नहीं किया॥ ५०॥ पक्षीका यह वचन सुनकर मुनिराजने योगावलम्बन किया तब इन्द्रने भी उनकायह संकल्प निश्चय जान अपना देह धारण करके कहा ॥५१॥ हे पण्डिताग्रगण्य विप्रर्षे ! जाननेयोग्य विषयको बुद्धिपूर्वक बोध कीजिये हे अनघ ! मैंने आपको भली भांति जाननेके लियेही आपके निकट यह अपराध किया है ॥ ५२ ॥

निर्मलचित्त ! मुझको क्षमा करो, आपकी क्या अभिलाषा है ? आज्ञा करो, सत्यवाक्य प्रतिपालन करनेके कारण आपके प्रति मेरी अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है ॥ ॥ ५३ ॥ अबसे आपको ऐन्द्रज्ञान उत्पन्न होगा और तपस्याचरणमें कभी विघ्ननहीं होगा ॥ ५४ ॥ देवराज इन्द्रके इसप्रकार कहकर चले जानेपर हमने पिताके चरणोंमें प्रणाम करके क्रोधयुक्त महामुनिसे कहा ॥ ५५ ॥ हे पिता ! हे महामते ! हमने मरनेके भयसे अत्यन्त भीत और जीवनप्रियताके वशीभूत होकर ऐसा कहाहै ? अत एव हमको क्षमा कीजिये ॥ ५६ ॥ यह देह त्वक् अस्थि और मांस राद चर्बी और शोणितसे परिपूर्ण है, इसमें कुछ भी अनुराग नहीं करना चाहिये, किन्तु हे तात ! उसी देहमें हमारा अनुराग बढ़ा है ॥ ५७ ॥ हे महाभाग ! सुनाहै कि, प्रबलशत्रुस्वरूप काम क्रोधादिदोषद्वाराही सब लोक मोहित होते हैं

तत्क्षमस्वामलमतेकाचेच्छाक्रियतांतव॥ पालनात्सत्यवाक्यस्यप्रीतिर्मेपरमात्वयि॥५३॥अद्यप्रभृतितेज्ञानमैन्द्रंप्रादुर्भविष्यति॥ तपस्यथतथाधर्मेनतेविघ्नोभविष्यति॥ ५४ ॥ इत्युक्त्वातुगतेशक्रेपिताकोपसमन्वितः॥ प्रणम्यशिरसास्माभिरिदमुक्तोमहामुनिः॥५५॥ बिभ्यतांमरणात्तातत्वमस्माकंमहामते॥क्षन्तुमर्हसिदीनानांजीवितप्रियतांहिनः ॥५६॥ त्वगस्थिमांससंघातेपूयशोणितपूरिते॥ कर्त्तव्यानरतिर्यत्रतत्रास्माकमियंरतिः ॥५७॥ श्रूयतांचमहाभागयथालोकोविमुह्यति॥कामक्रोधादिभिर्दोषैरवशःप्रबलारिभिः॥५८॥ प्रज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिस्थूणंपरंमहत्॥ चर्मभित्तिमहारोधंमांसशोणितलेपनम् ॥५९॥ नवद्वारंमहायासंसर्वतःस्नायुवेष्टितम्॥ नृपश्चपुरुषस्तत्रचेतनावानवस्थितः॥ ६० ॥ मंत्रिणौतस्यबुद्धिश्चमनश्चैवविरोधिनौ ॥ यतेतेवैरनाशायताबुभावितरेतरम् ॥ ॥ ६१ ॥नृपस्यतस्यचत्वारोनाशमिच्छंतिविद्विषः॥ कामःक्रोधस्तथालोभोमोहश्चान्यस्तथारिपुः॥ ६२ ॥ यदातुसनृपस्तानिद्वाराण्यावृत्यतिष्ठति॥ सदासुस्थवलश्चैवनिरातंकश्चजायते॥ ६३ ॥

॥ ५८ ॥ हे पिता ! प्रज्ञारूपीदीवारोंसे वेष्टित यह देहरूप नगरी वर्त्तमान रहतीहै, अस्थि जिसका स्तम्भ है, जो चर्मरूपी भीतके द्वारा अत्यन्त रुद्ध, और मांसशोणितरूप कीचड़से लिपी ॥ ५९ ॥ नसें उसको चारों ओरसे घेरे हुए हैं और जिसके बहुत बड़े नौ दरवाजे हैं, उस पुरीमें चैतन्यरूपी पुरुष राज्य करता है ॥६०॥ राजाके दो मंत्री हैं; मन और बुद्धि वह भी परस्पर विरोधी हैं, इसलिये परस्पर परस्पर को विनाश करनेके लिये सदा यत्नवान् हैं ॥ ६१ ॥ काम, क्रोध, लोभ, और मोह नामक राजाके चार शत्रु हैं, वह सदा राजाके विनाशकरने की चेष्टा करते हैं ॥ ६२ ॥ वह राजा जिससमय पूर्वोक्त नवद्वार रुद्ध करके

अवस्थान करता है, उसी समय वह अत्यन्त सुस्थ निरातंक होता है ॥ ६३ ॥ और प्रेमवान् होता है, इसकारण उस समय उसको शत्रु अभिभूत नहीं कर सकते ॥ ६४ ॥ वह जब सब द्वार खोलकर अवस्थान करता है, उसी समयमें अनुराग नामक शत्रु नेत्रादि सब द्वारों पर आक्रमण करता है ॥ ६५ ॥ यह शत्रु सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रबल है ॥ यह अनुरागरूपी शत्रु जब नेत्रादि द्वारमें घुसता है, उसी समय लोभ मोह और क्रोधरूपी तीनों शत्रु उसके पीछे पीछे दौड़ते हैं ॥ ६६ ॥ वह रागरूपी शत्रु इन्द्रिय नामक सब दरवाजोंके द्वारा पुरी में घुसकर मनऔर बुद्धिके संगसंयुक्त होनेकी अभिलाषा करता है ॥ ६७ ॥ यह दुर्द्धर्ष अनुराग इन्द्रियगण मन और सब द्वारोंको वशीभूतकरके प्रज्ञारूपी प्राकार (बुद्धिरूपपरकोटा) भग्नकरता है ॥ ६८ ॥ बुद्धि भी मनको उसका आश्रय ग्रहण करता देखकर तत्काल नष्ट

जातानुरागेभवतिशत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ ६४ ॥ यदातुसर्वद्वाराणिविवृतानिसमुंचति ॥ रागोनामतदाशत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति ॥ ६५ ॥ सर्वव्यापीमहायामः पञ्चद्वारप्रवेशनः ॥ तस्यानुमार्गंविशतितद्वैघोरंरिपुत्रयम् ॥ ६६ ॥ प्रविश्याथसर्वेतत्रद्वारैरिन्द्रियसंज्ञकैः ॥ रागःसंश्लेषमायातिमनसाचसहेतरैः ॥ ६७ ॥ इन्द्रियाणिमनश्चैववशेकृत्वादुरासदः ॥ द्वाराणिचवशेकृत्वाप्राकारंनाशयत्यथ ॥ ६८ ॥ मनस्तस्याश्रितंदृष्ट्वाबुद्धिर्नश्यतितत्क्षणात् ॥ अमात्यरहितस्तत्रपौरवर्गोज्झितस्तथा ॥ ६९ ॥ रिपुभिर्लब्धविवरःसनृपोनाशमृच्छति ॥ एवंरागस्तथामोहोलोभःक्रोधस्तथैवच ॥ ७० ॥ प्रवर्ततेदुरात्मानोमनुष्यस्मृतिनाशकाः ॥ रागात्क्रोधःप्रभवतिक्रोधाल्लोभोऽभिजायते ॥ ७१ ॥ लोभाद्भवतिसम्मोहःसम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥ स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ७२ ॥ एवंप्रणष्टबुद्धीनांरागलोभानुवर्त्तिनाम् ॥ जीवितेचसलोभानांप्रसादंकुरुसत्तम ॥ ७३ ॥ योऽयंशापोभगवतादत्तःसनभवेत्तथा ॥ नतामसींगतिंकष्टांव्रजेसमुनिसत्तम ॥ ७४ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ यन्मयोक्तंनतन्मिथ्याभविष्यतिकदाचन ॥ नमेवागनृतंप्राहयावदद्येतिपुत्रकाः ॥ ७५ ॥

होती है, अतएव अमात्यहीन और प्रजा वर्गसे त्यागा हुआ ॥ ६९ ॥ वह राजा शत्रुओंसे आक्रान्त छिद्र होकर नष्ट होता है। काम, क्रोध, लोभ और मोहरूप ॥ ७० ॥ दुरात्मागण पुरीमें वास करते हैं, इसीलिये मनुष्य स्मरणशक्तिविहीन होता है, अनुरागसे क्रोध होता है, क्रोधसे लोभ उत्पन्न होता है ॥ ७१ ॥ लोभसे मोहकी उत्पत्ति और मोहसे स्मृतिका नाश होता है स्मृतिनाशसे बुद्धिनाश और बुद्धि नाशसे ही मृत्यु होती है ॥ ७२ ॥ हे तात ! राग और लोभके वशीभूत होनेसे ही हमारी भी बुद्धि भ्रंश हुई है, इसी कारण जीवनके प्रति इतना लोभ है, अत एव हे सत्तम ! प्रसन्न हूजिये ॥ ७३ ॥ आपने जो शाप दिया है, यह शाप जिससे फलित न हो, हमारे ऊपर प्रसन्न होकर वही कीजिये हे मुनिसत्तम ! तो यह कष्टदायक तामसी गति हमको प्राप्त नहीं होगी ॥ ७४ ॥ ऋषि बोले—"हे

बालको ! मैंने जो कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं होगा, अबतक कभी मेरे मुखसे मिथ्या वचन नहीं निकला है ॥ ७५ ॥ वृथा पौरुषको धिक्कार है, मैं विचारता हूं दैवही इस विषयमें बली है, दैवनेही मुझको इसप्रकारके अचिन्तित अकार्य करनेमें प्रवृत्त किया है ॥ ७६ ॥ तुमने प्रणाम करके मुझको प्रसन्न किया है, इस कारण तिर्यग् योनिमें जन्म लेकर भी परम ज्ञानवान् होंगे ॥ ७७ ॥ मेरे प्रसादसे तुम ज्ञानद्वारा सत् मार्ग अवलोकनपूर्वक पापोंको नष्ट करके असंदिग्धचित्तसे प्रधानसिद्धि लाभ करसकोगे " ॥ ७८ ॥ हे भगवन् ! पूर्वकालमें दैवके वशीभूत होकर हमारे पिताने इसप्रकार शाप दिया था फिर कुछ काल बीतने पर यह पक्षियोनि धारण करी ॥ ७९ ॥ हे द्विजवर ! युद्धस्थलमें हमारा जन्म हुआ, आपने लाकर प्रतिपालन किया, अब हम आकाशमार्गमें

दैवमात्रंपरंमन्येधिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ अकार्यंकारितोयेनबलादहमचिन्तितम् ॥ ७६ ॥ यस्माच्चयुष्माभिरहंप्रणिपत्यप्रसादितः ॥ तस्मात्तिर्य्यक्त्वमापन्नाः परंज्ञानमवाप्स्यथ ॥ ७७ ॥ ज्ञानदर्शितमार्गाश्चनिर्धूतक्लेशकल्मषाः ॥ मत्प्रसादादसन्दिग्धाःपरांसिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ७८ ॥ एवंशप्ताःस्मभगवन्पित्रादैववशात्पुरा ॥ ततःकालेनमहतायोन्यन्तरमुपागताः ॥ ७९ ॥ जाताश्चरणमध्येवैभवतापरिपालिताः ॥ वयमित्थंद्विजश्रेष्ठखगत्वंसमुपागताः ॥ ८० ॥ नास्त्यसाविहसंसारेयोनदिष्टेनबाध्यते ॥सर्व्वेषामेवजन्तूनांदैवाधीनंहिचेष्टितम् ॥ ८१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाशमीकोभगवान्मुनिः ॥ प्रत्युवाचमहाभागःसमीपस्थायिनोद्विजान् ॥ ८२ ॥ पूर्वमेवमयाप्रोक्तंभवतांसन्निधाविदम् ॥ सामान्यपक्षिणोनैतेकेऽप्येतेद्विजसत्तमाः ॥ येयुद्धेऽपिनसंप्राप्ताः पंचत्त्वमतिमानुषे ॥ ८३ ॥ ततःप्रीतिमतातेनतेऽनुज्ञातामहात्मना ॥ जग्मुःशिखरिणांश्रेष्ठंविंध्यंद्रुमलतायुतम् ॥ ८४ ॥ यावदद्यस्थितास्तस्मिन्नचलेधर्मपक्षिणः ॥ तपःस्वाध्यायनिरताःसमाधौकृतनिश्चयाः ॥ ८५ ॥

जानेको समर्थ होगये हैं ॥ ८० ॥ हे मुनिशार्दूल ! इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जो प्रारब्धके वशमें होकर न रहता हो सब प्राणियोंकी यावतीय चेष्टाएँ दैवाधीन हैं ॥ ८१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—कि, पक्षियोंके इसप्रकारवचन सुनकर ऐश्वर्यादिषड्गुणसंपन्न मुनिश्रेष्ठ महाभाग भगवान् शमीकने समीपवर्ती ब्राह्मणों से कहा ॥ ८२ ॥ हे विप्रगण ! मैंने पहले तुमसे यही कहाथा कि, यह सामान्य पक्षी अलौकिक समरमें भी जब कालकवलमें कवलित नहीं हुए, तब निःसन्देह यह सामान्य पक्षी नहीं हैं बोध होता है, कोई ब्राह्मणकुमार हैं ॥ ८३ ॥ अनन्तर वह पक्षी प्रसन्न हुए महात्मा शमीक मुनिकी आज्ञानुसार वृक्ष लतादिसे परिपूर्ण विन्ध्य पर्वतमें चलगये ॥८४॥ वे धर्मपक्षी तबतक उस पर्वतमें निवास करते रहे तप और वेदपाठमें निरत होकर समाधिमें ही अपना निश्चय दृढ किया ॥ ८५ ॥

शमीकजीकी यह आज्ञा पाय, वह पक्षीरूप मुनिकुमार उनसे समस्त क्रियाका उपदेश ले, उस पर्वतके शिखरपर जहां अतिपवित्र निर्मल जल है, आनन्दपूर्वक वास करने लगे ॥ ८६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासि–कन्हैयाललमिश्रकृतभाषाटीकायां विन्ध्यप्राप्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे जैमिने ! वह ज्ञानवान् सब पक्षी इस प्रकार द्रोणके पुत्र हुएथे वह विन्ध्य पर्वतमें वास करते हैं तुम उनकी उपासना करके सब पूछो ॥ १ ॥ महर्षि जैमिनि मार्कण्डेयमुनिके यह वचन सुनकर जहां वह धर्म पक्षी वास करतेथे; उसी विन्ध्य पर्वतमें गये ॥२॥ जब वह पर्वतके निकट पहुंचे तो पक्षियोंके वेदपाठका शब्द उनके कानमें सुनाई आया, उस समय वह अत्यन्त अचंभेमें होकर चिन्ता करने लगे ॥ ३ ॥ "क्या आश्चर्य है ? ब्राह्मणगण पक्षी

इति मुनिवरलब्धसत्क्रियास्तेमुनितनयाविहगत्वमभ्युपेताः॥गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोयेयतमनसोनिवसन्तिविन्ध्यपृष्ठे ॥८६॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेविन्ध्यप्राप्तिकथनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंतेद्रोणतनयाःपक्षिणोज्ञानिनोऽभवन् ॥ वसन्तिह्यचलेविन्ध्येतानुपास्वचपृच्छच ॥ १ ॥ इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वामार्कण्डेयस्यजैमिनिः ॥ जगामविन्ध्यशिखरंयत्रतेधर्मपक्षिणः॥२॥तन्नगासन्नभूतश्चशुश्रावपठतांध्वनिम् ॥ श्रुत्वाचविस्मयाविष्टश्चिन्तयामासजैमिनिः ॥ ३ ॥ स्थानसौष्ठवसम्पन्नंजितश्वासमविश्रमम् ॥ विस्पष्टमपदोषंचपठच्चतेद्विजसत्तमैः ॥४॥ वियोनिमपिसंप्राप्तानेतान्मुनिकुमारकान् ॥ चित्रमेतदहंमन्येनजहातिसरस्वती ॥ ५ ॥ बन्धुवर्गस्तथामित्रंयच्चेष्टमपरंगृहे ॥ त्यक्त्वागच्छतितत्सर्वंनजहातिसरस्वती॥६॥ इतिसंचिन्तयन्नेवविवेशगिरिकन्दरम् ॥ प्रविश्यचददर्शासौशिलापट्टगतान्द्विजान् ॥७ ॥ पठतस्तान्समालोक्यमुखदोषविवर्जितान् ॥ सोऽथशोकेनहर्षेणसर्वानेवाभ्यभाषत ॥८॥ स्वस्त्यस्तुवोद्विजश्रेष्ठाजैमिनिंमांनिबोधत॥व्यासशिष्यमनुप्राप्तंभवतांदर्शनोत्सुकम्॥९॥मन्युर्नखलुकर्तव्योयत्पित्रातिविमन्युना॥शप्ताःखगत्वमापन्नाःसर्वथादिष्टमेवतत्॥१०॥

रूप अवलम्बन करके भी स्थानकी श्रेष्ठतासे श्वास जीतकर स्पष्टता और निर्दोषता सहित अविश्राम वेदपाठ करते हैं ॥ ४ ॥ इन बालकोंके तिर्यग्योनिमें गिरने पर भी जो सरस्वतीने इनको नहीं त्यागा यह और भी अचंभेकी बात है ॥ ५ ॥ इससे जानाजाता है कि, बंधुवर्ग,मित्र वा घरकी समस्त अभीष्ट वस्तु सभी छोड कर चलीजाती हैं, किन्तु केवल मात्र सरस्वती कभी नहीं छोड़ती ॥६ ॥ मुनिश्रेष्ठ जैमिनिने इसप्रकार चिन्ता करते करते पर्वतकी कन्दरा में प्रवेश किया और देखा कि, वह विप्रगण पत्थरकी चट्टानपर विराजमान हैं ॥ ७ ॥ संपूर्ण दोषोंसे रहित उन सब पक्षियोंको वेदपाठ करता देखकर शोक और हर्षके वशीभूत हो सबसे कहा ॥ ८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठगण ! तुम्हारा मंगल हो मैं व्यासशिष्य जैमिनि तुम्हारे दर्शनकी लालसासे उत्कण्ठित होकर इस स्थानमें आयाहूं ॥ ९ ॥ अत्यन्त क्रुद्ध

पिताके शापसे पक्षिरूप अवलम्बन करना पड़ा है, ऐसा जानकर शोक न करना, क्योंकि सब प्रारब्धकाही फल है ॥ १० ॥ देखो, धनमानादि विपुल विषयसंपन्न श्रेष्ठ वंशमें किसी महात्माका जन्म होता है और फिर उस द्रव्यके नष्ट होनेपर वही भीलोंके द्वारा सान्त्वनाको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ कोई दान करके भी भीख मांगता है, कोई वध करके निहत होता है, कोई दूसरेको निहत करा कर अन्यके द्वारा मरता है, तपस्याका क्षयहोने से इसी प्रकारकी घटना होती रह है ॥१२॥ मैंने अनेकवार ऐसी घटना देखी है, इसप्रकार भावाभाव परम्परा द्वारा सब जगत् निरन्तर व्याकुल हुआ है ॥ १३ ॥ इसप्रकार मनमें विचारकर तुम शोक न करना क्योंकि शोक वा हर्ष इत्यादिसे अभिभूत न होनाही तपस्याका फल है ॥ १४ ॥ अनन्तर उन सब धर्मपक्षियोंने पाद्यार्घ्य इत्यादिसे महामुनि

स्फीतद्रव्येकुलेकेचिज्जाताःकिलमनस्विनः ॥ द्रव्यनाशेद्विजेन्द्रास्तेशवरेणसुसान्त्विताः ॥ ११ ॥ दत्वायाचन्तिपुरुषाहत्वावध्यन्तिचापरे ॥ पातयित्वाचपास्यन्तेतएवतपसःक्षयात् ॥ १२ ॥ एतद्दृष्टंसुवहुशोविपरीतंतथामया ॥ भावाभावसमुच्छेदैरजस्रंव्याकुलंजगत् ॥ १३ ॥ इतिसंचिन्त्यमनसानशोकंकर्तुमर्हथ ॥ ज्ञानस्यफलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता ॥ १४ ॥ ततस्तेजैमिनिंसर्वेपाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन् ॥ अनामयंचपप्रच्छुःप्रणिपत्यमहामुनिम् ॥ १५ ॥ अथोचुःखगमाःसर्वेव्यासशिष्यंतपोनिधिम् ॥ सुखोपविष्टं विश्रांतंपक्षानिलहतक्लमम् ॥ १६ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥अद्यनःसफलंजन्मजीवितंचसुजीवितम् ॥ यत्पश्यामःसुरैर्वन्द्यंतवपादाम्बुजद्वयम् ॥१७॥ पितृकोपाग्निरुद्भूतोयोनोदेहेषुवर्त्तते ॥ सोद्यशान्तिंगतोविप्रयुष्मद्दर्शनवारिणा ॥१८॥ कच्चित्तेकुशलंब्रह्मन्नाश्रमेमृगपक्षिषु ॥ वृक्षेष्वथलतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु ॥१९॥ अथवानैतदुक्तंहिसम्यगस्माभिरादृतैः ॥ भवतासंगमोयेषांतेषामकुशलंकुतः ॥२०॥ प्रसादंचकुरुष्वात्रब्रूह्यागमनकारणम् ॥ देवानामिवसंसर्गोभवतोऽभ्युदयोमहान् ॥ केनास्मद्भाग्यगुरुणाआनीतोदृष्टिगोचरम् ॥ २१ ॥

की पूजा करी और प्रणाम करके कुशल पूछी ॥ १५ ॥ फिर जब व्यासशिष्य तपोनिधि जैमिनि उनके पंखोंकी वायुसे थकावट दूरकरके सुखपूर्वक बैठे, तब वे पक्षी उनसे कहने लगे ॥ १६ ॥ पक्षी बोले–हेमहाभाग ! अब हमारा जन्म सफल और जीवन सार्थक हुआ, क्योंकि आपके देवताओंसे वंदित दोनों चरणकमलोंका दर्शन किया ॥ १७ ॥ पितृदेवकी कोपाग्नि अत्यन्त प्रबल होकर जो हमारे देहमें वर्तमान रहती है सो हे विप्र ! वह अब आपके दर्शनरूपी जलसे शान्त होगई ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे आश्रमके मृग पक्षीगण वृक्षलता और त्वक्सार तृणादि पर्यन्त सबकी कुशल तो है ॥ १९ ॥ वा हमारा यह पूछनाही अनुचित है, क्योंकि जो आपके निकट वास करते हैं, उनको फिर अमंगल कहां ? ॥२०॥ अब आप किस निमित्त आये हैं ? अनुग्रहपूर्वक उसको प्रकाश कीजिये

आपका आना और देवताओंका संसर्ग दोनों समान हैं, सुतरां नहीं जाना जाता कि, किस भाग्यके बलसे आपका दर्शन हुआ ॥ २१ ॥ जैमिनि बोले—हे द्विज शार्दूल ! मैं जिस कारण रेवा नदीके जलकणोंसे सिंचित हुआ इस विंध्यपर्वतकी मनोहर कन्दरामें आया हूं, सो सुनो। महाभारत शास्त्रमें कई सन्देहोंके होनेसे मैं पूछनेके लिये ॥ २२ ॥ भृगुकुलधुरंधर महात्मा मार्कण्डेयमुनिके निकट गया था और महाभारतके प्रति सन्देह उनसे पूछे थे ॥ २३॥ उन्होंने कहा कि, "विन्ध्याचलमें महात्मा द्रोणके पुत्र वास करते हैं,तुम वहां जाकर उनसे पूछो, वही तुमसे इन प्रश्नोंका उत्तर विस्तार सहित वर्णन करेंगे" ॥ २४ ॥ मैं उनकेही वचनानुसार इस महापर्वतमें आयाहूं अब तुम मेरे उन सब प्रश्नोंको भलीभाँति सुनकर यथावत् व्याख्या करदो ॥ २५ ॥ पक्षियोंने कहा—यदि वक्तव्य होगा तो कहेंगे, आप

जैमिनिरुवाच ॥ श्रूयतांद्विजशार्दूलाःकारणंयेनकन्दरम् ॥ विन्ध्यस्येहागतोरम्यं रेवावारिकणोक्षितम् ॥ सन्देहान्भारतेशास्त्रेतान्प्रष्टुंगतवानहम् ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयंमहात्मानंपूर्वंभृगुकुलोद्वहम् ॥ तमहंपृष्टवान्प्राप्यसन्देहान्भारतंप्रति ॥ २३ ॥ सचपृष्टोमयाप्राहसन्तिविन्ध्येमहाचले ॥ द्रोणपुत्रामहात्मानस्ते वक्ष्यन्त्यर्थंविस्तरम् ॥ २४ ॥ तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहंमहागिरिम् ॥ तच्छृणुध्वमशेषेणश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥ २५ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ विषयेसतिवक्ष्यामोनिर्विशङ्कःशृणुष्वतत् ॥ कथंतन्नवदिष्यामोयदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥ २६ ॥ चतुर्ष्वपिहिवेदेषुधर्मशास्त्रेषुचैवहि ॥ समस्तेषुतथाङ्गेषुयच्चान्यद्वेदसंमितम् ॥ २७॥ एतेषुगोचरोऽस्माकंबुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम ॥ प्रतिज्ञांतुसमावोढुंतथापिनहिशक्नुमः ॥ २८ ॥ तस्माद्वदस्वविस्रब्धंसन्दिग्धंयद्धिभारते॥ वक्ष्यामस्तवधर्मज्ञनचेन्मोहोभविष्यति ॥ २९ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ ॥ सन्दिग्धानीहवस्तूनिभारतंप्रतियानिमे ॥ शृणुध्वममलास्तानिश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥ ३० ॥ कस्मान्मानुषतांप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दनः ॥ वासुदेवोऽखिलाधारःसर्वकारणकारणम् ॥ ३१ ॥ कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेकासाद्रुपदात्मजा ॥ पञ्चानांमहिषीकृष्णासुमहानत्रसंशयः ॥ ३२ ॥

निःशंक चित्तसे कहिये, जो हमारे बुद्धिगोचर होगा वह क्यों नहीं कहेंगे? ॥ २६ ॥ चार वेद, समस्त धर्मशास्त्र वा सब वेदाङ्ग वा वेदसम्मत, जो कोई शास्त्रही क्यों न हो ॥२७॥ हे द्विजसत्तम ! यद्यपि सबही हमारे बुद्धिगोचर हैं, किन्तु तो भी हम प्रतिज्ञा नहीं करसकते ॥ २८ ॥ अत एव महाभारतमें आपको जो सन्देह है निःशंक चित्तसे आज्ञा कीजिये, यदि मोह न हो तो हे धर्मज्ञ ! वह अवश्य ही आपसे कहेंगे ॥ २९ ॥ जैमिनि बोले—हे निर्मलचित्तविहंगमगण ! महाभारतके बीच जिन सब विषयोंमें मुझको सन्देह उत्पन्न हुआ है, वह सुनो और उनकी व्याख्या करदो ॥ ३० ॥ मेरा सन्देह यही है कि, "जो सब कारणोंके कारण और समस्त ब्रह्माण्डके आधार हैं वह जनार्दन वासुदेव निर्गुण हो कर भी किस निमित्त मनुष्य हुए थे ? ॥ ३१ ॥ एकद्रुपदकी कन्या

द्रौपदी किस प्रकार पांच पाण्डवोंकी महिषी हुई थी? यह महान् संशय है ॥ ३२ ॥ महावल हलायुध बलरामजी किस प्रकार तीर्थयात्रा प्रसंगमें ब्रह्महत्याके पातकसे छूटेथे? ॥ ३३ ॥ और महारथ युधिष्ठिरआदि पांच पाण्डव जिनके सहायकथे वह द्रौपदीके पुत्र अविवाहित अवस्थामें अनाथकी समान किसप्रकार मरे? ॥ ३४ ॥ इन सब बातोंमें मुझको अत्यन्त संदेह है, तुम इन महाभारत संबंधी सन्देहोंका यथा वत् उत्तर देकर मुझको कृतार्थ करो तो मैं सुखसेही अपने आश्रमको चला जाऊंगा ॥ ३५ ॥ पक्षी बोले—जो देवताओंके अधीश्वर सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रभावशाली हैं, जो पुरुषरूपी अर्थात् आत्मा, अप्रमेय, शाश्वत और अव्ययरूपी हैं ॥ ३६ ॥ जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप "चतुर्व्यूहात्मक हैं" जो त्रिगुण अथ च निर्गुण हैं, जो उरुतम और गरिष्ठ हैं, जो वरेण्य, अमृत ॥ ३७ ॥ यज्ञाङ्ग और निखिल चराचरात्मक हैं, वेदान्तशास्त्रमें जिनके स्वरूपका कुछ थोड़ासा वर्णन किया है, सब जगत्में जिनकी अपेक्षा अन्य सूक्ष्म

भेषजंब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबलः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्चक्रेहलायुधः ॥३३॥ कथंचद्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथाः ॥ पाण्डुनाथामहात्मानोवधमापुरनाथवत् ॥३४॥ एतत्सर्वंकथ्यतांमेसन्दिग्धंभारतंप्रति ॥ कृतार्थोऽहंसुखंयेनगच्छेयंनिजमाश्रमम् ॥ ३५ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ नमस्कृत्यसुरेशायविष्णवेप्रभविष्णवे ॥ पुरुषायाप्रमेयायशाश्वतायाव्ययायच ॥३६॥ चतुर्व्यूहात्मनेतस्मैत्रिगुणायागुणायच ॥ वरिष्ठायगरिष्ठायवरेण्यायामृतायच ॥३७॥ यस्मादणुतरंनास्तियस्मान्नास्तिबृहत्तरम् ॥ येनविश्वमिदंव्याप्तमजेनजगदादिना ॥३८॥ आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् ॥ वदन्तियत्सृष्टमिदंतथैवान्तेचसंहृतम् ॥ ॥३९॥ ब्रह्मणेचादिदेवायनमस्कृत्यसमाधिना ॥ ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यःपुनातिजगत्त्रयम् ॥४०॥ प्रणिपत्यतथैशानमेकबाणविनिर्जितैः ॥ यस्यासुरगणैर्यज्ञाविलुप्यन्तेनयज्विनाम् ॥ ४१ ॥ प्रवक्ष्यामोमतंकृत्स्नंव्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥ येनभारतमुद्दिश्यधर्माद्याःप्रकटीकृताः ॥ ४२ ॥

तर और बृहत्तर नहीं है, यह संपूर्ण विश्व जिनके द्वारा व्याप्त है, जो अज और जगत्के आदि हैं ॥ ३८ ॥ इस संसारमें आविर्भाव, तिरोभाव, दर्शन, और अदर्शन इत्यादि सबकार्य जिनके द्वारा संपन्न होते हैं, तथा जो उनसे अतीत, जगत्के सृष्टि कर्त्ता और संहार कर्त्ता कहे जाते हैं (उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है) ॥ ३९ ॥ जो आदिदेव और जो चारों मुखोंसे सामादि चारों वेद उत्पन्न करके तीनों भुवनोंको पवित्र करते हैं; उन ब्रह्माजीको ध्यानके सहित नमस्कार है ॥ ४० ॥ असुरगण जिनके एक बाणसे परास्त होकर याज्ञिकगणोंके यज्ञ लोप करनेमें अशक्य होते हैं, उन देवादिदेव महादेवजीके चरणकमलोंमें प्रणाम करके ॥ ४१ ॥ अत्यन्त अद्भुतकर्मकारी जो महर्षि बादरायणिके द्वारा महाभारतके मिस धर्मादि प्रगट हुआ है, वह व्यासदेवके मतानुयायी सब विषय सम्यक्

१ सृष्टिप्रकरणमें सांख्यादि योगशास्त्र प्रसिद्ध अहंकारादिसे इस चतुर्व्यूहकी उत्पत्ति है कोई कोई इस स्थलमें चतुर्व्यूह शब्दमें जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति और तुरीयरूप कहते हैं किन्तु उसमें अर्थका विशेष तात्पर्य नहीं रहता।

प्रकार आपके प्रति प्रकाशित करेंगे ॥ ४२ ॥ तत्त्वदर्शी मुनि कहते हैं, " नार " शब्दका अर्थ जल है, प्रथम वह जलही एकमात्र जिनका "अयन" अर्थात् घर था, इससे उनको नारायण कहते हैं ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! वही अनन्तलीलानिधान भगवान् विभु नारायण सगुण और निर्गुणात्मक द्विविध रूपसे चार मूर्तिमें अवस्थित हैं ॥ ४४ ॥ उनकी एक मूर्ति जो अनिर्देश्य अर्थात् वाणीके अतीत है पण्डितगण जिसको शुक्लवर्ण कहते हैं, चंद्रसूर्यादि समस्त तेजपुंजमय पदार्थरूप ज्वालामालासे जिसके सब अंग अवरुद्ध हैं, जो योगियोंका एकमात्र आश्रयस्वरूप है ॥ ४५ ॥ जो नित्यरूपिणी और जो मूर्त्ति तीनों गुणोंको अतिक्रम करके दूर और निकट स्थित रहती है, उस प्रधानस्वरूप पहिली मूर्तिका नाम वासुदेव मूर्त्ति है, इसमें ममताका लेशमात्रभी नहीं है ॥ ४६ ॥ उसके रूप वर्ण

आपोनाराइतिप्रोक्तामुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ अयनंतस्यताःपूर्वंतेननारायणःस्मृतः ॥४३॥ सदेवोभगवान्सर्वंव्याप्यनारायणोविभुः ॥ चतुर्द्धासंस्थितोब्रह्मन्सगुणोनिर्गुणस्तथा ॥ ४४ ॥ एकामूर्तिरनिर्देश्याशुक्लांपश्यन्तितांबुधाः ॥ ज्वालामालोपरुद्धाङ्गीनिष्ठासायोगिनांपरा ॥ ४५ ॥ दूरस्थाचान्तिकस्थाचविज्ञेयासागुणातिगा ॥ वासुदेवाभिधानोऽसौनिर्ममत्वेनदृश्यते ॥४६॥ रूपवर्णादयस्तस्यानभावाःकल्पनामयाः ॥ अस्त्येवसासदाशुद्धासुप्रतिष्ठैकरूपिणी॥४७॥ द्वितीयापृथिवीमूर्ध्नाशेषाख्याधारयत्यधः ॥ तामसीसासमाख्यातातिर्यक्त्वंसमुपाश्रिता ॥ ४८ ॥ तृतीयाकर्मकुरुतेप्रजापालनतत्परा ॥ सत्त्वोद्रिक्तातुसाज्ञेयाधर्मसंस्थानकारिणी ॥ ४९ ॥ चतुर्थीजलमध्यस्थाशेतेपन्नगतल्पगा ॥ रजस्तस्यागुणःसर्गंसाकरोतिसदैवहि ॥ ५० ॥ यातृतीयाहरेर्मूर्त्तिःप्रजापालनतत्परा ॥ सातुधर्मव्यवस्थानंकरोतिनियतंभुवि ॥ ५१ ॥

इत्यादि सब भाव कल्पनात्मक हैं यह मूर्ति सर्वकाल विराजमान, परमपवित्र स्वरूप और सदा एकरूप है ॥ ४७ ॥ पाताल देशमें वास करके जो मूर्त्ति मस्तकके ऊपर पृथ्वी धारण करती है वह दूसरी मूर्ति है उसका नाम शेष अर्थात् संकर्षण है, इस मूर्त्तिने तामसी होनेसे तिर्यग्योनि अवलम्बन करी है ॥ ४८ ॥ भगवान् नारायणकी जिस मूर्त्तिके द्वारा संपूर्ण कर्म सम्यक् प्रकार साधित होते हैं, जिसके द्वारा प्रजापालनादि सब कार्य सम्पादित होते हैं और जो मूर्ति धर्मसंस्थापनकारिणी अर्थात् धर्मकी रक्षा करनेवाली है उस सत्त्वगुणमयी मूर्त्तिका नाम प्रद्युम्नमूर्त्ति है ॥ ४९ ॥ चौथी मूर्त्ति पन्नगशय्यापर जलमें शयन करके वास करती है वह रजोगुणात्मिका है उसके द्वाराही सदा सृष्टिकार्य संपन्न होता है, इस मूर्त्तिका नाम अनिरुद्धमूर्ति है ॥ ५० ॥ हरिकी प्रजापालनकारिणी

जो तीसरी मूर्त्ति है, उसके द्वाराही सदा पृथ्वीमें धर्मसंस्थापन होता है॥५१॥धर्मका विनाश करनेवाले उद्धत असुरगण उसीके द्वारा मरते हैं और उसके द्वाराही धर्म रक्षापरायण साधु और दैत्य रक्षित होतेहैं ॥५२॥ हे जैमिने ! जिस जिस समय धर्म की हानि होकर अधर्मकी वृद्धि होती है, यह मूर्ति उसी समय धर्मका उद्धार करनेके निमित्त उत्पन्न होती है ॥ ५३ ॥ इसी मूर्त्तिमें पूर्वकालमें वराहरूप धारणपूर्वक दाँतोंके अग्रभागद्वारा जल हटाकर केवल दाढोंसे सहजमेंही पृथ्वीको नलिनीके समान निकालकर पूर्ववत् स्थिर किया है ॥ ५४ ॥ उसनेही नृसिंह मूर्त्ति धारण कर हिरण्यकशिपुको मारा है और उसीने विप्रचित्ति इत्यादि दानवोंका भी वध किया है ॥ ५५ ॥ उसके वामनादि अन्यान्य सब अवतारोंकी संख्या नहीं कर सकते, वह इस समय जो उत्पन्न हुई है. वह माथुरमूर्त्ति श्रीकृष्ण हैं ॥ ५६ ॥ इसप्रकार उस सत्यगुणात्मिका मूर्त्तिके अवतीर्ण होनेपर प्रद्युम्नमूर्त्ति उसकी रक्षा करनेमें स्थित रहती है ॥ ५७ ॥ वह देवत्व, मनुष्यत्व, वा तिर्यक् योनि इत्यादिमें

प्रोद्भूतानसुरान्हन्तिधर्मविच्छित्तिकारिणः ॥ पातिदेवान्सतश्चान्यान्धर्मरक्षापरायणान् ॥ ५२ ॥ यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिजैमिने ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजत्यसौ ॥५३॥ भूत्वापुरावराहेणतुण्डेनापोनिरस्यच ॥ एकयादंष्ट्रयोत्खातानलिनीववसुंधरा ॥५४॥ कृत्वानृसिंहरूपंचहिरण्यकशिपुर्हतः ॥ विप्रचित्तिमुखाश्चान्येदानवाविनिपातिताः ॥ ५५ ॥ वामनादींस्तथैवान्यान्नसंख्यातुमिहोत्सहे ॥ अवतारांश्चतस्येहमाथुरःसांप्रतंत्वयम् ॥५६ ॥ इतिसासात्त्विकीमूर्त्तिरवतारान्करोतिवै॥प्रद्युम्नेतिचसाख्यातारक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥५७॥ देवत्वेऽथमनुष्यत्वेतिर्यग्योनौचसंस्थिता ॥ गृह्णातितत्स्वभावंचवासुदेवेच्छयासदा ॥ ५८ ॥ इत्येतत्तेसमाख्यातंकृतकृत्योऽपियत्प्रभुः ॥ मानुषत्वंगतोविष्णुःशृणुष्वास्योत्तरंपुनः ॥ ५९ ॥ ॥ इतिमार्कण्डेयपुराणेचतुर्व्यूहावतारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ त्वष्टृपुत्रेहतेपूर्वंब्रह्मन्निन्द्रस्यतेजसः ॥ ब्रह्महत्याभिभूतस्यपराहानिरजायत ॥ १ ॥ तद्धर्मंप्रविवेशाथशक्रतेजोऽपचारतः ॥ निस्तेजाश्चाभवच्छक्रोधर्मेतेजसिनिर्गते ॥२॥ ततःपुत्रंहतंश्रुत्वात्वष्टाक्रुद्धःप्रजापतिः ॥ अवलुंच्यजटामेकामिदंवचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

अवस्थित होकर वासुदेवकी इच्छानुसार तत्तत्स्वभाव अवलम्बन करती है ॥५८॥ हमने यह आपके निकट सब वर्णन किया अब भगवान् विष्णुने कृतकार्य होकर भी जिस कारणसे मनुष्य देह ग्रहण किया है, इसका उत्तर फिर कहते हैं, सुनो ॥ ५९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासि कन्हैयालालमिश्र कृतभाषाटीकायां चतुर्व्यूहावतारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पक्षी बोले–हे ब्रह्मन् ! त्वष्टा नामक प्रजापतिका पुत्र त्रिशिरा अधोमुख होकर तपस्या करताथा, इन्द्रने उसकी तपस्यासे डरकर उसका वध किया त्वष्टृपुत्र त्रिशिराके मरनेपर ब्रह्महत्याजनित पापसे सुरपतिके तेजकी हानि हुई ॥ १ ॥ अधर्म्माचरणके कारण पाकशासनके इस तेजने धर्ममें प्रवेश किया, तब धर्ममें तेजके चलेजानेसे शचीपति (इन्द्र) निस्तेज होगये ॥२॥ तदनन्तर त्वष्टा प्रजापतिपुत्रके मरनेकी

वार्ता सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए और महाक्रोधपूर्वक मस्तककी एक जटा तोड़कर कहने लगे ॥ ३ ॥ "इस समय देवताओंके सहित स्वर्ग और पातालवासी सब प्राणी मेरा तेज देखें और मेरे पुत्रका मारनेवाला ब्रह्मघाती दुर्बुद्धि इन्द्रभी मेरा वीर्य देखे ॥ ४ ॥ जिसने स्वकर्ममें निरत मेरे पुत्रको मारा है" यह कहकर उन्होंने कोपसे लालनेत्र किये उस जटाको अग्निमें होम करदिया ॥ ५ ॥ उसी समय ज्वालामाली महाशरीर, बडी डाढोंवाला और अंजनपिण्डके समान रूपधारी वृत्र नामक एक महाअसुर अग्निसे उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ अप्रमेयात्मा महाबली इन्द्रका शत्रु वृत्र प्रजापति त्वष्टाके तेजसे उत्पन्न होकर जितना ऊंचा धनुषसे छूटा हुआ बाण जाता है, उसीके समान नित्य बढ़ने लगा ॥ ७ ॥ इधर अपने संहारके लिये महाअसुर वृत्रको उत्पन्न हुआ देखकर देवराज इन्द्रने भयातुर होकर उसके संग संधि करनेके निमित्त मरीच्यादि सप्त ऋषियोंको भेजा ॥ ८ ॥ सब प्राणियोंके हितमें रत प्रसन्नमन ऋषियोंने वृत्रासुर और इन्द्रसे परस्पर प्रतिज्ञा करानेके पीछे

अद्यपश्यन्तुमेवीर्यंत्रयोलोकाः सदेवताः ॥ सचपश्यतुदुर्बुद्धिर्ब्रह्महापाकशासनः ॥ ४ ॥ स्वकर्माभिरतोयेनमत्सुतोविनिपातितः ॥ इत्युक्त्वाको परक्ताक्षोजटामग्नौजुहावताम् ॥ ५ ॥ ततोवृत्रःसमुत्तस्थौज्वालामालीमहासुरः ॥ महाकायोमहादंष्ट्रोभिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥ ६ ॥ इन्द्रशत्रुरमे यात्मात्वष्टृतेजोपबृंहितः ॥ अहन्यहनिसोऽवर्द्धदिषुपातंमहाबलः ॥ ७ ॥ वधायचात्मनोदृष्ट्वावृत्रंशक्रोमहासुरम् ॥ प्रेषयामाससप्तर्षीन्सन्धिमिच्छन्भया तुरः ॥ ८ ॥ सख्यंचक्रुस्ततस्तस्यवृत्रेणसमयांस्तथा ॥ ऋषयः प्रीतमनसः सर्वभूतहितेरताः ॥ ९ ॥ समयस्थितिमुल्लंघ्ययदाशक्रेणघातितः ॥ वृत्रोहत्याभिभू तस्यतदाबलमशीर्यत ॥ १० ॥ तच्छक्रदेहविभ्रष्टंबलंमारुतमाविशत् ॥ सर्वव्यापिनमव्यक्तंबलस्यैवाधिदैवतम् ॥ ११ ॥ अहल्यांचयदाशक्रोगौतमंरूपमा स्थितः ॥ धर्षयामासदेवेन्द्रस्तदारूपमहीयत ॥ १२ ॥ अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यंयदतीवमनोरमम् ॥ विहायदुष्टंदेवेन्द्रंनासत्यावगमत्ततः ॥ १३ ॥ धर्मेणतेजसात्य क्तंबलहीनमरूपिणम् ॥ ज्ञात्वासुरेशंदैतेयास्तज्जयेचक्रुरुद्यमम् ॥ १४ ॥ राज्ञामुद्रिक्तवीर्याणांदेवेन्द्रविजिगीषवः ॥ कुलेष्वतिबलादैत्याअजायन्तमहामुने ॥ १५ ॥

मित्रता स्थापन कराई ॥ ९ ॥ महासुर वृत्र प्रतिज्ञा मर्यादा उल्लंघन करके इन्द्रके द्वारा जिस समय मारा गया तब उसी ब्रह्महत्याजनित पापसे अभिभूत होनेके कारण इन्द्रका बल नष्ट होगया ॥ १० ॥ उस बलने इन्द्रके शरीरसे भ्रष्ट होकर बलके एकमात्र अधिदेवता अव्यक्त सर्वव्यापी वायुमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥ और इन्द्रने जब गौतमका रूप धारण करके अहल्यासे रमण किया, उस समय भी उनका रूपहीन हुआ था ॥ १२ ॥ उस समय शचीपतिके अत्यन्त मनोहर अंग प्रत्यंगका समस्त लावण्य दुरात्मा इन्द्रको छोड़कर दोनों अश्विनीकुमारोंमें चला गया ॥ १३ ॥ तब सुरराजको धर्म और तेजकेद्वारा त्यागा जानकर तथा दुर्बल और हीनरूप विचार दैत्योंने उनको जीतनेके लिये उद्यम किया था ॥ १४ ॥ हे महामुने ! अत्यन्त बलशाली

दैत्योंने इन्द्रको जीतनेकी इच्छासे बल वीर्य मदोद्धत राजाओंके कुलमें जन्म लिया था ॥ १५ ॥ अनन्तर कुछ काल बीतनेपर भगवती वसुन्धरा (पृथ्वी) दैत्योंके बोझसे पीडित हो सुमेरुपर्वतके मध्य देवताओंकी सभामें गई ॥ १६ ॥ तब अत्यन्त बोझसे पीडित हुई भगवती वसुंधरा दैत्य दानवोंसे उत्पन्न अपने दुःखका सब कारण उनसे कहने लगी ॥ १७ ॥ " हे देवताओ ! अत्यन्त बलवान् जिन सब असुरोंको आपने मारा है अब उन्होंने मनुष्यलोकमें राजाओंके घर जन्म लिया है ॥ १८ ॥ वह दैत्यगण असंख्य अक्षौहिणीपरिमित हैं, इसकारण मैं उनके बोझसे अत्यन्त पीडित होकर नीचेको झुकी जातीहूं, बस, जिससे मुझको शान्तिलाभ हो, हे देवताओ ! आप वही कीजिये" ॥ १९ ॥ पक्षी बोले ! हे मुने ! अनन्तर देवता सब प्रजाका उपकार और पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये अपने अपने तेजोभागद्वारा स्वर्गसे पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए ॥ २० ॥ तब स्वयं धर्मने इन्द्र के देहसे उत्पन्न उस तेजको कुन्तीके गर्भमें डाला, उससेही महातेजा राजा युधि

कस्यचित्त्वथकालस्यधरणीभारपीडिता ॥ जगाममेरुशिखरंसदोयत्रदिवौकसाम् ॥ १६ ॥ तेषांसाकथयामासभूरिभारावपीडिता ॥ तनुजात्मजदैत्योत्थं खेदकारणमात्मनः ॥१७॥ एतेभवद्भिरसुरानिहताःपृथुलौजसः ॥ तेसर्वेमानुषेलोकेजातागेहेषुभूभृताम् ॥१८॥ अक्षौहिण्योहिबहुलास्तद्भारार्त्ताव्रजाम्यधः॥ तथाकुरुध्वंत्रिदशायथाशांतिर्भवेन्मम ॥ १९ ॥ ॥पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तेजोभागैस्ततोदेवाअवतेरुर्दिवोमहीम् ॥ प्रजानामुपकारार्थंभूभारहरणायच ॥ ॥ २० ॥ यदिन्द्रदेहजंतेजस्तन्मुमोचस्वयंवृषः ॥ कुन्त्यांजातोमहातेजास्ततोराजायुधिष्ठिरः ॥ २१ ॥ बलंमुमोचपवनस्ततोभीमोव्यजायत ॥ शक्रवीर्यार्धतश्चैवजज्ञेपार्थोधनंजयः ॥ २२ ॥ उत्पन्नौयमलौमाद्र्यांशक्ररूपौमहाद्युती ॥ पञ्चधाभगवानित्थमवतीर्णःशतक्रतुः ॥ २३ ॥ तस्योत्पन्नामहाभागापत्नीकृष्णाहुताशनात् ॥ २४ ॥ शक्रस्यैकस्यसापत्नीकृष्णानान्यस्यकस्यचित् ॥ योगीश्वराःशरीराणिकुर्वंतिबहुलान्यपि ॥ २५ ॥ पंचानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितंतव ॥ श्रूयतांबलदेवोऽपियथायातःसरस्वतीम् ॥ २६ ॥ ॥ इतिमार्कण्डेयपुराणे इन्द्रविक्रिया नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ष्ठिर उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ देवश्रेष्ठ पवनने इन्द्रका जो तेज कुन्तीके गर्भमें निक्षेप किया उसीसे भीमसेनका जन्म हुआ और इसी कुन्तीके गर्भसे सुरराजके आधे बलद्वारा पार्थ धनंजयने जन्म लिया ॥ २२ ॥ और इन्द्रके लावण्यधारी दोनों अश्विनीकुमारोंके द्वारा माद्रीके गर्भमे महाद्युतिसम्पन्न जो यमलकुमार उत्पन्न हुए, वह भी उन्द्रके तेजसे युक्त हैं सुतरां भगवान् शतक्रतु (इन्द्र) ही इन पांच अंशमें अवतीर्ण हुए ॥ २३ ॥ और उनकी पत्नी शची ही यज्ञभाग याज्ञसेनीरूपमें अग्निसे उत्पन्न हुई ॥ २४ ॥ तो स्थिर हुआ कि, एक द्रौपदी केवल इन्द्रकी ही पत्नी है, अन्य किसीकी नहीं क्योंकि महात्मा योगीश्वर पुरुष अपने शरीरको अनेक भागमें विभक्त कर सकते हैं ॥ २५ ॥ हे महाभाग ! जिसप्रकार पांचजनोंकी एक पत्नी हुईथी, वह आपके निकट वर्णन किया अब बलदेवजी जिसप्रकार सरस्वतीमें गयेथे वह सुनो ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्र कृतभाषाटीकायामिन्द्रविक्रिया नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

पक्षी बोले—हलधर बलरामजी, अर्जुनके प्रति श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रीति जान क्या करनेसे भला होगा' इसीकी अनेक भाँतिसे चिन्ता करनेलगे ॥ १ ॥ " मैं श्रीकृष्णको विना संगलिये अकेला दुर्योधनके निकट नहीं जाऊंगा और पाण्डवोंका पक्ष अवलम्बनकर ॥ २ ॥ अपनेही जामाता तथा शिष्य पृथ्वीपति दुर्योधनको कैसे मारूं ? इस कारण राजा दुर्योधन वा अर्जुन इन दोनोंमें किसीके निकटभी नहीं जाऊंगा ॥ ३ ॥ अत एव जबतक कौरवपांण्डवोंका ध्वंस न हो, तबतक आपही आप तीर्थोंमें भ्रमण करके आत्माको पवित्र करूं "॥ ४ ॥ बलरामजी मनमें इस प्रकार स्थिर कर हृषीकेश, पार्थ और दुर्योधनको आमंत्रणपूर्वक अपनी सेनासे वेष्टित हो द्वारकाको चलेगये ॥ ५ ॥ शौरि बलरामजीने हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरी द्वारावती नगरीमें जाकर तीर्थयात्राके करनेका विचार किया और ताड़ीका रस

पक्षिणऊचुः ॥ ॥ रामःपार्थेपरांप्रीतिंज्ञात्वाकृष्णस्यलाङ्गली ॥ चिन्तयामासबहुधाकिंकृतंसुकृतंभवेत् ॥१॥ कृष्णेनहिविनानाहंयास्येदुर्योधनान्तिकम् ॥ पाण्डवान्वासमाश्रित्यकथंदुर्योधनंनृपम् ॥ २ ॥ जामातरंतथाशिष्यंघातयिष्येनरेश्वरम् ॥ तस्मान्नपार्थंयास्यामिनापिदुर्योधनंनृपम् ॥ ३ ॥ तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामितावदात्मानमात्मना ॥ कुरूणांपाण्डवानांचयावदन्तायकल्पते॥४॥इत्यामंत्र्यहृषीकेशंपार्थंदुर्योधनावपि ॥जगामद्वारकांशौरिःस्वसैन्यपरिवारितः॥५॥ गत्वाद्वारवतींरामोहृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ श्वोगन्तव्येषुतीर्थेषुपपौपानंहलायुधः ॥ ६ ॥ पीतपानोजगामाथरैवतोद्यानमृद्धिमत् ॥ हस्तेगृहीत्वासमदांरेवतीमप्सरोपमाम् ॥७॥ स्त्रीकदम्बकमध्यस्थोययौमत्तःपदास्खलन् ॥ ददर्शचवनंवीरोरमणीयमनुत्तमम् ॥८॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यंशाखामृगगणाकुलम् ॥ पुण्यंपद्मवनोपेतंसपल्वलमहावनम् ॥ ९ ॥ सशृण्वन्प्रीतिजननान्बहून्मदकलाञ्शुभान् ॥ श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्शब्दान्खगमुखेरितान् ॥ १० ॥ सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान् ॥ अपश्यत्पादपाँस्तत्रविहगैरनुनादितान् ॥ ११ ॥

पिया ॥ ६ ॥ वह पान करनेके पीछे अप्सराकी समान सगर्वा रेवतीका हाथ पकड़कर अनेक प्रकारकी सम्पत्तिसे पूर्ण रैवत उद्यानमें गये ॥७॥ वह मद्यपानसे मत्त होरहेथे, इसकारण स्त्रियोंसे परिवेष्टित होकर गमन करनेपर भी पग पगमें उनके पैर डिगमिगातेथे अनन्तर वीरवर बलरामजीने उस अतिउत्तम रमणीय रैवतक वनको देखा ॥ ८ ॥ यह उद्यान समस्तऋतुके उत्पन्न फल और पुष्पोंसे शोभायमान तथा शाखामृगों (बंदरों) से व्याप्तथा. वह अत्यन्त पवित्र कमलवनसे युक्त, छोटे सरोवर और महावनद्वारा भलीभांति विराजित था ॥ ९ ॥ बलरामजी रेवतीके सहित वनमें प्रवेश करके आह्लादजनक शुभसूचक गंभीर कानोंको सुखदायक और मधुर नानाप्रकारके पक्षियोंका कूजन श्रवण करने लगे ॥ १० ॥ यह भी देखा कि वहांके वृक्षोंमें सब ऋतुओंके फल लगरहे हैं, उनपर प्रसन्न

हृदयसे पक्षी चहचहारहे हैं, और सारे वनमें सब ऋतुओंके फूल फूलरहे हैं । भाँति भाँतिके हरे पीले लाल फल लटकरहे हैं ॥ ११ ॥ आम, अमरा, नारियल, तिंदु, बेल, अंजीर, अनार, नीबू ॥ १२ ॥ कटहल, बडहल, मोचरस, कदम, पारावत, कंकोल, नलिन, अमलवेत ॥ १३ ॥ भिलावा, तेंदू, तिल, हिंगोट, करोंदा, हड़, बहेड़ा ॥ १४ ॥ इन वृक्षोंको यदुनन्दन बलरामजीने वहां देखा और इनके अतिरिक्त अशोक, पुन्नाग, केतकी, मौलसिरी ॥ १५ ॥ चम्पा, सप्तपर्ण, कनेर, मालती, पारिजात, कोविदार, मन्दार, बेर ॥ १६ ॥ पाटल, देवदारु, सुखुआ, ताल, तमाल, पलाश, वंजुल आदि अच्छे अच्छे फलफूलवाले वृक्षोंसे वह वन संयुक्त है ॥ १७ ॥ और इन वृक्षोंपर चकोर, शातपत्र, भृंगराज, शुक, सारिका, कोकिला, कोयल, हरैल, जीवजीवक ॥ १८ ॥ प्रियपुत्र और चातक इत्यादि

आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान् ॥ आबिल्वकांस्तथाजीरान्दाडिमान्बीजपूरकान् ॥ १२ ॥ पनसाँल्लकुचान्मोचान्नीपांश्चातिमनोहरान् ॥ पारावताँश्चकङ्कोलान्नलिनानम्लवेतसान् ॥ १३ ॥ भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्चमहाफलान् ॥ इंगुदान्करमर्दांश्चहरीतकविभीतकान् ॥१४॥ एतानन्यांश्चसतरून्ददर्शयदुनन्दनः ॥ तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥१५॥ चम्पकान्सप्तपर्णांश्चकर्णिकारान्समालतीन् ॥ पारिजातान्कोविदारान्मन्दारान्बदराँस्तथा ॥ १६ ॥ पाटलान्पुष्पितान्रम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा ॥ सालांस्तालांस्तमालांश्चकिंशुकान्वंजुलान्वराम् ॥ १७ ॥ चकोरैःशातपत्रैश्चभृंगराजैस्तथाशुकैः ॥ कोकिलैःकलविंकैश्चहारीतैर्जीवजीवकैः ॥ १८ ॥ प्रियपुत्रैश्चातकैश्चतथान्यैर्विविधैःखगैः ॥ श्रोत्ररम्यंसुमधुरंकूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ॥१९॥ सरांसिचमनोज्ञानिप्रसन्नसलिलानिच ॥ कुमुदैःपुण्डरीकैश्चतथानीलोत्पलैःशुभैः ॥ २० ॥ कह्लारैःकमलैश्चापिआचितानिसमंततः ॥ कादम्बैश्चक्रवाकैश्चतथैवजलकुक्कुटैः ॥ २१ ॥ कारण्डवैःप्लवैर्हंसैःकूर्मैर्मद्गुभिरेवच ॥ एभिश्चान्यैश्चकीर्णानिसमन्ताज्जलचारिभिः ॥ २२ ॥ क्रमेणेत्थंवनंशौरिर्वीक्ष्यमाणोमनोरमम् ॥ जगामानुगतःस्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥२३॥ सददर्शद्विजांस्तत्रवेदवेदांगपारगान् ॥ कौशिकान्भार्गवांश्चैवभरद्वाजान्सगौतमान् ॥ २४ ॥

भाँतिभाँतिके पक्षी श्रवणमनोहर मधुर शब्द करते हुए इन सब वृक्षोंकी शाखाओंका आश्रय करके वास कररहे हैं ॥ १९ ॥ रैवतक उद्यानमें निर्मल जलसे शोभायमान सब सरोवर शोभित हैं कि,जिनके देखतेही चित्त प्रसन्न हो जाय, कुमुद, पुण्डरीक, नीलकमल ॥ २० ॥ कह्लार और कमल इत्यादि कुसुमसमूहसे सब ओर शोभायमान और कलहंस चकवाक तथा जलमुर्गावी ॥ २१ ॥ प्लव, हंस और कारण्डवादि जलचर पक्षी और कूर्महारियल इत्यादि जलचर जीवोंसे व्याप्त होकर अपूर्व शोभा धारण करहे हैं ॥ २२ ॥ स्त्रियोंके सहित शौरि बलरामजी क्रमसे उस वनको देखते देखते अतिउत्तम लतागृहमें गये ॥ २३ ॥ वहांपर क्या देखा कि,

वेदवेदाङ्गके ज्ञाता ब्राह्मण कितनेही कुशिकवंशी कितनेही भृगुवंशी कितनेही भरद्वाजवंशी और कितनेही गौतमवंशके थे ॥ २४ ॥ और भी कितनेही वंशके ब्राह्मण पवित्र और उत्तम मनुष्य बैठे कथा सुनरहे थे ॥ २५ ॥ कोई मृगछालापर कोई वस्त्रपर कोई कुशासनपर और कितनेही पुरुष घास इत्यादिपर विराजमान हैं. और उनके बीचमें पुराणवक्ता सूतजी बैठेहुए कल्याणमयी कथा बांच रहे हैं ॥ २६ ॥ उस पुराणकी कथा, जिसमें देवता और ऋषियोंका वर्णन था। इतनेहीमें उन ब्राह्मणोंकी दृष्टि बलरामजीपर पड़ी तो देखा कि, मदिराके मदसे नेत्र लाल हो रहे हैं ॥ २७ ॥ जब समस्त मुनियोंने उन्हें मदोन्मत्त देखा, तब सूतजीके अतिरिक्त और सबने अत्यन्त शीघ्रताके साथ उठकर बड़े आदरसत्कार से बलरामजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ अनन्तर अशेष दानवोंके मारनेवाले

विविधेषुचसंभूतान्वंशेषुद्विजसत्तमान् ॥ कथाश्रवणबद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सुच ॥ २५ ॥ कृष्णाजिनोत्तरीयेषुकुशेषुचबृसीषुच ॥ सूतंचतेषांमध्यस्थं कथयानंकथाःशुभाः ॥२६॥ पौराणिकीःसुरर्षीणामाद्यानांचरिताश्रयाः ॥ दृष्ट्वारामंद्विजाः सर्वेमधुपानारुणेक्षणम् ॥ २७ ॥ मत्तोऽयमितिमन्वानाःसमुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ॥ पूजयन्तोहलधरमृतेतंसूतवंशजम् ॥२८॥ ततःक्रोधसमाविष्टोहलीसूतंमहाबलः ॥ निजघानविवृत्ताक्षःक्षोभिताशेषदानवः ॥ २९ ॥ अध्यास्यतिपदंब्राह्मंतस्मिन्सूतेनिपातिते ॥ निष्क्रान्तास्तेद्विजाःसर्वेवनात्कृष्णाजिनाम्बराः ॥ ३० ॥ अवधूतंतथात्मानंमन्यमानोहलायुधः ॥ चिन्तयामाससुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥३१॥ ब्राह्मंस्थानंगतोह्येषयत्सूतोविनिपातितः ॥ तथाहीमेद्विजाःसर्वेमामवेक्ष्यविनिर्गताः ॥३२॥ शरीरस्यचमेगन्धोलोहस्येवासुखावहः ॥ आत्मानंचावगच्छामिब्रह्मघ्नमिवकुत्सितम् ॥ ३३ ॥ धिगमर्षंतथामद्यमतिगानमभीरुताम् ॥ यैराविष्टेनसुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥ ३४ ॥

महाबल पराक्रमशाली बलरामजीने सूतके द्वारा अपना तिरस्कार अर्थात् निरादर हुआ विचार अत्यन्तक्रोधसहित लाल लाल नेत्रकर सूतको निहत किया ॥ ॥ २९ ॥ पुराणतत्त्वज्ञ सूतके मरने और ब्रह्मलोकमें गमन करनेपर ब्रह्मपद मृग छालाओंपर बैठेहुए सब ब्राह्मणही उस वनसे चलेगये ॥ ३० ॥ तब बलरामजी, जिनके देहपर मद झलक रहाथा पछताने और चिन्ताकरने लगे कि, "क्यों मैंने ऐसे महापापका अनुष्ठान किया?" ॥ ३१ ॥ मैंने जिस सूतका वध किया, वह ब्राह्मस्थानमें चलागया, और अब सब ब्राह्मण मुझको देखकर चले जाते हैं ॥ ॥ ३२ ॥ मेरे शरीरसे लोहेके समान असुरता जनानेवाली गंध बाहर निकतीहै और आत्मा भी ब्रह्महत्याजनित पापमें कलुषित बोध होता है ॥ ३३ ॥ रे अमर्ष! तुझको धिक्कार है. मद्यको धिक्कार, अत्यन्त मानको धिक्कार, और

अत्यन्त साहसको भी धिक्कार है, क्योंकि इन्हीं सबमें आसक्त होकर मैंने ऐसे महापापका अनुष्ठान किया है ॥ ३४ ॥ इस ब्रह्महत्याजनित महापापको ध्वंस करनेके लिये बारह वर्षतक व्रत करूंगा और इस पापको सर्वत्र विख्यात करके अतिउत्तम प्रायश्चित्त करूंगा ॥ ३५ ॥ अथवा मैं जो इस तीर्थयात्राका उद्योग कररहाहूं, इस यात्रामेंही प्रतिलोमा सरस्वतीमें जाऊंगा ॥ ३६ ॥ हे मुने ! यह कहकर वह यदुकुलधुरंधर बलरामजी प्रतिलोमा सरस्वतीमें चलेगये अब दूसरी पाण्डवोंके पुत्रोंकी कथा कहते हैं सुनो ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासि–कन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां बलदेवब्रह्महत्याकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
धर्मात्मा पक्षी बोले–हे जैमिनि ! पहिले त्रेतायुगमें हरिश्चन्द्र नामक एक धार्मिक राजा थे, वह अत्यन्त कीर्त्तिमान् पृथ्वीके पालक और सुन्दर पुरुष थे ॥ १ ॥ उन नृपवर हरिश्चन्द्रके पृथ्वीशासनकालमें प्रजाको दुर्भिक्ष वा व्याधि या अकाल मृत्युका फल वा अधर्म कुछ नहीं था ॥ २ ॥ उस समय उनकी प्रजा धन, बल

तत्क्षयार्थंचरिष्यामिव्रतंद्वादशवार्षिकम् ॥ स्वकर्मख्यापनंकुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥३५॥ अथवेयंसमारब्धातीर्थयात्रामयाधुना ॥एतामेवप्रयास्यामिप्रतिलोमांसरस्वतीम् ॥३६॥ अतोजगामरामोऽसौप्रतिलोमांसरस्वतीम् ॥ ततःपरंशृणुष्वेमंपाण्डवेयकथाश्रयम् ॥३७॥ इति मार्कण्डेयपुराणेबलदेवब्रह्महत्याकथनं नामषष्ठोऽध्यायः ॥६॥ धर्मपक्षिणऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रेतिराजर्षिरासीत्त्रेतायुगेपुरा ॥ धर्मात्मापृथिवीपालःप्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तमः ॥ १ ॥ नदुर्भिक्षंनचव्याधिर्नाकालमरणंनृणाम् ॥ नाधर्मरुचयःपौरास्तस्मिञ्शासतिपार्थिवे ॥२॥ बभूवुर्नतथोन्मत्ताधनवीर्यतपोमदैः ॥ नाजायन्तस्त्रियश्चैवकाश्चिदप्राप्तयौवनाः ॥३॥ सकदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन्मृगम् ॥ शुश्रावशब्दमसकृत्त्रायस्वेतिचयोषिताम् ॥४॥ सविहायमृगंराजामाभैषीरित्यभाषत ॥ मयिशासतिदुर्मेधाःकोऽयमन्यायवृत्तिमान् ॥ ५ ॥ तत्क्रन्दितानुसारीचसर्वारम्भविघातकृत् ॥ एतस्मिन्नन्तरेरौद्रोविघ्नराट्समचिन्तयत् ॥ ६ ॥ विश्वामित्रोऽयमतुलंतपआस्थायवीर्यवान् ॥ प्रागसिद्धाभवादीनांविद्याः साधयतिव्रती ॥ ७ ॥ साध्यमानाःक्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना ॥ तावैभयार्त्ताःक्रन्दन्तिकथंकार्यमिदंमया ॥ ८ ॥

वा धर्मके मदसे उन्मत्त नहीं होती थी और स्त्रियें भी विना यौवन प्राप्तहुए अकालमें सन्तान उत्पन्न नहीं करती थीं ॥ ३ ॥ एक समय वह महाबाहु वनमें शिकार ढूंढतेथे उसी समयमें " रक्षा करो, रक्षा करो " इसप्रकार कितनीही स्त्रियोंके कंठ का शब्द बारंबार उनके कानमें सुनाई दिया ॥ ४ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने मृगयाको छोड़कर " डरो मत डरो मत " शब्द उच्चारण किया और कहा, मेरे पृथ्वीशासन करनेके समय कौन दुर्बुद्धि अन्यायवृत्तिका आचरण करता है ? ॥ ५ ॥ यह कहकर उस रुदनकरते हुए व्यक्तिका अनुसरण किया, उसी समयमें संपूर्ण कार्योंका विनाश करनेवाला भयंकर विघ्नराज चिन्ता करने लगा ॥ ६ ॥ इस वनमें महातेजस्वी मुनिवर विश्वामित्रजी व्रतालम्बनपूर्वक अतुल तपस्या करके पूर्व जिनको नहीं साध सके, उन्हीं भवादि सब विद्याओंका साधन करते हैं ॥ ७ ॥ क्षमा मौन और चित्तसंयम करके मुनिवर जिन विद्याओंके साधनेकी चेष्टा करते हैं, वह स्त्रीमूर्त्ति सब विद्याभयसे अत्यन्त भीतहो " रक्षा करो, रक्षा करो " कहकर रुदन

करती हैं, अब मैं क्या उपाय करूं ? ॥ ८ ॥ क्योंकि यह विश्वामित्र मुनि अमित तेजस्वी हैं और मैं इनके निकट अत्यन्त दुर्बलहूं, तथा यह सब विद्याभी भयसे अत्यन्त रोती हैं सुतरां बड़ीही कठिन वार्त्ता उपस्थित है ॥ ९ ॥ अथवा अब मुझको किसी बातकी चिन्ता करनी नहीं पड़ेगी, क्योंकि यह राजा हरिश्चन्द्र वारंवार "मत डरो मतडरो" शब्द करताहुआ यहां आगया है अतएव इस राजाके शरीरमें प्रवेश करकेही अपनी अभिलाषा साधन करताहूं ॥ १० ॥ उस भयंकर विघ्नराजने मनमें इसप्रकार चिन्ताकरके राजाके शरीरमें प्रवेश किया, तब राजाने और भी अधिक क्रोधितहोकर कहा ॥ ११ ॥ कौन पापी मनुष्य वस्त्रके अंचलमें अग्निको बांधता है? जब कि, बलरूप उष्ण तेजसे देदीप्यमान यह मैं पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र यहां आपहुँचाहूं ॥ १२ ॥ इस समय कौन मूढ धनुषसे छूटे दिशाओंको प्रकाश करने

तेजस्वीकौशिकश्रेष्ठोवयमस्यसुदुर्बलाः ॥ क्रोशन्त्येतास्तथाभीतादुष्पारंप्रतिभातिमे ॥९ ॥ अथवायंनृपःप्राप्तोमाभैरितिवदन्मुहुः ॥ इममेवप्रविश्याशुसाधयिष्येयथेप्सितम् ॥ १० ॥ इतिसंचिन्त्यरौद्रेणविघ्नराजेनवैततः ॥ तेनाविष्टोनृपःकोपादिदंवचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ कोऽयंबध्नातिवस्त्रान्तेपावकंपापकृन्नरः ॥ बलोष्णतेजसादीप्तेमयिपत्न्यावुपस्थिते ॥ १२ ॥ सोऽद्यमत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरैः ॥ शरैर्विभिन्नसर्वांगोदीर्घनिद्रांप्रवेक्ष्यति ॥ १३ ॥ विश्वामित्रस्ततःक्रुद्धःश्रुत्वातन्नृपतेर्वचः ॥ क्रुद्धेचर्षिवरेतस्मिन्नेशुर्विद्याःक्षणेनताः ॥ १४ ॥ सचापिराजातंदृष्ट्वाविश्वामित्रंतपोनिधिम् ॥ भीतःप्रावेपतात्यर्थंसहसाश्वत्थपर्णवत् ॥ १५ ॥ सदुरात्मन्नितियदामुनिस्तिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ ततःसराजाविनयात्प्रणिपत्याभ्यभाषत ॥ १६ ॥ भगवन्नेषधर्म्मोमेनापराधोममप्रभो ॥ नक्रोद्धुमर्हसिमुनेनिजधर्मरतस्यमे ॥ १७ ॥ दातव्यंरक्षितव्यंचधर्मज्ञेनमहीक्षिता ॥ चापंचोद्यम्ययोद्धव्यंधर्मशास्त्रानुसारतः ॥ १८ ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ दातव्यंकस्यकेरक्ष्याःकैर्योद्धव्यंचतेनृप ॥ क्षिप्रमेतत्समाचक्ष्वयद्यधर्मेभयंतव ॥ १९ ॥

वाले मेरे बाणों से समस्त अंगोंमें विद्ध होकर योगनिद्राको प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ अनन्तर मुनिवर विश्वामित्र राजा हरिश्चंद्रक अभिमानयुक्त यह वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधितहुए, ऋषिके क्रोधित होतेही वह सब विद्या नष्ट होगई ॥ १४ ॥ वह राजाहरिश्चन्द्र तपोनिधि विश्वामित्रको सहसा देखकर अत्यन्त भीत हो पीपलके पत्तेकी समान कांपनेलगे ॥ १५ ॥ जब मुनिवर विश्वामित्रने "दुरात्मन् ठहर" यह कहा, तब राजा प्रणामपूर्वक विनयसहित कहने लगे ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! मेरा यही धर्म है, हे प्रभो ! मेरा अपराध ग्रहण न कीजिये, हे मुनिवर ! मैंने अपने धर्मको नहीं छोड़ा है, इस कारण मेरे प्रति क्रोधित न हूजिये ॥ १७ ॥ क्यों कि धर्मज्ञ राजाओं का यही कार्य है वह धर्मशास्त्रानुसार कभी दान करें रक्षाकरें और कभी धनुष धारण करके युद्ध करे ॥ १८ ॥ विश्वामित्रने कहा—हे राजन् ! यदि तुम्हें

अधर्मका भय है, तो शीघ्र कहो किसको दान करना चाहिये किसकी रक्षा करनी चाहिये ? और किसके संग युद्ध करना चाहिये ? ॥ १९ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे तपोनिधान ! जो सदा व्रतानुष्ठानमें तत्पर और ब्राह्मणश्रेष्ठ है, उसीको दान करना चाहिये, डरेहुए पुरुषकी रक्षा करनी चाहिये और शत्रुओंके संग युद्ध करना उचित है ॥ २० ॥ विश्वामित्र बोले हे राजन् ! तुम यदि संपूर्ण राजधर्म जानते हो, तो मैं मुमुक्षु ब्राह्मण हूं, मुझको अभिलाषित दक्षिणा दो ॥ २१ ॥ पक्षी बोले—हे जैमिने ! राजा हरिश्चन्द्रने यह वचन सुन हृदयसे आह्लादित और प्रफुल्लितहोकर अपना नया जन्म विचारा और मुनिसे कहा ॥२२॥ हे भगवन् ! आप अपनी अभिलाषा कहिये, मैं उस देनेको प्रस्तुत हूं और मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि जो कठिन बातभी होगी, तोभी मैं पूर्ण करूंगा॥२३॥हे ब्रह्मन् ! आपको सुवर्ण, रत्न, पुत्र, स्त्री,

हरिश्चन्द्रउवाच ॥ ॥ दातव्यंविप्रमुख्येभ्योयेचान्येकृशवृत्तयः ॥ रक्ष्याभीताःसदायुद्धंकर्त्तव्यंपरिपन्थिभिः ॥ २० ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ यदि राजाभवान्सम्यग्राजधर्ममवेक्षते ॥ निर्वेष्टुकामोविप्रोऽहंदीयतामिष्टदक्षिणा ॥ २१ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ एतद्राजावचःश्रुत्वाप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमेनेप्राहचकौशिकम् ॥ २२ ॥ उच्यतांभगवन्यत्तेदातव्यमविशङ्कितम् ॥ दत्तमित्येवतद्विद्धियद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ २३ ॥ हिरण्यं वासुवर्णंवापुत्रःपुत्रीकलेवरम् ॥ प्राणाराज्यंपुरंलक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः ॥ २४ ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ राजन्प्रतिगृहीतोऽयंयस्तेदत्तःप्रतिग्रहः ॥ प्रयच्छप्रथमंतावद्दक्षिणांराजसूयिकीम् ॥ २५ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ ब्रह्मंस्तामपिदास्यामिदक्षिणांभवतोह्यहम् ॥ व्रियतांद्विजशार्दूलयस्तवेष्टः प्रतिग्रहः ॥ २६ ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ ससागरांधरामेतांसभूभृद्ग्रामपत्तनाम् ॥ राज्यंचसकलंवीररथाश्वगजसंकुलम् ॥ २७ ॥ कोष्ठागारं चकोशंचयच्चान्यद्विद्यतेतव ॥ विनाभार्यांचपुत्रंचशरीरंचतवानघ ॥ २८ ॥

शरीर, प्राण, राज्य, गांव, धन, जिसकी इच्छा हो सो लीजिये ॥ २४ ॥ विश्वामित्र बोले-हेराजन् ! आप जो देंगे,समझ लीजिये कि, मैंनेभी उसको ग्रहण करही लिया है किन्तु अब प्रथम राजसूय यज्ञकी दक्षिणादो ॥ २५॥ राजाने कहा—हे ब्रह्मन् ! यहभी आपको दूंगा । हे द्विजशार्दूल ! राजसूय यज्ञकी दक्षिणास्वरूप जो आपकी रुचि हो आज्ञा कीजिये ॥ २६ ॥ विश्वामित्र बोले—हे वीर ! इस समस्त नगर, ग्राम और पर्वत इत्यादिके सहित ससागरा पृथ्वीमें रथ अश्व गजादिसंकुल सब राजत्व ॥ २७ ॥ कोष्ठागार (अन्तरगृह) राजकोश इत्यादि तुम्हारी जो सब वस्तु हैं, हे पापरहित ! बिनभार्या पुत्र और अपनी देहके ॥ २८ ॥

और धर्मशास्त्रके अनुसार जो तुम्हारा अनुगमन करते हैं, अधिक और क्या कहूं हे धर्मज्ञ ! तुम्हारा जो कुछ है, वह सब मुझको दो ॥ २९ ॥ पक्षी बोले—मुनिवर कौशिकके यह वचन सुनकर उन राजा हरिश्चन्द्रने प्रसन्नचित्त और विकाररहित मुखसे हाथ जोड़कर कहा "जो आज्ञा" यही होगा ॥ ३० ॥ विश्वामित्र बोले—पृथ्वी बल और धन इत्यादि सर्वस्वही जब मुझको दिया है तो मेरे तपस्वी होकर राजत्व करनेसे हे राजर्षे ! इस राज्यमें किसका प्रभुत्व रहेगा ॥ ३१ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे ब्रह्मन् ! मैं ने जिस समय आपको यह ससागरा पृथ्वी दी है, उस समयसे आपही इसके स्वामी हुए हैं अब फिर प्रभुत्वकी बात क्यों पूछते हो ॥ ३२ ॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! तुमने जब यह ससागरा सब पृथ्वी मुझको देदी है तो अब मेरा स्वामित्व होगया, तुम इस राज्यसे निकल जाओ॥ ३३ ॥ श्रोणीसूत्र अर्थात्

धर्मेचसर्वधर्मज्ञयोयान्तमनुगच्छति ॥ बहुनावाकिमुक्तेनसर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥ २९ ॥ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ ॥ प्रहृष्टेनैवमनसासोऽविकारमुखोनृपः ॥ तस्यर्षेर्वचनंश्रुत्वातथेत्याहकृताञ्जलिः ॥ ३० ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ सर्वस्वंयदिमेदत्तंराज्यमुर्वीबलंधनम् ॥ प्रभुत्वंकस्यराजर्षेराज्यस्थेतापसे मयि ॥ ३१ ॥ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ यस्मिन्नपिमयाकालेब्रह्मन्दत्तावसुन्धरा ॥ तस्मिन्नपिभवान्स्वामीकिमुताद्यमहीपतिः ॥ ३२ ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ यदिराजंस्त्वयादत्ताममसर्वावसुन्धरा ॥ यत्रमेविषयेस्वाम्यंतस्मान्निष्क्रान्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥ श्रोणीसूत्रादिसकलंमुक्त्वाभूषणसंग्रहम् ॥ तरुवल्कलमाबध्यसहपत्न्यासुतेनच ॥ ३४ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तथेतिचोक्त्वाकृत्वाचराजागन्तुंप्रचक्रमे ॥ स्वपत्न्याशैब्ययासार्धंबालकेनात्मजेनच ॥ ३५ ॥ व्रजतःसततोरुद्ध्वापन्थानंप्राहतंनृपम् ॥ क्वयास्यसीत्यदत्त्वामेदक्षिणांराजसूयिकीम् ॥ ३६ ॥ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ ॥ भगवन्राज्यमेतत्तेदत्तंनिहतकण्टकम् ॥ अवशिष्टमिदंब्रह्मन्नद्यदेहत्रयंमम ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ तथापिखलुदातव्यात्वयामेयज्ञदक्षिणा ॥ विशेषतोब्राह्मणानांहन्त्यदत्तंप्रतिश्रुतम् ॥ ३८ ॥

कटिभूषण इत्यादि जो गहने तुम्हारी पत्नीके और तुम्हारे पुत्रके शरीरमें वर्त्तमानहैं वह सब भी त्याग वृक्षोंकी छाल पहर पत्नी और पुत्रके सहित मेरे राज्यसे बाहरहो ॥ ३४ ॥ पक्षी बोले—हे जैमिने ! राजा हरिश्चन्द्रने मुनिवर विश्वामित्रके उन वचनोंकोस्वीकार कर उन्हींके अनुसार सब कार्य किया और अपनी स्त्री शैब्या तथा शिशु (बालक) के संग जानेमें प्रवृत्त हुए॥ ३५॥ उसी समयमें ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्रने उनके जानेका मार्ग रोककर उनसे कहा—हे नृप ! राजसूय यज्ञकी दक्षिणा बिना दिये कहां जाते हो ? ॥ ३६ ॥ हरिश्चन्द्र बोले हे भगवन् ! यह समस्तही निष्कण्टक राज्य आपको देदिया है, अब इन तीन जनोंके देहको छोड़कर मेरे पास और क्या है ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र बोले—हे नृपवर ! यद्यपि तीन देहके अतिरिक्त तुम्हारे पास और सम्पत्ति नहीं है किन्तु तो भी मुझको यज्ञकी दक्षिणा देनी ही

पड़ेगी, विशेषकर ब्राह्मणके निकट प्रतिज्ञा करी हुई वस्तु न देनेसे समस्तही नष्ट होता है ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! राजसूययज्ञमें जिससे ब्राह्मण संतुष्ट हो वही राज सूय यज्ञकी दक्षिणा है ॥ ३९ ॥ और तुमहीने तो यह प्रतिज्ञा करी है कि, "अंगीकार करके दानं, आततायी (शत्रु) के संग युद्ध और आर्त्त पुरुषकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये" ॥४०॥ हरिश्चन्द्रने कहा—हे भगवन् ! हे विप्रर्षे! साधुता अवलम्बन करके प्रसन्न हूजिये इस समय और कुछ नहीं है. किन्तु कालक्रमसे अर्थात् कुछ दिन बीतनेपर आपको दूंगा ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र बोले हे मनुजाधिप ! मैं कितने समयतक प्रतीक्षा करूं ? शीघ्र कह ? नहीं तो मेरी शापाग्निमें दग्ध होगा ॥ ४२ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हे विप्रर्षे ! अब और कुछ नहीं है इस कारण आज्ञा दीजिये, एक महीनेके बीचमेंही आपकी दक्षिणाका धन दे

यावत्तोषोराजसूयेब्राह्मणानांभवेन्नृप ॥ तावदेवतुदातव्यादक्षिणाराजसूयिकी ॥ ३९ ॥ प्रतिश्रुत्यचदातव्यंयोद्धव्यंचाततायिभिः ॥ रक्षितव्यास्तथाचार्त्तास्त्वयैवप्राक्प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ भगवन्साम्प्रतंनास्तिदास्येकालक्रमेणते ॥ प्रसादंकुरुविप्रर्षेसद्भावमनुचिन्त्यच ॥ ४१ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ किंप्रमाणोमयाकालःप्रतीक्ष्यस्तेजनाधिप ॥ शीघ्रमाचक्ष्वशापाग्निरन्यथात्वांप्रधक्ष्यति ॥४२॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ ॥ मासेनतव विप्रर्षेप्रदास्येदक्षिणाधनम् ॥ साम्प्रतंनास्तिमेवित्तमनुज्ञांदातुमर्हसि ॥ ४३ ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ गच्छगच्छनृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ॥ शिवश्चतेऽध्वाभवतुमासन्तुपरिपन्थिनः ॥ ४४ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ अनुज्ञातःसगच्छेतिजगामवसुधाधिपः ॥ पद्भ्यामनुचितागन्तुमन्वगच्छततंप्रिया ॥ ४५ ॥ तंसभार्यंनृपश्रेष्ठंनिर्यान्तंससुतंपुरात् ॥ दृष्ट्वाप्रचुक्रुशुःपौराराज्ञश्चैवानुयायिनः ॥ ४६ ॥ हानाथकिंजहास्यस्मान्नित्यार्त्तिपरिपीडितान् ॥ त्वंधर्मतत्परोराजन्पौरानुग्रहकृत्तथा ॥ ४७ ॥ नयास्मानपिराजर्षेयदिधर्ममवेक्षसे ॥ मुहूर्त्तंतिष्ठराजेन्द्रभवतोमुखपङ्कजम् ॥ ४८ ॥ पिबामोनेत्रभ्रमरैःकदाद्रक्ष्यामहेपुनः ॥ यस्यप्रयातस्यपुरोयान्तिपृष्ठेचपार्थिवाः ॥ ४९ ॥

दूंगा॥ ४३ ॥ विश्वामित्र बोले—हे नृपश्रेष्ठ!जाओ!जाओ! स्वधर्म पालन करो ! तुम्हारा मंगलहो और तुम्हारे विघ्न दूरहों॥ ४४ ॥पक्षी बोले—हे मुनिवर ! जैमिने ! तदनन्तर वह राजर्षिप्रवर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र मुनिवर विश्वामित्रके द्वारा जानेमें अनुमोदित होकर चलेगये और उन पैरों पैरों जानेवालेके पीछे रानी शैब्या उनके पीछे पीछे गई ॥ ४५ ॥ इधर नगरवासी प्रजा पुत्र कलत्रके सहित राजाको नगरसे बाहर होता देखकर उच्चस्वरसे रोदन करते करते उनके पीछे चली ॥ ४६ ॥ "हे महाराज ! आप धर्ममें तत्पर और सदा प्रजापालनमें अनुग्रह करनेवाले हैं तो सदा अनेक उपद्रवोंसे पीडित इस प्रजाको किस कारण छोड़ते हो ॥ ४७ ॥ हे राजर्षे ! यदि धर्मकी ओर देखते हो, तो हमकोभी संगलेचलिये । हे राजेन्द्र ! कुछ काल ठहरिये हम एक वार आपके मुखकमलको ॥ ४८ ॥ भ्रमरकी समान पान करैं,

फिर आपका दर्शन कब होगा हाय ! जिनके गमनकालमें पृथ्वीके सब राजा आगे पीछे चलतेथे ॥ ४९ ॥ उन्हीं राजा हरिश्चन्द्रकी भार्या एक बालक सन्तानको लेकर उनकाही अनुगमन करती है, जिनके गमनकालमें हाथीके मस्तकपर चढकर समस्त भृत्य आगे आगे दौड़तेथे ॥ ५० ॥ आज वही यह राजेन्द्र हरिश्चन्द्र स्वयं पैदल गमन करते हैं ॥ ५१ ॥ हा राजन् ! शोभायमान दोनों भौंएँ सुन्दर नासिका और शोभायमान त्वचा इत्यादिसे शोभित आपका यह मुख मार्गमें धूरिसे धूसरित होगा, तब क्याही शोचनीय अवस्था धारण करेगा अत एव हे महाराज ! मत जाओ, मतजाओ ! अपना धर्म पालन करो ॥ ५२ ॥ विशेष कर अनृशंसता (दया) ही क्षत्रियोंका प्रधान धर्म है, क्या स्त्री क्या पुत्र क्या धन अथवा क्या धान्य हमको किसीकी आवश्यकता नहीं

तस्यानुयातिभार्येयंगृहीत्वाबालकंसुतम् ॥ यस्यभृत्याःप्रयातस्ययान्त्यग्रेकुञ्जरस्थिताः ॥५०॥ सएषपद्भ्यांराजेन्द्रोहरिश्चन्द्रोव्यगच्छति ॥ हाराजन्सुकुमारं तेसुभ्रुसुत्वचमुन्नसम् ॥ ५१ ॥ पथिपांसुपरिक्लिष्टंमुखंकीदृग्भविष्यति ॥ तिष्ठतिष्ठनृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ॥ ५२ ॥ आनृशंस्यंपरोधर्मःक्षत्रियाणांविशेषतः ॥ किंदारैःकिंसुतैर्नाथधनैर्धान्यैरथापिवा ॥५३॥ सर्वमेतत्परित्यज्यच्छायाभूतावयंतव ॥ हानाथहामहाराजहास्वामिन्किंजहासिनः ॥५४॥ यत्रत्वंतत्रहिवयंतत्सुखंयत्रवैभवान् ॥ नगरंतद्भवान्यत्रसस्वर्गोयत्रनोनृपः ॥५५॥ इतिपौरवचःश्रुत्वाराजाशोकपरिप्लुतः ॥ अतिष्ठत्सतदामार्गेतेषामेवानुकम्पया ॥५६॥ विश्वामित्रोऽपितंदृष्ट्वापौरवाक्याकुलीकृतम् ॥ रोषामर्षविवृत्ताक्षःसमागम्यवचोऽब्रवीत् ॥ ५७ ॥ धिक्त्वांदुष्टसमाचारमनृतंजिह्मभाषिणम् ॥ ममराज्यंचदत्त्वायःपुनःप्राक्रष्टुमिच्छसि ॥ ५८ ॥ इत्युक्तःपरुषंतेनगच्छामीतिसवेपथुः ॥ ब्रुवन्नेवंययौशीघ्रमाकर्षन्दयितांकरे ॥ ५९ ॥

है ॥५३॥ हम सभी त्यागकर आपके छायास्वरूप होंगे। हा नाथ ! हा महाराज ! हा प्रभो ! हमको मत छोडिये॥ ५४ ॥ आप जहां जायँगे हमभी वहीं जायँगे आपको जिस स्थानमें सुखहै,हमाराभी वहीं वैभवहै आप जिस स्थानमें रहेंगे वही हमारा नगरहै हमारे राजा जहां रहेंगे, वही हमारा स्वर्ग है " ॥५५॥ महाराज हरिश्चन्द्र प्रजाके इसप्रकार वचन सुनकर अत्यन्त शोकमें डूबगये और उनकी दया देखकर कुछ काल मार्गमें खड़ेरहे॥ ५६ ॥ उसी समय मुनिवर विश्वामित्र भी राजाको पुरवासियोंके वचनोंसे आकुल होता देख कर एक साथ आये और रोषामर्षसे दोनों नेत्र विघूर्णित करके कहने लगे ॥ ५७ ॥ रे अदत्तप्रतिज्ञ ! मिथ्यावादिन ! दुष्ट ! यह समस्तराजत्व मुझको देकर अब फिर ग्रहण करनेकी इच्छा करता है, तुझको धिक्कार है ॥ ५८ ॥ राजा हरिश्चन्द्र इसप्रकार गाधितनयके परुष वचन सुनकर " जाता

हूं जाताहूं " कहते कांपते हुए देहसे चलनेलगे और वेगसहित शीघ्र दयिता शैब्या देवीका हाथ खैंचा ॥ ५९ ॥ कोमल अंगवाली शैब्यादेवी अत्यन्तश्रमातुर हो रही थी, गमन कर सकनेके कारण राजा हरिश्चन्द्र शीघ्र शीघ्र चलनेके लिये हाथ पकड़कर उसको खेंचतेथे किन्तु तो भी विश्वामित्र मुनि दण्डेसे रानीकी पीठमें आघात करने लगे ॥ ६० ॥ महीपति हरिश्चन्द्रने देवीको इसप्रकार ताड़ितहोता देखकर अत्यन्त दुःखी हो अन्य कोई उत्तर नहीं दिया, केवलमात्र यही कहा कि, भगवन् ! जाताहूं ॥६१॥ यह कार्य देखकर पांचजन लोकपाल विश्वदेवा देवताओं ने अत्यन्त दयाके वशहोकर कहा " इस पापात्मा विश्वामित्रने यज्ञकरनेवालोंमें श्रेष्ठ नर पति हरिश्चन्द्रको राज्यसे भ्रष्ट किया; इसको कौनसा लोक प्राप्त होगा ? अथवा हम किसके यज्ञमें श्रद्धापूत मंत्रसंस्कृत पवित्र सोमपान करके आनन्दित होंगे "

कर्षतस्तांततोभार्यांसुकुमारींश्रमातुराम् ॥ सहसादण्डकाष्ठेनताडयामासकौशिकः ॥ ६० ॥ तांतथाताडितांदृष्ट्वाहरिश्चन्द्रोमहीपतिः ॥ गच्छामीत्याहदुःखार्तोनान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ॥ ६१ ॥ अथविश्वेतदादेवाःपंचप्राहुःकृपालवः ॥ विश्वामित्रःसुपापोऽयंलोकान्कान्समवाप्स्यति ॥ ६२ ॥ येनायंयज्वनांश्रेष्ठः स्वराज्यादवरोपितः ॥ कस्यवाश्रद्धयापूतंसुतंसोमंमहाध्वरे ॥ पीत्वावयंप्रयास्यामोमुदंमन्त्रपुरःसरम् ॥ ६३ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ इतितेषांवचः श्रुत्वाकौशिकोऽतिरुषान्वितः ॥ शशापतान्मनुष्यत्वंसर्वेयूयमवाप्स्यथ ॥ ६४ ॥ प्रसादितश्चतैःप्राहपुनरेवमहामुनिः ॥ मानुषत्वेऽपिभवतांभवित्रीनैवसन्ततिः ॥ ६५ ॥ नदारसंग्रहश्चैवभवितानचमत्सरः ॥ कामक्रोधविनिर्मुक्ताभविष्यथसुराःपुनः ॥ ६६ ॥ ततोऽवतेरुरंशैःस्वैर्देवास्तेकुरुवेश्मनि ॥ द्रौपदीगर्भसम्भूताःपंचवैपाण्डुनन्दनाः ॥६७॥ एतस्मात्कारणात्पंचपाण्डवेयामहारथाः ॥ नदारसंग्रहंप्राप्ताःशापात्तस्यमहामुनेः ॥ ६८ ॥

॥ ६२ ॥ ६३ ॥ पक्षी बोले—पांचों विश्वदेवाओंके यह वचन सुनकर मुनिवर कौशिकने अत्यन्त क्रोधितहो " रे पापात्माओ ! तुम सब मनुष्य होगे, " यह शापदिया ॥ ६४ ॥ तब उन्होंने इनकी प्रार्थना करी ! अनन्तर विश्वामित्रने विश्वदेवाओंके द्वारा प्रसन्न होकर फिर कहा—"हे देवताओ ! यद्यपि तुम मनुष्य देह धारण करोगे,किन्तु तोभी तुम स्त्रीग्रहण और सन्तान उत्पन्न नहीं करोगे॥६५॥तुम मत्सरी नहीं होगे और कामक्रोधादिसे मुक्त रहोगे" ॥ ६६ ॥ तदनन्तर वह विश्वदेवा द्रौपदीके गर्भद्वारा उत्पन्न होकर पांच पाण्डुनन्दनरूपमें अपने अपने अंश सहित कुरुवंशमें उत्पन्न हुए ॥ ६७ ॥ हे महामुने ! इन महर्षि विश्वामित्रके

शापके कारणही पांच महारथ पाण्डुके पुत्रोंका विवाह नहीं हुआ ॥ ६८ ॥ हे जैमिने ! पाण्डवोंकी कथाका आश्रय करके इन चारों प्रश्नोंका उत्तर यथावत् तुम्हारे निकट वर्णन किया अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? सो कहो ॥ ६९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां द्रौपदेयोत्पत्तिकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ जैमिनिने कहा—हे द्विजोत्तम ! मैंने जिस प्रकार प्रश्न क्रमानुसार कियेथे. आपने क्रमानुसार उन सब प्रश्नोंका यथावत् उत्तर दिया है अब हरिश्चन्द्रकी कथामें मुझको अत्यन्त कौतूहल हुआ है ॥ १ ॥ अहो ! उन महात्माने क्याही कष्ट पायाथा हे द्विजोत्तमो ! क्या उन्होंने वैसा सुखभी पायाथा ? ॥ २ ॥ पक्षी बोले—राजा हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रके वचन सुननेसे अत्यन्त दुःखी होकर धीरे धीरे गमन

एतत्तेसर्वमाख्यातंपाण्डवेयकथाश्रयम् ॥ प्रश्नंचतुष्टयंगीतंकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेद्रौपदेयोत्पत्तिकथनंनामसप्तमोऽध्यायः॥७॥ जैमिनिरुवाच ॥ ॥ भवद्भिरिदमाख्यातंयथाप्रश्नमनुक्रमात् ॥ महत्कौतूहलंमेऽस्तिहरिश्चंद्रकथांप्रति ॥ १ ॥ अहोमहात्मनातेनप्राप्तंकृच्छ्रमनुत्तमम् ॥ कच्चित्सुखमनुप्राप्तंतादृगेवद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ विश्वामित्रवचःश्रुत्वासराजाप्रययौशनैः ॥ शैव्ययानुगतोदुःखीभार्ययाबालपुत्रया ॥ ॥ ३ ॥ सगत्वावसुधापालोदिव्यांवाराणसींपुरीम् ॥ नैषामनुष्यभोग्येतिशूलपाणेः परिग्रहः ॥ ४ ॥ जगामपद्भ्यांदुःखार्त्तःसहपत्न्यानुकूलया ॥ पुरींप्रविश्यददृशेविश्वामित्रमुपस्थितम् ॥ ५ ॥ तंदृष्ट्वासमनुप्राप्तंविनयावनतोऽभवत् ॥ प्राहचैवाञ्जलिंकृत्वाहरिश्चंद्रोमहामुनिम् ॥ ६ ॥ इमेप्राणाः सुतश्चायमियंपत्नीमुनेमम ॥ येनतेकृत्यमस्त्याशुतद्गृहाणार्घ्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥ यद्वान्यत्कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ पूर्णःसमासोराजर्षेदीयतांममदक्षिणा ॥ राजसूयनिमित्तंहिस्मर्यतेस्ववचोयदि ॥ ९ ॥

किया और बालक पुत्रको लेकर रानी शैब्या उनके संग चली ॥ ३ ॥ वह पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र मनोहर वाराणसी पुरीमें गये क्योंकि यह नगरी मनुष्यभोग्या अर्थात् मनुष्योंके भोगकी नहीं है कारण कि, वह शूलपाणि महादेवजीके द्वारा विरचित हुई है॥ ४ ॥ वह दुःखित चित्तसे इसप्रकार चिन्ता करते अनुकूल पत्नीके सहित पैरोंही गये और वाराणसीमें प्रवेश करनेके समय देखा कि,मुनिवर विश्वामित्र सन्मुख खडेहैं ॥५॥ नरपति हरिश्चंद्रने महामुनिको आयाहुआ देख हाथ जोड़कर विनीतभावसे कहा॥ ६ ॥ हे प्रभो ! मेरा यह प्राण, यह पुत्र और यह पत्नीमात्र विद्यमान हैं, इनमें जिसकी आपको रुचिहो, आज्ञा कीजिये, वही आपके अर्घ्यस्वरूप में कल्पितहो ॥ ७ ॥ और इस समय मैं क्या करूं ? यह भी अनुमति दीजिये ॥ ८ ॥ विश्वामित्र बोले—हे राजर्षे ! क्या राजसूय नैमित्तिक अपना वचन स्मरण है ? एक महीना

पूरा होगया है, अब मेरी दक्षिणा दो ॥ ९ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे ब्रह्मन् ! हे तपोधन ! आजही महीना पूरा होगा, अभी आधादिन जो शेष है, आप उसी की प्रतीक्षा कीजिये, फिर अधिक प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ेगी ॥ १० ॥ विश्वामित्र बोले—हे महाराज ! यहीहो, मैं फिर आताहूं यदि आज मुझको दक्षिणा नहीं दोगे तो निःसन्देह शाप दूंगा ॥ ११ ॥ पक्षियोंने कहा—विप्रोत्तम विश्वामित्रजी यह कह कर चलेगये तब राजा चिंता करनेलगे कि, " इनको पूर्व कहीहुई दक्षिणा किस प्रकारसे दूंगा ॥ १२ ॥ मेरे समृद्धिशाली बन्धुवर्ग कहां हैं ? और कहां मेरी अर्थसम्पत्ति अर्थात् धन है ! प्रतिग्रहसे युक्त हुआ मैं किसप्रकार अधोगामी नहीं हूंगा ? ॥ १३ ॥ कुछभी तो पास नहीं है, किस दिशामें जाऊं ? क्या प्राणत्याग करूं ? यदि अंगीकार करीहुई वस्तु विनादिये प्राणत्याग करूं

हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ ब्रह्मन्नद्यैवसंपूर्णोमासोऽम्लानतपोधन ॥ तिष्ठत्येतद्दिनार्धंयत्तत्प्रतीक्षस्वमाचिरम् ॥ १० ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ एवमस्तुमहाराजआगमिष्याम्यहंपुनः ॥ शापंतवप्रदास्यामिनचेदद्यप्रदास्यसि ॥११॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ इत्युक्त्वाप्रययौविप्रोराजाचाचिंतयत्तदा ॥ कथमस्मैप्रदास्यामिदक्षिणायाप्रतिश्रुता ॥ १२ ॥ कुतःपुष्टानिमित्राणिकुतोऽर्थःसांप्रतंमम ॥ प्रतिग्रहःप्रदुष्टोमेनाहंयायामधःकथम् ॥ १३ ॥ किमुप्राणान्विमुञ्चामिकांदिशंयाम्यकिंचनः ॥ यदिनाशंगमिष्यामिअप्रदायप्रतिश्रुतम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मस्वहृत्कृमिःपापोभविष्याम्यधमाधमः ॥ अथवाप्रेष्यतांयास्येवरमेवात्मविक्रयः ॥१५॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ राजानंव्याकुलंदीनंचिन्तयानमधोमुखम् ॥ प्रत्युवाचतदापत्नीबाष्पगद्गदयागिरा ॥१६॥ त्यजचिन्तांमहाराजस्वसत्यमनुपालय ॥ श्मशानवद्वर्जनीयोनरःसत्यबहिष्कृतः ॥ १७ ॥ नातःपरतरंधर्मंवदन्तिपुरुषस्यतु ॥ यादृशंपुरुषव्याघ्रस्वसत्यपरिपालनम् ॥ १८ ॥ अग्निहोत्रमधीतंवादानाद्याश्चाखिलाःक्रियाः ॥ भजन्तेतस्यवैफल्यंयस्यवाक्यमकारणम् ॥ १९ ॥ सत्यमत्यन्तमुदितंधर्मशास्त्रेषुधीमताम् ॥ तारणायानृतंतद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥ २० ॥

॥ १४ ॥ तो ब्रह्मअंश हरण करनेके पापमें लिप्त होकर अत्यन्त नीचाधम कृमिरूपमें जन्म ग्रहण करूंगा, या आत्माको बेचकर संन्यासी हूंगा" ॥ १५ ॥ पक्षी बोले—राजाको इसप्रकार दुःखित व्याकुल और नीचेको मुखकिये चिन्ता करता हुआ देख पत्नी शैब्याने नेत्रोंमें आंसू भरकर गद्गद वचनसे कहा ॥ १६ ॥ हेमहाराज ! चिन्ताका त्याग कीजिये । अपना अंगीकार कियाहुआ वचन पालन कीजिये । असत्यका प्रतिपालन करनेवाला पुरुष श्मशानके समान सम्यक् प्रकारसे त्यागने योग्य है ॥ १७ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! पण्डितजन कहते हैं, अपने सत्य का पालन करने में जैसा धर्म होता है, वैसा अन्य किसीमें नहीं होता ॥ १८ ॥ जिसका वचन असत्य होता है, उसके अग्निहोत्रादि यज्ञ वेदादिका पढ़ना और दानादि सभी कार्य विफल होते हैं ॥ १९ ॥ धर्मशास्त्रमें पण्डितोंने कहा है कि,

सत्य वचन जिसप्रकार तारनेके लिये सदा समर्थ होता है, मिथ्या वचनभी उसी प्रकार नीचे गिरानेका एकमात्र प्रधान कारण है ॥ २० ॥ हे पार्थिव ! आपने सात अश्वमेध यज्ञ करके राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया है, तो इस समय क्या सामान्य एकमात्र असत्यके कारण स्वर्गसे भ्रष्ट होंगे ? ॥ २१ ॥ हे राजन् ! मेरे सन्तान हुई है " यह कहकर रोनेलगी तब महीपति बाष्पसे आकुलनेत्र हुई रानीसे कहने लगे ॥ २२ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा—" हे भद्रे ! संतापको त्यागदो, यह तुम्हारी शिशुसन्तान वर्त्तमान है, हे गजगामिनि ! जो कहनेकी इच्छाहो, वह कहो ॥ २३ ॥ राजपत्नीने कहा—" हे राजन् ! मेरे पुत्र संतान होगई है, संतानके लियेही साधुपुरुषोंको पत्नीकी आवश्यकता होती है, अत एव अब मुझे बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा दो " ॥ २४ ॥ पक्षी बोले—पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र पत्नीका यह

सप्ताश्वमेधानाहृत्यराजसूयंचपार्थिवः ॥ कृतिर्नामच्युतःस्वर्गादसत्यवचनात्सकृत् ॥ २१ ॥ राजञ्जातमपत्यंमेइत्युक्ताप्ररुरोदह ॥ बाष्पाम्बुप्लुतनेत्रांतामुवाचेदंमहीपतिः ॥ २२ ॥ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ विमुंचभद्रेसंतापमयंतिष्ठतिबालकः ॥ उच्यतांवक्तुकामासियद्वात्वंगजगामिनि ॥ २३ ॥ ॥ पत्न्युवाच राजञ्जातमपत्यंमेसतांपुत्रफलाःस्त्रियः ॥ समांप्रदायवित्तेनदेहिविप्रायदक्षिणाम् ॥ २४ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्यययौमोहंमहीपतिः ॥ प्रतिलभ्यचसंज्ञांसविललापातिदुःखितः ॥२५॥ महद्दुःखमिदंभद्रेयत्त्वमेवंब्रवीषिमाम् ॥ किंतवस्मितसँल्लापाममपापस्यविस्मृताः ॥ २६ ॥ हाहाकथंत्वयाशक्यंवक्तुमेतच्छुचिस्मिते ॥ दुर्वाच्यमेतद्वचनंकर्तुंशक्नोम्यहंकथम् ॥२७॥ इत्युक्त्वासनरश्रेष्ठोधिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन् ॥ निपपातमहीपृष्ठेमूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ॥२८॥ शयानंभुवितंदृष्ट्वाहरिश्चंद्रंमहीपतिम् ॥ उवाचेदंसकरुणंराजपत्नीसुदुःखिता ॥ २९ ॥

वचन सुनकर मोहमें आ मूर्च्छित होगये और फिर वह चेतना लाभ करके अत्यन्त दुःखितचित्तसे इसप्रकार विलाप करने लगे॥ २५ ॥ हे भद्रे ! तुम जो कहतीहो, यह बात अत्यन्त कष्टदायक है, यह पापात्मा क्या तुम्हारा मुसकुराकर बोलना भूलगया है ? ॥ २६ ॥ हे शुचिस्मिते ! नहीं तो तुम्हारे मुखसे ऐसे दुर्वचन क्यों निकलते ? अथवा मैं किसप्रकार ऐसे कार्यके करनेमें समर्थ होता, जो ऐसे वचन कह ता ॥ २७ ॥ नरश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र इसप्रकार कहकर निरन्तर "हा धिक् हा धिक्" कहतेहुए पृथ्वीमें गिरगये और तत्काल मूर्च्छाको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ महीपति हरिश्चन्द्रको पृथ्वीमें शयन किये देखकर राजपत्नी शैब्या अत्यन्त दुःखित हुई

और करुणास्वरसे कहने लगी ॥ २९ ॥ पत्नी बोली—कि, हाय महाराज ! क्याही अचिन्तनीय अवस्था उपस्थित हुई है जो हरिणके रोमकी कोमल शय्या पर शयन करतेथे, वही आज धरातलमें पड़े हैं ॥ ३० ॥ जिन्होंने अनन्त कोटि गोधन ब्राह्मणोंको सहर्ष दान किया है, वही मेरे स्वामी पृथ्वीनाथ हरिश्चन्द्र मिट्टीके ऊपर शयन कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ अहो ! क्या कष्ट है, हा दैव ! इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है, जो इन उपेन्द्रतुल्य राजाको इसप्रकार पापियोंकी समान दुर्दशा ग्रस्त किया ॥ ३२ ॥ हे जैमिने ! वह सुश्रोणी राजमहिषी शैब्या इसप्रकार अनेक विलाप करती हुई स्वामीके असह्य दुःखभारसे पीडित होकर अचेतन अवस्थामें पृथ्वीपर गिरगई ॥ ३३ ॥ इधर बालक राजपुत्र माता पिताको इस अवस्थामें पृथ्वीपर पड़ा हुआ देख भूंखसे अत्यन्त आतुर व दुःखित होकर कहने लगा ॥

पत्न्युवाच ॥ ॥ हामहाराजकस्येदमपध्यानमुपस्थितम् ॥ यत्त्वंनिपतितोभूमौराङ्कवास्तरणोचितः ॥ ३० ॥ येनकोटयग्रशोवित्तंविप्राणामपवर्जितम् ॥ सएषपृथिवीनाथोभूमौस्वपितिमेपतिः ॥ ३१ ॥ हाकष्टंकिंतवानेनकृतंदेवमहीक्षिता ॥ यदिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयंनीतःपापामिमांदशाम् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वासापिसुश्रोणीमूर्च्छितानिपपातह ॥ भर्तृदुःखमहाभारेणासह्येननिपीडिता ॥ ३३ ॥ तौतथापतितौभूमावनाथौपितरौशिशुः ॥ दृष्ट्वात्यंतक्षुधाविष्टःप्राहवाक्यंसुदुःखितः ॥ ३४ ॥ तातताततदद्स्वान्नमम्बाम्बभोजनंदद ॥ क्षुन्मेबलवतीजाताजिह्वाग्रंशुष्यतेतथा ॥ ३५ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तोविश्वामित्रोमहातपाः ॥ कालकल्पइवक्रुद्धोधनंसंमार्गितुंतदा ॥ दृष्ट्वातुतंहरिश्चंद्रः पतितोभुविमूर्च्छितः ॥ ३६ ॥ सवारिणासमभ्युक्ष्यराजानमिदमब्रवीत् ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठराजेंद्रतांददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ३७ ॥ ऋणंधारयतोदुःखमहन्यहनिवर्द्धते ॥ आप्यायमानःसतदाहिमशीतेनवारिणा ॥ ॥ ३८ ॥ अवाप्यचेतनांराजाविश्वामित्रमवेक्ष्यच ॥ पुनर्मोहंसमापेदेसचक्रोधंययौमुनिः ॥ ३९ ॥ ससमाश्वास्यराजानंवाक्यमाहद्विजोत्तमः ॥ दीयतांदक्षिणासामेयदिधर्ममवेक्षसे ॥ ४० ॥

॥ ३४ ॥ तात ! तात ! मुझको भोजन दो । माता ! माता ! मुझे भोजन दे, मुझको बहुतही भूंख लगी है, मेरी जीभका अग्रभाग सूखा जाताहै ॥ ॥ ३५ ॥ पक्षी बोले—हे जैमिने ! इसी अवसरमें धन लेनेको कालकी समान क्रोधित हुए महातपा विश्वामित्रजी हठात् आनकर प्राप्त हुए और राजा हरिश्चन्द्रको मूर्च्छित अवस्थासे पृथ्वीमें पड़ा हुआ देख ॥ ३६ ॥ जलके छींटे देकर राजासे कहने लगे हे राजेन्द्र ! उठकर दक्षिणा दो ॥ ३७ ॥ क्योंकि ऋण धारण करनेसे दुःख दिन दिन बढ़ताही है । तब राजा हरिश्चन्द्रने हिमकी समान शीतल जलसे सिंचित होकर ॥ ३८ ॥ चैतन्य लाभ किया, और सामने विश्वामित्रको देखतेही फिर मूर्च्छित होगये । तब द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रजी अत्यन्त क्रोधित होकर ॥ ३९ ॥ राजाको समझाते हुए कहने लगे हे

राजन् ! यदि तुम धर्मकी ओर देखते हो, तो मेरी दक्षिणा देदो ॥ ४० ॥ देखो, सूर्य केवल सत्यकीही सहायतासे ताप देते हैं, पृथ्वी एकमात्र सत्यमेंही प्रति ष्ठित है, सत्यही एकमात्र धर्म कहागया है और स्वर्गभी एकमात्र सत्यमें ही प्रतिष्ठित रहता है, देखो ॥ ४१ ॥ हजार अश्वमेध यज्ञका फल और केवल सत्य यदि तराजू की दंडीमें रक्खा जाय, तो हजार अश्वमेधके फल की अपेक्षा सत्यही अधिक होताहै ॥ ४२ ॥ अथवा ऐसे अनार्य पापमति, क्रूर स्वभाव और मिथ्या वादी इस राजासे इसप्रकार सामवाद प्रयोग करनेकी मुझको क्या आवश्यकता है ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! मैं सरलभावसे कहताहूं, सुनो, यदि इस समय तुम मुझे दक्षिणा नहीं दोगे ॥ ४४ ॥ तो सूर्यदेवके अस्ताचलमें पहुंचतेही अर्थात् संध्या होते ही मैं निःसन्देह शाप दूंगा। विप्रवर विश्वामित्रजी यह कहकर चलेगये

सत्येनार्कःप्रतपतिसत्येतिष्ठतिमेदिनी ॥ सत्यंचोक्तंपरोधर्मःस्वर्गःसत्येप्रतिष्ठितः॥ ४१ ॥ अश्वमेधसहस्रंचसत्यंचतुलयाधृतम् ॥ अश्वमेधसहस्राद्धिसत्यमे वविशिष्यते ॥ ४२ ॥ अथवाकिंममैतेनसाम्नाप्रोक्तेनकारणम् ॥ अनार्येपापसंकल्पेक्रूरेचानृतवादिनि ॥ ४३ ॥ त्वयिराज्ञिप्रभवतिसद्भावःश्रूयतामयम् ॥ अद्यमेदक्षिणांराजन्नदास्यतिभवान्यदि ॥ ४४ ॥ अस्ताचलंप्रयातेऽर्केशप्स्यामित्वांततोध्रुवम् ॥ इत्युक्त्वासययौविप्रोराजाचासीद्भयातुरः ॥ ४५ ॥ कान्दिग्भूतोऽधनोनिःस्वोनृशंसधनिनार्दितः ॥ भार्यास्यभूयःप्राहेदंक्रियतांवचनंमम ॥ ४६ ॥ माशापानलनिर्दग्धःपंचत्वमुपयास्यसि ॥ सतयाचोद्यमा नस्तुराजापत्न्यापुनःपुनः ॥ ४७ ॥ प्राहभद्रेकरोम्येषविक्रयंतवनिर्घृणः ॥ नृशंसैरपियत्कर्तुंनशक्यंतत्करोम्यहम् ॥ ४८ ॥ यदिमेशक्यतेवाणीवक्तुमी दृक्सुदुर्वचः ॥ एवमुक्त्वाततोभार्यांगत्वानगरमातुरः ॥ बाष्पापिहितकण्ठाक्षस्ततोवचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥

तब राजाभी ब्रह्मशाप के भयसे अत्यन्त घबराने लगे ॥ ४५ ॥ इधर हम सब अत्यन्त निर्धन और नीच दशामें पड़ेहुए हैं, उधर धनी पुरुष बड़े कठोर हैं क्या करें ? क्या करने से भला होगा ? और किस ओर जायँ ? इस बातमें कुछ स्थिर नहीं कर सकते। इसी समयमें उनकी पत्नीने फिर कहा हे महाराज ! मैंने जो कहा है, वही कीजिये ॥ ४६ ॥ उपाय रहते शापाग्निमें दग्ध होकर मृत्युको प्राप्त मत होओ। तब राजा हरिश्चन्द्रने पत्नी शैब्याके द्वारा वारंवार इस भांति अनुरोध को प्राप्त होकर ॥ ४७ ॥ कहा—हे भद्रे ! मैं घृणाहीन होकर तुम्हें बेचूंगा। अत्यन्त निष्ठुर कार्य, जिसके करनेकी सामर्थ्य वही है. वही करूंगा ॥ ४८ ॥ अच्छा देखो ऐसे कठिन वचन कहसकूं वा नहीं नरपति भार्यासे इसप्रकार कह अत्यन्त व्याकुल होकर नगरमें गये और आंसुओंसे कंठ रोककर यह वचन कहने लगे॥४९॥

हे नगरवासियो ! सब मेरी बात सुनो आप क्या पूछते हैं तुम कौन हो? मैं नृशंसहूं मनुष्य नहीं ॥ ५० ॥ मै राक्षस वा उसकी अपेक्षाभी अतिकठिन और पापात्मा हूं क्योंकि प्राणप्रिया पत्नीको बेचनेके लिये आकर भी मेरा प्राण बाहर नहीं निकला ॥५१॥ मेरे प्राणोंसेभी प्यारी दासीमें यदि आपका प्रयोजन हो, तो जबतक संध्या न हो अर्थात् मेरे प्राण रहते रहते शीघ्र कहो ॥५२॥ पक्षी बोले—अनन्तर किसी बूढे ब्राह्मणने आनकर राजासे कहा, मैं धन देकर दासी मोल लूंगा अत एव मुझको दो ॥ ५३ ॥ मेरे अनेक प्रकारकी धनसम्पत्ति है और मेरी प्रिया अत्यन्त कोमल अंगवाली है, घरके कार्य करनेमें असमर्थ है,इस कारण यह मुझकोही देदो॥५४॥ तुम पत्नीके कर्मदक्षता (चतुरता) अवस्था रूप और स्वभावके अनुरूप यह धन लेकर इस स्त्रीको मुझे दो ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणके इसप्रकार कहनेपर अत्यन्त

राजोवाच ॥ ॥ भोभोनागरिकाः सर्वेशृणुध्वंवचनंमम ॥ किंमांपृच्छथकस्त्वंभोनृशंसोऽहममानुषः ॥ ५० ॥ राक्षसोवातिकाठिनस्ततःपापतरोऽपिवा ॥ विक्रेतुंदयितांप्राप्तोयेनप्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ५१ ॥ यदिवःकस्यचित्कार्यंदास्याप्राणेष्टयामम ॥ सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्सन्धारयाम्यहम् ॥ ५२ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ अथवृद्धोद्विजःकश्चिदागत्याहनराधिपम् ॥ समर्पयस्वमेदासीमहंक्रेताधनप्रदः ॥ ५३ ॥ अस्तिमेवित्तमस्तोकंसुकुमारीचमेप्रिया ॥ गृहकर्मनशक्नोतिकर्त्तुमस्मात्प्रयच्छमे ॥ ५४ ॥ कर्मण्यतावयोरूपशीलानांतवयोषितः ॥ अनुरूपमिदंवित्तंगृहाणार्पयमेऽबलाम् ॥ ५५ ॥ एवमुक्तस्यविप्रेणहरिश्चन्द्रस्यभूपतेः ॥ व्यदीर्य्यतमनोदुःखान्नचैनंकिंचिदब्रवीत् ॥ ५६ ॥ ततः सविप्रोनृपतेर्वल्कलान्तेदृढंधनम् ॥ बद्ध्वाकेशेष्वथादायनृपपत्नीमकर्षयत् ॥ ५७ ॥ रुरोदरोहितास्योऽपिदृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ॥ हस्तेनवस्त्रमाकर्षन्काकपक्षधरःशिशुः ॥ ५८ ॥ मुंचार्यमुंचतावन्मांयावत्पश्याम्यहंशिशुम् ॥ दुर्लभंदर्शनंतातपुनरस्यभविष्यति ॥ ५९ ॥ पश्यैहिवत्समामेवंमातरंदास्यतांगताम् ॥ मांमास्प्राक्षीराजपुत्रअस्पृश्याहंतवाधुना ॥ ६० ॥

दुःखके कारण राजा हरिश्चन्द्रका हृदय विदीर्ण होने लगा और उसको कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ५६ ॥ अनन्तर वह ब्राह्मण राजाके वल्कल वस्त्रमें वह धन दृढरीतिसे बांध रानीके केश पकड़कर खेंचने लगा ॥ ५७ ॥ काकपक्षधारी बालक रोहिताश्व माताको आकृष्ट होता देख, हाथसे उसके वस्त्रका आंचल खेंचताहुआ रोने लगा ॥ ५८ ॥ राजपत्नी बोली—हे आर्य ! एकबार मुझे छोड़दो ! मैं एकबार इस बालक पुत्रका मुख देखलूं हे तात ! फिर मैं इसको नहीं देखसकूंगी ॥ ५९ ॥ हे वत्स ! आओ, देखो मैं तुम्हारी माता दासी हुई हूं ? हे राजपुत्र ! अब मुझको स्पर्श मत करना, अब मैं तुम्हारे स्पर्श करने योग्य नहीं रही ॥ ६० ॥

अनन्तर बालक सहसा माताका आकृष्ट होता देखकर "मा! मा!" शब्दसे रोताहुआ आंखोंमें आँसू भर कर दौड़ने लगा॥६१॥तब बूढे ब्राह्मणने अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसहित बालकके लात मारी. किन्तु बालक तो भी "मा! मा!" कहकर दौड़ने लगा, जननीको किसीप्रकार भी नहीं छोड़ा ॥ ६२ ॥ राजपत्नी बोली—हे नाथ! अनुग्रह कीजिये. इस बालकको भी क्रय करो अर्थात् मोललो क्योंकि मेरे मोल लेनेपर भी इस बालकके विना मैं किसीप्रकार आपका कार्य नहीं करसकूंगी ॥६३॥ अत एव इस हतभागिनीके ऊपर यही अनुग्रह कीजिये कि,वत्स के संग पयस्विनी गायके समान इस बालके संग मुझको संयोजित कीजिये॥६४॥ ब्राह्मण बोला—यह धन ग्रहण करो बालकको मुझे दो, धर्मशास्त्रवेत्ता पण्डितों ने स्त्री और पुरुष दोनोंकाही मूल्य शत, सहस्र. लक्ष वा करोड़ मुद्रा निरूपित किया

ततःसबालःसहसादृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ॥ समभ्यधावदम्बेतिरुदन्नस्राविलेक्षणः ॥ ६१ ॥ तमागतंद्विजःक्रोधाद्बालमभ्याहनत्पदा ॥ वदंस्तथापिसोऽम्बेतिनैवामुंचतमातरम् ॥ ६२ ॥ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ ॥ प्रसादंकुरुमेनाथक्रीणीष्वेमंचबालकम् ॥ क्रीतापिनाहंभवतोविनैनंकार्य्यसाधिका ॥ ६३ ॥ इत्थंममाल्पभाग्यायाःप्रसादसुमुखोभव॥ मांसंयोजयबालेनवत्सेनेवपयास्विनीम् ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ गृह्यतांवित्तमेतत्तेदीयतांबालकोमम ॥ स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैःकृतमेवहिवेतनम् ॥ शतंसहस्रंलक्षंचकोटिमूल्यंतथापरैः ॥ ६५ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तथैवतस्यतद्वित्तंबद्ध्वोत्तरपटेततः ॥ प्रगृह्यबालकंमात्रासहैकस्थमबन्धयत् ॥ ६६ ॥ नीयमानौतुतौदृष्ट्वाभार्य्यापुत्रौसपार्थिवः ॥ विललापसुदुःखार्तोनिःश्वस्योष्णंपुनःपुनः ॥ ६७ ॥ यांनवायुर्नचादित्योनेन्दुर्नचपृथग्जनः ॥ दृष्टवंतःपुरापत्नीसेयंदासीत्वमागता ॥ ६८ ॥ सूर्यवंशप्रसूतोऽयंसुकुमारकरांगुलिः ॥ संप्राप्तोविक्रयंबालोधिङ्मामस्तुसुदुर्मतिम् ॥ ६९ ॥ हाप्रियेहाशिशोवत्समममानार्यस्यदुर्नयैः ॥ दैवाधीनांदशांप्राप्तोनमृतोऽस्मितथापिधिक् ॥ ७० ॥

है॥६५॥पक्षी बोले—तदनन्तर उस बूढे ब्राह्मणने नरपतिके दुपट्टेमें वह धन भी पूर्ववत् बाँधकर बालक और राजमहिषीको एकत्र बांधलिया॥६६॥ तब महीपति हरिश्चन्द्र भार्या और पुत्रको ब्राह्मणके संग जाताहुआ देखकर कातरतासहित वारंवार दीर्घोष्ण श्वास छोड़ते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ ६७ ॥ कि, हाय! जिसको वायु, सूर्य, चन्द्र वा अन्य पुरुषने पहिले कभी नहीं देखा है, आज मेरी उसी पत्नीको दासीभाव अवलम्बन करना पड़ा ॥ ६८ ॥ हाय! सूर्यवंशमें जिसका जन्म है जिसके हाथकी सब अंगुलियें अत्यन्त सुकुमार हैं, उस शिशुबालक को भी आज बेचना पड़ा, हाय! मैं दुर्मति हूं. मुझको धिक्कार है॥६९॥ हा प्रिये! हा शिशो!

हे वत्स ! मेरेही अन्यायआचरणके कारण तुमको यह दैवदुर्दशा भोगनी पड़ी है, हाय ! तो भी मेरी मृत्यु नहीं हुई, मुझको धिक्कार है ॥ ७० ॥ पक्षी बोले—इस प्रकार राजा विलाप करतेरहे और वह ब्राह्मणर्भी शीघ्रतासहित राजपुत्र तथा राजमहिषीको लेकर अत्यन्त ऊंचे वृक्ष और महलोंके अन्तरमें चलागया ॥ ७१ ॥ उसी समय मुनिवर विश्वामित्रने भी सहसा आकर राजासे धन मांगा तब राजा हरिश्चन्द्रने भी वह सब धन उनको समर्पण किया ॥ ७२ ॥ विश्वामित्र मुनि राजाके स्त्री पुत्र बिकनेका धन बहुत थोड़ा देख, अत्यन्त क्रोधित हो शोकाभिभूत राजासे कहने लगे ॥ ७३ ॥ रे क्षत्रियाधम ! इस सामान्य धनको यदि मेरे यज्ञकी उपयुक्त दक्षिणा विचारता है तो अभी मेरी महातपस्याका बल देख ॥ ७४ ॥ निर्मल ब्रह्मतेज उग्र प्रभाव शुद्ध अध्ययन

पक्षिण ऊचुः ॥ ॥ एवंविलपतोराज्ञःसविप्रोऽन्तरधीयत ॥ वृक्षगेहादिभिस्तुंगैस्तावादायत्वरान्वितः ॥ ७१ ॥ विश्वामित्रस्ततःप्राप्तोनृपंवित्तमयाचत ॥ तस्मैसमर्पयामासहरिश्चन्द्रोऽपितद्धनम् ॥ ७२ ॥ तद्वित्तंस्तोकमालोक्यदारविक्रयसंभवम् ॥ शोकाभिभूतंराजानंकुपितःकौशिकोऽब्रवीत् ॥ ७३ ॥ क्षत्रबंधो ममेमांत्वंसदृशींयज्ञदक्षिणाम् ॥ मन्यसेयदितत्क्षिप्रंपश्यत्वंमेबलपरम् ॥७४॥ तपसोऽत्रसुतप्तस्यब्राह्मण्यस्यामलस्यच ॥ मत्प्रभावस्यचोग्रस्यशुद्धस्याध्ययनस्यच ॥ ७५ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ अन्यांदास्यामिभगवन्कालःकश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ साम्प्रतंनास्तिविक्रीतापत्नीपुत्रश्चबालकः ॥ ७६ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ चतुर्भागःस्थितोयोऽयंदिवसस्यनराधिप ॥ एषएवप्रतीक्ष्योमेवक्तव्यंनोत्तरंत्वया ॥ ७७ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ तेमवमुक्त्वाराजेंद्रं निष्ठुरंनिर्घृणंवचः ॥ तदादायधनंतूर्णंकुपितःकौशिकोययौ ॥७८॥ विश्वामित्रेगतेराजाभयशोकादिमध्यगः ॥ स्वविक्रयंविनिश्चित्यप्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥७९॥ वित्तक्रीतेनयोह्यर्थीमयाप्रेष्येणमानवः ॥ सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्तपतिभास्करः ॥ ८० ॥

इन सबका बल देख ॥ ७५ ॥ राजाने अत्यन्त विनीतभावसे कहा—हे भगवन् ! कुछ काल अपेक्षा कीजिये शेष दक्षिणा दूंगा इस समय और कुछ नहीं है, यह देखो पत्नी पुत्रतकको बेचदिया है ॥ ७६ ॥ विश्वामित्र बोले हे नराधिप ! यह जो केवल दिनका चौथा भाग शेष है मैं इसीकी प्रतीक्षा करूंगा फिर तुम कोई उत्तर नहीं करना ॥ ७७ ॥ पक्षी बोले—मुनिवर कौशिक उन राजासे क्रोधपूर्ण घृणाहीन और निष्ठुर वचन कह उस धनको लेकर चले गये ॥७८॥ विश्वामित्रके चले जानेपर नरपति हरिश्चन्द्र भय और शोकसागरमें मग्नहो, सब प्रकारसे निश्चय कर नीचेको मुख किये उच्च स्वरसे कहने लगे ॥ ७९ ॥ कि, " यदि कोई पुरुष

धनप्रदानपूर्वक मुझको मोल लेकर सेवक बनानेकी इच्छा करे वह सूर्यदेवके अस्त होनेसे पहिलेही मुझसे कहै" ॥ ८० ॥ अनन्तर स्वयं धर्म चाण्डालका रूप धारण करके शीघ्र आये । उसके गात्रमें दुर्गन्ध आतीथी उसकी मूर्त्ति रूक्ष मुख डाढी मूछोंसे युक्त और बड़ा स्वभाव अत्यन्त भयंकर समस्त दांत ऊंचे और उसका रूप अत्यन्त घृणाकर था ॥ ८१ ॥ वह कृष्णवर्ण लम्बोदर पिंगल अथ च रूक्षलोचन और कर्कशभाषी था । उसके हाथ में कितने ही पक्षी गले में मृतकों की माला ॥ ८२ ॥ एक हाथमें नरकपाल, दूसरे हाथमें लाठी लिये, शरीर अत्यन्त कृश और वह कितनेही कुत्तोंसे परिवेष्टित होकर निरन्तर अतिशय जल्पना प्रयोग करताथा ॥ ८३ ॥ वह चाण्डाल रूपी धर्म राजासे आनकर बोला मैं तुमको मोल लूंगा । थोड़े वा बहुत किस मूल्यमें तुमको प्राप्त करताहूं, शीघ्र कहो ॥

अथाजगामत्वरितोधर्मश्चण्डालरूपधृक् ॥ दुर्गन्धोविकृतोरूक्षःश्मश्रुलोदन्तुरोघृणी ॥ ८१ ॥ कृष्णोलम्बोदरःपिङ्गरूक्षाक्षःपरुषाक्षरः ॥ गृहीतपक्षिपुंजश्चशवमाल्यैरलंकृतः ॥ ८२ ॥ कपालहस्तोदीर्घास्योभैरवोऽतिवदन्मुहुः ॥ श्वगणाभिवृतोघोरोयाष्टिहस्तोनिराकृतिः ॥ ८३ ॥ ॥ चण्डालउवाच ॥ अहमर्थीत्वयाशीघ्रंकथयस्वात्मवेतनम् ॥ स्तोकेनबहुनावापियेनवैलभ्यतेभवान् ॥ ८४ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तंतादृशमथालक्ष्यक्रूरदृष्टिंसुनिष्ठुरम् ॥ वदन्तमतिदुःशीलंकस्त्वमित्याहपार्थिवः ॥ ८५ ॥ ॥ चण्डालउवाच ॥ चण्डालोऽहमिहख्यातःप्रवीरेतिपुरोत्तमे ॥ विख्यातोवध्यवधकोमृतकम्बलहारकः ॥ ८६ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ नाहंचण्डालदासत्वमिच्छेयंसुविगर्हितम् ॥ वरंशापाग्निनादग्धोनचण्डालवशंगतः ॥ ८७ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ तस्यैवंवदतःप्राप्तोविश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥ कोपामर्षविवृत्ताक्षःप्राहचेदंनराधिपम् ॥ ८८ ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ चण्डालोऽयमनल्पंतेदातुंवित्तमुपस्थितः ॥ कस्मान्नदीयतेमह्यमशेषायज्ञदक्षिणा ॥ ८९ ॥

॥ ८४ ॥ पक्षी बोले कि, अतिपरुषभाषी, क्रूरदृष्टि और कर्कशस्वभाव चाण्डालको ऐसी अवस्थासे आया देखकर राजाने कहा तुम कौन हो ॥ ८५ ॥ चाण्डाल बोला मैं चाण्डाल हूं और इस श्रेष्ठ नगरीमें मेरा वास है, मेरा नाम प्रवीर है मैं प्रसिद्ध वध्य वधिक अर्थात् वध करने योग्य पुरुषका वध करनेवालाहूं और मरे हुए पुरुषका कम्बलभी हरण करताहूं ॥ ८६ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा—चाण्डालका दासत्व स्वीकार करना अत्यन्त निन्दाकी बात है, अत एव मैं इसकी इच्छा नहीं करता यद्यपि शापानलमें दग्धही हूं, किन्तु तो भी चाण्डालके वशीभूत नहीं हूंगा ॥ ८७ ॥ पक्षी बोले—राजा इसप्रकार कहतेहीं थे, उसी समय तपोनिधि विश्वामित्रजीने सहसा आय, कोप अमर्षद्वारा लाल नेत्रकर राजासे कहा ॥ ८८ ॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! यह चाण्डाल तुमको बहुत धन देनेके लिये उपस्थित है, तो फिर किस कारण मेरे

यज्ञकी दक्षिणा नहीं देते हो ? ॥ ८९ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—भगवन् कौशिक ! मैं अपनी आत्माको सूर्यवंशोत्पन्न जानताहूं, अत एव धनके लोभसे किसप्रकार चाण्डालके वशीभूत हूं ॥ ९० ॥ विश्वामित्रने कहा—यदि तुम मुझको अपना शरीर बेचकर इस चाण्डालका धन यथासमयमें नहीं दोगे, तो मैं तुमको निःसन्देह शाप दूंगा ॥ ९१ ॥ पक्षी बोले—तदनन्तर महीपति हरिश्चन्द्रने चिन्तामात्रसे जीवित हो "भगवन् प्रसन्न हूजिये" कह कर व्याकुल मनसे ऋषिवरके दोनों चरण पकड़लिये और कहा ॥ ९२ ॥ मैं आपका दासहूं, मैं अत्यन्त भीत और व्याकुल हुआ हूं और विशेष कर मैं आपकाही भक्तहूं, इस कारण हे विप्रर्षे ! अनुग्रह कीजिये, चाण्डालके वशीभूत होना अत्यन्त कष्टकी बात है ॥ ९३ ॥ हे प्रभो ! मेरा धन शेष होगया है. अत एव मैं आपका ही

हरिश्चन्द्रउवाच ॥ भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानंवेद्मिकौशिक ॥ कथंचण्डालदासत्वंगमिष्येवित्तकामुकः ॥ ९० ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ यदिचण्डालवित्तंत्वमात्मविक्रयजंमम ॥ नप्रदास्यसिकालेनशप्स्यामित्वामसंशयम् ॥ ९१ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रस्ततोराजाचिन्तावास्थितजीवितः ॥ प्रसीदेतिवदन्पादावृषेर्जग्राहविह्वलः ॥ ९२ ॥ दासोस्म्यार्त्तोऽस्मिभीतोऽस्मित्वद्भक्तश्चविशेषतः ॥ कुरुप्रसादंविप्रर्षेकष्टश्चण्डालसङ्करः ॥ ९३ ॥ भवेयंवित्तशेषेणसर्वकर्मकरोवशः ॥ तवैवमुनिशार्दूलप्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तकः ॥ ९४ ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यदिप्रेष्योममभवांश्चण्डालायततोमया ॥ दासभावमनुप्राप्तोदत्तोवित्तार्बुदेनवै ॥ ९५ ॥ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ यद्यसौशक्यतेविप्रःकौशिकःपरितोषितुम् ॥ ततोगृहाणमामद्यदासत्वंतेकरोम्यहम् ॥ ९६ ॥ चण्डालउवाच ॥ ॥ शतयोजनविस्तीर्णानानाग्रामैरलंकृताम् ॥ भूमिंरक्षामयींकृत्वादास्येहंकौशिकंप्रति ॥ ९७ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ एवमुक्तेतदातेनश्वपाकोत्हृष्टमानसः ॥ विश्वामित्रायतद्रव्यंदत्त्वाबद्धानरेश्वरम् ॥ ९८ ॥

कर्मकर दास हूंगा, हे मुनिशार्दूल ! आप जो कहेंगे, वही करूंगा और सदा तुम्हारे ही चित्तका अनुवर्त्ती होकर रहूंगा ॥ ९४ ॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! यदि तुम मेरे ही वशीभूत होतेहो तो मैं ने एक अर्बुद मुद्रामें तुमको इस चाण्डालके हाथ बेचा, तुम इसकेही दास होजाओ ॥ ९५ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा—कि, जो यह ब्राह्मण विश्वामित्रजी संतुष्ट होसकते हैं, तो मुझे ग्रहण करो, मैं तुम्हारा दास बनकर सेवा करूंगा ॥ ९६ ॥ चाण्डाल बोला—कि, सौ योजन की विस्तारवाली अनेक ग्रामोंमें शोभित पृथ्वीको रक्षावाली करके मैं विश्वामित्रजीको देताहूं ॥ ९७ ॥ पक्षी बोले—तब राजाके मुखसे "जो आज्ञा" यह वचन निकलते ही चाण्डाल

रूपी धर्म प्रसन्नचित्तसे विश्वामित्र मुनिको वह धन देकर नरपतिको बांध अपने नगरमें गया ॥ ९८ ॥ राजा हरिश्चन्द्र एक तो पत्नीपुत्रादि बंधुवियोगसे अत्यन्त कातर होगयेथे, इसपर भी फिर चाण्डालके दण्डे मारनेसे अत्यन्त सम्भ्रान्त और व्याकुल होगये ॥ ९९ ॥ तदनन्तर हरिश्चन्द्र चाण्डालके घर वास करते हुए प्रात मध्याह्न तथा सायंकाल इत्यादि सब समय में ही इसप्रकार गान करते कि, ॥ १०० ॥ "दीनमुखी बाला दीनमुख बालकको सन्मुख देखकर दुःखित चित्तसे इसप्रकार चिन्ता करती होगी कि, राजा धन उपार्जनपूर्वक ब्राह्मणको इससे अधिक धन दे हम दोनोंको छुडावेंगे" किन्तु हाय ! वह मृगशावाक्षी यह नहीं जानती है कि, मैं चाण्डालके दासत्वरूप पापदशामें निपतित हुआहूं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ राज्यनाश, सुहृद्त्याग, भार्या पुत्रका बिकना और अन्तमें इस चाण्डालपने की प्राप्ति, हाय ! दुःखके ऊपर दुःख उपस्थित होता है ॥ १०३ ॥ जिन का सर्वस्व हरण होगया वह राजा इसप्रकार चाण्डालके घर वास करते

दण्डप्रहारसंभ्रान्तमतीवव्याकुलेन्द्रियम् ॥ इष्टबन्धुवियोगार्तमनयान्निजपक्कणम् ॥ ९९ ॥ हरिश्चन्द्रस्ततोराजावसंश्चण्डालपक्कणेप्रातर्मध्याह्नसमयेसायंचै तदगायत ॥१००॥ बालांदीनमुखींदृष्ट्वाबालंदीनमुखंपुरः ॥ मांस्मरत्यसुखाविष्टामोचयिष्यतिनौनृपः ॥१०१॥ उपात्तवित्तोविप्रायदत्त्वावित्तमतोऽधिकम् ॥ नसामांमृगशावाक्षीवेत्तिपापतरंकृतम् ॥ १०२ ॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागोभार्यातनयविक्रयः ॥ प्राप्ताचण्डालताचेयमहोदुःखपरम्परा ॥ ३ ॥ एवंसनिवस न्नित्यंसस्मारदयितंसुतम् ॥ भार्याचात्मसमाविष्टांहृतसर्वस्वआतुरः ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यमृतचैलापहारकः ॥ हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजाश्मशा नेतद्वशानुगः ॥ ५ ॥ चण्डालेनानुशिष्टश्चमृतचैलापहारिणा ॥ शवागमनमन्विच्छन्निहतिष्ठन्दिवानिशम् ॥ ६ ॥ इदंराज्ञेऽपिदेयञ्चषड्भागन्तुशवंप्रति ॥ त्रयस्तुममभागाःस्युर्द्वौभागौतववेतनम् ॥ ७ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टोजगामशवमन्दिरम् ॥ दिशंतुदक्षिणांयत्रवाराणस्यांस्थितंतदा ॥ ८ ॥ श्मशानंघोरसं नादंशिवाशतसमाकुलम् ॥ शवमौलिसमाकीर्णंदुर्गन्धबहुधूमकम् ॥ ९ ॥

हुए प्रतिदिन दुःखितचित्तसे प्रियतम पुत्र और मनमें बसी हुई भार्याको स्मरण करते ॥ १०४ ॥ फिर कुछ दिन बीतनेपर उस चाण्डालके वशवर्ती राजा हरिश्चन्द्र श्मशानमें स्थित मृतकके वस्त्र ग्रहण करनेवाले हुए ॥ १०५ ॥ और शववस्त्रापहारी चाण्डालके द्वारा इसप्रकार आज्ञाको प्राप्त हुए कि " तुम दिन रात इस स्थानमें वास करके कहां कौन मुर्दा आता है, इसकी खोज करो ॥ १०६ ॥ प्रत्येक शव (मुरदे) में जो प्राप्त हो, उसका छठा भाग राजाको दो, अवशिष्ट पांच भागमें तीन भाग मेरे निमित्त और दो भाग तुम अपने वेतनमें रक्खो" ॥ १०७ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने चाण्डालकी इसप्रकार आज्ञा पाय वाराणसी की दक्षिण दिशामें स्थित श्मशानमें प्रवेश किया ॥ १०८ ॥ उसकी चारों दिशा घोर शब्दसे प्रतिध्वनित थीं। सैकड़ों गीदड़ियोंसे परिपूर्ण, मृतकोंके मस्तकोंसे व्याप्त तथा दुर्गन्ध

मय और बहुत धुएँसे समाच्छन्न था ॥ १०९ ॥ पिशाच, भूत, वेताल, डाकिनी, यक्ष, गृध्र, गोमायु इत्यादिसे भरा हुआ, तथा उनके शब्दोंसे नादित था और उसमें कुत्ते जहां तहां फिर रहे थे। वह अस्थियोंसे परिपूर्ण और महादुर्गन्धमय था ॥ ११० ॥ १११ ॥ मृतपुरुषवाले सम्बन्धियोंके आर्त्त नादसे परिपूर्ण होनेके कारण अत्यन्त कोलाहलयुक्त था। हा पुत्र ! हा मित्र ! हा बन्धो ! हा भ्राता ! हा वत्स ! हा प्रिये ! ॥ ११२ ॥ हा स्वामिन् ! हा बहिन ! हा माता ! हा मामा हा पितामह ! हा मातामह ! हा पितः ! हा पौत्र ! हा बांधव ! आज कहां गये ! एक बार आओ ॥ ११३ ॥ इसप्रकार और भी अनेक भाँतिसे विलाप करते हुए पुरुषोंका आर्त्तनाद उसके चारों ओरसे सुनाई आता था और कहीं कहीं मृतक अनिमेष नेत्रोंसे अर्थात् विनाही पलक मारे देख रहे थे. जिनमें भय लगता था ॥ ११४ ॥ कोई आंख खोले बन्धुओंकी चिन्ता कर रहा था, मांस, मज्जा और मेद जलनेके कारण छन छन

पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसंकुलम् ॥ महागणमहाभूतरवकोलाहलायुतम् ॥ ११० ॥ गृध्रगोमायुसंकीर्णश्ववृन्दपरिवारितम् ॥ अस्थिसंघातसंकीर्णमहादुर्गन्धसंकुलम् ॥ ११ ॥ नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् ॥ हापुत्रमित्रहाबन्धोभ्रातर्वत्सप्रियाद्यमे ॥ १२ ॥ हापतेभगिनिमातर्हामातुलपितामह ॥ मातामहपितःपौत्रक्कगतोऽस्येहिबान्धव ॥ १३ ॥ इत्येवंवदतांयत्रध्वनिःसंश्रूयतेमहान् ॥ यत्रनेत्रैरनिमिषैःशवाभयमिवाविशन् ॥ १४ ॥ निमीलितैश्चनयनैर्बंधुचिंतापथेस्थितः ॥ ज्वलन्मांसवसामेदश्छमच्छमितसंकुलम् ॥ १५ ॥ अर्द्धदग्धाःशवाःश्यामाविकसद्दन्तपंक्तयः ॥ हसंत्येवाग्निमध्यस्थाःकायस्येयंदशा त्विति ॥ १६ ॥ अग्नेश्चटचटाशब्दोवयसामस्थिपंक्तिषु ॥ बान्धवाक्रन्दशब्दश्चपुल्कसेषुप्रहर्षजः ॥ १७ ॥ गायतांभूतवेतालपिशाचगणरक्षसाम् ॥ श्रूयतेसुमहान्घोरःकल्पान्तइवनिःस्वनः ॥१८॥ महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसंकुलम् ॥ तदुत्थभस्मकूटैश्चवृतंसास्थिभिरुन्नतैः ॥१९॥

शब्दसे उसकी चारों दिशा संकुल होरही थीं ॥ ११५ ॥ शवने अग्निमें पड़नेके कारण अधजली होकर श्यामवर्ण धारण किया है और उसके दाँतोंकी पंक्ति बाहर होगई है, देखनेसे विदित होता है कि, "उस देहकी ऐसी दशा ?" यह विचार कर मानों उसका हास्य करती है ॥ ११६ ॥ अस्थिपंक्तियोंके ऊपर बैठे हुए काकोंके नाना प्रकारसे शब्द होते थे, मृत पुरुषोंके लिये बांधवजन आर्त्तनाद कर रहे थे. अग्निके चटचटा शब्द और चाण्डालोंकी आनन्दसूचक ध्वनिसे वह परिपूर्ण हो रहाथा ॥ ११७ ॥ कहीं भूत वेताल पिशाच राक्षसोंके गाने नाचने का शब्द सुननेसे वह स्थान भयंकर प्रलयकालकी समान विदित होताथा ॥ ११८॥ कहीं कहीं राखोंके ढेर काले काले भैंसाओंके गोबरके ढेर तथा गायोंके गोबरके ढेर दिखाई देतेथे और उन राखोंका अस्थियोंपर उड़ उड़ कर गिरना पहाड़की

सुन्दरता दिखाता था ॥ ११९ ॥ किसी स्थानमें काकबलिको उपहार दीहुई माल्य और दीपमाला पड़ी हुई थी, कहीं उल्कामुख शृगाल अमंगलजनक शब्दसे चारों दिशा प्रतिध्वनित कररहे थे, जिससे वह स्थान नरक दीख रहाथा ॥१२०॥ किसी स्थानमें गह्वरस्थ शृगालोंका भयंकर शब्द हो रहाथा। अनेक मनुष्योंकी अनेक प्रकार क्रंदनध्वनिसे और भाँति भाँतिकी भयंकर प्रतिध्वनिसे अत्यन्त भयानक उस नरककी समान श्मशानमें बोध होताहै कि, स्वयं भयको भी अत्यन्त भीत होना पड़ताथा॥१२१॥राजा हरिश्चन्द्र उस दारुण श्मशानमें पहुँचकर चिन्ता करने लगे कि,"हा विधाता! वह भृत्यगण, वह मंत्रीगण, वह ब्राह्मणगण और वह राज्य कहां गया? ॥१२२॥ हा शैब्ये! हा वत्स! तुम इस भाग्यहीनको छोड़ कर कहां चले गये? हाय! एकमात्र विश्वामित्रजीके रोषसे मेरा सर्वस्व चलागया" ॥१२३॥नृपवर हरिश्चन्द्र उस श्मशानमें इसप्रकार अनेक भाँतिसे चिन्ता करते २ चाण्डालके वचनकीभी वारंवार चिन्ता करतेथे,एक तो मलिन वेष, रूक्ष देह, इसपर

नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपसंकुलम् ॥ अनेकशब्दबहुलंश्मशानंनरकायते ॥ १२० ॥ सवह्निगर्भैराशिवैःशिवारुतैर्निनादितंभीषणरावगह्वरम् ॥ भयं भयस्याप्युपसंजनैर्भृशंश्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥ २१॥ सराजातत्रसंप्राप्तोदुःखितःशोचनोद्यतः ॥ हाभृत्यामंत्रिणोविप्राःक्वतद्राज्यंविधेगतम् ॥२२॥ हाशैब्येपुत्रहाबालमांत्यक्त्वामन्दभाग्यकम् ॥ विश्वामित्रस्यदोषेणगताःकुत्रापितेमम ॥ २३ ॥ इत्येवंचिन्तयंस्तत्रचण्डालोक्तंपुनपुनः ॥ मलिनोरूक्षसर्वांगःकेशवान्गन्धवान्ध्वजी ॥ २४ ॥ लगुडीकालकल्पश्चधावंश्चापिततस्ततः ॥ अस्मिञ्शवइदंमूल्यंप्राप्तंप्राप्स्यामिचाप्युत ॥ २५ ॥ इदंममइदंराज्ञेमुख्यचंडालकेत्विदम् ॥ इतिधावन्दिशोराजाजीवन्योन्यन्तरंगतः ॥ २६ ॥ जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः ॥ चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥२७॥ नानामेदोवसामज्जलिप्तपाण्यंगुलिःश्वसन् ॥ नानाशवौदनकृताहारतृप्तिपरायणः ॥ २८ ॥ तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डनः ॥ नरात्रौनदिवाशेतेहाहेतिप्रवदन्मुहुः ॥ २९ ॥

भी फिर सर्वाङ्ग में केश,एवं दुर्गन्ध और ध्वजा॥ १२४ ॥तथा लाठी लेकर इधर उधर घूमना, अत एव मानों वह उस समय स्वयं यमस्वरूप होरहेथे और मनमें विचारतेथे कि, इस मृतक का इतना मूल्य हुआ, इतना मिला और इतना शेष है ॥ १२५ ॥ सुतरां 'यह मेरा, यह राजाका और वह मुख्य चाण्डालका, जब वह इसप्रकार चिन्ता करते करते इधर उधर भ्रमण करते, तब बोध होताथा कि, उनको जीवितदशामें ही प्रेतयोनि उपस्थित हुई है ॥ १२६ ॥ जीर्ण वस्त्रमें ग्रंथि देकर ही उन्होंने कन्था पहर रक्खीथी, मुख, बाहु, उदर और दोनों चरणों में चिता की भस्म लेपन करीथी ॥१२७॥ हाथकी सब अंगुलियोंमें नानाप्रकार मेद, वसा और मज्जा लगी रहतीथी, अनेक मृतकोंके पिण्डसे बचेहुए भातका भोजन कर के तृप्त होतेथे ॥ १२८ ॥ मृतकके शरीर की मालासे ही मस्तक शोभित करके

वारंवार हा हा शब्द उच्चारण करते और क्या दिन, क्या रात्रि, किसी समय भी वह नहीं सोतेथे ॥ १२९ ॥ उन्होंने इसप्रकार उस श्मशानमें वास करके सौ वर्ष के समान बारह महीने बिताये फिर किसी दिन नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र बन्धुवियोगसे श्रान्त हुए ॥ १३० ॥ रूक्ष देह, चेष्टारहित हो शयन करके निद्राभिभूत हुएथे, उसी समय उन्होंने एक महाअद्भुत बात स्वप्नमें देखी ॥ १३१ ॥ श्मशानमें वास करनेका अभ्यास होनेके कारण अथवा दैवकी बलवत्ताके कारण उन्होंने देखा कि, " अन्य देह धारणपूर्वक गुरुको दक्षिणा देकर ॥ १३२ ॥ बारह वर्ष दुःख भोगने के पीछे तब मेरा छुटकारा होगा फिर उन्होंने देखा कि, मैं स्वयं मानों पुक्कसी (डोमनी) के गर्भ में वास करताहूं ॥ १३३ ॥ उस डोमनीके गर्भ में वास करनेके समय वह चिन्ता करने लगे कि, इस डोमनीके गर्भसे नि

एवंद्वादशमासास्तुनीताःशतसमोपमाः ॥ सकदाचिन्नृपश्रेष्ठःश्रान्तोबन्धुवियोगवान् ॥ १३० ॥ निद्राभिभूतोरूक्षाङ्गोनिश्चेष्टःसुप्तएवच ॥ तत्रापिशयनीये सदृष्टवानद्भुतंमहत् ॥ ३१ ॥ श्मशानाभ्याशयोगेनदैवस्यबलवत्तया ॥ अन्यदेहेनदत्वातुगुरवेगुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ तदाद्वादशवर्षाणिदुःखदानात्तु निष्कृतिः ॥ आत्मानंसददर्शाथपुल्कसीगर्भसंभवम् ॥ ३३ ॥ तत्रस्थश्चाप्यसौराजासोऽचिन्तयदिदंतदा ॥ इतोनिष्क्रान्तमात्रोहिदानधर्मकरोम्यहम् ॥ ॥ ३४ ॥ अनन्तरंसजातस्तुतदापुल्कसबालकः ॥ श्मशानमृतसंस्कारकरणेषुसदोद्यतः ॥ ३५ ॥ प्राप्तेतुसप्तमेवर्षेश्मशानेऽथमृतोद्विजः ॥ आनीतोबन्धुभिर्दृष्टस्तेनतत्राधनोगुणी ॥ ३६ ॥ मूल्यार्थिनातुतेनापिपरिभूतास्तुब्राह्मणाः ॥ ऊचुस्तेब्राह्मणास्तत्रविश्वामित्रस्यचेष्टितम् ॥ ३७ ॥ पापिष्ठमशुभंकर्मकुरुत्वंपापकारक ॥ हरिश्चन्द्रःपुराराजाविश्वामित्रेणपुल्कसः ॥ ३८ ॥ कृतःपुण्यविनाशेनब्राह्मणस्वापनाशनात् ॥ यदानक्षमतेतेषांतैःसशप्तोरुषातदा ॥ ३९ ॥

कलतेही मैं दानधर्मका आचरण करूंगा" ॥ १३४ ॥ इतनेही में क्या देखा कि, मैं उस गर्भसे उत्पन्न होकर उसी जातिका कर्म अर्थात् श्मशानमें मृतकसंस्कार करनेको उद्यत रहता हूं ॥ १३५ ॥ जब वह चाण्डालके बालकवेषमें सात वर्षकी अवस्थाके हुए, तब किसी गुणवान् अनाथ ब्राह्मणके मृत देहको उसके बंधुवर्ग श्मशानमें लाये ॥ १३६ ॥ तब वह निर्धन ब्राह्मण शब्द दाह करनेका मूल्य देनेमें असमर्थ होकर उनसे अत्यन्त तिरस्कृत हुए कहनेलगे कि, हाय ! विश्वामित्रका क्या अशुभ पापमय कार्य है । रे पापकारक ! तू इस प्रकारके अशुभ कार्यही करता रहता है, तू पूर्व जन्ममें राजा हरिश्चन्द्र था, विश्वामित्रने तुझे चाण्डाल किया है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ ब्रह्मस्व नाशसे पुण्य विनाश होनेके कारणही विश्वामित्रके द्वारा चाण्डालरूपमें जन्म ग्रहण किया है । जब

वह ब्राह्मण मूल्य देकर शवके दाह करनेमें समर्थ नहीं हुए, तब अत्यन्त क्रोधसे राजाको शाप दिया ॥ १३९ ॥ कि, रे नराधम ! तू इसी समय घोर नरकमें जा। ब्राह्मणोंके यह वचन कहतेही उस स्वप्नदर्शी राजाने ॥१४०॥ देखा कि, अत्यन्त भयंकर यमदूत हाथमें फांसी लिये आ रहे हैं, और फिर बलपूर्वक मेरी आत्माको बांधकर ले चले हैं ॥ १४१ ॥ तब वह अत्यन्त खेदसे 'हा माता ! हा पिता ! आज मेरी यह दशा हुई, इस भाँति अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे, उसी समय यमदूतों ने उनको नरककी तैलद्रोणीमें डाल दिया ॥ १४२ ॥ फिर तीक्ष्णधारवाले आरोंसे चीरे जाकर अन्धतम नरकमें गिराया और दुःखीहुएको राद और रुधिरका भोजन कराया ॥ १४३ ॥ इसप्रकार सात वर्षतक मृत उस आत्माको चाण्डालत्वमें देखने लगे कि, दिन दिन नरकमें कहीं दग्ध होता हूं, कहीं पच्य अर्थात् कोल्हूमें पेला जाता हूं ॥ १४४ ॥ कभी खिन्न और कभी क्षुब्ध होता हूं, कभी माराजाता, कभी पाड़ाजाता, कभी खारमें डालाजाता, कभी बालाजाता

गच्छत्वंनरकंघोरमधुनैवनराधम ॥ इत्युक्तमात्रेवचनेस्वप्नस्थःसनृपस्तदा॥१४०॥अपश्यद्यमदूतान्वैपाशहस्तान्भयावहान् ॥ तैःसंगृहीतमात्मानंनीयमानंतदा बलात् ॥४१॥ पश्यतिस्मभृशंखिन्नोहामातःपितरद्यमे ॥ एवंवादीसनरकेतैलद्रोण्यांनिपातितः ॥४२॥ क्रकचैःपाटचमानस्तुक्षुरधाराभिरप्यधः ॥ अन्धेत मसिदुःखार्त्तःपूयशोणितभोजनः ॥ ४३ ॥ सप्तवर्षमृतात्मानंपुल्कसत्वेददर्शह ॥ दिनंदिनंतुनरकेदह्यतेपच्यतेऽन्यतः ॥४४॥ खिद्यतेक्षोभ्यतेऽन्यत्रमार्यतेपा टचतेऽन्यतः ॥ क्षार्यतेदीप्यतेऽन्यत्रशीतवाताहतोऽन्यतः ॥४५॥ एकंदिनंवर्षशतप्रमाणंनरकेऽभवत् ॥ तथावर्षशतंतत्रश्रावितंनरकेभटैः ॥४६॥ ततोनिपा तितोभूमौविष्ठाशीश्वाव्यजायत ॥ वान्ताशीशीतदग्धश्चमासमात्रेमृतोऽपिसः ॥४७॥ अथापश्यत्खरंदेहंहस्तिनंवानरंपशुम् ॥ छागंबिडालंकङ्कंचगामविंपक्षि णंकृमिम् ॥४८॥ मत्स्यंकूर्मंवराहंचश्वाविधंकुक्कुटंशुकम् ॥ शारिकांस्थावरांश्चैवसर्पमन्यांश्चदेहिनः ॥४९॥ दिवसेदिवसेजन्मप्राणिनः प्राणिनस्तदा ॥ अप श्यद्दुःखसन्तप्तोदिनंवर्षशतंतथा ॥ १५० ॥

और कभी शीत तथा वायुसे आहत होताहूं ॥ १४५ ॥ वहां एक एक दिन उनके पक्षमें मानों सौ वर्षकी समान बीतने लगा । इसप्रकार दुःख भोगते भोगते नरक की रक्षा करनेवालोंके मुखसे सुना कि, उनके सौ वर्ष उत्तीर्ण होगये हैं ॥ १४६॥ तब यमदूतोंने उनको पृथ्वीमें गिरादिया और उन्होंने विष्ठाभोजी कुत्तेके रूप में जन्म लिया, फिर विष्ठा और वमन भोजन करते हुए अत्यन्त शीतसे व्याकुल होकर एक महीनेमें प्राणत्याग किया ॥ १४७ ॥ फिर देखा कि, मैंने गधेकी योनिमें जन्म लिया है, इसके पीछे क्रमशः हाथी, बन्दर, छाग, बिलाव, कांक, गौ मेष, पक्षी, कृमि॥ १४८॥ मछली, कछुए, सुअर, मृग, मुरगे, तोते, मैना, वृक्षादि और अजगर सर्प इत्यादि नानाप्रकारके प्राणियों में ॥ १४९ ॥ दिन दिन जन्म लेताहूं, इसप्रकार क्लेश भोगते वह एक दिनको सौ वर्षकी समान अनुभव करने

लगे ॥ १५० ॥ इस भांति नानाप्रकारकी कुयोनियोंमें जन्म ग्रहण करके दुःख भोगते भोगते पूरे सौवर्ष बीतगये । फिर देखा कि, मानों किसी समय वह पुनर्वार अपने कुलमें जन्म लेकर राजा हुए हैं ॥ १५१ ॥ वह वहां वास करते हुए किसी समय जुआ खेलनेमें राज्य, स्त्री और पुत्रको हार कर अकेले वनमें गये हैं ॥ १५२ ॥ वहां देखा कि, एक भयंकर सिंह शरभके सहित मुख फैलाये उनको भक्षण करनेके लिये आरहा है ॥ १५३ ॥ फिर उसके द्वारा भक्षित होकर "हा शैब्ये ! इस दुःखित मनुष्यको छोडकर तुम कहां जातीहो ?" इत्यादि प्रकारसे शोक करते करते ज्योंही उद्यत हुए ॥ १५४ ॥ उसी समय देखा, मानों रानी शैब्या पुत्रके सहित हा महाराज हरिश्चन्द्र ! हमारी रक्षा करो । हे प्रभो ! आपका जुआ खेलनेसे क्या प्रयोजन है ॥ १५५ ॥ देखो, तुम्हारी भार्या शैब्या अपने पुत्रके सहित कैसी शोचनीय दशाको प्राप्त हुई है । इत्यादि प्रकारसे विलाप करती है, तब वह मानों वारंवार इधर उधरको दौड़े, किन्तु फिर उसको नहीं देखा

एवंवर्षशतंपूर्णंगतंतत्रकुयोनिषु ॥ अपश्यच्चकदाचित्सराजातत्स्वकुलोद्भवम् ॥ ५१ ॥ तत्रस्थितस्यतस्यापिराज्यंद्यूतेनहारितम् ॥ भार्य्याहृताचपुत्रश्चसचैकाकीवनंगतः ॥५२॥ तत्रापश्यत्ससिंहंवैव्यादितास्यंभयावहम् ॥ बिभक्षयिषुमायांतंशरभेणसमन्वितम् ॥५३॥ पुनश्चभक्षितःसोऽपिभार्य्याशोचितुमुद्यतः ॥ हाशैब्येक्कगतास्यद्यमामिहापास्यदुःखितम् ॥ ५४ ॥ अपश्यत्पुनरेवापिभार्यांस्वांहतपुत्रकाम् ॥ त्रायस्वत्वंहरिश्चंद्रकिंद्यूतेनतवप्रभो ॥ ५५ ॥ पुत्रस्ते शोच्यतांप्राप्तोभार्य्ययाशैब्ययासह ॥ सनापश्यत्पुनरपिधावमानःपुनःपुनः ॥ ५६ ॥ अथापश्यत्पुनरपिस्वर्गस्थःसनराधिपः ॥ नीयतेमुक्तकेशीसादीनाविवसनाबलात् ॥ ५७ ॥ हाहावाक्यंप्रमुंचन्तीत्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ॥ अथापश्यत्पुनस्तत्रधर्मराजस्यशासनात् ॥ ५८ ॥ आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्थाआगच्छेहनराधिप ॥ विश्वामित्रेणविज्ञप्तोयमोराजंस्तवार्थतः ॥५९॥ इत्युक्त्वासर्पपाशैस्तुनीयतेबलवद्भिभुः ॥ श्राद्धदेवेनकथितंविश्वामित्रस्यचेष्टितम् ॥ १६० ॥ तत्रापितस्यविक्रुतिर्नाधर्मोत्थाव्यवर्द्धत ॥ एताः सर्वादशास्तस्ययाःस्वप्नेसम्प्रदर्शिताः ॥ ६१ ॥

॥ १५६ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने फिर देखा कि, वह स्वर्गमें वास करते हैं वहां वास करते करते उन्होंने देखा कि, मानों दीन,वस्त्रहीन और खुले केश रानी शैब्या किसी पुरुषके द्वारा बलपूर्वक हरी जाकर ॥ १५७ ॥ "हा महाराज ! रक्षाकरो, हा महाराज ! रक्षाकरो" कहकर निरन्तर चिल्लाती है । उन्होंने फिर देखा कि, मानों यमदूत यमराजके शासनमें ॥ १५८ ॥ आकाशमार्गमें स्थित हुए 'हे राजन् ! यमराजको आपके निमित्त विश्वामित्रजीने सूचना दी है, अत एव आप इस स्थानमें आइये, यह कहकर महाशब्द करते हैं ॥ १५९ ॥ उन्होंने फिर देखा कि, यह बात कहकर मानों यमके अनुचर मुझे नागपाशमें दृढरीतिसे बांधकर लेचले हैं, और यमराज यह विश्वामित्रका चरित्र कीर्त्तन करते हैं ॥ १६० ॥ यद्यपि महाराज हरिश्चन्द्र इस भाँति नाना प्रकारकी यंत्रणा भोगते थे, किन्तु तो भी उनके मनमें कोई अधर्म

जनित विकार उपस्थित नहीं हुआ। इस भांति अनेक प्रकारकी दशा जो जो उनको स्वप्नमें दिखाई दी थीं ॥ १६१ ॥ जो इस बारह वर्षके समयतक निरन्तर वहीं उन्होंने भोग कीं थीं। बारह वर्ष बीतनेपर जब वह यमदूतोंके द्वारा बलपूर्वक लाये गये ॥१६२॥ तब उन्होंने यमराजका दर्शन किया, यमराजने उनसे कहा—हे महाराज ! यह महात्मा विश्वामित्रजीके दुर्निवार्य कोपका फल है ॥ १६३ ॥ अधिक क्या ? वह कौशिक मुनि आपके पुत्रकी भी मृत्यु संघटित करावेंगे। अत एव आप मनुष्य लोकमें जाकर शेष दुःख भोग कीजिये। हे राजन्! वहां जानेसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ १६४ ॥ वहां बारह वर्ष बीतनेपर दुःखका अन्त होगा यमराजके इसप्रकार कहनेपर यमदूतोंने उनको आकाश से गिरा दिया ॥ १६५ ॥ वह यमलोकसे गिरतेही भय और भ्रमवशतः हठात् जाग गये और मनमें चिन्ता करने लगे कि, हाय! घावमें नमक लगने की समान यह और क्या हुआ ? ॥ १६६ ॥ स्वप्नमें जिसप्रकार महादुःख देखेहैं; उनकी

सर्वास्तास्तेनसम्भुक्तायावद्वर्षाणिद्वादश ॥ अतीतेद्वादशेवर्षेनीयमानोभटैर्बलात् ॥ ६२ ॥ यमंसोऽपश्यदाकारादुवाचचनराधिपम् ॥ विश्वामित्रस्यकोपोऽयंदुर्निवार्य्योमहात्मनः ॥६३॥ पुत्रस्यतेमृत्युमपिप्रदास्यतिसकौशिकः ॥ गच्छत्वंमानुषंलोकंदुःखशेषंचभुंक्ष्ववै ॥ गतस्यतत्रराजेन्द्रश्रेयस्तवभविष्यति ॥६४॥ व्यतीतेद्वादशेवर्षेदुःखस्यान्तेनराधिपः ॥ अन्तरिक्षाच्चपतितोयमदूतैःप्रणोदितः ॥ ६५ ॥ पतितोयमलोकाच्चविबुद्धोभयसंभ्रमात् ॥ अहोकष्टमितिध्यात्वाक्षतेक्षारावसेचनम् ॥ ६६ ॥ स्वप्नेदुःखंमहद्दृष्टंयस्यान्तोनोपलभ्यते ॥ स्वप्नेदृष्टंमयायत्तुकिन्तुमेद्वादशीःसमाः ॥ ६७ ॥ गतेत्यपृच्छत्तत्रस्थान्पुल्कसांस्तुससंभ्रमात् ॥ नेत्यूचुःकेचित्तत्रस्थाएवमेवापरेऽब्रुवन् ॥ ६८ ॥ श्रुत्वादुःखीतदाराजादेवाञ्शरणमीयिवान् ॥ स्वस्तिकुर्वन्तुमेदेवाःशैब्यायाबालकस्यच ॥ ६९ ॥ नमोधर्मायमहतेनमःकृष्णायवेधसे ॥ परावरायशुद्धायपुराणायाव्ययायच ॥१७०॥ नमोबृहस्पतेतुभ्यंनमस्तेवासवायच ॥ एवमुक्तासराजातुयुक्तःपुल्कसकर्मणि ॥७१ ॥ शवानांमूल्यकरणेपुनर्नष्टस्मृतिर्यथा ॥ मलिनोजटिलःकृष्णोलगुडीविह्वलोनृपः ॥ ७२ ॥

तो सीमा नहीं है, मैं ने जो स्वप्नमें देखा, तो क्या बारह वर्ष बीतगये हैं ? ॥ १६७॥ यह कह भ्रमवशतः निकटके चाण्डालोंसे पूछा उनमें किसीने कहा "नहीं तुम्हारे बारह वर्ष नहीं बीतेहैं" किसीने कहा "बीतसकते हैं" ॥ १६८ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्र उनके यह वचन सुन अत्यन्त दुःखित चित्तसे देवताओंकी शरण हुए और कहने लगे कि, हे देवताओ ! आप मेरा शैब्या और बालक का मंगल कीजिये ॥ ॥ १६९ ॥ सर्वप्रधान धर्मको नमस्कार है। विधातास्वरूप कृष्ण को नमस्कार है जो सबसे श्रेष्ठ पवित्र और अव्यय हैं, उन पुराण पुरुषको नमस्कार है ॥१७०॥ हे बृहस्पते ! तुमको नमस्कार है। हे वासव! तुमको नमस्कार। इसप्रकार कहकर राजा हरिश्चन्द्र फिर चाण्डालके कार्यरूप ॥ १७१ ॥ शवमूल्यनिर्द्धारणमें निरत हुए और फिर उसीप्रकार नष्ट स्मृति, मलिनवेषी, जटाधारी, कृष्णवर्ण, लकुट

धारी और विह्वल होगये ॥ १७२ ॥ तब भार्या वा पुत्र कोई भी उनके स्मृतिगोचर न हुआ, क्योंकि वह उस समय राज्य नष्ट होनेके कारण उत्साहहीन हो श्मशानमें वास करतेथे ॥ १७३ ॥ इसी अवसरमें उन नरेन्द्रकी भार्या अपने पुत्रको जो कि सर्पके डसनेसे मरगयाथा जलानेके लिये उसी श्मशानमें रोती हुई लेआई ॥ १७४ ॥ वह स्त्री जो कि. अत्यन्त कृश वदन, महा दुःखी विमना और जिसके शिरमें धूरि भररहीथी, वारंवार हा वत्स ! हा पुत्र ! हा शिशो ! कहकर रुदन करतीथी ॥ १७५ ॥ राजपत्नी बोली–हे राजन् ! एक बार देखो, आप पृथ्वीके चन्द्रमाकी समान जिस बालकको पहिले खिलाते हुए देखते थे, हाय! आज आपके उसी बालकने सर्पके डसनेसे प्राणत्याग किया है ॥ १७६ ॥ राजा हरिश्चन्द्र रानीकी यह विलापध्वनि सुनकर " जान पड़ता है, इसी स्थानमें मृतक

नैवपुत्रोनभार्य्यातुतस्यैवस्मृतिगोचरे ॥ नष्टोत्साहोराज्यनाशाच्छ्मशानेनिवसंस्तदा ॥ ७३ ॥ अथाजगामस्वसुतंमृतमादायलापिनी ॥ भार्यातस्यनरेन्द्रस्यसर्पदष्टंहिबालकम् ॥ ७४ ॥ हावत्सहापुत्रशिशोइत्थंवैवदतीमुहुः ॥ कृशाविवर्णाविमनाःपांसुध्वस्तशिरोरुहा ॥ ७५ ॥ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ हाराजन्नद्यबालंत्वंपश्यसीमंमहीतले ॥ रममाणंपुरादृष्टंदष्टंपुष्टाहिनामृतम् ॥ ७६ ॥ तस्याविलापशब्दंतमाकर्ण्यसनराधिपः ॥ जगामत्वरितोऽत्रेतिभवितामृतकम्बलः ॥ ७७ ॥ सतांरोरूयतींभार्यांनाभ्यजानात्तुपार्थिवः ॥ चिरप्रवाससन्तप्तांपुनर्जातामिवाबलाम् ॥ ७८ ॥ सापितंचारुकेशान्तंपुरादृष्ट्वाजटालकम् ॥ नाभ्यजानान्नृपसुताशुष्कवृक्षोपमंनृपम् ॥ ७९ ॥ सोऽपिकृष्णपटेबालंदृष्ट्वाशीविषपीडितम् ॥ नरेन्द्रलक्षणोपेतंचिन्तामापनरेश्वरः ॥ १८० ॥ तस्यास्यंचंद्रबिंबाभंसुभ्रुरम्यंसमुन्नसम् ॥ नीलाःकेशाःकुंचिताश्चसमादीर्घास्तरंगिताः ॥ ८१ ॥ राजीवनेत्रयुगुलोबिंबोष्ठपुटसंवृतः ॥ चतुर्दंष्ट्रश्चतुःकिष्कुर्दीर्घास्योदीर्घबाहुकः ॥ ८२ ॥ चतुर्लेखःकरोमत्स्ययवयुक्चैकपर्वतः ॥ शिरालुपादोगंभीरःसूक्ष्मत्वक्त्रिवलीधरः ॥ ८३ ॥

वस्त्र मिलेगा " यह विचार शीघ्रता सहित वहां गये ॥ १७७ ॥ बहुत समयके प्रवाससे सन्तप्त हुई मानों फिरही प्रगटहुईके समान उस रोती हुई अबला भार्याको नहीं पहिचान सके ॥ १७८ ॥ नृपसुता शैब्याने भी राजाको पहिले मनोहर केशयुक्त देखा था, इस कारण जटिल और सूखे वृक्षकी समान उन राजाके पहिचाननेमें समर्थ नहीं हुई ॥ १७९ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्र सर्पके विषसे पीडित बालक को काले वस्त्रमें लिपटा हुआ राजलक्षणयुक्त देखकर चिन्ता करने लगे ॥ १८० ॥ जिसका मुख चंद्रमाकी समान, सुन्दर भौं, ऊंची नासिका, नीले घूंघरवाले बाल, समान और दीर्घ तरंगोंवाले ॥ १८१ ॥ कमलकेसे दोनों ओष्ठ, चार डाढें, शोभायमान दीर्घमुख, और बड़ी भुजा ॥ १८२ ॥ हाथमें मत्स्य, यवयुक्त और पर्वत की रेखा है, गलेके पीछेकी नाडी और चरण गंभीर पतली त्वचा और उदर कंठमें

त्रिवली रेखा देख पड़ती है ॥ १८३ ॥ हा ! इस बालकने किस राजकुलमें जन्म ग्रहण किया है, दुरात्मा कालने इसकी कैसी दशा करदी है ॥ १८४ ॥ अनन्तर माताकी गोदीमें सोयेहुए उस बालकको भली भांति देखनेसे फिर उस पद्मपलाशलोचन रोहिताश्वको स्मरण किया ॥ १८५ ॥ तब वह सोचने लगे कि, "यदि दुरात्मा कालने अपने वशीभूत न किया हो तो मेरा वह रोहिताश्वभी इतनेही दिनोंका हुआ होगा और यही वयोवस्था प्राप्त हुई होगी ॥ १८६ ॥ इधर राजपत्नी बोली—हा वत्स! किस पापकी अनिष्ट चिन्ताके कारण यह असीम घोर महादुःख उपस्थित हुआ ॥ १८७ ॥ हा नाथ ! हा राजन् ! इस दुःखिनीको आश्रय न देकर निष्ठुर चित्तसे कहां किसप्रकार वास करतेहो ॥ १८८ ॥ एक तो राज्यनाश इसपरभी बंधुवियोग और फिर भार्या तथा पुत्रका बिकना, हा विधाता ! तैने राजर्षि हरिश्चन्द्रका

अहोकष्टंनरेन्द्रस्यकस्याप्येषकुलेशिशुः ॥ जातोनीतःकृतान्तेनकामप्याशांदुरात्मना ॥ ८४ ॥ एवंदृष्ट्वाहितंबालंमातुरुत्सङ्गशायिनम् ॥ स्मृतिमभ्यागतोबालोरोहिताश्वोऽब्जलोचनः ॥ ८५ ॥ सोऽप्येतामेवमेवत्सोवयोऽवस्थामुपागतः ॥ नीतोयदिनघोरेणकृतान्तेनात्मनोवशम् ॥ ८६ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ ॥ हावत्सकस्यपापस्यअपध्यानादिदंमहत् ॥ दुःखमापतितंघोरंयस्यान्तोनोपलभ्यते ॥ ८७ ॥ हानाथराजन्भवतामामनाश्वास्यदुःखिताम् ॥ क्वापिसन्तिष्ठतास्थानेविश्रब्धंस्थीयतेकथम् ॥ ८८ ॥ राज्यनाशःसुहृत्त्यागोभार्य्यातनयविक्रयः ॥ हरिश्चन्द्रस्यराजर्षेःकिंविधेनकृतंत्वया ॥ ८९ ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वाराजास्वस्थानतश्च्युतः ॥ प्रत्यभिज्ञायदयितांपुत्रंचनिधनंगतम् ॥ १९० ॥ कष्टंशैव्यासुतोहीना ममयोषिद्वराभवेत् ॥ बालश्चसमृतःकःस्यादितिराजाविचारयन् ॥ ९१ ॥ कष्टंशैव्येयमेषाहिसबालोऽयमितीरयन् ॥ रुरोददुःखसन्ततोमूर्च्छामभिजगामच ॥ ९२ ॥ साचतंप्रत्यभिज्ञायतामवस्थामुपागतम् ॥ मूर्च्छितानिपपातार्त्तानिश्चेष्टाधरणीतले ॥ ९३ ॥ चेतःसंप्राप्यराजेन्द्रोराजपत्नीचतौसमम् ॥ विलेपतुःसुसन्तप्तौशोकभारातिपीडितौ ॥ ९४ ॥

क्या सर्वनाश नहीं किया ॥ १८९ ॥ राजा उसका यह वचन सुन, स्त्री और मृतक पुत्रको पहिचान स्वस्थानसे निपतित हुए ॥ १९० ॥ यह किसकी स्त्री है क्या यह मेरी भार्या है ? और यह मृतक बालक कौन है ? इसप्रकार राजा विचारने लगे और व्याकुल हुए ॥ १९१ ॥ "हाय ! क्या कष्ट है ? यही वह शैव्या और यही तो वह बालक है" इसप्रकार कहते कहते अत्यन्त दुःखसे सन्तप्तहो रुदन करने लगे और मूर्च्छितहोकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ १९२ ॥ रानी शैव्या भी इसप्रकार अवस्थान्तर प्राप्त राजाको पहिचानकर मूर्च्छित हुई एवं आर्त्त और निश्चेष्ट होकर पृथ्वीमें गिरगई ॥ १९३ ॥ फिर कुछ समयके पीछे राजा

हरिश्चन्द्र और रानी शैब्या दोनों चैतन्यहोकर शोकभारसे पीडितहो अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ १९४ ॥ राजा बोले—हे वत्स! तुम्हारे वह सुन्दरनेत्र, दोनों भौं, नासिका और अलकोंसे शोभायमान सुकुमार वदनको इसप्रकार मलिन देखकर मेरा हृदय क्यों विदीर्ण नहीं होता? ॥ १९५ ॥ हा! मधुर स्वरसे "तात! तात!" कहता हुआ मेरे निकट अब कौन आवेगा? और अब मैं किसको स्नेहसहित गोदीमें लेकर "वत्स! वत्स!" कहता हुआ पुकारूंगा? ॥ १९६ ॥ अब किसकी जानुमें लगी हुई धूरिसे मेरा डुपट्टा और अंग मैला होगा? ॥ १९७ ॥ हाय! तुम मेरे अंग प्रत्यंगसे उत्पन्न तथा मन और हृदयके आनन्द जनक होकर भी इस कुपिताने तुमको सामान्य वस्तुकी समान वेचा था ॥ १९८ ॥ हाय! देवरूपी दुष्ट सर्पने मेरा महत् राज्य, साधन और धन समस्तही हरण करके

राजोवाच ॥ ॥ हावत्ससुकुमारंतेस्वक्षिभ्रूनासिकालकम् ॥ पश्यतोमेमुखंदीनंहृदयंकिंनदीर्यते ॥९५॥ तातताततेतिमधुरंब्रुवाणंस्वयमागतम् ॥ उपगुह्यवदिष्येकंवत्सवत्सेतिसौहृदात् ॥९६॥ कस्यजानुप्रणीतेनपिङ्गेनाक्षितिरेणुना ॥ ममोत्तरीयमुत्सङ्गंतथाङ्गंमलमेष्यति ॥९७॥ अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतोमनोहृदयनन्दनः ॥ मयाकुपित्राहावत्सविक्रीतोयेनवस्तुवत् ॥९८॥ हृत्वाराज्यमशेषंमेसबांधवधनंमहत् ॥ दैवाहिनानृशंसेनदष्टोमेतनयस्ततः ॥ ९९ ॥ अहंदैवाहिदष्टस्यपुत्रस्याननपङ्कजम् ॥ निरीक्षन्नपिघोरेणविषेणान्धीकृतोऽधुना ॥ २०० ॥ एवमुक्तातमादायबालकंबाष्पगद्गदः ॥ परिष्वज्यचनिश्चेष्टोमूर्च्छयानिपपातह ॥ १ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ ॥ अयंसपुरुषव्याघ्रःस्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥ विद्वज्जनमनश्चन्द्रोहरिश्चन्द्रोनसंशयः ॥ २ ॥ तथास्यनासिकातुङ्गाअग्रतोऽधोमुखंगता ॥ दन्ताश्चमुकुलप्रख्याःख्यातकीर्त्तेर्महात्मनः ॥ ३ ॥ श्मशानमागतःकस्माद्द्यैषसनरेश्वरः ॥ अपहायपुत्रशोकंसापश्यत्पतितंपतिम् ॥ ४ ॥

अन्तमें तुम सरीखे पुत्रको भी डसा ॥ १९९ ॥ हाय! दैवरूपी सर्पके डसे इस पुत्रका मुखकमल देखते देखते मैं भी अब भयंकर विषसे अंधा हुआ हूं ॥ २०० ॥ राजाने बाष्प गद्गद स्वरसे इसप्रकार कह, उस बालकको ग्रहण कर गोदीमें लेलिया और तत्काल मूर्च्छासे चेष्टाहीन हो पृथ्वीमें गिरगये ॥ २०१ ॥ राजपत्नी बोली—स्वरके द्वारा जानाजाता है कि, यही वह पुरुषसिंह विद्वज्जनोंके मन खिलानेको चन्द्रमा राजा हरिश्चन्द्र हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २०२ ॥ उनकेही समान इनकी भी नासिका ऊंची और अग्रभागमें अधोमुख हुई है उन ख्यातकीर्त्ति महात्माके समान इनके दाँतोंकी पंक्तिभी मुकुल (कली) की सदृश है ॥ २०३ ॥ किन्तु वह राजा हरिश्चन्द्र आज श्मशानमें क्यों उपस्थित हैं, यह कह रानी शैब्या पुत्रशोकको त्याग मूर्छित अवस्थामें पड़ेहुए पतिको देखनेलगी ॥ २०४ ॥

उस दुबले अंगवाली दीनवदन आश्चर्ययुक्त हुई राजमहिषी शैब्याने स्वामी और पुत्रजनित मनकी पीडासे पीडित हो इधर उधर देखते देखते स्वामीका वह निन्दनीय चाण्डाल दण्ड देखा ॥ २०५ ॥ "मैं चाण्डालकी पत्नी हुई" कह कर वह दीर्घनेत्रवाली रानी मोहको प्राप्त हुई फिर धीरे धीरे चैतन्यता लाभ करके गद्गद स्वरसे कहने लगी ॥ ॥ २०६ ॥ रे नृशंस ! मर्यादहीन ! निन्दितदैव ! तुझको धिक्कार है तैंने इन देवताकी समान अमरपतिको चाण्डालपना दिया है ॥ २०७ ॥ राज्यनाश, सुहृद्त्याग, भार्या और पुत्रको बिकवाकर भी शान्त नहीं हुआ, अब चाण्डालपनेको प्राप्त कराया है ॥ २०८ ॥ हा राजन् ! इस प्रकार सन्तापमें पड़ीहुई मुझको पृथ्वीसे उठाकर आज 'पलँगपर बैठो' क्यों नहीं कहते ? ॥ २०९ ॥ हाय ! आज आपका वह छत्र वा शृंगार क्यों नहीं दिखाई देता ? आज आपका वह चामर कहां है ? वह पंखा कहां है? हाय ! दैवकी क्याही विपरीतता है॥ २१० ॥ पहिले जिनके गमनकालमें राजा लोग भृत्यके समान अपने दुपट्टेसे पृथ्वीकी

प्रहृष्टाविस्मितादीनाभर्तृपुत्राधिपीडिता ॥ वीक्षन्तीसाततोऽपश्यद्भर्तृदण्डंजुगुप्सितम् ॥ ५ ॥ श्वपाकार्हमनोमोहंजगामायतलोचना ॥ प्राप्यचेतश्चशनकैः सगद्गदमभाषत ॥ ६ ॥ धिक्त्वांदैवात्यकरुणंनिर्मर्यादंजुगुप्सितम् ॥ येनायममरप्रख्योनीतोराजाश्वपाकताम् ॥ ७ ॥ राज्यनाशंसुहृत्त्यागंभार्यातनयविक्रयम् ॥ प्रापयित्वापिनोमुक्तश्चण्डालोऽयंकृतोनृपः ॥ ८ ॥ हाराजञ्ञातसन्तापामित्थंमांधरणीतलात् ॥ उत्थाप्यनाद्यपर्यङ्कमारोहतिकिमुच्यते ॥ ९ ॥ नाद्यपश्यामितेच्छत्रंशृङ्गारमथवापुनः ॥ चामरंव्यजनंचापिकोऽयंविधिविपर्ययः ॥ २१० ॥ यस्याग्रेव्रजतःपूर्वराजानोभृत्यतांगताः ॥ स्वोत्तरीयैरकुर्वन्तनीरजस्कंमहीतलम् ॥ ११ ॥ सोयंकपालसंलग्नघटीघटनिरन्तरे ॥ मृतनिर्माल्यसूत्रान्तर्गूढकेशेसुदारुणे ॥ १२ ॥ वसानिष्यन्दसंशुष्कमहीपुटकमण्डिते ॥ भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥ १३ ॥ गृध्रगोमायुनादार्त्तनष्टक्षुद्रविहंगमे ॥ चिताधूमायतिरुचानीलीकृतदिगन्तरे ॥ १४ ॥ कुणपास्वादनमुदासंप्रहृष्टनिशाचरे ॥ चरत्यमेध्येराजेन्द्रःश्मशानेदुःखपीडितः ॥ १५ ॥

धूरि हटाते थे, वही यह राजा हरिश्चन्द्र आज असह्य दुःखसे पीडितहो ऐसे भयंकर अपवित्र श्मशानमें अकेले विचरण करते हैं ॥ २११ ॥ जहां मृतकोंके कपालोंसे मिले हुये घट और छोटे घड़ोंसे चारों दिशा परिपूर्ण हुई हैं, मृतकोंके निर्माल्य सूत्रके भीतर बहुतसे केश पड़े रहनेसे जो अत्यन्त दारुण हुआ है॥ ॥ २१२ ॥ मृतकोंके देहसे टपकतीहुई वसा और बहुत सारे सूखे काष्ठसे जिसकी चारों दिशा व्याप्त हैं, भस्म, अंगार, अर्द्धदग्ध अस्थि और मज्जा इन सबके होनेसे जो अत्यन्त भयंकर हुआ है ॥ २१३॥ छोटे छोटे पक्षी, गृध्र और गोमायुके शब्दको सुन जिस स्थानसे भागते हैं । चिताके उठतेहुए धुएँसे जिसकी दिशा विदिशा नीली होगई हैं॥ २१४॥ और निशाचरगण मांसके भक्षण करनेसे आनन्दित होकर जिसमें इधर उधर भ्रमण करते हैं; उसी स्थानमें वह राजेन्द्र हरिश्चन्द्र

दुःखसे पीडित हो अकेले विचरते हैं ॥ २१५ ॥ नृपसुता शैब्या इसप्रकार कह, राजाके कंठसे लिपट कष्ट और सैकड़ों शोकका आधारस्वरूप हो आर्त्त वचनों से विलाप करने लगी ॥ २१६ ॥ राजपत्नीने कहा—हे राजन् ! जो देखती हूं, यह क्या स्वप्न है वा सत्य ? आपको जो ज्ञात हो सो कहिये। हे महाभाग ! मैं तो मोहसे विचारशक्तिहीन हुई हूं ॥२१७॥ हे धर्मज्ञ ! यदि यह सत्य हो, तब धर्मकी तो सहायता नहीं, तथा देवता और ब्राह्मणके पूजनसे भी फल नहीं अथवा पृथ्वीका पालन करनेसे ही क्या फल है ॥ २१८ ॥ अत एव धर्म नहीं, सत्य नहीं, सरलता नहीं और सदयताकी तो बातही नहीं है, क्योंकि केवलमात्र धर्महीं आपका परम बल है, किन्तु तो भी अपने राज्यसे च्युत हुए ॥ २१९ ॥ राजनन्दिनी शैब्याके यह वचन सुनकर राजाने उष्ण श्वास छोड़ अपने चाण्डालपनेके प्राप्त होनेका यथावत् वृत्तान्त गद्गद स्वरसे कहा ॥ २२० ॥ तब रानी शैब्याने भी उनका वृत्तान्त सुनकर दुःखितचित्तसे बहुत देरतक रोदन किया और लम्बी

एवमुक्त्वासमाश्लिष्यकण्ठंराज्ञोनृपात्मजा ॥ कष्टशोकशताधाराविललापार्त्तयागिरा ॥१६॥ राजपत्न्युवाच ॥ राजन्स्वप्नोऽथतथ्यंवायदेतन्मन्यतेभवान् ॥ तत्कथ्यतांमहाभागमनोवैमुह्यतेमम ॥ १७ ॥ यद्येतदेवंधर्मज्ञनास्तिधर्मेसहायता ॥ तथैवविप्रदेवादिपूजनेपालनेभुवः ॥ १८ ॥ नास्तिधर्मःकुतःसत्यमार्ज वंचानृशंसता ॥ यत्रत्वंधर्मपरमःस्वराज्यादवरोपितः ॥१९॥ इतितस्यावचःश्रुत्वानिःश्वस्योष्णंसगद्गदम् ॥ कथयामासतन्वंग्यायथाप्राप्ताश्वपाकता॥२०॥ रुदित्वासापिसुचिरंनिःश्वस्योष्णंचदुःखिता ॥ स्वपुत्रमरणंभीरुर्यथावृत्तंन्यवेदयत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वाराजातदावाक्यंनिपपातमहीतले ॥ मृतस्यपुत्रस्यतदा जिह्वयालेलिहन्मुखम् ॥ २२ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ यमस्यभिक्षांयाचावःकृपणौपुत्रगर्द्धिनौ ॥ तस्माच्छीघ्रंव्रजावोद्यपुत्रोयत्रप्रियोगतः ॥ २३ ॥ प्रिये नरोचयेदीर्घकालंक्लेशमुपासितुम् ॥ नात्मायत्तश्चतन्वङ्गिपश्यमेमन्दभाग्यताम् ॥ २४ ॥ चण्डालेनाननुज्ञातःप्रवेक्ष्येज्वलनंयदि ॥ चाण्डालदासतां यास्येपुनरप्यन्यजन्मनि ॥ २५ ॥ नरकेचपतिष्यामिकीटकःकृमिभोजनः ॥ वैतरण्यांमहापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले ॥ २६ ॥

श्वास लेकर जिसप्रकार रोहिताश्वकी मृत्यु हुई थी, वह सब वृत्तान्त उनसे आनुपूर्विक निवेदन किया ॥ २२१ ॥ राजा हरिश्चन्द्र रानी शैब्याके यह वचन सुनकर पृथ्वीमें गिरगये और मरेहुए पुत्रका मुख जीभसे चाटने लगे॥२२२॥राजा बोले—हम दोनों कृपण पुत्रके लोभी यमसे भिक्षा मांगैं. अब शीघ्र जहां प्रिय पुत्र गया है, वहां चलैं ॥२२३॥ हे प्रिये ! अब बहुत कालतक क्लेश सहनेकी इच्छा नहीं करता, किन्तु हे तन्वङ्गी ! देखो, मैं ऐसा मंदभाग्यहूं कि, मेरी आत्मा भी मेरे अधीन नहीं है ॥ २२४ ॥ यदि विना चाण्डालकी आज्ञाके अग्निमें प्रवेश करूं, तो फिर दूसरे जन्ममें भी चाण्डालका दास होना पड़ेगा ॥ २२५ ॥ अथवा कृमि खानेवाला कीड़ा होकर नरकमें गिरना होगा वा वैतरणीमें, या पीव, वसा, रक्त और नसोंकी चिकनाईसे युक्त नरकमें यंत्रणा भोगनी पड़ेगी ॥ २२६ ॥

अथवा असिपत्र वनमें जाकर दारुण छेदन करनेकी यंत्रणा भोग करूंगा। या महारौरव वा रौरव नरकमें दुःसह तापको प्राप्त हूंगा ॥ २२७ ॥ जो दुःखरूपी समुद्रमें डूबता हो, केवलमात्र प्राणत्यागही उसकी पार भूमि है। देखो मेरा जो एक बालक वंशका बढानेवाला था ॥ २२८ ॥ वह भी बलवान् दैवरूपी जलमें डूब गया। इधर असीम दुर्गति भोग है, पराधीन होनेके कारण प्राण भी कैसे त्यागूं? ॥ २२९ ॥ अथवा आर्त्तपुरुषको पापके प्रति क्या देखना है? पुत्र वियोगमें जिसप्रकार असह्य दुःख है, तिर्यग्योनिमें, असिपत्र वनमें ॥ २३० ॥ वा वैतरणीमें भी वैसा दुःख नहीं है, अत एव मैं पुत्रदेहके संग जलती हुई अग्निमें ॥ २३१ ॥ गिरूंगा। हे तन्वङ्गी! मैंने तुम्हारे निकट जो अन्याय आचरण किया है, वह सब क्षमाकरो हे शुचिस्मिते! तुम मेरी आज्ञासे उसी ब्राह्मणके घर चलीजाओ ॥ २३२ ॥ हे

असिपत्रवनेप्राप्यछेदंप्राप्स्यामिदारुणम् ॥ तापंप्राप्स्यामिवाप्राप्यमहारौरवरौरवौ ॥ २७ ॥ मग्नस्यदुःखजलधौपारःप्राणवियोजनम् ॥ एकोऽपिबालकोयोय मासीद्वंशकरःसुतः ॥ २८ ॥ ममदैवाम्बुवेगेनमग्नःसोऽपिबलीयसा ॥ कथंप्राणान्विमुंचामिपरायत्तोऽस्मिदुर्गतः ॥ २९ ॥ अथवानार्तिनाक्लिष्टोनरःपापमवे क्षते ॥ तिर्यक्त्वेनास्तितद्दुःखंनासिपत्रवनेतथा ॥ २३० ॥ वैतरण्यांकुतस्तादृग्यादृशंपुत्रविप्लवे ॥ सोऽहंसुतशरीरेणदीप्यमानेहुताशने ॥ ३१ ॥ निप तिष्यामितन्वङ्गिक्षन्तव्यंकुकृतंमम ॥ अनुज्ञाताचगच्छत्वंविप्रवेश्मशुचिस्मिते ॥ ३२ ॥ ममवाक्यंचतन्वङ्गिनिबोधादृतमानसा ॥ यदिदत्तंयदिहुतं गुरवोयदितोषिताः ॥ ३३ ॥ परत्रसङ्गमोभूयात्पुत्रेणसहचत्वया ॥ इहलोकेकुतस्त्वेतद्भविष्यतिममेङ्गितम् ॥ ३४ ॥ त्वयासहममश्रेयोगमनंपुत्रमार्गणे ॥ यन्मयाहसताकिंचिद्रहस्येवाशुचिस्मिते ॥ ३५ ॥ अश्लीलमुक्तंतत्सर्वंक्षन्तव्यंममयाचतः ॥ राजपत्नीतिगर्वेणनावज्ञेयःसतेद्विजः ॥ सर्वयत्नेनतेतोष्यःस्वामी दैवतवच्छुभे ॥ ३६ ॥ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ ॥ अहमप्यत्रराजर्षेदीप्यमानेहुताशने ॥ दुःखभारासहाद्यैवसहयास्यामिवैत्वया ॥ ३७ ॥

तन्वङ्गी! मैं जो कहता हूं, सो आदरयुक्त मनसे सुनो यदि मैंने दान किया है, वा होम किया है अथवा यदि गुरुजनको संतुष्ट किया है ॥ २३३ ॥ तो पुत्र और तेरे संग पुनर्जन्ममें मिलूंगा, अब इस लोकमें मेरे इस अभिप्रायके सिद्ध होनेकी संभावना नहीं है ॥ २३४ ॥ अथवा मेरे संग तुझको भी पुत्रके मार्गका अनुसरण करना चाहिये हे शुचिस्मिते! मैंने हास्यके मिस निर्जन में भी ॥ २३५ ॥ कुछ अश्लील कहा हो, प्रार्थना करताहूं, वह सब क्षमा करना तुम राजपत्नी होनेके गर्वसे उस ब्राह्मणका निरादर नहीं करना। हे शुभे! स्वामी वा देवताकी समान उसको अतियत्नसे संतुष्ट रखना ॥ २३६ ॥ राजपत्नीने कहा—हे राजर्षे!

मैं भी अब यह दुःखभार नहीं सहसकती इस कारण अब इस जलतीहुई अग्नि में ही आपके संग चलूंगी ॥ २३७ ॥ वहांपर हम आप और पुत्र तीनों एकही स्थानमें रहकर स्वर्ग वा नरक भोगेंगे रानीके यह वचन सुनकर राजा बोले—हे पतिव्रते! अच्छा यही करना ॥ २३८ ॥ पक्षी बोले—हे जैमिने! फिर राजा हरिश्चन्द्रने चिता बनाय, अपने पुत्रको उसके ऊपर रख भार्याके सहित हाथ जोड़ ज्योंही ॥ २३९ ॥ परमात्मा, ईश, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म, कृष्णवर्ण, पीताम्बरधारी, शुभप्रद, हृत्कोटरगुहावासी, अनादिनिधन, नारायण, हरिकी चिन्ता करी ॥ २४० ॥ चिन्ता करतेही उसी समय इन्द्रादि देवता धर्मको आगे करके शीघ्रतासहित उस स्थानमें आये ॥ २४१ ॥ वह सब आनकर कहने लगे—हे राजन्! सुनो। यह साक्षात् ब्रह्मा यह साक्षात् भगवान् धर्म ॥ २४२ ॥ और साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण सब लोकपाल, नागगण, सिद्धगण, गंधर्वोंके सहित रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार ॥ २४३ ॥ और अन्यान्य

सहस्वर्गंचनरकंसहैवावांहिभुंक्ष्वहे ॥ श्रुत्वाराजातदोवाचएवमस्तुपतिव्रते ॥ ३८ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ ततःकृत्वाचितांराजाआरोप्यतनयंस्वकम् ॥ भार्ययासहितश्चासौबद्धांजलिपुटस्तदा ॥ ३९ ॥ चिन्तयन्परमात्मानमीशंनारायणंहरिम् ॥ हृत्कोटरगुहासीनंवासुदेवंसुरेश्वरम् ॥ अनादिनिधनंब्रह्मकृष्णं पीताम्बरंशुभम् ॥ ४० ॥ तस्यचिन्तयमानस्यसर्वे देवाःसवासवाः ॥ धर्मप्रमुखतःकृत्वासमाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४१ ॥ आगत्यसर्वेप्रोचुस्तेभोभोराजञ्शृणु प्रभो ॥ अयंपितामहःसाक्षाद्धर्मश्चभगवान्स्वयम् ॥ ४२ ॥ साध्याश्चविश्वेमरुतोलोकपालाःसचारणाः ॥ नागाःसिद्धाःसगन्धर्वारुद्राश्चैवतथाश्विनौ ॥ ॥ ४३ ॥ एतेचान्येचबहवोविश्वामित्रस्तथैवच ॥ विश्वत्रयेणयोमित्रंकर्त्तुंवैनाशकत्पुरा ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रस्तुतेमैत्रीमिष्टंचाहर्तुमिच्छति ॥ आरुरोहततःप्रा प्तोधर्मःशक्रोऽथगाधिजः ॥ ४५ ॥ ॥ धर्मउवाच ॥ माराजन्साहसंकार्षीर्धर्मोऽहंत्वामुपागतः ॥ तितिक्षादमसत्याद्यैःस्वगुणैःपरितोषितः ॥ ४६ ॥ इन्द्रउवाच ॥ हरिश्चन्द्रमहाभागप्राप्तःशक्रोस्मितेऽन्तिकम् ॥ त्वयासभार्यापुत्रेणजितालोकाःसनातनाः ॥ ४७ ॥ आरोहत्रिदिवंराजन्भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ सुदुष्प्रापंनरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥ ४८ ॥

सब देवता, सभी अपने अपने वाहनसहित आये हैं और जो तीनों विश्वके संग मित्रता नहीं कर सकते वह विश्वामित्रभी स्वयं उपस्थित हैं ॥ २४४ ॥ सबही आपके संग मित्रता और इष्टता करने आये हैं तदनन्तर धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र यह तीन जने उठकर राजाके निकट आये ॥ २४५ ॥ धर्मने कहा—हे राजन्! ऐसे साहसिक कार्यसे निवृत्त हूजिये, मैं धर्म हूं. तितिक्षा, दम और सत्य इत्यादि अपने गुणोंसे आपने मुझको संतुष्ट किया है, मैं स्वयं आपके निकट आया हूं ॥ २४६ ॥ इन्द्र बोले—हे महाभाग! हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र हूं, और आपके निकट आयाहूं, आपने भार्या और पुत्रकें सहित सनातन सब लोकोंको जीता है ॥ ॥ २४७ ॥ अत एव जो दूसरे मनुष्यको दुर्लभ है, उसी अपने कर्मसे जीतेहुए स्वर्गमें भार्या और पुत्रके सहित आरोहण करो ॥ २४८ ॥

पक्षी बोले—फिर चिता स्थान में जाकर प्रभु इन्द्रने अपमृत्युविनाशक अमृतकी वर्षा करी ॥ २४९ ॥ तब देवताओंने वर्त्तमान सभामें फूल बरसाये और देवदुन्दुभी बजने लगी ॥ २५० ॥ अनन्तर उन महात्मा राजाका सुकुमार अंगवाला पुत्र रोहिताश्वभी स्वस्थ और प्रसन्नेन्द्रिय मन होकर उठ बैठा ॥ २५१ ॥ फिर राजा हरिश्चन्द्र क्षणकाल पुत्रको आलिंगनकर दिव्य वस्त्र और माल्य धारण किये भार्याके सहित शोभा पाने लगे ॥ २५२ ॥ और भली भाँति स्वस्थ होकर अत्यन्त आनन्दित हुए, तब सुरपति इन्द्रने उनसे फिर कहा ॥ २५३ ॥ हे महाभाग ! आप भार्या और पुत्रके सहित परम सद्गति प्राप्त करेंगे, अत एव अपने कर्मफलसे स्वर्ग में निवास करो ॥ २५४ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज ! मैं प्रभु चाण्डालकी अनुमतिसे विना छुटकारा पाये स्वर्ग में नहीं जाऊंगा ॥ २५५ ॥ धर्मने कहा हे राजन् !

पक्षिणऊचुः ॥ ॥ ततोऽमृतमयंवर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥ इन्द्रःप्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतःप्रभुः ॥ ४९ ॥ पुष्पवर्षचसुमहद्देवदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ततस्ततोवर्तमानेसमाजेदेवसंकुले ॥ ५० ॥ समुत्तस्थौततःपुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मनः ॥ सुकुमारतनुःसुस्थःप्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥ ५१ ॥ ततोराजाहरिश्चंद्रः परिष्वज्यसुतंक्षणात् ॥ सभार्य्यःसुश्रियायुक्तोदिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥५२॥ स्वस्थःसम्पूर्णहृदयोमुदापरमयायुतः ॥ बभूवतत्क्षणादिन्द्रोभूयश्चैनमभाषत ॥ ५३ ॥ सभार्यस्त्वंसपुत्रश्चप्राप्स्यसेसद्गतिंपराम् ॥ समारोहमहाभागनिजानांकर्मणांफलैः ॥५४॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ देवराजाननुज्ञातःस्वामिनाश्वपचेनवै ॥ अगत्वानिष्कृतिंतस्यनारोक्ष्येऽहंसुरालयम् ॥ ५५ ॥ धर्मउवाच ॥ तवैनंभाविनंक्लेशमवगम्यात्ममायया ॥ आत्माश्वपाकतांनीतोदर्शितंतच्चचापलम् ॥५६॥ इन्द्रउवाच ॥ प्रार्थ्यतेयत्परंस्थानंसमस्तैर्मनुजैर्भुवि ॥ तदारोहहरिश्चन्द्रस्थानंपुण्यकृतांनृणाम् ॥ ५७ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ देवराजनमस्तुभ्यंवाक्यंचैतन्निबोधमे ॥ प्रसादसुमुखंयत्त्वांब्रवीमिप्रश्रयान्वितः ॥ ५८ ॥ मच्छोकमग्नमनसःकोसलानगरेजनाः ॥ तिष्ठन्तितानपोह्याद्यकथंयास्याम्यहंदिवम् ॥ ५९ ॥

मैंने आपका इसप्रकार भावी क्लेश समझकर अपनी मायासे चाण्डालका रूप धारणपूर्वक ऐसा चाण्डालपना दिखाया था ॥ २५६ ॥ इन्द्र बोले ॥ पृथ्वीके संपूर्ण मनुष्य जिस परम स्थानमें जानेके लिये सदा प्रार्थना करते हैं हे हरिश्चन्द्र ! पुण्यकरनेवाले मनुष्यादिकोंके उसी स्थानमें जाओ ॥ २५७ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज! आपको नमस्कार है, मैं नम्रतापूर्वक प्रसन्न हुए आपसे जो कहताहूं, सो सुनिये ॥ २५८ ॥ कोशल नगरके संपूर्ण मनुष्य मेरे शोकमें मग्न मन होकर वहां वास करते हैं, मैं उनको छोड़कर किसप्रकार स्वर्गमें जाऊं ? ॥ २५९ ॥

ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोहत्या, वा स्त्रीहत्या करनेसे जो पाप होता हैं, भक्तका त्याग करनेसे भी वही पाप होता है ॥ २६० ॥ जो मेरे भक्त हैं और सदा मेरा भजन करते हैं, उनको छोड़नेसे इस लोक वापरलोक में क्या सुख है ? अत एव हेशक्र ! आप स्वर्गको जाइये ॥ २६१ ॥ हे देवताओंके ईश्वर ! यदि वह भी मेरे संग स्वर्गमें जायँ तो मैं भी स्वर्गमें जासकता हूं, नहीं तो उनके संग नरकमेंही रहूंगा ॥ २६२ ॥ इन्द्रने कहा—हेराजन् ! उन्होंने अनेक प्रकारके पृथक् पृथक् पाप पुण्य किये हैं, तो फिर उनके संग आप किस प्रकार स्वर्गमें जा सकतेहैं ॥ २६३ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हेशक्र ! राजा कुटुम्बियों के प्रभावसेही राज्य भोगता है, तथा महा यज्ञसाधन और वापी कूपादि निर्माण करताहै ॥ २६४ ॥ मैं ने जो कुछ धर्मकार्यका अनुष्ठान किया है, वह सब उन लोगों के प्रभावसे । अत एव सामान्य स्वर्गके लालचसे उन उपकारियोंको नहीं छोड़

ब्रह्महत्यागुरोर्घातोगोवधःस्त्रीवधस्तथा ॥ तुल्यमेभिर्महापापंभक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ॥६० ॥ भजन्तंभक्तमत्याज्यमदुष्टंत्यजतःसुखम् ॥ नेहनामुत्रपश्यामित स्माच्छक्रदिवंव्रज ॥ ६१ ॥ यदितेसहिताःस्वर्गमयायान्तिसुरेश्वर ॥ ततोऽहमपियास्यामिनरकंवापितैःसह ॥ ६२ ॥ इन्द्रउवाच ॥ बहूनिपुण्यपापानिते षांभिन्नानिवैपृथक् ॥ कथंसंघातभोग्यंत्वंभूयःस्वर्गमवाप्स्यसि ॥६३॥ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ शक्रभुंक्तेनृपोराज्यंप्रभावेणकुटुम्बिनाम् ॥ यजतेचमहायज्ञैः कर्मपौर्त्तंकरोतिच ॥६४॥ तच्चतेषांप्रभावेणमयासर्वमनुष्ठितम् ॥ उपकर्तॄन्नसन्त्यक्ष्येतानहंस्वर्गलिप्सया ॥ ६५ ॥ तस्मायन्ममदेवेशकिंचिदस्तिसुचेष्टितम् ॥ दत्तमिष्टमथोजप्तंसामान्यंतैस्तदस्तुनः ॥ ६६ ॥ बहुकालोपभोग्यंहिफलंयन्ममकर्मणः ॥ तदस्तुदिनमप्येकंतैःसमंत्वत्प्रसादतः ॥ ६७ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वाशक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ प्रसन्नचेताधर्मश्चविश्वामित्रश्चगाधिजः ॥ ६८ ॥ गत्वाशुनगरंसर्वंचातुर्वर्ण्यसमायुतम् ॥ हरिश्चंद्रस्यनिकटेप्रोवाच विबुधाधिपः ॥ ६९ ॥ आगच्छंतुजनाःशीघ्रंस्वर्गलोकंसुदुर्लभम् ॥ धर्मप्रसादात्संप्राप्तंसर्वैर्युष्माभिरेवतु ॥७०॥ विमानकोटिसम्बद्धंस्वर्गलोकान्महीतलम्॥ गत्वायोध्याजनंप्राहदिवमारुह्यतामिति ॥ ७१ ॥

सकता ॥ २६५ ॥ इस कारण हे देवेश ! मैंने जो कुछ पुण्य किया है और जो कुछ जप वा दान किया है, वह सब उनके सहित समान हो ॥ २६६ ॥ जो मेरे कर्मका फल बहुत समयतक भोगने योग्य हो, आपके प्रसादसे वह उनके संग एकही दिनमें भोग करूं ॥ २६७ ॥ पक्षी बोले —हे जैमिने ! "ऐसाही होगा" यह कहकर तीनों भुवनके ईश्वर इन्द्र और प्रसन्नचित्त धर्म तथा गाधिनन्दन विश्वामित्रजी ॥ २६८ ॥ सबने उस नगर में जाय चारों वर्णके लोगोंको हरिश्चन्द्रके सहित एकत्र कराय इन्द्रने कहा ॥ २६९ ॥ हे मनुष्यो ! आओ तुम सबने जो धर्मके प्रसादसे दुर्लभ स्वर्गलोक प्राप्त किया है, वहाँ चलो ॥ २७० ॥ उस समय स्वर्गसे करोड़ों विमान भूलोकमें आये और अयोध्यावासियोंसे बोले कि, स्वर्ग चलनेके निमित्त शीघ्रही विमानोंपर बैठो ॥ २७१ ॥

फिर गाधितनय महातपा विश्वामित्रजीने राजाको प्रसन्न करनेके लिये देवराज इन्द्रका वचन सुन, रोहिताश्व को लाय॥ २७२॥ मनोहर अयोध्यानगरीमें राजपुत्रको अभिषिक्त किया, तब अयोध्यावासी हृष्ट पुष्ट बंधुगण सबनेही सिद्ध मुनि और देवताओंके सहित राजाको अभिषिक्त कर, भार्या, पुत्र और सेवकोंसे मिलितहो राजा हरिश्चन्द्रके सहित स्वर्ग में गमन किया॥ २७३ ॥ २७४ ॥ उस समय वह पग पग में एक विमानसे दूसरे विमानपर जाते थे.उस काल राजा हरिश्चन्द्र भी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २७५ ॥ और विमान में चढ़ने की अतुल विभूतिको प्राप्त और वलयाकार परकोटेसे युक्तहो स्थिति करने लगे॥ २७६ ॥ तब संपूर्ण शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले दैत्योंके आचार्य महाभाग शुक्राचार्यने राजाका ऐसा ऐश्वर्य देखकर यह श्लोक गाया ॥ २७७ ॥ शुक्र बोले—जगत्में हरिश्चन्द्रके समान दूसरा राजा न हुआ और

तदेन्द्रस्यवचःश्रुत्वाप्रीत्यातस्यचभूपतेः॥ आनीयरोहिताश्वंचविश्वामित्रोमहातपाः ॥ ७२ ॥ अयोध्याख्येपुरेरम्येसोऽभ्यषिंचन्नृपात्मजम् ॥ देवैश्चमुनिभिः सिद्धैरभिषिच्यनराधिपः ॥ ७३ ॥ राज्ञासहतदासर्वेहृष्टपुष्टसुहृज्जनाः ॥ सपुत्रभृत्यदारास्तेदिवमारुरुहुर्जनाः ॥ ७४ ॥ पदेपदेविमानात्तेविमानमगमन्राः ॥ तदासंभूतहर्षोसौहरिश्चंद्रश्चपार्थिवः ॥ ७५ ॥ संप्राप्यभूतिमतुलांविमानैःसमहीपतिः ॥ आसांचक्रेपुराकारेवप्रप्राकारसंवृते ॥ ७६ ॥ ततस्तस्यर्द्धिमालोक्यश्लोकतत्राशनाजगौ ॥ दैत्याचार्योमहाभागःसर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ७७ ॥ ॥ शुक्रउवाच ॥ ॥ हरिश्चंद्रसमोराजानभूतोनभविष्यति ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्यानैरन्तर्येणमानवः ॥ ७८ ॥ तेनवेदाःपुराणानिसर्वेमंत्राःसुसंग्रहाः ॥ घुष्टाःस्युःपुष्करेतीर्थेप्रयागेसिन्धुसागरे ॥ ७९ ॥ देवागारेकुरुक्षेत्रेवाराणस्यांविशेषतः ॥ विषुवद्ग्रहणेचैवयत्फलंजपतोलभेत् ॥ २८० ॥ तत्फलंद्विगुणंचैवसंयतात्माशृणोतियः ॥ श्रुत्वातुपूजयेद्भक्त्यापुराणज्ञंद्विजोत्तमम् ॥ ८१ ॥

न आगेको होगा। जो तितिक्षा और दानके फलसे अपने नगरवासियों सहित स्वर्ग में गये। जो मनुष्य इन राजा हरिश्चन्द्रकी कथाको भक्तिसहित सुनेगा॥ २७८॥ वह वेद पुराण और सब मंत्रोंके फलको प्राप्त होगा जो पुष्कर, प्रयाग, सिंधुसागर, देवालय, कुरुक्षेत्र और काशी में इस कथा का पाठ करेगा उसको विशेष फल होगा विषुवती (विखौती) और ग्रहणमें जो जप करनेका फल होता है ॥ २७९ ॥ २८० ॥ उससे दूना फल जितेन्द्रिय होकर इसके सुननेसे होता है ॥ और यह कथा सुनकर पुराण जाननेवाले ब्राह्मणश्रेष्ठको संतुष्ट करे ॥ २८१ ॥

हे जैमिने उसको गौ,भूमि,सुवर्ण,वस्त्र और अन्न दे जो इससे पुण्य होताहै उसे मैं नहीं कहसकता॥ २८२॥ अहो ! तितिक्षा और दानका बड़ा फल है,जिसके प्रभावसे हरिश्चन्द्र इन्द्रत्वको प्राप्तहो नगरीनिवासियोंसहित स्वर्गमें गये॥ २८३॥ पक्षी बोले-हेमुने!इसप्रकार यह आपके निकट हरिश्चन्द्रका सब वृत्तान्त वर्णन किया,इसके सुननेसे दुःखार्त्त मनुष्यको महासुख प्राप्त होताहै॥ २८४॥ स्वर्गकी इच्छा करने वालेको स्वर्ग,पुत्रकी अभिलाषा करनेवालेको पुत्र, भार्याकी कामना करनेवाले को भार्या और राज्य की आकांक्षा करनेवाले मनुष्यको राज्य मिलताहै॥ २८५॥हेमुनिसत्तम ! अब पृथ्वीक्षयका कारण राजसूय यज्ञका विपाक और उस विपाक के कारण महत् आडिबक

गोभूहिरण्यवस्त्रैश्चतथैवान्नेनजैमिने ॥ येनैवंयत्कृतंपुण्यंतच्छक्यंनमयोदितुम् ॥ ८२ ॥ अहोतितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलंमहत् ॥ यदागतोहरिश्चंद्रः पुरींचेन्द्रत्वमाप्तवान् ॥८३॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंहरिश्चंद्रविचेष्टितम् ॥ यःशृणोतिसुदुःखार्त्तःससुखंमहदाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गंपुत्रार्थीपुत्रमाप्नुयात् ॥ भार्यार्थीप्राप्नुयाद्भार्यांराज्यार्थीराज्यमाप्नुयात् ॥ ८५ ॥ अतःपरंकथाशेषःश्रूयतांमुनिसत्तम ॥ विपाकोराजसूयस्यपृथिवीक्षयकारणम् ॥ तद्विपाकनिमित्तंचयुद्धमाडिबकंमहत् ॥ २८६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेहरिश्चंद्रोपाख्यानंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ राज्यच्युतेहरिश्चन्द्रेगतेचात्रिदशालयम् ॥ निश्चक्राममहातेजाजलवासात्पुरोहितः ॥ १ ॥ वसिष्ठोद्वादशाब्दान्तेगङ्गापर्युषितोमुनिः ॥ शुश्रावचसमस्तन्तु विश्वामित्रविचेष्टितम् ॥ २ ॥ हरिश्चन्द्रस्यनाशञ्चराज्ञश्चोदारकर्मणः ॥ चण्डालसंप्रयोगञ्चभार्यातनयविक्रयम् ॥ ३ ॥ सश्रुत्वासुमहाभागःप्रीतिमानवनीपतौ ॥ चकारकोपंतेजस्वीविश्वामित्रमृषिम्प्रति ॥ ४ ॥ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ ॥ ममपुत्रशतंतेनविश्वामित्रेणघातितम् ॥ तत्रापिनाभवत्क्रोधस्ताद्दशो याद्दशोऽद्यमे ॥ ५ ॥

युद्धस्वरूप शेष कथा वर्णन करते हैं.सुनो ॥ २८६॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पक्षी बोले–हे जैमिने ! जब राजा हरिश्चन्द्र राज्यसे छूटकर त्रिदशालय (स्वर्ग) में चलेगये, तब उनके पुरोहित महातेजस्वी वसिष्ठजी जलसे निकले ॥ १ ॥ मुनिने बारह वर्षके पीछे जलवाससे निकलकर विश्वामित्रजी का सब वृत्तान्त सुना ॥ २॥ उदार कर्म राजा हरिश्चन्द्र जिसप्रकार राज्य नष्ट होजानेपर चाण्डालपनेको प्राप्त हुए और जैसे उनके स्त्री पुत्र बिके॥ ३ ॥ उन महाभाग तेजस्वी वशिष्ठजीने यह सब सुनकर विश्वामित्र ऋषिपर बड़ा क्रोध किया कारण कि, यह राजासे अत्यन्त प्रसन्न थे ॥ ४॥ वसिष्ठजी बोले—इस समय महात्मा महा

भाग देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले राजाको स्वराज्यसे च्युत हुआ सुनकर मुझको जितना क्रोध उत्पन्न हुआ है उतना क्रोध उसी विश्वामित्रके हाथसे अपने सौ पुत्रके मरनेपर भी उत्पन्न नहीं हुआ था ॥ ५ ॥ ६ ॥ जब कि, मेरे आश्रित सत्यवादी, शत्रुके प्रति भी मत्सरताहीन अर्थात् शत्रुसे भी शत्रुता न रखनेवाले, निरपराधी, धर्मात्मा और अप्रमत्त राजाको ॥ ७ ॥ पत्नी पुत्र और सेवकोंसहित अंत दशामें प्राप्त कराया हैं, निज राज्यसे भ्रष्ट करके, अनेक प्रकारसे दुःखी किया है ॥ ८ ॥ इस कारण वह दुरात्मा ब्रह्मद्वेषी मूढ, यज्ञ करनेवालोंके यज्ञका नाशक विश्वामित्र मेरे शापसे हत होकर तिर्यग्योनि अर्थात् बगलेके देहको प्राप्त हो ॥ ९ ॥ पक्षी बोले—इधर कुशिकवंशोत्पन्न महातेजस्वी विश्वामित्रजीने भी इस शापका वृत्तान्त सुनकर वसिष्ठजीको प्रतिशाप दिया " तू भी

श्रुत्वानराधिपमिमंस्वराज्यादवरोपितम् ॥ महात्मानंमहाभागंदेवब्राह्मणपूजकम्॥६॥यस्मात्ससत्यवाक्छान्तःशत्रावपिविमत्सरः ॥ अनागाश्चैवधर्मात्माऽप्रमत्तोमदाश्रयः ॥७॥ सपत्नीभृत्यपुत्रस्तुप्रापितोऽन्त्यांदशांनृपः ॥ स्वराज्याच्यावितोऽनेनबहुशश्चखिलीकृतः ॥८॥ तस्माद्दुरात्माब्रह्मद्विड्यज्विनामवरोपकः॥ मच्छापोपहतोमूढःसबकत्वमवाप्स्यति ॥९॥ पक्षिणऊचुः ॥ श्रुत्वाशापंमहातेजाविश्वामित्रोऽपिकौशिकः ॥ त्वमप्याडिर्भवस्वेतिप्रतिशापमयच्छत ॥१०॥ अन्योन्यशापात्तौप्राप्तौतिर्यक्त्वंपरमद्युती ॥ वसिष्ठःसमहातेजाविश्वामित्रश्चकौशिकः ॥ ११ ॥ अन्यजातिसमायोगंगतावप्यमितौजसौ ॥ युयुधातेऽतिसंरब्धौमहाबलपराक्रमौ ॥ १२ ॥ योजनानांसहस्रेद्वेप्रमाणेनाडिरुच्छ्रितः ॥ षण्णवत्यधिकंब्रह्मसहस्रत्रितयंबकः ॥ १३ ॥ तौतुपक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुविक्रमौ ॥ प्रहरन्तौभयंतीव्रंप्रजानांचक्रतुस्तदा ॥ १४ ॥ विधूयपक्षाणिबकोरक्तोद्वृत्ताक्षिराहनत् ॥ आडिंसोऽप्युन्नतग्रीवोबकंपद्भ्यामताडयत् ॥ १५ ॥

आडि (चीलपक्षी) की योनिको प्राप्त हो" ॥ १० ॥ महातेजा वसिष्ठ और कुशिकनन्दन विश्वामित्रजी, दोनोंही अत्यन्त तेजस्वी थे, अत एव एक दूसरेके शापसे परस्पर पक्षीकी योनिको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ वह अमिततेजस्वी महाबलवान् पराक्रमशाली दोनों अन्यजातिको प्राप्तहोकर भी अत्यन्त क्रोधसहित युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! आडिपक्षी दो हजार योजन ऊँचा और बगला तीन हजार छयानवें योजन ऊँचा उड़ा ॥ १३ ॥ उन उरुविक्रम पराक्रमशाली दोनों पक्षियोंके आपस में पक्षप्रहार करनेसे प्रजाको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ ॥ १४ ॥ बगलेने फैलाये हुए लाल लाल नेत्रोंसे समस्त पंखोंको कंपायमान

करके आडिपक्षीको आहत किया, तब उसी समय आडिने भी गर्दन ऊँची करके बगलेको पैरसे ताडित किया ॥ १५ ॥ उनके पंखोंकी पवनसे आहत होकर अनेक पर्वत भूमिमें गिरने लगे और उन पर्वतोंके गिरनेसे अभिहत होकर पृथ्वी कांपनेलगी ॥ १६ ॥ और भूमिके कांपनेसे समुद्रका जल उछलने लगा तथा कांपती हुई पृथ्वी प्रायः पाताल जानेकी इच्छा करके एक पार्श्वमें झुक गई ॥ १७ ॥ तब पृथ्वीके सब प्राणी, कोई पर्वतके गिरनेसे, कोई समुद्रके जलसे और कोई भूमिके कांपनेसे नाशको प्राप्त होने लगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार सब जगत् अत्यन्त त्रसित हो, हाहाकार करने लगा मूर्च्छित और संभ्रान्त होगया, तब पृथ्वीमण्डलकी विपरीतता उपस्थित होनेपर ॥ १९ ॥ पृथ्वीके समस्त पुरुष अत्यन्त व्याकुलचित्तसे "हा वत्स ! हा कान्त ! हा शिशो ! भागो; यह देखो, मैं कैसी अवस्थामें हूं ! हा प्रिये ! हा कान्त ! यह देखो पर्वत गिरते हैं शीघ्र भागो" ॥ २०॥ अत्यन्त भीत चित्तसे वह इस प्रकार कहने लगे और परस्पर एक दूस

तयोःपक्षानिलापास्ताःप्रपेतुर्गिरयोभुवि ॥ गिरिप्रपाताभिहताचकम्पेचवसुन्धरा ॥१६॥ क्ष्माकम्पमानाजलधीनुद्धृत्ताम्बूंश्चकारच॥ ननामचैकपार्श्वेनपातालगमनोन्मुखी ॥ १७ ॥ केचिद्गिरिनिपातेनकेचिदंभोधिवारिणा ॥ केचिन्महीसंचलनात्प्रययुःप्राणिनःक्षयम् ॥१८॥ इतिसर्वेपरित्रस्तंहाहाभूतमचेतनम् ॥ जगदासीत्सुसंभ्रांतंपर्यस्तक्षितिमण्डलम् ॥ १९ ॥ हावत्सहाकांतशिशोप्रयाह्येषोऽस्मिसंस्थितः ॥ हाप्रियेकांतशैलोऽयंपतत्याशुपलायताम् ॥ २० ॥ इत्याकुलीकृतेलोकेसंत्रासविमुखेतदा ॥ सुरैःपरिवृतःसर्वैराजगामापितामहः ॥ २१ ॥ प्रत्युवाचचविश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ॥ युद्धंवांविरमत्वेतल्लोकाःस्वास्थ्यंव्रजन्तुच ॥ २२ ॥ शृण्वन्तावपितौवाक्यंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ कोपामर्षसमाविष्टौयुयुधातेनतस्थतुः ॥ २३ ॥ ततःपितामहोदेवस्तंदृष्ट्वालोकसंक्षयम् ॥ तयोश्चहितमन्विच्छंस्तिर्यग्भावमपानुदत् ॥ २४ ॥ ततस्तौपूर्वदेहस्थौप्राहदेवःप्रजापतिः ॥ व्युदस्तेतामसेभावेवसिष्ठकौशिकर्षभौ ॥ २५ ॥ जहिवत्सवसिष्ठत्वंत्वंचकौशिकसत्तम ॥ तामसंभावमाश्रित्यईदृग्युद्धंचिकीर्षितम् ॥ २६ ॥

ऐसे विमुख अर्थात् अलग अलग होगये, तब स्वयं पितामह ब्रह्माजी सब देवताओंसे युक्त होकर उस स्थानमें आये ॥ २१ ॥ और अत्यन्त क्रोधित हुए दोनों पक्षियोंसे बोले कि,—तुम्हारा युद्ध निवृत्त हो और पृथ्वीके सब प्राणी स्वस्थ होवें" ॥ ॥ २२ ॥ दोनों पक्षी अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर भी कोप और अमर्षके वश हो अत्यन्त युद्ध करने लगे, किसी प्रकारसे स्थिर न हुए ॥ २३ ॥ तब पितामह ब्रह्माजीने इस प्रकार प्रजाका क्षय देखकर, उसके हितसाधनकी इच्छासे दोनोंकाही पक्षीभाव हरण कर लिया ॥ २४ ॥ उन दोनों ऋषियोंको पहिले देहकी प्राप्ति होनेसे उनका तामस भाव दूर हुआ तब दिव्य शक्तिमान् ब्रह्माजीने वसिष्ठ और कौशिक ऋषिसे कहा ॥ २५ ॥ हे वत्स वसिष्ठ ! हे सत्तम कौशिक ! तुम तामसभाव अवलम्बन करके जो ऐसा युद्ध करते थे,

उसको त्याग दो ॥ २६ ॥ तुम पृथ्वीको क्षय करनेवाला जो युद्ध करते थे, वह राजा हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञ करनेका विपाक (फल)है ॥ २७ ॥ इन कौशिकश्रेष्ठ विश्वामित्रजीने राजाका कोई अपराध नहीं किया है, प्रत्युत हेब्रह्मन् ! उपकारके पदमें स्थित होकर उनको स्वर्ग प्राप्त कराया है ॥ २८ ॥ तुम काम और क्रोध के वशीभूत होकर तपस्यामें विघ्नकारक हुए हो, अतएव इन दोनोंको त्यागदो । तुम्हारा मंगल हो । ब्रह्मत्वकी अपेक्षा अन्य बल नहीं है ॥ ॥ २९ ॥ तब प्रजापति ब्रह्माजीका इसप्रकार वचन सुनकर वह दोनों बहुत लज्जित हुए और प्रेममें पूर्ण हो परस्पर आलिंगन कर क्षमा प्रार्थना करी ॥ ३० ॥ इसके पीछे लोकपितामह ब्रह्माजी देवताओंसे पूजित होकर ब्रह्मलोकमें चलेगये और वसिष्ठ तथा विश्वामित्र इन दोनों ने भी अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥

राजसूयविपाकोयंहरिश्चंद्रस्यभूपतेः ॥ युवयोर्विग्रहश्चायंपृथिवीक्षयकारकः ॥ २७ ॥ नचापिकौशिकश्रेष्ठस्तस्यराज्ञोऽपराध्यति ॥ स्वर्गप्रापिकरोब्रह्मन्नु पकारपदेस्थितः ॥ २८ ॥ तपोविघ्नस्यकर्त्तारौकामक्रोधवशंगतौ ॥ परित्यजतभद्रंवोब्राह्मंहिप्रचुरंबलम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तौततस्तेनलज्जितौतावुभाव पि ॥ क्षमयामासतुःप्रीत्यापरिष्वज्यपरस्परम् ॥ ३० ॥ ततःसुरैर्वन्द्यमानोब्रह्मालोकंनिजंययौ ॥ वसिष्ठोऽप्यात्मनःस्थानंकौशिकोऽपिस्वमाश्रमम् ॥ ३१ ॥ एतदाडिबकंयुद्धंहरिश्चंद्रकथांतथा ॥ कथयिष्यन्तियेमर्त्याःसम्यक्श्रोष्यन्तिचैवये ॥ ३२ ॥ तेषांपापनोदंतुश्रुतंह्येवकरिष्यति ॥ नचैवविघ्नका र्याणिभविष्यन्तिकदाचन ॥ ३३ ॥ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणेआडिबकयुद्धकथनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ संशयंद्विजशार्दूलाः प्रब्रूतममपृच्छतः ॥ आविर्भावतिरोभावौभूतानांयत्रसंस्थितौ ॥ १ ॥ कथंसञ्जायतेजन्तुःकथंवासविवर्धते ॥ कथंवोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः ॥ २ ॥ निष्क्रान्तिमुदरात्प्राप्यकथंवावृद्धिमृच्छति ॥ उत्क्रान्तिकालेचकथंचिद्भावेनवियुज्यते ॥ ३ ॥

॥ ३१ ॥ जो मनुष्य यह आडिबकयुद्ध और हरिश्चन्द्रकी कथा कहेगा, वा भलीभांति सुनेगा ॥ ३२ ॥ उसके सब पाप दूर होंगे और जो इसको सुनकर कार्य करेगा, उसके कार्यमें कभी विघ्न नहीं होगा ॥ ३३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥ जैमिनिने कहा—हे द्विजशार्दूलगण ! प्राणियों की, जिसमें जन्म और मृत्यु संघटित होती है, उस विषयमें मुझे सन्देह है अत एव पूछता हूं, आप कहिये ॥ ॥ १ ॥ प्राणी किस प्रकारसे उत्पन्न होता है ? कैसे बढ़ता है ? और किस भांति देहमें पीड़ा सहकर उदरमें वास करता है ? ॥ २ ॥ उदरसे बाहर निकलकर

कैसे बढता है, मृत्युकालमें किसप्रकार उसका चैतन्य वियुक्त होता है? ॥ ३ ॥ प्राणी कालकवलमें कवलित होकर किसप्रकार पुण्य और पापका फल भोगता है तथा पाप पुण्य किसप्रकारसे अपना अपना फल सम्पादन करते हैं? ॥ ४ ॥ और जब अनेक गुरुपाक भोजनकी वस्तु जठराशयमें जीर्ण होती हैं, तो सामान्य पिण्डीकृत जीव स्त्रीके जठरमें किस लिये जीर्ण नहीं होता? ॥ ५ ॥ जिस जठराग्निमें भोजनकीहुई सब वस्तु जीर्ण होती हैं अर्थात् पचजाती हैं, वहां यह छोटासा जीव कैसे नष्ट नहीं होता? और किसप्रकार सब सुकृत कर्मोंको भोगता है? ॥ ६ ॥ हे द्विजगण! जिससे मेरा संदेह दूर हो, उसी प्रकार यह सब विषय वर्णन कीजिये. क्योंकि यह अत्यन्त गुप्त विषय है, प्राणी इसीमें मोहित होते हैं ॥ ७ ॥ पक्षी बोले—हे मुनिसत्तम! आपने प्राणियोंके भाव अभावसे युक्त यह प्रश्न किया है, यह बडा

कृत्स्नोमृतस्तथाश्नातिउभेसुकृतदुष्कृते ॥ कथंतेचतथातस्यफलंसम्पादयन्त्युत ॥ ४ ॥ कथंनजीर्यतेतत्रपिण्डीकृतइवाशये ॥ स्त्रीकोष्ठेयत्रजीर्यन्ते भुक्तानिसुगुरूण्यपि ॥ ५ ॥ भक्ष्याणितत्रनोजन्तुर्जीर्य्यतेकथमल्पकः ॥ कथंभोक्तासर्वस्यकर्मणःसुकृतस्यवै ॥ ६ ॥ एतन्मेब्रूतसकलंसन्देहोक्तिविवर्जितम् ॥ तदेतत्परमंगुह्यंयत्रमह्यन्तिजन्तवः ॥ ७ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासुनिवेशितः ॥ दुर्भाव्यःसर्वभूतानांभावाभावसमाश्रितः ॥ ८ ॥ तंशृणुष्वमहाभागयथाप्राहपितुःपुरा ॥ पुत्रःपरमधर्म्मात्मासुमतिर्नामनामतः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोभार्गवः कश्चित्सुतमाहमहामतिः ॥ कृतोपनयनंशान्तंसुमतिंजडरूपिणम् ॥ १० ॥ वेदानधीत्यसुमतेयथानुक्रममादितः ॥ गुरुशुश्रूषणेव्यग्रोभैक्षान्नकृतभोजनः ॥ ११ ॥ ततोगार्हस्थ्यमास्थायचेष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् ॥ इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेथावनंततः ॥ १२ ॥ वनस्थश्चततोवत्सपरिव्राड्निष्परिग्रहः ॥ एवमाप्स्यसितद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥ १३ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ इत्येवमुक्तोवहुशोजडत्वान्नाहकिञ्चन ॥ पितापितंसुवहुशःप्राहप्रीत्यापुनःपुनः ॥ १४ ॥

गूढ़ अतुलप्रश्नभार हमारे ऊपर डाला है ॥ ८ ॥ जो हो हे महाभाग! पूर्व कालमें सुमति नामक परम धर्मात्मा पुत्रने अपने पितासे जिसप्रकार कहा था, वही कहते हैं, सुनो ॥ ९ ॥ किसी समय भार्गववंशीय महामतिनामक किसी ब्राह्मणने अपने शान्त जनेऊकियेहुए जडरूपी पुत्र सुमतिसे कहा ॥ १० ॥ हे वत्स सुमते! गुरुकी सेवामें रत होकर भिक्षाके अन्नद्वारा जीवनधारणपूर्वक क्रमानुसार पहिले सब वेद पढ़ ॥ ११ ॥ फिर गृहस्थधर्म अवलम्बनकर यज्ञानुष्ठानपूर्वक अभिलाषित पुत्र उत्पन्न कर और फिर वनमें चलाजा ॥ १२ ॥ हे वत्स! वनमें वास करनेपर निष्परिग्रह संन्यासी होनेसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करेगा, जिसके प्राप्त करनेसे फिर सोच करना नहीं पड़ेगा ॥ १३ ॥ पक्षी बोले कि—इसप्रकार पिताने सुमतिसे बहुत कुछ कहा, किन्तु उसने जडताके कारण कोई उत्तर नहीं

दिया तो भी पिता स्नेहके वश हो उससे वारंवार कहने लगे ॥ १४ ॥ जब पुत्रसे स्नेहवश पिताने ऐसे प्रलोभी मधुर वचनोंसे वारंवार कहा, तब सुमति कुछेक हँसकर पितासे बोला ॥ १५ ॥ हे तात ! आप मुझको इस समय जिस विषयका उपदेश देते हैं, मैंने अनेकवार इसका अभ्यास किया है और अन्यान्य नानाशास्त्र और बहुत प्रकारसे शिल्पशास्त्रका भी मैंने अभ्यास किया है ॥ १६ ॥ कुछ अधिक दशहजारवर्षकी बात मुझको स्मरण है, मैंने अनेक वार दुःख पाया है और अनेक वार संतुष्ट हुआ हूं और अनेक वार क्षय वृद्धिके उदयमें रत हुआ हूं, जब ज्ञान प्राप्त है, तो वेदसे क्या प्रयोजन है ? ॥ १७ ॥ मेरा अनेक वार शत्रु मित्र और कलत्रके सहित मिलाप तथा वियोग हुआ है, अनेक माता और अनेक पिता देखे हैं ॥ १८ ॥ हजारों सुख दुःख अनुभव किये

इतिपित्रासुतस्नेहात्प्रलोभिमधुराक्षरम् ॥ सचोद्यमानोबहुशःप्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥ १५ ॥ तातैतद्बहुशोभ्यस्तंयत्त्वयाद्योपदिश्यते ॥ तथैवान्यानिशास्त्राणि शिल्पानिविविधानिच ॥ १६ ॥ जन्मनामयुतंसाग्रंममस्मृतिपथंगतम् ॥ उत्पन्नज्ञानबोधस्यवेदैःकिंमेप्रयोजनम् ॥ निर्वेदाःपरितोषाश्चक्षयवृद्ध्युदयेरताः ॥ ॥ १७ ॥ शत्रुमित्रकलत्राणांवियोगाःसङ्गमास्तथा ॥ मातरोविविधादृष्टाःपितरोविविधास्तथा ॥ १८ ॥ अनुभूतानिसौख्यानिदुःखानिचसहस्रशः ॥ बान्धवाब हवःप्राप्ताःपितरश्चपृथग्विधाः ॥ १९ ॥ विण्मूत्रपिच्छिलेस्त्रीणांतथाकोष्ठेमयोषितम् ॥ पीडाश्चसुभृशंप्राप्तारोगाणाञ्चसहस्रशः ॥ २० ॥ गर्भदुःखान्यने कानिबाल्त्वेयौवनेतथा ॥ वृद्धतायांतथाप्तानितानिसर्वाणिसंस्मरे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणाञ्चापियोनिषु ॥ पुनश्चपशुकीटानांमृगाणामथप क्षिणाम् ॥ २२ ॥ तथैवराजभृत्यानांराज्ञांचाहवशालिनाम् ॥ समुत्पन्नोऽस्मिगेहेषुतथैवतववेश्मनि ॥ २३ ॥ भृत्यतांदासतांचैवगतोऽस्मिबहुशोनृणाम् ॥ स्वामित्वमीश्वरत्वंचदरिद्रत्वंतथागतः ॥ २४ ॥ हतंमयाहतश्चान्यैर्हतंमेघातितंतथा ॥ दत्तंममान्यैरन्येभ्योमयादत्तमनेकशः ॥ २५ ॥

हैं, अनेक बान्धव पाये हैं और पिताभी अनेक प्रकार देखे हैं ॥ १९ ॥ मल मूत्रसे भरे स्त्रीके जठरमें मैंने अनेकवार वास किया है, सहस्र सहस्र रोगोंकी दारुण यंत्रणा भोगी है ॥ २० ॥ गर्भयंत्रणा वा बाल्य यौवन और वृद्ध अवस्थामें जितनी वार जैसा दुःख भोगा है, वह सब मुझको स्मरण है ॥ २१ ॥ मैं ने कितनीही वार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, मृग और पक्षी योनिमें जन्म ग्रहण किया है ॥ २२ ॥ जिसप्रकार आपके घर उत्पन्न हुआ हूं ऐसे ही अनेक अनेकवार राज सेवक और अनेकानेक योधाओंके घर जन्म लिया है ॥ २३ ॥ मैं अनेकवार अनेक मनुष्योंका भृत्य और दास हुआहूं, अनेक वार स्वामित्व, प्रधानत्व और दारिद्रता भोगी है ॥ २४ ॥ मैंने अनेकवार अनेक मनुष्योंको मारा है, तथा अनेकवार कितनेही मनुष्योंने मुझको और मैंने उनको मारा है, मैंने अनेकवार दान

किया है और अनेकवार मैंने औरों से लिया है ॥ २५ ॥ पिता, माता, सुहृत्, भ्राता और स्त्री इत्यादि से मैं कितनीही वार संतुष्ट हुआहूं और अनेकवार दीन दशा को प्राप्त होकर आंसुओंके जलसे मुख धोया है ॥ २६ ॥ हे तात ! मैंने इसप्रकार संकटमय संसारचक्रमें निरन्तर भ्रमण करते करते मोक्ष देनेवाला ज्ञान प्राप्त किया है ॥ २७ ॥ इसप्रकार ज्ञानलाभ करनेसे ऋक्, यजुः और साम नामक समस्त क्रियाकलाप मुझको विगुण और असम्यक् विदित होती है ॥ २८ ॥ अत एव जब मुझको ज्ञान प्राप्त होगया है और गुरु विज्ञानमें तृप्त होकर चेष्टारहित और सदात्मा हुआहूं, तो फिर मेरा वेदज्ञानसे क्या प्रयोजन है ? ॥ २९ ॥ सुतरां छह प्रकारकी क्रिया, सुख, दुःख, हर्ष, रस और गुणहीन ब्राह्म परमपदको मैं निःसन्देह प्राप्त हूंगा ॥ ३० ॥ और रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध,

पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेनच ॥ तुष्टोऽसकृत्तथादैन्यमश्रुधौताननोगतः ॥ २६ ॥ एवंसंसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतातातसङ्कटे ॥ ज्ञानमेतन्मयाप्राप्तंमोक्षसम्प्राप्तिकारकम् ॥ २७ ॥ विज्ञातेयत्रसर्वोऽयमृग्यजुःसामसंज्ञितः ॥ क्रियाकलापोविगुणोनसम्यक्प्रतिभातिमे ॥ २८ ॥ तस्मादुत्पन्नबोधस्यवेदैः किंमेप्रयोजनम् ॥ गुरुविज्ञानतृप्तस्यनिरीहस्यसदात्मनः ॥ २९ ॥ षट्प्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरसैश्चयत् ॥ गुणैश्चवर्जितंब्रह्मतत्प्राप्स्यामिपरंपदम् ॥ ३० ॥ रसहर्षभयोद्वेगक्रोधामर्षजवागुरा ॥ विज्ञातानृमृगग्राहिसंघपाशशताकुला ॥ ३१ ॥ तस्माद्यास्याम्यहंतातत्यक्त्वेमांदुःखसन्ततिम् ॥ त्रयीधर्ममधर्माढ्यं किंपाकफलसन्निभम् ॥ ३२ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहर्षविस्मयगद्गदम् ॥ पिताप्राहमहाभागःस्वसुतंहृष्टमानसः ॥ ३३ ॥ पितोवाच ॥ ॥ किमेतद्वदसेवत्सकुतस्तेज्ञानसम्भवः ॥ केनतेजडतापूर्वमिदानींचप्रबुद्धता ॥ ३४ ॥ किन्नुशापविकारोऽयंमुनिदेवकृतस्तव ॥ यत्तेज्ञानं तिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ॥ ३५ ॥

अमर्ष और बुढापेके द्वारा सदा नितान्त आकुल तथा मृग श्वानके पकड़नेवाले सैकड़ों बंधनमें व्याप्त ॥ ३१ ॥ इस कारण हे पिता ! मैं इस दुःखरूप प्रवाहको छोड़कर जाऊंगा त्रयी विद्याका धर्म अधर्मसा दीखता है, इसको त्याग निःसन्देह ब्राह्मपद प्राप्त करूंगा ॥ ३२ ॥ पक्षी बोले—पुत्रका यह वचन सुन महाभागपिता ने प्रसन्नचित्त और हर्षविस्मययुक्त गद्गद वाणीके द्वारा अपने पुत्रसे फिर कहा ॥ ३३ ॥ पिता बोले—हे वत्स ! तुम यह क्या कहते हो ! कहांसे तुमको ऐसा ज्ञान मिला पहिले तुम जडस्वभाव थे, अब कहांसे ऐसी ज्ञान बुद्धि उत्पन्न हुई ? ॥ ३४ ॥ तुम्हारा छिपाहुआ ज्ञान जो सहसा प्रगट हुआ, यह क्या किसी

मुनि वा देवताके शापका विकार था ? ॥ ३५ ॥ पुत्रने कहा—हे तात ! मेरा यह सुख दुःखप्रदायक पहिला वृतान्त तथा मैं अन्य जन्ममें जो था और जो जो हुआ था, वह सब कहता हूं, सुनो ॥ ३६ ॥ मैं पूर्व जन्ममें एक ब्राह्मण था, तबमैं ने परमात्मामें निरन्तर आत्माको लीन करके आत्मविद्यामें परमनिष्ठालाभ करी थी ॥ ३७ ॥ सदा योगयुक्त रहनेसे साधुता अभ्यास, सत्संयोग, सत्स्वभाव,विचार, विधिशोधन अर्थात् विधियोंका उद्धार ॥ ३८ ॥ और निरन्तर परमात्मामें युक्त रहनेसे उस जन्ममें मैं अत्यन्त प्रसन्न था और शिष्योंका सन्देहनिवारण करनेवाला होकर आचार्यकी पदवीको प्राप्त हुआ था ॥ ३९ ॥ कुछ काल बीतने पर मैं ऐकान्तिक होगया ! फिर अज्ञानसे आकृष्ट स्वभावहो प्रमादके कारण यद्यपि व्याकुल होगया ॥ ४० ॥ किन्तु तो भी उस मृत्युकालतक मेरी

॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ शृणुतातयथावृत्तंममेदंसुखदुःखदम् ॥ यश्चाहमासमन्यस्मिञ्जन्मन्यस्मत्परन्तुयत् ॥ ३६ ॥ अहमासंपुराविप्रोन्यस्तात्मापरमात्मनि ॥ आत्मविद्याविचारेषुपरांनिष्ठामुपागतः ॥ ३७ ॥ सततंयोगयुक्तस्यसतताभ्याससङ्गमात् ॥ सत्संयोगात्स्वस्वभावाद्विचारविधिशोधनात् ॥ ३८ ॥ तस्मिन्नेवपराप्रीतिर्ममासीद्युंजतःसदा ॥ आचार्यतांचसंप्राप्तःशिष्यसन्देहहृत्तमः ३९ ॥ ततःकालेनमहताऐकान्तिकमुपागतः ॥ अज्ञानाकृष्टसद्भावोविपन्नश्चप्रमादतः ॥ ४० ॥ उत्क्रान्तिकालादारभ्यस्मृतिलोपोनमेऽभवत् ॥ यावदब्दंगतंचैवजन्मनांस्मृतिमागतम् ॥ ४१ ॥ पूर्वाभ्यासेनतेनैवसोऽहंतात जितेन्द्रियः ॥ यतिष्यामितथाकर्तुंनभविष्येयथापुनः ॥ ४२ ॥ ज्ञानदानफलंह्येतद्यज्जातिस्मरणंमम ॥ नह्येतत्प्राप्यतेतातत्रयीधर्माश्रितैर्नरैः ॥ ४३ ॥ सोऽहंपूर्वाश्रमादेवनिष्ठाधर्ममुपाश्रितः ॥ एकान्तित्वमुपागम्ययतिष्याम्यात्ममोक्षणे ॥ ४४ ॥ तद्ब्रूहित्वंमहाभागयत्तेसांशयिकंहृदि ॥ एतावतापितेप्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ पिताप्राहततःपुत्रंश्रद्दधत्तस्यतद्वचः ॥ भवतायद्वयंपृष्टाःसंसारग्रहणाश्रयम् ॥ ४६ ॥

स्मृति लोप नहीं हुई, अतएव जन्मके समयसे जितने वर्ष बीते हैं, वह सब मुझको स्मरण हैं ॥ ४१ ॥ इस कारण हे तात ! मैं पूर्वाभ्यासके बलसे जितेन्द्रिय होकर फिर वैसाही यत्न करूंगा ॥ ४२ ॥ जिससे मैं इस ज्ञान और दानका फलस्वरूप जातिस्मर हुआ हूं, अर्थात् सबजन्मोंका वृत्तान्त मुझे स्मरण है । हे पिता ! त्रयीधर्मका आश्रय करनेवाले मनुष्य इसप्रकार जातिस्मर नहीं होसकते॥ ४३ ॥ मैं पूर्वजन्मार्जित निष्ठा धर्मके आश्रयसे ऐकान्तिकत्व लाभकरके आत्ममोक्षमें यत्नवान् हूंगा ॥ ४४ ॥ अतएव हे महाभाग ! आपके हृदयमें जो कुछ संशय है वह कहिये, मैं एकमात्रउपायसेही उसविषयमें आपकी प्रीति उत्पन्न कराकर उऋण हूंगा ॥ ४५ ॥ पक्षीबोले-अनन्तर उसके पिताने उसका यह वचन सुन श्रद्धायुक्त हो, जीवोंके जन्ममृत्युविषयमें आपने मुझसे जिस प्रकार पूछा है, उन्होंने भी पुत्रसे उसी प्रकार पूछा था ॥ ४६ ॥

पुत्रने कहा—हे तात ! मैंने वारंवार जो अनुभव किया है, वह यथातत्त्व कहता हूं सुनो, यह जो संसारचक्र है, इसकी जरा भी कहीं स्थिति नहीं है ॥ ४७ ॥ हे पिता ! मैं आपकी आज्ञासे वह सब वृत्तान्त कहता हूं और कोई भी मृत्युकालकी सम्पूर्णघटनाओंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ ४८ ॥ देहमें स्थित हुआ पित्त कुपित होकर ईंधनके विना भी तीव्र वायुके संचालनेसे दीप्यमान होता है और सब मर्मस्थानको भेदन करता है ॥ ४९ ॥ और उदान नामक शरीरस्थ वायु उसके ऊपर वर्तमान होकर जलीय समस्त भक्ष्य वस्तुकी अधोगति निरोध करती है सुतरां उस समय प्राणीके आत्माका वियोग होता है ॥ ५० ॥ जिसने जल वा अन्न, रस दान किया है, वही उस मृत्युरूप आपत्कालमें प्रसन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ जिन्होंने श्रद्धासहित पवित्रमनसे अन्नदान किया है, वह विनाअन्न

॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ शृणुतातयथातत्त्वमनुभूतंमयाऽसकृत् ॥ संसारचक्रमजरंस्थितिर्यस्यनविद्य ते ॥ ४७ ॥ सोऽहंवदामितेसर्वंतवैवानुज्ञयापितः ॥ उत्क्रान्तिकालादारभ्ययथानान्योवदिष्यति ॥ ४८ ॥ ऊष्माप्रकुपितःकायेतीव्रवायुसमीरितः ॥ भिनत्तिर्मर्मस्थानानिदीप्यमानोनिरिन्धनः ॥४९॥ उदानोनामपवनस्ततश्चोर्ध्वंप्रवर्त्तते ॥ भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥ ५० ॥ ततोयेनाम्बुदानानिकृतान्यन्नरसास्तथा ॥ दत्ताःसतस्यआह्लादमापदिप्रतिपद्यते ॥ ५१ ॥ अन्नानियेनदत्तानिश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ सोऽपितृप्तिमवाप्नोतिविनाप्यन्नेनवैतदा ॥ ५२ ॥ येनानृतानिनोक्तानिप्रीति भेदःकृतोनच ॥ आस्तिकःश्रद्दधानश्चससुखंमृत्युमृच्छति ॥ ५३ ॥ देवब्राह्मणपूजायांयेरतानोनसूयवः ॥ शुक्लावदान्याह्रीमन्तस्तेनराःसुखमृत्यवः ॥ ५४ ॥ योनकामान्नसंरम्भान्नद्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् ॥ यथोक्तकारीसौम्यश्चससुखंमृत्युमृच्छति ॥ ५५ ॥ अवारिदायिनोदाहंक्षुधांचानन्नदायिनः ॥ प्राप्नुवन्तिनराःकालेतस्मिन्मृत्यावुपस्थिते ॥ ५६ ॥

भी उससमय तृप्तिलाभ करते हैं ॥ ५२ ॥ जो पुरुष कभी मिथ्यानहीं बोलते, किसीकी प्रीतिमें भेद नहीं कराते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, उन्हींकी सुखसे मृत्यु होती है ॥ ५३ ॥ जो देवता और ब्राह्मणकी पूजामें रत हैं, जो असूयाहीन शुद्धचित्त, सुभाषी अर्थात् श्रेष्ठबोलनेवाले और लज्जावान् हैं, वही सुखपूर्वक प्राणत्याग करते हैं ॥ ५४ ॥ जो काम, क्रोध वा द्वेषके वश होकर कभी धर्मको नहीं छोड़ते, जो कहते हैं, वही करते हैं और सौम्यमूर्त्ति हैं वही सुखसे प्राणत्याग करते हैं ॥ ५५ ॥ और जिन्होंने कभी प्याससे आर्त्तहुए मनुष्यको जल और भूखसे दुःखी हुएको अन्न नहीं दिया, वह

उस मृत्युकालके उपस्थित होनेपर दाह और क्षुधाको प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ जो काष्ठदान करते हैं, उनको मृत्युकालमें शीत नहीं सताता, चंदनदान करते हैं वह ताप नहीं पाते और जो सदा प्राणियोंको भयभीत करते हैं, उन्हींको मृत्यु-कालमें कष्टदायक प्राणघ्नी वेदना भोगनी पड़ती है ॥ ५७ ॥ जो अधम मनुष्य मनुष्योंको मोह और अज्ञानकी शिक्षा देते हैं, वही प्राणत्यागके समय अत्यन्त भय पाते हैं और महादुःखसे पीडित होते हैं ॥ ५८ ॥ जो झूंठी गवाही देते मिथ्यावादी, वेदनिन्दक और बुरा शासन करते हैं, उनकी अज्ञानसे मृत्यु होतीहै ॥ ५९ ॥ और उनके मृत्युकालमें पूतिगंधमय कूट मुद्गर हाथमें लिये अत्यन्त भयंकर दुरात्मा यमदूत आते हैं ॥ ६० ॥ ज्योंही यमदूतगण नेत्रोंके सामनेआते हैं, उसी समय वह कांपते हुए शरीरसे भाई माता और पुत्रको पुकारकर

शीतंजयन्तिधनदास्तापंचन्दंनदायिनः ॥ प्राणघ्नींवेदनांकष्टांयेचानुद्वेगकारिणः ॥ ५७ ॥ मोहाज्ञानप्रदातारःप्राप्नुवन्तिमहद्भयम् ॥ वेदनाभिरुदग्राभिः प्रपीड्यन्तेऽधमानराः ॥५८॥ कूटसाक्षीमृषावादीयश्चासदनुशास्तिवै ॥ तेमोहमृत्यवःसर्वेतथान्येवेदनिन्दकाः ॥५९॥ विभीषणाःपूतिगन्धाःकूटमुद्गरपाणयः ॥ आगच्छन्तिदुरात्मानोयमस्यपुरुषास्तदा ॥६०॥ प्राप्तेषुदृक्पथंतेषुजायतेतस्यवेपथुः ॥ क्रन्दत्यविरतंसोऽथभ्रातृमातृसुतानथ ॥ ६१ ॥ सास्यवागस्फुटाता तएकवर्णाविभाव्यते ॥ दृष्टिश्चभ्राम्यतेत्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यथाननम् ॥ ६२ ॥ ऊर्ध्वश्वासान्वितःसोऽथदृष्टिभङ्गसमन्वितः ॥ ततःसवेदनाविष्टस्तच्छरीरंविमुंचति ॥ ६३ ॥ वाय्वग्रसारीतद्रूपंदेहमन्यत्प्रपद्यते ॥ तत्कर्मजंयातनार्थंनमातृपितृसम्भवम् ॥ तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैःप्राग्भवंयथा ॥ ६४ ॥ ततोदूतोयमस्याशुपाशैर्बध्नातिदारुणैः ॥ दण्डप्रहारसंभ्रान्तंकर्षतेदक्षिणांदिशम् ॥ ६५ ॥ कुशकण्टकवल्मीकशंकुपाषाणकर्कशे ॥ तथाप्रदीप्तज्वलनेक्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ॥ ६६ ॥

निरन्तर रोते हैं ॥ ६१ ॥ उस समय उनका वचन ठीक समझमें नहीं आता, एकवर्णमय होता है, दृष्टि घूमने लगती है और त्रास तथा श्वासके कारण मुख सूख जाता है ॥ ६२ ॥ अनन्तर वह ऊर्ध्वश्वास लेतेहुए दृष्टि भंगयुक्त हो वेदनासे ग्रसित होते हैं और वह शरीर छोड़ देते हैं ॥६३॥ फिर वायुके आगे होकर कर्मजनित यंत्रणा अर्थात् नरककी यातना भोगनेके लिये विना माता पिताके उत्पन्न अन्य देह धा-रण करते हैं और वह देह पूर्वकी समान वयस, अवस्था और संस्थानसे संयुक्त होता है ॥ ६४ ॥ अनन्तर यमदूत उनको दारुण पाशमें बांधकर दण्डके प्रहारसे संभ्रान्तकरते हुए दक्षिण दिशामें खैंचते हैं ॥ ६५ ॥ कुश, कांटे, वल्मीक, शंकु (कील)

और पत्थरोंसे कर्कश, कहीं जलती हुई अग्निसे व्याप्त, कहीं सैकड़ों गढे पड़े हुए॥ ६६ ॥ कहीं सूर्यकी महा उष्ण किरणोंसे जलतेहुए और कहीं सैकड़ों गीदड़ी शब्द करती हैं कहीं यमदूत खैंच रहे हैं ॥ ६७ ॥ वे घोर उस प्राणीको खेंचते हैं और सैकड़ों गीदड़ उसको खाते हैं, इसप्रकारके दारुण मार्गसे पापीपुरुष यमलोकको जाते हैं ॥ ६८ ॥ जिन मनुष्योंने छत्री, जूता, वस्त्र वा अन्नका दान किया है, वह सहजमें ही सुखपूर्वक उस मार्गमें जासकते हैं ॥ ६९ ॥ जिन मनुष्योंने भूमिका दान किया है, वह उज्वल विमानोंमें बैठकर जाते हैं। पापपीड़ित अर्थात् पापात्मामनुष्य इसप्रकार क्लेशानुभवसे विवश होकर बारहवें दिन धर्मराजके नगरमें पहुँचते हैं ॥ ७० ॥ जब शरीर जलता है, तब वह महादाह भोगते हैं और देहके ताड़ित वा छेदित होनेसे दारुण वेदना भोगते हैं ॥७१ ॥ यह देह जब जलमें गीला होता

प्रदीप्तादित्यतप्तेनदह्यमानेनदंशुभिः ॥ कृष्यतेयमदूतैश्चशिवासन्नादभीषणैः ॥ ६७ ॥ विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणःशिवाशतैः ॥ प्रयातिदारुणेमार्गे पापकर्मायमक्षयम् ॥ ६८ ॥ छत्रोपानत्प्रदातारोयेचवस्त्रप्रदानराः ॥ तेयान्तिमनुजामार्गंतंसुखेनतथान्नदाः ॥ ६९ ॥ विमानैःसोज्वलैर्यातिभूमिदानप्रदानराः ॥ एवंक्लेशाननुभवन्नवशःपापपीडितः ॥ नीयतेद्वादशाहेनधर्मराजपुरंनरः ॥ ७० ॥ कलेवरेदह्यमानेमहान्तंदाहमृच्छाति ॥ ताड्यमानेतथैवार्तिंछिद्यमाने चदारुणाम् ॥ ७१ ॥ क्लिद्यमानेचिरतरंजन्तुर्दुःखमवाप्नुते ॥ स्वेनकर्मविपाकेनदेहान्तरगतोऽपिसन् ॥ ७२ ॥ तत्रयद्बान्धवास्तोयंप्रयच्छन्तितिलैःसह ॥ यच्चपिण्डंप्रयच्छन्तिनीयमानस्तदश्नुते ॥७३ ॥ तैलाभ्यङ्गोबान्धवानामङ्गसंवाहनंचयत् ॥ तेनचाप्यायतेजन्तुर्यच्चाश्नन्तिस्वबान्धवाः ॥ ७४ ॥ भूमौस्व पद्भिर्नात्यन्तंक्लेशमाप्नोतिबान्धवैः ॥ दानंददद्भिश्चतथाजन्तुराप्याय्यतेमृतः ॥७५॥ नीयमानःस्वकंगेहंद्वादशाहंसपश्यति ॥ उपभुङ्क्तेतथादत्तंतोयपिण्डा दिकंभुवि ॥ ७६ ॥ द्वादशाहात्परंघोरमावासंभीषणाकृतिम् ॥ याम्यंपश्यत्यथोजन्तुःकृष्यमाणःपुरंततः ॥ ७७ ॥ गतमात्रोऽतिरक्ताक्षंभिन्नाञ्जनचयप्रभम् ॥ मृत्युकालान्तकादीनांमध्येपश्यतिवैयमम् ॥ ७८ ॥

है, तब देहान्तर अवलम्बन करनेपर भी अपने कर्मकेफलसे सदा दुःख अनुभवकरना पड़ता है ॥ ७२ ॥ बांधवगण उसके उद्देश्यमें जो तिलसहित जल वा पिण्ड देते हैं, उस समय वही उसके निकट पहुँचता है और वह उसीको भोजन करता है ॥७३॥ बांधवोंको तेल लगाना, उवटन मलना, वर्जित है. कारण कि, उस मृतकके भोजनको यही वस्तु प्राप्त होती है ॥ ७४ ॥ और बांधवोंके भूमिमें शयनकरनेसे उसका क्लेश दूर होता है और दान करनेसे वह जीव प्रसन्न होता है॥७५॥ वह बारहवें दिन फिर अपने घर पहुँचता है और उसके उद्देश्यमें जो जल तथा पिण्डादि दियाजाता है, वह उसीको खाता है ॥ ७६ ॥ बारह दिन बीतन पर फिर यमदूतोंके द्वारा आकर्षित हो अत्यन्त बृहत् भीषणाकार लोहमय यमपुर देखता है ॥ ७७ ॥ वहां जाय मृत्यु, काल, अन्तकादि पार्षदोंसे युक्त

रक्तलोचन और अंजनपुंजकी समान कृष्णवर्ण यमराजको देखता है ॥ ७८ ॥ वह डाढ और भ्रुकुटीभंग अतीव कराल वदन तथा विरूप भीषणाकार और वक्राकृति सैकड़ों व्याधिके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुएहैं ॥ ७९ ॥ वह महाबाहुयम दण्ड और पाश धारण करते हैं, इससे उनका आकार बडा भयंकर है, प्राणी उन्हीं यमराजकी निर्दिष्ट की हुई अच्छी बुरी गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥ जो मनुष्य मिथ्यावादी हैं और मिथ्यासाक्षी देते, हैं वह रौरव नामक नरकमें गिरते हैं. ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले, गौकी हत्या करनेवाले, पिताका घात करनेवाले ॥ ८१ ॥ खेत, स्त्री, सीमा, धरोहरके हरनेवाले, गुरुकी स्त्री वा कन्यासे भोग करनेवाले उसी रौरव नरकमें जाते हैं ॥ ८२ ॥ हे तात ! उस रौरव नरकका स्वरूप कहता हूं, सुनिये—वह रौरव नरक दो हजार योजनपरिमित लम्बा चौड़ा

दंष्ट्राकरालवदनंभ्रुकुटीदारुणाकृतिम् ॥ विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतंव्याधिशतैःप्रभुम् ॥ ७९ ॥ दण्डासक्तंमहाबाहुंपाशहस्तंसुभैरवम् ॥ तन्निर्दिष्टांततोयातिग तिंजन्तुःशुभाशुभाम् ॥ ८० ॥ रौरवेकूटसाक्षीतुयातियश्चानृतीनरः ॥ ब्रह्मघ्नोहत्ययादष्टोगोघ्नश्चपितृघातकः ॥ ८१ ॥ क्षेत्रदारापहारीचसीमानिक्षेपहारकः ॥ गुरुपत्न्यभिगामीचकन्यागामीतथैवच ॥ ८२ ॥ तस्यस्वरूपंगदतोरौरवस्यनिशामय ॥ योजनानांसहस्रेद्वेरौरवोहिप्रमाणतः ॥ जानुमात्रप्रमाणश्चततः श्वभ्रःसुदुस्तरः ॥ ८३ ॥ तत्राङ्गारचयोपेतंकृतंचधरणीसमम् ॥ जाज्वल्यमानस्तीव्रेणतापिताङ्गारभूमिना ॥८४॥ तन्मध्येपापकर्माणंविमुंचन्तियमानुगाः ॥ सदह्यमानस्तीव्रेणवह्निनातत्रधावति ॥ ८५ ॥ पदेपदेचपादोऽस्यशीर्यतेजीर्यतेपुनः ॥ अहोरात्रेणोद्धरणंपादन्यासंचगच्छति ॥ ८६ ॥ एवंसहस्रमुत्तीर्णोयो जनानांविमुच्यते ॥ ततोऽन्यत्पापशुद्ध्यर्थंतादृङ्निरयमृच्छति ॥ ८७ ॥ ॥ ततःसर्वेषुनिस्तीर्णःपापीतिर्यक्त्वमश्नुते ॥ कृमिकीटपतङ्गेषुश्वापद मशकादिषु ॥ ८८ ॥

है, और उसमें जांघकी बराबर गहरा गर्त (गढा) है ॥ ८३ ॥ उस गर्त्तमें मृत्तिकाके समान अंगारे और उन तीव्र अंगारोंसे तप्त होकर वह सदा जलता रहता है ॥ ८४ ॥ यमदूत पापात्मा मनुष्योंको उसमें डालदेते हैं और वह उस तीव्रअग्निमें दह्यमान होकर इधर उधर दौड़ते हैं ॥ ८५ ॥ इस प्रकार उसके पैर पग पग पर अग्निसे फटते और नष्ट होते हैं कि, दिन रातमें एकवार पैर रखने वा पैरउठानेमें समर्थ होता है ॥ ८६ ॥ इस भाँति चरण रखता हुआ सहस्रयोजन उत्तीर्ण होने पर वहांसे छुटकारा पाता है और पापशुद्धिके लिये उसीके समान दूसरे नरकमें जाता है ॥ ८७ ॥ पापी मनुष्य इस प्रकार सब नरकोंसे उत्तीर्ण

होकर तिर्यक् योनिको प्राप्त होता है। फिर क्रमानुसार कृमि, कीट, पतंग श्वापद(हिंसकजन्तु) मच्छर ॥ ८८ ॥ गौ, घोड़ा, हाथी, और वृक्ष लतादि अनेक प्रकारकी कष्टदायक पाप योनियोंमें जन्मग्रहण पूर्वक ॥ ८९ ॥ मनुष्यजन्मको प्राप्त हो कुवडा, कुत्सित, और बौना आदि रूपसे चाण्डाल और पुल्कस इत्यादि निन्दनीय योनियोंमें जन्म लेता है ॥ ९० ॥ फिर शेषपुण्यसे मनुष्ययोनिको प्राप्त होकर (यदि पुण्यसंचय करे तो) आरोहिणी गति पाय क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय ॥ ९१ ॥ ब्राह्मण और देवेन्द्रतक हो सकता है (और यदि फिर अधर्माचरण करे तो पुनर्वार) अवरोहिणी गतिको प्राप्त हो क्रमानुसार उन सब नरकोंमें गिरता है ॥ ९२ ॥ अब पुण्यवान् मनुष्य जिसप्रकारजाते हैं वह कहता हूं, सुनो—पुण्यवान् मनुष्य भी यमकी निर्दिष्ट करीहुई पुण्य

गत्वागजद्रुमाद्येषुगोष्वश्वेषुतथैवच ॥ अन्यासुचैवपापासुदुःखदासुचयोनिषु ॥ ८९ ॥ मानुष्यंप्राप्यकुब्जोवाकुत्सितोवामनोऽपिवा ॥ चण्डालपुल्कसाद्यासुनरोयोनिषुजायते ॥ ९० ॥ अवशिष्टेनपापेनपुण्येनचसमन्वितः ॥ ततश्चारोहणींजातिंशूद्रवैश्यनृपादिकाम् ॥ ९१ ॥ विप्रदेवेन्द्रताश्चापि कदाचिदवरोहणीम् ॥ एवन्तुपापकर्म्माणोनरकेषुपतन्त्यधः ॥ ९२ ॥ यथापुण्यकृतोयान्तितन्मेनिगदतःशृणु ॥ तेयमेनविनिर्दिष्टांयान्तिपुण्यांगतिंनराः ॥ ॥ ९३ ॥ प्रगीतगन्धर्वगणैःप्रनृत्ताप्सरसांगणैः ॥ हारनूपुरमाधुर्यशोभितान्युत्तमानिच ॥ ९४ ॥ प्रयान्त्याशुविमानानिनानादिव्यस्रगुज्ज्वलाः ॥ तस्माच्चप्रच्युताराज्ञामन्येषांचमहात्मनाम् ॥ ९५ ॥ जायन्तेचकुलेतत्रसद्वृत्तपरिपालकाः ॥ भोगान्संप्राप्नुवन्त्यग्र्यांस्ततोयान्त्यूर्ध्वमन्यथा ॥ ९६ ॥ अवरोहणीश्चसम्प्राप्यपूर्ववद्यान्तिमानवाः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयथाजन्तुर्विपद्यते ॥ अतःशृणुष्वविप्रर्षेयथागर्भंप्रपद्यते ॥ ९७ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादेमृत्युदशावर्णनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

मयी गतिको प्राप्त होते हैं॥ ९३ ॥ जिससमय वह गमन करते हैं, तब उनके चारों ओर गंधर्व गातेहुए जाते हैं अप्सरा नाचती हैं तथा हार नुपूर और माधुर्य इत्यादिसे शोभित अतिउत्तम॥ ९४ ॥ विमान उनके निकट आते हैं और वह शीघ्रही नानाप्रकारके दिव्य माल्यधारणसे उज्वल हो उनमें बैठकर जाते हैं, फिर पुण्य शेष होनेपर वह विमानसे गिरकर अन्य महात्मा॥ ९५ ॥ वा राजकुलमें जन्म ले सद्वृत्तिके पालन करनेवाले मनुष्य होते हैं और अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर क्रमशः ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥ और यदि अवरोहिणी दशामें प्राप्त हो, तो पहिले कहेके अनुसार समस्त भोगकरते हैं. हे तात ! प्राणीगण जिसप्रकारसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, वह आपसे सब वर्णन किया हे विप्रर्षे ! अब जिसप्रकारसे गर्भधारण होता है, वह सुनो ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

पुत्रने कहा—हे तात ! निषेककालमें स्त्रीके रजमें मनुष्यका जो वीर्य प्राप्त होताहै, स्वर्ग वा नरकसे छूटते ही मनुष्य उसको अवलम्बन करता है ॥ १ ॥ और उसकेद्वारा अभिभूत होकर वह दोनों बीज स्थैर्यभावको प्राप्त होते हैं, अर्थात् स्थिर हो जाते हैं, फिर कुछ गाढ़े बुलबुले लंबे गोल २ और अंडाकार भावको प्राप्त होते हैं ॥ २॥ उस लंबे गोल २ अंडाकारमें जो सूक्ष्म बीज रहता है, उसको अंकुरकहते हैं और अंकुरसे विभागके क्रमानुसार पांचों अंगकी उत्पत्ति होती है॥ ३ ॥ फिर समस्त उपाङ्ग अर्थात् अंगुली, नेत्र, नासिका, मुख और कान इत्यादिकी उत्पत्ति होती है और इस उपाङ्गसे जो अंकुर उत्पन्न होता है, उससे नखादिकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ फिर चर्मके ऊपर रोमावली और केश उत्पन्न होते हैं इसप्रकार उसके सब अंग और उद्भवकोश दोनोंही समान भावसे बढ़ते हैं ॥ ५ ॥ अर्थात्

पुत्रउवाच ॥ निषेकंमानवस्त्रीणांबीजंप्रोक्तंरजस्यथ ॥ विमुक्तमात्रोनरकात्स्वर्गाद्वापिप्रपद्यते ॥ १ ॥ तेनाभिभूतंतत्स्थैर्ययातिबीजद्वयंपितः ॥ कललत्वं बुद्बुदत्वंततःपेशित्वमेवच ॥ २ ॥ पेश्यास्तथाययथाबीजादंकुरादिसमुद्भवः ॥ अङ्गानांचतथोत्पत्तिःपंचानामनुभागशः ॥ ३ ॥ उपाङ्गान्यंगुलीनेत्रनासास्य श्रवणानिच ॥ प्ररोहंयान्तिचाङ्गेभ्यस्तद्वत्तेभ्योनखादिकम् ॥ ४ ॥ त्वचिरोमाणिजायन्तेकेशाश्चैवततःपरम् ॥ समंसमृद्धिमायातितेनैवोद्भवकाशकः ॥५॥ नारिकेलफलंयद्वत्सकोशंवृद्धिमृच्छति ॥ तद्वत्प्रयात्यसौवृद्धिंसकोशोऽधोमुखःस्थितः ॥ ६ ॥ तलेतुजानुपार्श्वाभ्यांकरौन्यस्यसवर्द्धते ॥ अंगुष्ठौचोप रिन्यस्तौजान्वोरग्रेतथांगुली ॥ ७ ॥ जानुपृष्ठेतथानेत्रेजानुमध्येचनासिका ॥ स्फिचौपार्ष्णिद्वयस्थेचबाहुजंघेबहिःस्थिते ॥ ८ ॥ एवंवृद्धिंक्रमाद्याति जन्तुःस्त्रीगर्भसंस्थितः ॥ अन्यसत्त्वोदरेजन्तोर्यथारूपंतथास्थितिः ॥ ९ ॥ काठिन्यमग्निनायातिभुक्तपीतेनजीवति ॥ पुण्यापुण्याश्रयमयीस्थितिर्जन्तो स्तथोदरे ॥ १० ॥

नारियल का फल जिसप्रकार कोषके सहित बढ़ता रहता है, ऐसेही वह प्राणी भी गर्भकोषके सहित नीचेको मस्तक किये वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ प्राणी जिस समय गर्भकोषमें नीचेको मुख किये वास करता है, तो जानु और पार्श्वकेसहित दोनों हाथ निम्नभागमें विन्यस्त रहते हैं, दोनों अँगूठे जानुके ऊपर रहते हैं और अन्यान्य समस्त अंगुली जानुके अग्रभागमें फैली रहती हैं ॥ ७ ॥ वहां दोनों नेत्र जानुके पृष्ठमें और नासिका दोनों जानुके मध्यभागमें संलग्न रहती हैं, उस समय दोनों स्फिक् (कूले) पार्ष्णिके ऊपर और बाहु तथा जंघा बहिर्भागमें स्थित रहती हैं ॥८॥ प्राणी गर्भवासमें स्थित होकर इसप्रकार क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होता है और अन्यान्य प्राणियोंमें जिसकी जैसी आकृति है, वह उसी प्रकार वहां वास करता है ॥ ९ ॥ उदरस्थ अग्निके द्वारा क्रमशः

कठिन होता है और भोजन किये वा पियेहुए पदार्थसे उसका जीवन धारण होता है, गर्भवास भी पुण्य और पापकी अधिकताके कारण भिन्न भिन्न प्रकारका है ॥ १० ॥ जो हो, उसकी नाभिमें जो आप्यायनी नामक नाडी निबद्ध रहती है; वह स्त्रीकी आंतमें संलग्न है ॥ ११ ॥ उस छिद्रद्वारा स्त्रीके खाये पिये सब पदार्थ वहां पहुँचते रहते हैं और उनके द्वारा देह तृप्त होकर वह जीव बढता रहता है ॥ १२ ॥ तब अनेक प्रकार संसारभूमि उसको स्मरण होती है और चारों ओरसे पीडित होकर वह अत्यन्त दुःखको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ दैवजनित पूर्वानुभूत शत शत जन्मके सब दुःखोंको स्मरणकर उस समय वह इस प्रकार चिन्ता करता है कि, "मैं इस उदरसे निकलते ही फिर ऐसे कार्य कभी नहीं करूंगा, अबकीबार इस विषयमें यत्नवान् रहूंगा, जिससे पुनर्वार गर्भ

नाडीचाप्यायनीनामनाभ्यांतस्यनिबध्यते ॥ स्त्रीणांतथान्त्रशुषिरेसानिबद्धोपजायते ॥ ११ ॥ क्रामन्तिभुक्तपीतानिस्त्रीणांगर्भोदरेयथा ॥ तैराप्यायितदेहोऽसौजन्तुर्वृद्धिमुपैतिवै ॥ १२ ॥ स्मृतिंतत्रप्रयान्त्यस्यबह्व्यःसंसारभूमयः ॥ ततोनिर्वेदमायातिपीड्यमानइतस्ततः ॥ १३ ॥ पुनर्नैवंकरिष्यामि मुक्तमात्रइहोदरात् ॥ तथातथायतिष्यामिगर्भंनाप्स्याम्यहंयथा ॥ १४ ॥ इतिचिन्तयतेस्मृत्वाजन्मदुःखशतानिवै ॥ यानिपूर्वानुभूतानिदैवभूतानियानिवै ॥ ॥१५॥ ततःकालक्रमाज्जन्तुःपरिवर्तत्यधोमुखः ॥ नवमेदशमेवापिमासिसञ्जायतेततः ॥१६॥ निष्क्राम्यमाणोवातेनप्राजापत्येनपीड्यते ॥ निष्क्राम्यतेचविलपन्हृदिदुःखनिपीडितः ॥१७॥ निष्कान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्यांप्रतिपद्यते ॥ प्राप्नोतिचेतनांचासौवायुस्पर्शसमन्वितः ॥ १८॥ ततस्तंवैष्णवीमायासमास्कन्दतिमोहिनी ॥ तयाविमोहितात्मासौज्ञानभ्रंशमवाप्नुते ॥ १९ ॥ भ्रष्टज्ञानोबालभावंततोजन्तुःप्रपद्यते ॥ ततःकौमारकावस्थांयौवनंवृद्धतामपि ॥ २० ॥ पुनश्चमरणंतद्वज्जन्मचाप्नोतिमानवः ॥ ततःसंसारचक्रेऽस्मिन्भ्राम्यतेघटियन्त्रवत् ॥ २१ ॥

वासका दुःख भोगना न पड़े" ॥ १४ ॥ १५ ॥ अनन्तर वह अधोमुख प्राणी कालक्रमसे नवमें वा दशवें महीने में जब परिवर्तित होता है, तब उसका जन्म होता है ॥ १६ ॥ उस काल वह प्राजापत्य वायुसे अत्यन्त पीडित होकर निकलता है और हृदयके अत्यन्त दुःखसे पीडित होकर विलाप करताहुआ बाहर आता है ॥ १७ ॥ इसप्रकार उदरसे निकलतेही उसको असह्य मूर्छा होती है और फिर वायुके स्पर्शसे चेतनाभी होजाती है ॥ १८ ॥ अनन्तर मोहिनी वैष्णवी माया उसको लिपट जाती है और उस मायासे विमोहितात्मा होनेपर उसका ज्ञान नष्ट होजाता है॥ १९ ॥ इसप्रकार ज्ञान नष्ट होनेपर वह प्राणी क्रमानुसार बाल्य कौमार यौवन और वृद्धावस्था इत्यादि नाना दशा भोगता है ॥ २० ॥ और फिर प्राण त्याग करके पुनर्वार उसी रूपमें जन्म लेता है सुतरां

घटीयंत्रके समान इस संसारचक्रमें निरंतर घूमता रहता है ॥ २१ ॥ वह कभी स्वर्गमें, कभी नरकमें और कभी दोनों स्थानोंमें गमन करता रहता है ॥ २२ ॥ और कभी इस स्थानमें ही फिर जन्म ग्रहण करके अपने सब कर्मफल भोगता है, कभी सब कर्मोंका फल भोगकर थोड़ेही कालमें प्राणत्याग करता है ॥ २३ ॥ हे द्विज सत्तम ! कभी केवल सामान्य शुभाशुभ द्वारा अतिअल्पकाल स्वर्ग वा नरक भोगता है॥ २४ ॥ स्वर्ग वासियोंको सुखमें अनेक प्रकारसे आमोद करता देखकर नरकमें पड़े पातकियोंके मनमें अत्यन्त दुःख उपस्थित होता है ॥ २५ ॥ किन्तु यहां स्वर्ग में भी दुःखकी सीमा नहीं है, क्योंकि स्वर्गमें रहनेके समयतक नित्य मनमें यह दुःख उपस्थित रहता है कि, " पुण्यक्षय होने पर हमको भी इसी प्रकार गिरना होगा " ॥ २६ ॥ हेतात ! उन नरकवासियोंको देखकर अत्यन्त दुःखी होते हैं और "हम

कदाचित्स्वर्गमाप्नोतिकदाचिन्निरयंनरः ॥ निरयंचैवस्वर्गंचकदाचिच्चमृतोश्नुते ॥ २२ ॥ कदाचिदत्रैवपुनर्जातःस्वंकर्मसोश्नुते ॥ कदाचिद्भुक्तकर्माचमृतः स्वल्पेनगच्छति ॥ २३ ॥ कदाचिदल्पैश्चततोजायतेत्रशुभाशुभैः ॥ स्वर्लोकेनरकेवापिभुक्तप्रायोद्विजोत्तम ॥ २४ ॥ नरकेषुमहद्दुःखमेतद्यत्स्वर्गवासिनः ॥ दृश्यन्तेतातमोदन्तेपात्यमानाश्चनारकाः ॥ २५ ॥ स्वर्गेपिदुःखमतुलंयदारोहणकालतः ॥ प्रभृत्यहंपतिष्यामीत्येतन्मनसिवर्तते ॥ ॥ २६ ॥ नरकांश्चैवसंप्रेक्ष्यमहद्दुःखमवाप्यते ॥ एतांगतिमहंगंतेत्यहर्निशमनिर्वृतः ॥ २७ ॥ गर्भवासेमहद्दुःखंजायमानस्ययोनितः ॥ जातस्य बालभावेचवृद्धत्वेदुःखमेवच ॥ २८ ॥ कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धंयौवनंचातिदुःसहम् ॥ दुःखप्रायावृद्धताचमरणेदुःखमुत्तमम् ॥ २९ ॥ कृष्यमाणश्चयाम्यैश्चनरकेषुचपात्यतः ॥ पुनश्चगर्भोजन्माथमरणंनरकस्तथा ॥ ३० ॥ एवंसंसारचक्रेस्मिञ्जन्तवोघटियन्त्रवत् ॥ भ्राम्यन्तेप्राकृतैर्बन्धैर्बद्धावध्यन्तिचासकृत् ॥ ३१ ॥

भी ऐसीही गतिको प्राप्त होंगे " यह विचार कर उनको रात दिन अत्यन्त दुःखी होना पड़ता है ॥ २७ ॥ एक तो गर्भवासही अत्यन्त दुःखमय है, उसमें भी फिर योनिके छिद्र द्वारा होकर जन्मग्रहण करना अत्यन्तही दुःखमय है, यदि जन्म हुआ तो बाल्यावस्था और वृद्ध अवस्था दोनों दुःखमय हैं ॥ २८ ॥ और काम ईर्षा और क्रोध इत्यादि कारणोंसे यौवन कालतो अत्यन्तही दुःखमय है और इसके ऊपर वृद्धावस्था तो दुःखकी खानिस्वरूप है और मरनेमें तो अत्यन्त कठिन दुःख है ही ॥ २९ ॥ तदनन्तर यमदूतगण जब उनको खेंचकर नरकमें डालते हैं, तब फिर दुःखकी सीमा नहीं रहती इस परभी फिर गर्भवास जन्मग्रहण, मरण और नरकमें वास होता है ॥ ३० ॥ इसप्रकार इस संसारचक्रमें सब प्राणी प्राकृत बंधनमें बँधकर घटीयंत्रके समान सदा भ्रमण करते हैं और वारंवार बंधनका दुःख

भोगते हैं ॥ ३१ ॥ सुतरां हे तात ! सैकड़ों दुःखों से भरे हुए इस संसार में सुखका लेश मात्रभीनहीं है, इसलिये मैं जब मुक्ति लाभके निमित्त यत्न करता हूं तो फिर त्रयी विद्याधर्म की सेवा क्यों करूं मैं तो अपरा विद्या प्राप्त करूंगा ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ पिताने कहा–हे साधु वत्स ! तुमने ज्ञान देनेके मिस महाफल देनेवाला परम संसारगहनका विषय भलीभाँति वर्णन किया ॥ १ ॥ और रौरव तथा अन्यान्य नरकोंका जो विषय वर्णन किया, हे महामते ! अब वही विस्तारसहित वर्णन करो ॥ २ ॥ पुत्र बोला–हे पिता ! मैं ने पहिले आपसे रौरव नरकका वर्णन तो कियाही है, अब महारौरव नामक नरकका विषय वर्णन करता हूं, सुनिये ॥ ३ ॥ न जानेयोग्य मार्गमें जानेवाले अभक्ष्यभक्षण करनेवाले, मित्रद्रोही, स्वामीके

नास्तिततातसुखंकिंचिदत्रदुःखशताकुले ॥ तस्मान्मोक्षाययततःकथंसेव्यामयात्रयी ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेगर्भस्थितिवर्णनंनामएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ पितोवाच ॥ साधुवत्सत्वयाख्यातंसंसारगहनंपरम् ॥ ज्ञानप्रदानसंभूतंसमाश्रित्यमहाफलम् ॥ १ ॥ तत्रतेनरकाःसर्वेयथावैरौरवस्तथा ॥ वर्णितास्तान्समाचक्ष्वविस्तरेणमहामते ॥ २ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ रौरवस्तेसमाख्यातःप्रथमंनरकोमया ॥ महारौरवसंज्ञंतुशृणुष्वनरकंपितः ॥ ३ ॥ अगम्यागमनेयेचअभक्ष्यभक्षणेरताः ॥ मित्रद्रोहकराश्चैवस्वामिविश्रंभघातकाः ॥ ४ ॥ परदाररताश्चैवस्वदारपरिवर्जिनः ॥ मार्गभंगकरायेचतडागाराममेदकाः ॥५॥ एतेन्येचदुराचारादह्यन्तेतत्रकिंकरैः ॥ योजनानांसहस्राणिसप्तपंचसमन्ततः ॥ तत्रताम्रमयीभूमिरधस्तस्याहुताशनः ॥ ६ ॥ तत्तापतप्तासासर्वाप्रोद्यद्विद्युत्समप्रभा ॥ विभात्यतिमहारौद्रादर्शनस्पर्शनादिषु ॥ ७ ॥ तस्यांबद्धःकराभ्यांचपद्भ्यांचैवयमानुगैः ॥ मुच्यतेपापकृन्मध्येलुंठमानःसगच्छति ॥ ८ ॥ काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा ॥ भक्ष्यमाणस्तथागृध्रैर्द्रुतंमार्गेविकृष्यते ॥ ९॥ दह्यमानःपितर्मातर्भ्रातस्तातेतिचाकुलः ॥ वदत्यसकृदुद्विग्नोनशान्तिमधिगच्छति ॥ १० ॥

विश्वासका नाश करनेवाले ॥ ४ ॥ पराई स्त्रीमें गमन करनेवाले, अपनी स्त्रीका त्याग करनेवाले, मार्ग, तडाग और उपवनोंके तोड़नेवाले ॥ ५ ॥ ऐसे ऐसे पापियोंको यमदूत वहां लेजाकर जलाते हैं, प्रमाण उसका बारह हजार योजन चारों ओर है, उसकी पृथ्वी ताम्रमयी है, जिसके नीचे अग्निकी खानि है ॥ ६ ॥ यह ताम्रमयी भूमि अनलके तापसे तप्त हो बिजलीकी प्रभाके समान समस्त दिशाविदिशा प्रकाशमान करती है, उसका देखना वा स्पर्श करना अत्यन्त भयंकर है ॥ ७ ॥ यमदूत पापियोंके हाथ पैर बांधकर उसमें छोड़ देते हैं और पापी उसमें पड़ेहुए लोटते हैं और उसके भीतर जाते हैं ॥ ८ ॥ मार्गमें वह काक, बगुले, भेड़िये, उल्लू, बीछू, मच्छर और गृध्र इत्यादिके द्वारा भक्षित होकर आकर्षित होते हैं ॥ ९ ॥ फिर दाहकी यंत्रणासे पीड़ित होकर व्याकुल चित्तसे "माता ! पिता ! भ्राता" इत्यादि

शब्द करते हैं और अत्यन्त उद्विग्न होकर शान्तिलाभ नहीं कर सकते हैं ॥ १० ॥ जो दुष्टबुद्धि मनुष्य सदा पाप करते हैं, वह इसप्रकार सहस्र सहस्र वर्षमें उसको अतिक्रमकर वहांसे छुटकारा पाते हैं ॥ ११ ॥ इसके पीछे घोर अंधकारसे ढकाहुआ तम नामक एक नरक है, वह महारौरव नरकके समान दीर्घ और स्वभावसेही अत्यन्त शीतमय है ॥ १२ ॥ उसमें गोवध करनेवाले भाईके मारने वाले और बालकोंका घात करनेवाले मनुष्य इस शीत संकटमें डाले जाते हैं॥ १३॥ जो इस नरकमें गिरते हैं वह उस दारुण अंधकारमें शीतसे आर्त्त हो इधर उधर दौड़ते हैं और अन्यान्य नारकियोंके संग मिलित हो उनके शरीरसे लिपट परस्पर का आश्रय करके वास करते हैं ॥ १४ ॥ शीतकी पीडासे अत्यन्त काँपनेके कारण उनके दाँत टूटते हैं और भूंख प्यास तथा अन्यान्य नानाप्रकारके समस्त उपद्रव अत्यन्त प्रबल होते हैं ॥ १५ ॥ हिमके खंड वहन करनेवाली दारुण वायु उनकी अस्थि भंगकर डालती है और उनसे जो मज्जा तथा रुधिर गिरता है वह

एवंतस्मान्नरैर्मोक्षोह्यतिक्रान्तैरवाप्यते ॥ वर्षायुतायुतैःपापैर्यैःकृतंदुष्टबुद्धिभिः ॥ ११ ॥ तथान्यस्तुतमोनामसोऽतिशीतःस्वभावतः ॥ महारौरववद्दीर्घस्तथा तितमसावृतः ॥ १२ ॥ गोवधश्चकृतोयेनभ्रातॄणांघातएवच ॥ अबन्नबालघातीचनीयतेशीतसंकरे ॥ १३ ॥ शीतार्त्तास्तत्रधावन्तिनरास्तमसिदारुणे ॥ परस्प रंसमासाद्यपरिरभ्याश्रयन्तिच ॥ १४ ॥ दन्तास्तेषांचभज्यन्तेशीतार्त्तिपरिकम्पिताः ॥ क्षुत्तृष्णाप्रबलातत्रतथैवान्येऽप्युपद्रवाः ॥ १५ ॥ हिमखण्डवहोवायु र्भिनत्त्यस्थीनिदारुणः ॥ मज्जासृग्गलितंतस्मादश्नुवन्तिक्षुधान्विताः ॥ १६ ॥ लेलिह्यमानाभ्राम्यन्तेपरस्परसमागमे ॥ एवंतत्रापिसुमहान्क्लेशस्तमसिमानवैः ॥ ॥ १७ ॥ प्राप्यतेब्राह्मणश्रेष्ठयावद्दुष्कृतसंक्षयः ॥ निकृन्तनइतिख्यातस्ततोऽन्योनरकोत्तमः ॥ १८ ॥ तस्मिन्कुलालचक्राणिभ्राम्यन्त्यविरतंपितः ॥ अदृष्टं दृष्टवद्ब्रूयादश्रुतंश्रुतमेवच ॥ १९ ॥ एकाक्षरंगुरुंयस्तुदुराचारोनमन्यते ॥ नशृणोतिगुरोर्वाक्यंशास्त्रवाक्यंतथैवच ॥ २० ॥ एतेपापादुराचारास्तत्रतैर्य मपूरुषैः ॥ तेष्वाराप्यनिकृत्यन्तेकालसूत्रेणमानवाः ॥ २१ ॥

अत्यन्त भूखसे आतुर होकर उसीको भोजन करते हैं ॥ १६ ॥ और आपसमें मिलित होकर एक दूसरेका शरीर चाटते हैं और इधर उधर भ्रमण करते हैं, इस प्रकारसे वहां मनुष्योंको बडा क्लेश होता है ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जबतक सम्यक् प्रकार पापोंका क्षय नहीं होता, मनुष्य तबतक उस तम नामक नरकमें इसप्रकार महा क्लेश भोगते रहते हैं,इसके पीछे निकृन्तन नामसे विख्यात एक प्रधान नरक है ॥१८॥ जो सदा कुम्हारके चाककी समान घूमाक रता है और उस चक्रमें पापियोंको कालसूत्रसे काटता रहता है जो न देखे एहुको देखेहुए और न सुनेहुएको सुनेहुएकी समान कहता है ॥ १९ ॥ जो दुराचारी एकाक्षर देनेवाले गुरुको ईश्वररूप नहीं मानता, गुरु वा शास्त्रका वचन नहीं सुनता ॥२०॥ वे पापात्मा दुराचारी मनुष्य उस चक्रके ऊपर आरोपित होकर यमदूतोंकेहाथोंमें

स्थित कालसूत्र द्वारा पैरोंसे मस्तक पर्यन्त काटे जाते हैं, किन्तु हे द्विजसत्तम ! इसपरभी उनका जीवन नष्ट नहीं होता ॥ २१ ॥ २२ ॥ और यह शत शत खंड होकर भी एकत्र संयुक्त होते हैं, अर्थात् वह फिर ज्योंके त्यों हो जाते हैं, इसप्रकार पापी मनुष्य सहस्र वर्ष छेदित रहते हैं ॥ २३ ॥ जबतक पापात्माओंके उन पापोंका क्षय नहीं होता । अब मुझसे अप्रतिष्ठ नामक नरकका विषय सुनो ॥ २४ ॥ जहां स्थित होकर नरकवासी असह्य क्लेश अनुभव करते हैं, जो अपने धर्ममें तत्पर ब्राह्मणोंका विघ्न करता है ॥ २५ ॥ उनको दारुण पाशमें बाँधकर चक्रसंकर नरकमें ले जाते हैं वह चक्र और घटीयंत्र ॥ २६ ॥ पाप करनेवाले मनुष्योंके दुःखके हेतुस्वरूप होते हैं, कोई कोई प्राणी उसी चक्रके ऊपर आरोपित होकर घुमाये जाते हैं ॥ २७ ॥ प्रायः हजारवर्ष

यमानुगांगुलिस्थेनआपादतलमस्तकम् ॥ नचैषांजीवितभ्रंशोजायतेद्विजसत्तम ॥ २२ ॥ छिन्नानितेषांशतशःखण्डान्यैक्यंव्रजन्तिच ॥ एवंवर्षसहस्राणिछिद्यन्तेपापकर्मिणः ॥ २३ ॥ तावद्यावदशेषंवैतत्पापंहिक्षयंगतम् ॥ अप्रतिष्ठंचनरकंशृणुष्वगदतोमम ॥ २४ ॥ यत्र स्थैर्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते ॥ स्वधर्मरतविप्राणांविघ्नंयस्तुसमाचरेत् ॥ २५ ॥ सबद्धैर्दारुणैःपाशैर्नीयतेचक्रसंकरैः ॥ तान्येवतत्रचक्राणिघटीयन्त्राणिचान्यतः ॥ २६ ॥ दुःखस्यहेतुभूतानिपापकर्मकृतांनृणाम् ॥ चक्रेष्वारोपिताःकेचिद्भ्राम्यन्तेतत्रमानवाः ॥ २७ ॥ यावद्वर्षसहस्राणिनतेषांस्थितिरन्तरा ॥ घटीयन्त्रेषुचैवान्योबद्धस्तोयेयथाघटी ॥ २८ ॥ भ्राम्यन्तेमानवारक्तमुद्गिरन्तःपुनःपुनः ॥ अन्त्रैर्मुखेविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरग्रावलम्बिभिः ॥ २९ ॥ दुःखानितेप्राप्नुवन्तियान्यसह्यानिजन्तुभिः ॥ असिपत्रवनंनामनरकंशृणुचापरम् ॥ ३० ॥ योजनानांसहस्रंयोज्वलदग्न्यास्तृतावनिः ॥ ब्रह्मचारिव्रतानांचतपसांविघ्नमाचरेत् ॥ ३१ ॥ असिपत्रवनंयांतियेसदोद्वेगकारिणः ॥ तप्ताःसूर्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीवसुदारुणैः ॥ ३२ ॥

उनको उसमें अवस्थान करना पड़ता है, कोई कोई पापात्मा छोटे घड़ेके समान बंधकर ॥ २८ ॥ उसी घटीयंत्रके द्वारा घूमते हैं, और वारंवार रक्तको वमन करते हैं, उन प्राणियोंकी आंतें वहां मुखसे निकल आती हैं रक्तधारा बहती है और नेत्र निकल आते हैं ॥ २९ ॥ वहां वह प्राणियोंसे अत्यन्त पीडित होकर असह्य दुःख अनुभव करते हैं इसके पीछे असिपत्रनामक अन्य दारुण नरकका विषय वर्णन करता हूं सुनिये ॥ ३० ॥ यह नरक जलती हुई अग्निसे पृथ्वीको सहस्र योजन आक्रमण करके स्थित है जो ब्रह्मचारीके व्रत और तपमें विघ्न करते हैं ॥ ३१ ॥ वह उद्वेगकारि उस असिपत्र वनमें जाते हैं. नरकवासी प्राणी

भयंकर प्रचण्ड सूर्यकी किरणोंसे तपकर ॥ ३२ ॥ इस नरकमें गिरते हैं उसमें एक अति मनोहर वन है देखनेसे उसके सब पत्ते अत्यन्त चिकने बोध होते हैं ॥ ३३ ॥ किन्तु हे द्विजसत्तम ! उसके सब पत्ते खड्ग फलकमय हैं, वहां बड़े बड़े बली कुत्ते भोंकते रहते हैं ॥ ३४ ॥ व्याघ्रके समान उनके बड़े मुख, तीव्र डाढोंवाले और बड़े भयंकर हैं उस वन की ठंढी छाया देखकर ॥ ३५ ॥ भूख प्याससे कातर हुए प्राणी उसमें प्रवेश करते हैं और अत्यन्त दुःखित चित्तसे "हा माता ! हा पिता !" कह कर रोते हैं ॥ ३६ ॥ पृथ्वीकी अग्निसे उनके पैर जलजाते हैं, वहां जानेके पीछे असिपत्र पाती समीरण ॥ ३७ ॥ प्रवाहित होता है और उसके द्वारा उनके ऊपर वह सब खड्ग गिरते हैं, तब वह जलती हुई अग्निमें गिरते हैं ॥ ३८ ॥ और जीभ चाटते

प्रपतन्तिसदातत्रप्राणिनोनरकौकसः ॥ तन्मध्येचवनंरम्यंस्निग्धपत्रंविभाव्यते ॥३३॥ पत्राणितत्रखड्गानांफलानिद्विजसत्तम ॥ श्वानश्चतत्रसबलाःस्वनन्त्ययुतशोऽभितः ॥ ३४ ॥ महावक्त्रामहादंष्ट्राव्याघ्राइवभयानकाः ॥ ततस्तद्वनमालोक्यशिशिरच्छायमग्रतः ॥३५॥ प्रयान्तिप्राणिनस्तत्रतृट्तापपरिपीडिताः ॥ हामातर्हातातइतिक्रन्दन्तोऽतीवदुःखिताः ॥ ३६ ॥ दह्यमानाङ्घ्रियुगलाधरणीस्थेनवह्निना ॥ तेषांगतानांतत्रासिपत्रपातीसमीरणः ॥ ३७ ॥ प्रवातितेनपात्यन्तेतेषांखड्गास्तथोपरि ॥ ततःपतन्तितेभूमौज्वलत्पावकसंचये ॥ ३८ ॥ लेलिह्यमानेचातीवव्याप्ताशेषमहीतले ॥ सारमेयास्ततःशीघ्रंशातयन्तिशरीरतः ॥ ॥३९॥ तेषामंगानिरुदतांत्वचश्चातीवभीषणाः ॥ असिपत्रवनंतातमयैतत्कीर्तितंतव ॥ ४० ॥ अतःपरंभीमतरंतप्तकुम्भंनिबोधमे ॥ समन्ततस्तत्तप्तकुम्भावह्निज्वालासमावृताः ॥ ४१ ॥ ज्वलदग्निचयोत्तप्तास्तैलायश्चूर्णपूरिताः ॥ तेषुदुष्कृतकर्माणोयाम्यैःक्षिप्तास्त्वधोमुखाः ॥ ४२ ॥ दूषयेद्धर्मशास्त्राणियेचान्येतीर्थंदूषकाः ॥ भुक्तभोगांतुयोनारीमिष्यमाणांप्रियांशुभाम् ॥ ४३ ॥ अदृष्टामपिदोषेणत्यजतेमूढचेतनः ॥ तेसमानीयपच्यंतेलोहकुम्भेषुशीघ्रतः ॥ ४४ ॥

हुए भूमिमें गिरते हैं, तदनन्तर वहां अतिभयंकर कुत्ते उन रोते हुओंके शरीरके सब अंग छिन्न भिन्न करते हैं. हे तात ! यह असिपत्रवन नामक नरकका विषय आपसे कहा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसके पीछे इससे भी भयंकर तप्तकुम्भ नामक नरकका विषय वर्णन करताहूं, सुनिये । इस नरकके चारोंओर अग्निकी शिखा उठती रहती है ॥ ४१ ॥ जलतीहुई अग्निसे तप्त तैल और लौहचूर्णपरिपूर्ण तप्तकुम्भ वर्तमान है, यमके दूत पापी मनुष्योंको अधोमुख करके उसमें डालते हैं ॥ ४२ ॥ जो धर्मशास्त्र और तीर्थोंको दूषित करते हैं, जो भुक्तभोगा इष्टप्रिया शुभा स्त्रीको ॥ ४३ ॥ मूर्खतासे विना दोष देखे त्यागन करते हैं, वह इस लोहकुम्भ

नरकमें डालेजाते हैं ॥ ४४ ॥ उसी समय उनके देह फट जाते हैं और मज्जा जल सब उनका जल जाता है, इसप्रकार वे पकाये जाते हैं. उनके कपाल नेत्र और समस्त अस्थियें फूट जाती हैं और भयंकरतासे छिन्न भिन्न किये जाते हैं ॥ ४५ ॥ और भयंकर वेगवान् सब गृध्र उनको वहांसे उठाकर फिर उसमें डालते हैं और वह चुरते हुए तैलमें ऐक्यताको प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥ मस्तक, गात्र, स्नायु, मांस, त्वक् और अस्थिके सहित द्रवीभूत होकर तैलके संग मिलजाते हैं फिर यमदूतगण उन पापात्माओंको दर्वीद्वारा कूटकर ॥ ४७ ॥ महातैलके गर्त में डालकर मथते हैं. हे पिता ! आपसे वह तप्तकुंभ इत्यादि नरकोंका विषय विस्तारसहित मैंने वर्णन किया ॥ ४८ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥

क्वाथ्यन्तेविस्फुटद्गात्राज्ज्वलन्मज्जाजलाविलाः॥ स्फुटत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमानाविभीषणैः॥४५॥ गृध्रैरुत्पाटचमुच्यन्तेपुनस्तेष्ववेवेगितैः॥पुनःसिमसिमायन्तेतैलेनैक्यंव्रजन्तिच ॥४६॥ द्रवीभूतैःशिरोगात्रस्नायुमांसत्वगस्थिभिः॥ ततोयाम्यैर्भटैराशुदर्वीघट्टनघट्टिताः॥४७॥ कृतावर्तेमहातैलेमथ्यन्तेपापकर्मिणः॥ एषतेविस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भोमयापितः॥ ४८ ॥ इतिमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेमहारौरवादिनरकाख्यानकथनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ अहंवैश्यकुलेजातोजन्मन्यस्मात्तुसप्तमे ॥ समतीतेगवांरोधंनिपानेकृतवान्पुरा ॥ १ ॥ विपाकात्कर्मणस्तस्यनरकंभृशदारुणम् ॥ संप्राप्तोऽग्निशिखापूर्णमयोमुखखगाकुलम् ॥ २ ॥ यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भूतकर्दमम् ॥ विकृष्यमाणदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम् ॥ ३ ॥ पात्यमानस्यमेतत्रसाग्रंवर्षशतंगतम् ॥ महातापार्तितप्तस्यतृष्णादाहान्वितस्यच ॥ ४ ॥ तत्राह्लादकरःसद्यःपवनःसुखशीतलः ॥ करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थेवैसमागतः॥ ५ ॥

पुत्रने कहा—हे तात ! इस जन्मसे सात जन्म पहिले मैंने वैश्यकुलमें जन्मग्रहण किया था, तब निपान (पौसेरे) में गायोंकी गति रोध की थी अर्थात् उनको जल नहीं पीने दिया था ॥ १ ॥ उसी कर्मके फलसे मैं भयंकर दारुण नरकमें गिरा, मैं जिस नरकमें गिरा था, वह अग्नि शिखामय और लोहेके मुखवाले पक्षियोंसे भराथा ॥ २ ॥ यंत्रनिपीडित पापियोंके शरीरसे निकले रुधिरप्रवाहकी वहां कीच रहती है और वह मारे जाते हुए दुष्कर्मियोंके उस नरकमें पड़ने से उत्पन्न हुए आर्त्तनादद्वारा व्याप्त था ॥ ३ ॥ मैं ने वहां महातापकी पीड़ासे उत्तप्त प्याससे दुःखी होकर कुछ अधिक एकसौ वर्ष काटे थे ॥ ४ ॥ अकस्मात् एक दिन करम्भ

वालुकावाले घड़ेके कुम्भमध्यसे प्रसन्नता करनेवाली सुखशीतल पवन चलनेलगी ॥ ५ ॥ उस पवनके स्पर्शसे मेरी और अन्यान्य नरकवासी प्राणियोंकी यंत्रणा जाती रही. तब सभी स्वर्गस्थ स्वर्गवासियोंकी समान परमानन्द अनुभवकरने लगे ॥ ६ ॥ फिर जब हमने "यह क्या है" इसप्रकार कह प्रसन्नतासे उत्पन्न आश्चर्य और स्थिर नेत्रोंसे इधर उधर देखा, वैसेही निकटवर्त्ती एकअनुत्तम मनुष्यरत्न हमको दिखाई दिया ॥ ७ ॥ और यह भी देखा कि, एक भयंकर वज्रतुल्य दण्ड हाथ में लिये यमदूत "इधर आओ" कह कर मार्गदिखाता है ॥८॥ तब वह सब प्राणी उसके दर्शनका सुख मान हाथ जोड़कर बोले आप यहाँ क्षणमात्रको ठहरिये ॥ ९ ॥ तुम्हारे गात्रका संगी पवन हमको सुखकारक है, तब वह कृपा करके नरकके समीप स्थित हुए ॥ १० ॥ अनन्तर उस

अकस्मादेवभोस्तातनररत्नंसमागतम्॥ तत्सम्पर्कादशेषाणांनाभवद्यातनानृणाम् ॥ ममचापियथास्वर्गेस्वर्गिणांनिर्वृतिःपरा ॥ ६ ॥ किमेतदितिचाह्लाद विस्तारास्तिमितेक्षणैः ॥ दृष्टमस्माभिरासन्नंनररत्नमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ याम्यश्चपुरुषोघोरोदण्डहस्तोल्लसत्प्रभः॥ पुरतोदर्शयन्मार्गमितएहीतिचब्रुवन् ॥ ८॥ ततस्तेजन्तवःसर्वेमत्वातद्दर्शनात्सुखम् ॥ ऊचुःप्रांजलयोभूयंक्षणमात्रंस्थितोभव ॥ ९ ॥ त्वद्गात्रसंगीपवनोह्यस्माकंसुखकारकः॥ ततोसौनरकाभ्याशेउपविष्टःकृपान्वितः ॥ १० ॥ पुरुषःसतदादृष्ट्वायातनाशतसंकुलम् ॥ नरकंप्राहतंयाम्यंकिङ्करंकृपयान्वितः॥ ११ ॥ पुरुषउवाच ॥ भोयाम्यपुरुषाचक्ष्वकिंमयादुष्कृतंकृतम् ॥ येनेदंयातनाभीमंप्राप्तोऽस्मिनरकंपरम् ॥ १२ ॥ विपश्चिदितिविख्यातोजनकानामहंकुले ॥ जातोविदेहविषयेसम्यङ्मनुजपालकः ॥ १३ ॥ चातुर्वर्ण्यंस्वधर्मस्थंकृत्वासंरक्षितंमया ॥ धर्मतोधर्मकल्पेनमनुनात्रयथापुरा ॥ १४ ॥ यज्ञैर्मयेष्टंबहुभिर्धर्मतः पालितामही ॥ नोत्सृष्टश्चैवसंग्रामोनातिथिर्विमुखोगतः ॥ १५ ॥ पितृदेवर्षिभृत्याश्चनचापचरितामया ॥ महातापार्तितप्तस्यतृष्णादाहार्दितस्यच ॥ १६ ॥ सर्वस्यजीवभूतस्यकृतंत्राणंसदामया ॥ कृतास्पृहाचनमयापरस्त्रीविभवादिषु ॥ १७॥

पुरुषने सैकडों दुःखोंसे पूर्ण नरक देखकर कृपाभरे चित्तसे यमदूतों से कहा॥ ११ ॥ पुरुष बोला—हे यमपुरुषो ! शीघ्र कहो, मैं ने ऐसा क्या पाप किया है? जिस पापसे मैं इस अत्यन्त भयंकर यातनामय नरकमेंआयाहूं ॥१२॥ क्योंकि मैं पितृकुलमें विपश्चित् अर्थात् पंडित कहकर विख्यात था, इसी कारण विदेहराज्यमें उत्कृष्ट प्रजापालक हुआथा ॥ १३ ॥ मैंने धर्मपूर्वक चारों वर्णोंकी रक्षा कीहै और मनुकी समान सब धर्मपूर्वक किया ॥ १४ ॥ मैं ने अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान कियाहै और धर्मानुसार पृथ्वीपालन की है, मैंने कभी संग्राम परित्याग नहींकिया और मेरे निकटसे कभी अतिथि विमुख नहीं हुआ ॥ १५ ॥ मैंने पितृ, देवता, ऋषि वा सेवकोंकोभी दुःखी नहीं किया, महातापसे तप्त और तृष्णादाहसे व्याकुल ॥ १६ ॥ सब प्राणियोंकी मैंने सदा रक्षा की है, पराये धन वा

पराई स्त्रीमें मेरी स्पृहा नहीं थी ॥ १७ ॥ गायें जिसप्रकार निपान अर्थात् पौसेरेमें आतीं हैं, इसीप्रकार पर्वकालमें मेरे निकट पितृगण और तिथिकालमें देवतागण आतेथे ॥ १८ ॥ देवता वा पितृ जिस गृहस्थके निकटसे विमुख जाते हैं, उसके यज्ञ वा पूर्त्त दोनों धर्मोंका नाश होता हैं ॥ १९ ॥ पितरोंके निराश होनेसे सात जन्मका पुण्य नष्ट होता है और देवताके निराश होनेसे तीन जन्मका संचित पुण्य नष्ट होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ इसी कारण मैं देवता और पितरोंके कार्यमें सदा तत्पर था, तो फिर किस निमित्त इस अत्यन्त दारुण नरकमें प्राप्त हुआहूं ॥ २१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
पुत्रने कहा—हे तात ! मैं उस समय सुनने लगा कि, उस महात्माके इसप्रकार पूँछनेपर यमपुरुषने अत्यन्त भयंकर होनेपरभी नम्र वचनसे उत्तर दिया ॥ १ ॥

पर्वकालेषुपितरस्तिथिकालेषुदेवताः ॥ पुरुषंस्वयमायान्तिनिपानमिवधेनवः ॥ १८ ॥ यतस्तेविमुखायान्तिनिःस्वस्यगृहमेधिनः ॥ तस्मादिष्टश्चपूर्तं श्चधर्मौद्वावपिनश्यतः ॥ १९ ॥ पितृनिश्वासविध्वस्तंसप्तजन्मार्जितंधनम् ॥ त्रिजन्मप्रभवंदैवोनिश्वासोहन्त्यसंशयम् ॥ २० ॥ तस्माद्दैवेचपित्र्येचानि त्यमेवहितोऽभवम् ॥ सोऽहंकथमिमंप्राप्तोनरकंभृशदारुणम् ॥ २१ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
॥ पुत्रउवाच ॥ इतिपृष्टस्तदातेनशृण्वतांनोमहात्मना ॥ उवाचपुरुषोयाम्योघोरोऽपिप्राश्रितंवचः ॥ १ ॥ ॥ यमकिङ्करउवाच ॥ महाराजयथात्थत्वंतथैतन्ना त्रसंशयः ॥ किन्तुस्वल्पंकृतंपापंभवतास्मारयामितत् ॥ २ ॥ वैदर्भीतवयापत्नीपीवरीनामनामतः ॥ ऋतुमत्याऋतुर्वन्ध्यस्त्वयातस्याःकृतःपुरा ॥ ३ ॥ सुशोभनायांकैकेय्यामासक्तेनततोभवान् ॥ ऋतुव्यतिक्रमात्प्राप्तोनरकंघोरमीदृशम् ॥४॥ होमकालेयथावह्निराज्यपातमवेक्षते ॥ ऋतौप्रजापतिस्तद्वद्बीजपात मवेक्षते ॥ ५ ॥

यमदूत बोला—हे महाराज ! आप जो कहते हैं, वह सत्य है, इसमें संशय नहीं किन्तु हे महाशय ! आपने अति सामान्य पाप किया है, वह आपको स्मरण करातांहूं ॥ २ ॥ विदर्भदेशोत्पन्न पीवरी नामक जो आपकी एक पत्नी थी; पूर्वमें उसके ऋतुमती होनेपर आपने उसकी ऋतुको विफल कियाथा ॥ ३ ॥ क्योंकि आप उस समय केकयदेशकी उत्पन्न हुई सुशोभनाके प्रति अत्यन्त आसक्तचित्त थे, अतएव ऋतुका व्यतिक्रम होनेसे आप इस घोर नरकमें प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ अग्नि जिस प्रकार होमकालमें आहुतिकी आकांक्षा करता है, इसीप्रकार प्रजापति ऋतुकालमें उस बीजपातकी अभिलाषा करते रहते हैं ॥ ५ ॥

जो धर्मात्मा पुरुष इसको उल्लंघन करके अन्यके प्रति कामासक्तचित्त होते हैं उनको पितरोंके ऋणसे पापरूपी कीचड़में लिप्त होकर नरकमें गिरना पडता है ॥ ६ ॥ हे महाराज ! आपने केवल यही पाप किया है, इसके अतिरिक्त आपका और कोई पाप नहीं है अत एव हे पार्थिव ! आओ, समस्त पुण्यका फल भोगनेके लिये चलो यह सुनकर वह राजर्षि कृपापूर्वक बोले ॥ ७ ॥ राजाने कहा हे देवानुचर ! तुम जहां लेजाओगे मैं वहीं जाऊंगा किन्तु मैं जो कुछ पूँछताहूं, इसका ठीक ठीक उत्तर दो ॥ ८ ॥ हे यमकिंकर ! यह वज्रतुण्ड कौवे इन पुरुषोंके नेत्र हरण करतेहैं, किन्तु उनके नेत्र फिर वारम्वार उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥ इन्होंने किस निन्दित कार्यका अनुष्ठान किया है: देखो—इनकी जीभ हरी जाकरभी फिर नवीन उत्पन्नहोती है ॥ १० ॥ यह किसलिये करपत्रकी मार खाकर अत्यन्त दुःख भोगते

यस्तमुल्लंघ्यधर्मात्माकामेष्वासक्तिमान्भवेत् ॥ सतुपित्र्यादृणात्पापमवाप्यनरकंपतेत् ॥ ६ ॥ एतावदेवतेपापंनान्यत्किञ्चनविद्यते ॥ तदेह्यागच्छपुण्यानामुपभोगायपार्थिव ॥ एतच्छ्रुत्वातुराजर्षिःकृपयाजनकोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ यास्यामिदेवानुचरयत्रत्वंमांनयिष्यसि ॥ किंचित्पृच्छामितन्मेत्वंयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ वज्रतुण्डास्त्वमीकाकाःपुंसांनयनहारिणः ॥ पुनःपुनश्चनेत्राणितद्वदेषांभवन्तिहि ॥ ९ ॥ किंकर्मकृतवन्तश्चकथयैतज्जुगुप्सितम् ॥ हरन्त्येषांतथाजिह्वांजायमानांपुनर्नवाम् ॥ १० ॥ करपत्रेणपाट्यन्तेकस्माद्देतेऽतिदुःखिताः ॥ करम्भवालुकास्थाश्चतथैतेक्काथतैलगाः ॥ ॥ ११ ॥ अयोमुखैःखगैश्चैवकृष्यन्तेकिंविधावद ॥ विश्लिष्टदेहबन्धार्तिमहारावविराविणः ॥ १२ ॥ अयश्चंचूनिपातेनसर्वाङ्गक्षतविक्षताः ॥ किमेतेनिःस्वनन्तोपितुद्यन्तेऽहर्निशंनराः ॥ १३ ॥ एताश्चान्याश्चदृश्यन्तेयातनाःपापकर्मिणाम् ॥ येनकर्मविपाकेनतन्ममोद्देशतोवद ॥ १४ ॥ यमकिङ्करउवाच ॥ यन्मांपृच्छसिभूपालपापकर्मफलोदयम् ॥ तत्तेऽहंसंप्रवक्ष्यामिसंक्षेपेणयथातथम् ॥ १५ ॥

हैं ? और तप्ते वालू तथा खौलते हुए तेलमें भुनरहे हैं ? ॥ ११ ॥ किसलिये लौहमुख पक्षियोंके आकर्षण करनेपर देहबंधन छिन्न होनेकी पीड़ासे पीडित हो कर बड़े शब्दसे चिल्लाते हैं ? ॥ १२ ॥ और पक्षियोंके लोहमय तुण्डाघातसे सर्वाङ्ग क्षत विक्षत होकर दारुण यंत्रणा भोगते हैं इन मनुष्योंने कैसे पापका आचरण किया है, जो रातदिन ऐसी यंत्रणा भोगते हैं ? ॥ १३ ॥ और भी देखता हूं कि, पापात्मागण ऐसी तथा अन्य प्रकारकी नाना यंत्रणा भोगते हैं. हे यमकिंकर यह दुःख किस कर्मके फलसे उपस्थित हुए हैं ? सो आद्योपान्त मुझसे वर्णन करो॥ १४ ॥ यमकिंकरने कहा—हे भूपाल ! पापकर्मके फलोदय विषयमें जो आपने

पूँछा, वह संक्षेपसे आपके निकट यथावत् वर्णन करताहूं ॥ १५ ॥ पुरुष क्रमानुसारही पुण्य पाप भोगते हैं और भोगनेसेही पुण्य वा पापका क्षय होता है ॥ १६॥ भोगे विना पुण्य वा पाप कोई कर्म भी मनुष्यके शुद्धिविधानमें समर्थ नहीं होताऔर भोग होनेसे वह शीघ्रही क्षय होजाता है. हे राजन् ! सुनो पुण्य पाप भोगा जानेपर ही मनुष्यको छुटकारा मिलता है, तिनमें जो पापात्मा हैं वही दरिद्री होते हैं और दुर्भिक्षपर दुर्भिक्ष, क्लेशसे क्लेश, भयसे भय और मृत्यु पर मृत्यु प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ कर्मबंधनसे प्राणी नाना प्रकारकी गति भोगते हैं, उत्सवसे उत्सव, स्वर्ग से स्वर्ग और सुखपर सुख पाते हैं ॥ १९ ॥ जो कि, श्रद्धावान्, शान्तचित्त, धनदाता और सुखकारी हैं । और पापीपुरुष व्याल और कुंजरादिके द्वारा दुर्गम तथा सर्प और चोर इत्यादिके भयसे युक्त स्थानमें ॥ २० ॥

पुण्यापुण्येहिपुरुषःपर्यायेणसमश्नुते ॥ भुञ्जतश्चक्षयंयातिपापंपुण्यमथापिवा ॥ १६ ॥ नतुभोगादृते पुण्यंपापंवाकर्ममानवः ॥ परित्यजतिभोगाच्चपुण्यापुण्येनिबोधमे ॥ १७ ॥ दुर्भिक्षादेवदुर्भिक्षंक्लेशात्क्लेशंभयाद्भयम् ॥ मृतेभ्यःप्रमृतायान्तिदरिद्राःपापकर्मिणः ॥ १८ ॥ गतिंनानाविधांयान्तिजन्तवःकर्मबन्धनात् ॥ उत्सवादुत्सवंयान्तिस्वर्गात्स्वर्गंसुखात्सुखम् ॥ १९ ॥ श्रद्दधानाश्चदान्ताश्चधनदाःशुभकारिणः ॥ व्याघ्रकुंजरदुर्गाणिसर्पचौरभयानितु ॥ ॥ २० ॥ हताःपापेनगच्छान्तिपापिनःकिमतःपरम् ॥ सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशनाः ॥ २१ ॥ स्तूयमानाः सदायान्तिपुण्यैःपुण्याटवीष्वपि ॥ अनेकशतसाहस्रजन्मसंचयसंचितम् ॥ २२ ॥ पुण्यापुण्यंनृणांतद्वत्सुखदुःखांकुरोद्भवम् ॥ यथाबीजंहिभूपालपयांसिसमवेक्षते ॥ २३ ॥ पुण्यापुण्येतथाकालदेशान्यकर्मकारकम् ॥ स्वल्पंपापंकृतंपुंसांदेशकालोपपादितम् ॥ २४ ॥ पादन्यासकृतंदुःखंकण्टकोत्थं प्रयच्छति ॥ तत्प्रभूततरं स्थूलशंकुकीलकसम्भवम् ॥ २५ ॥ दुःखंयच्छतितद्वच्चशिरोरोगादिदुःसहम् ॥ अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम् ॥ २६ ॥

पापसे हत हुए गमन करते हैं. इसके अतिरिक्त उनकी और दूसरी क्या गति होसकती है. और सुगंधित माला, अच्छे वस्त्र, यान और भोजनको ॥ २१ ॥ अपने पुण्योंके बलसे महात्मा प्राप्त करते हैं वे स्तुतिको प्राप्त हुए सदा पवित्रस्थानोंमें आते हैं. अनेक सैकडों हजार जन्मोंमें संचय किये हुए ॥ २२ ॥ जो पुण्य पाप प्राणी इकट्ठा करते हैं, हे भूपाल ! वही उनके सुख दुःखके अंकुररूपमें उत्पन्न होता है, समस्त बीज जिसप्रकार जलकी अपेक्षा करते हैं ॥ २३ ॥ पुण्य पापभी इसीप्रकार काल, देश और पात्रकी अपेक्षा करते हैं. यदि पुरुषने देश कालमें स्वल्पमात्र पापभी किया हो तो ॥ २४ ॥ चरण रखनेमात्रसे कंटकजनित सामान्य दुःख ही अनुभव करता है, और बहुत पापोंका आचरणकरनेसे उसको शूल और कीलकादिसे उत्पन्न ॥ २५ ॥ शिरोरोगादि दारुण

दुःसह दुःख भोगना पड़ता है, जैसे अपथ्य अन्न, शीत उष्ण, श्रम, तापआदिका करनेवाला है ॥ २६ ॥ तैसेही फलोत्पत्तिके समयमें सब पाप परस्परकी अपेक्षा करते हैं. इसीप्रकार महापापका आचरण करनेसे भी दीर्घ रोगादि विकार होते हैं॥ २७ ॥ शस्त्र वा अग्निकी महापीड़ा वा बंधनादि समस्त फल भोगने पड़ते हैं और खेलके मिस अत्यन्त थोड़े पुण्यका भी अनुष्ठान करनेसे सुन्दर गंध ॥ २८॥ सुखमय स्पर्श, मधुर शब्द, मिष्टरस और सुन्दर रूप अल्पकाल भोगनेमें समर्थ होता है और भारी पुण्यका अनुष्ठान करनेपर कालक्रमसे इन सबकी अपेक्षा अधिक फल लाभ होता है ॥ २९ ॥ इसप्रकार पाप पुण्यसे उत्पन्न हुए सुख दुःख भोगता हुआ संसारमें पड़ता है ॥ ३० ॥ जाति और देशादि द्वारा अवरुद्धज्ञान और अज्ञानका समस्त फल आत्मामें चिह्नरूपसे स्थिति करता है ॥ ३१ ॥

तथान्योन्यमपेक्षन्तेपापानिफलसङ्गमे ॥ एवंमहान्तिपापानिदीर्घरोगादिकाःक्रियाः ॥ २७ ॥ तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रार्तिवन्धनादिफलायवै ॥ स्वल्पंपुण्यंशुभंगन्धंहेलयासम्प्रयच्छति ॥ २८॥ स्पर्शंवाप्यथवाशब्दंरसंरूपमथापिवा ॥ चिराद्गुरुतरंतद्वन्महान्तमपिकालजम् ॥ २९॥ एवंचसुखदुःखानिपुण्यापुण्योद्भवानिवै ॥ भुञ्जानोऽनेकसंसारसम्भवानीहतिष्ठति ॥ ३० ॥ जातिदेशावरुद्धानिज्ञानाज्ञानफलानिच ॥ तिष्ठन्तितत्रपृक्तानिलिङ्गमात्रेणचात्मनि ॥ ३१ ॥ कर्मणामनसावाचानकदाचित्क्वचिन्नरः ॥ अकुर्वन्पापकंकर्मपुण्यंवाप्यवतिष्ठते ॥ ३२ ॥ यद्यत्प्राप्नोतिपुरुषःसुखंदुःखमथापिवा ॥ प्रभूतमथवास्वल्पंविक्रियाकारिचेतसः ॥ ३३ ॥ तावतातस्यपुण्यंवापापंवाप्यथचेतरत् ॥३४॥ उपभोगात्क्षयंयातिभुज्यमानमिवाशनम् ॥ एवमेतेमहापापंयातनाभिरहर्निशम् ॥ ॥ ३५॥ क्षपयन्तिनराघोरंनरकान्तविवर्तिनः ॥ तथैवराजन्पुण्यानिस्वर्गलोकेमरैःसह ॥ ३६ ॥ गन्धर्वसिद्धाप्सरसांगीताद्यैरुपभुंजते ॥ देवत्वेमानुषत्वेचतिर्यक्त्वेचशुभाशुभम् ॥ ३७ ॥

कर्म, मन, वचनसे कभी कोई पाप वा पुण्य कर्म किये विना फल नहीं पाता है॥ ३२ ॥ पुरुष यह जो कुछ सुख वा दुःख पाता है, थोड़ा या बहुत यह सब चित्तका विकार है ॥ ३३ ॥ वह उतनाही पाप पुण्यका फल पाता है ॥ ३४ ॥जैसे भोजन किया हुआ अन्न उपभोगसेही क्षय होता है, इसी प्रकार रातादिन पाप भोगे विना नहीं मिटता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इसप्रकारही इस नरकके भीतर रहकर मनुष्य यातनासे घोर महापापका क्षय करते हैं और स्वर्गवासी मनुष्यभी इसीप्रकार देवताओंके संग मिलकर पुण्य भोगते हैं ॥ ३६ ॥ सिद्ध, गंधर्व और अप्सराओंके गीतादि द्वारा सब पुण्य भोगते

हैं देवता मनुष्य वा पक्षियोनि प्राप्त करकेभी शुभ अशुभ ॥ ३७ ॥ पुण्य, पापजनित सुखदुःखमय शुभाशुभ भोगते हैं. हे राजन् ! आपने जो पूँछा कि, पापात्मा किस किस पापके करनेसे ऐसी यातना भोगते हैं ॥ ३८ ॥ अब मैं इसीका पूरा वर्णन करताहूं, जिस पापसे जो होता है जिन नराधमोंने दुष्ट नेत्रोंसे पराई स्त्रीको देखा है ॥ ३९ ॥ वा दुष्ट मन और स्पृहावाले नेत्रोंसे पराये द्रव्यको देखाहै यहां वज्रतुण्डवाले पक्षी उनकेही दोनों नेत्र हरण करते हैं ॥ ४० ॥ और वारंवार वही नेत्र फिर उत्पन्न होते हैं. इन नरोंने जितने पलक लगनेमें इन सब पापोंका आचरणकिया है ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! उतनेही हजार वर्ष यह इस प्रकारकी नेत्रपीड़ा अनुभव करेंगे । जिन्हों ने शत्रुकीभी ज्ञानदृष्टि विनाश करनेके लिये अन्यायरीतिसे शास्त्रोपदेश, वा खोटी परामर्श दीहै, जिन्होंने सब शास्त्रोंकी विपरीत व्याख्या

पुण्यपापोद्भवंभुंक्तेसुखदुःखोपलक्षणम् ॥ यत्त्वंपृच्छसिमांराजन्यातनाःपापकर्मिणाम् ॥३८॥ केनकेनेतिपापेनतत्तेवक्ष्याम्यशेषतः ॥ दुष्टेनचक्षुषादृष्टाःपरदारा नराधमैः ॥३९॥ मानसेनचदुष्टेनपरद्रव्यंचसस्पृहैः ॥ वज्रतुंडाःखगास्तेषांहरंत्येतेविलोचने ॥ ४० ॥ पुनःपुनश्चसंभूतिरक्ष्णोरेषांभवत्यथ ॥ यावतोऽक्षिनि मेषांस्तुपापमेभिर्नृभिःकृतम् ॥४१॥ तावद्वर्षसहस्राणिनेत्रार्तिंप्राप्नुवंत्युत ॥ असच्छास्त्रोपदेशास्तुयैर्दत्तायैश्चमंत्रितां ॥४२॥ सम्यग्दृष्टेर्विनाशायरिपूणामपि मानवैः ॥ यैःशास्त्रमन्यथाप्रोक्तंयैरसद्वागुदाहृता ॥ ४३ ॥ वेददेवद्विजातीनांगुरोर्निन्दाचयैःकृता ॥ हरंतितेषांजिह्वाश्चजायमानाःपुनःपुनः ॥ ४४ ॥ तावतो वत्सरानेतेवज्रतुंडाःसुदारुणाः ॥ मित्रभेदंतथापित्रापुत्रस्यस्वजनस्यच ॥४५॥ यज्वोपाध्याययोर्मात्रासुतस्यसहचारिणः ॥ भार्यापत्योश्चयेकेचिद्भेदंचक्रुर्न राधमाः ॥४६ ॥ तइमेपश्यपात्यंतेकरपत्रेणपार्थिव ॥ परोपतापकायेचयेचाह्लादनिषेधकाः ॥ ४७ ॥ तालवृंतानिलस्थानचदनोशीरहारिणः ॥ प्राणान्तिकं ददुस्तापमदुष्टानांचयेऽधमाः ॥ ४८ ॥

करीहै, जिन्होंने मिथ्या बातें कहीं हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जिन्हों ने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी निन्दा की है, यह वज्रतुण्डवाले दारुण पक्षी उनकीही वारम्वार उत्पन्न हुई जीभको छेदन करते हैं इन्होंने जितनी वार ऐसा पाप कियाहै यह वज्रतुण्ड समस्त पक्षी उनको उतनेही वर्ष ऐसी यंत्रणा देते हैं. जिन्होंने मित्रभेद पितापुत्रभेद वा स्वजनभेद किया है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वा यज्ञकर्त्ता और उपाध्यायमें माता तथा पुत्रमें पति और पत्नीमें जो नराधम भेद कराते हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! देखो वही इस करपत्रकी मार खाते हैं । जो दूसरेको क्रोध उत्पन्न करातेहैं जो दूसरेकी प्रसन्नता नष्ट करते हैं ॥ ४७ ॥ जो ताड़का पंखा चन्दन और खस हरण

करते हैं और जो अधम साधुओंको प्राणान्तिक ताप देते हैं ॥ ४८ ॥ वही पाप भागी अधम इस तपे हुए रेतमें गिरकर पापका फल भोगते हैं। जो मनुष्य और के श्राद्धमें न्यौते जाकर और के भोजन करते हैं ॥ ४९ ॥ अर्थात् दैव वा पितृकार्यमें एकका निमंत्रण स्वीकार करके अन्यका श्राद्ध भोजन करते हैं, उन्हींको यह पक्षी खेंचकर खंड खंड देह करते हैं, जो मनुष्य असद्वचनोंसे साधुओंका मर्मछेदन करते हैं ॥ ५० ॥ तो निर्भय हुए पक्षीगण उनकोही व्यथित करते हैं जो वचन मनसे असत्य बात बनाकर किसीकी चुगली करते हैं ॥ ५१ ॥ उनकी जीभ इस तेज छुरीसे दो खंड करी जाती है। जो मत्त होकर माता पिता और गुरुजनोंका निरादर करते हैं ॥५२॥ वही इस पीव, विष्ठा और मूत्रसे भरे कुण्डमें नीचेको मुख करके डाले जाते हैं. देवता, अतिथि, सेवक, अभ्यागत ॥

करम्भवालुकासंस्थास्तइमेपापभागिनः ॥ भुङ्क्तेश्राद्धंतुयोऽन्यस्यनरोन्येननिमंत्रितः ॥ ४९ ॥ दैवेवाप्यथवापैत्र्येसद्विधाकृष्यतेखगैः ॥ मर्माणियस्तुसाधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ॥५०॥ तमिमेतुदमानास्तुखगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ॥ यःकरोतिचपैशुन्यमन्यवागन्यथामतिः ॥ ५१ ॥ पाट्यतेहिद्विधाजिह्वातस्येत्थंनिशितैःक्षुरैः ॥ मातापित्रोर्गुरूणांचयेऽवज्ञांचक्रुरुद्धताः ॥ ५२ ॥ तइमेपूयविण्मूत्रगर्त्तेमज्जन्त्यधोमुखाः ॥ देवतातिथिभूतेषुभृत्येष्वभ्यागतेषुच ॥ ५३ ॥ अभुक्तवत्सुयेऽश्नन्तितद्वत्पित्रग्निपाक्षिषु ॥ दुष्टास्तेपूयनिर्यासभुजःसूचीमुखास्तुते ॥ ५४ ॥ जायन्तेगिरिवर्ष्माणःपश्यैतेयादृशानराः ॥ एकपंक्त्यातुयेविप्रमथवेतरवर्णजम् ॥ ५५ ॥ विषमंभोजयन्तीहविड्भुजस्तइमेयथा ॥ एकसार्थप्रयातंयेनिःस्वमर्थार्थिनंनरम् ॥ ५६ ॥ अपास्यस्वान्नमश्नन्तितइमेश्लेष्मभोजिनः ॥ गोब्राह्मणाग्नयःस्पृष्टायैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर ॥ ५७ ॥ तेषामेतेऽग्निकुण्डेषुप्रज्वलत्स्वाहिताःकराः ॥ सूर्येन्दुतारकादृष्टायैरुच्छिष्टैस्तुकामतः ॥ ५८ ॥ तेषांयाम्यैर्नरैर्नेत्रेन्यस्तोवह्निःसमिध्यते ॥ गावोऽग्निर्जननीविप्रोज्येष्ठभ्रातापितास्वसा ॥ ५९ ॥

॥ ५३ ॥ पितृगण, अग्नि और पक्षियोंके भूंखा रहते जो दुष्ट लोग भोजन करतेहैं, वही सूचीमुख होकर पीव और गोंदका भोजन करते हैं ॥ ५४ ॥ और उनका देह पर्वताकार होता है, जो ब्राह्मण वा अन्य जातिको एक पंक्तिमें बैठारकर ॥ ५५ ॥ विषमभोजन अर्थात् परस्परको असमानभावसे भोजन कराते हैं, वह इनकी विष्ठा भोजन करते हैं। जो व्यापारके लिये एकत्र जातेहुए अपने संगी धनहीन याचकको ॥ ५६ ॥ छोड़कर अपने आप अन्न भोजन करते हैं, यह वही यहां इसप्रकार कफका भोजन करते हैं। हे नरेश्वर ! जिन्होंने उच्छिष्ट अवस्थामें गौ, ब्राह्मण वा अग्निको स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥ उनके वह हाथ अग्नि कुण्डमें गिरकर जलते हैं जिन्होंने उच्छिष्ट अवस्थामें अपनी इच्छासे सूर्य, चन्द्र, वा तारोंको देखा है ॥ ५८ ॥ यह यमदूत उन्हींके नेत्रपर अग्निको रखतेहैं.

जिन्होंने गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, बड़े भाई, पिता, बहन ॥ ५९ ॥ कुलबहन,गुरु अथवा बूढे ब्राह्मणको पैरसे स्पर्श किया हो, उनकेही पैर अग्निसे तपी हुई लोहेकी बेड़ियोंमें बाँधेगये हैं ॥ ६० ॥ और जंघातक अंगारोंके ढ़ेरमें खडेहुएहैं, जिन पापात्माओंने खीर, कृशर (खिचड़ी) छाग और जिस किसी देवान्नको ॥ ६१ ॥ विना संस्कार किये भोजन किया है, उन्हीं पापात्माओंके नेत्र यहपृथ्वीमें उखाडकर डाले गये यह दीख रहे हैं ॥ ६२ ॥ और दंशनकारी यमदूतोंके मुखमें आकर्षित होते हैं । जो नराधम गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेदकी॥ ६३ ॥ निन्दा सुनकर पुष्टि करते हैं, यमपुरुष अग्निवर्षक लोहेकी कीली वारम्वार ॥ ६४ ॥ विलाप करते हुए उन पापात्माओंके कानमें प्रवेश कराते हैंजिन्होंने देवता, ब्राह्मणका घर अथवा सभाको ॥ ६५ ॥ क्रोध वा लोभके वशी

जामयोगुरवोवृद्धायैःस्पृष्टास्तुपदानृभिः ॥ बद्धांघ्रयस्तेनिगडैर्लौहैरग्निप्रतापितैः ॥ ६० ॥ अंगारराशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिनः ॥ पायसंकृसरंछागंदेवान्नानिचयानिवै ॥ ६१ ॥ भुक्तानियैरसंस्कृत्यतेषांनेत्राणिपापिनाम् ॥ निपातितानांभूपृष्ठेउद्धृत्ताक्षिनिरीक्षताम् ॥ ६२ ॥ सन्दंशैःपश्यकृष्यन्तेनरैर्याम्यैर्मुखात्ततः ॥ गुरुदेवद्विजातीनांवेदानांचनराधमैः ॥ ६३ ॥ निन्दानिशामितायैश्चपापानामभिनन्दताम् ॥ तेषामयोमयान्कीलानग्निवर्णान्पुनःपुनः ॥ ६४ ॥ कर्णेषुपूरयन्त्येतेयाम्याविलपतामपि॥ यैःप्रपादेवविप्रौकोदेवालयसभाःशुभाः॥ ६५ ॥ भङ्क्त्वाविध्वंसमानीताःक्रोधलोभानुवर्त्तिभिः ॥ तेषामेतैःशितैःशस्त्रैर्मुहुर्विलपतांत्वचः ॥ ६६ ॥ पृथक्कुर्वन्तिवैयाम्याःशरीरादतिदारुणाः ॥ गोब्राह्मणार्कमार्गास्तुयेऽवमेहन्तिमानवाः ॥ ६७ ॥ तेषामेतानिकृष्यन्तेगुदेनांत्राणिवायसैः ॥ दत्त्वाकन्यांयएकस्मैद्वितीयायप्रयच्छति ॥ ६८ ॥ सत्वेवंनैकधाछिन्नःक्षारनद्यांप्रवाह्यते ॥ स्वपोषणपरोयस्तुपरित्यजतिमानवः ॥ ६९ ॥ पुत्रभृत्यकलत्रादिवन्धुवर्गमकिंचनम् ॥ दुर्भिक्षेसंभ्रमेवापिसोऽप्येवंयमकिंकरैः ॥ ७० ॥

भूत हो तोडकर विध्वंस किया है, उन विलाप करनेवाले पापात्माओंकी त्वचा(चर्म) पैने शस्त्रोंसे ॥ ६६ ॥ अत्यन्त दारुण शरीरवाले यमदूत देहसे पृथक् करते हैं । जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण और सूर्यके मार्गमें मलमूत्र त्याग करते हैं ॥ ६७ ॥ उन पापात्माओंकी सब आंतें कौवे गुह्यद्वारसे खैंचते हैं । जो पुरुष एक बार किसी मनुष्यको कन्यादान करके वही कन्या फिर किसी दूसरे मनुष्यको देते हैं ॥ ६८ ॥ उनको इसप्रकार खंड खंड करके क्षार (खारी) नदीमें बहादिया जाता है । जो मनुष्य औरोंको छोड़कर अपनाही पोषण करते हैं॥ ६९ ॥ दुर्भिक्ष वा किसी प्रकारके संभ्रममें जो अकिंचन पुत्र, सेवक, कलत्रादि

और बंधु वर्गको त्यागदेते हैं, यमदूत॥ ७०॥ उनका मांस काट काट कर उन्हींके मुखमें डालते हैं, और भूखके मारे वह उसेही इसप्रकार भोजन करते हैं। जो लोभके वशीभूत हो वृत्तिपानेवाले वा शरणागत मनुष्योंको त्यागते हैं ॥ ७१ ॥ यमदूत उनकोही ऐसी यंत्रपीडासे पीड़ित करते हैं। जो मनुष्य संपूर्ण जन्मोंका किया हुआ पुण्य किसी के हाथ बेचते हैं अर्थात् मूल्य लेकर अपने अनुष्ठानका फल बेच डालते हैं॥ ७२॥ वह इन पापात्माओंकी समान पत्थरके कोल्हूमें पीसे जाते हैं। जो किसीकी धरोहर हरण करते हैं उनका सब शरीर बंधनमें बँधता है ॥ ७३ ॥ और उनको कृमि, बीछू, कौवे तथा उल्लू रातदिन भक्षण करते हैं और भूख प्याससे जिनकी जिह्वा और तालू सूखगया है ॥ ७४ ॥ जिन पापात्माओंने दिनमें स्त्रीगमन वा पराईस्त्रीसे भोग किया है, यह देखो, वह लौहमय तीक्ष्ण कांटोंसे युक्त शाल्मलिवृक्षमें

उत्कृत्त्यदत्तानिमुखेस्वमांसान्यश्नुतेक्षुधा ॥ शरणागतान्यस्त्यजतिलोभादुत्कोचजीविकः ॥ ७१ ॥ सोऽप्येवंयंत्रपीडाभिःपीड्यतेयमकिंकरैः ॥ सुकृतंये प्रयच्छन्तियावज्जन्मकृतंनराः ॥ ७२ ॥ तेपिष्यन्तेशिलापेषैर्यथैतेपापकर्मिणः ॥ न्यासापहारिणोबद्धाःसर्वगात्रेषुबन्धनैः ॥ ७३ ॥ कृमिवृश्चिककाकोलै र्भुज्यन्तेऽहर्निशंनराः ॥ क्षुत्क्षामास्तृट्पतज्जिह्वातालवोवेदनातुराः ॥ ७४ ॥ दिवामैथुनिनःपापाःपरदारभुजश्चये ॥ तथैवकण्टकैस्तीक्ष्णैरायसैःपश्यशा ल्मलिम् ॥ ७५ ॥ आरोपिताविभिन्नांगाःप्रभूतासृक्स्रवाविलाः ॥ मूषायामपिपश्यैतान्ध्मायमानान्यमानुगैः ॥ ७६ ॥ पुरुषैःपुरुषव्याघ्रपरदारावमर्शिनः ॥ उपाध्यायमधःकृत्वास्तब्धोयोऽध्ययनंनरः ॥ ७७ ॥ गृह्णातिशिल्पमथवासोऽप्येवंशिरसाशिलाम् ॥ बिभ्रत्क्लेशमवाप्नोतिजनमार्गेऽतिपीडितः ॥ ७८ ॥ क्षुत्क्षामोऽहर्निशंभारपीडाव्यथितमस्तकः ॥ मूत्रश्लेष्मपुरीषाणियैरुत्सृष्टानिवारिणि ॥ ७९ ॥ तइमेश्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धंनरकंगताः ॥ परस्परंस्वमांसानि भक्षयन्तिक्षुधान्विताः ॥ ८० ॥ भुक्तंनातिथ्यविधिनापूर्वमेभिःपरस्परम् ॥ अपविद्धास्तुयैर्वेदावह्नयश्चाहिताग्निभिः ॥ ८१ ॥

॥ ७५ ॥ आरोपित हो रहे हैं उनके अंग भंग हो रहे हैं और बहुत सारा रुधिर टपकनेसे व्याकुल हो रहेहैं, यह देखो. वह धौंकनीमें रखकर धौंकाये जातेहैं॥ ७६॥ हे पुरुषव्याघ्र ! यह देखिये ! जिन्होंने पराई स्त्रीसे भोग किया है, उनकी यह दशा होती है। जो मनुष्य उपाध्यायको नीचे बैठालकर घमंडसे अध्ययन ॥७७॥ वा शिल्पग्रहण करते हैं वह पुरुष इसीप्रकार मस्तकपर शिलाका बोझ रखकर जनमार्गमें महाक्लेश भोगते हैं ॥७८॥ और बोझकी पीडासे व्यथितमस्तक हो अर्थात् मस्तकमें वेदना अनुभव कर भूख प्याससे दिनरात पीड़ित होते हैं। जिन्होंने जलमें मल मूत्र वा खखार डालीहै ॥ ७९ ॥ वही इस कफ विष्ठा मूत्र और दुर्गन्धि पूर्ण नरकमें गये हैं। और यह जो भूखसे कातर होकर परस्परका मांस भोजनकरते हैं ॥ ८० ॥ इन्होंने पूर्वकालमें परस्पर आतिथ्यविधानसे भोजन नहीं किया।

जिन आहिताग्नि पुरुषोंने वेद और अग्निका अपमान किया है ॥ ८१ ॥ वही इस पर्वतके शिखरसे वारम्वार नीचे गिराये जाते हैं जिन्होंने दूसरी बार व्याही हुई स्त्रीके पति होकर समस्त जीवन विताया है ॥ ८२॥ वह कृमिरूपमें परिणत होकर चींटियोंके द्वारा भक्षित होते हैं। जिसने नीच पुरुषका दान ग्रहण, यजन वा नित्यसे वा करी है ॥ ८३ ॥ वही पत्थरके भीतरका कीडा होता है। जो अतिथि, भृत्य और भाइयोंके देखते उनका निरादर कर ॥ ८४ ॥ अकेला मिष्टान्न भोजन करता है, उसको जलते हुए अंगारे भोजन करने पड़ते हैं और उनकी पीठकेमांसको नित्य भयंकर भेडिये खाते हैं ॥ ८५ ॥ हे महाराज ! जिससे कि, इसने लोकोंके पृष्ठमांसको भक्षण किया था, अर्थात् पीछेमें बुराई की थी, वह यहां अंधे, बहरे, गूंगे होकर क्षुधासे भ्रमण कर रहे हैं ॥ ८६ ॥ इस नराधमने उपकार

तइमेशैलशृंगाग्रात्पात्यन्तेऽधःपुनःपुनः ॥ पुनर्भूपतयोजीर्णायावज्जीवंतियेनराः ॥ ८२ ॥ इमेकृमित्वमापन्नाभक्ष्यंतेऽत्रपिपीलिकैः ॥ नीचप्रतिग्रहादा नाद्याजनान्नित्यसेवनात् ॥ ८३ ॥ पाषाणमध्यकीटत्वंनरःसततमश्नुते ॥ पश्यतोभृत्यवर्गस्यमित्रस्याप्यतिथेस्तथा ॥ ८४ ॥ एकोमिष्टान्नभुग्भुंक्तेज्वलदं गारसंचयम् ॥ वृकैर्भयंकरैःपृष्ठं नित्यमस्योपभुज्यते ॥ ८५ ॥ पृष्ठमांसंनृपैतेनयतोलोकस्यभक्षितम् ॥ अंधोऽथ बधिरोमूकोभ्राम्यतेत्रक्षुधातुरः ॥ ८६ ॥ अकृतज्ञोऽधमःपुंसामुपकारिषुवर्त्तते ॥ अयंकृतघ्नोमित्राणामपकारीसुदुर्मतिः ॥ ८७ ॥ तप्तकुंभेनिपतितोविलपन्यातिशोषणम् ॥ करंभवालुकांतस्मात्ततो यंत्रावपीडनम् ॥ ८८ ॥ असिपत्रवनंतस्मात्करपत्रेणपाटनम् ॥ कालसूत्रेतथाच्छेदमनेकाश्चैवयातनाः ॥ ८९ ॥ प्राप्यनिष्कृतिमेतस्मान्नवेद्मिकथमेष्यति ॥ श्राद्धेसंगतिनोविप्राःसमुपेत्यपरस्परम् ॥ ९० ॥ दुष्टाहिनिःसृतंफेनंसर्वांगेभ्यःपिबंतिवै ॥ सुवर्णस्तेयीविप्रघ्नःसुरापोगुरुतल्पगः ॥ ९१ ॥ अधश्चोर्ध्वंचदी प्ताग्नौदह्यमानाःसमंततः ॥ ९२ ॥

करनेवालेके प्रति कृतज्ञता प्रकाश नहीं करी यह दुर्मति कृतघ्न और मित्रोंका अपकारी है ॥ ८७ ॥ इसी कारण तप्तकुंभमें गिराया गया है और बड़ा विलाप करता है, इसके पीछे फिर पीसा जायगा, तदनन्तर तप्तवालू यंत्रमें पीडा भोगकर ॥ ८८ ॥ असिपत्रनरकमें तल्वारकी मार खायगा और फिर कालसूत्र नामक नरकमें छेदन किया जायगा, इस भाँति नाना प्रकारकी यातना भोगकर ॥ ८९ ॥ यह किसप्रकार इससे छुटकारा पावेंगे, सो मैं नहीं जानता । इन दुष्ट ब्राह्मणोंने परस्पर संघटित होकर श्राद्धभोजन किया था ॥ ९० ॥ इस कारण यह दुष्ट सर्पोंके सर्वाङ्गसे निकलते हुए फेन भोजन करते हैं । हे राजन् ! इस पुरुषने सुवर्ण चुराया है, इस पुरुषने ब्रह्महत्या करी है और इस पुरुषने मद्य पी है, इसने गुरुकी स्त्रीको हरणकिया है ॥ ९१ ॥ इस कारण यह चारों ओरसे जलती हुई अग्निमें

जलाये जाते हैं ॥ ९२ ॥ और फिर यह वहां हजारों वर्षतक रहते हैं. इसकेपीछे कुष्ठ और क्षयरोगादिसे चिह्नित मनुष्यदेह धारण कर ॥ ९३ ॥ प्राणपरित्यागपूर्वक फिर नरकमें गिरते हैं और वारम्वार इसीप्रकार जन्मग्रहण करते हुए कल्पान्तपर्यन्त व्याधि भोगा करते हैं ॥ ९४ ॥ गोहत्या वा अन्यान्य उपपातक करनेसे सबकोही क्रमानुसार तीन जन्म निम्नतर नरक भोगनापड़ता है तथा और उपपातकोंमें भी ऐसाही होता है यह निश्चयहै ॥ ९५ ॥ हे महाराज ! नरकमें पड़कर पापी मनुष्य जिस जिस पापसे जिस जिस योनिमें जन्म ग्रहण करते हैं, वह कहताहूं सुनिये ॥ ९६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ यमदूतने कहा—पतित पुरुषसे अर्थ ग्रहणकरनेपर ब्राह्मण गधेकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है और पतित पुरुषको यज्ञ

तिष्ठंत्यब्दसहस्राणिसुबहूनिततःपुनः ॥ जायन्तेमानवाःकुष्ठक्षयरोगादिचिह्निताः ॥ ९३ ॥ मृताःपुनश्चनरकंपुनर्जाताश्चतादृशम् ॥ व्याधिमृच्छंतिकल्पांतपरिमाणंनराधिप ॥ ९४ ॥ गोघ्नोन्यूनतरंयातिनरकेऽथत्रिजन्मनि ॥ तथोपपातकानांससर्वेषामितिनिश्चयः ॥ ९५ ॥ नरकप्रच्युतायान्तियैर्यैर्विहितपातकैः ॥ प्रयांतियोनिजातानितन्मेनिगदतःशृणु ॥ ९६ ॥ इतिमा० पु० पितापुत्रसंवादेयमकिंकरसंवादेस्वकृतकर्मभुक्तिकथनंनामचतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ यमकिङ्करउवाच ॥ पतितात्प्रतिगृह्याथखरयोनिंव्रजेद्द्विजः ॥ नरकात्प्रतिमुक्तस्तुकृमिःपतितयाजकः ॥ १ ॥ उपाध्यायव्यलीकंतुकृत्वाश्वाभवतिद्विजः ॥ तज्जायांमनसावाचातद्द्रव्यंवापिकामयेत् ॥ २ ॥ गर्दभोजायतेजन्तुःपित्रोश्चाप्यवमानकः ॥ मातापितरावाक्रुश्यसारिकासम्प्रजायते ॥ ३ ॥ भ्रातुःपत्न्यवमन्ताचकपोतत्वंप्रपद्यते ॥ तावेवपीडयित्वातुकच्छपत्वंप्रपद्यते ॥ ४ ॥ भर्तृपिण्डमुपाश्नन्यस्तादिष्टंननिषेवते ॥ सोऽपिमोहसमापन्नोजायतेवानरोमृतः ॥ ५ ॥ न्यासापहर्त्तानरकाद्विमुक्तोजायतेकृमिः ॥ असूयकश्चनरकान्मुक्तोभवतिराक्षसः ॥ ६ ॥

करानेपर नरकसे छूटकर कृमिरूपमें जन्म ग्रहण करता है ॥ १ ॥ उपाध्यायके निकट छल प्रकाश करनेसे वा उसकी भार्या अथवा किसी वस्तुकी मनमें अभिलाषा करनेसे कुत्ता होकर जन्म ग्रहण करना पडता है ॥ २ ॥ माता पिताका अपमान करनेसे गधा होताहै और माता पिताको गाली देनेसे मैना होता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष भाईकी पत्नीका अपमान करताहै, वह कबूतर होता है और उसको पीडित करनेसे कछुएके रूपमें जन्म लेता है ॥ ४ ॥ जो पुरुष स्वामीका पिण्ड भोजन करके उसके इष्टकी चेष्टा नहीं करता वह मोहाच्छन्न होकर मरनेके पीछे वानर योनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ५ ॥ जो पुरुष किसीकी धरोहर हरण करताहै, वह नरकके दुःखसे छूटकर कृमि होता है। और असूया करनेवाला पुरुष नरकके अन्तमें राक्षस योनिको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

विश्वासघातक मनुष्य मछलीकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है. जो धान्य, यव, तिल, उरद, कुलथी, सरसों, चने ॥ ७ ॥ कैता, मूंजी, मूंग, गेहूँ, तीसी वा अन्यान्य धान्य हरण करता है, वह मोहद्वारा अचेतन हो ॥ ८ ॥ नौलेके समान दीर्घ मुख चूहा होकर जन्म ग्रहण करता है, पराई स्त्रीसे रमण करनेवाला भयंकर भेडिया होता है ॥ ९ ॥ और फिर क्रमानुसार कुत्ता, गीदड़, बगला, गृध्र, सर्प तथा कौवेकी योनिमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है और जो पापात्मा दुर्बुद्धि भाईकी स्त्रीसे भोग करता है ॥ १० ॥ वह नरकके अन्तमें कोयल होता है। जो पापात्मा मित्रपत्नी, गुरुपत्नी, वा राजपत्नीसे ॥ ११ ॥ रमण करते हैं, वह कामात्मा मनुष्य सूकररूपमें जन्म पाते हैं. यज्ञ, दान वा विवाहमें विघ्न करनेसे कृमि होना पड़ता है ॥ १२ ॥ और जो मनुष्य दीहुई कन्या फिर किसी दूसरेको देता है,

विश्वासहन्ताचनरोमीनयोनौप्रजायते ॥ धान्यंयवांस्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपांश्चणान् ॥ ७ ॥ कलायान्कलमान्मुद्गान्गोधूमानतसीस्तथा ॥ सस्यान्यन्यानिवाह्त्वामोहाज्जन्तुरचेतनः ॥ ८ ॥ सञ्जायतेमहावक्त्रोमूषिकोबभ्रुसन्निभः ॥ परदाराभिमर्शात्तुवृकोघोरोऽभिजायते ॥ ९ ॥ श्वासृगालोबकोगृध्रोव्यालःकङ्कस्तथाक्रमात् ॥ भ्रातृभार्य्यांचदुर्बुद्धिर्योधर्षयतिपापकृत् ॥ १० ॥ पुंस्कोकिलत्वमाप्नोतिसचापिनरकाच्च्युतः ॥ सखिभार्य्यांगुरोर्भार्य्यांराजभार्य्यांचपापकृत् ॥ ११ ॥ प्रधर्षयित्वाकामात्मासूकरोजायतेनरः ॥ यज्ञदानविवाहानांविघ्नकर्त्ताभवेत्कृमिः ॥ १२ ॥ पुनर्दातातुकन्यायाःकृमिरेवोपजायते ॥ देवतापितृविप्राणामदत्त्वायोऽन्नमश्नुते ॥ १३ ॥ प्रमुक्तोनरकात्सोऽपिवायसःसम्प्रजायते ॥ ज्येष्ठंपितृसमंवापिभ्रातरंयोवमन्यते ॥ १४ ॥ नरकात्सोपिविभ्रष्टःक्रौंचयोनौप्रजायते ॥ शूद्रश्चब्राह्मणींगत्वाकृमियोनौप्रजायते ॥ १५ ॥ तस्यामपत्यमुत्पाद्यकाष्ठान्तःकीटकोभवेत् ॥ सूकरःकृमिकोमद्गुश्चण्डालश्चप्रजायते ॥ १६ ॥ अकृतज्ञोऽधमःपुंसांविमुक्तोनरकान्नरः ॥ कृतघ्नःकृमिकःकीटःपतङ्गोवृश्चिकस्तथा ॥ १७ ॥ मत्स्यस्तुवायसःकूर्मःपुल्कसोजायतेततः ॥ अशस्त्रंपुरुषंहत्वानरःसंजायतेखरः ॥ कृमिःस्त्रीवधकर्त्ताचबालहंताचजायते ॥ १८ ॥

वह भी कृमिरूपमें जन्म ग्रहण करता है. जो मनुष्य देवता पितर वा ब्राह्मणको विना दिये अन्न भोजन करता है ॥ १३ ॥ वह मनुष्य नरककी यंत्रणा भोगकर कौवा होताहै जो मनुष्य पिताके समान बड़ेभाईका अपमान करता है ॥ १४ ॥ वह नरक भोगनेके पीछे क्रौञ्च योनिमें जन्म लेता है. शूद्र ब्राह्मणीमें गमन करनेसे कृमियोनिमें उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥ और उसके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करनेपर काष्ठके भीतरका कीट, सूकर, कृमि, मलका कीडा, वा चाण्डालयोनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ १६ ॥ और जो पुरुषोंमें अधम अकृतज्ञ तथा कृतघ्न है वह नरकसे छूटकर कृमि, कीट, पतंग, विच्छू ॥ १७ ॥ मत्स्य, काक, कूर्म, वा

डोम योनिमें जन्म ग्रहण करता है. शस्त्रविहीन किसी पुरुषको मारनेसे गधेकी योनिमें जन्म होता है, स्त्रीका वध करनेवाला वा बालकका वध करनेवाला पुरुष कृमि होता है ॥ १८ ॥ भोजन चुरानेसे मक्खी होना पडता है, भोजनके विषयमें जो विशेष है वह कहताहूं, सुनिये ॥ १९ ॥ अन्न हरण करनेसे नरक भोगनेके पीछे बिल्ली होना पडता है, तिल और दाना मिला हुआ अन्न हरण करनेसे चूहा होता है ॥ २० ॥ घृतका हरण करनेवाला नौला और छागमांस हरण करनेवाला पुरुष कौवा, तथा मृगमांसका हरण करनेवाला गिद्धयोनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ २१ ॥ लवण का चुरानेवाला पुरुष जलकाक और दधिका चुरानेवाला पुरुष कृमि होता है. और दूध हरण करनेसे बगलेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है ॥ २२ ॥ जो पुरुष तेल

भोजनंचोरयित्वातुमाक्षिकाजायतेनरः ॥ तत्राप्यस्तिविशेषोवैभोजनस्यशृणुष्वतत् ॥ १९ ॥ हृत्वादुग्धंतुमार्जारोजायतेनरकाच्युतः ॥ तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नंहृत्वातुमूषकः ॥ २० ॥ घृतंहृत्वातुनकुलःकाकोमद्गुरजामिषम् ॥ मत्स्यमांसापहृत्काकःश्येनोमेषामिषापहृत् ॥ २१ ॥ चिरीवाकस्त्वपहृतेलवणे दध्निवाकृमिः ॥ चोरयित्वापयश्चापिबलाकासंप्रजायते ॥ २२ ॥ यस्तुचोरयतेतैलंतैलपायीसजायते ॥ मधुहृत्वानरोदंशोऽपूपंहृत्वापिपीलिका ॥ २३ ॥ चोरयित्वाहविष्यान्नंजायतेगृहगोधिका ॥ आसवंचोरयित्वातुतित्तिरित्वमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥ अयोहृत्वातुपापात्मावायसःसंप्रजायते ॥ पात्रेकांस्येपिहारीतः कपोतोरौप्यभाजने ॥ २५ ॥ हृत्वातुकांचनंभांडंकृमियोनौप्रजायते ॥ कौशेयंचोरयित्वातुचक्रवाकत्वमृच्छति ॥ २६ ॥ कोशकारश्चकौशेयेहृतेवस्त्रेभिजायते ॥ दुकूलेशार्ङ्गकःपापोहृतेचैवांशुकेशुकः ॥ २७ ॥ ऋक्षश्चैवाविकंहृत्वावस्त्रंक्षौमंचजायते ॥ कार्पासिकेहृतेक्रौंचोवह्नेर्हर्ताबकःखरः ॥ २८ ॥ मयूरोवर्णकान्हृत्वापत्रशाकंचजायते ॥ जीवञ्जीवकतांयातिरक्तवस्त्रापहृन्नरः ॥ २९ ॥

चुराता है वह तेली होता है. मधुका चुरानेवाला डाँस और पूडेका चुरानेवाला मनुष्य चींटी होता है ॥ २३ ॥ हविष्यान्न चुरानेसे गृहगोधक अर्थात् गोय होता है और आसव चुरानेसे तीतर पक्षी होता है ॥ २४ ॥ जो मनुष्य लोहा चुराता है, वह पापात्मा कौवा होता है, किसीका पात्र चुरानेवाला हारीत पक्षी और चांदीका पात्र चुरानेसे कबूतर होता है ॥ २५ ॥ सुवर्णके पात्र चुरानेसे कृमि होता है और रेशम चुरानेसे चकवेकी योनिमें उत्पन्न होना पडता है ॥ २६ ॥ कौशेय वस्त्र हरण करनेसे कोशकार अर्थात् चांदी सोनेका शिक्का बनानेवाला होता है और जो पापी दुपट्टा चुराता है, वह मोर अंकुशका चुरानेवाला तोता ॥ २७ ॥ ऊनी और अलसीके वस्त्र चुरानेवाला ऋक्ष, कपास चुरानेवाला क्रौंच और अग्निका चरानेवाला बगला वा गधा होता है ॥ २८ ॥ जो पुरुष वर्णक (पीसे हुए सुगंधित द्रव्य

चोवा चंदन अगरादि) वा शाकपत्र अर्थात् शोभाञ्जन चुराता है, वह मोर होता है और लाल वस्त्र चुरानेवाले मनुष्यको चकवा चकवीकी योनि प्राप्त होती है ॥ ॥ २९ ॥ सुन्दर गंधद्रव्यका चुरानेवाला छुच्छुन्दरी होता है, वस्त्र चुरानेवाला खरगोश होता है, पराल हरनेसे गंजा और काष्ठ चुरानेवाला मनुष्य घुनकीट होता है ॥ ३० ॥ पुष्प हरण करनेसे दरिद्री होता है, यान हरण करनेसे मनुष्य लँगडा होकर जन्म लेता है, जो शाक चुराता है वह हारीत पक्षी होता है और जलका चुरानेवाला मनुष्य चातक पक्षी होता है ॥ ३१ ॥ जो पुरुष भूमि हरण करता है वह दारुण रौरवादि सब नरकोंमें गमन करके फिर क्रमानुसार तृण, गुल्म, लता, वल्ली और त्वक्सार तरुरूपमें जन्मग्रहण करता है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार यथाक्रम पापोंका क्षय होनेपर मनुष्य

छुच्छुंदरीशुभान्गंधान्वासोहृत्वाशशोभवेत् ॥ खंजःपलालहरणेकाष्ठहृद्घुणकीटकः ॥ ३० ॥ पुष्पापहृद्दरिद्रस्तुपंगुर्यानापहृन्नरः ॥ शाकहर्त्ताचहारीतस्तोयहर्त्ताचचातकः ॥ ३१ ॥ भूमिहृन्नरकान्गत्वारौरवादीन्सुदारुणान् ॥ तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्सारतरुतांक्रमात् ॥ ३२ ॥ प्राप्यक्षीणालपपापस्तुनरो भवतिवैततः ॥ वृषस्यवृषणौछित्त्वाषंडत्वंप्राप्नुयान्नरः ॥ ३३ ॥ परिहृत्यतथाभूयोजन्मनामेकविंशतिः ॥ कृमिःकीटःपतंगोवापक्षीतोयचरोमृगः ॥ ३४ ॥ गोत्वंचप्राप्यचांडालपुल्कसादिजुगुप्सितम् ॥ पंग्वंधोवाधिरःकुष्ठीयक्ष्मणाचप्रपीडितः ॥ ३५ ॥ मुखरोगाक्षिरोगैश्चगुदरोगैश्चबाध्यते ॥ अपस्मारीचभवतिशूद्रत्वंचसगच्छति ॥ ३६ ॥ एषएवक्रमोदृष्टोगोसुवर्णादिहारिणाम् ॥ विद्यापहारिणंचैवनिष्क्रयभ्रंशिनांगुरोः ॥ ३७ ॥ जायामन्यस्यपारक्यांपुरुषः प्रतिपादयेत् ॥ प्राप्नोतिषंडतांमूढोयातनाभ्यःपरिच्युतः ॥ ३८ ॥

योनिमें जन्म ग्रहण करता है, बैलको बधिया करनेसे मनुष्य नपुंसक होता है ॥ ३३ ॥ और फिर इक्कीस जन्मतक कृमि, कीट, पतंग, जलचर, पक्षी, मृग ॥ ॥ ३४ ॥ तथा गौ योनिमें उत्पन्न होता है, इसके पीछे चाण्डाल और डोमआदि नीच योनिमें जन्म लेता है, फिर लँगडा, अंधा, बहरा, कोढी तथा यक्ष्मारोगसे पीडित होता है ॥ ३५ ॥ और मुखरोग, नेत्ररोग, तथा गुह्यरोगसे पीडित होकर फिर मिरगीके रोगसे आक्रान्त हो शूद्रयोनिमें उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥ जिसने गौ सुवर्ण वा अगरकी चोरी की है, उसको भी क्रमानुसार यही दशा भोगनी पड़ती है और जो विद्या हरण वा गुरुका धन मारता है ॥ ३७ ॥ उसको भी इसीप्रकार उग्ररूपी होकर दुःख भोगना पड़ता है. जो पुरुष दूसरेकी भार्या लाकर दूसरेको देता है, वह मूढ पुरुष अनेकप्रकारकी यंत्रणा भोगकर अन्तमें

नपुंसक होता है ॥ ३८ ॥ जो समिधके विना अग्निमें होम करता है, वह अजीर्ण रोगसे अत्यन्त पीडित होकर मंदाग्नियुक्त होता है ॥ ३९ ॥ पराई निन्दा कृतघ्नता, परमर्मछेदन, निष्ठुरता, निर्लज्जता, पराई स्त्रीका सेवन ॥ ४० ॥ पराये धनका हरण, अपवित्रता, देवताकी निन्दा धोका देकर मनुष्योंको ठगना कृपणता, मनुष्योंकी हिंसा ॥ ४१ ॥ और भी दूसरे सब निषिद्ध कर्मोंका अनुष्ठान और उन उन विषयोंमें सदा प्रवृत्ति, यह देखनेसेही जानना चाहिये कि, इस पापात्माने नरककी सब यंत्रणा भोगनेके पीछे ही जन्म ग्रहण किया है ॥ ४२ ॥ और सब प्राणियोंमें दया, अच्छा सम्वाद देना, परलोकके लिये सत्क्रिया, सत्यता, मनुष्यके हितके निमित्त बोलना, वेदका प्रमाण देखना ॥ ४३ ॥ गुरु, देव, ऋषि और सिद्धर्षियोंकी पूजा, साधुसंगम, सत्कर्मका अभ्य-

यःकरोतिनरोहोममसमिद्धेहुताशने ॥ सोजीर्णघनदुःखार्तोमंदाग्निरभिजायते ॥ ३९ ॥ परनिंदाकृतघ्नत्वंपरमर्मोपघट्टनम् ॥ नैष्ठुर्यंनिर्घृणत्वं चपरदारोपसेवनम् ॥ ४० ॥ परस्वहरणाशौचदेवतानांचकुत्सनम् ॥ निकृत्यावंचनानृणांकार्पण्यंचनृणांवधः ॥ ४१ ॥ यानिचप्रतिषिद्धानितद्वृत्तिचप्रशंसताम् ॥ उपलक्षणानिजानीयान्मुक्तानांनरकादनु ॥ ४२ ॥ दयाभूतेषुसद्वादः परलोकंप्रतिक्रिया ॥ सत्याभूतहिताचोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥ ४३ ॥ गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनंसाधुसंगमः ॥ सत्क्रियाभ्यसनंमैत्रीचैतद्बुध्येतपंडितः ॥ ४४ ॥ अन्यानिचैवसद्धर्मक्रियाभूतानियानिच ॥ स्वर्गच्युतानांलिंगानिपुरुषाणामपापिनाम् ॥ ४५ ॥ एतदुद्देशतोराजन्भवतःकथितंमया ॥ स्वकर्मफलभोक्तॄणांपुण्यानांपापिनांतथा ॥ ४६ ॥ तदेह्यन्यत्रगच्छामोदृष्टंसर्वंत्वयाधुना ॥ त्वयाचदृष्टोनरकस्तदेह्यन्यत्रगम्यताम् ॥ ४७ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ततस्तमग्रतःकृत्वासराजागंतुमुद्यतः ॥ ततश्चसर्वैरुत्कृष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः ॥ ४८ ॥ प्रसादंकुरुभूपेतितिष्ठतावन्मुहूर्तकम् ॥ त्वदंगसंगीपवनोमनोह्लादयतेहिनः ॥ ४९ ॥

स, मित्रता, यह पण्डितोंको जानना चाहिये ॥ ४४ ॥ और अन्यान्य सत्कार्य तथा उत्तम धर्मविषयक जो कुछ निर्दिष्ट हुआ है यह सब लक्षण मनुष्यमें दिखाई दें तो पण्डितोंको निश्चय करना चाहिये कि, इन निष्पाप पुरुषों ने स्वर्गसे भ्रष्ट होकर जन्म ग्रहण किया है ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! अपने कर्मफल भोगनेवाले पुण्यवान् और पापियोंका समस्त विषय उद्देशानुसार मैं ने आपसे वर्णन किया ॥ ४६ ॥ आपने समस्तही देखा है और आपको भी नरकका दर्शन हुआ, अत एव आवो अन्यत्र चलें ॥ ४७ ॥ पुत्रने कहा—तदनन्तर वह राजा यमदूतको आगे करके जैसेही जानेको उद्यत हुए वैसेही नरककी यंत्रणा भोगनेवाले सब मनुष्यों ने उच्च स्वरसे क्रन्दन करके कहा ॥ ४८ ॥ "हे भूप ! प्रसन्न होओ और मुहूर्तकाल ठहरो, तुम्हारे अंगके संसर्गी वायुसे हमारा मन अत्यन्त आह्लादित होता है ॥ ४९ ॥

हे नरव्याघ्र ! इस वायुने हमारे समस्त शरीरका परिताप और पीडाकी बाधा हरण की है अतएव हे महीपते ! हमपर दया करो" ॥ ५० ॥ अनन्तर राजाने उन सबके यह वचन सुनकर यमदूतसे पूँछा—हे यमदूत ! मेरे खडे होनेसे इनको इतना आह्लाद क्यों होता है ? ॥ ५१ ॥ मैं ने मृत्युलोकमें ऐसे किस पुण्य कर्मका अनुष्ठान किया है, जो इनके प्रति इसप्रकार आनन्ददायिनी वृष्टि होती है ? सो कहो ॥ ५२ ॥ यमदूत बोला—हे महाराज ! आपने प्रथम देवता, पितर, अतिथि और संन्यासी इत्यादिके भोजनसे बचा हुआ अन्न भक्षण करके अपना शरीर पाला था और हरघडी आपका मन इन्हीं बातोंमें लगा रहताथा ॥ ५३ ॥ हेराजन् ! इसीकारण आपके शरीरसंसर्गि आह्लाददायक इस वायुसे पापात्माओंकी समस्त यातना नष्ट होतीहैं ॥ ५४ ॥ और आपने अश्वमेध इत्यादि सब यज्ञोंका यथाविधि

परितापंचगात्रेषुपीडांबाधांचकृत्स्नशः ॥ अपहंतिनरव्याघ्रकृपांकुरुमहीपते ॥ ५० ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तेषांतंयाम्यंपुरुषंततः ॥ पप्रच्छकथमेतेषामाह्लादो मयितिष्ठति ॥ ५१ ॥ किंमयाकर्मतत्पुण्यंमर्त्यलोकेमहत्कृतम् ॥ अह्लाददायिनीव्युष्टिर्यस्येयंतदुदीरय ॥ ५२ ॥ ॥ याम्यउवाच ॥ ॥ पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेनतेतनुः ॥ पुष्टिमभ्यागतायस्मात्तद्गतंचमनोयतः ॥ ५३ ॥ ततस्त्वद्गात्रसंसर्गीपवनोह्लाददायकः ॥ पापकर्मकृतोराजन्यातनानप्रबाधते ॥ ५४ ॥ अश्वमेधादयोयज्ञास्त्वयेष्टाविधिवद्यतः ॥ ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्यायंत्रशस्त्राग्निवायसाः ॥ ५५ ॥ पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्यहेतवः ॥ मृदुत्वमागताराजंस्तेजसोपहतास्तव ॥ ५६ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ नस्वर्गेब्रह्मलोकेवातत्सुखंप्राप्यतेनरैः ॥ यदार्त्तजंतुनिर्वाणदानोत्थमितिमेमतिः ॥ ५७ ॥ यदिमत्सन्निधावेतान्यातनानप्रबाधते ॥ ततोभद्रमुखाऽत्राहंस्थास्येस्थाणुरिवाचलः ॥ ५८ ॥ यमपुरुषउवाच ॥ ॥ एहिराजेंद्रगच्छामिनिजपुण्यसमार्जितान् ॥ भुंक्ष्वभोगांस्तुभुज्यंतुयातनाःपापकर्मिणः ॥ ५९ ॥

अनुष्ठान कियाहै. इसकारण पीडन, छेदन और दाहादि संपूर्ण महादुःखोंके हेतु यमसंबंधीय यंत्र, शस्त्र, अग्नि और कौवोंने तुम्हारे दर्शन और तेजसे हत होकर इस प्रकार कोमलताका अवलम्बन कियाहै ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ राजाने कहा—मेरी ऐसी बुद्धि है कि, दुःखी मनुष्यकी रक्षा करनेसे जैसा सुख मिलताहै, स्वर्ग वा ब्रह्मलोकमेंभी वैसा सुख उत्पन्न नहीं होता ॥ ५७ ॥ यदि मेरे खडे होनेसे इनकी समस्त यंत्रणा नष्ट होतीहैं तो हे भद्रमुख ! स्थाणुके समान अचल होकर मैं इस स्थानमेंही वासकरूंगा ॥ ५८ ॥ यमदूत बोला—आवो, चलो ! अपने पुण्यसे इकट्ठा कियाहुआ समस्त भोग भोगो यह पापात्माओंके दुःखभोगनेका स्थानहै ॥ ५९ ॥

राजाने कहा जबतक यह अत्यन्त दुःखी रहेंगे, तबतकमैं नहीं जाऊंगा, क्योंकि यह सब नरकवासी मेरे रहनेसे सुखी होते हैं ॥ ६० ॥ शत्रुभी यदि दुःखसे आतुर होकर शरणार्थी हो तो जो पुरुष उसपर अनुग्रह नहीं करता,उसके जीवनको धिक्कारहै ॥ ६१ ॥ आर्त पुरुषकी रक्षा करनेमें जिसका चित्त नहीं है, उसका यज्ञ दान वा तपस्या कुछभी इसकाल अथवा परकालके सुखके निमित्त नहीं है॥६२॥ बालक, आतुर वा बूढे इत्यादिके प्रति जिसका चित्त कठिन है, अर्थात् जो इनके ऊपर दया नहीं करता, मेरे विचारसे वह मनुष्य नहीं बरन राक्षस है ॥ ६३ ॥ यद्यपि इनके समीप रहनेसे मुझको नरककी अग्निके तापसे उत्पन्न तीव्र गंधका दुःख होगा ॥ ६४ ॥ भूख प्याससे प्रगट मूर्च्छाका देनेवाला महादुःख भोगना पड़ेगा, किन्तु तोभी इनकी रक्षा करनी विचारकर

राजोवाच ॥ ॥ तस्मान्नतावद्यास्यामियावदेतेसुदुःखिताः ॥ मत्सन्निधानात्सुखिनोभवंतिनरकौकसः ॥ ६० ॥ धिक्तस्यजीवितंपुंसःशरणार्थिनमागतम् ॥ योनार्त्तमनुगृह्णातिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ॥ ६१ ॥ यज्ञदानतपांसीहपरत्रचनभूतये ॥ भवंतितस्ययस्यार्त्तपरित्राणेनमानसम् ॥ ६२ ॥ नरस्ययस्यकठिनंमनो बालातुरादिषु ॥ वृद्धेषुचनतंमन्येमानुषंराक्षसोहिसः ॥ ६३ ॥ एषांमत्सन्निकर्षात्तुयद्यग्निपरितापजम् ॥ तथोग्रगंधजंवापिदुःखंनरकसंभवम् ॥ ६४ ॥ क्षुत्पिपासोद्भवंदुःखंयच्चमूर्छाप्रदंमहत् ॥ विनाशमेतितद्भद्रमन्येस्वर्गसुखात्परम् ॥ ६५ ॥ प्राप्स्यंतेतेयदिसुखंबहवोदुःखितेमयि ॥ किंवाप्राप्तंमयानस्यात्तस्मात्त्वंवदमाचिरम् ॥ ६६ ॥ ॥ याम्यउवाच ॥ ॥ एषधर्मश्चशक्रश्चत्वांनेतुंसमुपागतौ ॥ अवश्यमस्माद्गन्तव्यंतस्मात्पार्थिवगम्यताम् ॥ ६७ ॥ ॥ धर्मउवाच ॥ ॥ नयामित्वामहंस्वर्गंत्वयासम्यगुपासितः ॥ विमानमेतदारुह्यमाविलंबस्वगम्यताम् ॥ ६८ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ नरकेमानवाधर्म पीड्यमानाःसहस्रशः ॥ त्राहीत्यमीचक्रंदंतिमामतोनव्रजाम्यहम् ॥ ६९ ॥

इस महादुःखकोभी स्वर्गके सुखकी अपेक्षा अधिक सुख समझूंगा ॥ ६५ ॥ यदि केवल मात्र मेरे दुःखपानेसे इसप्रकार अनेक दुःखी पुरुषोंको सुख प्राप्त होगा तो मुझे क्या नहीं मिलेगा ? अत एव हे यमदूत ! तुम विलम्ब मतकरो, शीघ्र जाओ ॥ ६६ ॥ यमदूत बोला—हे राजन् ! यह धर्म और इन्द्र हैं, आपको लेकर जानेके लिये आये हैं, आपको अवश्यही जाना पडेगा, अत एव आइये ॥ ६७ ॥ धर्मने कहा—हे राजन् ! आपने सम्यक् प्रकारसे मेरी उपासना करी है, इसी कारण आपको स्वर्गमें ले जाऊंगा, अब आप विलम्ब न करैं, शीघ्र इस विमानमें बैठकर चलैं ॥ ६८ ॥ राजा बोले—हे धर्म ! सहस्रों मनुष्य नरकमें

पड़े कष्टसंयुक्त रुदन करते हैं और "हमारी रक्षा करो" ऐसा मुझसे कहते हैं, इस कारण मैं इस स्थानको छोड़कर नहीं जाऊंगा ॥ ६९ ॥ इन्द्रने कहा— अपने अपने कर्मके फलसे इन पापियोंको नरककी यंत्रणा भोगनी पड़ती है, सुतरां अपने पुण्यकर्मके फलसे आपको भी स्वर्गमें जाना उचित है ॥ ७० ॥ राजा बोले—हे धर्म ! हे शचीपति इन्द्र ! मैं ने कितना पुण्यसंचय किया है, यदि आप जानतेहो तो बताइये ॥ ७१ ॥ धर्मने कहा—हे राजन् ! समुद्रमें जितनी जलकी बूँदें, आकाशमें जितने तारे, वर्षामें जितनी जलधारा और गंगामें जितनी वालू है, आपका पुण्य भी उतनाही है ॥ ७२ ॥ हे महाराज ! जिसप्रकार जलबिन्दु आदिकी संख्या नहीं करी जाती उसीप्रकार आपका पुण्य भी संख्यातिरिक्त है ॥ ७३ ॥ और फिर हे नृप ! अब इन नारकियोंके ऊपर दया प्रकाश करनेसे

॥ इंद्रउवाच ॥ ॥ कर्मणानरकप्राप्तिरेषांपापिष्ठकर्मणाम् ॥ स्वर्गस्त्वयापिगंतव्योनृपपुण्येनकर्मणा ॥ ७० ॥ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ यदिजानासिधर्मंत्वंत्वंवादेवशतक्रतो ॥ ममयावत्प्रमाणंतुशुभंतद्वक्तुमर्हथः ॥ ७१ ॥ ॥ धर्मउवाच ॥ ॥ अब्बिन्दवोयथांभोधौयथावादिवितारकाः ॥ यथावावर्षतोधारागंगायांसिकतायथा ॥ ७२ ॥ असंख्येयामहाराजन्नानायोनिषुजंतवः ॥ तथातवापिपुण्यस्यसंख्यानैवोपपद्यते ॥ ७३ ॥ अनुकंपामिमामद्यनारकेष्विहकुर्वता ॥ तदेवशतसाहस्रसंख्यानीतंत्वयानृप ॥ ७४ ॥ तद्गच्छत्वंनृपश्रेष्ठतद्भोक्तुममरालयम् ॥ एतेतुनरकेपापंक्षपयंतुस्वकर्मजम् ॥ ७५ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ कथंस्पृहांकरिष्यंतिमत्संपर्कायमानवाः ॥ यदिमत्संनिधावेषामुत्कर्षोनोपपद्यते ॥ ७६ ॥ तस्माद्यत्सुकृतंकिंचिन्ममास्तित्रिदशाधिप ॥ मुच्यंतांतेननरकात्पापिनोयातनागताः ॥ ७७ ॥ ॥ इंद्रउवाच ॥ ॥ एवमूर्ध्वतरंस्थानंत्वयाप्राप्तंमहीपते ॥ एतांस्तुनरकात्पश्यविमुक्तान्पापकर्मिणः ॥ ७८ ॥

आपका वह पुण्य भी शत सहस्र गुण बढ़ गया ॥ ७४ ॥ सुतरां हे नृपश्रेष्ठ ! उस पुण्यफलको भोगनेके लिये अमरलोकमें चलिये और यह पापात्मा भी नरकमें वास करके अपने कर्मोंसे उत्पन्नहुए समस्त पापोंका क्षय करैं ॥ ७५ ॥ राजाने कहा—मेरे समीप वास करनेसे यदि इनका कल्याण नहीं होता तो मनुष्य मेरी संगतिकी इच्छा क्यों करते ? ॥ ७६ ॥ इसकारण हे त्रिदशाधिप ! मेरा जो कुछ पुण्य है, यह यातना भोगनेवाले पापात्मा उसके द्वाराही नरकसे छूटै ॥ ७७ ॥ इन्द्रने कहा—हे महीपते ! इससे आपकी और भी ऊँचे स्थानमें गति हुई, यह देखो ! पापी लोग नरकसे छूटगये ॥ ७८ ॥

पुत्रने कहा—अनन्तर उन राजाके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी. और शचीपति इन्द्र उनको विमानमें बैठालकर स्वर्गलोकमें लेगये ॥ ७९ ॥ और इधर मैंने व अन्यान्य नारकियोंने यातनासे छूटकर अपने अपने कर्मफलानुसार भिन्न भिन्न योनिमें जन्म ग्रहण किया ॥ ८० ॥ हे द्विजसत्तम ! इन नरकोंका सब वृत्तान्त आपके निकट यथार्थरीतिसे वर्णन किया, जिस जिस पापसे जिस जिस योनिमें जन्म ग्रहण करना पडता है ॥ ८१ ॥ जो मैंने पहिले देखा है, वह सबही आपके निकट वर्णन किया, आपसे जो कुछ कहा यह सभी मैंने पूर्वमें अनुभव किया है, सुतरां यह मिथ्या नहीं है. हे महाभाग ! अब अनुमति दीजिये, क्या वर्णन करूं ॥ ८२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ पिताने कहा—हे वत्स ! घटीयंत्रकी समान व्यवस्थित अतिशय त्यागने

॥ पुत्रउवाच ॥ ततोपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरिमहीपतेः ॥ विमानंचाधिरोप्यैनंस्वर्लोकमनयद्धरिः ॥ ७९ ॥ अहंचान्येचयेतत्रयातनाभ्यःपरिच्युताः ॥ स्वकर्मफलनिर्दिष्टंततोयोन्यंतरंगताः ॥ ८० ॥ एवमेतेसमाख्यातानरकाद्विजसत्तम ॥ येनयेनचपापेनयांयांयोनिमुपैतिवै ॥ ८१ ॥ तत्तत्सर्वंसमाख्यातंयथादृष्टंमयापुरा ॥ पुरानुभवजंज्ञानमवाप्यकथितंतव ॥ अतःपरंमहाभागकिमन्यत्कथयामिते ॥ ८२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेनरकस्थोद्धारवर्णनंनामपंचदशोऽध्यायः ॥१५॥ पितोवाच ॥ कथितंमेत्वयावत्ससंसारस्यव्यवस्थितम् ॥ स्वरूपमपिदेहस्यघटीयंत्रवदव्ययम् ॥ १ ॥ तदेवमेतदखिलंममावगतमीदृशम् ॥ किंमयावदकर्त्तव्यमेवमस्मिन्व्यवस्थिते ॥ २ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ यदिमद्वचनंतातश्रद्दधास्यविशंकितः ॥ तत्परित्यज्यगार्हस्थ्यंवानप्रस्थमनाभव ॥ ३ ॥ तमनुष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् ॥ आत्मन्यात्मानमाधायनिर्द्वंद्वोनिष्परिग्रहः ॥ ४ ॥ एकांतशीलोवश्यात्माभवभिक्षुरतंद्रितः ॥ तत्रयोगपरोभूत्वाबाह्यस्पर्शविवर्जितः ॥५॥ ततःप्राप्स्यसितंयोगंदुःखसंयोगभेषजम् ॥ मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसंज्ञितम् ॥ ६ ॥

योग्य संसारका अव्ययस्वरूप तुमने मुझसे वर्णन किया ॥ १ ॥ मुझको भी ज्ञान हुआ कि "समस्त इसीप्रकार है" जब कि, संसारकी ऐसी व्यवस्था है तो कहताहूं, देखो ! मुझको क्या करना चाहिये ? ॥ २ ॥ पुत्र बोला—हे तात ! यदि निःशंक चित्तसे मेरे वचनमें श्रद्धा करो तो गृहस्थाश्रम छोड़कर वानप्रस्थाश्रम अवलम्बन कीजिये ॥ ३ ॥ विधानानुसार वानप्रस्थ आश्रमका अनुष्ठानपूर्वक अग्निपरिग्रहत्याग, आत्मामें आत्माका संयोगकर निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होवो ॥ ४ ॥ और एकान्तशील हो आत्माको वशीभूत एवं आलस्यहीन कर भिक्षुक होवो. इसप्रकार योगपर वशहो जब बाह्य स्पर्शरहित होंगे ॥ ५ ॥ तब मुक्तिके कारण

स्वरूप, उपमाविहीन, वचनसे अतीत निःसंग और दुःखसंयोगके औषधिस्वरूप इसयोगको प्राप्त होंगे ॥ ६ ॥ इस योगका संयोग होनेसे आपका फिर पंचभूतके संग मेल नहीं रहेगा। पिताने कहा—हे वत्स ! अब मुक्तिके कारण स्वरूप उस योगकाविषय वर्णन करो ॥ ७ ॥ जिसयोगका अवलम्बन करनेसे भौतिक पदार्थोंके संग मिलित होकर पुनर्वार जन्म ग्रहणपूर्वक मुझको फिर ऐसा दुःख पाना न पड़े, यद्यपि आत्मा निर्लिप्त है किन्तु मेरी संसारबंधनमें अत्यन्त आसक्ति है ॥ ८ ॥ अतएव उसको लाभ करके आत्मा भी फिर युक्त न हो, सुतरां मुझसे योग कहो. हे वत्स ! मेरा देह और मन संसाररूपी सूर्यके तापकी पीडासे तप रहा है ॥ ९ ॥ तुम ब्रह्मज्ञानमय सुशीतलाम्बुमिश्रित वचनरूपी जलके द्वारा उसको परिषिक्त अर्थात् ठंडा करो अविद्यारूपी कालसर्पने मुझको काटा है, मैं उसके विषकी

तत्संयोगान्नतेयोगोभूयोभूतैर्भविष्यति ॥ ॥ पितोवाच ॥ ॥ वत्सयोगंममाचक्ष्वमुक्तिहेतुमतःपरम् ॥ ७ ॥ येनभूतैःपुनर्भूतोनैदृग्दुःखमवाप्नुयाम् ॥ यत्रासक्तिपरस्यात्माममसंसारबंधनै ॥ ८ ॥ नेतियोगमयोगोपितंयोगमधुनावद ॥ संसारादित्यतापार्त्तिविप्लुष्यद्देहिमानसम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मज्ञानांबुशीतेनसिंचमां वाक्यवारिणा ॥ अविद्याकृच्छ्रसर्पेणदष्टंतद्विषपीडितम् ॥ १० ॥ स्ववाक्यामृतदानेनमांजीवयपुनर्मृतम् ॥ पुत्रदारगृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् ॥ ११ ॥ मांमोचयेष्टसद्भावविज्ञानोद्घाटनैश्चिरम् ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ शृणुतातयथायोगोदत्तात्रेयेणधीमता ॥ १२ ॥ अलर्कायपुराप्रोक्तःसम्यक्पृष्टेनविस्तरात् ॥ पितोवाच ॥ ॥ दत्तात्रेयस्सुतःकस्यकथंवायोगमुक्तवान् ॥ १३ ॥ कश्चालर्कोमहाभागोयोयोगंपरिपृष्टवान् ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ कौशिको ब्राह्मणःकश्चित्प्रतिष्ठानेभवत्पुरे ॥ १४ ॥ सोन्यजनकृतैःपापैःकुष्ठरोगातुरोभवत् ॥ तंतथाव्याधितंभार्यापतिंदेवमिवार्चयत् ॥ १५ ॥

पीडासे अत्यन्त पीडित होकर मृतप्राय हुआहूं ॥ १० ॥ तुम अपने वचनरूपी अमृतको पिलाकर मुझको फिर जीवित करो। हे वत्स ! मैं पुत्र, स्त्री, गृह खेत ममतारूपी बेड़ियोंसे दृढ बँधाहुआहूं ॥ ११ ॥ तुम सद्भावसंयुक्त विज्ञान उत्पन्नकरके शीघ्र मुझको छुडाओ। पुत्र बोला—हे तात ! पूर्वमें बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीने अलर्कके सम्यक् प्रकार पूँछनेपर उनसे विस्तारपूर्वक जो योग कहाथा, मैं वही कहताहूं सुनो। पिताने कहा—हे वत्स ! दत्तात्रेय जी किसके पुत्रथे और उन्होंने किसप्रकार योग कहाथा ? ॥ १२ ॥ १३ ॥ और जिन्होंने योग पूँछाथा, वह महाभाग अलर्क कौन थे ? पुत्र बोला—पहिले प्रतिष्ठान नगरमें कुशिकवंशोत्पन्न कोई ब्राह्मण वास करताथा ॥ १४ ॥ वह पूर्व जन्मके किये पापद्वारा कुष्ठ रोगसे आतुर हुआ. स्वामीके कुष्ठरोगसे आक्रान्त होनेपरभी उसकी भार्या देवताकी समान उसकी

पूजा करती ॥ १५ ॥ चरणोंमें तेल मलती, अंग दाबती, स्नान कराती, आच्छादनकरती, भोजन कराती और कफ, मूत्र, मल तथा रक्तका प्रवाह धोती ॥ १६ ॥ निर्जनमें उपकार और प्रियसंभाषणादि द्वारा विनीतभावसे सदा उसकी पूजा करती॥॥ १७ ॥ किन्तु ब्राह्मण अत्यन्त कोपनस्वभाव और निष्ठुर होनेके कारण विनीत पत्नीसे निरंतर पूजित होकरभी उसको सदा घुड़कता, तथापि वह प्रणत भार्या उसको देवता जानती ॥ १८ ॥ वह उस बीभत्सरूपी ब्राह्मणको सबसे श्रेष्ठ मानती ब्राह्मणमें चलनेकी शक्ति नहीं थी तोभी एक समय॥१९॥ पत्नीको आज्ञा दी कि, मैं ने जो उस वेश्याको देखाहै, जो राजमार्गके पार्श्ववर्त्ती घरमें वासकरती है ॥ २० ॥ तू मुझे उसी वेश्याके घर लेचल, हे धर्मकी जाननेवाली ! वही मेरे हृदयमें वर्त्तमानरहती है, मैंने प्रातःकालमें उस बालाको देखा है और अब रात्रि होगई है॥ २१ ॥

पादाभ्यंगांगसंवाहस्नानाच्छादनभोजनैः ॥ श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्प्रवाहक्षालनेनच ॥ १६ ॥ रहस्येवोपचारेणप्रियसंभाषणेनच ॥ सततंपूज्यमानोपि तयातीवविनीतया ॥ १७ ॥ अतितीव्रप्रकोपत्वान्निर्भत्सयतिदारुणः ॥ तथापिप्रणतासाध्वीतममन्यतदैवतम् ॥ १८ ॥ तंतथाप्यतिबीभत्संसर्वश्रेष्ठममन्यत ॥ अचंक्रमणशीलोपिसकदाचिद्विजोत्तमः ॥ १९ ॥ प्राहभार्यांनयस्वेतित्वंमांतस्यानिवेशनम् ॥ यासावेश्यामयादृष्टाराजमार्गेगृहेसता ॥ २० ॥ तांमेप्रापयधर्मज्ञेसैवमेहृदिवर्त्तते ॥ दृष्टासूर्योदयेबालारात्रिश्चेयमुपागता ॥ २१ ॥ दर्शनानंतरंसामेहृदयान्नापसर्पति ॥ यदिसाचारुसर्वांगीपीनश्रोणिपयोधरा ॥ २२ ॥ नोपगूहतितन्वंगीतन्मांद्रक्ष्यतिवैमृतम् ॥ वामःकामोमनुष्याणांबहुभिःप्राप्यचेतसः ॥ २३ ॥ ममाशक्तिश्चगमनेसंकुलंप्रतिभातिमे ॥ ततदावचनंश्रुत्वाभर्त्तुःकामातुरस्यसा ॥ २४ ॥ तत्पत्नीव्याकुलाजातामहाभागापतिव्रता ॥ गाढंपरिकरंबद्ध्वाशुल्कमादायचाधिकम् ॥ २५ ॥ स्कंधेभर्त्तारमारोप्यजगाममृदुगामिनी ॥ निशिमेघावृतेव्योम्निचलद्विद्युच्चदृश्यते ॥ २६ ॥

तथापि जबसे देखा है, तबसे वह मेरे हृदयसे अलग नहीं होती, यदि वह पुष्टश्रोणि-भागवाली, पुष्टपयोधरवाली ॥ २२ ॥ तन्वङ्गी सर्वाङ्गसुन्दरी बालिका मुझको आलिंगन नहीं करेगी तो निःसन्देह मेरा मरण देखोगी. क्योंकि एक तो कामदेव मनुष्यके प्रतिकूल है ॥ २३ ॥ तिसपरभी अनेक मनुष्य उसके प्रार्थी हैं, फिर मुझमें चलनेकी शक्ति नहीं. इसकारण मुझे विषम संकट बोध होता है, उस समय कामातुर स्वामीके इसप्रकार वचन सुनकर ॥ २४ ॥ सत्कुलोत्पन्न महाभाग पतिव्रता व्याकुल हुई—पत्नीने दृढ़रूपसे कमरबांध बहुत धन ग्रहण किया ॥ २५ ॥ और स्वामीको कंधेपर चढायकर

धीरे धीरे गमन करने लगी । एकतो रात्रिही अँधियारी थी, फिर आकाशमें मेघ आच्छादित थे, किन्तु वह स्वामीके प्रियकार्यकी अभिलाषा करनेवाली द्विजाङ्गना चंचल बिजलीका प्रकाश देखकर राजमार्ग में गमन करने लगी और उसी मार्ग में एक शूली गड़रहीथी जिसपर चोर न होकर भी चोरीके अपराध से ॥ २६ ॥ २७ ॥ मांडव्य मुनि चढेहुए अत्यन्त दुःख भोगते थे, मार्ग में अंधकार होनेसे हठात् उस पत्नीके कंधेपर चढ़ेहुए कौशिक ब्राह्मणके अंगस्पर्शसे उनका चरण विचलित हुआ ॥ २८ ॥ पैर के विचलित होनेसे मांडव्य मुनिने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा कि, 'जिस पुरुष ने पैर विचलित करके मुझे वृथा ॥ ॥ २९ ॥ यंत्रणा दी है सूर्योदय होतेही वह पापात्मा नराधम असह्य यंत्रणाभोगनेसे अवश होकर निःसंदेह प्राण त्याग करेगा ॥ ३० ॥ सूर्यके देखतेही निःस

राजमार्गेप्रियंभर्त्तुश्चिकीर्षतीद्विजांगना ॥ पथिशूलेतदाप्रोतमचोरंचोरशंकया ॥ २७ ॥ माण्डव्यमतिदुःखार्तमंधकारेचसद्विजः ॥ पत्नीस्कंधसमारूढश्चाल यामासकौशिकः ॥ २८ ॥ वामांगेनाथसंक्रुद्धोमांडव्यस्तमुवाचह ॥ येनाहमेवमत्यर्थंदुःखितश्चालितोवृथा ॥ २९ ॥ इत्थंकष्टमनुप्राप्तःसपापात्मानराधमः ॥ सूर्योदयेऽवशःप्राणैर्वियोक्ष्यतिन संशयः ॥ ३० ॥ भास्करालोकनादेवसविनाशमवाप्स्यति ॥ तस्यभार्याततःश्रुत्वातंशापमतिदारुणम् ॥ ३१ ॥ प्रोवाचव्य थितासूर्यो नैवोदयमुपेष्यति ॥ ततःसूर्योदयाभावादभवत्संततानिशा ॥ ३२ ॥ बहून्यहःप्रमाणानिततोदेवाभयंययुः ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारंस्वधास्वाहा विवर्जितम् ॥ ३३ ॥ कथंनुखल्विदंसर्वंनगच्छेत्संक्षयंजगत् ॥ अहोरात्रव्यवस्थायाविनामासर्तुसंक्षयः ॥ ३४ ॥ तत्संक्षयान्नत्वयनेज्ञायेतेदक्षिणोत्तरे ॥ ॥ ३५ ॥ विनाचायनविज्ञानंकालःसंवत्सरःकुतः ॥ पतिव्रतायावचनान्नोद्गच्छतिदिवाकरः ॥ ३६ ॥

न्देह उसका प्राण त्याग होगा, तब उसकी पत्नी ने उनका यह दारुण शाप सुन ॥ ॥ ३१ ॥ अत्यन्त व्यथित होकर कहा "सूर्य अब उदितही नहीं होंगे" अनन्तर पतिपरायणा ब्राह्मणकी स्त्रीके उसी वचनानुसार सूर्यदेवके उदित न होनेसे सदा रात्रिही रही. इसप्रकार बहुत रात्रियोंके बीतनेपर देवताओंको अत्यन्त भय प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ तब वह विचारने लगे कि, "जब स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहा लोप होगा तब" किस प्रकार से इस संपूर्ण जगत् की रक्षा होगी? ॥ ३३ ॥ अहोरात्रकी व्यवस्थाके विना मास और ऋतुका विभाग नहीं होगा, मास और ऋतुका विभाग न होनेसे उत्तरायण और दक्षिणायनका ज्ञान नहीं होगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अयनज्ञान न होनेसे किसप्रकार संवत्सरकी स्थिरता होगी ? और संवत्सर का ज्ञान न होनेसे अन्यान्य कालका ज्ञान किस

प्रकारसे होगा ? पतिव्रताके वचनानुसार सूर्य अब उदित नहीं होते ॥ ३६ ॥ सूर्योदय नहीं होनेसे स्नानदानादि कार्य भी बन्द हुए, अब अग्निचयन अर्थात् हवन भी नहीं होता और समस्त यज्ञोंका भी अभाव दीखता है ॥ ३७ ॥ कालके विना इष्टि नहीं होती, यज्ञदानादि क्रिया नहीं होती चराचर अंधकारसे व्याप्त होनेके कारण सब प्राणी नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥ होमके विना हमारी तृप्तिका भी दूसरा उपाय नहीं है, मनुष्यगण यथोचित हमको यज्ञभागमें तृप्त करते हैं ॥ ३९ ॥ हम भी सस्यादि (अन्नादि) की सिद्धिकेलिये जल वर्षाकर उनपर अनुग्रह करते हैं समस्त औषधी उत्पन्न होनेसेही मनुष्य उनके द्वारा हमारे उद्देशसे यज्ञ करते हैं ॥ ४० ॥ हमभी यज्ञादिद्वारा पूजितहोकर उनकी अभिलाषानुसार समस्त विषय संपादन करते हैं, हम नीचेकी ओर वृष्टिधारा वर्षण करते हैं

सूर्योदयंविनानैवस्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ अग्नेर्विहरणंचैवक्रत्वभावश्चलक्ष्यते ॥३७॥ नकालेनविनाचेष्टिर्नचयज्ञादिकाःक्रियाः ॥ नश्यंतिसर्वभूतानितमोभूते चराचरे ॥ ३८ ॥ नैवाप्यायनमस्माकंविनाहोमेनजायते ॥ वयमाप्यायितामर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः ॥ ३९ ॥ वृष्ट्यादिनानुगृह्णीमोमर्त्यान्सस्याभिवृद्धये ॥ निष्पादितास्वौषधीषुमर्त्यायज्ञैर्यजंतिनः ॥ ४० ॥ एवंवयंप्रयच्छामःकामान्यज्ञादिपूजिताः ॥ अधोहिवर्षामवयंमर्त्याश्चोर्ध्वप्रवर्षिणः ॥ ४१ ॥ तोयवर्षेण हिवयंहविर्वर्षेणमानवाः ॥ येस्माकंनप्रयच्छंतिनित्यनैमित्तिकीःक्रियाः ॥ ४२ ॥ क्रतुभागंदुरात्मानःस्वयंवाश्नंतिलोलुपाः ॥ विनाशायवयंतेषांतोयसूर्याग्निमारुताः ॥ ४३ ॥ क्षितिंचसंदूषयामःपापानामपकारिणाम् ॥ दुष्टतोयादिदोषेणतेषांदुष्कृतकर्मणाम् ॥ ४४ ॥ उपसर्गाःप्रवर्त्तंतेमरणायसुदारुणाः ॥ येत्वस्मान्प्रीणयित्वातुभुंजतेशेषमात्मना ॥ ४५ ॥ तेषांपुण्यतमाँल्लोकान्वितरामोमहात्मनाम् ॥ तन्नास्तिसर्वमेतद्धिनचोपायव्यवस्थितम् ॥४६॥ कथंनुदिनसंगःस्यादन्योन्यमवदन्सुराः ॥ तेषामेवसमेतानांयज्ञव्युच्छित्तिशंकिनाम् ॥ ४७ ॥

और मनुष्य ऊपरकी ओर घृतधारा बरसाते हैं ॥ ४१ ॥ हम जल वर्षाकर और मनुष्य हवि देकर प्रसन्न करते हैं, जो नित्य नैमित्तिकी क्रियायें हमको नहीं देते ॥ ४२ ॥ अर्थात् जो दुरात्मा नित्य नैमित्तिक समस्त क्रिया हमारे उद्देशसे अर्पण नहीं करते और लोभी होकर यज्ञभाग स्वयं भोजन करते हैं, हम उनका नाश करनेके लिये जल, अग्नि, सूर्य, वायु ॥ ४३ ॥ और पृथ्वीको दूषितकरतेहैं और दुष्टजलादि भोग करनेसे उन अपकारी पापात्माओंके ॥ ४४ ॥ विनाशसूचक दारुण रोग प्रवर्त्तित होते हैं, और जो मनुष्य हमको तृप्त करके शेषमात्र स्वयं भोजन करते हैं ॥ ४५ ॥ हम उन महात्माओंको समस्त पुण्यमय स्थान देते हैं, इस समय तो उनका कुछभी उपस्थित नहीं है, न कोई उपाय विदित है ॥ ४६ ॥ किन्तु किसप्रकारसे इस सृष्टिका स्थापन हो और किसप्रकारसे

दिनकी सृष्टि हो ? देवता आपसमें इसप्रकार कहनेलगे, यज्ञविनाशकी शंका करनेवाले सब ॥ ४७ ॥ देवताओंके इसप्रकार वचन सुनकर देवताओंमें श्रेष्ठ प्रजापति, ब्रह्माजी ने कहा ॥४८॥ हे अमरगण ! देखो, तेजसे परम तेज और तपसे तपका विनाश होता है, अत एव मेरा वचन सुनो. देखो—पतिव्रताके माहात्म्यसे सूर्य उदय नहीं होता है सूर्यके उदय न होनेसे तुम्हारी और मनुष्योंकी अत्यन्त हानि होतीहै, इस कारण तुम यदि सूर्योदय होनेकी अभिलाषा करते हो तो एक मात्र पतिव्रता तपस्विनी अत्रिमुनिकी पत्नी अनसूयाको ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सूर्यके उदय की कामनासे प्रसन्न करो । पुत्र बोला—अनन्तर जब देवताओंने जाकर उनको प्रसन्न किया, तब वह उनके द्वारा प्रसन्न होकर बोली "तुम अभिलषित विषयकी प्रार्थना करो" ॥ ५१ ॥ देवताओंने यह प्रार्थना करी कि, 'पहिलेकी समा

देवानांवचनंश्रुत्वाप्राहदेवःप्रजापतिः ॥ तेजःपरंतेजसैवतपसाचतपस्तथा ॥ ४८ ॥ प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छृणुध्वंवचनंमम ॥ पतिव्रतायामाहात्म्यान्नोद्गच्छतिदिवाकरः ॥ ४९ ॥ तस्यचानुदयाद्धानिर्मर्त्यानांभवतांयथा ॥ तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयांतपस्विनीम् ॥ ५० ॥ प्रसादयतवैपत्नींभानोरुदयकाम्यया ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ तैःसाप्रसादितागत्वाप्राहेष्टंव्रियतामिति ॥ ५१ ॥ अयाचंतदिनंदेवाभवत्वितियथापुरा ॥ अनसूयोवाच ॥ पतिव्रतायामाहात्म्यंनहीयेतकथंत्विति ॥५२॥ संमान्यतांतथासाध्वींतथाप्रेष्याम्यहंसुराः ॥ यथापुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते ॥५३॥ यथाचतस्याःसपतिर्नशापान्नाशमेष्यति ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ एवमुक्त्वासुरांस्तस्यागत्वासामंदिरंशुभा ॥ ५४ ॥ उवाचकुशलंपृष्टाधर्मंभर्तुस्तथात्मनः ॥ कच्चिन्नंदसिकल्याणिस्वभर्तुःसुखदायिनी ॥ ५५ ॥ कच्चिच्चाखिलदेवेभ्योमन्यसेह्यधिकंपतिम् ॥ भर्तुःशुश्रूषणादेवमयाप्राप्तंमहत्फलम् ॥ ५६ ॥ सर्वकामफलावाप्तिःपत्युःशुश्रूषणात्स्त्रियाः ॥ पंचर्णानिमनुष्येणसाध्विदेयानिसर्वदा ॥ ५७ ॥

न दिन हो अर्थात् सूर्य निकलें' अनसूयाने कहा—पतिव्रताकी महिमा कभी हीन होनेवाली नहीं है ॥५२॥ हे देवताओंमे श्रेष्ठ ! उस पतिव्रताका तैसा सन्मान करके भेजूंगी, जिस प्रकार फिर दिनरातकी स्थिति होजाय ॥ ५३ ॥ और जिसप्रकारसे उसका वह पति शापके कारण नाशको प्राप्त न हो सो करूंगी. पुत्रने कहा: अनसूया इसप्रकार देवताओंसे कह उसके मन्दिरको गई ॥ ५४ ॥ और उसकी तथा उसके स्वामी की धर्मविषयक कुशल पूछी कि, हे कल्याणी ! हे भर्ताकी सुख देनेवाली तुम स्वामीका मुख देखनेसे आह्लादित तो होती हो ॥ ५५ ॥ और सब देवताओंकी अपेक्षा स्वामीको श्रेष्ठ तो जानती हो मैं केवलमात्र भर्त्ताकी शुश्रूषासेही महाफलको प्राप्त हुई हूं ॥ ५६ ॥ स्त्रीकी सब कामना पतिकी शुश्रूषासेही सफल होती है. हे साध्वि ! मनुष्यको पांच

ऋण सर्वदा देने योग्य हैं ॥५७॥ अपने वर्णके धर्मानुसार धनसंचय करैं और वह संचित धन विधानानुसार उपयुक्त पात्रमें दानकरैं ॥ ५८ ॥ और सदा सत्य, सरलता, तप, दान और दयापरायण हों, तथा प्रतिदिन श्रद्धासहित राग और द्वेष रहित यथाशक्ति समस्त शास्त्रोक्त क्रियांका अनुष्ठान करे, पुरुष इसप्रकार अपनी शक्तिके अनुसार स्वजातिविहित समस्त लोकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥और महाक्लेशसे क्रमशः प्राजापत्यादि पवित्र धाममें जानेको समर्थ होते हैं, किन्तु स्त्रियें केवल पतिकी सेवासेही मनुष्यके दुःखोपार्जित इस सब पुण्यमेंसे अर्द्धांशको प्राप्त होती हैं. स्त्रियोंके पक्षमें यज्ञ श्राद्ध वा उपवासका कोई पृथक् विधान नहीं है ॥ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ वह केवलमात्र स्वामीकी शुश्रूषासेही समस्त अभिलषितलोकों में जानेको समर्थ हैं. इसकारण हे साध्वि! हे महाभागे ! तुम स्वामीकी शुश्रू

तथात्मवर्णधर्मेणकर्तव्योधनसंचयः ॥ प्राप्तश्चार्थस्तथापात्रेविनियोज्योविधानतः ॥ ५८ ॥ सत्यार्जवतपोदानदयायुक्तोभवेत्सदा ॥ क्रियाचशास्त्रनिर्दिष्टारागद्वेषविवर्जिता ॥ ५९ ॥ कर्त्तव्याहरहःश्रद्धापुरस्कारेणशक्तितः ॥ स्वजातिविहितानेवंलोकान्प्राप्नोतिमानवः ॥ ६० ॥ क्लेशेनमहतासाध्वि प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥ स्त्रियश्चैवंसमस्तस्यनरैर्दुःखार्जितस्यवै ॥ ६१ ॥ पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यःपतिशुश्रूषयैवहि ॥ नास्तिस्त्रीणांपृथग्यज्ञोनश्राद्धंनाप्युपोषितम् ॥ ६२ ॥ भर्तुःशुश्रूषयैवैतालोकानिष्टाव्रजंतिहि ॥ तस्मात्साध्विमहाभागेपतिशुश्रूषणंप्रति ॥ त्वयामतिःसदाकार्यायतोभर्त्तापरागतिः ॥ ॥६३॥ यद्देवेभ्योयच्चपित्रादिकेभ्यःकुर्याद्भर्ताभ्यर्चनंसत्क्रियाश्च ॥ तस्यार्द्धंवैकेवलानन्यचित्तानारीभुङ्क्तेभर्तृशुश्रूषयैव॥ ६४ ॥ पुत्रउवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाप्रतिपूज्यतदादरात् ॥ प्रत्युवाचात्रिपत्नींतामनसूयामिदंवचः ॥ ६५ ॥ धन्यास्म्यनुगृहीतास्मिदैवस्याप्यवलोकतः ॥ यन्मेप्रकृतिकल्याणिश्रद्धांवर्धयसेपुनः ॥ ६६ ॥ जानाम्येतन्ननारीणांकचित्पतिसमागतिः ॥ तत्प्रीतिश्चोपकारायइहलोकेपरत्रच ॥ ६७ ॥ पतिप्रसादादिहचप्रेत्यचैवयशस्विनी ॥ नारीसुखमवाप्नोतिनार्याभर्त्ताहिदैवतम् ॥ ६८ ॥

षामें सदा यत्नवती होओ। क्योंकि स्वामीही स्त्रीकी परम गति है ॥ ६३ ॥देखो—पुरुष, देवता, पितर वा अतिथिगणोंके प्रति सत्क्रियानुसार जो पूजादि प्रदान करते हैं, अनन्यमन स्त्री केवलमात्र स्वामीकी शुश्रूषासेही उसका अर्द्धांश भोग करती है ॥ ६४ ॥ पुत्रबोला—अत्रिपत्नी अनसूयाके यह वचन सुन द्विजरमणीने आदरसहित उसकी पूजा करके कहा ॥ ६५ ॥ हे स्वभावशुभदायिनी! अब मैं धन्य और अनुग्रहीत हुई, देवताओंने भी आज मेरे ऊपर दृष्टिपात की, क्योंकि तुमने आज फिर मेरी स्वामीके प्रति श्रद्धा बढ़ादी ॥ ६६ ॥ मैंने जाना कि, स्त्रीकी पतिके समान और दूसरी गति नहीं है. उनके प्रसन्न होनेसे इसलोक और परलोकमें उपकार होता है ॥ ६७ ॥ हे यशस्विनी ! पतिके प्रसादसेही स्त्रियें इसलोक और परलोकमें सुख भोगतीं हैं, क्योंकि

भर्त्ताही एकमात्र स्त्रियोंका देवता है ॥ ६८ ॥ हे महाभागे ! हे शुभे ! मानिनीने जब आपही मेरे स्थानमें आगमन किया है, तब मुझको वा मेरे स्वामीको क्या करना चाहिये ? इस विषयमें अनुमति दो ॥ ६९ ॥ अनसूयाने कहा—हे साध्वि ! तुम्हारे वचनानुसारही दिन रात्रिका भेद मिट जानेसे समस्त सत्क्रिया नष्ट होगई हैं, इसकारण यह देवता अत्यन्त दुःखी होकर देवराज इन्द्रके सहित मेरे निकट आये ॥ ७० ॥ पूर्वके समान अखण्डित दिनरातके होनेकी प्रार्थना करते हैं, मैं इसीलिये तुम्हारे पास आईहूं मेरा वचन सुनो ॥ ७१ ॥ हे तपस्विनी ! दिनके अभावमें समस्त यागकर्मका अभाव हुआ है और यज्ञके न होनेसे देवताओंकी पुष्टि नहीं होती ॥ ७२ ॥ दिनके न होनेमें सब कर्म नष्ट होगये हैं, और कर्मोंके नष्ट होनेमे अनावृष्टि होगई है. जिससे कि, सब जगत् नष्ट होना चाहता है ॥

सात्वंब्रूहिमहाभागेप्राप्तायाममममंदिरम् ॥ आर्यायाःकिंनुकर्त्तव्यंमयार्येणापिवाशुभे ॥ ॥ ६९ ॥ अनसूयोवाच ॥ ॥ एतेदेवाःसहेन्द्रेणमामुपागम्य दुःखिताः ॥ त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिननक्तनिरूपणाः ॥ ७० ॥ याचंतेहर्निशासंस्थांयथावदविखंडिताम् ॥ अहंतदर्थमायाताशृणुचैतद्वचोमम ॥ ॥ ७१ ॥ दिनाभावात्समस्तानामभावोयागकर्मणाम् ॥ तदभावात्सुराःपुष्टिंनोपयांतितपस्विनि ॥ ७२ ॥ अह्नश्चैवसमुच्छेदादुच्छेदःसर्वकर्मणाम् ॥ तदुच्छेदादनावृष्ट्याजगदुच्छेदमेष्यति ॥ ७३ ॥ तत्त्वमिच्छसिचेदेनजगदुद्धर्त्तुमापदः ॥ प्रसीदसाध्विलोकानांपूर्ववद्वर्त्ततांरविः ॥ ७४ ॥ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ ॥ मांडव्येनमहाभागेशप्तोभर्त्तामेश्वरः ॥ सूर्योदयेविनाशंत्वंप्राप्स्यसीत्यतिमन्युना ॥ ७५ ॥ ॥ अनसूयोवाच ॥ ॥ यदितेरोचतेभद्रेतत स्तद्वचनादहम् ॥ करोमिपूर्ववद्देहंभर्त्तारंवचनात्तव ॥ ७६ ॥ मयापिसर्वथास्त्रीणांमाहात्म्यंवरवर्णिनी ॥ पतिव्रतानामाराध्यमितिसंमानयामिते ॥ ७७ ॥ पुत्रउवाच ॥ तथेत्युक्ततथासूर्यमाजुहावतपस्विनी ॥ अनसूयार्घ्यमुद्यम्यदशाधेरात्रेतदानिशि ॥ ७८ ॥ ततोविवस्वान्भगवान्फुल्लपद्मारुणाकृतिः ॥ शैलाधिराजमुदयमारुरोहोरुमंडलः ॥ ७९ ॥

॥ ७३ ॥ ऐसी आपदासे जगत्को रक्षित करनेकी यदि तुम्हारी इच्छाहो तो हेसाध्वि ! लोकोंपर प्रसन्न होओ, और सूर्यदेवभी पहिलेकी समान उदितहों ॥ ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणीने कहा—हे महाभागे ! मांडव्यमुनिने अत्यन्त क्रोधित होकर मेरे भर्त्ताको इस प्रकार शाप दिया है कि, "सूर्य उदय होतेही तेरा पति मर जायगा" ॥ ७५ ॥ अनसूया बोली—हे कल्याणी ! यदि तुम्हारी अभिलाषा हो तो मैं तुम्हारे स्वामीका देह पूर्ववत् करूंगी ॥ ७६ ॥ हे वरवर्णिनी ! पतिव्रतास्त्रीकी महिमा सम्यक् प्रकार मुझको आराधनीय है अतएव मैं तुम्हारा सन्मान करूंगी ॥ ७७ ॥ पुत्रने कहा—ब्राह्मणीके "तथास्तु" कहनेपर तपस्विनी अनसूयाने अर्घ्य उद्यत करके जब सूर्यदेवका आवाहन किया, तब दशदिन क्रमागत रात्रि थी, अर्थात् उस समयतक दश रात्रियोंका प्रमाण बीतगया था ॥ ७८ ॥ अनन्तर प्रफुल्ल कमलके

समान लालवर्ण उरुमण्डल भगवान् विवस्वान्ने जैसेंही उदयाचलमें आरोहणकिया ॥ ७९ ॥ इसी बीचमें उसके भर्ता ब्राह्मणका प्राण नष्ट हुआ और वह जैसे ही पृथ्वीमें गिरा, द्विजरमणीने उसी समय उसको पकड़ लिया ॥ ८० ॥ अनसूया बोली हे भद्रे ! तुम विषाद मत करो, मैंने केवल मात्र पतिकी सेवासे जो तपोबल प्राप्त किया है, वह तुम्हें अभी दिखाई देंगी ॥ ८१ ॥ रूप, शील, बुद्धि, वाक्य और मधुरता इत्यादि सद्गुणोंके द्वारा कभी किसी पुरुषको यदि स्वामीके समान नहीं जानती हूं ॥ ८२ ॥ तो उसी सत्यके बलसे यह ब्राह्मण व्याधिमुक्त और युवा हो, फिर जीवन प्राप्तकर पत्नीके सहित सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ८३ ॥ मैं यदि अन्य देवताको स्वामीके समान नहीं जानती हूं, तो इसी सत्यसे यह ब्राह्मण रोगरहित होकर फिर जीवित हो ॥ ८४ ॥ और काय, मन, वचनसे स्वामी

समनंतरमेवास्याभर्त्ताप्राणैर्व्ययुज्यत ॥ पपातचमहीपृष्ठपतंतंजगृहेचसा ॥ ८० ॥ ॥ अनसूयोवाच ॥ ॥ नविषादस्त्वयाभद्रेकर्तव्यःपश्यमेबलम् ॥ पतिशुश्रूषयावाप्तंतपसःकिंचिरेणमे ॥ ८१ ॥ यथाभर्तृसमंनान्यमपश्यंपुरुषंक्वचित् ॥ रूपतःशीलतोबुद्ध्यावाङ्माधुर्यादिभूषणैः ॥ ८२ ॥ तेनसत्येन विप्रोयंव्याधिमुक्तःपुनर्युवा ॥ प्राप्नोतुजीवितंभार्यासहायः शरदांशतम् ॥ ८३ ॥ यथाभर्तृसमंनान्यमहंपश्यामिदैवतम् ॥ तेनसत्येनविप्रोयंपुनर्जीवत्व नामयः ॥ ८४ ॥ कर्मणामनसावाचाभर्तुराराधनंप्रति ॥ यथाममोद्यमोनित्यंतथायंजीवताद्द्विजः ॥ ८५ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ ततोविप्रःसमुत्तस्थौ व्याधिमुक्तःपुनर्युवा ॥ स्वभाभिर्भासयन्वेश्मवृंदारकइवाजरः ॥ ८६ ॥ ततोपतत्पुष्पवृष्टिर्देववाद्यानिसस्वनुः ॥ लेभिरेचमुदंदेवाअनसूयामथाब्रुवन् ॥ ८७ ॥ देवाऊचुः ॥ वरंवृणीष्वकल्याणिदेवकार्यमहत्कृतम ॥ आदित्योदयसद्भावाद्वरंवरयसुव्रते ॥ ८८ ॥ त्वयायस्मात्ततोदेवावरदास्तेतपस्विनि ॥ अनसूयोवाच ॥ यदिदेवाःप्रसन्नामेपितामहपुरोगमाः ॥ ८९ ॥

की आराधनामें यदि नित्य मेरा उद्यम है तो यह द्विजवर जीवित हो ॥ ८५ ॥ पुत्रने कहा—अनन्तर वह ब्राह्मण व्याधिसे छूटकर युवाकलेवर हो अजर अमरकी समान देहकी प्रभासे घरको प्रकाशमान करता हुआ उठ खड़ा हुआ ॥ ८६ ॥ और पुष्पवृष्टि तथा देवताओंके बाजोंकी ध्वनि होनेलगी, फिर देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर अनसूयासे कहा ॥ ८७ ॥ देवता बोले—हे कल्याणी ! तुमने देवताओंका बड़ा कार्य संपादन किया है अत एव वर ग्रहण करो। हे सुव्रते ! सूर्य उदयके कारण तुम वर मांगो ॥ ८८ ॥ हे तपस्विनी ! देवता तुमको वर देनेके लिये उद्यतहुए हैं, अनसूया बोली—हे पितामह इत्यादि देवताओ ! आप यदि मेरे प्रति प्रसन्न

होकर वर देनेके अभिलाषी हुए हैं ॥ और मुझको वर देनेके योग्य विचारा है, तो यह वर दो, जिससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर मेरे पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण करैं ॥ ॥८९॥९०॥और मैं स्वामीके सहित क्लेशमुक्तिके निमित्त योगको प्राप्त हूं । पुत्रने कहा—तब ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वरादिदेवता "तथास्तु" कहकर ॥ ९१ ॥ उस तपस्विनीका यथाविधि सन्मान करके चले गये। फिर कुछ काल बीतनेपर ब्रह्माजीके दूसरे पुत्र ॥ ९२ ॥ भगवान् अत्रिने एक दिन सर्वांगसुन्दरी मनोहर मूर्त्ति अपनी पत्नीको ऋतुसे निवृत्त होकर स्नान किये देख ॥ ९३ ॥ कामके वशीभूत हो मनमें उस अनिन्दिताकी भजन करी । उसके संग मनमें संभोग कर नेसे मुनिवरका जो तेज स्खलित हुआ था ॥ ९४ ॥ वेगवान् पवनने उस तेजको वहन करके ऊर्ध्वमें और तिर्यक् भावमें प्रवाहित किया, ब्रह्मतेजसम्पन्न शुक्र

वरदावरयोग्याचयद्यहंभवतांमता ॥ तद्यांतुममपुत्रत्वंब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ॥ ९० ॥ योगंचप्राप्तुयांभर्त्तृसहिताक्लेशमुक्तये ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ एवमस्त्वितिदेवास्तांब्रह्माविष्णुशिवादयः ॥ ९१ ॥ उक्त्वाजग्मुर्यथान्यायमनुमान्यतपस्विनीम् ॥ ततःकालेबहुतिथेद्वितीयोब्रह्मणःसुतः ॥ ९२ ॥ स्वभार्यांभगवानत्रिरनसूयामपश्यत ॥ ऋतुस्नातांसुचार्वंगींलोभनीयतमाकृतिम् ॥ ९३ ॥ सकामोमनसाभेजेसमुनिस्तामनिंदिताम् ॥ तस्याभिपश्यतस्तांतुविकारोयोऽभ्यजायत ॥ ९४ ॥ तमपोवाहपवनस्तिर्यगूर्ध्वंचवेगवान् ॥ ब्रह्मरूपंचशुक्राभंपतमानंसमंततः ॥ ९५ ॥ सोमरूपंरजोरूपंदिशस्तंजगृहुर्दश ॥ ससोमोमानसोजज्ञेतस्यामत्रेःप्रजापतेः ॥ ९६ ॥ पुत्रःसमस्ततत्त्वानामायुराधारएवच ॥ तुष्टेनविष्णुनाजज्ञेदत्तात्रेयोमहात्मना ॥ ९७ ॥ स्वशरीरात्समुत्पन्नःसत्त्वोद्रिक्तोद्विजोत्तमः ॥ दत्तात्रेयइतिख्यातःसोनसूयास्तनंपपौ ॥ ९८ ॥ विष्णुरेवावतीर्णोसौद्वितीयोत्रेःसुतोभवत् ॥ सप्ताहात्प्रच्युतोमातुरुदरात्कुपितोयतः ॥ ९९ ॥ हैहयेंद्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् ॥ दृष्ट्वात्रौकुपितःसद्योदग्धुकामःसहैहयम् ॥ १०० ॥

कान्ति रजोगुणस्वरूप उस तेजने गिरनेके समय चन्द्ररूपसे दशो दिशाओंका आश्रय किया, समस्त प्राणियोंके जीवनाधार उन्हीं सोम अर्थात् ब्रह्मरूपी चन्द्रने प्रजापति अत्रिके मानस पुत्र रूपमें अनसूयासे जन्मग्रहण किया था ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ यह सब तत्त्वोंकी आयु और आधार है, महात्मा विष्णुनेभी अत्यन्त संतुष्ट होकर अपना अंशप्रदानपूर्वक सत्वगुणावलम्बी द्विजोत्तम दत्तात्रेय नामसे जन्मग्रहण किया है, विष्णुने दत्तात्रेयके नामसे प्रसिद्ध होकर अनसूयाका स्तन पिया था ॥ ९७ ॥ ९८॥ यही अत्रिके दूसरे विष्णुरूप पुत्र हैं, जो क्रोधके कारण माताके उदरसे सात दिनमेंही जन्मे थे ॥ ९९ ॥ उन्मार्गगामी हैहयाधिपतिके

उद्धत स्वभावसे अत्रि मुनिका अपमान रूप अपराध करनेसे, वह यह देख कुपित हो हैहयको दग्ध करनेके निमित्त ॥ १०० ॥ गर्भवासरूप महाक्लेश और दुःखसे अमर्षयुक्त हो तमोगुणप्रधान रुद्रके अंशसे श्रीदुर्वासाजीका जन्म हुआ ॥ १ ॥ इसप्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन तीनोंने अनसूयाके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया, ब्रह्माने चन्द्ररूपमें, विष्णुने दत्तात्रेय रूपमें ॥ २ ॥ और महादेवने दुर्वासा रूपमें देवताओंके वरदानसे जन्म ग्रहण किया था ! वह प्रजापति सोम अर्थात् चंद्रमा अपनी शीतल किरणोंके द्वारा लता, औषधी और मनुष्योंको ॥ ३ ॥ तृप्त करके स्वर्गधाममें वर्त्तमान सदा रहते हैं और विष्णुके अंशसे उत्पन्न दत्तात्रेयजी दुष्टदैत्योंका विनाश ॥ ४ ॥ और साधु वैष्णवोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करते हुए प्रजापालनमें तत्परहुए और

गर्भवासमहायासदुःखामर्षसमन्वितः ॥ दुर्वासास्तमसायुक्तोरुद्रांशःसोभ्यजायत ॥ १ ॥ इतिपुत्रत्रयंतस्याजज्ञेब्रह्मेशवैष्णवम् ॥ सोमोब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोभ्यजायत ॥ २ ॥ दुर्वासाःशंकरोजज्ञेवरदानाद्दिवौकसाम् ॥ सोमःस्वरश्मिभिःशीतैर्वीरुदौषधिमानवान् ॥ ३ ॥ आप्याययन्सदास्वर्गेवर्त्ततेसप्रजापतिः ॥ दत्तात्रेयःप्रजाःपातिदुष्टदैत्यानिबर्हणात् ॥४॥ शिष्टानुग्रहकृद्योगीज्ञेयश्चांशःसवैष्णवः ॥ निर्दहत्यवमंतारंदुर्वासाभगवानजः ॥५॥ रौद्रभावंसमाश्रित्यदृङ्मनोवाग्भिरुद्धतः ॥ सोमत्वंभगवानत्रिःपुनश्चक्रेप्रजापतिः ॥ ६ ॥ दत्तात्रेयोपिविषयान्योगस्थोदद्दशेहरिः ॥ दुर्वासाःपितरंत्यक्त्वामातरंचोत्तमंव्रतम् ॥७॥ उन्मत्ताख्यंसमाश्रित्यपरिबभ्राममेदिनीम् ॥ मुनिपुत्रवृतोयोगीदत्तात्रेयोप्यसंगिताम् ॥८॥ अभीप्समानःसरसिनिममज्जाचिरंविभुः ॥ तथापितंमहात्मानमतीवप्रियदर्शनम् ॥ ९ ॥ तत्यजुर्नकुमारास्तेसरसस्तीरसंश्रयाः ॥ दिव्येवर्षशतेपूर्णेयदातेनत्यजंतितम् ॥ ११० ॥ तत्प्रीत्यासरसस्तीरंसर्वेमुनिकुमारकाः ॥ ततोदिव्यांवरधरांसुरूपांसुनितंबिनीम् ॥ ११ ॥

भगवान् अज दुर्वासा ॥ ५ ॥ रुद्र संबंधी शरीर अवलम्बन करके नेत्र, मन और वचन द्वारा उद्धत हो अपमान करनेवाले दुष्टोंका विनाश करने लगे, इसके पीछे भगवान् अत्रिने चन्द्रमाको सोमत्वका पद देकर प्रजापति किया ॥ ६ ॥ विष्णुके अंशसे उत्पन्न दत्तात्रेयजी योग अवलम्बमें विषयभोग और दुर्वासा मातापिताको छोड़कर उत्तम व्रत ॥ ७ ॥ अवलम्बन करके उन्मत्तभावसे पृथ्वीमें विचरण करने लगे. जो कि, दत्तात्रेय परमयोगी थे, इस कारण मुनिपुत्रगण सदाही इनको घेरे रहते ॥ ८ ॥ वह उनके छोड़नेकी अभिलाषासे सरोवरमें बहुत दिनोंतक निमग्न रहते तथापि वह अत्यन्त प्रियदर्शन और महात्मा थे ॥ ९ ॥ इस कारण मुनिकुमारोंने उनको नहीं छोड़ा और उसी सरोवरके तटपर वास करने लगे. इसप्रकार दिव्य शतवर्ष बीतजानेपर भी खडेरहे ॥ ११० ॥ जब उनके प्रति प्रीतिसे

सब मुनिकुमारोंने उनको नहीं छोड़ा तब दिव्य वस्त्र धारण किये स्वरूपवान् नितम्बिनी ॥ ११ ॥ कल्याणी एक स्त्रीको संगलेकर मुनिवर दत्तात्रेयजी जलसे अवतीर्ण हुए फिर विचारा कि मैं स्त्रीके निकट स्थिति करताहूं, ऐसा समझकर यह मुझको छोड़ देंगे ॥ १२ ॥ और मैंभी निःसंग होनेपर योगपरायण हो अकेला रहूंगा, किन्तु तो भी जब मुनि कुमारोंने इनको नहीं छोड़ा ॥ १३ ॥ तब वह उस कामिनीके संग मद्यपान करने लगे और विचारा कि—"भार्याके सहित मद्यपानमें रत जानकर छोड़देंगे" ॥ १४ ॥ किन्तु तोभी उन मुनिकुमारों ने गीत वाद्यादि रमणीसंभोग और उनके संसर्गसे दूषित विक्रियायुक्त मुनिको महात्मा जानकर नहीं छोडा॥ ॥ १५ ॥ वह योगीश्वर दत्तात्रेय वारुणी पान करनेकेभी चाण्डालके घरमें स्थित वायुके समान दूषित नहीं हुए ॥ १६ ॥ जो हो, वह योगवित् योगीश्वर दत्तात्रे

नारीमादायकल्याणीमुत्ततारजलान्मुनिः ॥ स्त्रीसंनिकर्षेणंह्येतेपरित्यक्ष्यंतिमामिति ॥ १२ ॥ मुनिपुत्रास्ततोयोगेस्थास्यामीतिविचिंतयन् ॥ तथापितेमुनिसुतानत्यजंतियदामुनिम् ॥ १३ ॥ ततःसहतयानार्यामद्यपानमथाकरोत् ॥ सुरापानरतंतनसभार्यंतत्यजुस्ततः ॥ १४ ॥ गीतवाद्यादिवनिताभोगसंसर्गदूषितम् ॥ मन्यमानामहात्मानंतयासहबहिष्क्रियम् ॥ १५ ॥ नावापदोषंयोगीशोवारुणीमपिबन्नपि ॥ अंतावसायिवेश्मांतर्मातरिश्वास्पृशन्निव ॥ १६ ॥ सुरांपिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपेसयोगवित् ॥ योगीश्वरश्चिंत्यमानोयोगिभिर्मुक्तिकांक्षिभिः ॥ १७ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यकार्त्तवीर्योर्जुनोबली ॥ कृतवीर्ये दिवंयातेमंत्रिभिःसपुरोहितैः ॥ १८ ॥ पौरैश्चात्माभिषेकार्थंसमाहूतोब्रवीदिदम् ॥ नाहंराज्यंकरिष्यामिमंत्रिणोनरकोत्तरम् ॥ १९ ॥ यदर्थंगृह्यतेशुल्कंतदनिष्पादयन्वृथा ॥ पण्यानांद्वादशंभागंभूपालायवणिग्जनः ॥१२०॥ दत्त्वात्मरक्षिभिर्मार्गेरक्षितोयातिदस्युतः ॥ गोपाश्चघृततक्रादेःषड्भागंचकृषीवलाः ॥२१॥

यजी पत्नीके सहित सुरापानमें रत हुए तपस्या करनलगे, इस परभी यह मुमुक्षु योगीजनोंके चिन्तनीय हुएथे ॥ १७ ॥ बलवान् कार्त्तवीर्यके स्वर्ग जानेके पीछे कुछ काल बीतनेपर पुरवासी, मंत्री और पुरोहितों ने एकत्र मिलकर उसके पुत्र अर्जुनको स्वीय राज्यमें अभिषिक्त करनेके लिये बुलाया, उसने उनके द्वारा बुलाये जाकर यह कहा—हे मंत्रीगण ! मैं राज्य नहीं करूंगा, क्योंकि राज्यका परिणाम नरकभोग है ॥ १८ ॥ १९ ॥ देखो, इसीलिये कर ग्रहण किया जाता है जिसका लेना बडा दुर्घट है, वैश्यगण व्यापारी वस्तु का बारहवां भाग राजाको ॥ १२० ॥ देकर रक्षकों के द्वारा चोरोंके भयसे रक्षित होकर जाते आते हैं, ग्वालि

ये घृत तक्रादि (मठादि) का छठा भाग और किसान भी सब धान्योंका छठा भाग ॥ २१ ॥ राजाको देकर यदि यह दूसरेको दें तो इनसे सब व्यापारी वस्तुओंका अधिक भागलेना चाहिये ॥ २२ ॥ अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदोंका साधन अतिथि सत्कार, वैश्वदेव यह इष्ट कहाता है ॥ २३ ॥ बावडी, कुए, सरोवर, देवताओंके स्थान बनवाना और अर्थियोंको दान देना पूर्त्त कहाता है ॥ २४ ॥ चौरकर्मा अर्थात् अधिक कर लेनेवाले राजाको इष्टापूर्त्तका नाशक कहा जाता है, जो अन्य वृत्तिको प्रापकर दूसरोंसे प्रजा पलवाता है ॥ २५ ॥ और छठा भाग लेता है, वह राजा निःसन्देह नरकको जाता है. पूर्वकालमें पण्डितोंने प्रजाकी रक्षा करनेके लियेही राजाका वेतन स्वरूप छठाभाग निरूपण किया है ॥ २६ ॥ राजा उसको ग्रहण करके यदि रीतिके अनुसार प्रजाकी रक्षा न करैं, तो चोरी

दत्त्वान्यद्भूभुजेदद्युर्यदिभागंततोधिकम् ॥ पण्यादीनामशेषाणांवणिजोगृह्णतस्ततः ॥ २२ ॥ अग्निहोत्रंतपःसत्यंवेदानांचैवसाधनम् ॥ आतिथ्यंवैश्वदेवंचइष्टमित्यभिधीयते ॥२३॥ वापीकूपतडागानिदेवतायतनानिच ॥ अन्नप्रदानमर्थिभ्यःपूर्त्तमित्यभिधीयते ॥२४॥ इष्टापूर्त्तविनाशायतद्राज्ञश्चौरकर्मिणः ॥ यदन्यैःपाल्यतेलोकस्तद्वृत्त्यंतरसंश्रितः ॥२५॥ गृह्णतोबालिषड्भागंनृपतेर्नरकोध्रुवम् ॥ निरूपितमिदंराज्ञःपूर्वैरक्षणवेतनम् ॥ २६ ॥ अरक्षंश्चोरतश्चोरस्तद्धनंनृपतेर्भवेत् ॥ तस्माद्यादितपस्तप्त्वाप्राप्तोयोगित्वमीप्सितम् ॥२७॥ भुवःपालनसामर्थ्ययुक्तएकोमहीपतिः ॥ पृथिव्यामस्त्रभृन्नाद्याप्यहमेवर्द्धिसंयुतः ॥ २८॥ ततोभविष्येनात्मानंकरिष्येपापभागिनम् ॥ तस्यतंनिश्चयंज्ञात्वामंत्रिमध्यास्थितोब्रवीत् ॥ २९ ॥ गर्गोनाममहाबुद्धिर्मुनिर्भूपवयोतिगः ॥ भक्त्यातुकृपयाविष्टस्तंतोषयितुमर्हति ॥१३०॥ यद्येवंकर्त्तुकामस्त्वंराज्यंसम्यक्प्रशासितुम् ॥ ततःशृणुष्वमेवाक्यंकुरुष्वचनृपात्मज ॥ ३१ ॥ दत्तात्रेयंमहात्मानंसह्यद्रोणीकृताश्रमम् ॥ तमाराधयभूपालपातियोभुवनत्रयम् ॥ ३२ ॥

करना हुआ, और इस कारण वह चोरीके पापमें पापी होता है, अतएव यदि तपस्या करके योगित्व लाभ करसकूं ॥ २७ ॥ और पृथ्वीमें शस्त्रधारी मान्य तथा पृथ्वीका पालन करनेमें सामर्थ्ययुक्त होकर एक मात्र नरपति होसकूं तभी मैं इसप्रकार ऋद्धिमान होकर राज्य करूंगा ॥ २८ ॥ नहीं तो वृथा आत्माको पापमार्ग करनेकी इच्छा नहीं करता. इसप्रकार अर्जुनका निश्चय जान मंत्रियोंके बीचमें बैठे हुए ॥ २९ ॥ बुद्धिमान् बडी आयुवाले मुनियोंमें श्रेष्ठ गर्ग नामक एक मुनि भक्ति और कृपापूर्वक राजाको प्रसन्न करतेहुए कहने लगे ॥ ३० ॥ हे राजकुमार ! जो आपको सम्यक् प्रकार राज्यशासन करनेकी इच्छा हो तो जो मैं कहता हूं, सो सुनो और उसे करो ॥ ३१ ॥ अर्थात् सह्याद्रि पर्वत पर आश्रम बनाकर स्थित तीनों भुवनके पालन करनेवाले महात्मा दत्तात्रे

यजीकी आराधना करो ॥ ३२ ॥ जो परमयोगी, महाभाग और सर्वत्र समदर्शी हैं, जो जगत्‌की रक्षा करनेके लिये विष्णुके अंशसे जन्म ग्रहण करके पृथ्वीतलमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३३॥ और जिनकी आराधना करके सहस्रनयन इन्द्र दैत्योंको मारकर दैत्योंसे हरण किये अपने पदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥ अर्जुनने कहा–किसप्रकार देवताओं ने प्रतापी दत्तात्रेयजीकी आराधना कीथी और इन्द्र भी किस प्रकारसे दैत्योंसे हरे हुए अपने पदको प्राप्त हुए थे ? ॥ ३५ ॥ गर्गजीने कहा–किसी समय देवता और असुरों का भयंकर युद्ध हुआ, तब जम्भ दैत्योंका अधिपति और शचीपति इन्द्र देवताओंके अधिनायक हुए थे ॥ ३६॥ इसप्रकार युद्धकरनेमें दिव्य संवत्सर बीतगया. तदनन्तर युद्धमें देवताओंकी हार और दैत्योंकी जीत हुई ॥ ३७ ॥ अनन्तर देवतागण

योगयुक्तंमहात्मानंसर्वत्रसमदर्शिनम् ॥ विष्णोरंशंजगद्धातुरवतीर्णंधरातले ॥ ३३ ॥ यमाराध्यसहस्राक्षःप्राप्तवान्पदमात्मनः ॥ हृतंदुरात्मभिर्दैत्यैर्जघानच दितेःसुतान् ॥ ३४ ॥ ॥ अर्जुनउवाच ॥ ॥ कथमाराधितोदेवैर्दत्तात्रेयःप्रतापवान् ॥ कथंवापहृतंदैत्यैरिंद्रत्वंप्रापवासवः ॥ ३५ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ दैत्यानांदेवतानांचयुद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ दैत्यानामीश्वरेजंभेदेवानांचशचीपतौ ॥ ३६ ॥ तेषांतुयुध्यमानानांदिव्यःसंवत्सरोगतः ॥ ततोदेवाःपराभूतादैत्याविजयिनोऽभवन् ॥ ३७ ॥ विप्रचित्तिमुखैर्देवादानवैस्तेपराजिताः ॥ पलायनकृतोत्साहानिरुत्साहाद्विषज्जये ॥ ३८ ॥ बृहस्पतिमुपागम्यदैत्यसैन्यवधेप्सवः ॥ अमंत्रयंतसहितावालखिल्यैःसहर्षिभिः ॥ ३९ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ॥ दत्तात्रेयंमहाभागमत्रेःपुत्रंतपोधनम् ॥ विकृताचरणंभक्त्यासंतोषयितुमर्हथ ॥ १४० ॥ सर्वोदैत्यविनाशायवरदोदास्यतेवरम् ॥ ततोहनिष्यथसुराःसहितान्दैत्यदानवान् ॥ ४१ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ ॥ हंतुंशक्तानसंदेहोदत्तात्रेयप्रसादतः ॥ इत्युक्तास्तेतदाजग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमंसुराः ॥ ४२ ॥

विप्रचित्ति इत्यादि प्रधान प्रधान दानवोंसे हारकर इधर उधर भागनेलगे और शत्रुओंके जीतनेमें निरुत्साह हो ॥ ३८ ॥ दैत्यसेनाके वध करनेकी इच्छासे बृहस्पतिके निकट जाय वालखिल्य ऋषियोंके सहित मंत्रणा (परामर्श) करने लगे ॥ ३९ ॥ बृहस्पतिजी बोले–हे देवताओ ! तुम भक्तिसहित तपोधन महात्मा विकृताचारी अर्थात् जिनका आचरण अच्छा नहीं है, उन्हीं अत्रिपुत्र दत्तात्रेयको संतुष्ट करनेकी चेष्टा करो ॥ १४० ॥ वह वरद संतुष्ट होकर दैत्योंका नाश करनेके निमित्त तुमको वर देंगे, तब तुम मिलकर दैत्य और दानवोंको मारसकोगे ॥ ४१ ॥ गर्गजीबोले–देवता बृहस्पतिजीके दत्तात्रेयके

प्रसादसे तुम अवश्य दैत्योंको मार सकोगे, इसप्रकार कहनेपर दत्तात्रेयजीके आश्रममें गये ॥ ४२ ॥ और देखा कि वह महात्मा लक्ष्मीजीके सहित युक्त होकर सुरापानमें रत होरहे हैं और गंधर्वगण उनके निकट गान करते हैं ॥ ४३ ॥ देवता उनके निकट जाय प्रणामपूर्वक सब अर्थ सिद्धकरनेवाली स्तुति करनेलगे और उनको भक्ष्य भोज्य तथा माल्यादि लानेलगे ॥ ४४ ॥ उनके बैठनेपर यह भी बैठते और गमन करनेपर यह भी गमन करते, इसप्रकार देवताओंने उनके आसनके निम्न भागमें बैठकर मुनिकी आराधना करीथी ॥ ४५ ॥ अनन्तर दत्तात्रेयजीने प्रणत देवताओंसे कहा तुम मेरे निकट क्या प्रार्थना करतेहो, जिससे इसप्रकार मेरी सेवा कर रहे हो ? ॥ ४६ ॥ देवता बोले—हे मुनिशार्दूल ! जम्भ इत्यादि दानवोंने हमको आक्रमण करके भूर्भुवादि तीनों लोक और सब यज्ञभाग हरण किया है ॥ ४७॥

ददृशुश्चमहात्मानंक्षांतंलक्ष्म्यासमन्वितम् ॥ उद्गीयमानंगन्धर्वैःसुरापानरतंमुनिम् ॥ ४३ ॥ तेतस्यगत्वाप्रणतिंचक्रुःसर्वार्थसाधनीम् ॥ भक्त्यातस्योपजह्रुश्चमद्यपस्यसुरादिकम् ॥ ४४ ॥ तिष्ठंतमनुतिष्ठंतियांतंयांतिदिवौकसः ॥ आराधयामासुरधःस्थितास्तिष्ठंतमासने ॥ ४५ ॥ सप्राहदेवान्प्रणतान्दत्तात्रेयःकिमिष्यते ॥ मत्तोभवद्भिर्येनेयंशुश्रूषाक्रियतेमम ॥ ४६ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ दानवैर्मुनिशार्दूलजंभाद्यैर्भूर्भुवादिकम् ॥ हृतंत्रैलोक्यमाक्रम्यक्रतुभागाश्चकृत्स्नशः ॥ ४७ ॥ तद्वधेकुरुबुद्धिंत्वंपरित्राणायनोनघ ॥ त्वत्प्रसादादभीप्सामःपुनःप्राप्तुंत्रिविष्टपम् ॥ ४८ ॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ मद्यासक्तोहमुच्छिष्टोनचैवाहंजितेंद्रियः ॥ कथमिच्छथमत्तोपिदेवाःशत्रुपराभवम् ॥४९॥ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ अनघस्त्वंजगन्नाथनलेपस्तवविद्यते ॥ विद्याक्षालनशुद्धांतर्निविष्टज्ञानदीधिते ॥ १५० ॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ सत्यमेतत्सुराविद्याममास्तिसमदर्शिनः ॥ अस्यास्तुयोषितःसंगादहमुच्छिष्टतांगतः ॥ ५१ ॥

हे पापरहित ! आप उनके विनाश करनेमें मन लगाकर हमारी रक्षा कीजिये. आपके प्रसादसे हम फिर स्वर्गको प्राप्त करैं, यही हमारी अभिलाषा है ॥ ४८ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—मैं मद्यपानमें आसक्त, अजितेन्द्रिय और निरन्तर अपवित्र हूं, हे देवताओ ! फिर तुम किस प्रकारसे मेरे द्वारा शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा करते हो ? ॥ ४९ ॥ देवता बोले—हे जगन्नाथ ! आपने विद्या प्रक्षालित पवित्र अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी किरणोंका सन्निवेश किया है, अतएव आप निष्पाप और किसी विषयमें लिप्त नहीं हैं ॥ १५० ॥ दत्तात्रेय बोले—हे देवताओ ! यथार्थही मुझमें विद्या है और मैं समदर्शी हूं, किन्तु इस स्त्रीके संसर्गसे अपवित्र होगया हूं ॥ ५१ ॥

क्योंकि उससेवित होकर स्त्रीसंसर्ग करनेसे यह अत्यन्त दोषकी खानि स्वरूप हैं देवता इसप्रकार सुनकर फिर कहनेलगे ॥ ५२ ॥ देवता बोले—हेअनघ! हे मुनिश्रेष्ठ! हे जगन्नाथ ! यह दूषित नहीं होती. हे विभो ! जो विद्या तुम सर्वज्ञके हृदयमें स्थित है ॥ ५३ ॥ हे जगन्नाथ ! जिस प्रकार सूर्यकी किरणें ब्राह्मण और चाण्डालादिक संसर्गसे पवित्र वा दूषित नहीं होतीं इसीप्रकार यह जगन्माताभी आपके संसर्गसे दूषित नहीं है ॥ ५४ ॥ गर्गजी बोले—मुनिवर दत्तात्रेयजीने देवताओंका इसप्रकार वचन सुनकर कुछेक हँसते हुए उनसे कहा हे त्रिदशगण ! यदि तुम्हारा मन ऐसा ही है ॥ ५५ ॥ तो हे सुरसत्तम ! तुम सब असुरोंको युद्धके निमित्त बुलाकर इस स्थानमें मेरे दृष्टिगोचर करो, विलम्ब मत करो ॥ ५६ ॥ क्योंकि मेरी दृष्टिपातरूप अग्निद्वारा उनका बल और तेज क्षीण होगा और वह सब मेरे दर्शनसे

स्त्रीसंभोगोतिदुःखायसातत्येनोपसेवितः ॥ एवमुक्तास्ततोदेवाःपुनर्वचनमब्रुवन् ॥ ५२ ॥ देवाऊचुः ॥ अनघेयंमुनिश्रेष्ठजगन्मातानदुष्यति ॥ यासाविद्यातव विभोसर्वज्ञस्यहृदिस्थिता ॥ ५३ ॥ यथांशुमालासूर्यस्यद्विजचंडालसंगिनी ॥ नदुष्यतिजगन्नाथतथेयंवरवर्णिनी ॥ ५४ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ ॥ एवमुक्त स्ततोदेवैर्दत्तात्रेयोब्रवीदिदम् ॥ प्रहस्यत्रिदशान्सर्वान्यद्येतद्भवतांमतम् ॥५५॥ तदाहूयासुरान्सर्वान्युद्धायसुरसत्तमाः ॥ इहानयतमद्दृष्टिगोचरंमाविलंब्यताम् ॥ ॥५६॥ मद्दृष्टिपातहुतभुक्प्रक्षीणबलतेजसः ॥ येननाशमशेषास्तेप्रयांतिममदर्शनात् ॥ ५७ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वादेवैर्दैत्यामहाबलाः ॥ आहूयसमाहूताजग्मुर्देवगणाश्रमम् ॥ ५८ ॥ तेहन्यमानादैतेयैर्देवाःसर्वेभयातुराः ॥ दत्तात्रेयाश्रमंजग्मुःसमस्ताःशरणार्थिनः ॥ ५९ ॥ तमेवविविशुर्दैत्याः कालयंतोदिवौकसः ॥ ददृशुस्तंमहात्मानंदत्तात्रेयंमदालसम् ॥ १६० ॥ वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतःशुभाम् ॥ भार्याचास्यसुचार्वंगींलक्ष्मीमिंदुनिभान नाम् ॥ ६१ ॥ नीलोत्पलाभनयनांपीनश्रोणिपयोधराम् ॥ सुदतींमधुराभाषांसर्वयोषिद्गुणैर्युताम् ॥ ६२ ॥

तत्काल मृत्युको प्राप्त होंगे ॥ ५७ ॥ गर्गजी बोले उनके इसप्रकार वचन सुनकर देवताओंने युद्धके निमित्त असुरोंको बुलाया. महाबलवान् असुरोंनेभी युद्धमें आय, कोपमें भर देवताओंपर आक्रमण किया ॥ ५८ ॥ अनन्तर सब देवता दानवोंकी मारसे चित्तमें भय पाय शरणकी इच्छा कर दत्तात्रेयजीके आ श्रममें गये ॥ ५९ ॥ दैत्योंनेभी उनका विनाश करनेके लिये उसी आश्रममें जाकर मदसे आलसी महात्मा दत्तात्रेयजीको देखा ॥ १६० ॥ और उनके वामपार्श्व में बैठी हुई संपूर्ण जगतकी इष्टदायिनी शुभकारिणी चन्द्रमुखी उनकी पत्नी लक्ष्मीको देखा ॥ ६१ ॥ दैत्य उस नीले कमलके समान नेत्रवाली पीन श्रोणि पीन स्तन

वाली मधुरभाषिणी और स्त्रीके सब गुणोंसे युक्त ललनाको ॥ ६२ ॥ सन्मुख देखकर दैत्यगण उसके लेनेमें अत्यन्त अभिलाषी हुए और उद्धत कामकी पीडासे आतुर हो मनमें धैर्य धारण न करसके ॥ ६३ ॥ और देवताओंको छोडकर उस कामिनीके हरण करनेमें अभिलाषी हुए, वह इस पापसे मुग्ध और हतवीर्य होकर इसप्रकार कहने लगे ॥ ६४ ॥ कि, यह स्त्रीरत्नही तीनों लोकोंका सार है, हम यदि इस ललनारत्नको ग्रहण करसके तभी कृतकार्य हों और हमारा चित्तभी भावनारहित हो ॥ ६५ ॥ अतएव हे दानवगण ! हम इस स्त्रीको पालकी में चढाकर अपने घर लेजायँगे, इस विषयमें निश्चिन्त होओ ॥ ६६ ॥ गर्गजी बोले–तदनन्तर उन सानुराग दैत्योंने आपसमें इस प्रकार परामर्शकर कामबाणसे पीडित हो साध्वी दत्तात्रेयपत्नीको उठाकर ॥ ६७ ॥ पालकी में चढाया और

दृष्ट्वाग्रतस्तदादैत्याःसाभिलाषमनोभवाः ॥ नशेकुरुद्धतादैत्यामनसावोढुमातुराः ॥ ६३ ॥ त्यक्त्वादेवान्स्त्रियंतांतुहर्तुकामाहतौजसः ॥ प्रेरितास्तेनपापेनह्यासक्तास्तेततोब्रुवन् ॥ ६४ ॥ स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्यसारंचेद्विदितंभवेत् ॥ कृतकृत्यास्ततःसर्वेइतिनोभावितंमनः ॥ ६५ ॥ तस्मात्सर्वेसमुत्क्षिप्यशिबिकायांसुरार्दनाः ॥ आरोप्यस्वमधिष्ठानंनयामइतिनिश्चिताः ॥ ६६ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ ॥ सानुरागास्ततस्तेतुमुनेरंतिकमागमन् ॥ तस्यतांयोषितंसाध्वींसमुत्क्षिप्यस्मरातुराः ॥ ६७ ॥ शिबिकाय समारोप्यसहितादैत्यदानवाः ॥ शिरःसुशिबिकांकृत्वास्वस्थानाभिमुखाययुः ॥ ६८ ॥ दत्तात्रेयस्तथादेवान्विहस्येदमथाब्रवीत् ॥ दिष्ट्याचहंतदैत्यानामेषालक्ष्मीःशिरोगता ॥ सप्तस्थानान्यतिक्रम्यलयमन्यमुपेष्यति ॥ ६९ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ कथयस्व जगन्नाथकेषुस्थानेष्ववास्थिता ॥ पुरुषस्यफलंकिंवाप्रयच्छत्यथनश्यति ॥१७० ॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ नृणांपादस्थितालक्ष्मीर्निलयंसंप्रयच्छति ॥ सक्थोश्चसंस्थितावस्त्रंरत्नंनानाविधंवसु ॥ ७१ ॥

दैत्य तथा दानव एकत्र मिलित हो, मस्तकपर पालकी रख अपने स्थानकी ओरको चले ॥६८॥ तब मुनिवर दत्तात्रेयने कुछेक हँसकर देवताओंसे कहा–हे देवताओ ! तुम्हारा भाग्य फिरा है, यह देखो, लक्ष्मी सप्त स्थानमें अतिक्रम करके दानवोंके मस्तकपर चढी है, अत एव यह उनको छोड़कर अन्यके निकट जायगी ॥ ६९ ॥ देवता बोले–हे जगन्नाथ ! यह वर्णन कीजिये. किस किस स्थान पर लक्ष्मीजीके जानेसे मनुष्योंका भला और किस किस स्थानपर जानेसे बुरा फल होता है॥ १७० ॥ दत्तात्रेयजीने कहा लक्ष्मी मनुष्यके पैरमें रहनेसे गृहप्रदान करती है सक्थिनी अस्थिमें स्थित होनेसे वस्त्र और नानाप्रकारके रत्न देती है॥ ७१ ॥

गुह्यस्थानमें लक्ष्मीके वास करनेसे स्त्री मिलती है और गोदीमें रहनेसे पुत्र प्राप्त होता है तथा हृदयमें स्थित होनेसे पुरुषके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥ ७२ ॥ सर्वप्रधान लक्ष्मी देवी कंठस्थानमें स्थित होनेसे लक्ष्मीवान्‌को कंठभूषण प्राप्त होता है और प्रवासी प्रियतम बंधु और स्त्रीके सहित समागम होता है ॥ ७३ ॥ समुद्रतनया लक्ष्मी यदि मुखमें स्थित हो तो सुन्दर वाक्य लावण्य, आज्ञा सफल और कवित्वलाभ होता है ॥ ७४ ॥ और मस्तकमें स्थित होनेपर उसको छोड़कर अन्यका आश्रय ग्रहण करती है, वही यह लक्ष्मी दानवोंके मस्तकपर पहुँची है, अब इनको परित्याग करेगी ॥ ७५ ॥ अतएव तुम अस्त्र शस्त्रग्रहणकर निर्भयचित्तसे उनको विनाश करो मेरे दृष्टिपातसे वह निस्तेज होगये हैं ॥ ७६ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके संग बलात्कार करनेसे पुण्य

कलत्रदागुह्यसंस्थाक्रोडस्थापत्यदायिनी ॥ मनोरथान्पूरयतिपुरुषाणांहृदिस्थिता ॥ ७२ ॥ लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतां श्रेष्ठाकंठस्थाकंठभूषणम् ॥ अभीष्टबंधुदारैश्चतथाश्लेषंप्रवासिभिः ॥ ७३ ॥ मृष्टान्नंवाक्यलावण्यमाज्ञामवितथांतथा ॥ मुखस्थिताकवित्वंचयच्छत्युदधिसंभवा ॥ ७४ ॥ शिरोगतासंत्यजतिततोन्यंयातिचाश्रयम् ॥ सेयंशिरोगतादैत्यान्परित्यजतिसांप्रतम् ॥ ७५ ॥ प्रगृह्यास्त्राणिवध्यन्तांतस्मादेतेसुरारयः ॥ नभेतव्यंभृशंत्वेतेमया निस्तेजसःकृताः ॥ ७६ ॥ परदारावमर्शाच्चदग्धपुण्याहतौजसः ॥ तस्मादेतेभिहन्यंतांभवद्भिरविशंकितैः ॥ ७७ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ ॥ ततस्ते विविधैरस्त्रैर्वध्यमानाःसुरारयः ॥ शिरःसुलक्ष्म्याप्याक्रांताविनेशुरितिनःश्रुतम् ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीश्चोत्पत्यसंप्राप्तादत्तात्रेयंमहामुनिम् ॥ स्तूयमानासुरैःसेंद्रैर्दैत्यनाशान्मुदान्वितैः ॥७९॥ प्रणिपत्यततोदेवादत्तात्रेयंमहामुनिम् ॥ जयकृष्णजगन्नाथदैत्यांतकहरप्रभो ॥ १८० ॥ नारायणाच्युतानंतवासुदेवाक्षयाजर ॥ त्वत्प्रसादात्सुखंलक्ष्मीराज्यंसंपज्जनार्दन ॥ ८१ ॥

दग्ध और पराक्रम नष्ट हो जाता है, इस कारण तुम निःशंक होकर इनका नाश करो ॥ ७७ ॥ गर्गजी बोले— तदनन्तर देवता पैने अस्त्र शस्त्रोंसे असुरोंको मारने लगे हे राजनन्दन ! मस्तकमें लक्ष्मीको स्थापन करके असुर इसप्रकार मरेथे, ऐसा सुना है ॥ ७८ ॥ फिर लक्ष्मीदेवी उनके मस्तकसे कूदकर महामुनि दत्तात्रेयजीके निकट आगई, और दैत्योंके नाशसे प्रसन्न हो इन्द्रके सहित सब देवता उनकी स्तुति करनेलगे ॥ ७९ ॥ फिर महामुनि दत्तात्रेयजीको प्रणामकर हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! हे दैत्यांतक ! हे हर ! हे प्रभो ! आपकी जयहो ॥१८०॥ हे नारायण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! हे अक्षय ! हे अजर ! हे जनार्दन

आपके प्रसादसे सुख लक्ष्मी राज्य संपत्तिको हमने प्राप्त किया ॥ ८१ ॥ हे शार्ङ्गधन्वन् ! हे चक्रपाणि ! आप नित्य भक्तोंपर कृपा करते हैं, इसप्रकार स्तुतिकर देवता लोग जहांसे आये थे, वहींको चलेगये ॥ ८२ ॥ अत एव हे राजेन्द्र ! तुम यदि मनोभिलषित अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करनेकी इच्छा करते हो तो शीघ्रही उन मुनिवर दत्तात्रेयजीकी आराधना करो ॥ १८३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पुत्रने कहा—नरपति कार्त्तवीर्यने गर्गऋषिके इसप्रकार वचन सुनकर दत्तात्रेय मुनिके आश्रममें जाय भक्तिसहित उनकी पूजा करी ॥ १ ॥ चरणसंवाहन (पैरोंका दाबना) इत्यादि करके अर्घ्य, फूल, माला, सुगंधि, जल, फल और चन्दनादि उनके लिये लानेलगे ॥ २॥ ऐसेही अन्नादि भी लाते थे और उनका उच्छिष्ट आप खातेथे

शार्ङ्गधन्वंश्चक्रपाणेभक्तानांनित्यवत्सल ॥ इतिस्तुत्वानाकपृष्ठंयथापूर्वंगताःसुराः ॥ ८२ ॥ तथात्वमपिराजेंद्रयदिच्छसियथेप्सितम् ॥ प्राप्तमैश्वर्यमतुलंतूर्णमाराधयस्वतम् ॥ १८३ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदत्तात्रेयमाहात्म्यवर्णनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वाकार्त्तवीर्योनरेश्वरः ॥ दत्तात्रेयाश्रमंगत्वातंभक्त्यासमपूजयत् ॥ १ ॥ पादसंवाहनाद्येनअर्घ्याघर्हिरणेनच ॥ स्रक्चंदनादिगंधांबुफलाद्यानयनेनच ॥ २ ॥ तथान्नसाधनैस्तस्यउच्छिष्टापोहनेनच ॥ परितुष्टोमुनिर्भूपंतमुवाचतथैवसः ॥ ३ ॥ यथैवोक्ताःपुरादेवामद्यभोज्यादिकुत्सनम् ॥ स्त्रीचेयंममपार्श्वस्थेत्येतद्भोगोनुकुत्सितः ॥ ४ ॥ सदैवाहंनमामेवमुपरोद्धुंत्वमर्हसि ॥ अशक्तमुपकारायशक्तमाराधयस्वभोः ॥ ५ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ तेनैवमुक्तोमुनिनास्मृत्वागर्गवचश्चतत् ॥ ६ ॥ प्रत्युवाचप्रणम्यैनंकार्त्तवीर्यस्ततोर्जुन ॥ ॥ अर्जुनउवाच ॥ ॥ देवस्त्वंहिपुराणोयःस्वांमायांसमुपाश्रितः ॥ ७ ॥

इस कारण मुनिने संतुष्ट होकर उनसे उसप्रकार कहा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार पहिले देवताओंसे मद्यपान इत्यादि अपने निन्दित कर्म कहे थे. फिर बोले, देखो—यह स्त्री जो मेरे निकट स्थित है, इससे मैं निन्दित रमण किया करता हूं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! मैं इसप्रकारके समस्त निन्दनीय कार्योंमें व्याप्त रहताहूं अतएव मेरी समान उपकार करनेमें असमर्थ पुरुषकी सेवा करनेसे क्या होगा ? जो पुरुष समर्थ हो, उसकी आराधना करो ॥ ५ ॥ पुत्रने कहा—मुनिके इसप्रकार कहनेपर गर्गमुनिके वह वचन स्मरण करके ॥ ६ ॥ कार्त्तवीर्यार्जुन दत्तात्रेयजीको प्रणामपूर्वक कहने लगे. अर्जुनने कहा—हे देव ! आपने मुझको ऐसा मोहित क्यों किया है, आप अपनी

मायाके संग मिलित हुए हैं, अर्थात् मुझ अज्ञानीको अपनी मायासे किसलिये भुलावा देते हो ? ॥ ७ ॥ अतएव आप पापरहित हैं, यह देवी सब संसारकी अरणि[1] स्वरूप है, इसकारण यहभी निष्पाप है, राजाके इसप्रकार कहनेपर मुनिवर अत्यन्तप्रसन्न होकर फिर बोले ॥ ८ ॥ हे पृथ्वीमण्डलको वशीभूत करनेवाले महावीर्यवान् कार्त्तवीर्यार्जुन ! वर मांगो, तुमने जो मेरे गुप्तनाम उच्चारण किये हैं ॥ ९ ॥ इससे मुझको अत्यन्त संतोष उत्पन्न हुआहै. हे राजन् ! जो मनुष्य मेरा गंधमाल्यादिसे पूजन करते हैं ॥ १० ॥ जो मद्यमांसरूप उपहार और घृतयुक्त मिष्टान्न देकर लक्ष्मी सहित ब्राह्मणकी पूजाके संग संगीत ॥ ११ ॥ तथा वीणा, वेणु और शंख इत्यादि मनोहर बाजे बजाते हैं, मैं पुत्र स्त्री और धनादि प्रदान करके उनको परमसंतुष्ट करता हूं ॥ १२ ॥ और जो अवधूत कहकर तिरस्कार करते हैं उनको मार-

अनघस्त्वंतथैवेयंदेवीसर्वभवारणिः ॥ इत्युक्तःप्रीतिमान्देवोभूयस्तंप्रत्युवाचह ॥ ८ ॥ कार्त्तवीर्यमहावीर्यवशीकृतमहीतलम् ॥ वरंवृणीष्वगुह्यंमेत्वयानामयदीरितम् ॥ ९ ॥ तेनतुष्टिःपराजातात्वय्यद्यममपार्थिव ॥ येचमांपूजयिष्यंतिगंधमाल्यादिभिर्नराः ॥ १० ॥ मांसमद्योपहारैश्चमृष्टान्नैश्चात्मसंमतैः ॥ लक्ष्म्यासमेतंगीतैश्चब्राह्मणानांतथार्च्चनैः ॥ ११ ॥ वाद्यैर्मनोरमैर्वीणावेणुशंखादिभिस्तथा ॥ तेषामहंपरांपुष्टिंपुत्रदारधनादिकीम् ॥ १२ ॥ प्रदास्याम्यवधूतश्चहनिष्याम्यवमन्यताम् ॥ सत्वंवरयभद्रंमेवरंयंमनसेच्छसि ॥ १३ ॥ प्रसादसुमुखस्तेहंगुह्यनामप्रकीर्त्तनात् ॥ ॥ कार्त्तवीर्यउवाच ॥ ॥ यदिदेवप्रसन्नस्त्वंतत्प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम् ॥ १४ ॥ यथाप्रजांपालयेयंनचाधर्ममवाप्नुयाम् ॥ परानुस्मरणंज्ञानमप्रतिद्वंद्वतांरणे ॥ १५ ॥ सहस्रमातुमिच्छामिबाहूनांलघुतागुणम् ॥ असंगागतयःसंतुशैलाकाशांबुभूमिषु ॥ १६ ॥ पातालेषुचसर्वेषुवधश्चाप्यधिकान्नरात् ॥ तथामार्गप्रवृत्तस्यसंतुसन्मार्गदेशिकाः ॥ १७ ॥ संतुमेतिथयःश्लाघ्यावित्तंवान्यत्तथाक्षयम् ॥ अनष्टद्रव्यताराष्ट्रेममानुस्मरणेनच ॥ १८ ॥

ताहूं, सो जो तुम्हारे मनमें इच्छा हो, वह वर मांगो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ १३ ॥ तुमने जो मेरे गुप्त नामकीर्त्तन किये हैं, इसकारण मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं. कार्त्तवीर्यने कहा—हे देव ! यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो मुझको ऐसी उत्तम ऋद्धि प्रदान कीजिये ॥ १४ ॥ जिससे सहजमें ही सब प्रजाका पालन करसकूं और पापभागी न हूं और शत्रुओंके अनुसरणमें ज्ञानकी प्राप्तिहो तथा समरमें कोई सन्मुख न ठहरसके ॥ १५ ॥ लघुतागुणयुक्त सहस्र बाहु हो जानेकी इच्छा करताहूं. जल, आकाश, भूमि, पर्वत और पाताल इत्यादि सब स्थानोंमेंही असंगगति और श्रेष्ठ मनुष्यके हाथमें मृत्यु यह सब लाभ करनेकी अभिलाषा करता हूं. हे देव ! मैं उन्मार्गप्रवृत्त मनुष्योंको सन्मार्ग दिखानेवाला हूं ॥ १६ ॥ १७ ॥ अक्षय धन दान करनेसे श्लाघनीय अतिथिलाभ करूं, राज्यमें

१ अरणि—घर्षण द्वारा अग्नि जलानेका काष्ठ वा सूर्य।

मेरा नाम उच्चारण करनेसे अनष्टद्रव्यता हो अर्थात् कोई धनहीन न रहै ॥ १८ ॥और आपके चरणकमलों में मेरी भक्ति सदा अचल होकर वर्त्तमान रहै; दत्तात्रेयजी बोले—हे वत्स ! तुमने जो जो कहा, वह सब होगा ॥ १९ ॥ और मेरे प्रसादसे तुम चक्रवर्त्ती राजा होंगे; पुत्रने कहा तब उन कार्त्तवीर्यार्जुनने मुनिवर दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके ॥ २० ॥ समस्त प्रजाको बुलाय सम्यक् प्रकारसे अभिषेक ग्रहण किया, उससमय समस्त गंधर्व, अप्सरागण ॥ २१ ॥ वसिष्ठ आदि ऋषिगण, सुमेरु इत्यादि पर्वत गंगा इत्यादि सब नदियाँ जलयुक्त सब समुद्र ॥ २२ ॥ प्लक्ष इत्यादि सब वृक्ष, इन्द्रादि सब देवता, वासुकी इत्यादि नाग ॥ २३ ॥ गरुडादि पक्षी, तथा नगर और पुरवासी समस्त लोक मुनिवर दत्तात्रेयजीके प्रसादसे सब सामग्री सजाय अभिषेकके लिये आये ॥ २४ ॥

त्वयिभक्तिश्चदेवास्तुनित्यमव्यभिचारिणी ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ यएतेकीर्तिताःसर्वेतान्वत्ससमवाप्स्यसि ॥ १९ ॥ मत्प्रसादात्प्रभविताचक्रवर्तित्वमैश्वरम् ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ प्रणिपत्यततस्तस्मैदत्तात्रेयायसोर्जुनः ॥ २० ॥ आनीयप्रकृतीःसम्यगभिषेकमगृह्णत ॥ आगताश्चापिगंधर्वास्तथैवाप्सरसांगणाः ॥ ॥ २१ ॥ ऋषयश्चवसिष्ठाद्यामेर्वाद्याःपर्वतास्तथा ॥ गंगाद्याःसरितःसर्वाःसमुद्रारत्नसंभवाः ॥ २२ ॥ प्लक्षाद्याश्चतथावृक्षादेवावैवासवादयः ॥ वासुकिप्रमुखानागाअभिषेकार्थमागताः ॥ २३ ॥ तार्क्ष्याद्याःपक्षिणश्चैवपौराजानपदास्तथा ॥ संभाराःसंभृताःसर्वेदत्तात्रेयप्रसादतः ॥ २४ ॥ अथासंज्वाल्यतैर्वह्निंदेवैर्ब्रह्मादिभिःसह ॥ नारायणेनाभिषिक्तोदत्तात्रेयस्वरूपिणा ॥ २५ ॥ समुद्रैश्चनदीभिश्चऋषिभिश्चाभिषेचितः ॥ आघोषयामासतदास्थितोराज्येसहैहयः ॥ ॥ २६ ॥ दत्तात्रेयात्परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वितः ॥ अद्यप्रभृतियःशस्त्रंमामृतेन्योगृहीष्यति ॥ २७ ॥ हंतव्यःसमयादस्युःपरहिंसारतोपिवा ॥ इत्याज्ञप्तेनतद्राज्येकश्चिदायुधभृन्नरः ॥ २८ ॥ तमृतेपुरुषव्याघ्रंबभूवोरुपराक्रमम् ॥ सएवग्रामपालोभूत्पशुपालःसएवच ॥ २९ ॥ क्षेत्रपालःसएवासीद्द्वितीयोनचरक्षिता ॥ तपस्विनांपालयितासार्थपालश्चसोभवत् ॥ ३० ॥

और ब्रह्मादि देवताओंने अग्नि प्रज्वलित करी, फिर दत्तात्रेयस्वरूपी नारायणने अभिषेक किया ॥ २५ ॥ अनन्तर समुद्र, नदी और ऋषियोंने अभिषेक किया और "हैहय राज्यमें स्थितहुए" यह घोषण सर्वत्र होगई ॥ २६ ॥ मुनिवर दत्तात्रेयके प्रसादसे अतुल ऐश्वर्यको प्राप्त हो महाबल हैहयने राज्यमें अवस्थान करके आज्ञा दी कि, जो अबसे मेरे अतिरिक्त अस्त्र ग्रहण करेगा ॥ २७ ॥ वह परहिंसारत वा दस्यु मेरे हाथसे मारा जायगा राजाके इस प्रकार आज्ञा करनेपर उनके राज्यमें उनके अतिरिक्त और कोई आयुधधारी मनुष्य वर्त्तमान नहीं रहा ॥ २८ ॥ सब भूमिके एक राजा कार्त्तवीर्यार्जुनही मनुष्य व्याघ्र और पराक्रमी हुए, तब वही ग्रामपालक, वही पशुपालक॥ २९ ॥ और वही क्षेत्ररक्षक थे, दूसरा नहीं. ब्राह्मणरक्षक, तपस्वीरक्षक और

वही अर्थपालक हुए ॥ ३० ॥ वह परवीरघातक राजाही केवल मात्र चोर सर्प, अग्नि, शस्त्र, शत्रु और भयंकर समुद्र वा अन्यान्य आपदामें निमग्न मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले हुए ॥ ३१ ॥ एक मात्र उनका नाम उच्चारण करकेही मनुष्यगण सब आपदाओंसे उत्तीर्ण होने लगे, उन राजाने जब राज्य शासन किया, तब राज्यमें किसीका द्रव्य नष्ट न हुआ ॥ ३२ ॥ उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञ यजनकरके दक्षिणासहित समाप्त किये और महत् तपस्याचारी तथा संग्राममें बड़ी चेष्टा वाले हुए ॥ ३३ ॥ तब इनकी अत्यन्त समृद्धि और मान देखकर अंगिरा मुनिनेकहा—"अन्य कोई राजा इनके समान नहीं हुआ ॥ ३४ ॥ और न यज्ञ दान, तपस्या वा संग्राम चेष्टा किसी विषयमें कार्त्तवीर्यके समान नहीं होगा, इसमें संदेह नहीं" । वह राजा जिस दिन दत्तात्रेयके निकटसे अतुल ऐश्वर्यको प्राप्त

दस्युव्यालाग्निशस्त्रारिभयेष्वब्धौनिमज्जताम् ॥ अन्यासुचैवमग्नानामापत्सुपरवीरहा ॥ ३१ ॥ सएवसंस्मृतःसद्यःसमुद्धर्त्ताभवन्नृणाम् ॥ अनष्टद्रव्यताचासीत्तस्मिंश्छासतिपार्थिवे ॥ ३२ ॥ तेनेष्टंबहुभिर्यज्ञैःसमाप्तवरदक्षिणैः ॥ तपश्चतप्तुंसुमहत्संग्रामेवातिचेष्टितम् ॥ ३३ ॥ तस्यर्द्धिंमहिमानंचदृष्ट्वाप्राहांगिरामुनिः ॥ ननूनंकार्त्तवीर्यस्यगतिंयास्यंतिपार्थिवाः ॥ ३४ ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वासंग्रामेचातिचेष्टितैः ॥ दत्तात्रेयादिनेयस्मिन्संप्राप्तेर्द्धिर्नरेश्वरः ॥ ॥ ३५ ॥ तस्मिन्तस्मिन्दिनेयागंदत्तात्रेयस्यसोकरोत् ॥ तथैवचप्रजाःसर्वास्तस्मिन्नहनिभूपते ॥ ३६ ॥ तस्यर्द्धिंपरमांदृष्ट्वायागंचक्रुःसमाधिना ॥ इत्येतत्तस्यमाहात्म्यंदत्तात्रेयस्यधीमतः ॥ ३७ ॥ विष्णोश्चराचरगुरोरनंतस्यमहात्मनः ॥ प्रादुर्भावःपुराणेषुकथ्यतेशार्ङ्गधन्वनः ॥ ३८ ॥ अनंतस्याप्रमेयस्यशंखचक्रगदाभृतः ॥ एतस्यपरमंरूपंयश्चिंतयतिमानवः ॥३९॥ ससुखीसचसंसारात्समुत्तीर्णोचिराद्भवेत् ॥ सदैववैष्णवानांचभक्त्याहंसुलभोस्मिभोः ॥ ॥ ४० ॥पत्रपुष्पफलेनाहंपूजितोमोक्षदोस्मिवै ॥ इत्येवंयस्यवैवाचस्तंकथंनाश्रयेज्जनः ॥ ४१ ॥ अधर्मस्यविनाशायधर्माधारार्थमेवच ॥ अनादिनिधनोदेवःकरोतिस्थितिपालनम् ॥ ४२ ॥

हुए हैं ॥ ३५ ॥ उन्हों ने उसी दिन दत्तात्रेयका याग किया था और उनकी सब प्रजाने भी भूपतिकी ॥ ३६ ॥ परम ऋद्धि देखकर सावधान चित्तसे उसी दिन याग किया था, यही उन बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीका माहात्म्य है ॥ ३७ ॥ उन चराचर गुरु, अन्तहीन, शार्ङ्गधन्वा, शंख, चक्र, गदा धारी अप्रमेय अनन्तदेव दत्तात्रेयरूपी विष्णुकी उत्पत्ति सब पुराणोंमें नाना प्रकारसे कही गई है, जो मनुष्य नारायणके इस परमरूपकी चिन्ता करते हैं ॥ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वही सुखी होते हैं और तत्काल संसारबंधनसे छूट जाते हैं जो सदा कहते हैं कि, हे वैष्णवगण ! मैं भक्तिद्वारा सदाही तुमको सुलभ हूं ॥ पत्र, पुष्प फलोंद्वारा पूजित हुआभी मैं मुक्ति देता हूं, ऐसी जिनकी प्रतिज्ञाहै, फिर मनुष्य उनका आश्रय क्यों न करैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वह अनादि निधनदेवही

धर्माचरणके करने और अधर्म विनाशके निमित्त स्थिति और पालनादि करत हैं ॥ ४२ ॥ हे पिता ! अब अलर्क नामक ब्राह्मणका वृत्तान्त आपसे कहता हूं कि, जिनसे दत्तात्रेयजीने योगमार्ग वर्णन किया है वह महात्मा अलर्कमहाराज जगत्में प्रसिद्ध राजर्षि और अपने पिताके भक्त थे ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ पुत्रने कहा—हे पिता ! पूर्वकालमें शत्रुजित् नामक महावीर्यवान् एक राजा थे, उनके यज्ञमें सोमपान करके शचीपति इन्द्र अत्यन्त संतुष्ट हुए थे ॥ १ ॥ उन राजाके महावीर्यवान् और अत्यन्त पराक्रमी, अरिमर्दन सर्वलक्षणोंसे युक्त ऋतु-ध्वज नामसे विख्यात एक पुत्र हुआ ॥ २ ॥ वह बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, विक्रममें इन्द्रके समान और लावण्यमें अश्विनीकुमारके समान थे। राजपुत्र जिन

तथैवजन्मचाख्यातमालर्कंकथयामिते ॥ यथाचयोगःकथितोदत्तात्रेयेणतस्यवै ॥ पितृभक्तस्यराजर्षेरलर्कस्यमहात्मनः ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेदत्तात्रेयोपाख्याननामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ प्राग्बभूवमहावीर्यःशत्रुजिन्नामपार्थिवः ॥ तुतोषयस्ययज्ञेषुसोमावाप्यापुरंदरः ॥ १ ॥ तस्यात्मजोमहावीर्योबभूवारिविदारणः ॥ नाम्नाऋतध्वजःख्यातःसर्वलक्षणसंयुतः ॥ २ ॥ बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशुक्राश्विनांसमः ॥ ससमानवयोबुद्धिसत्त्वविक्रमचेष्टितैः ॥ ३ ॥ नृपपुत्रोनृपसुतैर्नित्यमास्तेसमावृतः ॥ कदाचिच्छास्त्रसद्भावविवेककृतनिश्चयः ॥ ४ ॥ कदाचित्काव्यसंलापगीतनाटकसंभवैः ॥ तथैवाक्षविनोदैश्चशस्त्रास्त्रविनयेषुच ॥५॥ योग्योनियुद्धनागाश्वस्यंदनाभ्यासतत्परः ॥ रेमेनृपेंद्रपुत्रोसौनरेंद्रतनयैर्वृतैः ॥ ६ ॥ यथैवहिदिवातद्वद्रात्राववमुदायुतः ॥ तेषांतुक्रीडतांतत्रद्विजभूपविशांसुताः ॥ ७ ॥ समानवयसःप्रीत्यारंतुमायांत्यनेकशः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यनागलोकान्महीतलम् ॥ ८ ॥

राजनन्दनोंके सहित मिलित रहते, वह भी वयस, बुद्धि, सत्व, विक्रम और चेष्टामें राजपुत्रसे किसी प्रकार कम नहीं थे, वह कभी शास्त्र पढ़-नेसे उत्पन्न विवेक विषयमें व्रतनिश्चय होकर अवस्थान करते ॥ ३ ॥ ४ ॥ कभी काव्यकी चर्चामें गीत श्रवणमें और नाटकसंभवगीतादिमें मन लगाकर प्रसन्न रहते, कभी अक्षविनोद अर्थात् पाश खेलनेमें, कभी अस्त्रशस्त्रमें, कभी-विनयमें ॥ ५ ॥ कभी योग्य पुरुषोंके संग मल्लयुद्ध विषयमें और कभी हाथी घोडे तथा रथादिके अभ्यासमें तत्पर होकर राजपुत्रोंके संग खेलते ॥ ६ ॥ जिसप्रकार दिन आनन्द से बीतताथा, वैसेही रातभी सुखसे बीतजाती थी, जिस स्था-नपर वह क्रीडा किया करते थे, वहां सैकडों ब्राह्मणोंके पुत्र सैकडों राजाओं और वैश्योंके बालक ॥ ७ ॥ समान आयुमान् प्रीतिपूर्वक आन आनकर खेला करते.

इसप्रकार कुछ काल बीतनेपर नागलोकसे महीतलमें ॥ ८ ॥ नागराज अश्वतरके दो पुत्र ब्राह्मणका रूप धारण करके आये, यह दोनोंही तरुण और प्रिय दर्शन थे ॥ ९ ॥ यह उन राजनन्दन और ब्राह्मण पुत्रोंके संग नानाप्रकारके विनोद करते हुए प्रीतिपूर्वक वास करने लगे ॥ १० ॥ वह राजपुत्र ब्राह्मणपुत्र और वैश्यपुत्र तथा वह दोनों नागकुमार सबही एकत्र स्नान, यानारोहण ॥ ११ ॥ वस्त्र पहरना, गंधानुलेपन और भागानुसार भोजन करने लगे । इसप्रकार राजपुत्रकी प्रीतिसे आह्लाद युक्त हो वह दोनों नागराजके पुत्र नित्य आने जाने लगे और राजपुत्रभी उनसे परम प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ १३ ॥ अर्थात् उनके नानाप्रकार आमोद प्रमोद और हास्य संलापादि द्वारा अत्यन्त सुखी हुए थे, यही क्या उनके विना भोजन, स्नान और मधुपान नहीं करते ॥ १४ ॥ तथा क्रीडा और आत्म

कुमारावागतौनागौपुत्रावश्वतरस्यतु ॥ ब्रह्मरूपप्रतिच्छन्नौतरुणौप्रियदर्शनौ ॥ ९ ॥ तौतैर्नृपसुतैःसार्द्धंतथैवान्यैर्द्विजात्मजैः ॥ विनोदैर्विविधैस्तत्रत स्थतुःप्रीतिसंयुतौ ॥ १० ॥ सर्वेचतेनृपसुतास्तेचब्रह्मविशांसुताः ॥ नागराजात्मजौतौचस्नानसंवाहनादिकाम् ॥ ११ ॥ वस्त्रगंधान्नसंयुक्तांचक्रु र्भोगभुजिक्रियाम् ॥ अहन्यहन्यनुप्राप्तेतौचनागकुमारकौ ॥ १२ ॥ आजग्मतुर्मुदायुक्तौप्रीत्यासूनोर्महीपतेः ॥ सचताभ्यांनृपसुतःपरंनिर्वाणमाप्त वान् ॥ १३ ॥ विनोदैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेवच ॥ विनाताभ्यांनबुभुजेनसस्नौनपपौमधु ॥ १४ ॥ नरेमेचनजग्राहशास्त्राण्यात्मगुणर्द्धये ॥ रसातले चतौरात्रिंविनातेनमहात्मना ॥ १५ ॥ निःश्वासपरमौनीत्वाजग्मतुस्तंदिनेदिने ॥ मर्त्यलोकेपराप्रीतिर्भवतोःकेनपुत्रकौ ॥ १६ ॥ सहेतिचप्रलपितौताबुभौ नागदारकौ ॥ दृष्टयोरत्रपातालेबहूनिदिवसानिमे ॥ १७ ॥ दिवारजन्यामेवोभौपश्यामिप्रियदर्शनौ ॥ ॥ जडउवाच ॥ ॥ इतिपित्रास्वयंपृष्टौ प्रणिपत्यकृतांजली ॥ १८ ॥ प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेःसुतौ ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ॥ पुत्रःशत्रुजितस्तातनाम्नाख्यातऋतध्वजः ॥ १९ ॥ रूपानावर्जवोपेतःशूरोमानीप्रियंवदः ॥ अनावृतकथोवाग्मीविद्वान्मैत्रोगुणाकरः ॥ २० ॥

गुण वृद्धिके निमित्त शस्त्रभी ग्रहण नहीं करते, दोनों नाग नन्दनभी उन महात्मा राजपुत्रके विना रात्रि ॥ १५ ॥ दीर्घ श्वास लेते हुए रसातलमें बिताय दिनमें उनके निकट आते. इसप्रकार कुछ काल बीतनेपर नागराज अश्वतरने एक दिन दोनों पुत्रों से पूछा—हे प्रियदर्शन पुत्रो ! तुम मृत्युलोकमें ऐसे—प्रीतिमान् क्यों हुए हो ? बहुत दिन हुए दिनके समयसे तुमको इस पातालमें नहीं देखता ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ रात्रि होनेपर ही देखता हूं, इसका क्या कारण है ! जडने कहा—स्वयं पिताके इसप्रकार पूछने पर वह दोनों पुत्र महाभाग उरगाधिपतिसे—प्रणामपूर्वक हाथ जोडकर कहने लगे—पुत्रोंने कहा—हे तात ! मर्त्यलोकमें शत्रुजित् नामक— राजाके एक पुत्र हैं और उनका नाम ऋतुध्वज विख्यात है ॥ १८ ॥ १९ ॥ वह रूपवान्, सरलचित्त, शूर, मानी, प्रियवादी, प्रसिद्ध यशवान्, वाग्मी, विद्वान्

मित्रतायुक्त और गुणोंके आकर (खान) स्वरूप हैं ॥ २० ॥ वह मान करने योग्य पुरुषोंका मान करते हैं, वह बुद्धिमान्, लज्जावान् और विनयसे विभूषित हैं उनके इन उपचार और प्रीतिसम्भोग द्वारा हमारा मन अत्यन्त खिंचकर ॥ २१ ॥ नागलोक, भूलोक वा अन्य किसी स्थानमें प्रसन्नताको प्राप्त नहीं होता. हे पिता! उनसे वियोग होनेपर पातालकी शीतल निशाभी हमको ॥ २२ ॥ तापकी देनेवाली होती है और उनके संग मिलित रहनेसे रवितापान्वित दिनभी हमको आह्लादजनक होता है ॥ पिताने कहा—वह पुण्यशील पुत्र धन्य है, क्योंकि तुम सरीखे गुणवान् पुरुषभी ॥ २३ ॥ पीछेमें जिनके गुण कीर्त्तन करते हैं अनेक शास्त्र जाननेवाले पंडित भी कुस्वभावसंपन्न होते हैं और अनेक मूर्खभी सुशील होते हैं ॥ २४ ॥ किन्तु मैं विचारताहूं कि, शास्त्रज्ञ और सुशील वह राजपुत्रही

मान्यमानयिताधीमान्ह्रीमान्विनयभूषणः ॥ तस्योपचारसंप्रीतिसंभोगापहृतंमनः ॥ २१ ॥ नागलोकेऽन्यलोकेवानरतिंविंदतेपितः ॥ तद्वियोगेननौतात निशापातालशीतला ॥ २२ ॥ परितापायतत्संगश्चाह्लादायरविर्दिवा ॥ पितोवाच ॥ ॥ पुत्रःपुण्यवतोधन्यःसयस्यैवंभवाद्विधैः ॥ २३ ॥ परोक्षस्यापिगुणिभिःक्रियतेगुणकीर्तनम् ॥ संतिशास्त्रविदोऽशीलाःसंतिमूर्खाःसुशीलिनः ॥ २४ ॥ शास्त्रशीलेसमंमन्येयस्मिन्धन्यतरंतुतम् ॥ यस्यमित्रगुणान्मित्राण्यमित्राश्चपराक्रमम् ॥ २५ ॥ कथयंतिसदासत्सुपुत्रवांस्तेनवैपिता ॥ तस्योपकारिणःकच्चिद्भवद्भ्यामभिवांछितम् ॥ २६ ॥ किंचिन्निष्पादितंवत्सौ परितोषायचेतसः ॥ सधन्योजीवितंतस्यतस्यजन्मसुजन्मनः ॥ २७ ॥ यस्यार्थिनोनविमुखामित्रार्थेनचदुर्बलः ॥ मद्गृहेयत्सुवर्णादिरत्नवाहनमासनम् ॥ ॥ २८ ॥ यद्वान्यत्प्रीतयेतस्यतद्देयमविशंकया ॥ धिक्तस्यजीवितंपुंसोमित्राणामपकारिणः ॥ २९ ॥ प्रतिरूपमकुर्वन्योजीवामीत्यवगच्छति ॥ उपकारंसुहृद्वर्गेष्वपकारंचशत्रुषु ॥ ३० ॥

अत्यन्त धन्य हैं, क्योंकि मित्रद्वारा जिसका मित्रतागुण प्रकाशित होताहै और शत्रुद्वारा जिसका पराक्रम प्रगट होता है ॥ २५ ॥ अनेक संतान होने पर भी उसके द्वाराही पिता पुत्रवान् कहा जाता है जो हो,उस उपकारीके निमित्त तुमने कुछ विचारा भी है? ॥ २६ ॥ हे वत्स! उस मित्रका चित्त संतुष्ट करनेके लिये कुछ कार्य तुमने किया है? देखो—इस संसार में वही धन्य है और उसी अच्छे जन्मवालेका जन्म लेना सफल है ॥ २७ ॥ जो अर्थियोंको विमुख नहीं करता और मित्रके निमित्त दुर्बल नहीं है. अतएव मेरे घरमें सुवर्ण, रत्न, वाहन, आसन इत्यादि ॥ २८ ॥ जो कुछ है, तुम उनको प्रसन्न करनेके लिये अशंकित चित्तसे वह दे सकते हो, क्योंकि मित्रोंका अपकार करनेवालेके जीवनको धिक्कार है ॥ २९ ॥ जो पुरुष उपकारी मित्रका

प्रति उपकार न करके जीवन धारण करनेकी इच्छा करते हैं, उनके जीवनको धिक्कार है और जो पुरुषरूपी मेघ बंधुवर्गका उपकार और शत्रुवर्गका अपकार रूप जलकी वर्षा करते हैं, देवता सदाही उनकी उन्नतिसाधन करनेकी इच्छाकरते हैं. पुत्रने कहा हे पिता ! मैं उन कृतकृत्यका क्या उपकार कर सकताहूं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जिनके निकट याचकजन अभिलषित पदार्थद्वारा सदा अर्चित होते हैं, उनका उपकार करनेकी मेरी भी सामर्थ्य नहीं है, उनके घर जो रत्न हैं, पातालमें वह सब कहां हैं ॥ ३२ ॥ उनके यहांके वाहन, आसन, यान, भूषण, वस्त्र हमारे यहां नहीं हैं, उनके निकट जैसा विज्ञान हैं, अन्य कहीं भी वह नहीं है ॥ ३३ ॥ हे तात ! वह पण्डितोंका भी संदेहहरण करनेवाले हैं. जो हो, केवल उनका एक कार्य है किन्तु विचारसे हमारे वह साध्य नहीं है ॥ ३४ ॥

नृमेघोवर्षतिप्राज्ञास्तस्येच्छंतिसदोन्नतिम् ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ॥ किंतस्यकृतकृत्यस्यकर्तुंशक्येतकेनचित् ॥ ३१ ॥ यस्यसर्वार्थिनोगेहेसर्वकामैः सदार्चिताः ॥ यानिरत्नानितद्गेहेपातालेतानिनःकुतः ॥ ३२ ॥ वाहनासनयानानिभूषणान्यंबराणिच ॥ विज्ञानंयच्चतत्रास्तितदन्यत्रनविद्यते ॥ ३३ ॥ प्राज्ञानामप्यसौतातसर्वसंदेहहृत्तमः ॥ एकंतस्यास्तिकर्त्तव्यमसाध्यंतच्चनोमतम् ॥ ३४ ॥ हिरण्यगर्भगोविंदशर्वादीनांवरादृते ॥ ॥ पितोवाच ॥ तथापिश्रोतुमिच्छामितस्ययत्कार्यमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ असाध्यमथवासाध्यंकिंचासाध्यंविपश्चिताम् ॥ देवत्वममरेशत्वंतत्पूज्यत्वंचमानवाः ॥ ३६ ॥ प्रयांतिवांछितंचान्यद्दृढंयेव्यवसायिनः ॥ नाविज्ञातंनचागम्यंनाप्राप्यंदिविचेहवा ॥ ३७ ॥ उद्यतानांमनुष्याणांयतचित्तेंद्रियात्मनाम् ॥ योजनानांसहस्राणि यातिगच्छन्पिपीलिकः ॥ ३८ ॥ अगच्छन्वैनतेयोपिपदमेकंनगच्छति ॥ क्वभूतलंक्वचध्रौव्यंस्थानंयत्प्राप्तवान्ध्रुवः ॥ ३९ ॥

हिरण्यगर्भ गोविन्द और शिवादिके अतिरिक्त वह दूसरेके असाध्य है, अर्थात् दूसरा कोई उस कार्यको नहीं कर सकता. पिता बोले–तथापि उनका वह जो उत्तम कार्य है, उसके सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ ३५ ॥ चाहे वह साध्य असाध्य कैसाभी है, जो मनुष्य दृढतर उद्योगी होते हैं, वह देवत्व वा इन्द्रत्व अथवा उनके पूज्यभावको प्राप्त होनेमें समर्थ होतेहैं ॥ ३६ ॥ दृढव्यवसायी पुरुषही मनोवांछितको प्राप्त होते हैं, कोई वस्तु स्वर्गमें भी अविज्ञात, अगम्य और अप्राप्त नहीं है ॥ ३७ ॥ जो मन, इन्द्रिय और आत्माको वश करके अधिक उद्योगीहोते हैं, वह मनोरथको प्राप्त होते हैं, देखो–छोटी चैंटी अधिक उद्योगी होनेसे गमन करते करते हजार योजन जासकतीहै ॥ ३८ ॥ किन्तु पक्षिराज गरुड उद्योगहीन होनेसे एक पगभी जानेमें समर्थ नहीं होते, क्योंकि अनुद्योगी मनुष्यको गम्य वा

अगम्य कुछ नहीं है. देखो—उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुव पृथ्वीमें अवस्थान करके जिस अन्य दुर्लभ स्थानको प्राप्त हुए हैं, वह ध्रौव स्थान कहां ? और पृथ्वी कहां ? अतएव हे पुत्रो ! वह साधु महाभाग राजपुत्र जिससे कार्यवान् हो, वह कहो॥ ३९॥ ॥ ४० ॥ और तुमभी जिसके द्वारा मित्रता ऋणसे मुक्त होसको । पुत्रोंने कहा हे तात ! उन महात्माने पूर्ववृत्तान्त इसप्रकारसे कहाहै ॥ ४१ ॥ उन सद्वृत्तशाली महात्मा राजपुत्रकी कौमार अवस्थामें जिसप्रकार हुआथा, सो सुनो। एक शत्रुजित् नाम्क श्रेष्ठ ब्राह्मण है ॥ ४२ ॥ एक दिन गालव नामक बुद्धिमान् द्विजश्रेष्ठने सुन्दर घोड़ा ग्रहण करके मेरे आश्रममें आय राजासे कहाथा ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! कोई पापकारी दैत्योंमें अधम मेरे आश्रममें आनकर सबही ध्वंस करताहै वह रात दिन सिंह हाथी और अन्यान्य अल्पकाय वन

उत्तानपादनृपतेःपुत्रःसद्भूमिगोचरः ॥ तत्कथ्यतांमहाभागौकार्यवान्येनपुत्रकौ ॥ ४० ॥ सभूपालसुतःसाधुर्येनानृण्यंलभेतवाम् ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ तेनाख्यातमिदंतातपूर्ववृत्तंमहात्मना ॥ ४१ ॥ कौमारकेयथातस्यवृत्तंसद्वृत्तशालिनः ॥ तस्यशत्रुजितंतातंपूर्वकाश्चिद्द्विजोत्तमः ॥ ४२ ॥ गालवोभ्यागमद्धीमान्गृहीत्वातुरगोत्तमम् ॥ प्रत्युवाचचराजानंसमुपेत्याश्रमंमम ॥ ॥ ४३ ॥ कोपिदैत्याधमोराजन्विध्वंसयतिपापकृत् ॥ तत्तद्रूपंसमास्थाय सिंहेभवनचारिणाम् ॥ ४४ ॥अन्येषांचातिकायानामहर्निशमकारणात् ॥ समाधिध्यानयुक्तस्यमौनव्रतरतस्यच ॥ ४५ ॥ तथाकरोतिविघ्नानियथानेच्छामिपार्थिव ॥ दग्धुंकोपाग्निनासद्यःसमर्थास्तंवयंनतु ॥ ४६ ॥ दुःखार्जितस्यतपसोव्ययमिच्छामिपार्थिव ॥ एकदातुमयाराजन्नतिनिर्विण्णचेतसा ॥ ॥ ४७ ॥ तत्क्लेशितेननिःश्वासोनिरीक्ष्यांवरमुज्झितः ॥ ततोंबरतलात्सद्यःपतितोयंतुरंगमः ॥ ४८ ॥ वाक्चाशरीरिणीप्राहनरनाथशृणुष्वतत् ॥ अश्रांतःसकलंभूमेर्वलयंतुरगोत्तमः ॥ ४९ ॥

चारी जन्तुका रूप धारण करके इसप्रकार विघ्न करता है कि, मेरे समाधिध्यानयुक्त वा मौनव्रत अवलम्बन करनेपरभी मेरा मन विचलित होता है. हे राजन् ! आपही उसे कोपाग्निमें दग्धकरनेको समर्थ हैं, इस विषयमें मैं असमर्थ हूं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ क्योंकि समर्थ होकर भी मैं ऐसे अनुचित कार्यमें बहुत दिनोंकी दुःखोपार्जित तपस्या व्यय करनेकी इच्छा नहीं करता.जो हो, हे राजन् ! मैंने एक दिन उसके द्वारा अतिदुःखित चित्तसे ॥ ४७ ॥ क्लेशित होकर आकाशमें दीर्घ श्वास छोड़ा, तब उसी समय आकाशसे यह घोड़ागिरा ॥ ४८ ॥ और जो आकाशवाणी हुई वह कहताहूं, हे नरनाथ ! सुनो

“हे द्विजश्रेष्ठ ! तुमको जो अश्व मिला है, यह सूर्यके समान विना थके समस्त पृथ्वीवलय गमनकरनेमें समर्थ है. पाताल, आकाश, जलमें इसकी गति नहीं रुकती ॥ ४९ ॥ ५० ॥ समस्त दिशा तथा पर्वतोंमें भी विना रोक टोकके चल सकता है जो कि, यह अश्व विना थके समस्त पृथ्वीवलयमें जानेको समर्थ है” ॥ इस कारण यह सब लोकों में “कुवलय” नामसे विख्यात होगा और जो पापी दानवाधम तुमको रात दिन क्लेश देता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! शत्रुजित् नामक राजाका पुत्र ऋतध्वज इस अश्व रत्नपर चढ़कर उसको वध करेंगे ॥ ५३ ॥ और इस अश्वरत्नद्वारा ख्यातिलाभ करेंगे. इसीलिये मैं आपके निकट आयाहूं, आप भी तपस्याके विघ्न करनेवालेको ॥ ५४ ॥ निवारण कीजिये । हे भूपाल ! मेरे दिये इस अश्वरत्नको ग्रहण करके ॥ ५५ ॥ पुत्रको इस

समर्थःक्रांतुमर्केणतवायंप्रतिपादितः ॥ पातालांबरतोयेषुनास्यप्रतिहतागतिः ॥ ५० ॥ समस्तदिक्षुव्रजतोनसंगःपर्वतेषुच ॥ यतोभूवलयंसर्वमश्रांतोयंच रिष्यति ॥ ५१ ॥ ततःकुवलयोनाम्नाख्यातिंलोकेषुयास्यति ॥ क्लिश्नात्यहर्निशंपापोयश्चत्वांदानवाधमः ॥ ५२ ॥ तमप्येनंसमारुह्यद्विजश्रेष्ठहनिष्यति ॥ शत्रुजिन्नामभूपालस्तस्यपुत्रऋतध्वजः ॥ ५३ ॥ प्राप्यैतदश्वरत्नंचख्यातिमेतेनयास्यति ॥ सोहंत्वामनुसंप्राप्तस्तपसोविघ्नकारिणम् ॥ ५४ ॥ तंनि वारयभूपालभागभाङ्नृपतिर्यतः ॥ तदेतदश्वरत्नंतेमयाभूपनिवेदितम् ॥ ५५ ॥ पुत्रमाज्ञापयतथायथाधर्मोनलुप्यते ॥ सतस्यवचनाद्राजातंवै पुत्रमृतध्वजम् ॥ ५६ ॥ तदश्वरत्नमारोप्यकृतकौतुकमंगलम् ॥ अप्रेषयतधर्मात्मागालवेनसमंतदा ॥ ५७ ॥ स्वमाश्रमपदंसोपितमादायययौमुनिः ॥ ॥५८॥ इतिश्रीमार्कंडेयपुराणेपितापुत्रसंवादेमदालसोपाख्यानेकुवलयाश्वीयेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ ॥ पितोवाच ॥ ॥ गालवेनसमंगत्वानृपपुत्रेणतेनयत् ॥ कृतंतत्कथ्यतांपुत्रौविचित्रायुधयोधिना ॥ १ ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ सगालवाश्रमेरम्येतिष्ठन्भूपालनंदनः ॥ सर्वविघ्नोपशमनंचकारब्रह्मवादिनाम् ॥ २ ॥

प्रकार आज्ञा दीजिये कि, जिससे धर्मलोप न हो. तब धर्मात्मा राजा शत्रुजित्‌ने ब्राह्मणका यह वचन सुन, ऋतध्वजपुत्रको ॥ ५६ ॥ कौतुक और मंगलाचार इत्यादि कराय, उस अश्वरत्नपर चढाय मुनिवर गालवके संग भेजा ॥ ५७ ॥ और मुनिने भी उनको संग लेकर अपने आश्रमकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ पिता बोले—मुनिवर गालवके संग जाकर राजकुमारने जो कियाथा, सो कहो । हे पुत्रो ! तुम्हारी कथा अत्यन्त विचित्र है ॥ १ ॥ पुत्रोंने कहा—भूपालनंदन ऋतध्वजने गालवमुनिके मनोहर आश्रममें वास करके ब्रह्मवादियोंके समस्त विघ्न दूर किये थे ॥ २ ॥

वीर कुवलयाश्व जो गालव मुनिके आश्रममें वास करते हैं, मदके गर्वसे वह दानवाधम यह बात नहीं जानसका ॥ ३ ॥ इसी कारण वह सूकरमूर्त्ति धारण करके संध्योपासनमें तत्परहुए ब्राह्मण गालवजीको धर्षण करने लगा ॥ ४ ॥ तब मुनिके शिष्य ऊँचे स्वरसे चीत्कार करने लगे। राजपुत्र भी उसी समय शरासनधारणपूर्वक उस अश्वपर शीघ्रतासहित चढ वराहको लक्ष्य करके दौडे ॥ ५ ॥ और मनोहर चित्रतासे शोभित धनुष बलपूर्वक खैंच कर अर्द्धचन्द्रबाणसे उसको ताडन किया ॥ ६ ॥ तब वह दैत्य उनके बाणसे आहत हो आत्मरक्षा करनेमें तत्पर होकर पर्वत और महावनमें भ्रमण करने लगा ॥ ७ ॥ और पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले राजपुत्रके द्वारा प्रेरित होकर वह मनकी समान वेगवान् अश्वभी वेगसहित उसके

वीरःकुवलयाश्वंतंवसंतंगालवाश्रमे ॥ मदावलेपोपहतोनाजानाद्दानवाधमः ॥ ३ ॥ ततस्तंगालवंविप्रंसंध्योपासनतत्परम् ॥ सौकरंरूपमास्थायप्रधर्षयितुमागमत् ॥ ४ ॥ मुनिशिष्यैरथोत्क्रुष्टेशीघ्रमारुह्यतंहयम् ॥ अन्वधावद्वराहंतंनृपपुत्रःशरासनी ॥ ५ ॥ आजघानचबाणेनचंद्रार्धाकारवर्चसा ॥ आकृष्यबलवच्चापंचारुचित्रोपशोभितम् ॥ ६ ॥ नाराचाभिहतःशीघ्रमात्मत्राणपरोमृगः ॥ गिरिपादपसंबाधांसोत्यक्रामन्महाटवीम् ॥ ७ ॥ तमन्वधावद्वेगेनतुरगोसौमनोजवः ॥ चोदितोराजपुत्रेणपितुरादेशकारिणा ॥ ८ ॥ अतिक्रम्याथवेगेनयोजनानिसहस्रशः ॥ धरण्यांविवृतेगर्तेनिपपातलघुक्रमः ॥ ९ ॥ तस्यानंतरमेवाथसचाश्वीनृपतेःसुतः ॥ निपपातमहागर्तेतिमिरौघसमावृते ॥ १० ॥ ततोनादृश्यतमृगःसतस्मिन्राजसूनुना ॥ प्रकाशंचसपातालमपश्यत्तत्रचार्चिषा ॥ ११ ॥ ततोपश्यत्ससौवर्णप्रासादशतसंकुलम् ॥ पुरंदरपुरप्रख्यंपुरंप्राकारशोभितम् ॥ १२ ॥ तत्प्रविश्यसनापश्यत्तत्रकंचिन्नरंपुरे ॥ भ्रमताचततोदृष्टातत्रयोषित्त्वरान्विता ॥ १३ ॥ सापृष्टातेनतन्वंगीप्रस्थिताकांतिकस्यवा ॥ नोवाचकिंचित्प्रासादमारुरोहचभामिनी ॥ १४ ॥

पीछे पीछे गया ॥ ८ ॥ फिर वह लघुक्रम दानव वेगसहित सहस्र योजन अतिक्रम करके पृथ्वीके गर्भमें स्थित एक बड़े गढ़ेमें गिरा ॥ ९ ॥ इसके पीछे वह अश्वारोही राजपुत्रभी वैसेही उस अंधकारसे व्याप्त महागर्तमें गिरे ॥ १० ॥ किन्तु उस समय वह सूकर राजपुत्रको दिखाई नहीं दिया अनन्तर वह जब प्रकाशित पातालमें घुसे, तबभी उस दैत्यको नहीं देखा ॥ ११ ॥ उस समय सुवर्णमय सैकडों महलोंसे व्याप्त परकोटेसे शोभित अमरावतीके समान एक पुरी उनको दिखाई दी ॥ १२ ॥ उन्होंने उस पुरीमें प्रवेश करके एक मनुष्यकोभी नहीं देखा फिर इधर उधर भ्रमण करते करते शीघ्रतायुक्त वहां एक रमणीको देखा ॥ १३ ॥ राजपुत्रने उस कृशाङ्गीसे पूछा "तुम किसके द्वारा प्रेरित होकर किसके निकट जातीहो?" उस भामिनीने उनके इसप्रकार पूछनेपर कुछ उत्तर नहीं दिया बरन वेगसहित महलपर

चढ़गई राजपुत्रनेभी वैसेही अश्वको एक स्थानमें बांध विस्मयोत्फुल्लनेत्र हो निःशंक चित्तसे उस कामिनीका अनुसरण किया अर्थात् वहभी उसका वृत्तान्त पूछनेके लिये उसी कोठेपर चढ़गये ॥ १४ ॥ १५ ॥ उन्होंने उस स्थानमें प्रवेश करके देखा कि, सकामा रतिके समान साक्षात् चन्द्रमुखी पीनश्रोणी और मनोहर कुचोंवाली एक रमणी सुवर्णके बने बड़े पर्यंकके ऊपर पौढ रहीहै. उसके बिम्बाफलकी समान ओष्ठ, कृशाङ्गी और नीले कमलके समान दोनों नेत्र हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ उसके नख रक्तवर्ण और कुछेक ऊंचे, नवीनवय श्यामा शरीर कोमल, हाथ और पैरके तलुए रक्तवर्ण, दोनों ऊरू हाथीके सूंडकी समान, दांत सुन्दर और नीलवर्ण अलकें स्थिर और सूक्ष्म थीं ॥ १८ ॥ राजपुत्रने अनंगलताकी समान उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनीको देखकर उसको रसातलकी देवता

सोप्यश्वमेकतोबद्धातामेवानुससारवै ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनोनिःशंकोनृपतेःसुतः ॥ १५ ॥ ततोपश्यत्सुविस्तीर्णेपर्यंकेसर्वकांचने ॥ निषण्णांकन्यकामे कांकामयुक्तांरतिंयथा ॥ १६ ॥ विस्पष्टेंदुमुखींसुभ्रूंपीनश्रोणीपयोधराम् ॥ बिंबाधरौष्ठींतन्वंगींनीलोत्पलविलोचनाम् ॥ १७ ॥ रक्ततुंगनखांश्यामां मृदुताम्रकरांघ्रिकाम् ॥ करभोरुंसुदशनांनीलसूक्ष्मास्थिरालकाम् ॥ १८ ॥ तांदृष्ट्वाचारुसर्वांगीमनंगांगलतामिव ॥ सोमन्यत्पार्थिवसुतस्तांरसातलदेवताम् ॥ १९ ॥ साचदृष्ट्वैवतंबालानीलकुंचितमूर्धजम् ॥ पीनोरःस्कंधबाहुंतममंस्तमदनंशुभा ॥ २० ॥ उत्तस्थौचशुभाचाराचित्तक्षोभमवापसा ॥ लज्जाविस्मयदैन्यानांसद्यस्तन्वीवशंगता ॥२१॥ कोयंदेवोथयक्षोनुगंधर्वोवोरगोपिवा ॥ विद्याधरोवासंप्राप्तःकृतपुण्यापतिर्नरः ॥ २२ ॥ एवंविचिंत्यबहुधानिःश्वस्यचमहीतले ॥ उपविश्यतदाभेजेसामूर्छामिंदिरेक्षणा ॥ २३ ॥ सोपिकामशराघातमवाप्यनृपतेःसुतः ॥ तांसमाश्वासयामासनभेतव्यमितिब्रुवन् ॥ २४ ॥

जाना ॥ १९ ॥ शुभमयी रमणीने भी नीलवर्ण और घूँघरवाले केशोंसे विराजित चौडी छातीवाले पुष्ट स्कन्ध और पीन बाहु राजनन्दनको देखकर मनमें विचारा कि, यही रतिपति कामदेव हैं ॥ २० ॥ तब वह कृशाङ्गी महाभाग्यवती चित्त में क्षोभको प्राप्तहो सहसा उठी और उसी समय लज्जा, विनय तथा दीनताके वश होगई ॥ २१ ॥ और विचारने लगी कि, "यह कौन हैं ? क्या यह देवता हैं ? वा यक्ष हैं? या गंधर्व हैं अथवा यह उरग किंवा विद्याधर हैं या कोई पुण्यवान् मनुष्य इस स्थानमें आया है ? ॥ २२ ॥ वह मदिरेक्षणा लाल नेत्रोंवाली वहां इस भाँति नानाप्रकारकी चिन्ता करके दीर्घ निःश्वास परित्यागपूर्वक बैठतेही तत्काल मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर पडी ॥ २३ ॥ तब राजपुत्रभी उसी समय कामबाणके आघातसे व्यथितहृदय हो "भय नहीं, भय नहीं" कहकर उसको

१ शीतकालमें जिसका देह सुखोष्ण और ग्रीष्मकालमें सुख शीतल होताहै, तपे हुए सुवर्णके समान जिसका वर्ण है, उस स्त्रीको "श्यामा" कहतेहैं ।

समझाने लगे ॥ २४ ॥ और जो स्त्री उन महात्मा राजपुत्रको प्रथम दिखाई दीथी, वह ललना अत्यन्त व्याकुल होकर तालका पंखा ले उनकी पवन करने लगी ॥ २५ ॥ अनन्तर राजपुत्रने उसको समझा बुझाकर मूर्च्छाका कारण पूंछा, किन्तु उस लज्जावती कामिनीने उनसे कुछ न कहकर अपनी सखीसे सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २६ ॥ तब उस भामिनीने भी उनके पूछनेपर उनके दर्शनसे हुई मूर्च्छाका कारण और रमणीका समस्त वृत्तान्त विस्तारसहित राजपुत्रके निकट वर्णन किया ॥ २७ ॥ उसने जो वृत्तान्त यथातथ्य कहा, सो सुनो—सखीने कहा हे प्रभो ! स्वर्गमें विश्वावसुनामक जो प्रसिद्ध गंधर्वराज है ॥ २८ ॥ यह सुभ्रू उन्हींकी कन्या है, मदालसा इसका नाम है, एकदिन यह उद्यानमें क्रीडा कर रही थी, इसी अवसरमें वज्रकेतु दानवका पुत्र

साचस्त्रीयातदादृष्टापूर्वंतेनमहात्मना ॥ तालवृंतमुपादायपर्यवीजयदाकुला ॥ २५ ॥ समाश्वस्तातदापृष्टातेनसामोहकारणम् ॥ किंचिल्लज्जान्विताबालातस्यै सख्यैन्यवेदयत् ॥ २६ ॥ साचास्मैकथयामासनृपपुत्रायविस्तरात् ॥ मोहस्यकारणंसर्वंतद्दर्शनसमुद्भवम् ॥ २७ ॥ यथातयासमाख्यातंतद्वृत्तांतंचभामिनी ॥ सख्युवाच ॥ ॥ विश्वावसुरितिख्यातोदिविगंधर्वराट्प्रभो ॥ २८ ॥ तस्येयमात्मजासुभ्रूर्नाम्नाख्यातामदालसा ॥ वज्रकेतोःसुतश्चोग्रोदानवोरिविदारणः ॥ २९ ॥ पातालकेतुर्विख्यातःपातालांतरसंश्रयः ॥ तेनेयमुद्यानगताकृत्वामायांतमोमयीम् ॥ ३० ॥ अपहृत्यसमानीताबालेयंदुष्टबुद्धिना ॥ आगामिन्यांत्रयोदश्यामुद्वक्ष्यतिकिलासुरः ॥ ३१ ॥ सतुनार्हतिचार्वंगींशूद्रोवेदश्रुतिंयथा ॥ अतीतेचदिनेबालांचात्मव्यापादनोद्यताम् ॥ ३२ ॥ सुरभिःप्राहनायंत्वांप्राप्स्यते दानवाधमः ॥ मर्त्यलोकमनुप्राप्तंयएनंभेत्स्यतेशरैः ॥ ३३ ॥ सतेभर्तामहाभागेह्यचिरेणभविष्यति ॥ अहंत्वस्याःसखीनाम्नाकुंडलेतिमनस्विनी ॥ ३४ ॥

पातालवासी उग्रमूर्ति शत्रुविदारण पातालकेतुनामक विख्यात दुरात्मा दानवने तमोमयी माया फैलाकर ॥ २९ ॥ ३० ॥ इस असहाय बालाको हरण किया है. अब आनेवाली त्रयोदशी में वह दुष्टबुद्धि असुर इससे विवाह करेगा ॥ ३१ ॥ किन्तु शूद्र जिसप्रकार वेदश्रुतिका अधिकारी नहीं है इसी प्रकार वह भी इस सुन्दरीका योग्य पात्र नहीं है. जो हो, कल जिस समय यह आत्मघात करनेको उद्यत हुई ॥ ३२ ॥ उसी समय सुरभिने कहा कि—"यह अधम दानव तुमको प्राप्त नहीं करसकेगा" इस मृत्युलोकसे आनकर जो पुरुष इसको बाणोंसे छेदन करेगा ॥ ३३ ॥ वही पुरुष तत्काल तुम्हारा भर्त्ता होगा. मैं इसकी सखी हूं और

मेरा नाम कुण्डला है ॥ ३४ ॥ मैं विन्ध्यवान्‌की मनस्विनी कन्या और वीर पुष्करमालीकी पत्नी हूं, मेरे स्वामी शुंभके हाथसे मारे गये हैं, उनके परलोकके लिये उद्यत हो मैं दिव्य गतिसे तीर्थ तीर्थमें विचरण करती हूं, दुष्टात्मा पातालकेतुने आज सूकररूप धारण कियाथा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये किसी पुरुषने बाणसे उसको विद्ध किया है, यह सत्य है वा नहीं मैं इसी बातकी खोजमें शीघ्र आईथी ॥ ३७॥ यहां आनकर देखा कि, उस दानवाधमको सत्यही किसी पुरुषने ताड़न किया है. और यह जो मूर्च्छित हुईथी, अब इसका भी कारण सुनिये॥ ३८॥ हे मानद ! आपका दर्शन करतेही यह बाला आपके प्रति अत्यन्त प्रीतिमती हुई है, क्योंकि आप देखनेमें देवपुत्रके समान और मनोहर वाक्य इत्यादि अनेक प्रकार गुणशाली हैं ॥ ३९ ॥ किन्तु जिस मनुष्यने इस दानवको विद्ध किया है. उस पुरुषके अतिरिक्त यह दूसरेकी भार्या नहीं होसकती, इसी कारण यह अत्यन्त मोहको प्राप्त हुईथी ॥ ४० ॥ क्योंकि इसको जीवन

सुताविंध्यवतःपत्नीवीरपुष्करमालिनः ॥ हतेभर्त्तरिशुंभेनतीर्थात्तीर्थमनुव्रता ॥ ३५ ॥ चरामिदिव्ययागत्यापरलोकार्थमुद्यता ॥ पातालकेतुर्दुष्टात्मावाराहं वपुरास्थितः ॥ ३६ ॥ केनापिविद्धोबाणेनमुनीनांत्राणकारणे ॥ तथाहंतत्त्वतोन्विष्यत्वरिताहमिहागता ॥ ३७॥ सत्यमेवसकेनापिताडितोदौष्ट्यमाचरन् ॥ इयंचमूर्च्छामगमद्येनतत्कारणंशृणु ॥३८॥ त्वयिप्रीतिमतीबालादर्शनादेवमानद ॥ देवपुत्रोपमेचारुवाक्यरूपादिशालिनि॥३९॥ भार्याचान्यस्यविहितायेन विद्धःसदानवः ॥ एतस्मात्कारणान्मोहंमहांतामियमागता ॥४०॥ यावज्जीवंचतन्वंगीदुःखमेवोपभोक्ष्यति॥ त्वय्यस्याहृदयंरागिभर्त्ताचान्योभविष्यति॥४१॥ यावज्जीवमतोदुःखंसुरभ्यानान्यथावचः ॥ अहंत्वस्याःप्रभोप्रीत्यादुःखितात्रसमागता॥४२॥ यतोविशेषोनैवास्तिस्वसखीनिजदेहयोः ॥ यद्येषाभिमतंवीरपति माप्नोतिशोभना ॥४३॥ ततस्त्वहंतपःकुर्यानिर्व्यलीकेनचेतसा ॥ त्वंतुकोवाकिमर्थंवासंप्राप्तोत्रमहामते ॥४४॥देवोदैत्योनुगंधर्वःपन्नगःकिन्नरोपिवा॥ नह्यत्र मानुषगतिर्नचेदृङ्मानुषीगतिः ॥ ४५ ॥ तत्त्वमाख्याहिकोसित्वंयथैवावितथंमया ॥ कुवलयाश्वउवाच॥ यन्मांपृच्छसिधर्मज्ञेकस्त्वंकिंवासमागतः ॥४६॥

पर्यन्त दुःखही भोगना पड़ेगा देखो इसका मन आपके प्रति अनुरक्त है, किन्तु अन्य पुरुष इसके भर्त्ता होंगे ॥ ४१ ॥ कारण कि, सुरभिका वचन कभी मिथ्या नहीं होगा इसको यावज्जीवन दुःखही भोगना पड़ेगा. हे प्रभो ! स्नेहके वश हो दुःखित चित्तसे मैं इसके निकट आई हूं ॥ ४२ ॥ क्योंकि सखीके देहमें और अपनी देहमें कोई विशेषता नहीं है अर्थात् मैं अपने देहको इसके देहसे पृथक् नहीं समझती हूं, यह शोभना यदि अपनी इच्छानुसार वीर पतिको प्राप्त हो ॥ ॥ ४३ ॥ तो मैं स्वस्थ चित्तसे तपस्या करूं. हे महामते ! आप कौन हैं ? और किसलिये यहां आये हैं ? ॥ ४४ ॥ क्या आप देवता हैं, अथवा दैत्य, गंधर्व, पन्नग वा उरग हैं ? क्योंकि मनुष्य यहां नहीं आ सकता और मनुष्यका देह भी ऐसा नहीं होता ॥ ४५ ॥ अतएव मैंने जिस प्रकार आपसे अपना सत्य

वृत्तान्त कहा है, इसी प्रकार आपभी मुझसे अपना सब सत्य सत्य वृत्तान्त कहिये कुवलयाश्वने कहा—हे धर्म जाननेवाली ! " तुम कौन हो और किस कारण इस स्थानमें आये हो ? " कह कर जो तुमने पूँछा है ॥ ४६ ॥ मैं वह सब क्रमसे कहताहूं, हे निर्मलबुद्धिमती ! सुनो, मैं राजा शत्रुजित्का पुत्र हूं, हे शुभे ! मैं पिताके द्वारा प्रेरित होकर ॥ ४७ ॥ मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये गालव मुनिके आश्रममें आयाथा और वहां मैं धर्मचारी मुनियोंकी रक्षा करता था ॥ ४८ ॥ उसी समयमें कोई सूकरमूर्त्ति धारणकरके उनके कार्य में विघ्न करनेको आया । जब मैंने उसको अर्द्धचन्द्र बाणसे विद्ध किया ॥ ४९ ॥ तब वह अत्यन्त वेगसे दौड़ने लगा और मैं भी घोड़ेपर चढाहुआ उसके पीछे पीछे दौडा । अनन्तर उसके एक गढेमें गिरनेपर मैं भी घोड़ेके सहित उसमें गिरा ॥

तच्छृणुष्वामलप्रज्ञेकथयाम्यादितस्तव ॥ राज्ञःशत्रुजितःपुत्रःपित्रासंप्रेषितःशुभे ॥ ४७ ॥ मुनिरक्षणमुद्दिश्यगालवाश्रममागतः ॥ कुर्वतोममरक्षांचमुनीनांधर्मचारिणाम् ॥ ४८ ॥ विघ्नार्थमागतःकोपिशौकरंवपुरास्थितः ॥ मयासविद्धोबाणेनचंद्रार्द्धाकारवर्चसा ॥ ४९ ॥ अपक्रांतोतिवेगेनतमस्म्यनुगतोहयी ॥ पपातसहसागर्त्तेसकोधोश्वश्चमामकः ॥ ५० ॥ सोहमश्वंसमारूढस्तमस्येकःपरिभ्रमन् ॥ प्रकाशमासादितवान्दृष्टाचभवतीमया ॥ ५१ ॥ पृष्टाचनचमे किंचिद्भवत्यादत्तमुत्तरम् ॥ त्वांचैवानुप्रविष्टोहमिमंप्रासादमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ इत्येतत्कथितंसत्यंनदेवोहंनदानवः ॥ नपन्नगोनगंधर्वःकिन्नरोवाशुचिस्मिते ॥ ॥ ५३ ॥ समस्ताःपूज्यपक्षावैदेवाद्याममकुंडले ॥ मनुष्योस्मिविशंकातेनकर्त्तव्यात्रकर्हिचित् ॥ ५४ ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ततःप्रहृष्टासाकन्यासखीवदनमुत्तमम् ॥ लज्जाजडंवीक्षमाणानकिंचिन्नोवाचभामिनी ॥ ५५ ॥ ततसखीपुनरप्येनांप्रहृष्टाप्रत्युवाचह ॥ यथावत्कथितंतेनसुरभ्यावचनानुगम् ॥ ५६ ॥

फिर मैं घोड़ेपर चढाहुआ अकेला भ्रमण करते करते जब प्रकाश स्थानमें आनकर उपस्थित हुआ, तब मैंने तुम्हें देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तुमसे पूछनेपर जब तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया तब मैं तुम्हारा अनुसरण करके इस सुन्दर महलमें उपस्थित हुआ ॥ ५२ ॥ यह मैंने तुमसे सब सत्यही कहा है हे शुचिस्मिते ! देवता, दानव, पन्नग, गंधर्व वा किन्नर, मैं इनमें कोई नहीं हूं ॥ ५३ ॥ मैं मनुष्य हूं, कुण्डले ! देवता इत्यादि सबही मेरे पूज्य हैं, मेरे मनुष्य होनेमें तुम किसी प्रकारकी शंका मत करो ॥ ५४ ॥ पुत्रोंने कहा—हे पिता ! तब वह भामिनी कन्या मदालसा अत्यन्त आह्लादित होकर लज्जासे मौन हो केवल सखीका सुन्दर वदन देखने लगी, कुछ कहा नहीं ॥ ५५ ॥ तब सखीने अत्यन्त प्रसन्न चित्त होकर मदालसासे कहा—हे सुरभिका वचन करनेमें तत्पर ! इन्होंने यथार्थ ही कहा है,

फिर राजपुत्रसे कहा ॥ ५६ ॥ कुण्डला बोली—हे वीर ! आपने जो जो कहा यह सब सत्य और निःसन्देह है, नहीं तो आपको देखकर इसका हृदय आपमें इतनी स्थिरताको प्राप्त क्यों होता ? ॥ ५७ ॥ क्योंकि अधिक कान्ति चन्द्रमाकोही प्राप्त होती है. प्रभा सूर्यकोही प्राप्त होती है, ऐश्वर्य धन्य पुरुष ही करता है और धृति धीर पुरुषको और क्षान्ति उत्तमकोही प्राप्त होती है ॥ ५८ ॥ अत एव आपने जो इस पापी दानवाधमको विद्ध किया है, इस विषयमें संशय नहीं है, गोमाता सुरभि कभी मिथ्या नहीं कहेगी ॥ ५९ ॥ अत एव आपके संग संबंध लाभ करके यह सखी धन्य और भाग्यवती हुई. सुतरां हे वीर ! विधिके अनुसार जो कर्त्तव्य है, आप उसका अनुष्ठान कीजिये ॥ ६० ॥ नागपुत्रोंने कहा हे पितः ! राजपुत्र बोले मैं पराधीन हूं मैं उन पिताकी आज्ञाके विना

कुंडलोवाच ॥ वीरसत्यमसंदिग्धंभवताभिहितंवचः ॥ नान्यत्रहृदयंह्यस्यादृष्ट्वास्थैर्यंप्रयास्यति ॥५७॥ चंद्रमेवाधिकाकांतिःसमुपैतिरविंप्रभा ॥ भूतिर्धन्यंधृतिर्धीरंक्षांतिरभ्येतिचोत्तमम् ॥५८॥ त्वयैवविद्धोसंदिग्धंसपापोदानवाधमः ॥ सुरभिःसागवांमाताकथंमिथ्यावदिष्यति ॥५९॥ तद्धन्येयंसभाग्याचत्वत्संबंधमवेत्य वै ॥ कुरुष्ववीरयत्कार्यंविधिनैवसमाहितम् ॥६०॥ पुत्रावूचतुः ॥ परवानहमित्याहराजपुत्रःसदापितुः ॥ साचतंचिंतयामासतुंबुरुंतत्कुलेगुरुम् ॥६१॥ सचापि तत्क्षणात्प्राप्तोनिगृहीतसमित्कुशः ॥ मदालसायाःसंप्रीत्याकुंडलागौरवेणच ॥६२॥ प्रज्वाल्यपावकंहुत्वामंत्रवित्कृतमंगलाम् ॥ वैवाहिकेविधौकन्यांप्रतिपाद्य यथागतम् ॥ ६३ ॥ जगामतपसेधीमान्स्वमाश्रमपदंततः ॥ साचाहतांसखीबालांकृतार्थास्मिवरानने ॥ ६४ ॥ संयुक्तामुमुनादृष्ट्वात्वामहंरूपशालिनीम् ॥ तपस्तप्स्येहमतुलंनिर्व्यलीकनचेतसा ॥ ६५ ॥

किस प्रकार इस बालासे विवाह करसक्ताहूं ? कुण्डला बोली आप ऐसा न कहैं यह देवकन्या है इससे विवाह कीजिये. तब राजपुत्रके तथास्तु कहनेपर उनके संग विवाहमें संगत हो उस कन्या मदालसाने अपने कुलगुरु तुम्बुरुको मनमें स्मरण किया ॥ ६१ ॥ चिन्ता करतेही वह मंत्रवित् तुम्बुरुभी उसी समय समिध और कुश ग्रहण करके वहां उपस्थित हुए. फिर मदालसाकी प्रीति और कुण्डलाके गौरवसहित आये ॥ ६२ ॥ और घृतकी आहुति देकर अग्निको प्रज्वलित किया मंगलके साज सजाये वैवाहिक विधानानुसार मदालसाको मिलित कराय वहांसे अपने स्थानको गये ॥ ६३ ॥ अर्थात् वह बुद्धिमान् अपने आश्रममें तपकरनेके निमित्त चलेगये तब सखी कुण्डलाने मदालसासे कहा हे वरानने ! मैं अब कृतार्थ हुई ॥ ६४ ॥ रूपशालिनी तुमको इनके संग मिलित देखकर

मैं प्रसन्न हुई अब मैं निर्विकल्प मनसे तप करूंगी ॥ ६५ ॥ अब जिससे फिर मुझको इस प्रकार न होना पड़े वैसा करनेको तीर्थके जलसे स्नानकर पाप रहित हो जाऊंगी फिर वह राजपुत्रसे नम्रताद्वारा कहने लगी ॥ ६६ ॥ अभिलषित स्थानमें जानेके लिये अपनी सखीके स्नेहसे व्याकुल हो बोली कुण्डला बोली—हे अपरिमितबुद्धिशालिन् ! प्राज्ञ पुरुष भी आपके समान पुरुषको उपदेश देनेमें समर्थ नहीं होते ॥६७॥ मैं स्त्री हूं मेरी तो बात ही क्या है ? अतएव आपको उपदेश नहीं देती किन्तु इस सखीके स्नेहसे मेरा मन अत्यन्त खिंचगया है ॥ ६८ ॥ और आपके द्वारा विश्वासित होनेके कारण हे अरिसूदन ! आपको किंचित् स्मरण कराती हूं कि, पतिको भार्य्याकी सदा रक्षा और पालना करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ भार्य्या भर्त्ताकी सहायिनी होने पर सम्यक् प्रकार धर्म अर्थ

तीर्थांबुधौतपापाचभवित्रीनेदृशीयथा ॥ तंचाहराजपुत्रंसाप्रश्रयोपनतंवचः ॥ ६६ ॥ गंतुकामानिजसखीस्नेहविक्लवभाषिणी ॥ कुण्डलोवाच ॥ पुंभिरप्यमितप्रज्ञेनोपदेशोभवद्विधे ॥ ६७ ॥ दातव्यःकिमुतस्त्रीभिरतोनोपदिशामिते ॥ किंत्वस्यास्तनुमध्यायाःस्नेहाकृष्टेनचेतसा ॥ ६८ ॥ त्वयाविश्रंभिताचास्मिस्मारयाम्यरिसूदन ॥ भर्त्तव्यारक्षितव्याचभार्याहिपतिनासदा ॥ ६९ ॥ धर्मार्थकामसंसिद्ध्यैभार्याभर्त्तुःसहायिनी ॥ याचभार्याचभर्त्ताचपरस्परमनुव्रतौ ॥ ७० ॥ तदाधर्मार्थकामानांत्रयाणामपिसंगतम् ॥ कथंभार्यामृतेधर्ममर्थंवापुरुषःप्रभो ॥ ७१ ॥ प्राप्नोतिकाममर्थंवातस्यांत्रितयमाहितम् ॥ तथैवभर्त्तारमृतेभार्याध[illegible]ादिसाधने ॥ ७२ ॥ नसमर्थात्रिवर्गोयंदांपत्यंसमुपाश्रितः ॥ देवतापितृभृत्यानामतिथीनांचपूजनम् ॥ ७३ ॥ नपुंभिःशक्यतेकर्त्तुमृतेभार्यांनृपात्मज ॥ प्राप्तोपिचार्थोमनुजैरानीतोपिनिजंगृहम् ॥ ७४ ॥ क्षयमेतिविनाभार्यांकुभार्यासंग्रहेपिवा ॥ कामस्तुतस्यनैवास्तिप्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ॥ ७५ ॥

और कामकी सिद्धिका निमित्त होती है भार्य्या और भर्त्ता दोनोंही जब परस्पर में वशीभूत होते हैं ॥ ७० ॥ तभी धर्म अर्थ और काम इन तीनोंकी संगति होती है धर्मादि त्रिवर्ग भार्य्यामें समाहित होने के कारण पुरुष जिसप्रकार भार्य्याके विना कभी धर्म अर्थ ॥ ७१ ॥ वा काम लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता इसी प्रकार भार्य्या भी स्वामीके विना धर्मादिसाधनमें ॥ ७२ ॥ समर्थ नहीं होती. क्योंकि धर्म अर्थ और काम दोनोंको सम्यक् प्रकारसे आश्रय करके स्थित देखो हे राजनन्दन ! देवता पितृ भृत्य और अतिथियोंका पूजन ॥ ७३ ॥ न होनेसे यह धर्म्माचरण करनेमें समर्थ नहीं होता पुरुषके अनायास लब्ध अर्थ भी अपने घर लानेपर ॥ ७४ ॥ स्त्रीके न होनेसे वा कभार्य्याके संसर्गसे वह सम्पूर्णही क्षयको प्राप्त होता है भार्य्याके न होनेमें जो काम नहीं रहता, यह तो प्रत्यक्षही

प्रतीत होता है ॥ ७५ ॥ अधिक क्या स्त्री और पुरुष दोनोंही यदि समान धर्म्म अवलम्बन करें तो त्रयीधर्म्मलाभ करनेमें समर्थ होते हैं मनुष्यगण यदि साध्वी पत्नीको प्राप्त हों तो पुत्रोत्पादनसे पितरोंको अन्नादि साधनसे अतिथिको ॥ ७६॥ और पूजादिद्वारा देवताओंको प्रसन्न करनेमें समर्थ होते हैं. स्वामीके विना स्त्री के भी धर्म अर्थ और कामका सम्यक् प्रकार विस्तार नहीं होता ॥ ७७ ॥ क्योंकि यह त्रिवर्ग दोनोंके भावमेंही आश्रित हैं जो हो, आप दोनोंके निकट मेरा केवल यही निवेदन है कि, अब अनुमति कीजिये मैं यथाभिलषित स्थानमें चली जाऊं ॥ ७८ ॥ आशीर्वाद करतीहूं कि, आप इसके संग मिलित होकर धन पुत्र सुख और आयुद्वारा वर्द्धित हों । नागराजके पुत्रोंने कहा—कुण्डला इसप्रकार कह अपनी सखीको आलिंगन और राजपुत्रको नमस्कार

दंपत्योःसहधर्मेणत्रयीधर्ममवाप्नुयात् ॥ पुत्राणांयोनिरन्यावैनान्यतोभार्ययाविना ॥ पितॄन्पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीनपि ॥७६॥ पूजाभिरमरांस्तद्वत्साध्वींभार्यां नरोवति ॥ स्त्रियाश्चापिविनाभर्त्राधर्मकामार्थसंततिः ॥७७॥ नैवतस्मात्त्रिवर्गोयंदांपत्यमधिगच्छति ॥ एतन्मयोक्तंयुवयोर्गमिष्यामियथेप्सितम् ॥७८ ॥ वर्ध त्वमनयासार्द्धंधनपुत्रसुखायुषा ॥ पुत्रावूचतुः ॥ इत्युक्त्वासंपरिष्वज्यस्वसखींतंनमस्यच ॥७९॥ जगामदिव्ययागत्यायथाभिप्रेतमात्मनः ॥ सोपिशत्रुजितःपु त्रस्तामारोप्यतुरंगमम् ॥८०॥ निर्गंतुकामःपातालाद्विज्ञातोदनुसंभवैः ॥ ततस्तैःसहसोत्कुष्टंह्रियतेह्रियतेत्विति ॥८१॥ कन्यारत्नंयदानीतंदिवःपातालकेतु ना ॥ ततःपरिघनिस्त्रिंशगदाशूलशरायुधम् ॥८२॥ दानवानांबलंप्राप्तंसहपातालकेतुना ॥ तिष्ठतिष्ठेतिजल्पंतस्तेतदादानवोत्तमाः ॥८३॥ शरवर्षैस्तथाशूलै र्ववर्षुर्नृपनंदनम् ॥ सतुशत्रुजितःपुत्रस्ततस्तान्प्रतिवीर्यवान् ॥८४॥ चिच्छेदशरजालेनप्रहसन्निवलीलया ॥ क्षणेनपातालतलमासिशक्त्यृष्टिसायकैः ॥८५॥

करके ॥ ७९ ॥ दिव्यगतिसे अपने अभिलषित स्थानको चलीगई उस शत्रुजित्के पुत्र ऋतध्वजनेभी तिस समय मदालसाको उस घोड़ेपर चढ़ाय ॥ ८० ॥ पातालसे निकलनेकी जैसेही इच्छा करी वैसेही दानवोंने जान लिया "पाताकेतु स्वर्गसे जिस कन्यारत्नको लायाथा उसकोही कोई हरण करता है" यह कहकर दानव चीत्कार करनेलगे. तदनन्तर दानवसैन्यने पातालकेतुके संग मिलित होकर परिघ, खड्ग, गदा, शूल और बाण इत्यादि ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ समस्त दानवोंकी सेनाने पातालकेतुके साथ आयुध ग्रहण किये और वह ठहरो ठहरो कहते कहते ॥ ८३ ॥ राजनन्दनके ऊपर शर और शूल इत्यादि अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे. तब अत्यन्त बलशाली शत्रुजित्के पुत्रने ॥ ८४ ॥ हँसते हँसते लीलापूर्वकही उनके समस्त अस्त्र अपने बाणोंसे काट डाले तब ऋतध्वजके बाणोंसे छिन्न

भिन्न असि, शक्ति, ऋष्टि और बाणोंसे क्षणकालमेंही पातालतल ॥ ८५ ॥ परिपूर्ण होगया और ऋतध्वजने बड़े बाण छोडे और छिन्न भिन्न करदिये फिर राजपुत्रने त्वाष्ट्र अस्त्र ग्रहण करके दानवोंपर चलाया ॥ ८६ ॥ तब उस ज्वालामालायुक्त भयंकर अस्त्रने पातालकेतुके सहित दानवोंकी अस्थियोंको तोड़ डाला ॥८७॥ और वह क्षणकालमेंही कपिलमुनिके तेजसे सगरके पुत्रोंकी समान भस्म होगये. तदनन्तर वह राजपुत्र असुरकुल निहत करके उस स्त्रीरत्नके सहित घोड़ेपर चढ़कर पिताके नगरमें आये और पिताको प्रणाम करके सब वृत्तान्त कहा ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ पातालगमन, कुण्डलाका दर्शन, मदालसाप्राप्ति, दानवोंके संग युद्ध ॥ ॥ ९० ॥ अस्त्रद्वारा उनका निधन और पुनरागमन इत्यादि समस्त वृत्तान्त पिता से निवेदन किया. तब वह चारुचेता पुत्रका चारित्र इसप्रकार सुनकर ॥ ९१ ॥

छिन्नैःसंछन्नमत्यर्थमृतध्वजशरोत्करैः ॥ ततोस्त्रंत्वाष्ट्रमादायचिक्षेपप्रतिदानवान् ॥ ८६ ॥ तेनतेदानवाःसर्वेसहपातालकेतुना ॥ ज्वालामालातितीव्रेणस्फुटदस्थिचयास्तदा ॥ ८७ ॥ निर्दग्धाःकापिलंतेजःसमासाद्येवसागराः ॥ ततःसराजपुत्रोश्वीनिहत्यासुरसत्तमान् ॥ ८८ ॥ स्त्रीरत्नेनसमंतेनसमागच्छत्पितुःपुरम् ॥ प्रणिपत्यचतत्सर्वंसतुपित्रेन्यवेदयत् ॥ ८९ ॥ पातालगमनंचैवकुंडलायाश्चदर्शनम् ॥ तद्वन्मदालसाप्राप्तिंदानवैश्चापिसंगरम् ॥ ९० ॥ वधश्चतेषामस्त्रेणपुनरागमनंतथा ॥ इतिश्रुत्वापितातस्यचरितंचारुचेतसः ॥ ९१ ॥ प्रीतिमानभवच्चैनंपरिष्वज्याहचात्मजम् ॥ सत्पुत्रणत्वयापुत्रतारितोहंमहात्मना ॥९२॥ भयेभ्योमुनयस्त्रातायेनसद्धर्मचारिणा ॥ मत्पूर्वैःख्यातिमानीतंमयाविस्तारितंपुनः ॥ ९३ ॥ पराक्रमवतावीरत्वयातद्बहुलीकृतम् ॥ यदुपात्तंयशःपित्राधनंवीर्यमथापिवा ॥ ९४ ॥ तन्नहापयतेयस्तुसनरोमध्यमःस्मृतः ॥ तद्वीर्यादधिकंयस्तुपुनरन्यत्स्वशक्तितः ॥९५॥ निष्पादयतितंप्राज्ञावदंतिनरमुत्तमम् ॥ यःपित्रासमुपात्तानिधनवीर्ययशांसिवै ॥९६॥ न्यूनतांनयतिप्राज्ञास्तमाहुःपुरुषाधमम् ॥ तन्मयाब्राह्मणत्राणंकृतमासीद्यथात्वया ॥९७॥

अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्रको आलिंगन करके कहने लगे हे वत्स ! तुझ सत्पुत्रने मुझको तारदिया ॥ ९२ ॥ जिसके द्वारा धर्मशील मुनिगण भयसे रक्षित हुए हैं मैं भी उसी महात्मा सत्पात्रद्वारा तारितहुवा. हे वत्स ! मेरे पूर्व पुरुषगण जिसके द्वारा ख्यात हुएथे और मैंने जिसको विस्तारित किया था ॥ ९३ ॥ हे वीर ! पराक्रमशाली तुम्हारे द्वारा वह यश और भी बहुत हुआ देखो यश बल वा धन पिताके द्वारा जो उपार्जित होता है ॥ ९४ ॥ जो उसको नष्ट नहीं करता है अर्थात् रक्षित करता है वह पुरुष मध्यम है और जो व्यक्ति उसकी अपेक्षा अधिक वीर्यशाली होकर अपनी शक्तिसे उसको अधिक करता है ॥ ९५ ॥ पंडितगण उसको उत्तम पुरुष कहकर कीर्त्तन करते हैं और जो व्यक्ति पितृउपार्जित यश बल वा धनको ॥९६॥ नष्ट करता है उस पुरुषको अधम पुरुष

कहकर पंडितगण कीर्त्तन करते हैं. जो हो हे वत्स ! मैंने पूर्वमें तुम्हारी समान केवलमात्र ब्राह्मणोंकी रक्षा की थी ॥ ९७ ॥ तुमने पातालगमन असुरविनाशन और ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेसे मेरी अपेक्षा अधिक कार्य किया है अतएव तुम उत्तम पुरुष हो ॥ ९८ ॥ हे बालक ! तुम धन्य हो और ऐसे गुणाधिक तुम सरीखे पुत्रको लाभकरके मैं पुण्यवानोंमें श्लाघनीय हुआ हूं ॥ ९९ ॥ हे वत्स ! जो पुरुष पुत्र द्वारा प्रज्ञा दान वा पराक्रममें अधिक नहीं होता मेरा विचार है कि, वह पुरुष पुत्र जनित प्रीतिलाभ नहीं करसकता ॥ १०० ॥ जो पुरुष पिताद्वारा लोकमें विख्यात होता है उसके जन्मको धिक्कार है किन्तु जो पुरुष पुत्रद्वारा ख्यातिलाभ करता है उसी सुजन्माका जन्म सार्थक है॥ १०१॥ जो मनुष्य निज नामसे विख्यात होता है वही धन्य है और जो पुरुष मातृपक्ष द्वारा विख्यात होताहै वह नराधम है॥ १०२॥

पातालगमनंयच्चयच्चासुरविनाशनम् ॥ एतदभ्यधिकंवत्सतेनत्वंपुरुषोत्तमः ॥ ९८ ॥ तद्धन्योस्म्यथवानत्वमहमेवगुणाधिकः ॥ त्वांपुत्रमीदृशंप्राप्यश्लाघ्यंपुण्यवतामपि ॥ ९९ ॥ नसत्पुत्रकृतांप्रीतिमन्यःप्राप्नोतिमानवः ॥ पुत्रेणनातिशयितोयःप्रज्ञादानविक्रमैः ॥ १०० ॥ धिक्तस्यजन्मयःपित्रालोकेविज्ञायतेनरः ॥ यत्पुत्रात्ख्यातिमभ्येतितस्यजन्मसुजन्मनः ॥ १०१ ॥ आत्मज्ञानीयतोधन्योमध्यःपितृपितामहैः ॥ मातृपक्षेणमात्राचख्यातिंयातिनराधमः ॥ १०२ ॥ तत्पुत्रधनवीर्यैस्त्वंविवर्धस्वसुखेनच ॥ गंधर्वतनयाचेयंमावियुज्यतुवैत्वया ॥ १०३ ॥ इतिपित्राबहुविधंप्रियमुक्त्वापुनःपुनः ॥ परिष्वज्यस्वमावासंसभार्यःसविसर्जितः ॥ १०४ ॥ सतयाभार्ययासार्धंरेमेतत्रापितुःपरे ॥ अन्येषुचतथोद्यानवनपर्वतसानुषु ॥ १०५ ॥ श्वश्रूश्वशुरयोःपादौप्रणिपत्यचसाशुभा ॥ प्रातःप्रातस्ततस्तेनप्रणिपत्यसुमध्यमा ॥ १०६ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीयेएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

जो हो हे वत्स ! तुम धन बल और सुखद्वारा वर्द्धित होओ और इस गंधर्वतनया का तुमसे कभी वियोग न हो ॥ १०३ ॥ राजपुत्र पिताके द्वारा इसप्रकार सुनकर और आलिंगित होकर भार्य्याके सहित अपने वासस्थानको चले गये ॥ १०४ ॥ और उस पत्नी मदालसाके संग मिलित होकर पिताके भवन और अन्यान्य उद्यान वन और पर्वतसानु सबमें क्रीडा करने लगे ॥ १०५ ॥ और वह शुभमयी सुमध्यमा मदालसा भी प्रतिदिन प्रातःकालमें सास और श्वशुरके दोनों चरणोंकी वन्दना करके उनके संग प्रसन्न रहने लगी ॥ १०६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

नागपुत्र बोले कि, अनन्तर कुछ काल बीतनेपर राजा शत्रुजित्ने पुत्र ऋतध्वजसे फिर कहा हे वत्स ! तुम ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेके लिये शीघ्र जाओ और पृथ्वीमें विचरण करो ॥ १ ॥ प्रतिदिन प्रातःकालमें इस अश्वपर चढ़कर ब्राह्मणश्रेष्ठगणोंकी बाधारहित रक्षा करो ॥ २ ॥ पापात्मा और दुर्वृत्त सैकडों दानव हैं वह दानव जिससे मुनियोंको बाधा न करसकें तुम वैसाही आचरण करो ॥ ३ ॥ राजनन्दन इसप्रकार पिताकी आज्ञा पाय वही करने लगे. वह प्रतिदिन पूर्वाह्न समयमें पृथ्वीपर्यटन करके पिताके चरणयुगलकी वन्दना करते और शेष समयमें सुमध्यमाके संग क्रीडा करते ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन्होंने इस प्रकारका विचरण करते करते एक समय देखा कि, पातालकेतु दानवका अनुज (भाई) तालकेतु यमुनातटपे आश्रम करके अवस्थान करता है ॥ ६ ॥ इस मायावी दानवने मुनि

पुत्रावूचतुः ॥ ॥ ततःकालेबहुतिथेगतेराजापुनःसुतम् ॥ प्रहगच्छाशुविप्राणांत्राणायचरमेदिनीम् ॥ १ ॥ अश्वमेतंसमारुह्यप्रातःप्रातर्दिनेदिने ॥ आबाधा द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्यासदैवहि ॥ २ ॥ दुर्वृत्ताःसंतिशतशोदानवाःपापबुद्धयः ॥ तेभ्योनस्याद्यथाबाधामुनीनांत्वंतथाकुरु ॥ ३ ॥ सतथोक्तस्तदापित्रात थाचक्रेनृपात्मजः ॥ परिक्रम्यमहींकृत्स्नांववंदेचरणौपितुः ॥ ४ ॥ अहन्यहनिसंप्राप्तेपूर्वाह्णेनृपनंदनः ॥ ततश्चशेषंदिवसंतयारेमेसुमध्यया ॥५॥ एकदातुचर न्सोथददर्शयमुनातटे ॥ पातालकेतोरनुजंतालकेतुंकृताश्रमम् ॥ ६ ॥ मायावीदानवःसोथमुनिरूपंसमाश्रितः ॥ सप्राहराजपुत्रंतंपूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ७ ॥ राजपुत्रब्रवीमित्वांतत्कुरुष्वयदीच्छसि ॥ नचतेप्रार्थनाभंगःकार्यःसत्यप्रतिश्रव ॥ ८ ॥ यक्ष्येयज्ञेनधर्मायकर्त्तव्याश्चमयेष्टयः ॥ चिंतयेतत्रकर्त्तव्यानास्ति मेदक्षिणायतः ॥ ९ ॥ ततःप्रयच्छमेवीरदक्षिणार्थेस्वभूषणम् ॥ यदेतत्कंठलग्नंतेरक्षचेमंममाश्रमम् ॥ १० ॥ यावदंतर्जलेदेवंवरुणंयादसांपतिम् ॥ वैदिकैर्वा रुणैर्मंत्रैःप्रजानांपुष्टिहेतुकैः ॥ ११ ॥

रूप अवलम्बन किया था वह पहला वैर स्मरण करके राजपुत्र से कहने लगा ॥ ७ ॥ कि, हे राजपुत्र ! जो कहता हूं यदि इच्छा हो तो वह करो । हे सत्य प्रतिज्ञ ! आपने कभी किसीकी प्रार्थनाभंग नहीं करी है ॥ ८ ॥ हे राजतनय ! मैं यज्ञ करूंगा और अभिलषित इष्टि (यज्ञाङ्गविशेष) तथा अग्निचयन करूंगा, किन्तु मुझमें दक्षिणा देनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ९ ॥ अतएव हे वीर ! सुवर्णप्रदान के लिये अपना अंगभूषण कंठका यह अलंकार (गहना) मुझे दो और मेरे आ श्रमकी रक्षा करो ॥ १० ॥ प्रजाके पुष्टिकारक वैदिक वारुणमंत्रसे यादः पतिका वरुणदेव जलमें स्तव करके जबतक मैं न लांटू आप तबतक मेरे आश्रम

की रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ मैं शीघ्र ही आता हूं. उन कहते हुए मुनिको प्रणाम करके उन्होंने अपने कंठका भूषण प्रदान किया ॥ १२॥ और कहा, हे महाभाग ! विश्वस्त हृदयसे जाइये मैं तवतक इसी आश्रमके समीप रहूंगा ॥ १३ ॥ जबतक आप लौटकर नहीं आवेंगे. तबतक मैं आपकी आज्ञानुसार यहां रहूंगा, मेरे रहनेसे कोई आपको बाधा नहीं करेगा ॥ १४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप निःशंक होकर गमन करके अभिलषित विषय सम्पादन कीजिये. वह मायामुनि तालकेतु राजनन्दनसे इसप्रकार सुनकर नदीके जलमें निमग्न हुआ ॥ १५ ॥ राजनन्दन उसके मायारचित आश्रमकी रक्षा करनेलगे अनन्तर तालकेतु उस जलाशयसे निकल राजा शत्रुजितके नगरमें आय ॥ १६ ॥ मदालसा और अन्यान्यलोकोंके सामने यह बात कहनेलगा कि, वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रमके समीप

अभिष्टूयत्वरायुक्तःसमभ्येमीतिवादिनम् ॥ तंप्रणम्यततःप्रादात्सतस्मैकंठभूषणम् ॥ १२ ॥ प्राहचैनंभवान्यातुनिर्व्यलीकेनचेतसा ॥ स्थास्यामितावदत्रैवत्वदाश्रमसमीपतः ॥ १३ ॥ त्वदादेशान्महाभागयावदागमनंतव ॥ नतेत्रकश्चिदाबाधांकरिष्यतिमयिस्थिते ॥ १४ ॥ विश्रब्धस्त्वंमुनिश्रेष्ठकुरुष्वचमनोगतम् ॥ एतदुक्तस्ततस्तेनसममज्जनदीजले ॥ १५ ॥ अरक्षत्सोपितस्यैवमायाविहितमाश्रमम् ॥ गत्वाजलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्चतत्पुरम् ॥ १६ ॥ मदालसायाःप्रत्यक्षमन्येषांचैतदुक्तवान् ॥ वीरःकुवलयाश्वोसौममाश्रमसमीपतः ॥ १७ ॥ केनापिदुष्टदैत्येनकुर्वन्रक्षांतपस्विनाम् ॥ युध्यमानोयथाशक्तिनिघ्नन्ब्रह्मद्विषोयुधि ॥ १८ ॥ मायामाश्रित्यपापेनभिन्नःशूलेनवक्षसि ॥ म्रियमाणेनतेनेदंदत्तंमेकंठभूषणम् ॥ १९ ॥ प्रापितश्चाग्निसंयोगंनरुवेसद्रतापसैः ॥ कृतार्तहेषाशब्दोवैत्रस्तःसाश्रुविलोचनः ॥२०॥ नीतःसोश्वश्चतेनैवदानवेनदुरात्मना ॥ एतन्मयानृशंसेनदृष्टंदुष्कृतकारिणा ॥२१॥ यदत्रानंतरंकृत्यंकुरुष्वोत्तरकालिकम् ॥ हृदयाश्वासनंचैतद्गृह्यतांकण्ठभूषणम् ॥२२॥ नास्माकंहिसुवर्णेनकृत्यमस्तितपस्विनाम् ॥ इत्युक्त्वोत्सृज्यतद्भूमौसजगामयथागतम् ॥२३॥

॥ १७ ॥ तपस्वियोंकी रक्षा करतेथे उन्होंने किसी दुष्ट दानवके सहित यथाशक्ति युद्ध किया और ब्रह्मद्वेष्टा असुरपर प्रहार किया ॥ १८॥ परन्तु वह उस पापात्मा दानवके मायारूपीशूलसे वक्षःस्थलमें विदारित हुए हैं उन्होंने उसके द्वारा मृतक होते समय मुझको यह कंठभूषण देदिया है ॥ १९ ॥ और वनमें शूद्रतापसोंके द्वारा अग्निसंयोगको प्राप्त हुए हैं और वह नेत्रोंमें आँसूँ भरे दुःखसेही सता हुआ ॥ २० ॥ घोडा उस दुरात्मा दानवने ग्रहण कर लिया उस पापात्मा नृशंसके द्वारा यह समस्तही घटना देखी है ॥ २१ ॥ अब जो कर्तव्य हो आप वह समस्त अकालिक विधि सम्पादन कीजिये और यह हृदयाश्वासदायक उनका कंठभूषण ग्रहण कीजिये मैं तपस्वी हूं मेरा सुवर्णसे क्या प्रयोजन है ? इसप्रकार कहकर तालकेतु कुवलयाश्वका कंठभूषण स्थापन कर जहांसे आया था वहींको चलागया ॥ २२ ॥ २३ ॥

तब वहाँके मनुष्यगण शोकसे पीडित और मूर्च्छित होकर गिर पड़े फिर चेतना लाभ करके राजा राजमहिषी ॥ २४ ॥ और अन्यान्य सब राजस्त्रियें अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगीं मदालसाने उनका कंठभूषण देख ॥ २५ ॥ और स्वामीकी मरणवार्ता सुन अत्यन्त कातर होकर शीघ्रही प्रिय प्राणपरित्याग किया तब राजाके भवनमें जिसप्रकार क्रन्दनध्वनि हुई उसी प्रकार पुरवासी प्रजाके प्रत्येक भवनमें रुदन का महाशब्द होने लगा अनन्तर राजा शत्रुजित् पुत्रवधू मदालसाको भर्त्ताके वियोगसे प्राणरहित देख ॥ २६ ॥ २७ ॥ विचारसहित मनको सावधान कर समीपवर्त्ती मनुष्योंसे कहने लगे तुमको और हमको रोना नहीं चाहिये ॥ २८ ॥ मैं देखताहूं कि, समस्त प्राणियोंके संबन्ध की अनित्यता है क्या मैं पुत्रका शोच करूं वा पुत्रवधूको शोचूं ॥ २९ ॥

निपपातजनःसोथशोकार्त्तोमूर्च्छयातुरः ॥ क्षणेनचेतनांप्राप्यसर्वास्तानृपयोषितः ॥२४॥ राजपत्न्यश्चराजाचविलेपुरतिदुःखिताः॥मदालसातुतद्दृष्ट्वातदीयंकंठभूषणम् ॥२५॥ तत्याजसुप्रियान्प्राणाञ्श्रुत्वाविनिहतंप्रियम् ॥ ततःपुरेमहाक्रंदःपौराणांभवनेष्वभूत् ॥२६॥ यथैवतस्यनृपतेःस्वगृहेसमवर्तत ॥ राजाचतांमृतांदृष्ट्वाविनाभर्त्रामदालसाम् ॥२७॥ प्रत्युवाचजनंसर्वंविमृश्यस्वस्थमानसः ॥ नरोदितव्यंपश्यामिभवतामात्मनस्तथा ॥ २८ ॥ सर्वेषामेवसंचिंत्यसंबंधानामनित्यताम् ॥ किंनुशोचामितनयंकिंनुशोचाम्यहंस्नुषाम् ॥ २९ ॥ विमृश्यकृतकृत्यत्वान्मन्येशोच्यावुभावपि ॥ मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद्द्विजरक्षणतत्परः ॥ ३० ॥ प्राप्तोमेयसुतोमृत्युंकथंशोच्यःसधीमताम् ॥ अवश्यंयातियद्देहंतद्द्विजानांकृतेयदि ॥ ३१ ॥ ममपुत्रेणसंत्यक्तंनन्वभ्युदयकारितत् ॥ इयंचसत्कुलोत्पन्नाभर्त्तर्येवमनुव्रता ॥ ३२ ॥ कथंतुशोच्यानारीणांभर्तुरन्यन्नदैवतम् ॥ अस्माकंबांधवानांचतथान्येषांदयावताम् ॥ ३३ ॥ शोच्याह्येषाभवेदेवंयदिभर्त्राविियोगिनी ॥ यातुभर्तुर्वधंश्रुत्वातत्क्षणादेवभामिनी ॥ ३४ ॥

दोनों कृतकृत्य होनेके कारण अशोचनीय हैं क्योंकि जिस मेरे पुत्रने मेरी शुश्रूषा और मेरेही वचनानुसार ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर होकर ॥ ३० ॥ जब प्राणत्याग किया है तब उस पुत्रकेलिये शोककरना बुद्धिमान्को उचित नहीं है जो देह अवश्यही जायगा मेरे पुत्रने उस देहको ब्राह्मणोंके निमित्त ॥ ३१ ॥ त्याग किया है तब वह शोचनीय नहीं है वरन् कल्याणकारी है और इस सत्कुलोत्पन्न ललनाने जब स्वामीका अनुगमन किया है ॥ ३२ ॥ तब फिर वह भी शोचनीय किस प्रकार होसक्ती है ? क्योंकि स्वामीके अतिरिक्त स्त्रीका अन्य देवता नहीं है यह स्वामीके वियोग होनेपर यदि जीवित रहती तो मेरी बांधवगणोंकी और अन्यान्य दयावान् मनुष्योंकी शोचनीय दशा होती इसने जब स्वामीकी मरणवार्त्ता सुनकर तत्काल प्राणत्याग किया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

तब यह पंडितगणोंको अशोचनीय है जो रमणी स्वामीके मरनेपर भी जीवन धारणा करती हैं वही शोकके योग्य हैं ॥ ३५ ॥ और जो स्वामीके सहित गमन करती हैं वह तो कभी शोचनीय नहीं हैं और जो कष्ट जानकर गमन नहीं करतीं वह अपने कुलको कष्ट देती हैं इसने कृतज्ञा होनेसे भर्त्ताके वियोगका अनुभव नहीं किया ॥ ३६ ॥ इस लोक और परलोक दोनों लोकके समस्त सुखदाता स्वामीको कौन स्त्री मनुष्य समझती है ? ॥ ३७ ॥ हमारा पुत्र वा पुत्रवधू या मैं किम्वा उसकी माता हम कोई शोक के उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि ब्राह्मणोंके निमित्त प्राणपरित्यागकारी उस पुत्रके द्वारा हम सबकाही उद्धार हुआ है॥ ३८॥ मेरा महामति पुत्र अर्द्धमुक्त देहका परित्यागकरनेके कारण ब्राह्मणसे मुझसे और धर्म्मसे उऋण हुआ है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त संग्राममें प्राणत्याग करनेसे माताका सतीत्व वंश निर्मलता और निजशूरता इन सबका कुछभी उसके द्वारा त्याग नहीं हुआ ॥४०॥ कुवलयाश्वकी माता पुत्र

भर्तारमनुयातेयंनशोच्यातोविपश्चिताम् ॥ ताःशोच्यायावियोगिन्यःसहभर्त्राकुलांगनाः ॥ ३५ ॥ कष्टभ्रांत्यानगच्छन्तिकष्टदाःस्युःकुलात्मनोः ॥ भर्तुर्वियोगस्त्वनयानानुभूतःकृतज्ञया ॥३६॥ दातारंसर्वसौख्यानामिहचामुत्रचोभयोः ॥ लोकयोःकाहिभर्त्तारंनारीमन्येतमानुषम् ॥ ३७॥ नसशोच्योनचैवेहनायंतज्जननीनच ॥ त्यजताब्रह्मणार्थायप्राणान्सर्वैस्मतारिताः ॥ ३८ ॥ विप्राणांममधर्मस्यगतःसतुमहामतिः ॥ आनृण्यमर्द्धभुक्तस्यत्यागाद्देहस्यमेसुतः ॥३९॥ मातुःसतीत्वमद्वंशवैमल्यंशौर्यमात्मनः ॥ संग्रामेसंत्यजन्प्राणान्सोविंदद्द्विजरक्षणात् ॥ ४० ॥ ततःकुवलयाश्वस्यमाताभर्तुरनंतरम् ॥ श्रुत्वापुत्रवधंतादृक्प्राहहृष्टातुतंपतिम् ॥४१॥ नमेमात्रानमेस्वस्राप्राप्ताप्रीतिर्नृपेदृशी ॥ श्रुत्वामुनिपरित्राणेहतंपुत्रंयथामया ॥ ४२॥ शोचतांब्राह्मणानां येनिःश्वनेनातिदुःखिताः ॥ म्रियंतेव्याधिनाक्लिष्टास्तेषांमातावृथाप्रजा ॥४३॥ संग्रामेयुध्यमानायेभीतागोद्विजरक्षणे ॥ क्षुण्णाःशस्त्रैर्विपद्यंतेतएवभुविमानवाः ॥४४॥ अर्थिनांमित्रवर्गेस्यविद्विषांचपराङ्मुखः ॥ योनयातिपितातेनपुत्रीमाताचवीरसूः ॥४५॥ गर्भक्लेशःस्त्रियोमन्येसाफल्यंभजतेतदा ॥ यदारिविजयीवास्यात्संग्रामेवाहतःसुतः॥४६॥

की मरणवार्त्ता स्वामीके सुननेके पीछे सुन स्वामीको देख प्रसन्न चित्तसे उनके समान कहनेलगी ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! मुनिकी रक्षा करते २ संतान निहत हुई है यह सुनकर जिसप्रकार सुखी हुई हूं माता वा बहन किसीके द्वारा मैं इस प्रकार सुखी नहीं होसकी ॥ ४२ ॥ जो शोचनीय बान्धवगणोंके लिये अति दुःखसे श्वासलेते हुए व्याधिसे क्लिष्ट होकर जीवन विसर्जन करते हैं उनकी माता वृथा संतानजननी है ॥ ४३ ॥ जो गौ वा ब्राह्मणोंकी रक्षामें संग्राममें निर्भय चित्तसे युद्धकर शस्त्रके द्वारा विपन्न होता है पृथ्वीमें उसकोही मनुष्य कहाजाता है ॥ ४४ ॥ अर्थी मित्र और शत्रुगण जिससे पराङ्मुख नहीं होते उसीके द्वारा पिता पुत्रवान् कहाकर विख्यात होता है ॥ ४५ ॥ पुत्र जब संग्राममें मृतक होता अथवा शत्रुको जीतकर लौटता है तभी स्त्रीके गर्भक्लेशकी सफलता होती है ॥ ४६ ॥

नागपुत्रोंने कहा—अनन्तर राजा शत्रुजित्ने पुत्रवधूका संस्कार किया और नगरके बाहिर स्नान करके पुत्रके उद्देश्यसे उदकांजलि दी ॥४७॥ इधर दानवाधम ताल केतु उसीप्रकार यमुना जलसे निकल प्रणामपूर्व्वक मधुरवचनद्वारा राजपुत्रसे कहने लगा ॥ ४८ ॥ हे भूपालपुत्र ! मैं आपके द्वारा कृतार्थ हुआ आपने इस स्थानमें अविचलित भावसे स्थितिकर मेरा वांछित कार्य्य किया है ॥ ४९ ॥ इस कारण महात्मा जलपति वरुणका यज्ञकार्य्य जो मेरा अभिलषित था वह मेरी मायासे सिद्ध हुआ है. अतएव हे राजपुत्र ! अब आप जाइये ॥ ५० ॥ तब राजपुत्र मुनिको प्रणाम करके गरुड़ और वायुके समान विक्रमशाली उस घोड़ेपर चढ़कर पिताके नगरमें चले गये ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

पुत्रावूचतुः ॥ ॥ ततःसराजासंस्कारंपुत्रपत्नीमलंभयत् ॥ निर्गम्यचबहिःस्नातोददौपुत्रायचोदकम् ॥ ४७ ॥ तालकेतुश्चनिर्गम्यतथैवयमुनाजलात् ॥ राजपुत्रमुवाचेदंप्रणयान्मधुरंवचः ॥ ४८ ॥ गच्छभूपालपुत्रत्वंकृतार्थोहंकृतस्त्वया ॥ वांछितंतुकृतंकार्यंत्वय्यत्राविचलेस्थिते ॥ ४९ ॥ वारुणंयज्ञकार्यंचजलेशस्यमहात्मनः ॥ तन्मयासाधितंसर्वंयन्ममासीदभीप्सितम् ॥ ५० ॥ प्रणिपत्यसतंप्रागाद्राजपुत्रःपुरंपितुः ॥ समारुह्यतमेवाश्वंसुपर्णानिलविक्रमम् ॥ ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीयेविंशोध्यायः ॥ २० ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ॥ सराजपुत्रःसंप्राप्यवेगादात्मपुरंततः ॥ पित्रोर्ववंदिषुःपादौदिदृक्षुश्चमदालसाम् ॥ १ ॥ सददर्शतदुद्विग्नमप्रहृष्टमुखंपुरम् ॥ पुनश्चविस्मिताकारंप्रहृष्टवदनंपुनः ॥२॥ अन्यमुत्फुल्लनयनंदिष्ट्यादिष्ट्येतिवादिनम् ॥ परिष्वजंतमन्योन्यमतिकौतूहलान्वितम् ॥३॥ सराजपुत्रोमित्रंतुउत्फुल्लनयनंशुभम् ॥ आलिलिंगतदाकालेसौहृदेनपरेणच ॥४॥ ततःपौरास्तदालोक्यदिष्ट्यादिष्ट्येतिवादिनः ॥ चिरंजीवोरुकल्याणहतास्तेपरिपंथिनः ॥ ५ ॥ पित्रोःप्रह्लादयमनस्तथास्माकमकंटकः ॥ इत्येवंवादिभिःपौरैःपुरःपृष्ठेचसंवृतः ॥ ६ ॥

नागपुत्रोंने कहा—राजपुत्र ऋतध्वजने पिता माताके चरणोंकी वन्दना और मदालसाके देखनेकी इच्छासे शीघ्र अपने नगरमें पहुँच देखा ॥ १ ॥ कि, पुरवासी मनुष्यगण अत्यन्त उद्विग्न हैं और फिर प्रसन्नमुख होकर तिस समय विस्मित और प्रहृष्ट वदन हुए ॥ २ ॥ और उत्फुल्लनेत्रोंसे "भाग्य भाग्य कहने लगे" और परमस्नेह तथा कौतूहलसे परस्परको आलिंगन करने लगे ॥ ३ ॥ और उस राजपुत्रने खिलेनेत्रवाले अपने उत्तम मित्रको परमप्रेमसे उस समय हृदय लगाया ॥ ॥४॥ तब पुरवासी उनको देखकर धन्यभाग्य २ ऐसा कहनेलगे हे बड़े कल्याणवाले ! दीर्घजीवी होओ, तुम्हारे समस्त शत्रु विनष्ट हों ॥५॥ और माता पिता तथा हमारे

चित्तको परम आह्लादित करो इसप्रकार कहते २ उनके आगे और पीछे एकत्र हुए ॥ ६ ॥ उन्होंने उनसे परिवेष्टित और तत्कालज आनन्दसे आनन्दित होकर पिताके मन्दिरमें प्रवेश किया तब पिता माता और अन्यान्य बन्धुगण॥७॥उनको आलिंगन करके चिरंजीवी होओ यह कल्याणमय आशीर्वाद देने लगे इसके पीछे राजपुत्रने उनको प्रणाम करके हे तात ! यह क्या ? इसप्रकार विस्मित चित्तसे पूछा ॥ ८ ॥ तब उन्होंने राजपुत्रसे सब वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह दिया. राजपुत्र उस प्राणप्रिय भार्य्या मदालसा की मृत्युवार्त्ता सुनकर पिता माता को सन्मुख देख लज्जा और शोकसागरमें निमग्न हो चिन्ता करने लगे कि हा ! जब उस साध्वी बालाने मेरी मरणवार्त्ता सुनकर ॥ ९ ॥ १० ॥ प्राण परित्याग किया है तब इस निष्ठुर वाले मुझको धिक्कार है. हा ! मैं नृशंस और अनार्य हूं जो उस मृगलोचनाके विना

तत्क्षणप्रभवानंदःप्रविवेशपितुर्गृहम् ॥ पिताचतंपरिष्वज्यमाताचान्येचबांधवाः ॥७॥ चिरंजीवेरुकल्याणददौचास्मैतदाशिषः ॥ प्रणिपत्यततःसोथकिमेत दितिविस्मितः ॥ ८ ॥ पप्रच्छपितरंचाथसोस्मैसर्वंतदुक्तवान् ॥ सभार्यांतांमृतांश्रुत्वाहृदयेष्टांमदालसाम् ॥ ९ ॥ पितरौचपुरोदृष्ट्वालज्जाशोकविमध्यगः ॥ चिंतयामाससाबालामांश्रुत्वानिधनंगतम् ॥१०॥ तत्याजजीवितंसाध्वीधिङ्मांनिरष्ठुमानसम् ॥ नृशंसोहमनार्योहंविनातांमृगलोचनाम् ॥११॥ मत्कृतेनिधनं प्राप्तांयज्जीवाम्यतिनिर्घृणः ॥ पुनःसचिंतयामासपरिसंस्तभ्यमानसम् ॥ १२ ॥ मोहोद्गममपास्यैवंनिःश्वस्योच्छ्वस्यचातुरः ॥ मृतेतिसामन्निमित्तंत्यजामिय दिजीवितम् ॥१३॥ किंमयोपकृतंतस्याःश्लाघ्यमेतत्तुयोषिताम् ॥ यदिरोदिमिवादीनंहाप्रियेतिवदन्मुहुः ॥ १४॥ तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नोवयंहिपुरुषाःकिल ॥ अथशोकजडोदीनोऽसृजाहीनोवलान्वितः ॥ १५ ॥

जीता हूं ॥ ११ ॥ मेरे निमित्त जिसने प्राण त्याग किया है, उस मृगलोचनाके विना यदि मैं जीवित रहूं तो निःसन्देह अत्यन्त निर्दयी हूं फिर वह चिन्ताकर मन को रोक ॥ १२ ॥ अत्यन्त कातर हो लम्बे २ श्वास लेते हुए मोहको रोककर फिर चिन्ता करने लगे. उस कामिनीने मेरे लिये प्राण त्याग किया है मैं भी यदि उसके निमित्त प्राण त्याग करूं ॥ १३ ॥ तो मैं ने उसका क्या उपकार कियाहै किन्तु यह स्त्रियोंकोही श्लाघनीय है यदि हा प्रिये ! हा प्रिये ! कहकर वार म्वार रोदन करूं ॥ १४ ॥ वह भी प्रशंसनीय नहीं है क्योंकि हम पुरुष हैं. और यदि शोकसंतप्त हो माल्यादि त्यागनकर मलीन होकर रहूं तो ॥ १५ ॥

शत्रु तिरस्कार करेंगे क्योंकि वैरियोंका नाश और पिताकी सेवा करना मेरा एकमात्र कार्य है ॥ १६ ॥ कारण कि, मेरा जीवन इसीके अधीन है अतएव यह जीवन परित्याग करना कभी उचित नहीं है किन्तु मैं विचार करताहूं कि, अन्य स्त्री गमनका भी मेरा त्याग है ॥१७॥ यद्यपि इससे भी उस तन्वङ्गीका कोई उपकार नहीं होसकता तो भी मेरा यही कर्त्तव्य है इससे उसका उपकार हो वा अपकार हो मैं इस प्रकार नृशंसताका आचरण करूंगा ॥ १८ ॥ जिसने मेरे निमित्त प्राणतक त्याग कर दिया है उसके लिये तो यह सामान्य कार्य है । नागपुत्र बोले, ऋतध्वजने इसप्रकार निश्चयकर जलदान आदि करके ॥ १९ ॥ और तदनन्तर समस्त कर्त्तव्य क्रिया सम्पादन करके कहा जब वह मेरी भार्या तन्वङ्गी मदालसा नहीं है ॥ २० ॥ तो इस जन्म में दूसरी कोई स्त्री मेरी सहचारिणी

विपक्षस्यभविष्यामिततःपरिभवास्पदम् ॥ मयारिशातनात्कार्यंराज्ञःशुश्रूषणंपितुः ॥ १६ ॥ जीवितंतस्यचायत्तंसंत्याज्यंतत्कथंमया ॥ किंत्वत्रमे न्यत्कर्त्तव्यंत्यागोभोगस्ययोषितः ॥ १७ ॥ सचापिनोपकारायतन्वंग्याःकिंतुसर्वथा ॥ मयानृशंस्यंकर्त्तव्यंनापकार्युपकारिवा ॥ १८ ॥ याम दर्थेत्यजत्प्राणांस्तदर्थेल्पमिदंमम ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ॥ इतिकृत्वामतिंसोथनिष्पाद्यौदकदानिकम् ॥१९॥ क्रियाश्चानंतरंकृत्वाप्रत्युवाचऋतध्वजः ॥ यदिसाममतन्वंगीनस्याद्भार्यामदालसा ॥ २० ॥ अस्मिञ्जन्मनिनान्यामेभवित्रीसहचारिणी ॥ तामृतेमृगशावाक्षींगंधर्वतनयामहम् ॥ २१ ॥ नभोक्ष्येयो षितंकांचिदितिसत्यंमयोदितम् ॥ सधर्मचारिणींपत्नींतांमुक्त्वागजगामिनीम् ॥ २२ ॥ कांचिन्नान्यांकरिष्यामितेनसत्यंमयोदितम् ॥ एवंसर्वान्परित्यज्यस्त्री भोगांस्तातसर्वदा ॥ २३ ॥ क्रीडन्नास्तेसमंतुल्यैर्वयस्यैःशीलसंपदा ॥ एतत्तस्यपरंकार्यंतातत्तत्केनसाध्यते ॥ २४ ॥ कर्तुमत्यंतदुःष्प्राप्यमश्वरैः किमुतेतरैः ॥ ॥जडउवाच॥ ॥ इतिवाक्यंतयोःश्रुत्वाविमर्शमगमत्पिता ॥ २५ ॥ विमृश्यचाहतौपुत्रौनागराट्प्रहसन्निव ॥ यद्यशक्यमितिश्रुत्वा नकरिष्यंतिमानवाः ॥ २६ ॥

नहीं होसकेगी मैं सत्य कहता हूं कि, उस मृगशावाक्षी गन्धर्वतनयाके अतिरिक्त मैं ॥ २१ ॥ दूसरी स्त्रीसे संभोग नहीं करूंगा यह मेरा सत्य वचन है मैं उस सद्धर्म चारिणी गजगामिनी पत्नीको परित्यागकर ॥ २२ ॥ अन्य किसी स्त्रीको अंगीकार नहीं करूंगा, यह भी यथार्थ कहता हूं, नागपुत्र बोले हे तात ! वह उस मदालसाके अतिरिक्त अन्य सब स्त्री संभोग त्यागकर ॥ २३ ॥ स्वभाव और सम्पद् द्वारा अपनी समान अवस्थावालोंके सहित सदा क्रीडा करते रहते हैं। हे पितः! उनके पक्षमें यही एकमात्र प्रधान कर्त्तव्य कार्य है. हे तात ! इसमें किसीकी सामर्थ्य नहीं है ॥ २४ ॥ यह ईश्वरको भी अत्यन्त दुष्प्राप्य है. दूसरे मनुष्य की तो फिर बात ही क्या है । जड़ने कहा उनके इसप्रकार वचन सुनकर पिता नागराज अश्वतर अत्यन्त विचारमें पड़गये ॥ २५ ॥ और विचारपूर्वक हँसते हँसते दोनों

पुत्रोंसे कहने लगे. सामर्थ्य से बाहर होनेके कारण मनुष्यगण जो कर्मका उद्योग नहीं करते ॥ २६॥ उस उद्योगहानिसे ही उनकी अत्यन्त हानि होती है. अपना पौरुष नष्ट न करके मनुष्य कार्य आरंभ करते हैं ॥ २७ ॥ क्योंकि दैव वा पौरुषमें ही कर्म्म की निष्पत्ति स्थित है अतएव हे दोनों पुत्रो ! मैं ऐसा करूंगा जिससे कार्य बने ॥२८॥ मैं तपस्याका आचरणकर ऐसा यत्नकरूंगा जिससे यह शीघ्र सिद्धहो. पुत्रने कहा यह बात कहकर वह नागराज अश्वतर हिमालयपर्वतके प्लक्षावतरणा नामक तीर्थमें जाकर ॥२९॥ दुश्चर तपस्या करने लगे इसके उपरान्त वह उसीमें मन लगाये परिमित भोजन कर तीनों कालमें स्नानकरके वचन द्वारा सरस्वतीका स्तवन करने लगे अश्वतर बोले मैं शुभमयी जगज्जननी देवीके आराधनाकी इच्छा करके ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उन ब्रह्मका स्थान सरस्वतीको मस्तक

कर्मण्युद्यममुद्योगहान्याहानिस्ततःपरम् ॥ आरभेतनरःकर्मस्वपौरुषमहापयन् ॥ २७ ॥ निष्पत्तिःकर्मणांदैवेपौरुषेचव्यवस्थिता ॥ तस्मादहं तथायत्नंकरिष्येपुत्रकार्यतः ॥ २८ ॥ तपश्चर्यांसमास्थाययथैतत्साध्यतेचिरात् ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ एवमुक्त्वासनागेंद्रःप्लक्षावतरणंगिरेः ॥ २९ ॥ तीर्थंहिमवतोगत्वातपस्तेपेसुदुश्चरम् ॥ तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिस्तत्रदेवींसरस्वतीम् ॥ ३० ॥ तन्मनानियताहारोभूत्वात्रिषवणाप्लुतः ॥ अश्वतरउवाच ॥ जगद्धात्रीमहंदेवीमारिराधयिषुःशुभाम् ॥ ३१ ॥ स्तोष्येप्रणम्यशिरसाब्रह्मयोनिंसरस्वतीम् ॥ सदसद्देवियत्किंचिन्मोक्षवंधार्थवत्पदम् ॥ ३२ ॥ तत्सर्वं त्वय्यसंयोगंयोगवद्देविसंस्थितम् ॥ त्वमक्षरंपरंदेवियत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥३३॥ अक्षरंपरमंब्रह्मजगच्चैतत्क्षरात्मकम् ॥ दारुण्यवस्थितोवह्निर्भौमाश्चपरमाणवः ॥ ॥ ३४ ॥ तथात्वयिस्थितंब्रह्मजगच्चेदमशेषतः ॥ ओंकाराक्षरसंस्थानंयत्तेदेविस्थिरास्थिरम् ॥ ३५ ॥ तत्रमात्रात्रयंसर्वमस्तियद्देविनास्तिच ॥ त्रयो लोकास्त्रयोदेवास्त्रैविद्यंपावकत्रयम् ॥ ३६ ॥

द्वारा प्रणामपूर्वक स्तुति करताहूं. हे देवी ! मोक्षयुक्त वा अर्थयुक्त सत् असत् स्वरूप जो सब पद हैं ॥ ३२ ॥ वह समस्तही तुममें असंयुक्त होकर भी संयुक्त की समान सम्यक् प्रकार अवस्थित रहते हैं. हे देवि ! तुम परं अक्षर हो और तुममें ही सब प्रतिष्ठित हैं ॥ ३३ ॥ किन्तु समस्त अक्षर परमाणुके समान तुममें ही स्थित हैं अक्षर स्वरूप परमब्रह्म और क्षरात्मक यह विश्वभी तुममें ही अवस्थित है । अनल और भौमके समस्त परमाणु जिसप्रकार काष्ठमें अवस्थान करते हैं ॥ ३४ ॥ इसीप्रकार परमब्रह्म और अशेष जगत् तुममें ही विद्यमान है । हे देवि । ओंकार अक्षर संस्थान और स्थिरास्थिर ॥ ३५ ॥ अर्थात् सदसत् सम्पूर्ण पदार्थ तुममेंही

वर्त्तमान रहते हैं. हे मातः! तीन लोक तीन वेद तीन विद्या तीन अग्नि ॥ ३६ ॥ तीन ज्योति तीन वर्ग तीन धर्मादि तीन गुण तीन शब्द तीन दोष तीनों आश्रम ॥ ३७ ॥ तीन काल तीन अवस्था एवं पितृ और दिनरात इत्यादि यावतीय वस्तु जो तीन मात्राका स्वरूप हैं ॥ ३८ ॥ पृथक्पृथक् सम्प्रदाययुक्त पुरुषोंके लिये सोमसंस्था हविःसंस्था और पाकसंस्थारूपसे आद्य और सनातन सप्तविध व्याहृति वेदमें निरूपित हुई हैं ॥ ३९ ॥ ब्रह्मवादीगण एकमात्र तुम्हारे ही कीर्त्तनमें वह सम्पूर्ण समाहित करते हैं. हे मातः ! उल्लिखितरूपके अतिरिक्त आपका आर एक जो अनिर्देश्य परमरूप है जिसको अर्द्धमात्रा कहते हैं ॥ ४० ॥ वह भी इसीप्रकार अविकारी अक्षय और अशेष है. हे मातः ! मेरी ऐसी शक्ति नहीं है कि, जिसके द्वारा आपके इस परमरूपका निर्देश करनेमें समर्थ हूं ॥ ४१ ॥ क्योंकि वदन जिह्वा तालु और ओष्ठादिद्वारा उसका उच्चारण नहीं होता. इन्द्र वसुगण ब्रह्मा चन्द्र सूर्य वा अन्यान्य ज्योतिर्मय पदार्थ समस्त

त्रीणिज्योतींषिवर्गाश्चत्रयोधर्मादयस्तथा ॥ त्रयोगुणास्त्रयःशब्दास्त्रयोदोषास्तथाश्रमाः ॥ ३७ ॥ त्रयःकालास्तथावस्थाःपितरोहर्निशादयः ॥ एतन्मात्रात्रयं देवितवरूपंसरस्वति ॥ ३८ ॥ विभिन्नदर्शिनामाद्याब्रह्मणोहिसनातना ॥ सोमसंस्थाहविःसंस्थाःपाकसंस्थाश्चसप्तथाः ॥ ३९ ॥ तास्त्वदुच्चारणाद्देविक्रियं. तेब्रह्मवादिभिः ॥ अनिर्देश्यंतथाचान्यदर्द्धमात्राश्रितंपरम् ॥ ४० ॥ अविकार्यक्षयंदिव्यंपरिणामविवर्जितम् ॥ तवैवचपरंरूपंयन्नशक्यंमयेरितुम् ॥ ४१ ॥ नचास्येननवाजिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ॥ इंद्रोपिवसवोब्रह्माचंद्रार्कौज्योतिरेवच ॥४२॥ विश्वावासंविश्वरूपंविश्वेशंपरमेश्वरम् ॥ सांख्यवेदांतवेदोक्तंबहुशाखास्थिरीकृतम् ॥४३॥ अनादिमध्यनिधनंसदसन्नःसदेवतु ॥ एकंत्वनेकमप्येकंभवभेदसमाश्रितम् ॥४४॥ अनाख्यंषड्गुणाख्यंचषट्काख्यंत्रिगुणाश्रयम् ॥ नानाशक्तिमतामेकंशक्तिवैभाविकंपरम् ॥ ४५ ॥ सुखासुखमहत्सौख्यरूपंतवविभाव्यते ॥ एवंदेवित्वयाव्याप्तंसकलंनिष्कलंजगत् ॥ ४६ ॥ अद्वैतावस्थितं ब्रह्मयच्चद्वैतेव्यवस्थितम् ॥ येर्थानित्यायेविनश्यंतिचान्येयेवास्थूलायेचसूक्ष्माश्चसूक्ष्माः ॥ येवाभूमौयेंतरिक्षेन्यतोवातेषांसत्यंत्वत्तएवोपलब्धिः ॥ ४७ ॥

उसका स्वरूप हैं ॥ ४२ ॥ वही विश्वका आवास विश्वका स्वरूप विश्वका ईश्वर और परमेश्वर है । सांख्य वेदान्त और तर्कशास्त्रमें जो कथित हुआ है वेदकी अनेक शाखाओंसे जो स्थिरीकृत हुआ है ॥ ४३ ॥ जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं है जो सत् और असत् है संसारके भेद समाश्रयमें जो एक अनेक और नानाप्रकार है ॥ ४४ ॥ जिसकी आख्या नहीं है एवं गुण षट्क और वर्ग समस्त ही जिसकी आख्या हैं जो त्रिगुणलम्बी हैं जो नानाप्रकार शक्तिमान् मनुष्योंकी शक्तिका परमविभवसम्पन्न ॥ ४५ ॥ और जो सुख असुख तथा महासुखरूप है हे मातः ! तुममें ही वह सब लक्षित होता है हे देवि ! इसी प्रकार सकल और निष्कल समस्त जगत् ही तुम्हारे द्वारा व्याप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ और जो अद्वैतावस्थित एवं द्वैतावस्थित ब्रह्म है वह भी तुम्हारे द्वारा व्याप्त हुआ है जो

अर्थ नित्य और जो अनित्य है जो स्थूल और जो सूक्ष्म है और जो पृथ्वी वा अन्तरिक्षमें या अन्यत्र विद्यमान है हे देवि ! तुमसेही उन सब पदार्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ हे मातः ! जो वस्तु मूर्त्तियुक्त वा अमूर्त्त है जो सब प्राणियोंमें कुछ कुछ विद्यमान है जो स्वर्गमें पृथ्वीतलमें अन्तरिक्षमें वा अन्यान्य स्थानमें वर्त्तमान है हे देवि ! तुम्हारे स्वर और व्यञ्जनद्वाराही उन सब पदार्थोंका ज्ञान होता है ॥ ४८ ॥ विष्णुजिह्वासरस्वतीने नागराजके द्वारा इसप्रकार स्तुतिको प्राप्त होकर महात्मा अश्वतर नागसे कहा ॥ ४९ ॥ सरस्वती बोली हे कम्बलभ्राता उरगाधिप ! मैं तुमको वर दूंगी अतएव तुम्हारे मनमें जो इच्छाहो

यच्चामूर्तंयच्चमूर्तंसमस्तंयद्वाभूतेष्वेकमेकंचकिंचित् ॥ यद्दिव्येस्तिक्ष्मातलेखेन्यतोवातत्संबंधंत्वत्स्वरैर्व्यंजनैश्च ॥ ४८ ॥ ॥ जडउवाच ॥ ॥ एवंस्तुतातदादेवीविष्णोर्जिह्वासरस्वती ॥ प्रत्युवाचमहात्मानंनागमश्वतरंततः ॥४९॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ ॥ वरंतेकंबलभ्रातःप्रयच्छाम्युरगाधिप ॥ तदुच्यतांप्रदास्यामियत्तेमनसिवर्त्तते ॥५०॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥साहाय्यंदेविदेहित्वंपूर्वंकंबलमेवच ॥ समस्तस्वरसंबद्धमुभयोःसंप्रयच्छच ॥५१॥ सरस्वत्युवाच ॥ सप्तस्वराग्रामरागाःसप्तपन्नगसत्तम ॥ गीतकानिचसप्तैवतावत्यश्चापिमूर्च्छनाः ॥ ५२ ॥ तानाश्चैकोनपंचाशत्तथाग्रामत्रयंचयत् ॥ एतत्सर्वंभवान्वेत्ताकंबलश्चैवतेनघ ॥५३॥ ज्ञास्यतेमत्प्रसादेनभुजंगेंद्रपरंतथा ॥ चतुर्विधंपरंतालंत्रिःप्रकारंलयत्रयम् ॥५४॥ गतित्रयंतथातालंमयादत्तंचतुर्विधम् ॥ एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेंद्रापरंचयत् ॥ ५५ ॥ आस्यांतर्गतमायत्तंस्वरव्यंजनयोश्चयत् ॥ तदशेषंमयादत्तंभवतःकंबलस्यच ॥ ५६ ॥

सो कहो वही दूंगी ॥ ५० ॥ अश्वतरने कहा हे मातः ! मेरे पूर्व सहाय कम्बल और मुझे इन दोनोंकोही समस्त स्वरका संबन्ध अर्थात् श्रुतिग्राम और मूर्च्छनादि समस्तही प्रदान कीजिये ॥ ५१ ॥ सरस्वतीने कहा हे पन्नगसत्तम ! तुम और कम्बल दोनोंही आजसे मेरे प्रसादद्वारा उत्तम गायक होंगे और सप्त स्वर ग्रामके सात राग सात गीत समस्त मूर्च्छना ॥ ५२ ॥ एकोनपंचाशत् (४९) प्रकारकी ताल और तीन प्रकार ग्राम हे अनघ ! तुम यह समस्तही कम्बलके सहित गान करसकोगे ॥ ५३ ॥ हे पन्नगाधिप ! और भी चार प्रकारके पद तीन प्रकार की ताल त्रिविध लय मेरे प्रसादसे जानोंगे ॥ ५४ ॥ तीन प्रकारकी गति और चार प्रकार वाद्य ताल तुमको प्रदान करती हूं तुमको मेरे प्रसादसे यह और इसके सिवाय समस्त भलीप्रकार विदित होगा॥५५॥और इन सबके अन्तर्गत एवं आयत्त

स्वर और व्यंजन, सम्मित जो कुछ वर्त्तमान है वह समस्त विषय तुमको और कम्बलको प्रदान किया ॥ ५६ ॥ अधिक क्या हेसर्पराज ! स्वर्ग मर्त्य और पातालमें तुम दोनोंही समस्त विषयके प्रणेता होंगे और इससे तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं रहेगा. जडने कहा विष्णुकी जिह्वास्वरूपिणी सरस्वती ॥५७॥५८॥ कमलनयना यह कहकर तत्काल अन्तर्धान होगई फिर पन्नगराज उनको नहीं देखसके उनके वरप्रसाद से दोनों भाई पूर्वकथित सम्पूर्ण विषयके ज्ञाता हुए ॥ ५९ ॥ पद ताल और स्वरादि विषयमें उनकी अद्वितीय व्युत्पत्ति उत्पन्न हुई तब कैलास शिखरमें स्थित ईश्वर॥६०॥ पापनाशी कामका अंगहरनेवाले शंकरकी तन्त्रीलयसहित सप्तस्वरसे गानकर आराधना करने लगे ॥ ६१ ॥ एवं वाक्य और इन्द्रियसमूह संयमन पूर्वक महेश्वरकी उपासना करनेकी इच्छासे प्रभात मध्याह्न सायंकाल और रात्रिमें तत्परता

यथानान्यस्यभूलोकेपातालेवापिपन्नग ॥ प्रणेतारौभवंतौचसर्वस्याद्यभविष्यतः ॥५७॥ पातालेदेवलोकेचभूलोकेचैवपन्नगौ ॥ जडउवाच ॥ इत्युक्त्वासातदादेवीसर्वजिह्वासरस्वती ॥ ५८ ॥ जगामादर्शनंसद्योनागस्यकमलेक्षणा ॥ तयोश्चतद्यथावृत्तंभ्रात्रोःसर्वमजायत ॥ ५९ ॥ विज्ञानमुभयोरग्र्यंपदतालस्वरादिकम् ॥ ततःकैलासशैलेंद्रशिखरस्थितमीश्वरम् ॥ ६० ॥ गीतकैःसप्तभिर्नागौतंत्रीलयसमन्वितैः ॥ आरिराधयिषूदेवमनंगांगहरंहरम् ॥ ६१ ॥ प्रचक्रतुःपरंयत्नमुभौसंहतवाक्कलौ ॥ प्रातर्निशायांमध्याह्नेसंध्ययोश्चापितत्परौ ॥ ६२ ॥ ततःकालेनमहतास्तूयमानोवृषध्वजः ॥ तुतोषगीतकैस्तौचप्राहसंगृह्यतांवरः ॥६३॥ ततःप्रणम्याश्वतरःकंबलेनसमंतदा ॥ विज्ञापयन्महादेवंशितिकंठमुमापतिम् ॥ ६४ ॥ यदिनौभगवन्प्रीतोदेवदेवत्रिलोचन ॥ ततोयथाभिलषितंवरमेनंप्रयच्छनौ ॥६५॥ मृताकुवलयाश्वस्यपत्नीदेवमदालसा ॥ तेनैववयसासद्योदुहितृत्वंप्रयातुमे ॥६६॥ जातिस्मरायथापूर्वंतद्वत्कांतिसमन्विता ॥ योगिनीयोगमाताचजायतांवचनात्तव ॥ ६७ ॥

सहित यत्न करनेलगे ॥ ६२ ॥ भूतपति महादेवजीने बहुत दिनोंके पीछे संगीत द्वारा परम प्रसन्न होकर उन दोनोंसे कहा तुम वर मांगो ॥ ६३ ॥ तब कम्बलके सहित अश्वतरने प्रणामपूर्वक शितिकंठ उमानाथ महेश्वरसे कहा ॥ ६४ ॥ आप देवदेव त्रिनयन और सर्वशक्तिमान हैं यदि हमारे प्रति प्रसन्न हुए हो तो हमारा अभिलषित यह वर प्रदान कीजिये ॥६५॥ कुवलयाश्वकी स्त्री मदालसाने जीवन विसर्जन किया है उसने जिस अवस्थामें प्राण त्याग किया है उसी अवस्थामें मेरी कन्या होकर जन्मग्रहण करे ॥ ६६ ॥ पहिले उसमें जिस प्रकार कान्ति विद्यमानथी उसी प्रकार कान्ति हो और वह जातिस्मरा पूर्ववत् योगिनी और योगज

न्नी होकर मेरे घर जन्मग्रहण करै ॥ ६७ ॥ महादेवजीने कहा हे पन्नगश्रेष्ठ ! तुमने जो कहा मेरे प्रसादसे वह सब होगा इसमें संदेह नहीं अब सुनो हे फणिश्रेष्ठ ! ॥ ६८ ॥ जब श्राद्धका समय प्राप्त हो तब पवित्र और सावधान मन होकर तुम स्वयं मध्यम पिण्ड भोजन करो और मेरा ध्यानकर पितरोंका यजन करो ॥ ॥ ६९ ॥ मध्यमपिण्ड भोजन करनेसे मंगलदायिनी मदालसाने जिस अवस्थामें प्राणत्याग किया है तुम्हारे मध्यम फणसे उसी अवस्थामें उत्पन्न होगी ॥ ७० ॥ तुम इसप्रकार कामनाकरके पितृतर्पणका अनुष्ठान करो तो तत्काल श्वास छोडनेके समयमें तुम्हारे मध्यम फणसे वह सुभ्रू जिस अवस्थामें मरी है उसी अवस्थामें उत्पन्न होगी ॥ ७१ ॥ दोनों भाई यह वचन सुनकर महेश्वरको प्रणामपूर्वक प्रसन्नचित्तसे फिर रसातलमें उपस्थित हुए ॥ ७२ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ॥ यथोक्तंपन्नगश्रेष्ठसर्वमेतद्भविष्यति ॥ मत्प्रसादादसंदिग्धंशृणुचेदंभुजंगम ॥ ६८ ॥ श्राद्धावसानेप्राश्नीथामध्यमंपिण्डमात्मना ॥ कामंचेमामनुध्यायन्कुरुत्वंपितृपूजनम् ॥ ६९ ॥ तत्क्षणादेवसासुभ्रूर्भवतोमध्यमात्फणात् ॥ समुत्पत्स्यतिकल्याणीतथारूपायथामृता ॥ ७० ॥ स्वय मेवोपभुंजस्वततःसर्वंभविष्यति ॥ उत्पत्स्यतेततःसातुसत्यंवैमध्यमात्फणात् ॥ ७१ ॥ एतच्छ्रुत्वाततस्तौतुप्रणिपत्यमहेश्वरम् ॥ रसातलमनुप्राप्तौपरि तोषसमन्वितौ ॥ ७२ ॥ तथाचकृतवाञ्छ्राद्धंसनागःकंबलानुजः ॥ पिंडंचमध्यमंतद्वद्यथावदुपभुक्तवान् ॥७३॥ उपभुक्तेततःपिंडेतस्यसातनुमध्यमा ॥ जज्ञेनिः श्वसतःसद्यस्तद्रूपामध्यमात्फणात् ॥७४॥ नचापिकथयामासकस्याचित्सभुजंगमः ॥ अंतर्गृहेतांसुदतींस्त्रीभिर्गुप्तामधारयत् ॥७५॥ तौचानुदिनमागत्यपुत्रौ नागपतेःसुखम् ॥ ऋतुध्वजेनसहितौचिक्रीडातेमराविव ॥ ७६ ॥ एकदातुसतौप्राहसनागोश्वतरोमुदा ॥ तन्मयापूर्वमुक्तंतुक्रियतेकिंनुतत्तथा ॥ ७७ ॥ सराजपुत्रोयुवयोरुपकारीममांतिकम् ॥ किंनुनानीयतेवत्सावुपकारायमानदः ॥७८॥ एवमुक्तौपुनस्तेनपुत्रौस्नेहवतातुतौ ॥ गत्वातस्यपुरंसख्यूरेमातेतेनधी मता ॥ ७९ ॥ ततःकुवलयाश्वंतंकृत्वाकिंचित्कथांतरम् ॥ अब्रूतांप्रणिपातेनस्वगृहागमनंप्रति ॥ ८० ॥

इसके उपरान्त अश्वतरने उसी प्रकार श्राद्ध और उसी प्रकार यथा नियमसे मध्यम पिण्ड भोजन किया॥ ७३ ॥ अन्तमें अपने अभिलषित विषयका ध्यान करते करते श्वास छोड़ते ही तत्काल उनके मध्यम फणसे कृशाङ्गी मदालसा उसी रूपमें उत्पन्न हुई ॥ ७४ ॥ अश्वतरने यह वार्त्ता किसीके निकट प्रकाश न करके अपने घरमें उस सुदतीको स्त्रियोंके सहित गुप्तभावसे रक्खा ॥ ७५ ॥ इधर उनके दोनोंपुत्र मूर्त्तिमान् दोनों सुरकुमारोंकी समान नित्य आनन्दपूर्वक आनकर ऋतध्व जके संग क्रीडा करने लगे ॥ ७६ ॥ एक दिन पन्नगपतिने पुलकित होकर उन दोनोंसे कहा. मैंने पहिले तुमसे जो कहा है, तुम उसको क्यों नहीं करते हो ? ॥७७॥ ७८ ॥ स्नेहवान पिताके इसप्रकार कहनेपर दोनों पुत्र महामति ऋतध्वजके नगरमें जाकर उनके संग क्रीड़ा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ७९ ॥ तदनन्तर बातोंही

वार्तोंके प्रसंगमें प्रणय प्रदर्शनपूर्वक कुवलयाश्वको अपने घर लेजानेका अनुरोध किया ॥ ८० ॥ राजकुमारने उनसे कहा मेरा यह घर और धन यान वस्त्र इत्यादि जो कुछ विद्यमान है सब तुम्हाराही है ॥ ८१ ॥ यदि मेरे प्रति तुम्हारी प्रीतिका संचार हुआ है तो मुझको धन वा रत्न जो अर्पण करने की इच्छा करी है सो दो ॥ ८२ ॥ तुम जब मेरे घरको अपने घरकी समान नहीं समझते तो मैं दुरात्मा दैवके द्वाराही वञ्चित हुआ हूं ॥ ८३ ॥ मेरा प्रिय अनुष्ठान करना यदि तुमको कर्त्तव्य हो और यदि मुझको अनुग्रहका पात्र विचारते हो तो मेरे घर और मेरे धनमें ममत्व स्थापन करो अर्थात् अपनाही समझो ॥ ८४ ॥ जो तुम्हारा है, सो मेरा और मेरा जो कुछ है वह समस्त तुम्हाराही है मैंने जो कहा इसकोही यथार्थ जानो वस्तुतः तुम मेरे बाहर रहनेवाले प्राणस्वरूप हो ॥ ८५ ॥ अत एव

तावाहनृपपुत्रोसौनान्विदंभवतोर्गृहम् ॥ धनवाहनवस्त्रादियन्मदीयंतदेववाम् ॥ ८१ ॥ यस्यर्वांवांछितंदातुंधनंरत्नमथापिवा ॥ तदीयतांद्विजसुतौयदिवांप्रणयो मयि ॥८२॥ एतावताहंदैवेनवंचितोस्मिदुरात्मना ॥ यद्भवद्भ्यांममत्वंनोमदीयेक्रियतांगृहे ॥ ८३ ॥ यदिवांमेप्रियंकार्यमनुग्राह्योस्मिवायदि ॥ तद्धनेममगेहे चममत्वमनुकल्प्यताम् ॥ ८४ ॥ युवयोर्यन्मदीयंतन्मामकंयुवयोःस्वयम् ॥ एतत्सर्वंविजानीयसखाप्राणोबहिश्चरः ॥ ८५ ॥ पुनर्नैवंविभिन्नार्थवक्तव्यंद्वि जसत्तमौ ॥ मत्प्रसादपरौप्रीत्याशापितौहृदयेनमे ॥ ८६ ॥ ततःस्नेहार्द्रवदनौतावुभौनागनंदनौ ॥ ऊचतुर्नृपतेःपुत्रंकिंचित्प्रणयकोपितम् ॥८७॥ ऋतुध्वज नसंदेहोयथैवाहभवानिदम् ॥ तथैवचास्मन्मनसिनात्रचिंत्यमतोन्यथा ॥ ८८ ॥ किंत्वावयोःसमंपित्राप्रोक्तमेतन्महात्मना ॥ द्रष्टुंकुवलयाश्वंतमिच्छामीतिपु नःपुनः ॥ ८९ ॥ ततःकुवलयाश्वोथसमुत्थायवरासनात् ॥ यथाहतातेतिवदन्प्रणाममकरोद्भुवि ॥ ९० ॥ कुवलयाश्वउवाच ॥ ॥ धन्योहमतिपुण्योहंकोन्यो स्तिसदृशोमया ॥ यत्तातोमामभिद्रष्टुंकरोतिप्रवणंमनः ॥ ९१ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! इसप्रकार भिन्न अर्थवाले वचन नहीं कहना, मैं अन्तरके सहित तुमको शपथ देता हूं तुम प्रणयप्रदर्शनपूर्वक मुझपर प्रसन्न होओ ॥ ८६ ॥ तब दोनों पन्नगपुत्रोंने स्नेहार्द्रमुख होकर कुछेक प्रीतिका कोप दिखाकर राजपुत्रसे कहा ॥ ८७ ॥ हे राजपुत्र ! तुमने जो कहा हमभी सदा यही विचारते हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, अत एव किसी भाँति अन्यथा नहीं समझना ॥ ८८ ॥ किन्तु हमारे पिताने स्वयं यह वारंवार कहा है कि, कुवलयाश्वको देखनेकी मेरी इच्छा है ॥८९॥ तब कुवलयाश्वने वरासनसे उठ " स्वयं पिताने यह बात कहीहै " इसप्रकार कह भूमिपर स्थित होकर प्रणाम किया ॥ ९० ॥ और कुवलयाश्व कहने लगे- मैं ही धन्य और मैं ही पुण्यवान् हूं मेरी समान और कोई भी दिखाई नहीं देता क्योंकि मुझको देखनेके लिये पिता स्वयं अत्यन्त उत्सुक हुए हैं॥९१॥

अत एव उठो अभी चलें, महूर्त्तमात्रको भी उनकी आज्ञा उल्लंघन करनेकी हमारी इच्छा नहीं है. उनके चरणस्पर्शपूर्वक इस विषयमें मैं शपथ करता हूं ॥ ९२ ॥ जडने कहा ऋतध्वजने इसप्रकार कहकर उनके संग गमन किया फिर नगरसे निकल पवित्र जलवाली गोमतीपर उपस्थित हुए ॥ ९३ ॥ उसके मध्यमें होकर वह तीनोंजने गमन करने लगे. राजकुमारने समझा कि, गोमती नदीके पारही दोनों सखाओंका घर है ॥ ९४ ॥ तदनन्तर उन्होंने राजकुमारको खेंचकर पातालमें लेजाकर प्राप्त किया राजकुमारने पातालमें जाकर देखा कि, इन दोनों पन्नगपुत्रोंने छद्मवेष छोड़कर अपना वेष धारण किया है ॥ ९५ ॥ फणों में स्थित मणिकी सहायतासे उनका हृदय प्रकाशित और स्वस्तिक चिह्न प्रकाशित होउठा है उनका स्वरूप देख राजकुमारने विस्मयविकसित नेत्रोंसे ॥ ९६ ॥

तदुत्तिष्ठतगच्छामताताज्ञांक्षणमप्यहम् ॥ नातिक्रांतुमिहेच्छामिपद्भ्यांतस्यशपाम्यहम् ॥ ९२ ॥ जडउवाच ॥ ॥ एवमुक्त्वाययौसोथसहताभ्यांनृपात्मजः ॥ प्राप्तश्चगोतमींपुण्यांनिर्गम्यनगराद्बहिः ॥ ९३ ॥ तन्मध्येनययुस्तेवैनागेंद्रनृपनंदनाः ॥ मेनेचराजपुत्रोऽसौपारेतस्यास्तयोर्गृहम् ॥९४॥ ततश्चाकृष्यपातालं ताभ्यांनीतोनृपात्मजः ॥ पातालेददृशेचोभौसपन्नगकुमारकौ ॥ ९५ ॥ फणामणिकृतोद्द्योतौव्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ॥ विलोक्यतौसुरूपांगौविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ९६ ॥ विहस्यचाब्रवीत्प्रेम्णासाधुभोद्विजसत्तमौ ॥ कथयामासतुस्तौतुपितरंपन्नगेश्वरम् ॥ ९७ ॥ शांतमश्वतरंनागंमाननीयंदिवौकसाम् ॥ रमणीयंततोपश्यत्पातालंसनृपात्मजः ॥ ९८ ॥ कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम् ॥ तथैवनागकन्याभिःक्रीडंतीभिरितस्ततः ॥ ९९ ॥ चारुकुंडलहाराभिस्ताराभिर्गगनंयथा ॥ गीतशब्दैस्तथान्यत्रवीणावेणुस्वरानुगैः ॥१००॥मृदंगपणवातोद्यहारिवेश्मशताकुलम् ॥ वीक्षमाणःसपातालंययौशत्रुजितःसुतः ॥१॥

हँसकर प्रणयपूर्वक साधुवाद दिया तदनन्तर देवताओंकेभी माननीय शान्तचरित्र पितृदेव अश्वतरके सन्मुख राजकुमारके आनेकी वार्त्ता कही राजकुमार ऋतध्वजने देखा कि, वह पातालनगर अत्यन्त मनोहर है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ बालक युवा वृद्ध सबजातीय सर्प शोभायमान हैं नागनन्दिनी उनके चारों ओर क्रीड़ाकरती हुई विचरण करती हैं ॥ ९९ ॥ उनके हार और कुण्डल अतीव मनोहर और उनकी समीपतासे तारोंकी मालासे विभूषित आकाशमण्डलके समान पातालनगरकी शोभा सम्पादित हुई है इसके किसी किसी स्थानमें संगीत ध्वनि होती है उसके संग संग वेणु और वीणासमूह शब्दायमान होते हैं ॥ १०० ॥ मृदंग पणव और आतोद्य (वाद्यविशेषके) शब्दसे वह प्रतिध्वनित है उसमें सैकडों मनोरम गृह विराजमान हैं राजनन्दन पातालको देखते देखते उन

प्रियतम समान अवस्थावाले दोनों सखाओंके संग गमन करने लगे. तदनन्तर सबने पन्नगके स्थानमें प्रविष्ट होकर ॥ १०१॥ १०२ ॥ देखा कि, वह महात्मा वहां स्थिति करते हैं उनका बिछौना दिव्यवस्त्रका है गलेमें दिव्यमाला और कानोंमें मणिमय कुण्डल विराजमान हैं ॥ १०३ ॥ स्वच्छ मुक्ताफल लतामय मनोरम हारके रहनेसे उनकी शोभा असीम हो रही है। उनके हाथमें केयूर और वह सुवर्णके आसनपर विराजमान हैं ॥ १०४ ॥ मणि मूँगे और वैडूर्यमें खचित होनेके कारण उनका प्रकृतरूप तिरोहित हुआ है. तदनन्तर उन्होंने राजपुत्रको दिखाया कि, यही हमारे पिता हैं ॥ १०५ ॥ अनन्तर पिताके निकट भी राज पुत्रका परिचय देकर कहा कि, "यही वह वीर कुवलयाश्व हैं" तब ऋतध्वजने पन्नगपतिके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १०६ ॥ पन्नगराजने भी उनको बल

सहताभ्यामभीष्टाभ्यांपन्नगाभ्यामरिंदमः ॥ ततःप्रविश्यतेसर्वेनागराजनिवेशनम् ॥ २ ॥ ददृशुस्तंमहात्मानमुरगाधिपतिंस्थितम् ॥ दिव्यमाल्यांबरधरंमणिकुंडलभूषणम् ॥ ३ ॥ स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम् ॥ केयूरिणंमहाभागमासनेसर्वकांचने ॥४॥ मणिविद्रुमवैडूर्यजालांतरीतरूपके ॥ सताभ्यांदर्शितस्तस्यताततोस्माकमसाविति ॥ ५ ॥ वीरःकुवलयाश्वोयंपित्रेचासौनिवेदितः ॥ ततोननामचरणौनागेंद्रस्यऋतुध्वजः ॥ ६ ॥ समुत्थप्यबलाद्गाढंसनागःपरिषस्वजे ॥ मूर्ध्निचैवमुपाघ्रायचिरंजीवेत्युवाचह ॥ ७ ॥ निहतामित्रवर्गश्चपित्रोःशुश्रूषणंकुरु ॥ वत्सधन्यस्यकथ्यंतेपरोक्षस्यापितेगुणाः ॥ ८ ॥ भवतोममपुत्राभ्यामाभ्यांयेमेनिवेदिताः ॥ तदेतैरेववर्द्धेथामनोवाक्कायचेष्टितैः ॥ ९ ॥ जीवितंगुणिनःश्लाघ्यंजीवन्नपिमृतोऽगुणी ॥ गुणवान्निर्वृतिंपित्रोःशत्रूणांहृदयेज्वरम् ॥११०॥ करोत्यात्महितंकुर्वन्विश्वासंचमहाजने ॥ देवताःपितरोविप्रामित्रार्थिविभवादयः ॥११॥ बांधवाश्चतथेच्छंतिजीवितंगुणिनश्चिरम् ॥ परवादनिवृत्तानांदुर्गतेषुदयावताम् ॥ १२ ॥

पूर्वक उठाय आलिंगन और शिर सूँघकर कहा तुम चिरंजीवी होओ ॥ १०७॥ और शत्रुकुल संहारकरके पितामाताकी शुश्रूषा करो हे वत्स ! तुम धन्य हो क्यों कि मेरे पुत्र पीछेमें भी तुम्हारे अलौकिक गुणोंका विषय ॥ १०८ ॥ कीर्त्तन करते हैं इससे भी तुम्हारा मन वाक्य शरीर और चेष्टा सर्वांशमें वृद्धिको प्राप्त होगी ॥ १०९ ॥ जो पुरुष गुणवान् हैं उनका प्राणधारणही श्लाघाका विषय है जो पुरुष निर्गुण है वह जीवित अवस्थामें मृतकके समान है। जो पुरुष गुण वान् हैं वह पिता माताकी शान्ति करते शत्रुकुलको ताप देते ॥ ११० ॥ और महाजनोंका विश्वास उत्पादन करके अपना मंगल साधन करते हैं. देवता पितृ बन्धु विप्र एवं मित्र प्रार्थी और विभवादि ॥ १११ ॥ तथा बन्धुजन गुणवानके दीर्घजीवनकी कामना करते हैं गुणवान् व्यक्ति दूसरोंकी बुराईसे निवृत्त दुःखियोंके

प्रति दया दिखाते हैं ॥ ११२ ॥ और दुःखी पुरुषको आश्रयप्रदान करते हैं सुतरां उनकाही जन्म सफल है. जड़ने कहा वह राजपुत्रसे यह कहकर उनकी अर्चना करनेमें उत्कंठित हुए,और दोनों पुत्रोंसे कहा हम सब इकट्ठे हो क्रमानुसार स्नानादि क्रिया कर ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ अपनी इच्छानुसार मधुपान इत्यादि उपभोग और भक्षण करके कुवलयाश्वके सहित उत्सव करते हुए ॥ ११५ ॥ प्रसन्नमनसे कुछकाल निवास करेंगे ऋतध्वजने इसपर कोई बात नहीं कही और मौनभावसे स्थितिकर उसी बातका अनुमोदन किया ॥ ११६ ॥ तब उदारमति पन्नगराजने तदनुरूप कार्यका अनुष्ठान किया ॥ ११७ ॥ वह भोगभागी आत्मवान् सत्यभाषी पन्नगराज अश्वतर पुत्र राजकुमारके सहित मिलित होकर प्रसन्नचित्तसे अन्न और मधु सम्यक् प्रकारसे भोग

गुणिनांसफलंजन्मसंश्रितानांविपद्गतैः ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ एवमुक्त्वासतंवीरंपुत्राविदमथाब्रवीत् ॥ १३ ॥ पूजांकुवलयाश्वस्यकर्त्तुकामोभुजंगमः ॥ स्नानादिकक्रमंकृत्वासर्वमेवयथाक्रमम् ॥ १४ ॥ मधुपानादिसंभोगमाहारंचयथेप्सितम् ॥ ततःकुवलयाश्वेनहृदयोत्सवभूतया ॥ १५ ॥ कथयास्वल्पकंकालंस्थास्यामोहृष्टचेतसः ॥ अनुमेनेचतंमौनीवचःशत्रुजितःसुतः ॥ १६ ॥ तथाचकारचपतिःपन्नगानामुदारधीः ॥ १७ ॥ समेत्यतैरात्मजभूपनंदनैर्महोरगाणामधिपःससत्यवाक् ॥ मुदायुतोन्नानिमधूनिचात्मवान्यथोपजोषंबुभुजेसभोगभाक् ॥ ११८ ॥ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीयेपातालप्रवेशोनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ कृताहारंमहात्मानमधिपंपवनाशिनाम् ॥ उपासांचक्रिरेपुत्रौभूपालतनयस्तथा ॥ १ ॥ कथाभिरनुरूपाभिःप्रहृष्टात्माभुजंगमः ॥ प्रीतिंसंजनयामासपुत्रसख्युरुवाचह ॥ २ ॥ तवभद्रसुखंब्रूहिगेहमभ्यागतस्ययत् ॥ कर्तव्यमुत्सृजाशंकांपितरीवसुतेमयि ॥ ३ ॥ हिरण्यंवासुवर्णंवावस्त्रंवाहनमासनम् ॥ यद्वाभिमतमत्यर्थंदुर्लभंतद्वृणुष्वमाम् ॥ ४ ॥ कुवलयाश्वउवाच ॥ भवत्प्रसादाद्भगवन्सुवर्णादिगृहेमम ॥ पितुरस्तिममाद्यापिनार्किंचित्कार्यमीदृशैः ॥ ५ ॥

करने लगे ॥ ११८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ जड़ने कहा अनन्तर पन्नगपति महात्मा अश्वतरके आहार करनेपर उनके दोनों पुत्र और राजकुमार उनकी उपासनामें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥ तब महात्मा भुजङ्गाधिपतिने अनुरूप वचनप्रयोगपूर्वक राजकुमारको प्रसन्न करके कहा हे भद्र ! ॥ २ ॥ तुम मेरे घर आये हो पुत्र जिसप्रकार शंका छोड़कर पितासे बातें करता है उसी प्रकार तुम बातें करो, कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूं ? ॥ ३ ॥ सो तुमभी मेरे निकट स्वच्छन्द प्रकाश करो क्या सुवर्ण क्या चाँदी क्या वसन क्या वाहन अथवा अन्य जिस किसीवस्तुकी अभिलाषा हो वह अत्यन्त दुर्लभ होनेपरभी मुझसे माँगो ॥ ४ ॥ कुवलयाश्वने कहा हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मेरे पिताके घर सुवर्णादि समस्त वस्तुही विद्यमान हैं अभीतक मुझको ऐसी वस्तुका कोई प्रयोजन नहीं हुआ ॥ ५ ॥

मेरे पिता जब सहस्र वर्ष हुए इस पृथ्वीका शासन करते थे और आपभी पातालपुरमें वास करते थे तब कभी मेरा मन प्रार्थना करनेमें अग्रेसर नहीं हुआ ॥ ६ ॥ क्योंकि जिन पुरुषोंके पिता जीवित हैं वही पुरुष धन्य हैं इसी कारण जो यौवन कालमें करोड़ करोड़ वित्तको भी सामान्य तृणकी समान समझते हैं वही परम पुण्यवान् और वही स्वर्गीय महापुरुष हैं ॥ ७ ॥ विचार करके देखो मेरे मित्रगणअनुरूप शिष्टाचारसम्पन्न हैं मेरा शरीरभी रोगरहित है यौवनभी है क्या नहीं है ॥ ॥ ८ ॥ मेरे पिताकी विलक्षण धनसम्पत्तिके अधिकारी हैं और जिनके अर्थ नहीं है उनकाही अन्तःकरण याचनामें लगता है किन्तु मेरे यहां धनका अभाव नहीं है सुतरां मेरी रसना याचना करनेमें उद्यत क्यों हो ?॥ ९ ॥ मेरे घर धन है वा नहीं जिनको चिन्ता करनी नहीं पड़ती और जो कोई पितारूपी वृक्षकी भुजलताकी छायामें रहते हैं

तातेवर्षसहस्रायुःशासतीमांवसुंधराम् ॥ तथैवत्वयिपातालंनमेयाच्भोन्मुखंमनः ॥ ६ ॥ तेसुभाग्याःसुपुण्याश्चयेषांपितरिजीवति ॥ तृणंकोटिसमंवित्तंतारुण्यं वित्तकोटिषु ॥ ७ ॥ मित्राणितुल्यशिष्टानितद्वद्देहमनामयम् ॥ जनेवाध्रियतेवित्तंयौवनंकिंतुनास्तिमे ॥ ८ ॥ असत्यर्थेनृणांयाच्भाप्रवणंजायतेमनः ॥ सत्यशेषेकथंयाच्भांममजिह्वाकरिष्यति ॥ ९ ॥ यैर्नचिंत्यंधनंकिंचिन्ममगेहेस्तिनास्तिवा ॥ पितृबाहुतरुच्छायांसंश्रिताःसुखिनोहिते ॥ १० ॥ येतुबाल्यात्प्रभृत्येवविनापित्राकुटुंबिनः ॥ तेसुखास्वादविभ्रंशान्मन्येधात्रैववंचिताः ॥ ११ ॥ तद्वयंतत्प्रसादेनधनरत्नादिसंचयम् ॥ पितृभक्ताःप्रयच्छामःकामतोनित्यमर्थिनाम् ॥ १२ ॥ तत्सर्वमिहसंप्राप्तंयदंघ्रियुगलंतव ॥ मच्चूडामणिनाघृष्टंयच्चांगस्पर्शमाप्तवान् ॥ १३ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ इत्येवंप्रश्रितंवाक्यमुक्तःपन्नगसत्तमः ॥ प्राहराजसुतंप्रीत्यापुत्रयोरुपकारिणम् ॥ १४ ॥ यदिरत्नसुवर्णादिमत्तोवाप्तुंनतेमनः ॥ यदन्यन्मनसःप्रीत्यैब्रूहितत्तेददाम्यहम् ॥ १५ ॥

वही यथार्थमें सुखी हैं ॥ १० ॥ किन्तु जो कोई बाल्यकालसेही पितृहीन होकर परिवारके भरण पोषणमें नियुक्त होते हैं मेरे विचारमें विधाताने उन सब पुरुषोंको सुख स्वादसे भ्रष्टकरके वंचित किया है ॥ ११ ॥ मैं आपके अनुग्रहसे पिताके दियेहुए असंख्य असंख्य धनरत्नादि अपनी इच्छानुसार प्रतिदिन अर्थियोंको देता हूं ॥ ॥ १२ ॥ विशेषकर जब अपनी चूडामणिद्वारा आपके चरण कमलोंका स्पर्श किया है और आपका अंगसंगलाभ किया है तब यहां वह मुझको समस्तही लाभ हुए इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ जड़ने कहा पन्नगराज ! इस प्रकार विनययुक्त वचन सुनकर प्रसन्नतासहित अपने दोनों पुत्रके हितकारी उन राजपुत्रसे कहने लगे ॥ १४ ॥ यदि मुझसे सुवर्णरत्नादि लेनेकी तुम्हारी इच्छा न हो तो और कुछ जिससे तुम्हारी आन्तरिक प्रीतिका संचार हो सो कहो मैं तुमको वही दूंगा ॥ १५ ॥

कुवलयाश्वने कहा हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मेरे घरमें प्रार्थनीय समस्तही वस्तु विद्यमान हैं. और विशेष करके इस समय आपका दर्शन करनेसे वह भलीभाँति समस्त वस्तु मुझको लाभ होगई ॥ १६ ॥ आप देवते हैं मैं मनुष्य होकरभी जो आपके अंगसंगको प्राप्त हुआ इससे मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूं और इससे मेरा जीवनधारणभी सफल होगया ॥ १७ ॥ हे पन्नगेश्वर ! आपकी चरणरेणुने जो मेरे मस्तकके स्थानका अधिकार किया है इससे मुझको कौनसी वस्तु नहीं मिली॥१८॥तो भी मुझको यदि आप अभिलषित वर देना कर्त्तव्य समझते हैं तो यही वर दीजिये कि, मेरे अन्तरसे पुण्य कर्म्मका संस्कार किसी समयमें दूर न हो॥१९॥ मेरे विचारमें सुवर्ण मणि रत्नादि वाहन गृह आसन स्त्री अन्न पान पुत्र मनोहर माल्य और अनुलेपन ॥ २० ॥

कुवलयाश्वउवाच ॥ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनप्रार्थितस्यगृहेमम ॥ सर्वमस्तिविशेषेणसंप्राप्तंतवदर्शनात् ॥ १६ ॥ कृतकृत्योस्मिचैतेनसफलंजीवितंमम ॥ यदंगसंश्लेषमितस्तवदेवस्यमानुषः ॥ १७ ॥ ममोत्तमांगेत्वत्पादरजसायदिहास्पदम् ॥ कृतंतेनैवनप्राप्तंकिंमयापन्नगेश्वर ॥ १८ ॥ यदित्ववश्यंदातव्यो वरोमेमनसेप्सितः ॥ तत्पुण्यकर्मसंस्कारोहृदयान्माव्यपैतुमे ॥ १९ ॥ सुवर्णमणिरत्नादिवाहनंगृहमासनम् ॥ स्त्रियोन्नपानंपुत्राश्चचारुमाल्यानुलेपनम् ॥ ॥ २० ॥ एतेचविविधाभोगागीतवाद्यादिकंचयत् ॥ सर्वमेतन्ममतंफलंपुण्यवनस्पतेः ॥ २१ ॥ तस्मान्नरेणतन्मूलसेकेयत्नःकृतात्मना ॥ कर्त्तव्यःपुण्य सक्तानांनांकिंचिद्भुविदुर्लभम् ॥ २२ ॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥ एवंभविष्यतिप्राज्ञतवधर्माश्रितामतिः ॥ सत्यंचैतत्फलंसर्वंधर्मस्योक्तंयथात्वया॥ २३ ॥ तथाप्यवश्यंमद्गेहमागतेनत्वयाधुना ॥ ग्राह्यंयन्मानुषेलोकेदुष्प्रापंभवतोमतम् ॥ २४ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासतदानृपनंदनः ॥ मुखावलोकनंचक्रेपन्नगेश्वरपुत्रयोः ॥ २५ ॥

एवं गीत वाद्य इत्यादि अन्यान्य सब अभिलषित वस्तु यह सबही पुण्यरूप वनस्पतिका फल है ॥ २१ ॥ अत एव कृतचित्त हो उसकी जड़के सेवन करनेका यत्न करना सब मनुष्योंका कर्त्तव्य है जो मनुष्य पुण्यासक्त हैं पृथ्वीमें उनके निकट कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥ २२ ॥ अश्वतरने कहा हे प्राज्ञ ! यही होगा तुम्हारा मन सदाही धर्मपथ अवलम्बन करके रहेगा तुमने जो जो कहा सबही सत्य है बरन यही धर्मका एकमात्र फल है ॥ २३ ॥ तथापि जब तुम मेरे घर आये हो तो नर लोकमें जो तुमको दुष्प्राप्य हो वह तुमको अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ॥ २४ ॥ जड़ने कहा राजपुत्रने पन्नगपतिका यह वचन सुनकर उनके पुत्रोंके मुख

की ओर देखा ॥ २५ ॥ तब उन दोनों ने प्रणामपूर्वक राजकुमारकी जो कुछ इच्छा थी वह सब स्पष्ट रूपसे पिताके निकट निवेदन करी ॥ २६ ॥ दोनों पुत्र बोले इनकी प्रियतमा पत्नीने किसी दुरात्मा दानवसे छलीजाकर इनका मृत्यु सम्वाद सुन परम प्रियतम जीवन विसर्जन किया है ॥ २७॥ कुबुद्धि दैत्यने वैर करके ही ऐसा आचरण किया था. इनकी प्रणयिनीका नाम मदालसा था, वह गन्धर्वपतिकी कन्या थी ॥ २८ ॥ हे पितः! मदालसाके प्राण परित्याग करनेपर इन्होंने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश की वासनासे यह प्रतिज्ञा करी है कि, मदालसाके अतिरिक्तऔर किसी स्त्रीको पत्नीरूपमें ग्रहण नहीं करूंगा ॥ २९ ॥ यह महावीर ऋतध्वज उस सर्व्वांगसुंदरीको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हैं. हे तात! यदि ऐसा करसके तो इनका यथार्थ उपकार हो ॥ ३० ॥ अश्वतरने कहा एकवार पंचभूत सहितोके

ततस्तौप्रणिपत्योभौराजपुत्रस्ययन्मतम् ॥ तत्पितुःसकलंवीरौकथयामासतुःस्फुटम् ॥ २६ ॥ तातास्यपत्नीदयिताश्रुत्वेमंविनिपातितम् ॥ अत्यजद्दयिताप्राणान्विप्रलब्धादुरात्मना ॥ २७ ॥ केनापिकृतवैरेणदानवेनकुबुद्धिना ॥ गंधर्वराजस्यसुतानाम्नाख्यातामदालसा ॥ २८ ॥ कृतज्ञोयंततस्तातप्रतिज्ञांकृतवानिमाम् ॥ नान्याभार्याभवित्रीमेवर्जयित्वामदालसाम् ॥ २९ ॥ द्रष्टुंतांचारुसर्वांगीमयंवीरोऋतध्वजः ॥ तातवांछतियद्येतत्क्रियतेतत्कृतंभवेत् ॥ ३० ॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥ भूतैर्वियोगिनोयोगस्तादृशैरेवतादृशः ॥ कथमेतद्विनास्वप्नंमायांवाशंबरोदिताम् ॥ ३१ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ प्रणिपत्यभुजंगेशंपुत्रःशत्रुजितस्ततः ॥ प्रत्युवाचमहात्मानंप्रेमलज्जासमन्वितः ॥ ३२ ॥ मायामयीमप्यधुनाममतातोमदालसाम् ॥ यदिदर्शयतेमन्येपरंकृतमनुग्रहम् ॥ ३३ ॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥ तस्मात्पश्येहवत्सत्वंमायांचेद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ अनुग्राह्योभवान्गेहेबालोप्यभ्यागतोगुरुः ॥३४॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ आनयामासनागेंद्रोगृहेगुप्तांमदालसाम् ॥ दर्शयामासचतदाराजपुत्रायतांशुभाम् ॥ ३५ ॥

वियोग होनेपर फिर पूर्ववत् संयोग होना स्वप्न वा शम्बरकी रची आसुरी मायाके अतिरिक्त अन्य किसीप्रकार सम्भव नहीं है ॥ ३१॥ जड़ने कहा, तब शत्रुजित् नन्दन ऋतध्वजने महात्मा भुजंगपतिको प्रणाम करके प्रेम और लज्जासहित कहा ॥ ३२ ॥ हे तात! आप यदि इससमय उस मदालसाको माया करकेभी दिखासके तो मैं जानूंगा कि आपने मेरे प्रति परम अनुग्रह किया ॥ ३३ ॥ अश्वतर बोले हे वत्स! यदि माया देखनेकी इच्छा हो तो देखिये क्योंकि तुम इसप्रकार अनुग्रहके पात्र हो यद्यपि बालक होकर भी मेरे घर आये हो। तथापि अतिथि होनेसे गुरुके समान माननीय हो ॥ ३४ ॥ पन्नगराजने यह कहकर उस घरमें

छिपीहुई मदालसाको उस स्थानमें बुलाया और राजकुमारको दिखाया ॥ ३५ ॥ तथा सबको मोहित करनेके लिये कुछेक वृथा अव्यक्त मंत्र उच्चारणपूर्वक राजकुमारको मदालसा दिखाकर कहा हे वत्स ! तुम्हारी पत्नी मदालसा यही तो नहींहै तुम देखो ॥ ३६ ॥ राजकुमार मदालसाको देखते ही लज्जा छोड तत्काल प्रिये ! यह वचन कहते कहते उसके सन्मुख हुए ॥ ३७ ॥ अश्वतरने यह देख शीघ्र उनको निषेध करके कहा ! हे पुत्र ! यह माया है, इसको स्पर्श न करना मैंने पहले ही कहा है ॥ ३८ ॥ स्पर्शादि करते ही माया तत्काल अन्तर्धान होजाती है यह वचन सुनते ही ऋतध्वज मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिरगये ॥ ३९ ॥ और हा प्रिये कहकर उसकी चिन्ता करने लगे क्या मुझको मोह होगया है वा कुछ और है, विश्वास नहीं होता ॥ ४० ॥ यह मेरी ही है यह मुझे बलपूर्वक विश्वास होता है

तेषांसंमोहनार्थायजजल्पचततःस्फुटम् ॥ सेयंनवेतितेभार्याराजपुत्रमदालसा ॥ ३६ ॥ ॥ जडउवाच ॥ ॥ सदृष्ट्वातांतदातन्वींतत्क्षणाद्विगतत्रपः ॥ प्रियेतितामभिमुखंययौवाचमुदीरयन् ॥ ३७ ॥ निवारयामासचतंनागःसोश्वतरस्त्वरन् ॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥ मायेयंपुत्रमास्प्राक्षीःप्रागेवकथितं तव ॥ ३८ ॥ अंतर्द्धानमुपैत्याशुमायासंस्पर्शनादिभिः ॥ ततःपपातमेदिन्यांसतुमूर्च्छापरिप्लुतः ॥ ३९ ॥ हाप्रियेतिवदन्सोथचिंतयामासभामिनीम् ॥ मोहो ममायंनोवेतिनालंप्रत्ययवानहम् ॥ ४० ॥ अहोममेत्यहंचेतिवलंप्रत्ययोर्महत् ॥ येनाहंपातनोरीणांविनाशस्त्रंनिपातितः ॥ ४१ ॥ ममेतिदर्शितानेनमिथ्यामाये तिविस्फुटम् ॥ वाय्वंबुतेजसांभूमेराकाशस्यचचेष्टया ॥ ४२ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ ततःकुवलयाश्वंससमाश्वास्यभुजंगमः ॥ कथयामासतत्सर्वंमृ तसंजीवनादिकम् ॥ ४३ ॥ ततःप्रहृष्टःप्रतिलभ्यकांतांप्रणम्यनागंनिजमाजगाम ॥ संस्तूयमानःस्वपुरंतमश्वमारुह्यसंचिंतितमभ्युपेतम् ॥ ४४ ॥ शृणुयाद्भ क्तिपूर्वंयोनैरंतर्येणमानवः ॥ वेदघोषफलंतेनप्राप्तंवैभुविदुर्लभम् ॥ ४५ ॥

जिससे मुझको विनाशस्त्र निपातन किया है ॥ ४१ ॥ मुझे इन्होंने प्रत्यक्ष मिथ्या माया दिखाई है वा वायु जल तेज आकाशकी यह चेष्टा है ॥ ४२ ॥ जड़ने कहा अनन्तर भुजंगपति अश्वतरने राजकुमार कुवलयाश्वको समझा बुझाकर जिसप्रकारसे मृत मदालसाको फिर जीवित किया था वह सब ही कहा ॥ ४३ ॥ तब कुवलयाश्व अपनी प्रणयिनीको पानेसे अत्यन्त आनन्दित हुए और अपने अश्वरत्नको स्मरण किया स्मरण करते ही वह अश्व उस स्थान में आनकर उपस्थित हुआ तब राजकुमारने पन्नगपतिको प्रणामकर स्त्रीसहित घोड़ेकी पीठपर चढ़े अपने शोभायमान पुरको प्रस्थान किया ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य निरन्तर भक्ति-

पूर्वक इस कथाको सुनते हैं वह वेदपाठके फलको अवश्य प्राप्त होते हैं जो पृथ्वीमें बड़ा दुर्लभ है ॥ ४५ ॥ उसको सबकामकी प्राप्ति और नित्यसुख मिलता है और उस पुरुषको लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ४६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ ॥ पुत्रने कहा ऋतध्वजने अपने पुरमें पहुँचकर परलोकगत मदालसाको जिस प्रकार फिर पाया था वह समस्त पिता माताके निकट आनुपूर्विक वर्णन किया ॥ ॥ १ ॥ कल्याणी कृशांगी मदालसाने भी सास और श्वशुरके चरणोंमें प्रणाम करके ॥ २ ॥ अवस्था और गुरुत्वानुसार स्वजनोंकी यथायोग्य वन्दना और आलिंगनादि करके पूजा करी तदनन्तर पुरीमें पुरवासियोंका महोत्सव प्रवृत्त हुआ ॥ ३ ॥ इस ओर राजकुमार ऋतध्वजने सुमध्यमा मदालसाके संग गिरिनिर्झर

संप्राप्नोतिसुखंनित्यंसर्वकामसमन्वितः ॥ लोकेचदुर्लभंतस्यनास्तिकिंचिन्नतिवद्यो ॥ ४६ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेमदालसोपाख्यानेपुनर्मदालसां प्राप्यपातालान्निर्गमोनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ आगम्यस्वपुरंसोथपित्रोःसर्वमशेषतः ॥ कथयामासतन्वंगीयथाप्राप्तापुनर्मृता ॥ १ ॥ ननामसापिचरणौश्वश्रूश्वशुरयोःशुभा ॥ स्वजनंचयथापूर्ववंदनाश्लेषणादिभिः ॥ २ ॥ पूजयामासतन्वंगीयथान्यायंयथावयः ॥ ततोमहोत्सवोजज्ञेपौराणां तत्रवैपुरे ॥ ३ ॥ ऋतध्वजश्चसुचिरंतयारेमेसुमध्यया ॥ निर्झरेषुचशैलानांनिम्नगापुलिनेषुच ॥ ४ ॥ काननेषुचरम्येषुवनेषूपवनेषुच ॥ पुण्यक्षयंवांछमा नासापिकामोपभोगतः ॥५॥ सहतेनातिकांतासुरेमेरम्यासुभूमिषु ॥ ततःकालेनमहताशत्रुजित्सनराधिपः ॥६॥ सम्यक्प्रशास्यवसुधांकालधर्ममुपेयिवान् ॥ ततःपौरामहात्मानंपुत्रंतस्यऋतध्वजम् ॥ ७ ॥ अभ्यषिंचंतराजानमुदाराचारचेष्टितम् ॥ सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजाःपुत्रानिवौरसान् ॥ ८ ॥ मदालसायाः संजज्ञेपुत्रःप्रथमजस्ततः ॥ तस्यचक्रेपितानामविक्रांतइतिधीमतः ॥ ९ ॥

नदीपुलिन ॥ ४ ॥ और मनोहर वन उपवनमें बहुत कालतक विहार किया मदालसा भी कामोपभोगद्वारा पुण्यक्षयकी वासनासे ॥ ५ ॥ मनोहर कान्ति ऋतध्वजके संग अनेकप्रकारके मनोहर स्थानोंमें विहार करने लगी. इसप्रकार बहुतदिन बीतनेपर नरपति शत्रुजित् ॥ ६ ॥ विधानानुसार पृथ्वीका शासन कर कालधर्मके-वशीभूत हुए तब पुरवासियोंने उनके पुत्र ॥ ७ ॥ उदाराचारचेष्टित महात्मा ऋतध्वजको राज्यपदमें प्रतिष्ठित किया कुमार भी औरस पुत्रकी समान सम्यक् प्रकारसे प्रजापालन करने लगे ॥ ८ ॥ इसी समयमें मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्रने जन्मग्रहण किया पिताने उस मतिमान् पुत्रका नाम "विक्रान्त" रक्खा ॥ ९ ॥

पुत्रसन्तान होनेसे भृत्यगण अत्यन्त प्रसन्नताको प्राप्त हुए और मदालसा हँसने लगी उस पुत्रके पैर फैलाकर सोनेमें तथा ॥ १० ॥ अस्फुटस्वरसे क्रन्दन करनेमें प्रवृत्त होनेपर मदालसा उसको समझानेके मिससे कहने लगी हे वत्स ! तुम शुद्ध और नामहीन हो अब कल्पनामात्रकी सहायतासे ही तुम्हारा नामकरण हुआ है॥ ११ ॥तुम इस देहको पंचभूतात्मक जानना अतएव यह देह जिसप्रकार तुम्हारा नहीं है तुम इसीप्रकार इसके भी नहीं हो सुतरां तुम किसकारण रुदन करते हो ? वा तुम क्रन्दन नहीं करते यह शब्द इन राजकुमारको आश्रय करके स्वयंही आविर्भूत होता है ॥ १२ ॥ नाना प्रकार भौतिक गुण और अगुण सब तुम्हारी इन्द्रियोंमें विकल्पित हुए हैं अतीव दुर्लभ भूतसमूह जिसप्रकार भूतकी सहायतासे अन्न और जलदानादि द्वारा वर्द्धित होते हैं ॥ १३ ॥ इस जलादिकी समान तुम्हारी

तुतुषुस्तेनवैभृत्याजहासचमदालसा ॥ सावैमदालसापुत्रंबालमुत्तानशायिनम् ॥ १० ॥ उल्लापनच्छलेनाहरुदमानमविस्वरम् ॥ शुद्धोसिरेताततनतेस्ति नामकृतंचतेकल्पनयाधुनैव ॥११॥ पंचात्मकंदेहमिदंनतेस्तिनैवास्यत्वंरोदिषिकस्यहेतोः ॥ नवाभवात्रोदितिवैस्वजन्माशुद्धोयमासाद्यमहीससूहम्॥ १२॥ विकल्प्यमानोविविधैर्गुणार्थैर्गुणाश्चभौताःसकलेंद्रियेषु ॥ भूतानिभूतैःपरिदुर्बलानिवृद्धिंसमायांतियथेहपुंसः ॥१३॥ अन्नांबुपानादिभिरेवकस्यनतेस्तिवृद्धिर्न चतेस्तिहानिः ॥ त्वंकंचुकेशीर्यमाणेनिजेस्मिंस्तस्मिन्स्वदेहेमूढतांमाव्रजेथाः ॥ १४ ॥ शुभाशुभैःकर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैःकंचुकस्तेपिनद्धः ॥ तातेतिकिंचित्तनयेतिकिंचिदंबेतिकिंचिद्दयितेतिकिंचित् ॥ १५ ॥ ममेतिकिंचिन्नममेतिकिंचिद्भौतंसंघंबहुधामालपेथाः ॥ दुःखानिदुःखोपगमाय भोगान्सुखायजानातिविमूढचेताः ॥ १६ ॥ तान्येवदुःखानिपुनःसुखानिजानातिविद्वानविमूढचेताः ॥ हासोस्थिसंदर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलंय त्कलुषंवसायाः ॥ १७ ॥ कुचादिपीनंपिशितंघनंतत्स्थानंरतेःकिंनरकोनयोषित् ॥ यानंक्षितौयानगतश्चदेहोदेहेपिचान्यःपुरुषोनिविष्टः ॥ १८ ॥

उसप्रकार वृद्धि वा क्षय कुछ नहीं है तुम्हारा यह देह आच्छादन मात्र है यह भी शीर्ण हो जायगा इसलिये तुम मोहमें अभिभूत नहीं होना ॥ १४ ॥ शुभाशुभकर्मसे ही अपने शरीरमें यह आच्छादन हुआ जानो क्या पिता क्या पुत्र क्या माता क्या स्त्री क्या आत्मीय॥ १५ ॥क्या अपना कोई कुछ नहीं है तुम इनका बहुत मान नहीं करना जो पुरुष मूढ़चित्त हैं वही दुःखको दुःखोपशमका हेतु और भोगोंको सुखका कारण समझते हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष अविद्यासे अन्धे हैं वही मोहा च्छन्न चित्त हैं, वह उस दुःखको ही सुख जानते हैं स्त्रीके हँसने में अस्थि दिखाई देती है उसके नेत्रों में वसाकी कलुषता दिखाई देती है ॥ १७ ॥ उसके पी नोन्नत स्तनादि भी घन मांसपिण्डमात्र हैं. उसका रतिस्थान भी वैसाही है. सुतरां रमणी क्या साक्षात् नरकस्वरूप नहीं है ? भूमिमें यान, यानमें देह और उसी देह

में अन्य पुरुष निविष्ट रहता है ॥ १८ ॥ जैसी अपने देहमें ममता है ऐसी तो पृथ्वीमें भी नहीं मानता यही मूढता है. कारण कि, देह पृथ्वीका सूक्ष्म अंश मात्र है ॥ १९ ॥ धर्म अधर्म सत्य अनृत त्यागन करो इन दोनोंके त्यागन करनेके उपरान्त जिससे त्यागन किया जायगा उसे त्यागन करो ॥ २० ॥ जड़ने कहा. इसप्रकार पुत्र दिन दिन जिसप्रकार वृद्धिको प्राप्त होने लगा॥ राजमहिषी मदालसा भी उसीप्रकार खिलानेके बहाने उस निर्मलात्मा पुत्रको आत्मबोध ॥ २१ ॥ देने में प्रवृत्त हुई पुत्र क्रम क्रमसे जिसप्रकार पिताके समीप बल और वृद्धिको प्राप्तहुआ माताके उपदेशसे भी उसीप्रकार आत्मज्ञान लाभ करने लगा ॥ २२ ॥ जननीके समीप जन्मसे आत्मज्ञानविषयमें उपदेशको प्राप्त होकर ज्ञानोदय और ममता दूर होनेसे कुमार गार्हस्थ्य धर्ममें एकबार ही स्पृहारहित होगये ॥ २३ ॥

ममत्वमुर्व्यांनतथायथास्वेदेहेतिमात्रंचविमूढतैषा ॥१९॥ त्यजधर्ममधर्मंचउभेसत्यानृतेत्यज ॥ उभेसत्यानृतेत्यक्त्वायेनत्यजसितत्त्यज ॥२०॥ वर्धमानंसुतंसातुराजपत्नीदिनेदिने ॥ तमुल्लापादिनाबोधमनयन्निर्मलात्मकम्॥२१॥ यथायथाबलंलेभेयथालेभेमतिंपितः॥तथातथात्मबोधंचसोवापन्मातृभाषितैः॥२२॥ इत्थंतयासतनयोजन्मप्रभृतिबोधितः ॥ चकारनमतिंप्राज्ञोगार्हस्थ्यंप्रतिनिर्ममः ॥२३॥ द्वितीयोस्याःसुतोजज्ञेतस्यनामाकरोत्पिता ॥ सुबाहुरयमित्युक्तेसा जहासमदालसा ॥ २४ ॥ तमप्येवंयथापूर्वंबालमुल्लापवादिनी ॥ प्राहबाल्यात्सचप्रापतथाबोधंमहामतिः ॥ २५ ॥ तृतीयंतनयंजातंतंराजाशत्रुमर्दनम् ॥ यदाहतेनसासुभ्रूर्जहासातिचिरंपुनः ॥२६॥ तथैवसोपितन्वंग्याबालत्वादेवबोधितः ॥ क्रियाश्चकारनिष्कामानंकिंचित्फलकारणम् ॥ २७ ॥ चतुर्थस्यसुतस्यार्थंचिकीर्षुर्नामभूपतिः ॥ ददर्शतांशुभाचारामीषद्धासांमदालसाम् ॥२८॥ तामाहराजाहसंतींकिंचित्कौतूहलान्वितः ॥ क्रियमाणेऽसकृन्नाम्निकथ्यतांहास्यकारणम् ॥ २९ ॥

कुछ काल पीछे मदालसाके गर्भसे दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, पिताने इस पुत्रका नाम "सुबाहु" रक्खा. उस समय भी मदालसा हँसी ॥ २४ ॥ वह उस पुत्रको भी बाल्यावस्थासे पूर्वोक्तनियमानुसार आत्मबोधप्रदान करने लगी. इस कारण दूसरे पुत्रका मन भी वैसाही ज्ञानलाभ करके विरक्त होगया ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त तीसरे पुत्रके उत्पन्न होनेपर नरपतिने उसका नाम "शत्रुमर्दन" रक्खा. पुत्रका नाम सुनकर सुभ्रू मदालसा बहुत समयतक हँसती रही ॥ २६ ॥ कृशाङ्गी मदालसा इस पुत्रको भी बाल्यकालसे पूर्ववत् आत्मज्ञान प्रदान करने लगी, तब यह कुमारभी निष्काम और क्रियाहीन हो गया ॥२७ ॥ अन्तमें चौथे पुत्रके उत्पन्न होने पर राजाने उसके नामकरणमें उत्सुक हो मदालसाकी ओर देखा, मदालसा कुछेक हँसी ॥ २८ ॥ तब राजाने यह देख कौतूहलके वश होकर कहा पुत्र उत्पन्न

होनेके पीछे मेरे नामकरणमें समुद्यत होतेही तुम हँसती हो इसका क्या कारण है ? ॥ २९ ॥ मैंने पुत्रोंका जो विक्रान्त सुबाहु और शत्रुमर्दन नाम रक्खा है मेरे विचारसे यह नाम सब प्रकार युक्तिसंगत हुए हैं ॥ ३० ॥ क्योंकि क्षत्रियोंका शौर्य और दर्प संयुक्त नाम रखना उपयुक्त है, जो हो ! हे भद्रे ! यदि यह तीनों नाम तुम्हारे विचारमें उत्तम न हो ॥ ३१ ॥ तो तुम स्वयं चौथे पुत्रका नामकरण करो, मदालसाने कहा हे राजन् ! आपकी आज्ञा प्रतिपालन करना मेरा सर्वथा कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥ अत एव आप जिसप्रकार कहते हैं, उसके अनुसार मैं ही चौथे पुत्रका नामकरण करूंगी यह धर्म्मज्ञ पुत्र "अलर्क"* नाम से पृथ्वीतलमें विख्यात होगा ॥ ३३ ॥ आपका यह कनिष्ठ पुत्र महाबुद्धिमान् होगा पुत्र बोला—माताने पुत्रका "अलर्क" यह नामकरण किया यह असंबद्ध नाम सुनकर ॥

विक्रांतश्चसुबाहुश्चयथान्यःशत्रुमर्दनः ॥ शोभनानीतिनामानितानिमन्येकृतानिवै ॥ ३० ॥ योग्यानिक्षत्रबंधूनांशौर्यांटोपयुतानिच ॥ अस्त्येतानिवैभद्रेयदितेमनसिस्थितम् ॥ ३१ ॥ तदस्यक्रियतांनामचतुर्थस्यसुतस्यमे ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ मयाज्ञाभवतःकार्यामहाराजयथात्थमाम् ॥ ॥३२॥ तथानामकरिष्यामिचतुर्थस्यसुतस्यते ॥ अलर्कइतिधर्मज्ञः ख्यातिंलोकेगमिष्यति ॥३३॥ कनीयानेषतेपुत्रोमतिमांश्चभविष्यति ॥ पुत्रउवाच ॥ तच्छ्रुत्वानामपुत्रस्यकृतंमात्रामहीपतिः ॥३४॥ अलर्कइत्यसंबद्धंप्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥ भवत्यायदिदंनाममत्पुत्रस्यकृतंशुभे ॥३५॥ किमीदृशमसंबद्धमर्थः कोस्यमदालसे ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ कल्पनेयंमहाराजकृतासाव्यावहारिकी ॥ ३६ ॥ त्वत्कृतानांतथानाम्नांशृणुभूपनिरर्थताम् ॥ वदंतिपुरुषाःप्राज्ञाव्यापिनंपुरुषंसतः ॥ ३७ ॥ क्रांतिश्चगतिरुद्दिष्टादेशाद्देशांतरंतुया ॥ सर्वगोनप्रयातीहव्यापीदेहेश्वरोयतः ॥ ३८ ॥ ततोविक्रांतसंज्ञेयंमताममनिरर्थिका ॥ सुबाहुरितियासंज्ञाकृतान्यस्यसुतस्यते ॥ ३९ ॥ निरर्थासाप्यमूर्त्तस्यपुरुषस्यमहीपते ॥ पुत्रस्ययत्कृतंनामतृतीयस्यारिमर्दनः ॥ ४० ॥

॥ ३४ ॥ महीपतिने हँसते हँसते कहा हे कल्याणी ! तुमने मेरे पुत्रका जो नामकरण किया ॥ ३५ ॥ यह अत्यन्त असंबद्ध है. हे मदालसे ! इसका क्या अर्थ है ! मदालसा बोली, हे महाराज ! नामकरण लोकाचार और कल्पना मात्र है ॥ ३६ ॥ हे भूप ! " नाम रखना होगा " यह समझकर एकनाम रख लिया आपने जो सब नाम रक्खे हैं, उनका भी किसी प्रकार अर्थ नहीं है. मुनिये—जो पुरुष पण्डित हैं, वह आत्माको सर्वव्यापी कहते हैं ॥ ३७ ॥ एक देशसे अन्य देशकी गतिकोही क्रान्ति कहते हैं आत्मा सर्वगत सर्वव्यापी और देहका ईश्वर है सुतरां उसकी गति संभव नहीं है॥ ३८॥इस कारणही मेरे विचारमें विक्रान्त नामका कोई अर्थ नहीं है । हे महीपते ! आत्मा सबप्रकार मूर्त्तिहीन है अतएव आपने जो दूसरे पुत्रका सुबाहु नामकरण किया है ॥ ३९ ॥ उसकाभी किसी प्रकार अर्थ

न हो सकताहै तीसरे पुत्रका जो अरिमर्दन नाम रक्खाहै ॥ ४० ॥ मेरे विचारमें वहभी निरर्थक है उसका कारण सुनिये एक मात्र आत्मा समस्त शरीरोंमें विराजमान रहता है ॥ ४१ ॥ सुतरां उसका शत्रु वा मित्र कौन सम्भावना कर सकताहै भूतके द्वाराही भूतगण मर्दित होते हैं जो मूर्त्तिहीन है उसका फिर मर्दन किस प्रकार संभव हो सकता है ? ॥ ४२ ॥ क्रोध इत्यादिका पृथक्भाव होनेसे यह कल्पनाभी निरर्थक है अर्थात् आत्मा सब प्रकार दोषरहित है वह किस शत्रुको मर्दन करेगा ? यदि लोकाचारके कारणही इस प्रकार अर्थहीन नामकी कल्पना करी जाती है ॥ ४३ ॥ तो मैंने जो "अलर्क" नाम रक्खा है वह किसप्रकार आपके मतसे अर्थहीन हो सकता है ? महिषीके इसप्रकार साधुवाक्य उच्चारण करनेपर महाबुद्धि महीपतिने ॥ ४४ ॥ सत्यभाषिणी दयितासे कहा तुमने जो जो कहा सब सत्य है अनन्तर सुभ्रू मदालसा चौथे पुत्रकोभी पहिले तीनोंकी समान ॥ ॥ ४५ ॥ आत्मज्ञानकी शिक्षा देनेमें उद्यत हुई तब महीपतिने कहा हे मूढे ! यह

मन्येतच्चाप्यसंबद्धंशृणुवाप्यत्रकारणम् ॥ एकएवशरीरेषुसर्वेषुपुरुषोयदा॥४१॥ तदास्यराजन्कःशत्रुःकोवामित्रमिहेष्यते ॥ भूतैर्भूतानिमर्द्यंतेअमूर्त्तोमर्द्यते कथम् ॥४२॥ क्रोधादीनांपृथग्भावात्कल्पनेयंनिरार्थिका ॥ यदिसंव्यवहारार्थमसन्नामप्रकल्प्यते ॥४३॥ नाम्निकस्मादलर्काख्यैनैरर्थ्यंभवतोमतम् ॥ एवमुक्तस्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः ॥४४॥ तथेत्याहमहाबुद्धिर्दयितांतथ्यवादिनीम् ॥ तंचापिसासुतंसुभ्रूर्यथापूर्वसुतांस्तथा ॥४५॥ प्राहावबोधजननंतामुवाच सपार्थिवः ॥ करोषिकिमिदंमूढेममाभावायसंततेः॥४६॥ दुष्टावबोधदानेनयथापूर्वंसुतेषुमे ॥ यदितेमत्प्रियंकार्यमनुग्राह्यंवचोमम ॥४७॥ तदेनंतनयंमार्गेप्रवृत्तं सन्नियोजय ॥ कर्ममार्गःसमुच्छेदंनैवदेविगमिष्यति॥४८॥ पितृपिण्डनिवृत्तिश्चनैवसाध्विभविष्यति ॥ पितरोदेवलोकस्थास्तथातिर्यक्त्वमागताः ॥ ४९ ॥ तद्वन्मनुष्यतांयाताभूतवर्गेषुयेस्थिताः ॥ सपुण्यानसपुण्यांश्चक्षुत्क्षामांस्तृट्परिप्लुतान् ॥ ५० ॥ पिंडोदकप्रदानेननरःकर्मण्यवस्थितः ॥ सदाप्याययते सुभ्रूस्तद्वद्देवातिथीनपि ॥ ५१ ॥

क्या करती है मेरी सन्तानका अभाव करती है ॥ ४६ ॥ इसप्रकार दूषणीय आत्मज्ञान देकर पहिले पुत्रोंका जिसप्रकार अमंगल विधान किया है इस पुत्रको भी क्या वैसाही करेगी ? मेरा प्रिय अनुष्ठान करना यदि तुम कर्त्तव्य समझती हो और मेरा वचन प्रतिपालन करना यदि उचित समझती हो ॥ ४७ ॥ तो इस पुत्रको प्रवृत्तिमार्ग में नियोजित करो. हे देवी ! पुत्रको कर्ममार्गमें प्रवृत्त करनेसे कर्ममार्ग नष्ट नहीं होगा ॥ ४८ ॥ हे साध्वी ! तो पिण्डके लुप्त होनेकी भी सम्भावना नहीं है पितृगण शुभाशुभकर्मवश सुरलोकमें वास तिर्यग्योनि सम्भोग ॥ ४९ ॥ नरत्वप्राप्ति और दूसरी योनियोंमें संक्रमणपूर्वक भूख प्याससे अत्यन्त कातर और क्षीण होने पर ॥ ५० ॥ मनुष्य कर्ममार्गमें अवस्थित होकर पिण्डोदक समर्पण कर सदा उनका और उन्हींके अनुसार देवता और अतिथिगणोंका सम्यक् प्रीतिविधान

करते हैं ॥ वरन क्या देवता क्या मनुष्य क्या पितृगण क्या प्रेत क्या भूत क्या गुह्यक क्या पक्षी क्या कृमि कीट सर्वही मनुष्यको आश्रय करके जीवका निर्वाह कहते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अतएव हेतन्वङ्गी ! क्षत्रियोंको जो कर्त्तव्य है और जो ऐहिक पारलौकिक फललाभार्थ उचित है मेरे इस पुत्रको वैसीही शिक्षा दो ॥ ५३ ॥ वरनारी मदालसाने पतिका यह वचन सुनकर "अलर्क" नामक पुत्रसे खिलानेके बहाने कहा ॥ ५४ ॥ हे पुत्र ! वर्द्धित होओ मित्रोंके उपकारार्थ और शत्रुकुलके विनाशार्थ कर्मानुष्ठान द्वारा मेरे पतिका अन्तर आनन्दित करो ॥ ५५ ॥ हे पुत्र ! तुम धन्य हो क्योंकि तुम निःशत्रु होकर बहुतकाल पर्यन्त वसुमती (पृथ्वी) का पालन करो तुम्हारे पालन गुणसे सम्पूर्ण लोकोंको सुखसंचार होगा तो परम धर्मसंचयके कारण अमरत्वलाभ करसकोगे ॥ ५६ ॥ तुम प्रति पर्वके दिन ब्राह्मणोंका तृप्ति

देवैर्मनुष्यैःपितृभिःप्रेतैर्भूतैःसगुह्यकैः ॥ वयोभिःकृमिभिःकीटैर्नरएवोपजीव्यते ॥ ५२ ॥ तस्मात्तन्वंगिमेपुत्रंयत्कार्यंक्षत्रयोनिभिः ॥ ऐहिकामुष्मिकायालंतत्कर्मप्रतिपादय ॥५३॥ तेनैवमुक्तासासाध्वीवरनारीमदालसा ॥ अलर्कनामतनयंप्रोवाचोल्लापवादिनी ॥५४॥ पुत्रवर्द्धस्वमेभर्त्तुर्मनोनंदयकर्मभिः॥ ऐहिकामुष्मिकफलंतत्सम्यक्परिपालय ॥ मित्राणामुपकारायदुर्हृदांनाशनायच ॥५५॥ धन्योसिरेयोवसुधामशत्रुरेकश्चिरंपालयितासिपुत्र ॥ तत्पालनादिंद्रसमोपभोग्यंधर्म्मफलंप्राप्स्यसिचामरत्वम् ॥ ५६ ॥ धरामरान्पर्वसुतर्पयेथाःसमीहितंबंधुषुपूरयेथाः ॥ हितंपरस्मैहृदिचिंतयेथामनःपरस्त्रीषुनिवर्तयेथाः ॥५७॥ सदामुरारिंहृदिचिंतयेथास्तद्ध्यानतोंतःषडरीञ्जयेथाः ॥ मायांप्रबोधेननिवारयेथाह्यनित्यतामेवविचिंतयेथाः ॥५८॥ अर्थागमायक्षितिपाञ्जयेथायशोर्ज्जनायार्थमपिव्ययेथाः ॥ परापवादश्रवणाद्बिभीथाविपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ॥५९॥ यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमन्नैर्द्विजान्प्रीणयसंश्रितांश्च ॥ स्त्रियश्चकामैरतुलैश्चिरायुद्धैश्चारींस्तोषयितासिवीर ॥ ६० ॥ बालोमनोनंदयबांधवानांगुरोस्तथाज्ञाकरणैःकुमारः ॥ स्त्रीणांयुवासत्कुलभूषणानांवृद्धोवनेवत्सवनेचराणाम् ॥६१॥

विधान करो बन्धुवर्गकी अभिलाषा पूर्ण करो हृदयमें पराये हितके साधनकी इच्छाकरो और पराई स्त्रीमें मन नहीं लगाओ ॥ ५७ ॥ सदा मुरारीको हृदयमें ध्यान करो और उनके ध्यानसे अन्तःकरणके कामादि छै शत्रुओंको जीतो ज्ञानसे मायाको निवारणकरो जगत्की अनित्यताको विचार करते रहो ॥ ५८ ॥ अर्थके प्राप्त होनेमें पांच वस्तुओंको जय करना और यश प्राप्तिके निमित्त व्ययकरो पराई निन्दा सुननेसे डरो जनोंको विपत्तिके सागरसे उद्धार करो ॥ ५९ ॥ अनेक प्रकारके यज्ञानुष्ठान द्वारा देवताओंका एवं निरन्तर दान देनेसे ब्राह्मण और आश्रित जनोंको प्रसन्न करो. हे वीर ! नाना प्रकारके अनुपमभोगद्वारा स्त्रीगण और संग्रामद्वारा शत्रुओंका सन्तोष साधन करोगे ॥ ६० ॥ तुम बालकपनमें बान्धवोंका, कौमारमें आज्ञापालनद्वारा पिता माताका यौवनमें सत्कुलभूषण नारीका और बुढ़ापेमें वनवासी होकर

अवश्य जानना चाहिये ॥ ८ ॥ क्या मित्र क्या आप्त क्या बन्धु किसीका विश्वास करना राजाको उचित नहीं है किन्तु कार्यवश समयान्तरमें शत्रुका भी विश्वास करना चाहिये ॥ ९ ॥ नरपतिको कामके वशीभूत न होकर स्थानवृद्धि और क्षय जानना उचित है और वह सन्धि विग्रहादि छै गुणोंमें गुणवान् हो ॥ ॥ १० ॥ प्रथम तो आपको, फिर अमात्यगणको, फिर भृत्यगण और फिर प्रजाको वशीभूतकरके अन्तमें शत्रुओंसे विरोध करै ॥ ११ ॥ जो प्रथम आत्मा इत्यादिको विनार्जीते शत्रुको पराजय करनेकी इच्छा करता है वह अजितात्मा राजा अमात्योंसे विजित होकर शत्रुओंके वशीभूत होता है ॥ १२ ॥ हे पुत्र ! इसी कारण प्रथम कामादि शत्रुओंको जीतना चाहिये उनको जीतनेसे अवश्य ही जय प्राप्त होती है किन्तु कामादिके द्वारा परास्त होनेपर राजा नाशको प्राप्त हो

विश्वासोनतुकर्तव्योराज्ञामित्राप्तबंधुषु ॥ कार्ययोगादमित्रेषुविश्वसीतनराधिपः ॥ ९ ॥ स्थानवृद्धिक्षयज्ञेनषाड्गुण्यविदितात्मना ॥ भवितव्यंनरेन्द्रेणनकामवशवर्तिना ॥ १० ॥ प्रागात्ममंत्रिणश्चैवततोभृत्यामहीभृता ॥ ज्ञेयाश्चानंतरंपौराविरुध्येततततोरिभिः ॥ ११ ॥ यस्त्वेतानविजित्यैववैरिणोविजिगीषते ॥सोजितात्माजितामात्यःशत्रुवर्गेणबाध्यते ॥ १२ ॥ तस्मात्कामादयःपूर्वंजेयाःपुत्रमहीभृता ॥ तज्जयेहिजयोराज्ञोराजानश्यतितैर्जितः ॥ १३ ॥ कामःक्रोधश्चलोभश्चमदोमानस्तथैवच ॥ हर्षश्चशत्रवोह्येतेनाशायकुमहीभृताम् ॥ १४ ॥ कामप्रसक्तमात्मानंस्मृत्वापांडुंनिपातितम् ॥ निवर्तयेत्तथाक्रोधादनुह्लादंहतात्मजम् ॥ १५॥ हतमैलंतथालोभान्मदाद्वेनंद्विजैर्हतम् ॥ मानादनायुषःपुत्रंहतंहर्षात्पुरंजयम् ॥ १६ ॥ एभिर्जितैर्जितंसर्वंमरुत्तेनमहात्मना ॥ स्मृत्वाविवर्जयेदेतान्षड्दोषांश्चमहीपतिः ॥ १७ ॥

जाता है ॥ १३ ॥ काम क्रोध लोभ मद मान और हर्ष यही शत्रु और यही राजाके विनाशके कारण हैं ॥ १४ ॥ पांडु राजा कामके वश होकरही नष्ट हुए हैं, अनुह्लादको क्रोधके वश होकरही पुत्रधनसे वंचित होना पड़ाहै ॥ १५ ॥ लोभके वश होकरही ऐल विनाशको प्राप्त हुए हैं. मदके कारणही वेन राजाको ब्राह्मणोंके द्वारा निहत होना पड़ा है. अनायु पुत्र वाली अभिमानके कारणही निपतित हुए हैं और परंजयको हर्षके वश होकरही मरना पड़ा है ॥ १६ ॥ किन्तु महात्मा राजा मरुत्तने इन समस्त शत्रुओंको पराजयकरके अखिल संसारको जीता था नरपति इन सबको स्मरण करके समस्त दोषोंको

वनचरोंकी प्रीति साधन करोगे॥६१॥हे वत्स ! तुम राज्यपदमें प्रतिष्ठित होकर सुहृद्गणोंका आनन्द सम्पादन करोगे साधुओंकी रक्षा करके यज्ञानुष्ठान एवं गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षा विधानार्थ समरमें दुष्ट और शत्रुओंका विनाश करके परलोकमें प्रस्थान करोगे॥६२॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायांत्रयोविंशो ध्याय॥२३॥पुत्रने कहा जननी मदालसा इसप्रकार खिलानेके मिष जब नित्य उपदेश देनेमें उद्यत हुई तब बालक अलर्क बुद्धि और अवस्था सहित बढ़नेलगा॥१॥ क्रमानुसार कौमार अवस्था प्राप्त होनेपर महाबुद्धि ऋतध्वजनन्दन अलर्कने यज्ञोपवीतको प्राप्त हो मातासे प्रणाम करके कहा ॥ २ ॥ हे अम्ब ! मैं विनयपूर्वक पूंछ ताहूं ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुखके निमित्त मुझको जिसप्रकार कार्यानुष्ठानकरना उचित है वह तुम सब विस्तारसहित कहो ॥ ३ ॥ मेरा धर्म अर्थ और

राज्यंकुर्वन्सुहृदोनंदयेथाःसाधून्रक्षंस्तातयज्ञैर्यजेथाः॥दुष्टान्निघ्नन्वैरिणश्चाजिमध्येगोविप्रार्थेवत्समृत्युंभजेथाः॥६२॥इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेप्रवृत्तिमार्गानुशा सनंनामत्रयोविंशोध्यायः॥२३॥ ॥पुत्रउवाच॥ ॥एवमुल्लाप्यमानस्तुसतुमात्रादिनेदिने॥ ववृधेवयसाबालोबुद्ध्याचालर्कसंज्ञितः॥१॥ सकौमारकमा साद्यऋतध्वजसुतस्तदा॥ कृतोपनयनःप्राज्ञःप्रणिपत्याहमातरम्॥२॥ मयायदंबकर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकायवै॥ सुखायवदतत्सर्वंप्रश्रयावनतस्यमे॥३॥ममा र्थेचैवधर्मार्थंप्रजानांचैवयद्धितम्॥ श्रेयसेयच्चतत्सर्वंप्रजारंजनमादितः॥४॥ ॥मदालसोवाच॥ ॥वत्सराज्याभिषिक्तेनप्रजारंजनमादितः॥ कर्त्तव्यम विरोधेनस्वधर्मश्चमहीभृताम्॥५॥ व्यसनानिपरित्यज्यसत्यमूलहराणिवै॥ आत्मारिपुभ्यःसंरक्ष्योबहिर्मंत्रविनिर्गमात्॥६॥ दुष्टादुष्टांश्चजानीयादमात्यानरि दोषतः॥ अष्टधानाशमाप्नोतिस्वचक्रात्स्यंदनाद्यथा॥७॥तथाराजाप्यसंदिग्धंबहिर्मंत्रविनिर्गमात्॥ चरैश्चरास्तथाशत्रोरन्वेष्टव्याःप्रयत्नतः॥८॥

प्रजाका जिस प्रकार हित हो और प्रजापालनसे मुक्तिकी प्राप्ति हो वह तुम सब यथायोग्य वर्णन करो. मदालसा बोली हे वत्स ! राज्यपदमें अभिषिक्त होकर अपने धर्मके अनुसार प्रजारंजन करनाही नरपतिका प्रथम कर्त्तव्य है ॥ ४॥ ५ ॥सत्यके मूलविनाशक व्यसनोंको त्यागकरके जिससे किया हुआ मंत्र बाहर निकल कर शत्रुगण तिरस्कार न करसके इस प्रकारके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होकर शत्रुओंसे अपनी रक्षा करना परम कर्त्तव्य है॥६॥शत्रुके योगसे अमात्योंकी दुष्टता अदुष्टता जाने अच्छे चक्रवाले रथसे गिरनेसे जैसे आठप्रकारसे आघात होता है ॥ ७ ॥उसी प्रकार राजा मन्त्रणा बाहर निकल जानेपर निःसन्देह क्षयको प्राप्त होता है शत्रुओंके दोषसे अमात्यवर्ग दूषित हुए हैं वा नहीं अर्थात् शत्रुओंने धनादिद्वारा अमात्य वर्गको दूषित किया है वा नहीं यत्नपूर्वक दूतोंके द्वारा राजाको यह

परित्याग करै ॥ १७ ॥ काक कोकिल भ्रमर मृग व्याल मयूर हंस कुक्कुट और लौह नरपति इनके निकटसे चरित शिक्षा ग्रहण करै॥ १८॥ *राजा शत्रुके प्रति उलूक जिस प्रकार कोई आडम्बर न करके शत्रुओंको नष्टकरताहै शत्रुके प्रति ऐसाही व्यवहार करना राजाको कर्त्तव्य है पिपीलिकाके समान यथाकालमें संचयी हो ॥ १९ ॥ अग्निकी चिनगारी और शाल्मली बीजके समान व्यापनशील होना राजाको उचित है वह चन्द्र सूर्यके समान राजनीति प्रयोगपूर्वक पृथ्वीको देखें अर्थात् चन्द्र और सूर्य जिस प्रकार सबके गृहमें किरण विस्तारकरते हैं एवं कभी तीक्ष्ण और कभी मृदु होते हैं इसी प्रकार राजनीति प्रयोग करके उदयशील होना राजाको उचित है ॥ २० ॥ व्यभिचारिणी पद्म शरभ शूलिका गुर्विणीस्तन गोपाङ्गना नरपति इन सबके निकटसे राजा शिक्षा ग्रहण करै अर्थात् बन्धकी व्यभिचारिणी जिस प्रकार पर पुरुषके चित्तको आनन्द देती है राजाकोभी इसी प्रकार प्रजाका चित्त प्रसन्न करना चाहिये. वह पद्मके सदृश सब पुरुषोंका चित्त

काककोकिलभृंगाणांबकव्यालशिखंडिनाम् ॥ हंसकुक्कुटलोहानांशिक्षेतचरितंनृपः ॥ १८ ॥ कौशिकस्यक्रियांकुर्याद्विपक्षेमनुजेश्वरः ॥ चेष्टांपिपीलिकानांचकालेभूपःप्रदर्शयेत् ॥ १९ ॥ ज्ञेयाग्निविस्फुलिंगानांबीजचेष्टाचशाल्मलेः ॥ चंद्रसूर्यस्वरूपंचनीत्यर्थेपृथिवीक्षिता ॥ २० ॥ वंधकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात् ॥ एवंसाम्नाचभेदेनप्रदानेनचपार्थिव ॥२१॥ दंडेनचप्रकुर्वीतनीत्यर्थंपृथिवीक्षिता ॥ प्रज्ञानृपेणवादेयातथाचंडालयोषितः ॥ २२ ॥ शक्रार्कयमसोमानांतद्वद्वायोर्महीपतिः ॥ रूपाणिपंचकुर्वीतमहीपालनकर्मणि ॥ २३॥ यथेंद्रश्चतुरोमासान्वार्योवेणैवभूतलम् ॥ आप्याययेत्तथालोकान्परिचारैर्महीपतिः ॥ २४ ॥

हरण करैं उनको शरभ अष्टापदजीवके समान विक्रम प्रकाश करना चाहिये शूलिकाके समान शत्रुको एकबारही ध्वंसकरैं गर्भिणीके स्तन जिस प्रकार होनेवाली सन्तानका प्रतिपालन करनेके लिये दुग्ध संग्रह कररखते हैं राजाभी इसी प्रकार भविष्यतके लिये संचयशील होनेका यत्न करैं और गोपाङ्गना जिसप्रकार एक मात्र दूधसे नानाप्रकार द्रव्य प्रस्तुत करती है राजाको भी इसी प्रकार कल्पनापटु होना चाहिये ॥ २१ ॥ नीतिपूर्वक दण्डसे पृथ्वीको देखे अर्थात् नीतिपूर्वक दण्डसे अर्थसंग्रहकरै और चाण्डाल स्त्रीसे बुद्धि सीखे कि, वह किसी व्यवहारसे मुख नहीं मोड़ती ॥ २२ ॥ पृथ्वी पालन करना हो तो इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्र और वायु इन पांचों देवताके अनुरूप आचरण करना चाहिये ॥ २३ ॥ अर्थात् इन्द्र जिसप्रकार चार मास वर्षणद्वारा पृथ्वीवासियोंको तृप्त करते हैं, राजाभी इसीप्रकार अर्थादि दानसे सबको प्रसन्न

* इसका तात्पर्य यही है कि, काककी समान आलस्यरहित और सावधान हो कोकिलके समान संचयशील हो मृगके समान सहसा शत्रुके वशीभूत नहो सर्प जिस प्रकार स्वल्प मात्र विषसे बड़े जीवका प्राण ध्वंस करता है इसी प्रकार अल्प बलकी सहायतासे अधिक बलवान् शत्रुके मारनेकी चेष्टा करै मयूरके समानअपनी सम्पत्ति विस्तृती करै हंसके समान गुणग्राही हों कुक्कुट अर्थात् मुरगेके समान यथा समयमें उठें और स्त्रियोंकी विपदसे रक्षा करै एवं लोहेके समान कठिन और बहु कर्म्मसम्पादक होना चाहिये ।

करै ॥ २४ ॥ सूर्य जिसप्रकार किरणोंके द्वारा आठमास जल सोखते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म उपाय से करादि ग्रहण करना महीपतिका कर्त्तव्य है ॥२५ ॥ काल प्राप्त होनेपर यम जिसप्रकार क्या प्रिय क्या द्वेषी सबको ही निगृहीत करते हैं, इसी प्रकार राजाभी क्या प्रिय क्या अप्रिय क्या दुष्ट सर्वत्र समदर्शी हो ॥२६ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके देखनेसे जिसप्रकार समस्त मनुष्य प्रसन्न होते हैं, जिसके शासनमें प्रजा भी उसीप्रकार सुख अनुभव करैं उस राजाका आचरणही यथार्थ चन्द्रमाके अनुरूप है ॥ २७ ॥ वायु जिसप्रकार गुप्तभावसे सर्वभूतों में विचरण करता है राजा भी इसीप्रकार चार द्वारा नगरवासी अमात्य और बांधव इत्यादिके चरित्रादिका खोज करै ॥ २८ ॥ काम लोभ वा अर्थ अथवा अन्य किसी कारणसे जिसका मन आकृष्ट नहीं होता, वही राजा स्वर्गको जाता है ॥ २९ ॥ जो मूढ कुमार्ग में पडे हुए हैं अपने धर्मसे चलायमान होगये हैं, जो उनको अपने धर्मपर लाता है वह राजा स्वर्गको प्राप्त करता है ॥ ३० ॥ हे वत्स! जिस राजाके राज्यमें वर्णधर्म

मासानष्टौयथासूर्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः ॥ सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेनतथाशुल्कादिनानृपः ॥ २५ ॥ यथायमःप्रियद्वेष्यौप्राप्तेकालेनियच्छति ॥ तथाप्रियाप्रिये राजादुष्टादुष्टेसमोभवेत् ॥ २६ ॥ पूर्णेंदुमालोक्ययथाप्रीतिमाञ्जायतेनरः ॥ एवंयत्रप्रजाःसर्वानिर्वृतास्तच्छशिव्रतम् ॥ २७ ॥ मारुतःसर्वभूतेषुनिगूढश्चरते यथा ॥ एवंचरेन्नृपश्चारैःपौरामात्यारिबंधुषु ॥ २८ ॥ नलोभार्थैर्नकामार्थैर्नार्थार्थैर्यस्यमानसम् ॥ पदार्थैःकृष्यतेधर्मात्सराजास्वर्गमृच्छति ॥२९ ॥ उत्पथग्राहिणोमूढान्स्वधर्माच्चलितान्नरान् ॥ यःकरोतिनिजेधर्मेसराजास्वर्गमृच्छति ॥ ३० ॥ वर्णधर्मानसीदंतियस्यराष्ट्रेतथाश्रमाः ॥ राज्ञस्तस्यसुखंतातपरत्रेहचशाश्वतम् ॥ ३१ ॥ एतद्राज्ञःपरंकृत्यंतथैतद्वृद्धिकारणम् ॥ स्वधर्मेस्थापनंनॄणांचाल्यतेनकुबुद्धिभिः ॥ ३२ ॥ पालनेनैवभूतानांकृतकृत्योमहीपतिः ॥ सम्यक्पालयिताभागंधर्मस्याप्नोतिवैयतः ॥ ३३ ॥ एवमाचरतेराजाचातुर्वर्ण्यस्यरक्षणम् ॥ ससुखीविहरत्येषशक्रस्यैतिसलोकताम् ॥३४॥ इ०मा०मदालसोपाख्यानेचतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ तन्मातुर्वचनंश्रुत्वासोलर्कोमातरंपुनः ॥ पप्रच्छवर्णधर्मांश्चधर्मान्येचाश्रमेषुच ॥ १ ॥

वा आश्रमधर्म किसी प्रकारसे नष्ट नहीं होते वह क्या इस लोक क्या परलोक दोनों लोकोंमें ही निरन्तर सुख भोगता है ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान् पुरुषोंकी परामर्शसे सदा कार्य करना और सबको स्वस्वधर्ममें स्थापन करना ही राजाका एकमात्र कार्य है, और यही उसकी सिद्धि लाभका कारण है ॥ ३२ ॥ राजा प्रजाका सम्यक् प्रकार पालन करने पर जिसप्रकार कृतकृत्य होता है, उसीप्रकार उसको धर्मका अंश भी प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो राजा चारों वर्णकी रक्षाके लिये इस प्रकार नियममें स्थित रहता है वह इसलोकमें परमसुखसे विहारकर अन्तमें इन्द्रका सालोक्य प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ पुत्रने कहा—अलर्क जननीके इसप्रकार वचन सुनकर फिर वर्णधर्म और

आश्रमधर्मका विषय पूँछने लगा ॥ १ ॥ अलर्कने कहा—हे महाभागे ! तुमने राजधर्मका तो वर्णन किया किन्तु अब मैं वर्णधर्म और आश्रमधर्म सुनने की इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ मदालसा बोली, हे वत्स ! दान अध्ययन और यज्ञ यह तीन ब्राह्मणके धर्म हैं इनके अतिरिक्त चौथा धर्म और कुछ नहीं है अन्य धर्म उसके पक्षमें आपत्तिमें हैं ॥ ३ ॥ विशुद्धभावसे याजन (यज्ञ कराना) अध्यापन और पवित्र भावसे प्रतिग्रह यह तीन ही ब्राह्मणजातिके जीविकार्थ व्यवसाय जानने ॥ ४ ॥ दान अध्ययन और यज्ञ करना यह तीन क्षत्रियोंके धर्म हैं एवं पृथ्वीकी रक्षा और शस्त्र चलाना यह दो कर्म उनकी जीविका हैं ॥ ५ ॥ वैश्यके भी धर्म तीन हैं—दान अध्ययन और यज्ञ और पशुपालन वाणिज्य एवं कृषि यह तीन उनकी जीविका हैं ॥ ६ ॥ दान यज्ञ उपराक्ते तीनों

अलर्कउवाच ॥ ॥ कथितोयंमहाभागेराज्यतंत्राश्रितस्त्वया ॥ ममधर्मोहमिच्छामिश्रोतुंवर्णाश्रमात्मकम् ॥ २ ॥ मदालसोवाच ॥ दानमध्ययनंयज्ञोब्राह्मणस्यात्रिधोदितः ॥ धर्मोनान्यश्चतुर्थोस्तिधर्मस्तस्यापदंविना ॥३ ॥ याजनाध्यापनेशुद्धेस्तथापुत्रप्रतिग्रहः ॥ एतत्सम्यक्समाख्यातंत्रितयंचास्यजीविका ॥ ॥४ ॥ दानमध्ययनंयज्ञाःक्षत्रियस्याप्ययंत्रिधा ॥धर्मःप्रोक्तःक्षितेरक्षाशस्त्राजीवश्चजीविका ॥५॥ दानमध्ययनंयज्ञोवैश्यस्यापित्रिधैवसः ॥ वाणिज्यंपाशुपाल्यंचकृषिश्चैवास्यजीविका ॥६॥ दानंयज्ञोथशुश्रूषाद्विजातीनांत्रिधामया ॥ व्याख्यातःशूद्रधर्मोपिजीविकाकारुकर्मजा ॥७॥ तद्वद्द्विजातिशुश्रूषापोषणंक्रयविक्रयैः ॥ वर्णधर्मास्त्विमेप्रोक्ताःश्रूयतामाश्रमाश्रयाः ॥ ८॥ स्ववर्णधर्मात्संसिद्धिंनरःप्राप्नोतिनच्युतः ॥ प्रयातिनरकंप्रेत्यप्रतिषिद्धनिषेवणात् ॥ ९॥ यावत्तुनोपनयनंक्रियतेवैद्विजन्मनः ॥ कामचेष्टोक्तिभक्षस्तुतावद्भवतिपुत्रक ॥ १० ॥ कृतोपनयनःसम्यग्ब्रह्मचारीगुरोर्गृहे ॥ वसेतत्रधर्मोस्यकथ्यतेतान्निबोधमे ॥ ॥११॥ स्वाध्यायोथाग्निशुश्रूषास्नानंभिक्षाटनंतथा ॥ गुरोर्निवेद्यतच्चाद्यमनुज्ञातेनसर्वदा ॥ १२ ॥ गुरोःकर्मणिसोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादकः ॥ तेनाहूतःपठेच्चैवतत्परोनान्यमानसः ॥ १३ ॥

वर्णोंकी सेवा यह तीन शूद्रजातिके धर्म हैं एवं कारुकार्य ॥ ७ ॥ विप्रसेवा पशुपोषण और क्रय विक्रय ही उनकी जीविका है यह मैंने सब वर्णोंका धर्म कहा अब आश्रमधर्म सुनो ॥ ८ ॥ स्वस्ववर्णधर्मका पालन करनेसेही सब प्रकार सिद्धिलाभकरते हैं और वर्णधर्मके विरुद्ध आचरण करनेसेही नरकमें जाते हैं ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! जबतक द्विजातिगणका उपनयन संस्कार (जनेऊ) सम्पन्न न हो तबतक वह अपनी इच्छानुसार व्यवहार आलाप और आहारादि करसक्ते हैं ॥ १० ॥ उपनयन होनेपर ब्रह्मचारी रूपसे गुरुके घर वासकर तिस काल इस स्थानमें जिसप्रकार धर्माचरण करै वह कहती हूं सुनो ॥ ११ ॥ स्वाध्याय अग्निशुश्रूषा स्नान भिक्षार्थ भ्रमण प्रथम गुरुको निवेदन करके फिर उनकी आज्ञानुसार आप भोजन करै ॥ १२ ॥ गुरुके कार्यसाधनमें उद्योग, उनका सन्तोष उत्पादन और

गुरुके द्वारा बुलाये जानेपर उनके कार्यमें तत्परता और अनन्यचित्तताके सहित अध्ययन उस ब्रह्मचारीको करना चाहिये ॥ १३ ॥ गुरुदेवके मुखसे एक दो अथवा समस्त वेद पढ़ उनके चरणोंकी वन्दना कर आज्ञा ग्रहणपूर्वक दक्षिणा समर्पण करैं ॥ १४ ॥ फिर गार्हस्थ्य धर्मकी इच्छा हो तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहियें वा अपनी अभिलाषाके अनुसार वानप्रस्थाश्रम वा चतुर्थाश्रम अवलम्बन करै ॥ १५ ॥ या नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर गुरुके घरही वास करसकता है यदि गुरु न हों तो उनके पुत्रके निकट और पुत्रके अभावमें उनके शिष्यके निकट ॥१६॥ सेवापरायण और अभिमानरहित होकर ब्रह्मचर्याश्रममें वास करना चाहिये फिर गृहस्थाश्रमकी इच्छासे गुरुके घरसे लौटकर ॥ १७ ॥ गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होनेपर अपने अनुरूप कन्यासे विवाह करैं कन्याका रोगरहित असमान कुलगोत्र

एकंद्वौसकलान्वापिवेदान्प्राप्यगुरोर्मुखात् ॥ अनुज्ञातोवरांदत्त्वादक्षिणांगुरवेततः ॥ १४ ॥ गार्हस्थ्याश्रमकामस्तुगृहस्थाश्रममावसेत् ॥ वानप्रस्थाश्रमंवापिचतुर्थंवेच्छयात्मनः ॥ १५ ॥ तथैववागुरोर्गेहेद्विजोनिष्ठामवाप्नुयात् ॥ गुरोरभावेतत्पुत्रेतच्छिष्येतत्सुतंविना ॥ १६ ॥ शुश्रूषुर्निरभीमानोब्रह्मचर्याश्रमंवसेत् ॥ उपावृत्तस्ततस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया ॥ १७॥ ततोऽसमानर्षिकुलांतुल्यांभार्यामरोगिणीम् ॥ उद्वहेन्न्यायतोऽव्यंगांगृहस्थाश्रमकारणात् ॥ ॥ १८ ॥ स्वकर्मणाधनंलब्ध्वापितृदेवातिथींस्तथा ॥ सम्यक्संप्रीणयेद्भक्त्यापोषयेच्चाश्रितांस्तथा ॥ १९ ॥ भृत्यात्मजाज्ञामयोथदीनार्थिपतितानपि ॥ यथाशक्त्यान्नदानेनवयांसिपशवस्तथा ॥ २० ॥ एषधर्मोगृहस्थस्यऋतावभिगमस्तथा ॥ पंचयज्ञविधानंतुयथाशक्तिनहापयेत् ॥ २१ ॥ पितृदेवातिथिज्ञातिभुक्तशेषंस्वयं नरः ॥ भुंजीतचसमंभृत्यैर्यथाविभवमात्मनः ॥ २२ ॥ एषतूद्देशतःप्रोक्तोगृहस्थस्याश्रमोमया ॥ वानप्रस्थस्यधर्मंतेकथयाम्यवधार्यताम् ॥ २३ ॥

सम्पन्न और विकलाङ्गसे रहित होना आवश्यक है ॥ १८ ॥ स्वीय कर्मद्वारा न्यायानुसार अर्थ उपार्जित करके भक्तिसहित यथाविधि पितर देवता और अतिथि गणकी तृप्तिविधान और आश्रितजनोंका पोषण करै ॥ १९ ॥ भृत्य पुत्र दीन अन्ध पतित और पशु पक्षियोंको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नदान द्वारा पालन करना चाहिये ॥ २० ॥ ऋतुकालमें स्त्रीगमन और शक्तिके अनुसार पंचयज्ञका अनुष्ठान करै यही गृहस्थका एक मात्र धर्म है ॥ २१ ॥ विभवके अनुसार सादर पितृगण देवतागण अतिथिगण और ज्ञातिगणको अर्पण करके स्वयं भृत्यगणसहित अवशिष्ट भोजन करै ॥ २२ ॥ मैंने यह संक्षेपसे गृहस्थाश्रम धर्म कहा

अब वानप्रस्थ धर्म वर्णन करती हूं एकाग्रचित्तसे सुनो ॥ २३ ॥ बुद्धिमान् पुरुषसन्तान सन्ततिकी पूर्णता अपने देहकी अवनति देखकर आत्मशुद्धिके लिये वानप्रस्थाश्रममें गमनकरै ॥ २४ ॥ वहां वनके फल मूलादि भक्षण तपस्याचरणद्वारा आत्माका उत्कर्ष संपादनकर भूतलमें शयन ब्रह्मचर्यानुष्ठान पितृ देव और अतिथीकी परिचर्या ॥ २५ ॥ होम तीनों सन्ध्याओंमें स्नान जटावल्कल धारण निरन्तर योगाभ्यास और वन्यस्नेहोंका सेवन करै ॥ २६ ॥ इसप्रकार पापशुद्धि के निमित्त और आत्माका उपकार करनेके लिये वानप्रस्थाश्रम आश्रय करना चाहिये इस आश्रमके पीछे भिक्षुनामक चरम आश्रम है ॥ २७ ॥ हे पुत्र! महात्मा धर्मज्ञ पुरुषोंने इस चौथे आश्रमका स्वरूप जिस प्रकार कहा है वह कहती हूं सुनो ॥ २८ ॥ सर्व संग परित्याग ब्रह्मचर्य

अपत्यसंततिंदृष्ट्वाप्राज्ञोदेहस्यचानतिम् ॥ वानप्रस्थाश्रमंगच्छेदात्मनःशुद्धिकारणात् ॥२४॥ तत्रारण्योपभोगश्चतपोभिश्चात्मकर्षणम् ॥ भूमौशय्याब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रियाः ॥ २५ ॥ होमस्त्रिषवणंस्नानंजटावल्कलधारणम्॥मौनादिकरणंचैववन्यस्नेहनिषेवणम् ॥ २६ ॥ इत्येषपापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः ॥ वानप्रस्थाश्रमस्तस्माद्भिक्षोस्तुचरमोपरः ॥ २७॥ चतुर्थस्यस्वरूपंतुश्रूयतामाश्रमस्यमत् ॥ यश्चधर्मोस्यधर्मज्ञैः प्रोक्तस्तातमहात्मभिः ॥ २८ ॥ सर्वसंगपरित्यागोब्रह्मचर्यमकोपता ॥ जितेंद्रियत्वमावासेनैकस्मिन्वसतिश्चिरम् ॥२९॥ अनारंभस्तथाहारोभिक्षान्नंचैककालिकम् ॥ आत्मज्ञानावबोधश्चतथाचात्मावलोकनम् ॥३०॥ चतुर्थेत्वाश्रमेधर्मोमयायंतेनिवेदितः ॥ सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणांचमेशृणु ॥३१॥ सत्यंशौचमहिंसाचअनसूयातथाक्षमा ॥ आनृशंस्यमकार्पण्यंसंतोषश्चाष्टमोगुणः ॥३२॥ एतेसंक्षेपतःप्रोक्ताधर्मावर्णाश्रमेषुच ॥ एतेषुनित्यधर्मेषुनित्यंतिष्ठेत्समंततः ॥३३॥ सयातिब्रह्मलोकंहियावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ यश्चोल्लंघ्यस्वकंधर्मंस्ववर्णाश्रमसंज्ञितम् ॥ ३४ ॥

रोषशून्यता इन्द्रियदमन एक स्थानमें बहुत दिनोंतक वास नहीं करना ॥ २९ ॥ कर्म विसर्जन भिक्षालब्ध अन्नका एकवार मात्र भोजन आत्मज्ञानके बोधकी इच्छा और आत्मदर्शन यह समस्तही चतुर्थाश्रमका कर्त्तव्य है ॥ ३० ॥ चतुर्थाश्रममें जिस प्रकार धर्मानुष्ठान करना होता है वह तुमसे कहा अब अन्यान्य वर्ण और आश्रमोंका साधारणतः जो कर्त्तव्य है सो सुनो ॥ ३१ ॥ सत्य शौच अहिंसा अनसूया क्षमा आनृशंस्य अकृपणता और सन्तोष यह आठ गुण सब वर्णाश्रम धर्मका साधारण धर्म कहा गया है ॥ ३२ ॥ मैंने यह तुम्हारे निकट सम्पूर्ण वर्णाश्रमधर्म संक्षेपसे वर्णन किया सबको ही अपने अपने वर्णाश्रम धर्मका प्रतिपालन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ जो पुरुष सदा स्वधर्ममें स्थिति करता है जबतक चौदह इन्द्र का पतन नहीं होता तबतक वह ब्रह्मलोकमें वास करता है जो मनुष्य स्वीय वर्णा

श्रमसंज्ञित स्वधर्म उल्लंघनपूर्वक ॥ ३४ ॥ धर्मान्तरमें प्रवृत्त होता है वह मनुष्य राजाके द्वारा दण्डनीय होता है जो व्यक्ति स्वधर्मविसर्जनपूर्वक पापानुष्ठान करताहै॥ ३५॥ उसको दण्ड न करके उपेक्षा करनेसे नरपतिका इष्टापूर्त्त विनाशको प्राप्त होता है इसी कारण नरपति विशेष यत्नसहित वर्णमात्रकोही निज निज धर्ममें स्थापन करै ॥ ३६ ॥ और इसके विरुद्धाचरणमें प्रवृत्त होनेपर उनको दंड देकर स्वकर्ममें स्थापन करै॥ ३७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५॥ अलर्कने कहा—जो गृहस्थाश्रमी पुरुषका कर्त्तव्य है जिसका अनुष्ठान न करनेसे बन्धन और करनेसे मोक्ष लाभ होता है ॥ १ ॥ जो मनुष्योंके उपकारका हेतु जो वर्जनीय और कर्त्तव्य है मैं वह समस्त विषय पूंछता हूं विस्तारसहित वर्णन करो ॥ २ ॥ मदालसा बोली हे वत्स ! मनुष्य गृहस्थाश्रम अवलम्बन करके इन

नरोन्यथाप्रवर्त्ततसदंडच्योभूभृतोभवेत् ॥ येचस्वधर्मसंत्यागात्पापंकुर्वंतिमानवाः ॥ ३५ ॥ उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्तंप्रयात्यधः ॥ तस्माद्राज्ञाप्रयत्ने नसर्वैवर्णाःस्वधर्मतः ॥ ३६ ॥ प्रवर्त्यन्तेन्यथादंड्याःस्थाप्याश्चैवस्वकर्मसु ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेमदालसानुशासनंनामपंचविंशो ध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ अलर्कउवाच ॥ ॥ यत्कार्यंपुरुषेणेहगार्हस्थ्यमनुवर्त्तता ॥ बन्धश्चस्यादकरणेक्रियायांयस्यचोच्छ्रितिः ॥ १ ॥ उप काराययन्नृणांयच्चवर्ज्यंगृहेसताम् ॥ यथाचक्रियतेतन्मेयथायत्पृच्छतोवद ॥ २ ॥ मदालसोवाच ॥ वत्सगार्हस्थ्यमास्थायनरःसर्वमिदंजगत् ॥ पुष्णातितेनलोकांश्चसजयत्यभिवांछितान् ॥ ३ ॥ पितरोमुनयोदेवाभूतानिमनुजास्तथा ॥ कृमिकीटपतंगाश्चवयांसिपशवोऽसुराः ॥ ४ ॥ गृहस्थ मुपजीवंतिततस्तृप्तिंप्रयांतिच ॥ मुखंचास्यनिरीक्षंतेअपिनोदास्यतीतिवै ॥ ५ ॥ सर्वस्याधारभूतेयंवत्सधेनुस्त्रयीमयी ॥ यस्यांप्रतिष्ठितंविश्वंविश्वहे तुश्चयामता ॥ ६ ॥ ऋक्पृष्ठासौयजुर्मध्यासामवक्त्रशिरोधरा ॥ इष्टापूर्तविषाणाचसाधुसूक्ततनूरुहा ॥ ७ ॥

अखिल जीवोंका पोषण करता है और उसी पुण्यके प्रभावसे समस्त वांछित लोक लाभ करता है ॥ ३ ॥ पितृगण ऋषिगण देवगण भूतगण नरगण कृमि कीट पतंगगण पक्षिगण पशुगण और असुरगण ॥ ४ ॥ यह समस्तही गृहस्थाश्रमीके अवलम्बन करके जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं और उनके ही सहित इनका तृप्ति विधान होता है "गृहस्थ हमको अन्न देगा वा नहीं" यह चिन्ता करके गृहीकेमुखकी ओर देखते हैं ॥ ५ ॥ हे वत्स ! गृहस्थही वेदमयी धेनुरूपमें सबका आधार भूत होकर रहता है अखिल ब्रह्माण्ड इस धेनुमेंही प्रतिष्ठित और यह धेनुही ब्रह्माण्डका कारण है ॥ ६ ॥ ऋग्वेद इस धेनुकी पीठ, यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और

ग्रीवा इष्टापूर्त्त, उसका सींग साधुसूक्त रोम ॥ ७ ॥ शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र एवं वर्ण और आश्रमही इस धेनुकी प्रतिष्ठा है, इस धेनुका क्षय नहीं है. सुतरां समस्त विश्वको अवलम्बनपूर्वक जीवन धारण करनेपरभी उस का क्षय होनेकी आशंका नहीं है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! स्वाहा स्वधाकार वषट्कार और हन्त यह इस धेनुके चार स्तन हैं ॥ ९ ॥ इन चार स्तनोंमें देवगण स्वाहाकार, पितृगण स्वधाकार, ऋषिगण वषट्कार ॥ १० ॥ और मनुष्यगण सदा हन्तकार स्तन पान करते हैं. हे पुत्र! इसप्रकारसे यह त्रयीमयी धेनुही सबकी तृप्ति सम्पादन करती है ॥ ११ ॥ इन चारों स्तनोंको यह चार जाति पान करती हैं जो यथा समय में नियुक्त न किये जांय तो यह धेनु अवमानित होती है ॥ १२ ॥ जिनसे मनुष्य सब देवतादिको सन्तुष्ट करते हैं उस त्रयी की नष्टता साधन करनेसे महापापी होता

शांतिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ॥ आजीव्यमानाजगतांसाऽक्षयानापचीयते ॥ ८ ॥ स्वाहाकारःस्वधाकारोवषट्कारश्चपुत्रक ॥ हंतकारस्तथैवान्यस्त स्याःस्तनचतुष्टयम् ॥ ९ ॥ स्वाहाकारंस्तनंदेवाःपितरश्चस्वधामयम् ॥ मुनयश्चवषट्कारंदेवभूतसुरेतराः ॥ १० ॥ हंतकारंमनुष्याश्चपिबंतिसततंस्तनम् ॥ एवमाप्याययत्येषादेवादीनखिलांस्त्रयी ॥ ११ ॥ एतद्वत्सचतुष्कंतुनरस्तनचतुष्टये ॥ ननियुज्याद्यथाकालंतेनस्युस्तेविमानिताः ॥ १२ ॥ देवादीनखि लान्येषुसंतर्पयतिमानवः ॥ तेषामुच्छेदकर्त्तायःपुरुषोत्यंतपापकृत् ॥ १३ ॥ सतमस्यंधतामिस्रेतामिस्रेचनिमज्जति ॥ यस्त्वेतांमानवोधेनुंस्वैर्वत्सैरमरादिभिः ॥ ॥ १४ ॥ प्रापयत्युचितेकालेसस्वर्गायोपपद्यते ॥ तस्मात्पुत्रमनुष्येणदेवर्षिपितृमानवाः ॥ १५ ॥ भूतानिचानुदिवसंपोष्याणिस्वतनुर्यथा ॥ तस्मात्स्नातःशुचि र्भूत्वादेवर्षिपितृतर्पणम् ॥ १६ ॥ प्रजापतेस्तथैवाद्भिःकालेकुर्यात्समाहितः ॥ सुमनोगंधधूपैश्चदेवानभ्यर्च्यमानवः ॥ १७ ॥ ततोग्नेस्तर्पणंकुर्याद्दद्याच्चबलिमि त्यथ ॥ ब्रह्मणेगृहमध्येतुविश्वेदेवेभ्यएवच ॥ १८ ॥ धन्वंतरिंसमुद्दिश्यप्रागुदीच्यांबलिंक्षिपेत् ॥ प्राच्यांशक्राययाम्यायांयमायबलिमाहरेत् ॥ १९ ॥

है ॥ १३ ॥ अन्धतामिस्र और तामिस्र नामक दोनों प्रकारके नरकोंमें निमग्न होता है. अमर इत्यादि इस धेनुके वत्स हैं जो व्यक्ति यथा समयमें उन वत्सोंको ॥ ॥ १४ ॥ उपरोक्त स्तनपान कराता है सुरपुरमें उसकी गति होती है हे पुत्र ! इसीलिये नित्य स्वीय देहके अनुसार सुरगण, मुनिगण, पितृगण, नरगण ॥ १५ ॥ और भूतगणोंका पोषण करना सबको उचित है इसीकारण स्नानपूर्वक पवित्र होकर सावधान मनसे सुरगण, पितृगण, मुनिगण ॥ १६ ॥ और प्रजापति, जलदान सहित इनका तर्पण करना चाहिये. चन्दन और गन्ध धूपादिद्वारा देवताओंकी पूजा करके ॥ १७ ॥ फिर अग्नितर्पणपूर्वक बलि दे । ब्रह्माको विश्वदेवको ॥ ॥ १८ ॥ और धन्वन्तरिको गृहमध्यमें पूर्व और उत्तर दिशामें उद्देश्य करके बलिप्रदान करैं. इन्द्रको पूर्व दिशामें, यमको दक्षिण दिशामें ॥ १९ ॥

वरुणको पश्चिमदिशामें और सोमको उत्तर दिशामें बलिप्रदान करना चाहिये । घरके द्वारदेशमें धाता और विधाताके उद्देश्यसे बलि देवे ॥ २० ॥ अर्यमाको घरके बहिर्भागमें सब ओरसे बलिप्रदान करे तदनन्तर निशाचर और समस्त भूतके उद्देश्यसे आकाश मार्गमें बलि आहरण करै ॥ २१ ॥ पितरोंको बलि देनेके लिये दक्षिणाभिमुखसे बैठे । अनन्तर गृही तत्पर और एकाग्रचित्त हो ॥ २२ ॥ आचमनके लिये जल ग्रहणकर तत्तत् स्थानमें उस उस देवताके उद्देश्यसे जलदान करै ॥ २३ ॥ गृहस्वामी इसप्रकार से गृहबलि प्रदान करके पवित्र भावसे भूतसमूह की तृप्तिके निमित्त सादर उत्सर्ग विधि समाहित करै ॥ २४ ॥ कुत्ता श्वपच और पक्षी इनके लिये पृथ्वी में बलिप्रदान करै इसको ही वैश्वदेवबलि कहते हैं सायंकाल और प्रातःकालमें यह बलिप्रदान करना चाहिये ॥ २५ ॥ बुद्धिमान् गृही इसप्रकार

प्रतीच्यांवरुणोयाथसामायोत्तरतोबलिम् ॥ दद्याद्धोत्रविधात्रेचबलिंद्वारेगृहस्यच ॥ २० ॥ अर्यम्णेथबहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्चसमंततः ॥ नक्तंचरेभ्योभूतेभ्योबलिमाकाशतोहरेत् ॥ २१ ॥ पितॄणांनिर्वपेच्चैवदक्षिणाभिमुखःस्थितः ॥ गृहस्थस्तत्परोभूत्वासुसमाहितमानसः ॥ २२ ॥ ततस्तोयमुपादायतेषामाचमनायवै ॥ स्थानेषुनिक्षिपेत्प्राज्ञस्तास्ताउद्दिश्यदेवताः ॥ २३ ॥ एवंगृहबलिंकृत्वागृहेगृहमतिःशुचिः ॥ आप्यायनायभूतानांकुर्यादुत्सर्गमादरात् ॥ २४ ॥ श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ वैश्वदेवंहिनामैतत्सायंप्रातरुदाहृतम् ॥ २५ ॥ आचम्यचततःकुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम् ॥ मुहूर्तस्याष्टमंभागमुदीक्ष्योह्यतिथिर्भवेत् ॥ २६ ॥ अतिथिंतत्रसंप्राप्तमन्नाद्येनोदकेनच ॥ संपूजयेद्यथाशक्तिगंधपुष्पादिभिस्तथा ॥ २७ ॥ नमित्रमतिथिंकुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ॥ अज्ञातकुलनामानंतत्कालसमुपस्थितम् ॥ २८ ॥ बुभुक्षुमागतंश्रांतंयाचमानमकिंचनम् ॥ ब्राह्मणंप्राहुरतिथिंसपूज्यःशक्तितोबुधैः ॥ २९ ॥ नपृच्छेद्गोत्रचरणंस्वाध्यायंचापिपंडितः ॥ शोभनाशोभनाकारंतंमन्येतप्रजापतिम् ॥ ३० ॥

वैश्वदेवबलिप्रदानपूर्वक आचमन करके द्वारावलोकन करै. महूर्तके अष्टम भागतक अतिथिकी प्रतीक्षा करै ॥ २६ ॥ अतिथिके आनेपर अपनी शक्तिके अनुसार जल अन्नादि और गन्ध पुष्पादि द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये ॥ २७ ॥ मित्र वा एक ग्रामवासी मनुष्य को अतिथि नहीं करना, जिस पुरुषका कुल नाम ज्ञात न हो जो तत्काल आया हुआ हो ॥ २८ ॥ वास्तविक आहार की अभिलाषासे जिसका आगमन हो जो थका हुआ याचक और जिसके पास कुछ नहीं हो पंडितगण ऐसे ब्राह्मणकोही अतिथि कहते हैं शक्तिके अनुसार ऐसेही अतिथिकी पूजा करनी चाहिये ॥ २९ ॥ बुद्धिमान् गृही अतिथिका गोत्र वेद शाखा

अथवा स्वाध्यायका विषय कुछभी नहीं पूछे अतिथि सुन्दर वा कुरूप जिसप्रकार का क्यों न हो उसको मूर्त्तिमान् प्रजापतिस्वरूप विचारना चाहिये ॥ ३० ॥ नि त्य अवस्थान न करनेके कारणही ऐसे अभ्यागतको अतिथि कहा जाता है. अतिथि की तृप्तिसाधन होनेपर गृही नृयज्ञ (अतिथियज्ञ) के ऋणसे मुक्ति लाभ करता है ॥ ३१ ॥ जो पुरुष अतिथिको विना दिये स्वयं भोजन करता है वह किल्बिष भोजी (पापभोक्ता है) केवल पापभोगी होता है तथा दूसरे जन्म में वह विष्ठा भोजन करता है ॥ ३२ ॥ अतिथि जिसके घरसे निराश होकर लौटता है वह उसका पुण्य लेकर अपना पाप उसे दे जाता है ॥ ३३ ॥ अतिथिको जल वा शाक एवं जो स्वयं भोजन करे वह समर्पण करके शक्तिके अनुसार सादर उसकी पूजा करे ॥ ३४ ॥ नित्य जल और

अनित्यंहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ तस्मिंस्तृप्तेनृयज्ञोत्थादृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ॥ ३१ ॥ तस्यादत्त्वातुयोभुंक्तेस्वयंकिल्बिषभुङ्नरः ॥ सपापंकेवलंभुंक्तेपुरीषंचान्यजन्मनि ॥ ३२ ॥ अतिथिर्यस्यभग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ सदत्त्वादुष्कृतंतस्मैपुण्यमादायगच्छति ॥ ३३ ॥ अप्यं बुशाकदानेनयच्चाप्यश्नातिसस्वयम् ॥ पूजयेतनरःशक्त्यातेनैवातिथिमादरात् ॥ ३४ ॥ कुर्याच्चाहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनच ॥ पितृनुद्दिश्यविप्रांश्चभोजये द्विप्रमेववा ॥ ३५ ॥ अन्नस्याग्रंतदुद्धृत्यब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ भिक्षांचयाचितांदद्यात्परिव्राट्ब्रह्मचारिणाम् ॥ ३६ ॥ ग्रासप्रमाणाभिक्षास्यादग्रंग्रासच तुष्टयम् ॥ अग्रंचतुर्गुणंप्राहुर्हंतकारंद्विजोत्तमाः ॥३७॥ भोजनंहंतकारंवाअग्रंभिक्षामथापिवा ॥ अदत्त्वातुनभोक्तव्यंयथाविभवमात्मनः ॥ ३८ ॥ पूजयित्वा तिथीनिष्टाञ्ज्ञातीन्बंधूंस्तथार्थिनः ॥ विकलान्बालवृद्धांश्चभोजयेच्चातुरांस्तथा ॥ ३९ ॥ वांछतेक्षुत्परीतात्मायच्चान्योन्नमकिंचनः ॥ कुटुंबिनाभोजनीयः स्वसमंविभवेसति ॥ ४० ॥ श्रीमंतंज्ञातिमासाद्ययोज्ञातिरवसीदति ॥ सीदतायत्कृतंतेनतत्पापंससमश्नुते ॥ ४१ ॥

अन्नादिद्वारा श्राद्ध और पितरोंके उद्देश्यसे एक वा बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ३५ ॥ अन्नका अग्रभाग तोड़कर ब्राह्मणको अर्पण करना चाहिये परि व्राजक और ब्रह्मचारीके माँगनेपर उसको भिक्षा दे ॥ ३६ ॥ एक ग्रासको भिक्षाग्रासचतुष्टयको अग्र और अग्रचतुष्टयको हन्तकार कहा जाता है ॥ ३७ ॥ अपने विभवके अनुसार हन्तकार वा अग्र अथवा भिक्षा विना दिये कभी स्वयं भोजन न करे ॥ ३८ ॥ अतिथिसत्कारके पीछे अभीष्ट ज्ञाति बन्धु याचक विकल बालक वृद्ध और आतुर इनको भोजन कराना चाहिये ॥ ३९ ॥ अन्य किसी अकिञ्चन पुरुषके क्षुधार्त होकर प्रार्थना करनेपर उसको भी आहार दे सम्पत्ति होनेपर समर्थ पुरुषको भोजन कराना चाहिये ॥ ४० ॥ जो ज्ञाति श्रीमानके विद्यमान होनेपर दुःखी होती है जो पुरुष अवसन्नावस्थामें जिस पापका अनुष्ठान करता है श्रीमान

ज्ञातिकोभी उस पापके अंशका भागी होना पड़ता है ॥ ४१ ॥ संध्याकालमें भी इसी विधिका अनुष्ठान करै अतिथिके सूर्यास्त कालमें आनेपर शक्तिके अनुसार शयन आसन और भोजन द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४२ ॥ हे तात! इस प्रकार अपने कन्धेपर रक्खा हुआ गार्हस्थ्य भार वहन करनेसे विधातासे देवता पितर महर्षि ॥ ४३ ॥ अतिथि बान्धव एवं पशु पक्षी और सूक्ष्म कीट सबही अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका कल्याण करते हैं ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! महाभाग अत्रि इसके उपलक्षमें स्वयं जो गाथा गान करगये हैं तुम वह गृहस्थाश्रम संज्ञित गाथा सुनो ॥ ४५ ॥ यदि सम्पत्ति हो तो गृही पुरुष देव पितर अतिथि बन्धु ज्ञाति और गुरुकी पूजा करके ॥ ४६ ॥ श्वगण श्वपच और पक्षियोंके उद्देश्यसे भूतलमें अन्नप्रदान करै वैश्वदेव नामक यह बलिकर्म पूर्वाह्णमें और सायंकालमें करना

सायंचैषविधिःकार्यःपूर्वोक्तंतत्रचातिथिम् ॥ पूजयेच्चयथाशक्तिशयनासनभोजनैः ॥ ४२ ॥ एवमुद्वहतस्तातगार्हस्थ्यंभारमास्थितम् ॥ स्कंधेविधातादेवाश्चपितरश्चमहर्षयः ॥ ४३ ॥ श्रेयोभिवर्षिणःसर्वेभवंत्यतिथिबांधवाः ॥ पशुपक्षिमृगास्तृतायेचान्येसूक्ष्मकटिकाः ॥ ४४ ॥ गाथाश्चात्रमहाभागस्वयमत्रिरगायत ॥ ताःशृणुष्वमहाभागगृहस्थाश्रमसंस्थिताः ॥ ४५ ॥ देवान्पितृंश्चातिथींश्चतद्वत्संपूज्यबांधवान् ॥ जामयश्चगुरूंश्चैवगृहस्थोविभवेसति ॥ ४६ ॥ श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ ॥ वैश्व देवंहिनामैतत्कुर्यात्सायंतथादिने ॥ ४७ ॥ मांसमन्नंतथाशाकंगृहेयच्चोपसाधितम् ॥ नचतत्स्वयमश्नीयाद्विधिवद्यन्ननिर्वपेत् ॥ ४८ ॥ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसोपाख्यानेषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ नित्यंनैमित्तिकंचैवानित्यनैमित्तिकंतथा ॥ गृहस्थस्यत्रिधाकर्मतन्निशामयपुत्रक ॥ १ ॥ पंचयज्ञाश्रितंनित्यंयदेतत्कथितंतव ॥ नैमित्तिकंतथाचान्यत्पुत्रजन्माक्रियादिकम् ॥ २ ॥ नित्यनैमित्तिकंज्ञेयंपर्वश्राद्धादिपंडितैः ॥ तत्रनैमित्तिकंवक्ष्येश्राद्धमाभ्युदयंतव ॥ ३ ॥

चाहिये ॥ ४७ ॥ मांस अन्न शाक अथवा घरमें जो कुछ वस्तु विद्यमान हो वह नियमको पूरा किये विना स्वयं भोजन न करै ॥ ४८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ मदालसा बोली कि, हे पुत्र! गृहस्थके कर्त्तव्य कर्म तीन प्रकारके हैं नित्य, नैमित्तिक और नित्यनैमित्तिक इन तीनोंका विषय कहती हूं सुनो ॥ १ ॥ मैं ने जिस पंचयज्ञाश्रित कर्मका विषय वर्णन किया उसकोही नित्य कहते हैं इसके अतिरिक्त पुत्रजन्म क्रियाको नैमित्तिक ॥ २ ॥ और पर्वश्राद्धादिको पंडितगण नित्यनैमित्तिक कर्म कहते हैं तिनमें प्रथम तुम्हारे निकट नैमित्तिक कर्मका विषय वर्णन करती हूं ॥ ३ ॥

पुत्रजन्मके समय मनुष्य जिसप्रकार जातकर्म करते हैं विवाहादिमेंभी क्रमानुसार समानरूपसे वैसेही करैं ॥ ४ ॥ विवाहादि कार्यमें नान्दीमुखनामक प्रसिद्ध पितरोंकी सम्यक् प्रकारसे पूजाकरै उसी समय यजमान सावधान हो पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठकर पितरोंके उद्देश्यसे यव और दधिमिश्रित पिण्डसमर्पण करै. कोई कोई कहते हैं इसमें वैश्वदेव बलिके देनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ५ ॥ ६ ॥ इसमें दो ब्राह्मणोंकी कल्पनापूर्वक प्रदक्षिणाकरके अर्चना करैं यही वृद्धिश्राद्धमें नैमित्तिक कहा गया है इसके अतिरिक्त मृत्युके दिन ॥ ७ ॥ जो एकोद्दिष्टनामक और्ध्वदेहिक नैमित्तिक कार्य सम्पादित होता है वह सुनो—इसमें किसी प्रकारका देव कर्म करना नहीं होता ॥ ८ ॥ तथा आवाहन वा अग्नौकरणभी नहीं है एकमात्र कुश प्रयोगकी ही विधि प्रतिपादित है. उच्छिष्टके निकट प्रेतके उद्देश्यसे

पुत्रजन्मनियत्कार्यंजातकर्मसमंनरैः ॥ विवाहादौचकर्त्तव्यंसर्वंसम्यक्क्रमोदितम् ॥ ४ ॥ पितरश्चात्रसंपूज्याःख्यातानांदीमुखास्तुये ॥ पिंडांश्चदधिसंमिश्रान्दद्याद्यवसमन्वितान् ॥ ५ ॥ उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवायजमानःसमाहितः ॥ वैश्वदेवविहीनंतत्केचिदिच्छंतिमानवाः ॥ ६ ॥ युग्माश्चात्रद्विजाःकार्यास्तेपूज्याश्चप्रदक्षिणम् ॥ एतंनैमित्तिकंवृद्धौतथान्यच्चौर्ध्वदैहिकम् ॥७॥ मृताहनितुकर्तव्यमेकोद्दिष्टंशृणुष्वतत् ॥ दैवहीनंतथैकार्घ्यंतथैवैकपवित्रकम् ॥८॥ आवाहनंनकर्त्तव्यमग्नौकरणवर्जितम् ॥ प्रेतस्यपिंडमेकंचदद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥९॥ तिलोदकंचापसव्यंतन्नामस्मरणान्वितम् ॥ अक्षय्यममुकस्येतिस्थानेविप्रविसर्जने ॥ १० ॥ अभिरम्यतामितिब्रूयाद्ब्रूयुस्तेभिरताःस्मह ॥ प्रतिमासंभवेदेतत्कार्यमावत्सरान्नरैः ॥ ११ ॥ अथसंवत्सरेपूर्णेयदावाक्रियतेनरैः ॥ सपिंडीकरणंकार्यंतस्यापिविधिरुच्यते ॥ १२ ॥ तच्चापिदैवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम् ॥ नैवाग्नौकरणंतत्रतच्चावाहनवर्जितम् ॥ १३ ॥ अपसव्यंचतत्रापिभोजयेदयुजोद्विजान् ॥ विशेषस्तत्रचान्योस्तिप्रतिमासंक्रियाधिकः ॥ १४ ॥

एकमात्र पिण्डप्रदान करै ॥ ९ ॥ और उसका नामस्मरण करके अपसव्य हो तिलसहित जल प्रोक्षण करना चाहिये ॥ उससमय इसप्रकार कहे कि, "अमुकके उद्देश्यसे यह तिलसहित जलप्रदान करताहूं यह अक्षय हो और वह इस तिलोदकद्वारा परमप्रीति अनुभव और प्रदर्शन करैं ॥ १० ॥ तब ब्राह्मण कहैं कि "हमने प्रसन्नता अनुभवकरी" संवत्सरपर्यन्त प्रतिमासमें ही इसीप्रकार अनुष्ठान करै ॥ ११ ॥ फिर संवत्सर काल पूरा होनेपर वा जिस समय उसके करनेकी विधि है उसी समय सपिण्डीकरण करना चाहिये सपिण्डीकरणकी भी विधि कहती हूं सुनो ॥ १२ ॥ यह सपिण्डीकरणभी देवकार्यविहीन अग्नौकरणहीन और आवाहनहीन है, एकमात्र अर्घ्य और कुशप्रदानकी ही इसमें विधि प्रतिपादित है ॥ १३ ॥ दक्षिण दिशामें प्रतिकूल दिशामें जलसहित पिण्डादि पूर्वोक्त विधानसे

अर्पणकरके अयुग्म एक तीन पांचआदि ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये पर्वश्राद्धादि ही नित्यनैमित्तिक कहागया है उसमें विशेष यही है कि, प्रतिमासमें अतिरिक्त कार्य करै ॥ १४ ॥ वहभी कहती हूं एकाग्रचित्त होकर सुनो—हे वत्स ! सतिल गन्धोदकयुक्त चारपात्र स्थापन करै ॥ १५ ॥ तिनमें तीन पितरोंके उद्देश्यसे और अपर एककी प्रेतके उद्देश्यसे कल्पना करनी चाहिये पितरोंके उद्देश्यसे स्थापित तीनों पात्रमें प्रेतपात्र और अर्घ्यप्रसेक करना चाहिये ॥ १६ ॥ फिर "ये समाना" इत्यादिमंत्र जपता हुआ पूर्व कथित प्रकारसे अवशिष्ट कार्य सम्पादन करै स्त्रियोंके उद्देश्यमेंभी इसीप्रकार एकोद्दिष्टकी विधि है ॥ १७ ॥ किन्तु पुत्रके न होनेसे उसका सपिण्डीकरण नहीं होता प्रतिसंवत्सरमें स्त्रीके उद्देश्यसे इसी भाँति नियमानुसार एकोद्दिष्ट करै ॥ १८ ॥ पुरुषके समान स्त्रीकेभी

तंकथ्यमानमेकाग्रोवदंत्यामेनिशामय ॥ तिलगंधोदकैर्युक्तंकुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ॥ १५ ॥ कुर्यात्पितृणांतित्रयमेकंप्रेतस्यपुत्रक ॥ पात्रत्रयेप्रेतपात्रमर्घ्यंचैवप्रसेचयेत् ॥ १६ ॥ येसमानाइतिजपन्पूर्ववच्छेषमाचरेत् ॥ स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम् ॥ १७ ॥ सपिंडीकरणंतासांपुत्राभावेनविद्यते ॥ प्रतिसंवत्सरंकार्यमेकोद्दिष्टंनरैःस्त्रियाः ॥ १८ ॥ मृताहनियथान्यायंनृणांयद्वदिहोदितम् ॥ पुत्राभावेसपिंडास्तुतदभावेसहोदकाः ॥ १९ ॥ मातुःसपिंडायेचस्युर्येन्येमातुःसहोदकाः ॥ कुर्युरेवंविधिंसम्यगपुत्रस्यसुतासुतः ॥ २० ॥ कुर्युर्मातामहायैवंपुत्रिकास्तनयास्तथा ॥ द्व्यामुष्यायणसंज्ञास्तुमातामहपितामहान् ॥ २१ ॥ पूजयेयुर्यथान्यायंश्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि ॥ सर्वाभावेस्त्रियःकुर्युःस्वभर्तॄणाममंत्रकम् ॥२२॥ तदभावेचनृपतिःकारयेत्स्वकुटुंबिना ॥ तज्जातीयैर्नरैःसम्यग्दाहाद्याःसकलाःक्रियाः ॥२३॥ सर्वेषामेववर्णानांबांधवोनृपतिर्यतः ॥ एतास्तेकथितावत्सनित्यानैमित्तिकाःक्रियाः ॥ २४ ॥

मृत्युदिनमें सामर्थ्यके अनुसार एकोद्दिष्ट करना चाहिये पुत्रके न होनेमें सपिण्ड, सपिण्डके अभावमें सहोदर ॥ १९ ॥ और जो माताका सपिण्ड है अथवा समानोदक और जो माताका दौहित्र (दोहता) है वह इस प्रकार कार्यानुष्ठान करै ॥ २० ॥ मातामहके उद्देश्यसे कन्याका पुत्र इस प्रकार कार्य करै इसको ही "द्व्यामुष्यायण" कहते हैं नैमित्तिक श्राद्धद्वारा मातामह और पितामहकी ॥ २१ ॥ विधानानुसार पूजाकरै. सबके अभावमें स्त्रियें अपने अपने पतिका कार्य करैं किन्तु इसमें किसी प्रकारसे किसी मंत्रका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥ यदि स्त्री भी न हो तो राजा मृत पुरुषके आत्मीयगणोंके द्वारा और सजातीय पुरुषोंके द्वारा उसकादाहादि सम्पूर्ण कर्म सम्पादन करै ॥२३॥ क्योंकि राजा सब वर्णोंका बांधव है. हे वत्स ! यह मैंने तुमसे नित्य और नैमित्तिक विषय वर्णन किया ॥ २४ ॥

अब श्राद्धाश्रित अन्य प्रकार नित्य नैमित्तिक क्रियाका विषय सुनो—चन्द्रमा का क्षयात्मक कालही दर्श अर्थात् अमावास्या कहागयाहै, वह दर्शही इस विषयका निमित्त स्वरूप और सदा उसकी नित्यता सूचित करता है, इसकारण ही इसको नित्यनैमित्तिकी क्रिया कहते हैं ॥ २५ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ मदालसा बोली, हे वत्स ! सपिंडीकरणमें और पितृपिंडमें पिताके प्रपितामहका अधिकार नहीं है वह लेपभोजियो (लेपभागी जनों) में गिनने योग्य हैं ॥ ॥ १ ॥ जो उनमें चतुर्थस्थानीय और पुत्रका लेप अन्न भोजी हैं वह संबंधहीन हैं. वह उपभोगमात्रको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ पिता पितामह और प्रपितामह यह तीन जने पिंडसंबन्धी हैं ॥ ३ ॥ पितामहके पितामहसे तीन पुरुष लेप सम्ब

क्रियांश्राद्धाश्रयामन्यांनित्यनैमित्तिकींशृणु ॥ दर्शस्तत्रनिमित्तंवैकालश्चंद्रक्षयात्मकः ॥ नित्यतांनियतःकालस्तस्यसंसूचयत्यथ ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कंडेय पुराणेमदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासनेगार्हस्थ्यकथनेनैमित्तिकादिश्राद्धकल्पोनामसप्तविंशोध्यायः ॥ २७ ॥ मदालसोवाच ॥ सपिंडीकरणादूर्ध्वंपितुर्यःप्रपितामहः ॥ सुतलेपभुजोयातिप्रलुप्तपितृपिंडकः ॥ १ ॥ तेषामन्यश्चतुर्थोयः पुत्रलेपभुजान्नभुक् ॥ सोपिसंबंधतोहीनमुपभोगंप्रपद्यते ॥ २ ॥ पितापितामहश्चैवतथैवप्रपितामहः ॥ पिंडसंबंधिनोह्येतेविज्ञेयाःपुरुषास्त्रयः ॥ ३ ॥ लेपसंबंधिनश्चान्येपितामहपितामहात् ॥ प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषांयजमानश्चसप्तमः ॥ ४ ॥ इत्येषमुनिभिःप्रोक्तःसंबंधःसाप्तपौरुषः ॥यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा ॥५॥ ततोन्येपूर्वजाःस्वर्गेयेचान्येनरकौकसः ॥ येचतिर्यक्त्वमापन्नायेचभूतादिसंस्थिताः ॥ ६ ॥तान्सर्वान्यजमानोवैश्राद्धंकुर्वन्यथाविधि॥ समाप्याययतेवत्सयेनयेनशृणुष्वतत् ॥ ७ ॥ अन्नप्रकिरणंयत्तुमनुष्यैःक्रियतेभुवि ॥ तेनतृप्तिमुपायांतियेपिशाचत्वमागताः ॥ ८ ॥ यदंबुस्नानवस्त्रोत्थंभूमौपततिपुत्रक ॥ तेनयेतरुतांप्राप्तास्तेषांतृप्तिःप्रजायते ॥ ९ ॥ यास्तुगात्रांबुकणिकाःपतंतिधरणीतले ॥ ताभिराप्यायनंतेषांयेदेवत्वंकुलेगताः ॥ १० ॥

न्धी हैं उनमें यजमान सप्तम हैं ॥ ४ ॥ मुनियोंने इसप्रकारसे सात पुरुषका सम्बन्ध स्थिर किया है. यजमानसे ऊपरके पुरुष अनुलेपसम्बन्धी हैं ॥ ५ ॥ स्वर्गवासी पूर्व पुरुषगण और नरकवासी अपरापर सब पुरुष और जो तिर्यग् योनिगत और भूतादिमें स्थित हुए हैं ॥ ६ ॥ यजमान जिस जिस प्रकारके विधानानुसार श्राद्ध करके उनकी तृप्ति साधन करै. हे वत्स ! उसका वर्णन करती हूं सुनो ॥ ७ ॥ मनुष्य पृथ्वीतलमें जो अन्न बखेरते हैं उससे पिशाच योनिप्राप्त पुरुषों की तृप्ति होती है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! स्नानके वस्त्रसे निचोड़ा जो जल पृथ्वीमें गिरता है उससे वृक्षयोनि प्राप्त पुरुषोंकी तृप्ति होती है ॥ ९ ॥ वंशमें जिन्होंने देवत्व

लाभ किया है गात्रसे जो जलकी बूँदें पृथ्वीमें गिरती हैं उनसे वह तृप्त होते हैं ॥ १० ॥ पिण्ड उठानेके समय जो अन्न पृथ्वीमें गिरता है तिर्यग्योनिगत पूर्व पुरुषगण उससे तृप्त होते हैं ॥ ११ ॥ जिन पुरुषोंने कियाके योग्य होकर भी असंस्कृत अवस्था और बाल्यवयसमें दग्ध होकर जीवन परित्याग किया है, विकीर्ण अन्न और बुहारे जलको भोजन करनेसे वह तृप्त होते हैं ॥ १२ ॥ ब्राह्मण भोजन करनेके पीछे आचमनके समयमें जो जल फेंक देते हैं और उनके चरण धोनेके समय जो जल पृथ्वीमें गिरता है, अन्यान्य सब उसको ही पान करके तृप्त होते हैं ॥ १३ ॥ हे वत्स ! जो पिशाचत्वको प्राप्त हुए हैं तथा जो कृमि कीटपनेको प्राप्त हुए हैं जो यजमान उन ब्राह्मणोंके निमित्त ॥ १४ ॥ पवित्र वा अपवित्र जल छोड़ता है, उस उस जलसे वे योन्यन्तरको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ अच्छी प्रकार श्राद्ध करनेसे सम्यक् प्रकार तृप्त होते हैं. जो मनुष्य अन्यायके द्वारा उपार्जित किये धनसे श्राद्ध करता है ॥ १६ ॥ चांडाल और पुल्कसादि योनिगत

उद्धृतेष्वथपिंडेषुयाश्चान्नकणिकाभुवि ॥ ताभिराप्यायनंतेषांयेतिर्यक्त्वंकुलेगताः ॥ ११ ॥ येवादग्धाःकुलेबालाःक्रियायोग्याह्यसंस्कृताः ॥ विपन्नास्तेन्नविकिरसंमार्जनजलाशिनः ॥ १२ ॥ भुक्त्वाचाचामतांयच्चजलंयच्चांघ्रिशोधने ॥ ब्राह्मणानांतथैवान्येतेनतृप्तिंप्रयांतिवै ॥ १३ ॥ पिशाचत्वमनुप्राप्ताःक्रिमिकीटत्वमेववये ॥ एवंयोयजमानस्ययश्चतेषांद्विजन्मनाम् ॥१४॥ कश्चिज्जलान्नविक्षेपःशुचिरुच्छिष्टएववा ॥ तेनतेनकुलेतत्रतत्तद्योन्यंतरंगताः ॥१५॥ प्रयांत्याप्यायनंवत्ससम्यक्छ्राद्धक्रियावताम् ॥ अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धंक्रियतेनरैः ॥ १६ ॥ तृप्यंतेतेनचांडालपुल्कसाद्यासुयोनिषु ॥ एवमाप्यायनंवत्सवहूनामपिबांधवैः ॥ १७ ॥ श्राद्धंकुर्वद्भिरन्नांबुशाकैरपिहिजायते ॥ तस्माच्छ्राद्धंनरोभक्त्याशाकैरपियथाविधि ॥ १८ ॥ कुर्वीतकुर्वतःश्राद्धंकुलेकश्चिन्नसीदति ॥ तस्यकालानहंवक्ष्यनित्यनैमित्तिकात्मकान् ॥ १९ ॥ विधिनायेनचनरैःक्रियतेतन्निबोधमे ॥ कार्यंश्राद्धममावास्यांमासिमास्युडुपक्षये ॥ २० ॥ तथाष्टकास्वप्यवश्यमिष्टकालान्निबोधमे ॥ विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौसूर्येंदुग्रहणेऽयने ॥ २१ ॥

पितर उसके द्वारा तृप्त होते हैं. हे वत्स ! इसप्रकारसे बान्धवगण ॥ १७ ॥ श्राद्धानुष्ठानपूर्वक जो जलबिन्दु और अन्नप्रदान करते हैं, उससे उनके अनेक पितृ पुरुषों की तृप्ति होती है. इसप्रकार भक्तिमान् होकर शाकद्वाराभी यथाविधि श्राद्ध करना चाहिये ॥ १८ ॥ श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे उसके वंशमें हुए किसीको भी अवसन्न होना नहीं पड़ता. हे वत्स ! अब मैं श्राद्धका नित्यनैमित्तिक काल वर्णन करती हूं ॥ १९ ॥ और जिस विधिके अनुसार श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये वह भी कहती हूं. सुनो—प्रति महीने जब चन्द्रमाका क्षय होताहै, उसी अमावास्यामें विधानानुसार श्राद्धकरना उचित है ॥ ॥ २० ॥ इसके अतिरिक्त पौषमासादिकी कृष्णाष्टमीमें भी श्राद्धकरना अवश्यकर्त्तव्यहै. अब श्राद्धका अच्छा अच्छा काल कहती हूं श्रवणकरो—यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण प्राप्त

होजाय तो सूर्य और चन्द्रके ग्रहणकालमें अयनमें ॥ २१ ॥ विषुव समय (विषवती) में रविसंक्रमणमें व्यतीपातमें श्राद्धोपयुक्त वस्तु प्राप्त होनेपर दुःस्वप्न देखनेमें ॥ २२ ॥ जन्म नक्षत्रमें और ग्रहपीडा संघटित होनेपर इच्छापूर्वक श्राद्ध का अनुष्ठान करे. जो पुरुषश्रेष्ठ भावसम्पन्न श्रोत्रिय योगी वेदज्ञ ज्येष्ठ सामगाने वाले ॥ २३ ॥ नाचिकेताप्रणीत तीन उनिषद्के उपासक त्रिमधु त्रिसुपर्ण और षडङ्गवेत्ताहैं ॥ २४ ॥ जो पुरुष दौहित्र ऋत्विक् जामाता भागिनीपुत्र और श्वशुर हैं जो पुरुष पंचाग्निकर्मनिष्ठ और तपःपरायण हैं जो पुरुष मातुल (मामा) ॥ २५ ॥ जो माता पिताका भक्त है जो शिष्ट संबन्धी और बान्धव है ऐसा उत्तम ब्राह्मण ही श्राद्धका उपयुक्त पात्र है ॥ २६ ॥ अवकीर्णी (ब्रह्मचर्यादिरहित) रोगी स्थूलाङ्ग हीनाङ्ग दोविवाहिताके गर्भसे उत्पन्न एकचक्षु कुण्ड

विषुवद्रविसंक्रांतिव्यतीपातेषुपुत्रक॥ श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौतथादुःस्वप्नदर्शने ॥२२॥ जन्मर्क्षग्रहपीडासुश्राद्धंकुर्वीतचेच्छया ॥ विशिष्टःश्रोत्रियोयोगीवेदवि ज्ज्येष्ठसामगः ॥२३॥ त्रिणाचिकेतःश्रुतवान्विहितव्रतकारकः ॥ त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णःषडंगवित् ॥२४॥ दौहित्रऋत्विक्जामातास्वस्रीयःश्वशुरस्तथा॥ पंचाग्निकर्मनिष्ठश्चतपोनिष्ठोथमातुलः ॥ २५ ॥ मातापितृपराश्चैवशिष्यसंबंधिबांधवाः ॥ एतेद्विजोत्तमाःश्राद्धेसमस्ताःकेतनक्षमाः ॥ २६ ॥ अवकीर्णीतथा रोगीन्यूनांगस्त्वधिकांगकः ॥ पौनर्भवस्तथाकाणःकुंडोगोलोथपुत्रक ॥ २७ ॥ मित्रध्रुक्कुनखीकुष्ठीश्यावदंतोनिराकृतिः ॥ अभिशस्तस्तथास्तेयःपिशुनः सोमविक्रयी ॥ २८ ॥ कन्यादूषयितावैद्योगुरुपित्रोस्त्यजोज्झकः ॥ भृतकाध्यापकोमित्रंपरदुष्टापतिस्तथा ॥ २९ ॥ वेदोज्झश्चाग्निसंत्यागीवृषलापत्यदू षितः ॥ तथान्येचविकर्मस्थावर्ज्याःपैत्र्येषुवैद्विजाः ॥ ३० ॥ निमंत्रयेतपूर्वेद्युःपूर्वोक्तान्द्विजसत्तमान् ॥ दैवेनियोगेपित्र्येचतांस्तथैवोपकल्पयेत् ॥ ३१ ॥ तैश्चसंयमिभिर्भाव्यंयश्चश्राद्धंकरिष्यति ॥ श्राद्धंदत्त्वाचभुक्त्वाचमैथुनंयोनुगच्छति ॥ ३२ ॥

(जीवितभर्तृकाका गर्भजात जारजपुत्र) गोलक (पतिके मरनेपर औरसे उत्पन्न कुपुत्र) ॥ २७ ॥ बन्धु द्रोही कुनखी क्लीब कालेदांतवाला निराकृति (हीना कृति) पिताके द्वारा शापित क्रूर सोमविक्रयी (शराब बेंचनेवाला) ॥ २८ ॥ कन्यादूषयिता वेदव्यवसायी गुरु वा पितृत्यागी भृतकाध्यापक (वेतनग्रहणपूर्वक अध्यापनकारी) अमित्र परपूर्वापति (जो नारी पहिले दूसरेकी स्त्री थी उसका स्वामी) ॥२९॥ देवत्यागी अग्नित्यागी शूद्रीपति (बारह वर्षकी अनूढ़ा ऋतुमती स्त्रीका पति) दूषयित और अपरापर गर्हित कर्म्मके अनुष्ठान करनेवाले ब्राह्मण को पितृकर्ममें परित्याग करे ॥ ३० ॥ श्राद्धके पहिले दिन पूर्वकथित ब्राह्मणश्रेष्ठको निमंत्रण करना चाहिये क्या देवकार्य क्या पितृकार्य दोनों कार्योमेंही उसको ब्राह्मणकरना चाहिये ॥३१॥ जो श्राद्धका अनुष्ठान करे उसको समयपूर्वक रहना चाहिये

जो पुरुष श्राद्धकर और श्राद्ध भक्षण करके मैथुन करता है ॥ ३२ ॥ उसके पिता एक महीनेतक उस शुक्रमें शयन करते हैं. जो पुरुष नारी संग करके श्राद्धमें
आहार वा गमन करता है॥ ३३॥ उन दोनोंके पितृपुरुष एकमासतक शुक्र और मूत्रपान करके स्थिति करते हैं इसकारणही बुद्धिमान पुरुष प्रथम पूर्वदिनमें निमन्त्रण
करै ॥ ३४॥ कार्यके दिन ब्राह्मणके न मिलनेपरभी नारीसंगीको कभी ब्राह्मणपदमें नियुक्त न करै. यथासमयमें भिक्षार्थ अभ्यागत संयमी यतीको ॥ ३५ ॥ प्रणामा-
दि द्वारा प्रसन्न करके संयत चित्तसे भोजन करावै शुक्लपक्ष की अपेक्षा कृष्णपक्ष जिसप्रकार पितरोंको प्रिय है ॥ ३६॥ इसीप्रकार पूर्वाह्णकी अपेक्षा अपराह्णही
उनके अधिक सन्तोषका कारण है घर आये हुए ब्राह्मणसे स्वागत पूछ भलीभाँति उसकी अर्चना करके ॥ ३७ ॥ कुश हाथ में लिये उसको आसनपर बैठाले

पितरस्तुतयोर्मासंतस्मिन्रेतसिशेरते ॥ गत्वाचयोषितंश्राद्धेयोभुंक्तेयस्तुगच्छति ॥ ३२ ॥ रेतोमूत्रकृताहारास्तंमासंपितरस्तयोः ॥ तस्मात्तुप्रथमंकार्यं
प्राज्ञेनोपनिमंत्रणम् ॥ ३४ ॥ अप्राप्तौतद्दिनेचापिवर्ज्यायोषित्प्रसंगिनः ॥ भिक्षार्थमागतान्वापिकालेसंयमिनोयतीन् ॥ ३५ ॥ भोजयेत्प्रणिपाताद्यैः
प्रसाद्ययतमानसः ॥ यथैवशुक्लपक्षाद्वैपितॄणामसितःप्रियः ॥ ३६ ॥ तथापराह्णःपूर्वाह्णात्पितॄणामतिरिच्यते ॥ संपूज्यस्वागतेनैतानभ्युपेतान्गृहेद्विजान् ॥
॥ ३७ ॥ पवित्रपाणिराचांतानासनेषूपवेशयेत् ॥ पितॄणामयुजःकामंयुग्मान्दैवेद्विजोत्तमान् ॥ ३८ ॥ एकैकंवापितॄणांचदेवानांचस्वशक्तितः ॥
तथामातामहानांचतुल्यंवावैश्वदैविकम् ॥ ३९ ॥ पृथक्तयोस्तथाचान्येकेचिदिच्छंतिमानवाः ॥ प्राङ्मुखान्दैवसंकल्पान्पित्र्यान्कुर्यादुदङ्मुखान् ॥ ४० ॥
तथामातामहानांचविधिरुक्तोमनीषिभिः ॥ विष्टरार्थंकुशान्दत्त्वासंपूज्यार्घ्यादिनाततः ॥ ४१ ॥ पवित्रकाणिदत्त्वावैतेभ्योनुज्ञामवाप्यच ॥ कुर्यादावाहनं
प्राज्ञोदेवानांमंत्रतोद्विजः ॥ ४२ ॥ यवांभोभिस्ततश्चार्घ्यंदत्त्वावैवैश्वदैविकम् ॥ गंधमाल्यादिधूपंचदत्वासम्यक्सदीपकम् ॥ ४३ ॥ अपसव्यंपितॄणांचसर्वंमे
वोपकल्पयेत् ॥ दर्भांश्चद्विगुणान्दत्त्वातेभ्योनुज्ञामवाप्यच ॥ ४४ ॥

पितृकार्यमें अयुग्म और देवकार्यमें युग्म ब्राह्मण श्रेष्ठकोंही वरण करना चाहिये ॥ ३८ ॥ अथवा अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रतिकर्ममें एक ब्राह्मणको वरण
करै मातामहके पक्षमें भी इसी प्रकार विधि वा वैश्वदेवविधिनिर्दिष्ट है॥ ३९ ॥कोई कोई मनुष्य पृथक् प्रकारसे व्यवस्थाकी इच्छा करते हैं पूर्वमुख होकर देवकार्य एवं
उत्तरमुख होकर पितृकार्य ॥ ४० ॥ और मातामहका कार्य समापन करै. मनीषिगणोंने इसी प्रकार विधि निरूपित करी है इसी समयमें आसनके लिये कुश प्रदान
करै और अर्घ्यादिसे पूजा करै ॥ ४१ ॥ फिर पवित्रकादि अर्पण पूर्वक अभ्यागत ब्राह्मणकी आज्ञासे मंत्रपाठसहित देवताओंको आवाहन करना चाहिये ॥ ४२ ॥
यवसंयुक्त जलद्वारा विश्वेदेवके उद्देश्यसे अर्घ्यप्रदानपूर्वक गन्ध माल्य धूप दीप ॥ ४३ ॥ और जलदान करके दक्षिण दिशामें पितरोंका समस्त कर्म सम्पादन

करै तदनन्तर द्विगुणदर्भ प्रदानपूर्वक उसकी आज्ञाले ॥ ४४ ॥ मन्त्रोच्चारण सहित पितरोंका आवाहन करना चाहिये ॥ हे महाभाग ! इसी समय पितरोंके प्रीति विधानमें निरत होकर अपसव्यहो दक्षिण दिशामें यथार्थ तिलयुक्त अर्घ्यप्रदान करै. इसके पीछे ब्राह्मणोंकी अग्नि कार्य करो इसप्रकार आज्ञा पाय ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अग्निमें विधानानुसार व्यञ्जन और क्षार रहित अन्नकी आहुति देनी चाहिये "अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा" अर्थात् जो कव्य वहन करते हैं उसी अग्निको प्रसन्न करनेके लिये मैं यह अन्न प्रदान करता हूं यह वचन उच्चारण करके प्रथम आहुति दे॥४७॥ फिर "सोमाय वै पितृमते स्वाहा" इसप्रकार वचन उच्चारण सहित दूसरी आहुति देनी चाहिये इसके पीछे "समायप्रेतपतये स्वाहा" यह वचन उच्चारणकरके तीसरी आहुतिदे ॥ ४८ ॥ होमके अन्तमें जो अवशिष्ट रहे वह ब्राह्मणोंके

मंत्रपूर्वंपितृणांचकुर्यादावाहनंबुधः ॥ अपसव्यंतथैवार्घ्यंयथार्थेंचतथातिलैः ॥ ४५ ॥ निष्पादयेन्महाभागपितॄणांप्रीणनेरतः ॥ अग्नौकार्यमनुज्ञातःकुरुष्वे ति ततोद्विजैः ॥ ४६ ॥ जुहुयाद्व्यंजनक्षारवर्जमन्नंयथाविधि ॥ अग्नयेकव्यवाहनायस्वाहेतिप्रथमाहुतिः ॥ ४७ ॥ सोमायवैपितृमतेस्वाहेत्यन्यातथाभ वेत् ॥ यमायप्रेतपतयेस्वहेतित्रितीयाहुतिः ॥ ४८ ॥ हुतावशिष्टंदद्याच्चभाजनेषुद्विजन्मनाम् ॥ भाजनालंभनंकृत्वादत्त्वाचान्नंयथाविधि ॥ ४९ ॥ यथा सुखंजुषध्वंभोरितिवाच्यमनिष्ठुरम् ॥ भुंजीरंश्चततस्तेपिताच्चित्तामौनिनःसुखम् ॥ ५० ॥ यद्यदिष्टतमंतेषांतत्तदन्नमसत्वरम् ॥ अक्रुध्यंश्चनरोदद्यात्संस्त वेनप्रलोभयेत् ॥ ५१ ॥ रक्षोघ्नांश्चजपेन्मंत्रांस्तिलैश्चविकिरेन्महीम् ॥ सिद्धार्थैश्चरक्षार्थंश्राद्धंहिप्रचुरच्छलम् ॥ ५२ ॥ पृष्टैस्तृप्तैश्चतृप्ताःस्थतृप्ताःस्मइ तिवादिभिः ॥ अनुज्ञातोनरस्त्वन्नंविकिरेद्भुविसर्वतः ॥ ५३ ॥

पात्रमें प्रदान करै उसी समय आप यथासुखसे "यह अन्न भोजन कीजिये" मधुर वचनसे यह बात कहै तब ब्राह्मण मौनभावसे तद्गत चित्तहो यथा सुखसहित वह भोजन करैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जो अन्न उनको प्रिय हो क्रोधपरित्यागपूर्वक धीरे धीरे उनको सम्भवानुसार प्रलोभित करके वही प्रदान करना चाहिये ॥ ५१ ॥ रक्षोघ्नमंत्र जपकरके समस्त भूमिमें तिल बखेरे रक्षाके निमित्त सरसोंभी बखेरना चाहिये क्योंकि श्राद्ध स्वतःही अनेक छिद्र पूर्ण है ॥ ५२ ॥ अनन्तर आप पुष्टि तृप्तिजनक अन्न भोजन करके "तृप्तहुए ?" यह वचन उच्चारण करनेपर ब्राह्मणभी "तृप्ताः स्मः" अर्थात् "तृप्तहुए" इसप्रकार कहैं. तब उनकी आज्ञा ग्रहण

कर भूमितलमें सर्वत्र अन्न बखेरना चाहिये ॥ ५३ ॥ और आचमनार्थ विधानानुसार एक एक वार जल प्रदान करे फिर आज्ञा ग्रहणकर संयत वाक्य संयत मन और संयताकारहो ॥ ५४ ॥ तिल सहित अन्नसे पिण्ड बनाय दक्षिण दिशामें पितरोंके उद्देश्यसे कुशाओंके ऊपर उच्छिष्टके निकट अर्पण करै ॥ ५५ ॥ तिससमय सावधान हो पितरोंके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक पितृतीर्थ योगमें उनको जलदान करै ॥ ५६ ॥ यह मातामहके उद्देश्यसे भी इसी विधानानुसार पिण्ड समर्पण करके गंधमाल्यादि समन्वित आचमन प्रदान करै ॥ ५७ ॥ अनन्तर अपनीशक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर उनसे सुस्वधास्तु इत्यादि मंत्र पाठ करावे जब वह प्रसन्न होकर उस मंत्रका पाठ करें तो उसके द्वारा " हे विश्वदेव ! ॥ ५८ ॥ आप संतुष्ट हो आपका श्रेयःसाधन अर्थात्

तद्वदाचमनार्थायदद्यादंभःसकृत्सकृत् ॥ अनुज्ञांचततःप्राप्ययतवाक्कायमानसः ॥ ५४ ॥ सतिलेनततोन्नेनपिंडान्सर्वेणपुत्रक ॥ पितृनुद्दिश्यदर्भेषुदद्यादुच्छिष्टसंनिधौ ॥ ५५ ॥ पितृतीर्थेनतोयंचदद्यात्तेभ्यःसमाहितः ॥ पितॄन्संचिंत्यतद्भक्त्यायजमानोनृपात्मज ॥ ५६ ॥ तद्वन्मातामहानांचदद्यात्पिंडान्यथाविधि ॥ गंधमाल्यादिसंयुक्तान्दद्यादाचमनंततः ॥ ५७ ॥ दत्त्वाचदक्षिणांशक्त्यासुस्वधास्त्वितितान्वदेत् ॥ तैश्चतुष्टैस्तथेत्युक्त्वावाचयेद्वैश्वदैविकान् ॥ ५८ ॥ प्रीयंतामितिभद्रंवोविश्वेदेवाइतीरयेत् ॥ तथेतिचोक्तेतैर्विप्रैःप्रार्थनीयास्तदाशिषः ॥ ५९ ॥ विसर्जयेत्प्रियाण्युक्त्वाप्रणिपत्यचभक्तितः ॥ आद्वारमनुगच्छेच्चआगच्छेच्चानुमोदितः ॥ ६० ॥ ततोनित्यक्रियांकुर्याद्भोजयेच्चतथातिथीन् ॥ नित्याक्रियांपितॄणांचकेचिदिच्छंतिसत्तमाः ॥ ६१ ॥ नपितॄणांतथैवान्येशेषंपूर्ववदाचरेत् ॥ पृथक्पाकेनचेत्यन्येकेचित्पूर्वंचपूर्ववत् ॥६२॥ ततस्तदन्नंभुंजीतसहभृत्यादिभिर्नरः॥एवंकुर्वीतधर्मज्ञःश्राद्धंपित्र्यंसमाहितः ॥६३ ॥

कल्याण हो इत्यादि वैश्वदेविक मंत्रपाठ करावे. जब वह मंत्रका पाठ कर चुकें तब उनके समीप आशीर्वादको प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ५९ ॥ अनन्तर प्रिय वचन कह सबको भक्तिसहित प्रणाम कर बिदादे बिदाके समय द्वारदेश पर्यन्त उनका अनुगमन करना चाहिये, उनके अनुमोदन करनेपर लौट आवे ॥ ६० ॥ अन्तमें नित्य क्रिया करके अतिथिगणोंको भोजन दे कोई कोई पुरुष पितरोंके नित्य क्रिया करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ६१ ॥ कोई कोई इसके विरुद्ध मत प्रकाश करते हैं, परन्तु अवशिष्ट कर्म पूर्ववत् समापन करै. किसी किसीके मतसे पृथक् पाकपूर्वक पितृकार्य करनेकी आवश्यकता नहीं होती और किसीके मतसे पृथक् पाक करना चाहिये॥ ६२ ॥ फिर वह अन्न भृत्यगणके सहित भोजन करै. हे धर्मज्ञ ! इस प्रकारसे अथवा जिसके द्वारा ब्राह्मणोंका सन्तोष हो, उसीप्रकार

सावधान हो पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये दौहित्र कुतप और तिल श्राद्धमें यह तीन पवित्र हों॥६३॥६४॥ और कोपमार्गमें भ्रमण एवं त्वरा यह तीन वर्जित हैं ब्राह्मणश्रेष्ठों ने इसप्रकार निरूपण किया है. हे पुत्र! श्राद्धमें रजत (चाँदी) पात्र श्रेष्ठ है॥६५॥ रौप्य दान वा रौप्य दर्शन करना अवश्य उचित है। इसप्रकार सुना है कि, पितरों ने रौप्य पात्रमें व सुमतीसे स्वधारूपी दूधदोहन कियाथा ॥ ६६ ॥इसीकारण रौप्य पितरोंका अभीष्ट और प्रीतिवर्द्धक है ॥६७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ मदालसा बोली हे पुत्र! अनन्तर पितरों की प्रीति संपादन करनेके लिये भक्ति पूर्वक जो जो आहरण करना चाहिये एवं जो वर्जित ह और जिससे वह प्रसन्न होते हैं, वह कहती हूं सुनो ॥ १ ॥ हविष्यान्नसे वह एक महीने तृप्त रहते हैं. मत्स्य, मांस द्वारा पितामहगण दो महीने तक तृप्त रहते हैं ॥ २ ॥ हरिणका मांस उनको तीन महीने तृप्त रखता है, खरगोशके मांससे चार महीने उनका पोषण हो

यथावाद्द्विजमुख्यानांपरितोषोभिजायते ॥ त्रीणिश्राद्धेपवित्राणिदौहित्रंकुतुपस्तिलाः ॥६४॥ वर्ज्यानिचाहुर्विप्रैश्चकोपोध्वगमनंत्वरा ॥ राजतंचतथापात्रंशस्तं श्राद्धेषुपुत्रक ॥६५॥ रजतस्यतथाकार्यंदर्शनंदानमेववा ॥ राजतेहिस्वधादुग्धापितृभिःश्रूयतेमही ॥ ६६ ॥ तस्मात्पितॄणांरजतमभीष्टंप्रीतिवर्धनम् ॥६७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासनेश्राद्धकल्पोनामाष्टविंशोऽध्यायः ॥२८॥ मदालसोवाच ॥ अतःपरंशृणुष्वेमंपुत्रभक्त्यायदाहृतम् ॥ पितॄणांप्रीतये यद्यद्वर्ज्यंवाप्रीतिकारकम्॥१॥मासंतृप्तिःपितॄणांचहविष्यान्नेनजायते॥ मासद्वयंमत्स्यमांसैस्तृप्तिंयांतिपितामहाः ॥२॥ त्रीन्मासान्हारिणंमांसंविज्ञेयंपितृतृप्तये॥ पुष्णातिचतुरोमासाञ्छशस्यपिशितंपितॄन्॥३॥शाकुनंपंचवैमासान्षण्मासान्सूकरामिषम् ॥ छागलंसप्तवैमासानैणेयंचाष्टमासिकीम् ॥४॥करोतितृप्तिंनववैरुरो मांसंनसंशयः॥ गवयस्यामिषंतृप्तिंकरोतिदशमासिकीम् ॥५॥ तथैकादशमासांस्तुऔरभ्रंपितृतृप्तिदम् ॥ संवत्सरंतथागव्यंपयःपायसमेववा॥६॥वाध्रींणसामिषं लोहंकालशाकंतथामधु ॥ दौहित्रामिषमन्यच्चदत्तमात्मकुलोद्भवैः ॥७॥ अनंतांवैप्रयच्छंतितृप्तिंगौरीसुतस्तथा ॥ पितॄणांनात्रसंदेहोगयाश्राद्धंचपुत्रक ॥८॥

ता है ॥ ३ ॥ पक्षीके मांस द्वारा पांच महीने, सूकरके मांससे छे महीने, वार्द्धींणस ❋ के मांससे सात महीने, ऐण मृगके मांससे आठ महीने ॥ ४ ॥ रुरु मृगके मांससे नौ महीने और गवयके मांससे दश महीने तक पितृगण तृप्ति लाभ करते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥ और भ्रमांस ग्यारह महीने तक पितरोंका तृप्तिप्रद है, गव्य दुग्ध और खीर द्वारा सम्वत्सर तक उनको तृप्ति लाभ होती है ॥ ६ ॥गेंडार–मांस (लोह) काल शाक, मधु, दौहित्रका दिया आमिष वा निजवंशोद्भव अन्य जिस किसी पूरुषका दियाहुआ मांस ॥ ७ ॥ एवं गौरीसुत और गयाश्राद्ध, हे पुत्र! इन सबके द्वारा वह अनन्त तृप्तिलाभ करते

---

१ कुतप–दिनके पंचदश भागका अष्टमांश। ❋ "त्रिपिबन्तु कृत क्लीबं श्वेतं वृद्धमजापतिम् ॥ वार्द्धींणसन्तु तं प्राहुर्मुनयो यज्ञ कर्मणि" ॥ अर्थात् जो श्वेत वर्ण, (नपुंसक क्रिया) और वृद्ध जिस बकरेके जलपान समयमें दोनोंकान और नासिका जलमें डूबती हैं, उसको "वार्द्धींणस" कहते हैं। मुनियोंके मतसे यह श्राद्धादिमें अति प्रशस्त है।

हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ समा, राजश्यामक, पसाईके चावल, नीवार और पौष्कल, यह तीनों धान्य पितरोंको परमप्रसन्नतादायक हैं ॥ ९ ॥ इनके अतिरिक्त यवव्रीहि, गेहूं, तिल, मूँग, सरसों, प्रियंगू कोविदार और निष्पाव, यह सब भी उनके अत्यन्त तृप्तिजनक हैं ॥ १० ॥ और मकई, राजमाष (लोबिया) विप्रूषी और मसूर, श्राद्धकर्ममें यह सब द्रव्य गर्हित कहे गये हैं,अतएव इन सबको श्राद्धकर्ममें त्यागदे ॥ ११ ॥ लहसन, गाजर, प्याज, पिंड मूलक (मूली) करंभ तथा वर्णहीन और रसहीन अन्यान्य वस्तु ॥ १२ ॥ गन्धारिका (कचूर) अलाबु (तुंबी) खारी लवण, लालगोंद और प्रत्यक्ष लवण ॥ १३ ॥ श्राद्धमें यह सब द्रव्य भी वर्जित हैं, वाणीसे गर्हित अर्थात जिस वस्तु का उच्चारण श्रेष्ठ न हो और उत्कोचसे प्राप्त हो, या पतितका आयाहुआ धन

राजश्यामाकश्यामाकौतद्वच्चैवप्रशातिका ॥ नीवाराःपौष्कराश्चैववन्यानिपितृतृप्तये ॥ ९ ॥ यवव्रीहिसगोधूमतिलमुद्गाःससर्षपाः ॥ प्रियंगवःकोद्रवाश्चनिष्पावाश्चातिशोभनाः ॥ १० ॥ वर्ज्यामर्कटकाःश्राद्धेराजमाषास्तथाणवः ॥ विप्रूषिकामसूराश्चश्राद्धकर्मणिगर्हिताः ॥ ११॥ लशुनंगृंजनंचैवपलांडुःपिंडमूलकम् ॥ करंभंयानिचान्यानिहीनानिरसवर्णतः ॥ १२ ॥ गांधारिकमलांबूनिलवणान्यूषराणिच ॥ आरक्तायेचनिर्यासाःप्रत्यक्षलवणानिच ॥ १३॥ वर्जयेत्तानिवैश्राद्धेयच्चावचानशस्यते ॥ यच्चाप्युत्कोचतःप्राप्तंपतिताद्यदुपार्जितम् ॥ १४ ॥ अन्यायकन्याशुल्कोत्थंद्रव्यंचात्रविगर्हितम् ॥ दुर्गंधिफेनिलंचांबुतथैवाल्पतरोदकम् ॥ १५ ॥ नलभेद्यत्रगौस्तृप्तिंनक्तंयच्चाप्युपाहृतम् ॥ यन्नसर्वापचोत्सृष्टंयच्चाभोज्यनिपानजम् ॥ १६ ॥ तद्वर्ज्यंसलिलंतातसदैवपितृकर्मणि ॥ मार्गमाविकमौष्ट्रंचसर्वमेकशफंचयत् ॥ १७॥ माहिषंचामरंचैवधेन्वागोश्चाप्यनिर्दशम् ॥ पित्रर्थंमेप्रयच्छस्वेत्युक्त्वायच्चाप्युपाहृतम् ॥ १८ ॥ वर्जनीयंसदासद्भिस्तत्पयश्राद्धकर्मणिः ॥ वर्ज्याजंतुमतीरूक्षाक्षितिःप्लुष्टातथाग्निना ॥ १९ ॥

॥ १४ ॥ और अन्यायसे आयाहुआ तथा घृणित कन्या शुल्कद्वारा लब्ध द्रव्य अर्थात् कन्यापर लिया हुआ द्रव्य इत्यादिकाभी त्याग करे. दुर्गन्ध पूर्ण और फेनयुक्त जल, तथा अल्प जल ॥ १५ ॥ और जिससे गौकी तृप्ति नहीं हो सकती वा बासी जल या अपेय जल अथवा अभोज्योंके बनाये कूपादिका जल ॥ १६ ॥ हे तात ! ऐसाजलभी पितृकार्यमें सर्वथा त्यागदे। मृग, ऊंट, बकरी और एक खुरवाले जितने पशु हैं यह भी तथा ॥ १७ ॥ भैंसका दूध, चमर गाय (सुरागाय) का दूध, वा ब्यानेके पीछे जिसको दश दिन नहीं बीते हैं ऐसी गायका दूध "मेरे पितृकार्यके लिये प्रदान करो" इसप्रकार कहकर लाया हुआ जो किसीभाँतिका दूध है ॥ १८ ॥ साधु पुरुष यह सब दूध श्राद्धकर्ममें त्याग देते हैं, जो स्थान कीटादिसे पूर्ण रूखा, अग्निसे जलाहुआ ॥ १९ ॥

और दुर्गन्ध-पूर्ण हे तथा अनिष्ट स्थानकी मिट्टी और कुवाक्य कहना श्राद्धकर्ममें त्याग करै और कुलहिंसक तथा कुलका तिरस्कार करने वाले श्राद्धमें वर्जित हैं ॥ २० ॥ नीच कुलवाला, ब्रह्म हत्यारा, रोगी, अन्त्यज (नीच) नग्न और पातकी, यह दृष्टिसे ही श्राद्ध क्रियाको नष्ट कर देते हैं ॥ २१ ॥ नपुंसक, विद्ध, मुरगा, ग्रामसूकर, कुत्ता और राक्षस इनके देखनेसेही श्राद्धहत होजाता है ॥ २२ ॥ इसी कारण गोपनभावसे पृथ्वीमें तिल बखेरै! हे वत्स! इसप्रकार अनुष्ठान करनेसे दोनोंकी रक्षा होती है ॥ २३ ॥ मृतकके पातकवाला वा सूतकवालेसे सम्पर्क करनेवाला अथवा काक सूकरसे स्पर्श कियाहुवा सदा रोगी, पतित और मलिन अर्थात् पातकी पुरुषोंके द्वारा पितामहगणको पुष्टिलाभकी संभावना नहीं है ॥ २४ ॥ श्राद्धमें ऐसे पुरुषको वर्जन करै

अनिष्टादुष्टशब्दोग्रादुर्गंधाश्राद्धकर्मणि ॥ कुलापमानकाःश्राद्धेव्यायुज्यकुलहिंसकाः ॥२०॥ कुलाधमोब्रह्महाचतथावैरोगिणोंत्यजाः ॥ नग्नाःपातकिनश्चैवघ्नं तिदृष्ट्यापितृक्रियाम् ॥ २१ ॥ अपुमानपविद्धश्चकुक्कुटोग्रामसूकरः ॥ श्वाचैवहंतिश्राद्धानियातुधानाश्चदर्शनात् ॥ २२ ॥ तस्मात्सुसंवृतोदद्यात्तिलैश्चवि किरेन्महीम् ॥ एवंरक्षाभवेच्छ्राद्धेकृतातातोभयोरपि ॥ २३ ॥ शावसूतकिसंस्पृष्टंदीर्घरोगिभिरेवच ॥ पतितैर्मलिनैश्चैवपुष्णातिनपितामहान् ॥ २४ ॥ वर्जनी यंतथाश्राद्धेसदोदक्यादिदर्शनम् ॥ चंडशौंडसमाभाषायजमानेनचादरात् ॥ २५ ॥ केशकीटावपन्नंचतथाश्वभिरवेक्षितम् ॥ पूतिपर्युषितंचैववार्ताक्यभिषवां स्तथा ॥ २६ ॥ वर्जनीयाहिवैश्राद्धेतथावस्त्रानिलाहतम् ॥ श्रद्धयापरयादत्तंपितॄणांनामगोत्रतः ॥२७॥ यदाहाराश्वतेजातास्तदाहारत्वमेतितत् ॥ तस्माच्छ्र द्धायुतंपात्रेयच्छत्वंपितृकर्मणि ॥२८॥ तथातच्चैवदातव्यंपितॄणांतृप्तिमिच्छता ॥ योगिनश्चसदाश्राद्धेभोजनीयाविपश्चिता ॥२९॥ योगाधाराहिपितरस्तस्मा त्तान्भोजयेत्सदा ॥ ब्राह्मणानांसहस्रस्ययोगीत्वग्रासनीयदि ॥३०॥ यजमानंचभोक्तृंश्चनौरिवांभसितारयेत् ॥ पितृगाथास्तथैवात्रश्रूयंतेब्रह्मवादिभिः॥३१॥

और रजस्वलाका दर्शन भी उससमय परित्याग करै । यजमान मुंडित समस्त और सुरासक्त पुरुषका स्पर्श यत्नसहित परित्याग करै ॥ २५ ॥ केश और कीट युक्त कुत्तेके द्वारा देखाहुआ, पूतिगन्ध पूर्ण, बासी वैग (वस्त्रकी पवनसे युक्त) द्रव्य श्राद्धमें परित्याग करै । परम श्रद्धासहित पितरोंके नाम और गोत्रानुसार जो कुछ अर्पण कियाजाय ॥ २६ ॥ २७ ॥ वही उनके आहाररूपमें परिणत होता है इसी कारण श्राद्धमें पितरोंका सन्तोषसाधनके लिये पात्रको जिमावै ॥ २८ ॥ श्रद्धावान् होकर समस्त श्रेष्ठवस्तु विधानानुसार समर्पण करै. विद्वान् पुरुष श्राद्धमें सदा योगियोंको भोजन करावे ॥ २९ ॥ क्योंकि पितृगणही योगके एक मात्र आधार हैं, अतएव योगीकी सदा पूजा करनी चाहिये । सहस्र ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एकमात्र योगीको सबसे पहिले भोजन करानेसे ॥ ३० ॥ जलमें नौका जिस

प्रकार आरोहीको उद्धार करती है, इसी प्रकार वह भी यजमान और भोक्ता सबको उद्धार करता है। ब्रह्मवादिगण इसस्थलमें पितृगाथा कीर्त्तन करगये हैं ॥ ॥ ३१ ॥ पूर्वकालमें पितरोंने महीपति ऐलके उद्देश्यसे यह गाथा गाई थी। उन्होंने इसप्रकार कहाथा कि, "हमारे पुत्रोंमें कब ऐसा सर्वोत्तम पुत्र जन्म ग्रहण करेगा" ॥ ३२ ॥ जो योगियोंके भोजनसे बचेहुए अन्नद्वारा पृथ्वीतलमें हमको पिण्ड समर्पण करेगा। अथवा हमारी एक मासकी तृप्तिके लिये गयाश्रममें उत्कृष्ट हविस्वरूप गैंडेका मांस ॥ ३३ ॥ काल शाक, तिलयुक्त खिचडी इन सब वस्तुओंके द्वारा पिंडप्रदान करेगा। वैश्वदेव और सौम्यबलिके विषयमें गैंडेका मांसही परम हवि कहा गया है ॥ ३४ ॥ सींगविहीनगैंडेका मांस प्राप्त होनेपर जबतक सूर्यकी स्थिति रहती है, हम तबतक उसको भोजन करते हैं। त्रयो दशीतिथियुक्त मघानक्षत्रमें विधानानुसार ॥ ३५ ॥ श्राद्ध और दक्षिणायनमें मधु घृतयुक्त पायस (खीर) प्रदान करै। हे पुत्र! इसप्रकार भक्तिसहित एकाग्र

यागीताःपितृभिःपूर्वमैलस्यासन्महीपतेः ॥ कदानःसंततावग्र्यःकस्यचिद्भवितासुतः ॥ ३२ ॥ योयोगिभुक्तशेषान्नैर्भुविपिंडंप्रदास्यति ॥ गयायामथवापिंडंखड्ग मांसंमहाहविः ॥ ३३ ॥ कालशाकंतिलाढ्यंवाकृसरंमासतृप्तये ॥ वैश्वदेव्यंचसौम्यंचखड्गमांसंपरंहविः ॥ ३४ ॥ विषाणवर्ज्यंखड्गास्यामासूर्यान्नाशयामहे ॥ तथावर्षात्रयोदश्यांमघासुचयथाविधि ॥ ३५ ॥ मधुसर्पिःसमायुक्तंपायसंदक्षिणायने ॥ तस्मात्संपूजयेद्भक्त्यास्वपितॄन्यतमानसः ॥ कामानभीप्सन्सकलान्पापा च्चात्मविमोचनम् ॥ ३६ ॥ वसून्रुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः ॥ प्रीणयंतिमनुष्याणांपितरःश्राद्धतर्पिताः ॥ ३७ ॥ आयुःप्रजांधनंविद्यांस्वर्गंमोक्षंसुखानिच ॥ प्रयच्छंतितथाराज्यंपितरःश्राद्धतर्पिताः ॥ ३८ ॥ एतत्तेकथितंपुत्रश्राद्धकर्मयथोदितम् ॥ काम्यानांश्रूयतांवत्सश्राद्धानांतिथिकीर्त्तनम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कंडे यपुराणेऽलर्कानुशासनेश्राद्धकल्पोनामैकोनत्रिंशोध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ प्रतिपद्धनलाभायद्वितीयाद्विपदप्रदा ॥ वरार्थिनीतृतीयातुचतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥ १ ॥

मनसे पूजा करनेपर संपूर्ण कामना पूरी होती है और समस्त पाप दूर होते हैं ॥ श्राद्धमें पितरोंको तृप्त करनेसे वसु, रुद्र, आदित्य, ग्रह, नक्षत्र और तारका सबहीं प्रसन्न होते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ श्राद्धद्वारा पितरोंकी तृप्ति साधन करनेसे वह आयु, प्रज्ञा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य प्रदान करते हैं ॥ ३८ ॥ हे पुत्र! यह मैंने तुमसे शास्त्रविहित श्राद्धविधिका वर्णन किया। हे वत्स! अब काम्यश्राद्धकी तिथि वर्णन करती हूं, सुनो ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ मदालसा बोली हे वत्स! प्रतिपत् तिथिमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे धनलाभ होता है। इसीप्रकार द्वितीयामें सम्पत्तिलाभ, तृतीयामें वरप्राप्ति और चतुर्थीतिथिमें श्राद्ध करनेसे शत्रुका विनाश होता है ॥ १ ॥

पंचमीमें श्राद्ध करनेसे स्त्रीलाभ, षष्ठीमें सर्व जनसमाजमें पूजा, सप्तमीमें गणाधिपत्य और अष्टमीमें श्राद्ध करनेसे अनुत्तम बुद्धिलाभ होता है ॥ २ ॥ नवमी श्राद्ध करनेसे रमणीका लाभ दशमीमें समस्तकामना पूर्ण और एकादशी तिथिमें श्राद्ध करनेसे समस्त वेदमें अभिज्ञतालाभ होता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष द्वादशी तिथिमें पितरोंकी पूजा करता है, उसको जय लाभ, पुत्रलाभ, पशुलाभ, मेधालाभ, बुद्धिलाभ, स्वाधीनतालाभ और पुष्टिलाभ होता है ॥ ४ ॥ जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर त्रयोदशी तिथिमें यथासंभव अन्नद्वारा श्राद्ध सम्पादन करता है उसको दीर्घ परमायु और ऐश्वर्यलाभ होता है इसमें सन्देह नहीं. जिसके पितर यौवनमें मृत्युको प्राप्त हुए हैं अथवा शस्त्राघातसे जीवन परित्याग किया है ॥ ५ ॥ ६ ॥ वह पुरुष उनकी तृप्ति करनेके लिये चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करे.

श्रियंप्राप्नोतिपंचम्यांषष्ठ्यांपूज्योभवेन्नरः ॥ राजाधिपत्यंसप्तम्यामष्टम्यांवृद्धिमुत्तमाम् ॥२॥स्त्रियोनवम्यांप्राप्नोतिदशम्यांपूर्णकामताम् ॥ वेदांस्तथाप्नुयात्सर्वानेकादश्यांक्रियापरः ॥ ३ ॥ द्वादश्यांजयलाभंचप्राप्नोतिपितृपूजकः ॥ प्रजांबुद्धिंपशून्वृद्धिंस्वातंत्र्यंपुष्टिमुत्तमाम् ॥४॥ दीर्घमायुस्तथैश्वर्यंकुर्वाणस्तुत्रयोदशीम् ॥ अवाप्नोतिनसंदेहोश्राद्धंश्रद्धापरोनरः ॥ ५ ॥ यथासंभावितान्नेनश्रद्धासंपत्समन्वितः ॥ विकृत्यापितरोयस्यमृताःशस्त्रेणवाहताः ॥ ६ ॥ तेनकार्यंचतुर्दश्यांतेषांतृप्तिमभीप्सता ॥ श्राद्धंकुर्वन्नमावास्यांयत्नेनपुरुषःशुचिः ॥ ७ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिस्वर्गंचानंत्यमश्नुते ॥ कृत्तिकासुपितृनर्चन्स्वर्गंप्राप्नोतिमानवः ॥८॥ अपत्यकामोरोहिण्यांसौम्येतेजस्वितांलभेत् ॥ शौर्यमार्द्रासुचाप्नोतिक्षेत्रादिचपुनर्वसौ ॥ ९ ॥ पुष्टिंपुष्येसदाभ्यर्च्यआश्लेषासुवरान्सुतान् ॥ मघासुस्वजनश्रैष्ठ्यंचसौभाग्यंफल्गुनीषुच ॥ १० ॥ प्रदानशीलोभवतिसापत्यश्चोत्तरासुवै ॥ प्रयातिश्रेष्ठतांसत्सुहस्तेश्राद्धप्रदोनरः ॥ ११ ॥ रूपयुक्तस्तुचित्रासुतथापत्यान्यवाप्नुयात् ॥ वाणिज्यलाभदास्वातिर्विशाखापुत्रकामदा ॥ १२ ॥

पवित्र होकर यत्नसहित अमावास्यामें श्राद्ध करनेसे ॥७॥ संपूर्ण परिपूर्ण कामना होती हैं और अक्षय स्वर्गलाभ होता है जो पुरुष कृत्तिकानक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करता है उसको स्वर्गभोग होता है ॥ ८ ॥ जो पुरुष अपत्य (सन्तान) की कामना करता है, उसको रोहिणीनक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये. मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे ओजस्विता, आर्द्रामें शौर्य और पुनर्वसुनक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे क्षेत्रादि लाभ होता है ॥ ९ ॥ पुष्य नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे पुष्टिलाभ, आश्लेषामें श्रेष्ठ पुत्र मघामें स्वजनोंमें प्राधान्य और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे सौभाग्यलाभ होता है ॥ १० ॥ उत्तराफाल्गुनीमें श्राद्ध करनेसे दानशील और पुत्रवान् होजाता है और जो पुरुष हस्तनक्षत्रमें श्राद्धका अनुष्ठान करता है उसको निःसन्देह श्रेष्ठता प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ चित्रानक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे रूप और अपत्यलाभ होता है,

है, स्वातीमें वाणिज्य, विशाखामें पुत्र और कामनासिद्धि ॥ १२ ॥ अनुराधामें चक्रवर्त्तित्व, ज्येष्ठामें आधिपत्य, मूलमें आरोग्य ॥ १३ ॥ पूर्वाषाढामें यशःप्राप्ति, उत्तराषाढामें शोकराहित्य, श्रवणमें शुभलोकप्राप्ति और धनिष्ठा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे बहुत धनलाभ होता है॥ १४ ॥ अभिजित् नक्षत्रमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे समस्त वेदों में अभिज्ञ हो जाता है, शतभिषामें श्राद्ध करनेसे वैद्यक शास्त्रमें सिद्धिलाभ होता है, पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे आविक (भेड बकरी) लाभ, उत्तरा भाद्रपदमें विया गौलाभ ॥ १५ ॥ रेवतीमें सुवर्ण, चांदीके अतिरिक्त अन्यान्य धातु, अश्विनीमें अश्व और भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे दिर्घायुलाभ होता है ॥ १६ ॥ इस कार णही तत्त्ववित् पुरुषको इन सब नक्षत्रोंमें काम्यश्राद्धका आचरण करना चाहिये ॥ १७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

कुर्वंतश्चानुराधासुलभंतेचक्रवर्तिताम् ॥ आधिपत्यंचज्येष्ठासुमूलेचारोग्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥ आषाढासुयशःप्राप्तिरुत्तरासुविशोकताम् ॥ श्रवणेनशुभाँल्लो कान्धनिष्ठासुधनंमहत् ॥ १४ ॥ वेदविद्याचाभिजितिभिषक्सिद्धिंचवारुणे ॥ अजाविकंप्रोष्ठपदेविद्यागावस्तथोत्तरे ॥ १५ ॥ रेवतीषुतथाकुप्यम श्विनीषुतुरंगमान् ॥ श्राद्धंकुर्वंस्तथाप्नोतिभरणीष्वायुरुत्तमम् ॥ १६ ॥ तस्मात्काम्यानिकुर्वीतऋक्षेष्वेतेषुतत्त्ववित् ॥ १७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासनेश्राद्धकल्पोनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ मदालसोवाच ॥ एवंपुत्रगृहस्थेनदेवताःपितरस्तथा ॥ संपूज्यहव्यकव्याभ्यामन्ने नातिथिर्बांधवाः ॥ १ ॥ भूतानिभृत्याविकलाःपशुपक्षिपिपीलिकाः ॥ भिक्षवोयाचमानास्तुयेचान्येवसतागृहे ॥ २ ॥ सदाचारवतातातसाधुनागृहमेधिना ॥ पापंभुंक्तेसमुल्लंघ्यानित्यंनैमित्तिकीःक्रियाः ॥ ३ ॥ अलर्कउवाच ॥ कथितंमत्वयामातर्नित्यं नैमित्तिकंचयत् ॥ नित्यंनैमित्तिकंचैवत्रिविधंकर्मपौरुषम् ॥ ॥ ४ ॥ सदाचारमहंश्रोतुमिच्छामिकुलनंदिनि ॥ यंकुर्वन्सुखमाप्नोतिपरत्रेहचमानवः ॥ ५ ॥ मदालसोवाच ॥ गृहस्थेनसदा कार्यमाचारपरिपालनम् ॥ नह्याचारविहीनस्यसुखमत्रपरत्रवा ॥ ६ ॥

मदालसा बोली—हे पुत्र ! इसप्रकारसे साधुगृही सदाचारपरायण हो हव्य कव्य और अन्नदानपूर्वक पितृगण, देवगण, अतिथिगण, तथा बांधवगणकी पूजा करै ॥ १ ॥ इनके अतिरिक्त भूतगण, भृत्यगण, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक और अपरापर जो कोई प्रार्थना करै ॥ २ ॥ उन उन सबकी यथाविधि पूजा करै । गृही मनुष्य नित्य नैमित्तिकी क्रियाको उल्लंघन करनेसे पापका भागी होता है ॥ ३ ॥ अलर्कने कहा हे मातः ! तुमने मुझसे नित्य नैमित्तिक और नित्यनैमत्तिक इन तीन प्रकृत पुरुषोचित कर्मका विषय वर्णन किया ॥ ४ ॥ हे कुलनन्दिनी ! जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य क्या इसलोक, क्या पर लोक दोनों में सुखका भागी होता है. अब मैं वही सदाचारका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥ मदालसा बोली—गृहस्थ सर्वदा सदाचारका प्रतिपालन करै,

जो पुरुष आचारहीन है, किसी लोकमें उसको सुख मिलनेकी संभावना नहीं है ॥ जो पुरुष सदाचारको उल्लंघन करके संसार मार्गमें प्रवृत्त होता है, उसका यज्ञ, दान और तपस्या सब अमंगलका कारण होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ दुराचारी पुरुष कभी दीर्घजीवी नहीं हो सकता, अतएव सदाचारमें यत्नशील होना चाहिये। सदाचार द्वारा अलक्षण दूर होता है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! मैं उस सदाचारके स्वरूपका वर्णन करती हूं, तुम एकाग्र मनसे सुनकर तिसके अनुरूप कार्यका अनुष्ठान करो ॥ ॥ ९ ॥ गृही पुरुष त्रिवर्गसाधनमें यत्न करै। त्रिवर्गकी सिद्धि होनेपर वह गृहस्थ क्या इसलोक क्या परलोक दोनोंमेंही सिद्धिलाभ करता है ॥ १० ॥ आत्मवान् होकर उपार्जित अर्थका चतुर्थांश पारलौकिक धर्मकेलिये संचय करना गृहीका कर्त्तव्य है। अर्द्धांशद्वारा आत्मपोषण और नित्य नैमित्तिकादि क्रियासाधन करै ॥ ॥ ११ ॥ और अवशिष्टको मूलधनस्वरूप बढ़ावे। हे पुत्र ! इसप्रकारका आचरण करनेसेही अर्थकी सफलता साधित होती है ॥ १२ ॥ अर्थविषयमें

यज्ञदानतपांसीहपुरुषस्यनभूतये ॥ भवंतियःसदाचारंसमुल्लंघ्यप्रवर्त्तते ॥ ७ ॥ दुराचारोहिपुरुषोनेहायुर्विंदतेमहत् ॥ कार्योयत्नःसदाचारेआचारोहंत्यलक्षणम् ॥ ८ ॥ तस्यस्वरूपंवक्ष्यामिसदाचारस्यपुत्रक ॥ समाहितमनाःश्रुत्वातथैवपरिपालय ॥ ९ ॥ त्रिवर्गसाधनेयत्नःकर्त्तव्योगृहमेधिना ॥ तत्संसिद्धौगृहस्थस्यसिद्धिरत्रपरत्रच ॥ १० ॥ पादेनार्थस्यपारत्र्यंकुर्यात्संचयमात्मवान् ॥ अर्धेनचात्मभरणंनित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥ ११ ॥ पादंचात्मार्थमायस्यमूलभूतंविवर्द्धयेत् ॥ एवमाचरतःपुत्रअर्थःसाफल्यमृच्छति ॥ १२ ॥ तद्वत्पापनिषेधार्थंधर्मःकार्योविपश्चिता ॥ परत्रार्थंतथाचान्यःकाम्योत्रैवफलप्रदः ॥ १३ ॥ प्रत्यवायभयात्कामस्तथान्यश्चाविरोधवान् ॥ द्विधाकामोनिगदितस्त्रिवर्गोस्याविरोधतः ॥ १४ ॥ परस्परानुबंधांश्चसर्वानेतान्विचिंतयेत् ॥ विपरीतानुबंधांश्चधर्मादींस्ताञ्छृणुष्वमे ॥ १५ ॥ धर्मोधर्मानुबंधार्थोधर्मोनात्मार्थबाधकः ॥ उभाभ्यांचद्विधाकामस्तेनतौचद्विधापुनः ॥ १६ ॥

जिसप्रकार आचरण करै पाप दूरहोनेके लिये भी वैसाही धर्मसंचय करना चाहिये। धर्म दो प्रकारका है काम्य और निष्काम। निष्काम धर्म परलोकमें फलप्रदान करता है और काम्यधर्म इसलोकमें फलप्रद है ॥ १३ ॥ विघ्न और व्ययके कारण काम्य और निष्काम कर्म अविरोधपूर्वक इन दोनों धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। त्रिवर्गके अविरोधसे कामभी दो प्रकार है ॥ १४ ॥ धर्म, अर्थ और काम, यह त्रिवर्ग जिसप्रकार परस्पर अनुबद्ध हैं इसीप्रकार इनको परस्पर विनाबन्धे भी विचारै. मैं इनके अनुबंधादिका वर्णन करती हूं, सुनो ॥ १५ ॥ धर्म और धर्मके अनुबंधनिमित्त धर्म आत्माके लिये बाधक नहीं होता, इनके योगमें काम जिसभाँति दो प्रकार है, ऐसेही कामद्वारा धर्म और अर्थभी दो अंशमें विभक्त जानना चाहिये अर्थात् धर्म और धर्मानुबंधार्थ धर्म, इन दोनोंके

योगमें काम जिसप्रकार धर्मानुबद्ध काम और अर्थानुबद्ध काम यह दोभागमें विभक्त है, इसीप्रकार कामद्वारा धर्म और अर्थ भी दो भागमें विभक्त हुआ है ॥१६॥ गृही पुरुष ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर: धर्म, अर्थ, धर्मार्थमूलक कायक्लेश और वेदतत्त्वार्थ इन सबकी चिन्ता करै ॥ १७ ॥ फिर शय्यात्यागपूर्वक आचमन करके नियत और पवित्र भावसे पूर्वमुख बैठ ॥ १८ ॥ नक्षत्र रहते रहते पूर्वसंध्याका आचरण करै । इसीप्रकार सूर्यदेवके रहते रहते सायंसंध्या करनी चाहिये ॥ अनापत्कालमें यथाविधि संध्याकी उपासना करै, कभी इसके अन्यथा न करै ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! असत् वाक्य, अनृत वाक्य और कर्कश वाक्य त्याग करना अवश्य कर्त्तव्य है, तथा असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवाभी परित्याग करै ॥ २० ॥ नियतात्मा होकर प्रातःकाल और सायंकालमें

ब्राह्मेमुहूर्त्तेबुध्येतधर्मार्थौचानुचिंतयेत् ॥ कायक्लेशांश्चतन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेवच ॥१७॥ उत्थायाचम्यकंकृत्वाकृतशौचःसमाहित ॥ समुत्थायतथाचम्यप्राङ् मुखोनियतःशुचिः १८॥ पूर्वांसंध्यांसनक्षत्रांपश्चिमांसदिवाकराम् ॥ उपासीतयथान्यायंनैनांजह्यादनापदि ॥ १९ ॥ असत्प्रलापमनृतंवाक्पारुष्यंचवर्जयेत् ॥ असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवांचपुत्रक ॥ २० ॥ सायंप्रातस्तथाहोमंकुर्वीतनियतात्मवान् ॥ नोदयास्तमयेबिंबमुदीक्षेतविवस्वतः ॥ २१ ॥ केशप्रसाधनादर्श दर्शनंदंतधावनम् ॥ पूर्वाह्णएवकुर्वीतदेवतानांचतर्पणम् ॥ २२ ॥ ग्रामावसथतीर्थानांक्षेत्राणांचैववर्त्मनि ॥ नमूत्रमनुतिष्ठेतनकृष्टेनचगोव्रजे ॥ २३ ॥ नग्नांपरस्त्रियंनेक्षेन्नपश्येदात्मनःशकृत् ॥ उदक्यादर्शनंस्पर्शोवर्ज्यःसंभाषणंतथा ॥ २४ ॥ नाप्सुमूत्रंपुरीषंवानिष्ठीवनंसमाचरेत् ॥ नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रं केशभस्मकपालिकाः ॥ २५ ॥ तुषांगारास्थिचूर्णानिरजोवस्त्राणिकानिचित् ॥ नाधितिष्ठेत्तथाप्राज्ञःपथिपत्राणिवाभुवि ॥ २६ ॥ पितृदेवमनुष्याणां भूतानांचतथार्चनम् ॥ कृत्वाविभवतःपश्चाद्गृहस्थोभोक्तुमर्हति ॥ २७॥

होमका अनुष्ठान करना चाहिये । उदयकाल और अस्तगमन समयमें सूर्यकेबिम्बका दर्शन न करै ॥ २१ ॥ बाल काढ़ना, दर्पणमें मुख देखना, दंतधावन, और देवतर्पण, यह सब कार्य दिनके पूर्वाह्णमें करने चाहिये ॥ २२ ॥ ग्राम, निवास, तीर्थ, क्षेत्र, पथ (मार्ग) जुताहुआ खेत और गौओंका स्थान इन सब स्थानोंमें मल मूत्र त्यागना अनुचित है ॥ २३ ॥ पराई स्त्रीको नग्न नहीं देखे और स्वीय मलकोभी देखना अनुचित है, ऋतुमती स्त्रीको नहीं देखे और उसको स्पर्श तथा उसके संग वार्त्तालापभी नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ जलमें विष्ठा मूत्र त्याग, वा मैथुनकार्य नहीं करना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुष मलमूत्र, केश, भस्म, कपाल ॥ २५ ॥ तुष, अंगार, अस्थि, रज्जू, वसनादि, मार्गकी मृत्तिका, इन सबके ऊपर कभी न बैठे ॥ २६ ॥ गृही मनुष्य अपनी सम्पत्तिके अनुसार

सबसे पहिले पितर, देवता, नरगण और भूतगणकी पूजा करके फिर स्वयं भोजन करै ॥ २७ ॥ आचमनके अन्तमें संयतवाक्य, पवित्र और अन्तर्जानु होकर पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठ एकाग्रमनसे अन्न भोजन करै ॥२८॥ किसी प्रकारका अनिष्ट वा उत्तेजना न करनेपर किसी पुरुषका दोष प्रकाशित नहीं करना चाहिये प्रत्यक्ष अधिक लवण और अत्यन्त उष्ण अन्न सर्वथा वर्जित हैं ॥२९॥ आत्मवान् मनुष्य चलते वा बैठें बैठे मल मूत्र परित्याग न करै। आचमनके अन्तमें किंचितमात्रभी आहार करना अनुचित है ॥ ३० ॥ उच्छिष्ट शरीरसे किसीके संगभी वार्त्तालाप न करै और इस अवस्थामें वेदाध्ययन भी परित्याग करै। विशेष करके उच्छिष्ट देहसे गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने मस्तकको स्पर्श न करै ॥ ३१ ॥ उच्छिष्ट शरीरसे स्वेच्छानुसार चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रका दर्शन करना अनुचित है। टूटा आसन

उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवास्वाचांतोवाग्यतःशुचिः ॥ भुंजीतान्नंचतच्चित्तोह्यंतर्जानुःसदानरः ॥ २८ ॥ उपघातमृतेदोषंनान्नस्योदीरयेद्बुधः ॥ प्रत्यक्षंलवणं वर्ज्यमन्नमत्युष्णमेवच ॥ २९ ॥ नगच्छन्नैवतिष्ठन्वैविण्मूत्रोत्सर्गमाचरन् ॥ कुर्वीतनैवचाचामेन्नांकिंचिदपिभक्षयेत् ॥ ३० ॥ उच्छिष्टोनालपेत्किंचित्स्वाध्यायंचविवर्जयेत् ॥ गांब्राह्मणंतथाचाग्निंस्वमूर्धानंचनस्पृशेत् ॥ ३१ ॥ नचपश्येद्रविंनेन्दुंनक्षत्राणिकामतः ॥ भिन्नासनंतथाशय्यांभाजनंचविवर्जयेत् ॥३२॥ गुरूणामासनंदेयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ॥ अनुकूलंतथालापमभिवादनपूर्वकम् ॥ ३३ ॥ तथानुगमनंकुर्यात्प्रातिकूलंनसंलपेत् ॥ नैकवस्त्रश्चभुञ्जीतनकुर्याद्देवतार्चनम् ॥ ३४ ॥ नगर्हयेद्द्विजान्नाग्नौमेहंकुर्वीतबुद्धिमान् ॥ नस्नायीतनरोनग्नोनशयीतकदाचन ॥ ३५ ॥ नपाणिभ्यामुभाभ्यांचकण्डूयेनाशिरस्तथा ॥ नचाभीक्ष्णंशिरःस्नानंकार्यंनिष्कारणंनरैः ॥ ३६ ॥ शिरःस्नातश्चतैलेननाङ्गंकिञ्चिदपिस्पृशेत् ॥ अनध्यायेषुसर्वेषुस्वाध्यायंचविवर्जयेत् ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणानलगोसूर्यान्नमेहेतकदाचनाशि ॥ उदङ्मुखोदिवारात्रावुत्सर्गंदक्षिणामुखः ॥ ३८ ॥

टूटी शय्या और टूटे पात्र सर्वथा वर्जित हैं ॥ ३२ ॥ अभ्युत्थान इत्यादि (उठकर) खडा होना इत्यादि सत्कारसहित गुरुको आसन प्रदान करै। प्रणामपूर्वक उनसे अनुकूल वार्त्ता करै ॥ ३३ ॥ और गमनकालमें उनका अनुगमन करना चाहिये। उनसे प्रतिकूल वचनप्रयोग करना कभी उचित नहीं है. एक वस्त्रसे आहार वा देवपूजा करना निषिद्ध है ॥ ३४ ॥ द्विजातिगणकी निन्दा नहीं करै और बुद्धिमान् पुरुष कभी अग्निमें मूत्रादि त्याग न करै, नग्न होकर स्नान वा शयन करना अनुचित है ॥ ॥ ३५ ॥ दोनों हाथोंसे कभी मस्तक न खुजावै, विनाकारण स्नान वा सदा शिरसे स्नान करना उचित नहीं है ॥ ३६ ॥ और शिरःस्नानके अन्तमें किसी अंगमें तेल नहीं मलना चाहिये। सब अनध्यायकेदिनोंमें वेदाध्ययन परित्याग करै ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण, अग्नि, गौ और सूर्यके सन्मुख कभी विष्ठा मूत्रादि त्याग

न करै । दिनमें उत्तरमुख और रात्रि कालमें दाक्षिणमुख होकर ॥ ३८ ॥ विघ्नरहित स्थानमें इच्छानुसार मल मूत्र परित्याग करै । गुरुका दुष्कृत (पाप) किसी के निकट प्रकाश न करै, उनके क्रुद्ध होनेपर उनको प्रसन्न करना चाहिये ॥ ३९॥और यदि कोई दूसरा उनकी झूठी निन्दा करै, तो उसमें कर्णपात न करै विप्र राजा, दुःखातुर ॥ ४० ॥ अपनी अपेक्षा अधिक विद्यावान्, गुर्विणी स्त्री, भयातुर, युवा, मूक, अन्ध, बधिर, मत्त, उन्मत्त ॥ ४१ ॥ पुंश्चली, वैर करनेवाला बालक और पतित इन सब पुरुषोंको पथ (मार्ग) प्रदान करै । देवमन्दिर चैत्य वृक्षचतुष्पथ (चौराहा) ॥४२॥ अपनी अपेक्षा अधिक विद्यावान्, गुरु और देवता बुद्धिमान् पुरुषको इन सबकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये दूसरे किसी पुरुषका पहराहुआ जूता वस्त्र और माल्यादि न पहिरै ॥४३ ॥ और दूसरेका धारण कियाहुवा

आबाधासुयथाकामंकुर्यान्मूत्रपुरीषयोः ॥ दुष्कृतंनगुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धंचैनंप्रसादयेत् ॥ ३९ ॥ परीवादंनशृणुयादन्येषामपिकुर्वताम् ॥ पन्थादेयोब्राह्मणानां राज्ञोदुःखातुरस्यच ॥ ४० ॥ विद्याधिकस्यगुर्विण्याभारार्त्तस्ययवीयसः ॥ मूकान्धबधिराणांचमत्तस्योन्मत्तकस्यच ॥४१॥ पुंश्चल्याकृतवैरस्यबालस्यप तितस्यच ॥ देवालयंचैत्यतरुंतथैवचचतुष्पथम् ॥ ४२ ॥ विद्याधिकंगुरुंचैवबुधःकुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ उपानद्वस्त्रमाल्यादिधृतमन्यैर्नधार येत् ॥ ४३ ॥ उपवीतमलंकारंकरकंचैववर्जयेत् ॥ प्रशस्तानिचकर्माणिकुर्वाणादीर्घजीविनः ॥ ४४ ॥ चतुर्दश्यांतथाष्टम्यांपञ्चदश्यांचपर्वसु ॥ तैलाभ्यङ्गं तथाभोगंयोषितश्चविवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ नक्षिप्तपादजङ्घश्चप्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥ नचापिविक्षिपेत्पादौपादंपादेननाक्रमेत् ॥ ४६ ॥ मर्माभिघातमाक्रो शंपैशुन्यंचविवर्जयेत् ॥ दम्भाभिमानतैक्ष्ण्यानिनकुर्वीतविचक्षणः ॥ ४७ ॥ मूर्खोन्मत्तव्यसनिनोविरूपान्मायिनस्तथा ॥ न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्चनोपहासे नदूषयेत् ॥ परस्यदण्डंनोद्यच्छेच्छिक्षार्थंपुत्रशिष्ययोः ॥ ४८ ॥ तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञपादेनाक्रम्यचासनम् ॥ संयावंकृसरंमांसंनात्मार्थमुपसाधयेत् ॥ ४९ ॥

जनेऊ, विभूषण और कमण्डलु धारण न करै, प्रशस्तकर्म करनेसे दीर्घजीवी कहा है ॥ ४४ ॥ चतुर्दशी अष्टमी पंचदशी और पर्वके दिन तैलमर्दन और स्त्रीसंग परित्याग करै ॥ ४५ ॥ बुद्धिमान् पुरुष चरण जंघा फैलाकर न बैठे और चरणद्वारा चरण आक्रमण करना तथा लातमारनाभी निषिद्ध है ॥ ४६ ॥ किसीको भी, मर्मव्यथा नहीं देनी चाहिये और लोकोंके प्रति कोशना और चुगली परित्याग करै तथा बुद्धिमान् पुरुषको दंभ, अभिमान और तीक्ष्ण व्यवहार परित्याग करना चाहिये ॥ ४७ ॥ मूढ, उन्मत्त, दुःखी, आपदाग्रस्त, विरूप, मायावी, हीनाङ्ग और अधिकाङ्ग इन सबको हास्यद्वारा दूषित करना अनुचित है । अन्यके प्रति दंडका उच्छेदन करै और उपदेशप्रदानार्थ पुत्र और शिष्यके प्रति दंडविधान करना अनुचित नहीं है ॥ ४८ ॥ पावोंसे आक्रमणपूर्वक आसनपर नहीं

बैठे केवल आत्मोदरपूरणके अर्थ संयाव (कुलथी) कृशर (खिचडी) और मांस प्रस्तुत करना चाहिये ॥ ४९ ॥ प्रातःकाल और सायंकालमें अतिथिकी पूजा करके फिर स्वयं भोजन करै वाणीको रोक पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठकर दन्तधावन करै ॥ ५० ॥ जो काष्ठादि वर्जित हैं, दन्तधावनार्थ उनका व्यवहार नहीं करना चाहिये । उत्तरको शिरकर वा पश्चिमको शिरकर शयन न करै ॥ ५१ ॥ दक्षिण वा पूर्वदिशामें मस्तक रखकर शयन करना चाहिये दुर्गन्धपूर्ण जलमें और रात्रिकालमें स्नान करना अनुचित है ॥ ५२ ॥ केवल मात्र चन्द्र सूर्यके ग्रहणादिकालमेंही रात्रिमें स्नान करसकता है, स्नानके पीछे वस्त्र वा हस्त द्वारा देहमार्जन करना निषिद्ध है ॥ ५३ ॥ एवं गीलेकेश वा गीले वस्त्रका फटकारना अनुचित है, बुद्धिमान् पुरुष विना स्नानकिये कभी चन्दनादि धारण न करै ॥

सायंप्रातश्चभोक्तव्यंकृत्वाचातिथिपूजनम् ॥ उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवावाग्यतोदन्तधावनम् ॥ ५० ॥ कुर्वीतसततंवत्सवर्जयेद्वर्ज्यवीरुधः ॥ नोदक्छिराः स्वपेज्जातुनचप्रत्यक्छिरानरः ॥ ५१ ॥ शिरस्यगस्त्यमास्थायशयीताथपुरन्दरम् ॥ नतुगन्धवतीष्वप्सुस्नायीतनतथानिशि ॥ ५२ ॥ उपरागेपरंस्नानमृते दिनमुदाहृतम् ॥ अपमृज्यान्नचास्नातोगात्राण्यम्बरपाणिभिः ॥ ५३ ॥ नचापिधूनयेत्केशान्वाससीनचधूनयेत् ॥ नानुलेपनमादद्यादस्नातःकर्हिचिद्बुधः ॥ ५४ ॥ नचापिरक्तवासाःस्याच्चित्रासितधरोऽपिवा ॥ नचकुर्याद्विपर्यासंवाससोर्नापिभूषणे ॥ ५५ ॥ वर्ज्यंचविदशंवस्त्रमत्यन्तोपहतंचयत् ॥ केशकीटावपन्नंचश्वभिरवेक्षितम् ॥ ५६ ॥ अवलीढावपन्नंचसारोद्धरणदूषितम् ॥ पृष्ठमांसंवृथामांसंवर्ज्यमांसंचपुत्रक ॥ ५७ ॥ नभक्षयीतसततंप्रत्यक्षलवणानिच ॥ वर्ज्यंचिरोषितंपुत्रभक्तंपर्युषितंचयत् ॥ ५८ ॥ पिष्टशाकेक्षुपयसांविकारान्नृपनन्दन ॥ तथामांसविकाराश्चतेचवर्ज्याश्चिरोषिताः ॥ ५९ ॥ उदयास्तमनेभानोःशयनंचविवर्जयेत् ॥ नास्नातोनैवसंविष्टोनचैवान्यमनानरः ॥ ६० ॥

॥ ५४ ॥ लाल वर्ण, काले वर्ण, अथवा चित्रित वस्त्र नहीं पहरनें चाहिये, पहिरनेके और उत्तरीय वस्त्र तथा विभूषण, इन सबको विपरीतभावसे नहीं पहिरै ॥ ॥ ५५ ॥ दशाशून्य, जीर्ण और छिन्नवस्त्र सर्वथा वर्जित हैं, केश और कीटसे युक्त (विकृत) कुत्तेका देखा हुआ ॥ ५६ ॥ वा चाटाहुआ और जिसका सार निकाल लिया हो, दूषित अन्न, पृष्ठमांस, वृथा मांस ॥ ५७ ॥ वर्जित मांस और प्रत्यक्ष लवण हे पुत्र ! यह सब कभी भोजन न करै । हे वत्स ! बहुत दिनोंका धरा और बासी अन्न त्यागदे ॥ ५८ ॥ हे नृपनन्दन ! पिट्ठी, शाक, इक्षु और दुग्ध, इन सबका विकार भोजन न करै, मांसविकार बहुत दिनोंका होनेपर वह भी वर्जित है ॥ ५९ ॥ सूर्यके उदयकालमें वा अस्तगमनसमयमें शयन करना छोड दे, स्नानके पीछे भी शयन करना अनुचित है और बैठा बैठाभी न सोवै,

तथा अन्य मनस्क अर्थात् दूसरी ओरको भी मन लगाकर शयन नहीं करना चाहिये ॥ ६० ॥ सेज वा मृत्तिकामें 'हा !' कहकर न बैठे, उत्तरीय परित्यागपूर्वक एक वस्त्रसे भोजन न करे, बात कहते कहते भी भोजन करना निषिद्ध है और जो सामने बैठा हो, उसको विना दिये आहार करना उचित नहीं है ॥ ६१ ॥ प्रातःकाल और सायंकालमें विधानानुसार स्नान करके फिर भोजन करे, बुद्धिमान् कभी परस्त्रीगमन न करै ॥ ६२ ॥ क्योंकि परस्त्रिगमन करनेसे इष्टापुर्त्त विनष्ट होता है और परमायुका ह्रास होता है, परदाराभिमर्शन पुरुषके पक्षमें जिसप्रकार परमायुका ह्रास करनेवाला है, ऐसा इसलोकमें और पाप कुछभी नहीं है. देवताओंकी पूजा, अग्निकार्य और गुरुजनोंको प्रणाम करना सर्वथा उचित है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ सम्यक् आचमन करके अन्नभोजन कार्यसमापन

नचैवशयनेनोर्व्यामुपविष्टोनशब्दवत् ॥ नचैकवस्त्रोनवदन्प्रेक्षतामप्रदायच ॥ ६१ ॥ भुंजीतपुरुषस्नातःसायंप्रातर्यथाविधि ॥ परदारानगन्तव्याःपुरुषेण विपश्चिता ॥ ६२ ॥ इष्टापूर्त्तायुषांहन्त्रीपरदारगतिर्नृणाम् ॥ नहीदृशमनायुष्यंलोकेकिंचनविद्यते ॥ ६३ ॥ यादृशंपुरुषस्येहपरदाराभिमर्शनम् ॥ देवार्चनाग्निकार्याणितथागुर्वभिवादनम् ॥६४॥ कुर्वीतसम्यगाचम्यतद्वदन्नभुजिक्रियाम् ॥ अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥ ६५ ॥ आचामेत्पुत्रपुण्याभिः प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ॥ अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ॥ ६६ ॥ कृतशौचावशिष्टाच्चवर्जयेत्पञ्चवैमृदः ॥ प्रक्षाल्यहस्तौपादौचसमभ्युक्ष्य समाहितः ॥ ६७ ॥ अन्तर्जानुस्तथाचामेत्रिश्चतुर्वापिवेदपः ॥ परिमृज्यद्विरास्यान्तंखानिमूर्धनमेवच ॥ ६८ ॥ सम्यगाचम्यतोयेनक्रियांकुर्वीतवैशुचिः ॥ देवतानामृषीणांचपितॄणांचैवयत्नतः ॥ ६९ ॥ समाहितमनाभूत्वाकुर्वीतसततंनरः ॥ क्षुत्त्वानिष्ठीव्यवासश्चपरिधायाचमेद्बुधः ॥ ७० ॥

करे । हे पुत्र ! फेनशून्य निर्गन्ध निर्मल पवित्र जल सादर ग्रहणपूर्वक ॥ ६५ ॥ पूर्वमुख वा उत्तरमुख होकर आचमन करना चाहिये. जलके भीतरकी, वासगृहकी, वल्मीककी, चूहेके भट्टेकी ॥ ६६ ॥ और शौचक्रियासे बचीहुई, यह पांच प्रकारकी मृत्तिका ग्रहण न करै । एकाग्रमनसे हाथ पैर धो और सम्यक्प्रकारसे शौचकर ॥ ६७ ॥ दोनों जानु (समेटकर) बैठे तीनवार वा चार वार जलपानसहित आचमन करै । दो बार मुखके इधर उधर और मुखगह्वरमें एवं दो वार मस्तक और इन्द्रियद्वार मार्जनपूर्वक ॥ ६८ ॥ सम्यक् प्रकार आचमन करके पवित्र भावसे क्रियानुष्ठान करै । सदा यत्नपूर्वक एकाग्र मनसे देवता, ऋषि और पितरोंका ॥ ६९ ॥ कार्य करना चाहिये । हुचकी और खखार त्याग करनेसे आचमन करना उचित है और वस्त्र पहरनेके

पीछेभी आचमन करे ॥ ७० ॥ छींक अवलेहन (चाटना) वमन और निष्ठीवन होनेपर आचमन, गोपृष्ठावलोकन, सूर्यदर्शन ॥ ७१ ॥ और दहिना कान छूना चाहिये । इन सबमें पूर्व पूर्वका अभाव होनेपर विभवके अनुसार परस्पर कार्यका अनुष्ठान करे ॥ ७२ ॥ क्योंकि पूर्व पूर्वके अभावमें परस्परकी क्रिया ही श्रेष्ठ कही गई है दन्तद्वारा दन्तघर्षण न करे और अपने देहका ताड़न करनाभी अनुचित है ॥ ७३ ॥ क्या प्रातःसंध्या क्या सायंसंध्या, दोनों कालमें शयन, अध्ययन, और भोजन परित्याग करे । संध्याकालमें मैथुनक्रिया और प्रस्थान न करे ॥ ७४ ॥ हे वत्स ! भक्तिसहित पूर्वाह्णमें देवताओंकी, मध्याह्नमें नरगणोंकी और अपराह्णमें पितरोंकी पूजा करे ॥ ७५ ॥ शिरसे स्नानकरके पितरोंके और देवताओंके क्रियानुष्ठानमें प्रवृत्त होना चाहिये. पुर्वमुख वा उत्तरमुख

क्षुतेऽवलीढेवान्तेचतथानिष्ठीवनादिषु ॥ कुर्यादाचमनंस्पर्शंगोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ॥७१॥ कुर्वीतालम्बनंचापिदक्षिणश्रवणस्यवै ॥ यथाविभवतोह्येतत्पूर्वाभावे ततःपरम् ॥ ७२ ॥ अविद्यमानेपूर्वोक्तेउत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥ नकुर्याद्दन्तसंघर्षंनात्मनोदेहताडनम् ॥ ७३ ॥ स्वप्नाध्यापनभोज्यानिस्वाध्यायंचविवर्जयेत् ॥ सन्ध्यायांमैथुनंचापितथाप्रस्थानमेवच ॥ ७४ ॥ पूर्वाह्णेतातदेवानांमनुष्याणांचमध्यमे ॥ भक्त्यातथापराह्णेचकुर्वीतपितृपूजनम् ॥ ७५ ॥ शिरःस्नातश्चकुर्वीतदैवंपैत्र्यमथापिवा ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापिश्मश्रुकर्मचकारयेत् ॥ ७६ ॥ व्यङ्गांविवर्जयेत्कन्यामकुलांचापिरोगिणीम् ॥ विकृतांपिंगलांचैववाचालां सर्वदूषिताम् ॥ ७७ ॥ अव्यंगांगींसौम्यनाम्नींसर्वलक्षणलक्षिताम् ॥ तादृशीमुद्वहेत्कन्यांश्रेयःकामोनरःसदा ॥ ७८ ॥ उद्वहेत्पितृमात्रोश्चसप्तमींपंचमींतथा ॥ रक्षेद्दारान्त्यजेदीर्षांदिवाचस्वप्नमैथुने ॥ ७९ ॥ परोपतापकंकर्मजन्तुपीडांचवर्जयेत् ॥ उदक्याःसर्ववर्णानांवर्ज्याशात्रिचतुष्टयम् ॥ ८० ॥ स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पंचमीमपिवर्जयेत् ॥ ततःषष्ठ्यांव्रजेद्रात्र्यांश्रेष्ठायुग्मासुपुत्रक ॥ ८१ ॥

होकर (बाल) हजामत बनवावे ॥ ७६ ॥ जो कन्या सद्वंशोत्पन्न होकरभी रोगिणी, विकलाङ्गी, विकृत पिंगल वर्ण वाचाल (बहुत बोलने वाली) वा समस्त दोषोंसे दूषित हो, ऐसी कन्याको ग्रहण करना उचित नहीं है ॥ ७७ ॥ जो पुरुष कल्याणकी कामना करे, वह सर्वाङ्ग पूर्ण सौम्य नासा, सर्व सुलक्षण विभूषित कन्यासे विवाह करे ॥ ७८ ॥ पिता वा माताकी सात वा पांचपीढी छोडकर अन्य कन्यासे विवाह करना चाहिये । स्त्रीकी रक्षा करना और ईर्षा त्यागना उचित है । दिनमें शयन वा मैथुनक्रिया नहीं करना चाहिये ॥ ७९ ॥ जिससे दूसरे पुरुषको संताप हो और जिससे जीवगण क्लेश अनुभव करें ऐसे कार्य का परित्याग करना उचित है । समस्त वर्णही चारदिन ऋतुमती नारीका संग परित्याग करे ॥ ८० ॥ हे पुत्र ! जो पुरुष कन्या उत्पन्न होनेकी अभिलाषा नहीं

करता, वह पंचम रात्रिमें स्त्रीसंग परित्याग करके छठी रात्रिमें सहवास करै। क्योंकि युग्म रात्रिही नारीसहवासमें श्रेष्ठ कहीगई है ॥ ८१ ॥ स्त्रीके ऋतुकालके दिन और चौदस अमावस अष्टमी तथा संक्रान्ति संभोगमें त्यागदे और शेष युग्म रात्रियोंमें गमन करै ॥ ८२ ॥ युग्म रात्रिमें नारीसंग करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रियोंमें कन्याकी उत्पत्ति होती है. सुतरां यदि पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छा होतो युग्म रात्रिमें ही सहवास करै ॥ ८३ ॥ यदि पूर्वाह्णमें नारीसंग किया जाय, तो विधर्मी पुत्र उत्पन्न होता है और सायंकालमें स्त्रीसंग करनेसे नपुंसकका जन्म होता है. हे पुत्र ! क्षौरकर्म अर्थात् हजामतके पीछे, वमनके पीछे, नारीसंगके पीछे ॥ ८४ ॥ और श्मशानभूमिमें गमन करनेपर सवस्त्र स्नान करना चाहिये. हे पुत्र ! देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्वनिष्ठ महात्मा ॥ ८५ ॥ गुरुजन, प्रतिव्रता स्त्री,

पर्वाणिवर्जयेन्नित्यमृतुकालेपियोषितः ॥ तस्मान्नित्यंनरोगच्छेच्छेषयुग्मासुपुत्रक ॥८२॥ युग्मासुपुत्राजायन्तेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासुपुत्रार्थी संविशेतसदानरः ॥ ८३ ॥ विधर्मिणोऽह्निपूर्वाख्येसंध्याकालेचषण्ढकाः ॥ क्षुरकर्मणिवान्तेचस्त्रीसंभोगेचपुत्रक ॥ ८४ ॥ स्नायीतचैलवान्प्राज्ञःकटभूमिमुपेत्यच ॥ देववेदद्विजातीनांसाधुसभ्यमहात्मनाम् ॥ ८५ ॥ गुरोःपतिव्रतानांचतथायज्वितपस्विनाम् ॥ परीवादंनकुर्वीतपरिहासंचपुत्रक ॥ ८६ ॥ कुर्वताम विनीतानांनश्रोतव्यंकथंचन ॥ देवपित्र्यातिथेयाश्चक्रियाःकुर्वीतवैबुधः ॥ ८७ ॥ स्वाध्यायंचापिकुर्वीतयथाशक्त्याह्यतंद्रितः ॥ नोत्कृष्टशय्यासनयोर्नापकृष्टस्यचारुहेत् ॥ ८८ ॥ नचामङ्गल्यवेषःस्यान्नचामङ्गल्यवाग्भवेत् ॥ धवलाम्बरसंवीतःसितपुष्पविभूषितः ॥ ८९ ॥ नोद्धतोन्मत्तमूढैश्चनाविनीतैश्चपण्डितः ॥ गच्छेन्मैत्रींनचाशीलैर्नचचौर्यादिदूषितैः ॥ ९० ॥ नचातिव्ययशीलैश्चनलुब्धैर्नापिवैरिभिः ॥ नानृतकैस्तथाक्रूरैःसहासीतकदाचन ॥ नबन्धकीभिर्नन्यूनैर्बन्धकीपतिभिस्तथा ॥ ९१ ॥

यज्ञशील और तपःपरायण पुरुष, इनकी (असत्य निन्दा) वा हास्य करना उचित नहीं है ॥ ८६ ॥ अविनीत मनुष्य यदि इनकी निन्दा करै तो उसमें कर्णपात न करै। बुद्धिमान्‌को देवता, पितर अतिथिकी क्रियाका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ८७ ॥ यथाशक्ति सावधानतासे वेद पढे, अपनी अपेक्षा उत्कृष्ट वा अपकृष्ट मनुष्यकी शय्या वा आसनपर न बैठे ॥ ८८ ॥ अमंगल वेष धारण करना उचित नहीं है. और अमंगल वचन भी परित्याग करे. श्वेतवस्त्र और सित कुसुमका व्यवहार करै ॥ ८९ ॥ उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, अविनयी, असच्चरित्र, चौर्यादि दोषसे दूषित ॥ ९० ॥ अपरिमित खर्च करनेवाला, लुब्ध. शत्रु,

व्यभिचारिणी, हीन, बन्धकीका स्वामी ॥ ९१ ॥ नीचाशय, निन्दित, सर्वदा शंकी और दैवपरायण, बुद्धिमान् पुरुषको इन सबके संग मित्रता नहीं करनी चाहिये ॥ ॥ ९२ ॥ सदाचारपरायण साधुपुरुषोंके सहित मित्रता स्थापन करनी चाहिये । बुद्धिमान्, पिशुनतारहित शक्तिमान् और जो कार्यमें उद्योगशील हैं ऐसे पुरुषों के संग मैत्री स्थापन करे ॥ ९३ ॥ पण्डित पुरुष सर्वदा वेदज्ञ, विद्वान्, व्रतपरायण और स्नातक पुरुषके संग स्थिति करे । सुहृद्, दीक्षित, भूपति, स्नातक, श्वशुर और ऋत्विक् यह छे जन अर्घ्यप्रदानके उपयुक्त पात्र हैं. इनके घर आनेपर पूजा करनी चाहिये ॥९४॥ हे पुत्र ! पूर्वोक्त अर्घार्ह छे जनोंके घर समागम होने पर संवत्सर बीते घर आनेपर विभवके अनुसार यथासमयमें उनकी मधुपर्कसहित पूजा करे ॥९५॥ और यदि कल्याणलाभकी इच्छा हो तो उनकी आज्ञामें रहना

सार्द्धंनबलिभिःकुर्यान्नचन्यूनैर्नेनिन्दितैः ॥ नसर्वशङ्किभिर्नित्यंनचदैवपरैर्नरैः ॥ ९२ ॥ कुर्वीतसाधुभिर्मैत्रींसदाचारावलम्बिभिः ॥ प्राज्ञैरपिशुनैःशक्तैःकर्मण्युद्योगभागिभिः ॥ ९३ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातैःसहासीतसदाबुधः ॥ सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैःसह ॥ ऋत्विगादीन्षडर्घार्हानर्चयेच्चगृहागतान् ॥ ९४॥ यथाविभवतःपुत्रद्विजान्संवत्सरोषितान् ॥ अर्चयेन्मधुपर्केणयथाकालमतन्द्रितः ॥ ९५ ॥ तिष्ठेच्चशासनेतेषांश्रेयस्कामोद्विजोत्तमः ॥ नचतान्विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापितैःसदा ॥ ९६ ॥ सम्यग्गृहार्चनंकृत्वायथास्थानमनुक्रमात् ॥ संपूजयेत्ततोवह्निंदद्याच्चैवाहुतीःक्रमात् ॥ ९७ ॥ प्रथमांब्रह्मणेदद्यात्प्रजानांपतयेततः ॥ तृतीयांचैवगुह्येभ्यःकश्यपायतथापराम् ॥ ९८ ॥ ततोऽनुमतयेदत्त्वादद्याद्गृहबलिंततः ॥ पूर्वख्यातोमयायस्तेनित्यकर्मक्रियाविधिः ॥ ९९ ॥ वैश्वदेवंततःकुर्याद्बलयस्तत्रमेशृणु ॥ यथास्थानविभागंतुदेवानुद्दिश्यवैपृथक् ॥ १०० ॥ पर्जन्याद्भ्योधरित्र्यैचदद्याच्चमणिकेत्रयम् ॥ ततोधातुर्विधातुश्चदद्याद्द्वारेगृहस्यतु ॥ वायवेचप्रतिदिशंदिग्भ्यःप्राच्यादितःक्रमात् ॥ १०१ ॥

चाहिये उनके क्रोध प्रकाश करनेपर भी उनसे विवाद करना बुद्धिमान्को उचित नहीं है ॥ ९६ ॥ सम्यक् प्रकारसे गृहपूजा करके क्रमानुसार अग्निकी अर्चना पूर्वक आहुतिप्रदान करे ॥९७॥ ब्रह्माजीके उद्देश्यसे पहिली आहुति, प्रदानपूर्वक प्रजापतिको दूसरी, गुह्यक गणको तीसरी और कश्यपको चौथी आहुति देवे ॥९८॥ फिर अनुमतिके उद्देश्यसे पंचमाहुतिप्रदानपूर्वक पहिले तुमसे नित्यकर्मक्रिया विधिकेउपलक्षमें जिसप्रकार वर्णन किया है, उसीके अनुसार गृहबलिप्रदान करना चाहिये ॥ ९९ ॥ फिर वैश्वदेवबलिप्रदान करे उसका नियम सुनो । स्थानविभागके अनुसार देवताओंके उद्देश्यसे पृथक्पृथक् बलि देनी चाहिये॥ १००॥अनन्तर पर्जन्य (मेघ) अन्न और धरित्री, इनको तीन बलि और वायुको बलिप्रदानपूर्वक पूर्वादि क्रमसे प्रतिदिशामें समस्त दिशाको यथाक्रमसे बलिप्रदान करे ॥ १०१ ॥

फिर उत्तर दिशामें ब्रह्मा, अन्तरिक्षमें सूर्य, विश्वदेवगण विश्वभूतगण ॥ १०२ ॥ उषा और भूतपति, क्रमशः इनके उद्देश्यसे बलिप्रदान करके " स्वधा नमः " यह वाक्य उच्चारणपूर्वक दक्षिण दिशामें पितरोंके उद्देश्यसे बलिप्रदान करै ॥ १०३ ॥ अनन्तर अन्नावशेषकी कामना करके अपसव्य हो, वायुकोणमें " यक्ष्मैतत्ता " इत्यादि मंत्रपाठसहित जलाधारसे जललेकर विधानानुसार जलदान करै ॥ १०४ ॥ फिर अन्नका अग्रभाग तोड़ हन्तकारकी कल्पना कर यथाविधान और यथा न्याय ब्राह्मणको देवे ॥ १०५ ॥ तदनन्तर स्वीय स्वीय तीर्थयोगमें विधानानुसार कार्य सम्पादन करै, देवादिके उद्देश्यसे ब्राह्मतीर्थद्वारा आचमन करना चाहिये ॥ ॥ १०६ ॥ दहिने हाथकी अगुष्ठाङ्गुलीकी उत्तर दिशामें जो रेखा विद्यमान है, वही ब्राह्मतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हे, इसी तीर्थके द्वारा आचमन करै ॥ १०७ ॥

ब्रह्मणेचान्तरिक्षायसूर्यायचयथाक्रमम् ॥ विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्योविश्वभूतेभ्यएवच ॥ १०२॥ उषसेभूतपतयेदद्याच्चोत्तरतस्ततः ॥ स्वधानमइतीत्युक्त्वापितृभ्य श्चापिदक्षिणे ॥ १०३ ॥ कृत्वापसव्यंवायव्यांयक्ष्मैतत्तेतिभाजनात् ॥ अन्नावशेषमिच्छन्वैतोयंदद्याद्यथाविधि ॥ १०४॥ ततोन्नाग्रंसमुद्धृत्यहन्तकारो पकल्पनम् ॥ यथाविधियथान्यायंब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ १०५॥ कुर्यात्कर्माणितीर्थेनस्वेनेस्वनयथाविधि ॥ देवादीनांतथाकुर्याद्ब्राह्मेणाचमनक्रियाम् ॥ ॥ १०६ ॥ अंगुष्ठोत्तरतोरेखापाणेर्यादक्षिणस्यतु ॥ एतद्ब्राह्ममितिख्यातंतीर्थमाचमनायवै ॥ १०७ ॥ तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तःपैत्रंतीर्थमुदाहृतम् ॥ पितॄणां तेनतोयादिदद्यान्नान्दीमुखादृते ॥ १०८॥ अंगुल्यग्रेतथादैवंतेनदिव्यक्रियाविधिः ॥ तीर्थंकनिष्ठिकामूलेकायंतेनप्रजापतेः ॥ १०९ ॥ एवमेभिःसदातीर्थैं र्देवानांपितृभिःसह ॥ सदाकार्याणिकुर्वीतनान्यत्तीर्थेनकर्हिचित् ॥ ११० ॥ ब्राह्मेणाचमनंशस्तंपित्र्यंपैत्रेणसर्वदा ॥ देवतीर्थेनदेवानांप्राजापत्यंनिजेनच ॥ १११ ॥ नान्दीमुखानांकुर्वीतप्राज्ञःपिण्डोदकक्रियाम् ॥ प्राजापत्येनतीर्थेनयच्चकिंचित्प्रजापतेः ॥ ११२ ॥

तर्जनी और अंगुष्ठ, इन दोनों अंगुलियोंका मध्यस्थलही पितृतीर्थके नामसे विख्यात हैं। नान्दीमुखके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त क्रियामें भी पितरोंके उद्देश्यसे इसी पितृतीर्थद्वारा जलादि प्रदान करै ॥ १०८ ॥ अंगुलीके अग्रभागमेंही देवतीर्थ विद्यमान है, देवक्रियाविधि उसके द्वाराही समापन करनी चाहिये । कनिष्ठाके मूलदेशमें कायनामक तीर्थ विराजित है, उसके द्वारा प्रजापतिका कार्य सम्पन्न करै ॥ १०९ ॥ इसप्रकारसे इन सब तीर्थोंके द्वारा सदा देवता और पितरोंकी क्रियाका अनुष्ठान करै, अन्यतीर्थद्वारा कभी न करै ॥ ११० ॥ ब्राह्मतीर्थद्वाराही आचमन करना विधिसिद्ध है. पितृतीर्थद्वारा पितृकार्य, देवतीर्थद्वारा देवकार्य और कायतीर्थ द्वारा प्रजापतिका कार्य करै ॥ १११ ॥ प्रजापतिका कार्य जिसप्रकारसे प्राजापत्य तीर्थ अर्थात् कायतीर्थद्वारा संपादित

करना चाहिये. नान्दीमुखकी पिण्डोदकक्रियाभी उसी प्रकार कायतीर्थद्वारा संपन्न करै ॥ ११२ ॥ एक साथ जल और अग्नि धारण करना बुद्धिमान् पुरुषको कर्त्तव्य नहीं है । गुरु वा देवताके सामने पांव न फैलावै ॥ ११३ ॥ जो गाय बछडेको स्तन पिलानेमें उद्यत हो, उसको न बुलावै और अंजलि (चुल्लू) द्वारा जल न पिये अधिक हो वा कम हो ॥ ११४ ॥ सब प्रकारकी शौचक्रियामें शीघ्रता करै और मुखद्वारा अर्थात् फूँकसे अग्नि प्रज्वलित न करै और हे पुत्र ! जहां यह चार वस्तु न हों, वहां वास न करै ॥ ११५ ॥ ऋण (कर्ज) देनेवाला,वैद्य, श्रोत्रिय और सजला नदी । जिस राज्यमें शत्रुओंका जीतनेवाला धर्मनिष्ठ बलवान् राजा वास करता हो ॥ ११६ ॥ उस देशमें बुद्धिमान् पुरुषको सदा वास करना चाहिये । क्योंकि कुराजाके राज्यमें सुखकी संभावना कहां है ? जिस

युगपज्जलमग्निंचबिभृयान्नविचक्षणः ॥ गुरुदेवान्प्रतितथानचपादौप्रसारयेत् ॥ ११३ ॥ नाचक्षीतधयन्तींगांजलंनाञ्जलिनापिबेत् ॥ शौचकालेषुसर्वेषुगुरुष्वल्पेषुवापुनः ॥ ११४ ॥ नविलम्बेतशौचार्थंनमुखेनानलंधमेत् ॥ तत्रपुत्रनवस्तव्यंयत्रनास्तिचतुष्टयम् ॥ ११५ ॥ ऋणप्रदातावैद्यश्चश्रोत्रियः सजलानदी ॥ जितामित्रोनृपोयत्रबलवान्धर्मतत्परः ॥११६॥ तत्रनित्यंवसेत्प्राज्ञःकुतःकुनृपतःसुखम् ॥ यत्राप्रधृष्योनृपतिर्यत्रसस्यवतीमही ॥ ११७ ॥ पौराःसुसंयतायत्रसततंन्यायवर्त्तिनः ॥ यत्रामत्सरिणोलोकास्तत्रवासःसुखोदयः ॥ ११८ ॥ यस्मिन्कृषीवलाराष्ट्रेप्रायशोनातिभोगिनः ॥ यत्रौषधान्यशेषाणिवसेत्तत्रविचक्षणः ॥ ११९ ॥ तत्रपुत्रनवस्तव्यंयत्रैतत्रितयंसदा ॥ जिगीषुःपूर्ववैरश्चजनश्चसततोत्सवः ॥ १२० ॥ वसेन्नित्यंसुशीलेषुसहवासिषुपण्डितः ॥ इत्येतत्कथितंपुत्रमयातेहितकाम्यया ॥१२१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेअलर्कानुशासनेसदाचारवर्णनंनामएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

राज्यका राजा दुर्द्धर्ष और जिस स्थानकी भूमि सस्य (धान्य) वती है ॥ ११७ ॥ जहां पौर (पुरवासी) नियममें तत्पर और नित्य न्यायमार्गानुवर्त्ती हैं और जिस स्थानके समस्त मनुष्य मात्सर्यहीन हैं, उस स्थानमें वास करनेसे सुखोदय होता है ॥ ११८ ॥ जिस स्थानके कृषकगण सदा अतिभोगरहित हैं, जिस स्थानमें असंख्य असंख्य औषधी उत्पन्न होती हैं बुद्धिमान् पुरुषको उसी स्थानमें वास करना चाहिये ॥ ११९ ॥ हे पुत्र ! जिस स्थानमें जिगीषु अर्थात् (जीतनेकी इच्छावाले) पूर्वशत्रु और सदा उत्सवोन्मत्त इन तीन प्रकारके मनुष्य वास करते हैं वहां वास करना उचित नहीं है ॥ १२० ॥ सुशील सहवासियोंमें बुद्धिमान्‌को वास करना चाहिये । हे वत्स ! यह मैंने तुम्हारे हितकी कामनासे सब वर्णन किया ॥ १२१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

मदालसा बोली—हे वत्स ! अब वर्ज्यावर्ज्य द्रव्यकी प्रतिक्रियाका वर्णन करतीहूं सुनो—वासी अन्न बहुत दिनका संगृहीत स्नेहद्रव्य ॥ १ ॥ और घीरहित गेहूँका द्रव्य यव और दुग्धविकार (फटा दूध) भोजन न करै, खरगोश, कछुआ, गोय, श्वावित्त (साही—सेही) खड्गी[1] हे पुत्र ! इन सब जीवोंका मांस ॥ २ ॥ भक्षण करसकता है किन्तु ग्राम्यसूकर और ग्रामकुक्कुट (मुरगा) अभक्ष्य हैं अर्थात् इनको भोजन नहीं करना चाहिये ब्राह्मणोंके लिये श्राद्धमें पितृदेवताओंका जो अवशिष्ट रहता है ॥ ३ ॥ वह मांस और यज्ञादिमें प्रोक्षित और औषधार्थ आयाहुआ मांसभोजन दूषणीय नहीं है. शंख, पाषाण, सुवर्ण, चाँदी, रज्जु, वसन ॥ ४ ॥ शाक, मूल, फल, विदल, अन्न, चर्म (चमड़ा) मणि, हीरा, मूँगा, मोती ॥ ५ ॥ और मनुष्य का देह यह सब जलमें धुलनेसे शुद्ध होते हैं धातुपात्र और चमसकी जलसे शुद्धि

॥ मदालसोवाच ॥ ॥ अतःपरंशृणुष्वत्वंवर्ज्यावर्ज्यप्रतिक्रियाम् ॥ भोज्यमन्नंपर्युषितंस्नेहाक्तंचिरसंभृतम् ॥ १ ॥ अस्नेहाश्चापिगोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥ शशकःकच्छपोगोधाश्वावित्खड्गोऽथपुत्रक ॥ २ ॥ भक्ष्याह्येतेतथावर्ज्यौग्रामशूकरकुक्कुटौ ॥ पितृदेवादिशेषश्चश्राद्धेब्राह्मणकाम्यया ॥ ३ ॥ प्रोक्षितंचौषधार्थंचखादन्मांसंनदुष्यति ॥ शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणांरज्जूनामथवाससाम् ॥ ४ ॥ शाकमूलफलानांचतथाविदलचर्मणाम् ॥ मणिवज्रप्रवालानांतथामुक्ताफलस्यच ॥ ५ ॥ गात्राणांचमनुष्याणामम्बुनाशौचमिष्यते ॥ पात्राणांचमसानांचवारिणाशुद्धिरिष्यते ॥ ६ ॥ ताम्रायःकांस्यरैत्यानांत्रपुपःसीसकस्यच ॥ शौचंयथार्थंकर्तव्यंक्षाराम्लोदकवारिणा ॥ ७ ॥ तथायसानांतोयेनग्राव्णःसंघर्षणेनच ॥ सस्नेहानांचभाण्डानांशुद्धिरुष्णेनवारिणा ॥ ८ ॥ शूर्पधान्याजिनानांचमुशलोलूखलस्यच ॥ संहतानांचवस्त्राणांप्रोक्षणात्संचयस्यच ॥ ९ ॥ वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते ॥ तृणकाष्ठौषधीनांचप्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १० ॥ आविकानांसमस्तानांकेशानांचापिमेध्यता ॥ सिद्धार्थकानांकल्केनतिलकल्केनवापुनः ॥ ११ ॥ साम्बुनातातभवतिउपघातवतांसदा ॥ तथाकार्पासिकानांचविशुद्धिर्जलभस्मना ॥ १२ ॥

हो जाती है ॥ ६ ॥ ताँबा, काँसा, राँग, सीसा इनका खटाईके जलसे तथा क्षारसे विधिपूर्वक शौच करना चाहिये ॥ ७ ॥ जलद्वारा लौहमय पदार्थकी घर्षण द्वारा पाषाणकी और स्नेहजलसे घृतयुक्त पात्रकी शुद्धि होती है ॥ ८ ॥ छाजधान्य, मृग, चर्म, मूसल, ओखली और मलीन वस्त्र यह सब वस्तु जलमें प्रोक्षण करनेसे शुद्ध होती हैं ॥ ९ ॥ सब प्रकारका वल्कल और मृत्तिकाभी जलके संयोगसे शुद्ध होती है. तृण काष्ठ और समस्त औषधि जलसे प्रोक्षण करनेपर शुद्ध होतीहैं ॥ १० ॥ मेषके रोमसे बने वस्त्र और केश, इन दोनों वस्तुके किसीप्रकार दूषित होनेपर जलयुक्त सरसोंके कल्क वा तिलकल्कद्वारा शुद्ध करै ॥ ११ ॥ और इनके बिगड-

१ गेंडा ।

नेसे जलद्वारा ही इनकी शुद्धि हो जाती है, तथा जल और भस्मसे कार्पासनिर्मित वस्तुकी शुद्धि होती है ॥ १२ ॥ हाथीदांत और उसकी अस्थि, सींग, इनकी तत्काल वैसेही शुद्धि है, मिट्टीका पात्र दूसरीवार पकानेसे शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ भिक्षालब्ध वस्तु, शिल्पकारका हाथ, बाजारकी वस्तु, स्त्रीजातिका मुख, बालकका मुख, अपना मुख और वृद्धपुरुषका मुख स्वयं पवित्र हैं ॥ १४ ॥ मार्गमें आताहुआ, अविज्ञात, दासवर्गादिद्वारा ताड़नाको प्राप्त हुआ, बहुत दिनोंका अतीत, अनेक बखेडोंवाला और लघुजन वाक्यमात्रसे ही शुद्ध होता है ॥ १५ ॥ बहुत बालक और वृद्ध तथा आतुर मनुष्यका कर्म, यह भी स्वभावसे ही शुद्ध है. कर्मसमापनके पीछे अंगारशाला, जिसका बालक स्तन नहीं छोडता ऐसी स्त्री ॥ १६ ॥ और गंधरहित, बुद्बुदरहित और स्रोतःसंयुक्त जल विशुद्ध है, कालसे तथा

नागदन्तास्थिशृङ्गाणांतत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ पुनःपाकेनभाण्डानांपार्थिवानांचमेध्यता ॥ १३ ॥ शुचिभैक्षंकारुहस्तैःपण्यंयच्चप्रसारितम् ॥ योषिन्मुखंबालमुखमात्मवृद्धमुखंतथा ॥ १४ ॥ रथ्यागतमविज्ञातंदासवर्गादिनाहृतम् ॥ वाक्प्रशस्तंचिरातीतमनेकान्तरितंलघु ॥ १५ ॥ अतिप्रभूतंबालंचवृद्धातुरविचेष्टितम् ॥ कर्मान्ताङ्गारशालाश्चस्तनन्धयसुताःस्त्रियः ॥ १६ ॥ अभ्यस्यचतथावाचःस्रवन्त्योऽनन्धबुद्बुदाः ॥ भूमिर्विशुध्यतेकालाद्दाहमार्जनगोक्रमैः ॥ १७ ॥ लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्चनात् ॥ केशकीटावपन्नेऽघ्रेगोघ्रातेमक्षिकान्विते ॥ १८ ॥ मृदंबुभस्मनातातप्रोक्षितव्यंविशुद्धये ॥ औदुम्वराणामम्लेनक्षारेणत्रपुसीसयोः ॥१९॥ भस्माम्बुभिश्चकांस्यानांशुद्धिःप्लावोद्रवस्यच ॥ अमेध्याक्तस्यमृत्तोयैर्गन्धापहरणेनच ॥ २० ॥ अन्येषांचैवतद्द्रव्यैर्वर्णगन्धापहारतः ॥ चांडालैरंत्यजैश्चैवम्लेच्छैरस्पृश्यजातिभिः ॥२१॥ स्पृष्टमक्षालितंधान्यमनर्हंसर्वकर्मणि ॥ द्रोणादधस्तुयद्धान्यंतस्यायंविधिरुच्यते ॥२२॥

बुहारने और गौके चरनेसे भूमि शुद्ध होजाती है ॥ १७ ॥ लीपनेसे, खुरचनेसे, जल छिडकनेसे तथा मार्जन और अर्चन, इन सबके द्वारा गृहकी शुद्धि करनी चाहिये । हे तात ! मृत्तिका, सलिल और भस्मद्वारा प्रोक्षण करके केश कीटसंयुक्त, गौके सूंघे और मक्षिकायुक्त द्रव्यादिकी शुद्धि करे, गूलरकाष्ठके बने पात्रादिकी खटाईसे, रांग और सीसेकी क्षारसे ॥ १८ ॥ १९ ॥ तथा कांसेकी भस्म और जलसे शुद्धि करनी चाहिये, जो सब द्रव्य अमेध्य वस्तुसे संसक्त हो मिट्टी और जलद्वारा उनकी गंध दूर करनेपर ॥ २० ॥ एवं अन्यान्य वस्तुका वर्ण और गंध दूर करनेसे वह शुद्ध होता है। चाण्डाल, अन्त्यज, म्लेच्छ और छूनेके अयोग्य जातियोंसे ॥ २१ ॥ छुआ और धोया धान्य सब कार्योंमें अयोग्य हैं, यह द्रोणसे कमती धान्यमें

जानना ॥ २२ ॥ और जो धान्य द्रोण[1]परिमाणसे अधिक हो, वह प्रोक्षणसेही शुद्ध हो जाता है, गलीमें पड़ेहुए धान्यको देखकर यत्नसे प्रणाम करना चाहिये ॥ २३ ॥ और उसे उठाकर शिरपर धरे, अन्यथा लक्ष्मी क्रोध करती है, जितने जलमें गौकी तृप्ति हो सकती है जो अपने स्वभावमें स्थित हो, पृथ्वीमें हो ॥ २४ ॥ और चाण्डाल तथा क्रव्याद द्वारा मारेहुए जीवोंका मांस भी शुद्ध कहा गया है हे वत्स ! गलियोंमें पड़े पुराने वस्त्र वायुद्वाराही शुद्ध होते हैं ॥ २५ ॥ धूलि, अग्नि, अश्व, गौ, छाया, सूर्यादिकी किरणें, वायु, पृथ्वी, जलकी बूँदें और मक्खी इत्यादि दुष्टके संसर्गसे भी दूषित नहीं होतीं अर्थात् इनका स्पर्श अपवित्र स्थानोंपर रहनेसे भी यह शुद्ध है ॥ २६ ॥ बकरी और अश्वका मुख पवित्र है. गोवत्सका मुख अपवित्र है, गौका मल, मूत्र, माताका दूध और पक्षीका गिराया फल पवित्र है ॥ २७ ॥ आसन, शय्या, यान, नौका मार्ग में स्थित तृण, चंद्र सूर्यके किरण और वायु, यह सब बाजारके द्रव्यकी समान शुद्ध हैं ॥ २८ ॥

द्रोणादूर्ध्वंतुयद्धान्यंप्रोक्षणादेवशुध्यति ॥ रथ्यासुपतितंधान्यंदृष्ट्वायत्नेनवंदयेत् ॥ २३ ॥ उद्धृत्यमूर्ध्नाचादद्याल्लक्ष्मीर्नश्यतिचान्यथा ॥ शुचिगोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थंमहीगतम् ॥ २४ ॥ तथामांसंचचंडालक्रव्यादादिनिपातितम् ॥ रथ्यागतंचचेलादितातवाताच्छुचिस्मृतम् ॥ २५ ॥ गजोऽग्निरश्वोगौश्छायारश्मयःपवनोमही ॥ विप्रुषोमक्षिकाद्याश्चदुष्टसङ्गाददोषिणः ॥ २६ ॥ अजाश्वौमुखतोमेध्यौनगोर्वत्सस्यचाननम् ॥ मातुःप्रस्रवणंमेध्यंशकुनिःफलपातने ॥ २७ ॥ आसनंशयनंयानंनावःपथितृणानिच ॥ सोमसूर्यांशुपवनैःशुध्यन्तेतानिपण्यवत् ॥ २८ ॥ रथ्याप्रसर्पणेस्नानेक्षुतपानान्नकर्मसु ॥ आचामेतयथान्यायं वासोविपरिधायच ॥ २९ ॥ स्पृष्टानामप्यसंस्पृश्यैर्विरथ्याकर्दमांभसाम् ॥ पंकेष्टरचितानांचमेध्यतावायुसंगमात् ॥ ३० ॥ प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्यसंत्यजेत् ॥ शेषस्थप्रोक्षणंकुर्यादाचम्याद्भिस्तथामृदा ॥ ३१ ॥ उपवासस्त्रिरात्रंतुदुष्टभक्ष्याशिनोभवेत् ॥ अज्ञातेज्ञानपूर्वंतुतद्दोषोपशमेनतु ॥ ३२ ॥

मार्गभ्रमण, स्नान, छींक, पान और मलमूत्रविसर्जन, इन सब कार्योंके पीछे तथा वस्त्रपरिवर्त्तनके पीछे यथाविधि आचमन करना चाहिये ॥ २९ ॥ मार्गकी कीच, जल, ईंट और कीचसे लिप्त द्रव्यादिके संसर्गदोषसे दूषित होनेपर वह वायुके संसर्गसे शुद्ध होता है ॥ ३० ॥ अन्नका ढेर यदि किसीप्रकारसे दूषित होजाय तो उसका अग्रभाग पृथक् करके त्याग करै फिर जल और मृत्तिकाद्वारा आचमनकर शेष अंश जल छिडकनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३१ ॥ विना जाने दुष्टान्नभोजन करनेपर तीन रात्रि उपवासी रहै और जान पूछकर भोजन करनेसे विधानानुसार उस दोषके

१ बत्तीस सेरका एक द्रोण होताहै ।

शान्त करनेको प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ३२ ॥ ऋतुमती स्त्री श्वान, गीदड़, आदि सूतिका चाण्डाल और शववाहक अर्थात् मृतक उठाने वाला इन सबका स्पर्श होनेपर स्नान करके शुद्ध होताहै ॥ ३३ ॥ स्नेहयुक्त मनुष्यके अस्थिका स्पर्श होनेसे स्नानकर शुद्ध होता है। और स्नेहरहित अस्थिस्पर्श करनेपर आचमन करके गोस्पर्श और सूर्यका दर्शन करनेसे ही शुद्ध होताहै ॥ ३४ ॥ रुधिर, खखार और उबटन उल्लंघन करना उचित नहीं है बुद्धिमान् पुरुष कभी असमय उद्यानादिमें स्थिति न करै ॥ ३५ ॥ निन्दित और अवीरा नारीके संग बात करनाभी अनुचित है, उच्छिष्ट मल मूत्र और पैरों का धोयाहुआ जल घरके बाहर फेंकना चाहिये ॥ ३६ ॥ पंचपिंड विना उद्धार किये जलमें स्नान न करै। देवखात, गंगा, ह्रद और नदी, इन समस्त जल स्नान करै ॥ ३७ ॥ जो व्यक्ति देवता, पितृ, सच्छास्त्र, यज्ञ, मंत्र इत्यादिक निन्दा करते हैं, हे पुत्र! उनके संग बातचीत वा उनको स्पर्श करनेपर सूर्यका

उदक्याश्वशृगालादीन्सूतिकान्त्यावसायिनः ॥ स्पृष्ट्वास्नायीतशौचार्थंतथैवमृतहारिणः ॥३३॥ नारंस्पृष्ट्वास्थिसस्नेहंस्नातःशुध्यतिमानवः ॥ आचम्यैवतुनिःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्यवा ॥३४॥ नलंघयेत्तथैवासृक्ष्ठीवनोद्वर्तनानिच ॥ नोद्यानादौविकालेषुप्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥ ३५ ॥ नचालपेज्जनद्विष्टांवीरहीनांतथास्त्रियम् ॥ गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसिक्षिपेद्बहिः ॥३६॥ पंचपिण्डाननुद्धृत्यनस्नायात्परवारिणि ॥ स्नायीतदेवखातेषुगंगाह्रदसरित्सुच ॥३७॥ देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञमन्त्रादिनिन्दकैः ॥ कृत्वातुस्पर्शनालापंशुध्येतार्कावलोकनात् ॥ ३८ ॥ अवलोक्यतथोदक्यामन्त्यजंपतितंशवम् ॥ विधर्मिसूतिकाषण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः ॥३९॥ मृतनिर्यातकाश्चैवपरदाररताश्चये ॥ एतदेवहिकर्तव्यंप्राज्ञैःशोधनमात्मनः ॥ ४० ॥ अभोज्यसूतिकाषण्डमार्जाराखुश्वकुक्कुटान् ॥ पतिताविद्धचण्डालमृतहारांश्चधर्मवित् ॥४१॥ संस्पृश्यशुध्यतेस्नानादुदक्याग्रामसूकरौ ॥ तद्वच्चसूतिकाशौचदूषितौपुरुषावपि ॥ ४२ ॥ (अतःपरंशृणुष्वत्वंस्त्रीधर्मान्ननुविस्तरात् ॥ उदुंबरेवसेन्नित्यंभवानीसर्वदेवता ॥ ४३ ॥ ततःसाप्रत्यहंपूज्यागन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ अशून्यादेहलीकार्याप्रातःकालेविशेषतः ॥४४॥

दर्शन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥ ऋतुमती स्त्री, अन्त्यज, (चाण्डालादि) पतिता, शव, विधर्मी, सूतिका (नवप्रसूता) नपुंसक, विवस्त्र पुरुष, अन्त्यावसायी ॥ ३९ ॥ सूतनिर्यातक (प्रसवसंबंधीय) द्रव्यादिका बाहर निकालनेवाला और परस्त्रीपरायण, इन सबका दर्शन करनेपर सूर्यका दर्शन करके शुद्धिलाभ करना बुद्धिमान् मनुष्यका कर्त्तव्य है ॥ ४० ॥ अभक्ष्य द्रव्य, नवप्रसूता नारी, नपुंसक, मार्जारी (बिलाई) चूहा, कुत्ता, मुरगा, पतित, आविद्ध (पितामाताके द्वारा त्यागा हुआ व्यक्ति वा परित्यक्त दूषित द्रव्यादि) चाण्डाल, मृतहारी ॥ ४१ ॥ रजस्वला स्त्री, ग्राम्य सूकर और सूतिकाशौचदूषितव्यक्ति, इन सबका स्पर्श करनेपर स्नान करके शुद्ध होताहै ॥ ४२ ॥ अब तुम विस्तारसहित स्त्रीधर्मको सुनो भवानी और सब देवता नित्य गूलरमें वसते हैं ॥ ४३ ॥ गंध, पुष्प और अक्षत आदिसे

विशेष करके प्रातःकालके समय देहलीको शून्य न रक्खै जिस पुरुषकी देहली शून्य रहती है, उसका कुलभी शून्य होजाताहै उनका नित्य पूजन करना चाहिये । देहलीको चरणसे स्पर्श करना और विना पूजे लाँघना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ऐसा करनेसे नरक होता है इस कारण उल्लंघन न करै, बरन प्रातःकालमें स्त्रियोंको गोबरसे लीपना चाहिये ॥ ४६ ॥ क्योंकि प्रतिदिन घर लीपनेसे दुःख दिखाई नहीं देता बुहारी दिये बिना जिसके घरमें सूर्यकी किरण पडती हैं ॥ ४७ ॥ उससे पितर देवता और माता विमुख होजाती हैं रात्रिके पिछले पहरमें जो धान्यका संस्कार इत्यादि करती हैं ॥ ४८ ॥ वह अज्ञानताके कारण ऐसा करनेसे जन्म जन्ममें बाँझ होती हैं और जो स्त्रियें संध्या होनेपर घरमें बुहारी नहीं देती॥४९॥वह जन्म जन्ममें स्वामी और धनसे हीन होतीं हैं और जो मनुष्य लिपी भूमिमें

यस्यशून्याभवेत्सातुशून्यंतस्यकुलंभवेत् ॥ पादस्यस्पर्शनंतत्रअसंपूज्यचलंघनम् ॥ ४५ ॥ कुर्वन्नरकमाप्नोतितस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ प्रातःकालेस्त्रियाकार्यं गोमयेनानुलेपनम् ॥ ४६ ॥ प्रत्यहंसदनेतस्मान्नैवदुःखानिपश्यति ॥ स्पृशंतिरश्मयोयस्यगृहंसंमार्जनाहते ॥ ४७ ॥ भवन्तिविमुखास्तस्यपितरोदेवमातरः ॥ निशायाःपश्चिमेयामेधान्यसंस्करणादिकम् ॥ ४८ ॥ कुरुतेयातुमोहेनवंध्याजन्मनिजन्मनि ॥ सन्ध्याकालेतुसम्प्राप्तेमार्जनंनकरोतिया ॥ ४९ ॥ भर्तृहीनाभवेत्सातुनिःस्वाजन्मनिजन्मनि ॥ अकृतस्वस्तिकांयातुकामलिप्तांचमेदिनीम् ॥ ५० ॥ तस्याःस्त्रियाविनश्यन्तिवित्तमायुर्यशस्तथा ॥ मार्जनीचुल्लिकाष्ठीवद्दृषदश्चोपलंतथा ॥ ५१ ॥ नाक्रमेदंघ्रिणाजातुपुत्रदारधनक्षयात् ॥ उलूखलंचमुसलंतथाचैवतुघर्षणम् ॥ ५२ ॥ पदाक्रमणात्पापीयान्नाप्नोत्युत्तमतांगतिम् ॥ भिन्नासनंयोगपट्टंतथैवमृगचर्मच ॥ ५३ ॥ कृष्णाविकंतथातातवर्जयेत्पुत्रवान्गृही ॥ दक्षिणाभिमुखोयस्तुविदिक्संमुखएवच ॥ ५४ ॥ केशान्संस्कुरुतेमर्त्योधननाशंचविन्दति ॥ अनूढस्तुनकुर्वीतभुक्त्वादन्तविशोधनम् ॥ ५५ ॥ पादुकारोहणंचैवतिलैश्चापिसतर्पणम् ॥ नजीवत्पितृकः कुर्यादर्धकक्षोत्तरीयकम् ॥ ५६ ॥

स्वस्तिवाचन नहीं करता है ॥५०॥ उसकी स्त्री तथा धन आयु और यशका नाश होजाता है बुहारी, चूल्हा, सिलबट्टा ॥ ५१ ॥ इन्हें पैरसे कभी आक्रमण न करै करनेसे पुत्र स्त्री और धनका क्षय होता है. इसी प्रकार ओखली तथा मूशलके वृथा घर्षणसे ॥ ५२ ॥ और चरणसे आक्रमण करनेपर पुरुष पापी होकर उत्तम गतिको प्राप्त नहीं होता. टूटे हुए आसन, योगपट्ट तथा मृगचर्म॥५३॥और काला कम्बल, हे तात ! इन वस्तुओंका पुत्रवान् पुरुषको सेवन नहीं करना चाहिये जो पुरुष दक्षिणकी ओरको मुख करके अथवा विदिशाओंकी ओरको मुख करके ॥ ५४ ॥ बालोंका संस्कार करता है, उसके धनका नाश होजाता है, काँरे बालकको भोजन करके दांत कुरदने उचित नहीं है ॥ ५५ ॥ खडाऊंपर चढना तिलोंसे तर्पण आधी धोती शिरसे ओढना जिसका पिता जीवित हो, वह इन बातों

को न करै ॥ ५६ ॥ वह पुरुष अमावसमें श्राद्ध और तदर्थ स्नान न करै, खडाऊंपर न चढै, योगपट्ट ॥ ५७ ॥ गयाश्राद्ध, यह जीवितपितावाला न करै, दीपककी बहेडेकी और कुरंटकी छाया ॥ ५८ ॥ जीनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदा त्यागनी चाहिये और जो पुरुष धोतीसे शिरकी हवा करते हैं ॥ ५९ ॥ स्थाली चर्म और सूर्पसे जो हवा करते हैं, उनका पुण्य नष्ट होजाताहै. अलर्क बोले तुमने जो यह सूतिकादिक भोज्य कहेहैं ॥ ६० ॥ सो अब मैं तुमसे इनके यथार्थ लक्षण सुननेकी इच्छा करताहूं । मदालसा बोली—जो ब्राह्मणी ब्राह्मणकी स्त्री हुई है अर्थात् ब्राह्मणने उसे करलियाहै ॥ ६१ ॥ वह दोनों सूतिका और उनका अन्न गर्हित है । जो पुरुष समयपर हवन, भोजन और दान नहीं करता ॥ ६२ ॥ जो पितर और देवताकी पूजासे हीन है. वह षण्ढ कहलाताहै । और जो मनुष्य दिखाईके लिये

दर्शश्राद्धंनकुर्वीतदर्शस्नानंकथंचन ॥ पादुकारोहणंचैवयोगपट्टकमेवच ॥ ५७ ॥ नजीवत्पितृकःकुर्याद्गयाश्राद्धंतथैवच ॥ दीपभांडमयीच्छायाविभीतककुरंटजा ॥५८॥ वर्जनीयासदापुत्रयदिजीवितुमिच्छति ॥ अधोवस्त्रेणयोवायुंकुरुतेशिरसिद्विजः ॥ ५९ ॥ स्थालेनचर्मशूर्पाभ्यांसुकृतंतस्यनश्यति ॥) ॥ अलर्कउवाच ॥ ॥ भवत्याकीर्तिताभोज्यायएतेसूतिकादयः ॥ ६० ॥ अमीषांश्रोतुमिच्छामितत्त्वतोलक्षणानिह ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ब्राह्मणी ब्राह्मणस्येहयावरोधत्वमागता ॥ ६१ ॥ तावुभौसूतिकेत्युक्तौतयोरन्नंविगर्हितम् ॥ नजुहोत्युचितेकालेनाश्नातिनददातिच ॥ ६२ ॥ पितृदेवार्चनाद्धीनः षंढःसपरिगीयते ॥ दंभार्थंयजतेयश्चतप्यतेचतपस्तथा ॥ ६३ ॥ नपरार्थमिहेत्युक्तः समार्जारःस्मृतोबुधैः ॥ विभवेसतिनैवात्तिनददातिजुहोतिच ॥ ६४ ॥ तमाहुराखुस्तस्यान्नंभुक्त्वाकृच्छ्रेणशुद्ध्यति ॥ सभागतानांमर्त्यानांपक्षपातंसमाश्रयेत् ॥ ६५ ॥ तमाहुःकुक्कुटंदेवास्तस्याप्यन्नंविगर्हितम् ॥ स्वधर्मंयःसमुच्छिद्यपरधर्मंसमाश्रयेत् ॥ ६६ ॥ अनापदिसविद्वद्भिःपतितःपरिकीर्तितः ॥ देवत्यागीगुरुत्यागीगुरुपत्न्युज्झकस्तथा ॥ ६७ ॥ गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धःप्रचक्षते ॥ येषांकुलेनवेदोस्तिनशास्त्रंनैवचव्रतम् ॥६८॥तेनग्नाःकीर्तिताःसद्भिस्तेषामन्नंविगर्हितम् ॥ आशाकर्त्तुस्त्वदाताचदातुश्चप्रतिषेधकः ॥ ६९ ॥

तप और हवन करता है ॥ ६३ ॥ वह परमार्थ नहीं है, पण्डितोंने उसको मार्जार कहाहै । धन होनेपर जो हवन, दान और भोजन नहीं करता ॥ ६४ ॥ उसे चूहा कहाहै उसका अन्न भोजन करनेपर व्रत करनेसे शुद्ध होता है.जो पुरुष सभामें प्राप्तहुए मनुष्योंका पक्षपात करताहै ॥ ६५ ॥ उसको देवताओंने कुक्कुट (मुरगा) कहाहै. उसका अन्नभी गर्हित है । जो पुरुष अपना धर्म छोडकर पराये धर्मका आश्रय करताहै ॥ ६६ ॥ वह पुरुष आपत्तिके विना ऐसा करनेसे पतित कहा गयाहै । देवत्यागी, गुरुत्यागी, गुरुस्त्रीत्यागी ॥ ६७ ॥ गौ ब्राह्मण और स्त्रीका वध करनेवाला अपविद्ध कहलाता है. जिन पुरुषोंके कुलमें वेद, शास्त्र और व्रत नहीं हैं ॥ ६८ ॥ पण्डितोंने उनको नग्न कहाहै. उनका अन्नभी निन्दित है आशा कराकर फिर न दे अथवा देनेवालेसे निषेध करदे ॥ ६९ ॥

जो पुरुष शरणमें आयेहुएको छोडताहै वह नराधम चण्डाल होताहै. जो बांधव साधु और ब्राह्मणों से त्यागागया है ॥७०॥ जो वर्णसंकरके यहां भोजन करता है वह चान्द्रायण करनेसे शुद्ध होताहै, जो नित्य और नैमित्तिक कर्मकी हानि करताहै ॥ ७१ ॥ वह भोजन करने उपरान्त तीन रात व्रत करनेसे शुद्ध होताहै. जिस घरमें नित्यकर्मकी प्रतिदिन हानि होतीहै,और जो ब्राह्मणों से त्यागाहुआहै, वह पापी मनुष्योंमें अधम है ॥ ७२ ॥ नित्यकर्मकी कभी हानि न करै. नित्यकर्मका अनुष्ठान करनेसे मरण जन्ममें संघटित होताहै. केवल मात्र मरण कालमें और जन्मकालमें नित्यकर्मका अनुष्ठान न करनेसे कोई दोष नहीं होता॥ ॥ ७३ ॥ जन्माशौच और मरणाशौचमें ब्राह्मणगण दश दिनतक दान होमादि नित्यकर्मसे रहित होकर स्थित रहैं और क्षत्रियगण बारह दिन वैश्यगण पंद्रहदिन ॥

शरणागतंयस्त्यजतिसचांडालोनराधमः ॥ योवांधवैःपरित्यक्तःसाधुभिर्ब्राह्मणैरपि ॥ ७० ॥ कुंडाशीयश्चतस्यान्नंभुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ॥ योनित्यकर्मणोहानिंकुर्यान्नैमित्तिकस्यच ॥ ७१ ॥ भुक्त्वान्नंतस्यशुद्ध्यैचत्रिरात्रोपोषितोनरः ॥ यस्यचानुदिनंहानिर्गृहेनित्यस्यकर्मणः ॥ यश्चब्राह्मणसन्त्यक्तःकिल्विषीसनराधमः ॥ ७२ ॥ नित्यस्यकर्मणोहानिंनकुर्वीतकदाचन ॥ तस्यत्वकरणेवन्धःकेवलंमृतजन्मसु ॥ ७३ ॥ दशाहंब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमादिवर्जितः ॥ क्षत्रियोद्वादशाहंचवैश्योमासार्द्धमेवच ॥ ७४ ॥ शूद्रस्तुमासमासीतनित्यकर्मविवर्जितः ॥ रोगग्रहादिविधिनानित्यकर्मविधिच्युतः ॥ ७५ ॥ पादकृच्छ्रंततः कृत्वागांदत्त्वाशुद्धिमाप्नुयात् ॥ ततःपरंनिजंकर्मकुर्युःसर्वेयथोदितम् ॥ ७६ ॥ प्रेतायसलिलंदेयंवहिर्गेहाच्चगोत्रिकैः ॥ प्रथमेऽह्नितृतीयेवासप्तमेनवमेतथा ॥ ॥ ७७ ॥ भस्मास्थिचयनंकार्यंचतुर्थेगोत्रिकैर्दिने ॥ ऊर्ध्वंसंचयनात्तेषामङ्गस्पर्शोविधीयते ॥ ७८ ॥ सोदकैस्तुक्रियाःसर्वाःकार्याःसंचयनात्परम् ॥ स्पर्शएवसपिण्डानांमृताहनितथोभयोः ॥ ७९ ॥ वृक्षाहिगोदंष्ट्रिशस्त्रतोयोद्बंधनवह्निषु ॥ विषप्रपातादिमृतेप्रायोनाशकयोरपि ॥ ८० ॥

॥ ७४ ॥ और शूद्रगण एक मासतक इसी प्रकारके आचरणमें रहैं. रोग और ग्रहादिकी बाधामें भी नित्यकर्मकी विधि छूट जाती है ॥ ७५ ॥ उसमें पादकृच्छ्र व्रत करै और गोदान करनेसे शुद्ध होताहै. इसके पीछे शास्त्रोक्तविधानसे सब अपनेअपने कार्यका अनुष्ठान करै ॥ ७६ ॥ सगोत्रीयगण बहिर्भागमें मृतदेह दग्धकर प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और नवम दिनमें प्रेतके उद्देश्यसे जलदान करैं ॥ ७७ ॥ चौथे दिनमें भस्म और अस्थिचयन करना चाहिये और अस्थिसंचयनके पीछे उसका अंग स्पर्श करना उचित है ॥ ७८ ॥ संचयके पीछे समानोदक पुरुष सब क्रिया समापन करै मृत दिवसमें सपिण्ड और समानोदक व्यक्तिका स्पर्श करना चाहिये ॥ ७९ ॥ शस्त्र, जल, बन्धस्थान, वह्नि, विष और पर्वतसे गिरने प्रायोपवेशन करने और अनशन करने इत्यादिमें मृत्यु होनेपर सगोत्र और समानोदक व्यक्तिका एक दिन आशौच होताहै ॥ ८० ॥

बालक देशान्तरवासी और प्रव्रज्याश्रमीकी मृत्यु होनपर तत्काल शौच होता है किसी किसीके मतसे त्रिरात्र आशौचकी व्यवस्था है ॥ ८१ ॥ फिर० इनकी और्ध्वदेहिका क्रिया और जलदान नहीं होता गर्भस्रावमें भी यही विधि है पूर्णकालमें शुद्धि होतीहै ॥ ८२ ॥ ब्राह्मणोंके यहां गर्भपातमें एक दिनरात क्षत्रियोंके तीन दिन वैश्योंके छः दिन और शूद्रोंकी बारह दिनमें शुद्धि होतीहै ॥ ८३ ॥ एक पुरुषके मरनेपर उसीके आशौचमें अपर किसी सपिंडकी मृत्यु होनेपर प्रथम पुरुषके मृत दिनकी गणनामें परव्यक्तिकी आशौचशुद्धिक्रिया पूर्णकरे ॥ ८४ ॥ जन्माशौचमेंभी सपिण्ड और समानोदक पुरुषकी इसीप्रकार विधि निर्दिष्ट है ॥ ८५ ॥ पुत्र उत्पन्न होनेपर पिताको सवस्त्र स्नान करना चाहिये और मृत्युमें सब बंधु सवस्त्र स्नान करें, यह भगवान् भृगुने कहा है ॥ ८६ ॥ यदि एकके जन्म ग्रहण

बालेदेशान्तरस्थेचतथाप्रव्रजितेमृते ॥ सद्यःशौचमथान्यैश्चत्र्यहमुक्तमशौचकम् ॥ ८१ ॥ नैवौर्ध्वदेहिकंकार्यंनचकार्योदकक्रिया ॥ गर्भस्रावेतदेवोक्तंपूर्णकाले नशुध्यति ॥ ८२ ॥ ब्राह्मणानामहोरात्रंक्षत्रियाणांदिनत्रयम् ॥ षड्रात्रमपिवैश्यानांशूद्राणांद्वादशाह्निकम् ॥ ८३ ॥ सपिण्डानांसपिण्डस्तुमृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि ॥ पूर्वाशौचसमाख्यातैःकार्यातस्यदिनैःक्रिया ॥ ८४ ॥ एवएवविधिर्दृष्टोजन्मन्यपिहिसूतके ॥ सपिण्डानांसपिण्डेषुयथावत्सोदकेषुच ॥ ८५ ॥ जातेपुत्रे पितुःस्नानंसचैलंतुविधीयते ॥ मृतेहिसर्वबन्धूनामित्याहभगवान्भृगुः ॥ ८६ ॥ तत्रापियदिचान्यस्मिञ्जातेजायेतचापरः ॥ तत्रापिशुद्धिरुद्दिष्टापूर्वजन्मवतो दिनैः ॥ ८७ ॥ दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यैर्दिनैर्गतैः ॥ स्वाःस्वाःकर्मक्रियाःकुर्युःसर्ववर्णायथाविधि ॥ ८८ ॥ प्रेतमुद्दिश्यकर्त्तव्यमेकोद्दिष्टंततःपरम् ॥ सपिंडीकरणंचैवकार्यमावत्सरान्नरैः ॥ ८९ ॥ ततःपितृत्वमापन्नेदर्शपूर्णादिभिस्त्रिभिः ॥ प्रीणयंस्तस्यकर्तव्यंयथाश्रुतिनिदर्शनम् ॥ ९० ॥ दानानिचैवदेया निब्राह्मणेभ्योमनीषिभिः ॥ यद्यदिष्टतमंलोकेयच्चास्यदयितंगृहे ॥ ९१ ॥ तत्तद्गुणवतेदेयंतदेवाक्षयमिच्छता ॥ प्रेतंप्रेतंसमुद्दिश्यभूमिधेन्वादिकंस्वकम् ॥ ९२ ॥ दद्याद्येनास्यसंप्रीताःपितरःसंतिपुत्रक ॥ पूर्णैस्तुदिवसैःस्पृष्ट्वासलिलंवाहनायुधम् ॥ ९३ ॥

करनेपर अन्य एक जन्म ले तो पहिलेके जन्मकी शुद्धिके दिन उसकीभी शुद्धि हो सकतीहै ॥ ८७ ॥ ब्राह्मणादि समस्त वर्णही विधानानुसार दशदिन, बारह दिन, पक्ष और एक मासका अवलम्बन करके निज निज वर्णके अनुसार कार्यादि निर्वाह करे ॥ ८८ ॥ फिर प्रेतके उद्देश्यसे एकोद्दिष्ट करना चाहिये और वर्ष दिनतक सपिण्डीकरण करलेना चाहिये ॥ ८९ ॥ अनन्तर प्रेतके पितृत्व प्राप्त होनेमें दर्शपौर्णमासको वेदानुसार पितरकी तृप्ति करनी चाहिये ॥ ९० ॥ और ब्राह्मणोंके निमित्त दान देने चाहिये, जो जो लोकमें इष्ट और अपनेको प्रिय हो वा प्रिय वस्तु घरमें हो ॥ ९१ ॥ वह अक्षयकी इच्छा करनेवालेको गुणीके निमित्त देनी चाहिये प्रेतके उद्देश्यसे भूमि धेनु आदि ॥ ९२ ॥ देनेसे पितर संतुष्ट होते हैं. हे पुत्र ! फिर आशौचके पूर्ण होनेपर सलिल, सवारी और शस्त्रका स्पर्श करके ॥ ९३ ॥

तथा चाबक, दण्ड स्पर्शकर सब वर्ण क्रमानुसार निज निज कार्य करैं अपने वर्णानुसार क्रिया करनेसे मंगल होता है ॥ ९४ ॥ और पवित्र होकर क्रिया करनेसे दोनों लोकमें मंगल होता है. बुद्धिमानको नित्य प्रति तीन वेदका पाठ करना चाहिये ॥ ९५ ॥ धर्मानुसार धन उपार्जन करके यत्नसहित यज्ञका अनुष्ठान करै और हे पुत्र ! जिससे आत्मा निन्दित न हो वह कर्म करै ॥ ९६ ॥ जो महाजनोंके समीप गोपनीय नहीं है, निःशंक होकर ऐसे कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये. हे वत्स ! गृहस्थाश्रमी इसप्रकार आचरण करनेसे धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्गलाभ और इस लोक तथा परलोक दोनोंमें कल्याणलाभ करते हैं॥९७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जडने कहा । जननीके इसप्रकार अनुशासन करनेपर ऋतध्वजनंदनने यौव

प्रतोददण्डौचतथासम्यग्वर्णाःकृतक्रियाः ॥ स्ववर्णधर्मनिर्दिष्टमुपादानंतथाक्रियाः ॥ ९४ ॥ कुर्युःसमस्ताःशुचिनःपरत्रेहचभूतिदाः ॥ अध्येतव्यात्रयी नित्यंभवितव्यंविपश्चिता ॥ ९५ ॥ धर्मतोधनमाहार्यंयष्टव्यंचापियत्नतः ॥ यच्चापिकुर्वतोनात्माजुगुप्सामेतिपुत्रक ॥ ९६ ॥ तत्कर्त्तव्यमशंकेनयन्नगोप्यं महाजने ॥ एवमाचरतोवत्सपुरुषस्यगृहेसतः ॥ धर्मार्थकामसंप्राप्त्यापरत्रेहचशोभनम् ॥ ९७ ॥ ॥ इतिश्रीमार्कंडेयपुराणेऽलर्कानुशासनेधर्माधर्मनिरूपणं नामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जडउवाच ॥ ॥ सएवमनुशिष्टःसन्मात्रासंप्राप्ययौवनम् ॥ ऋतध्वजसुतश्चक्रेसम्यग्दारपरिग्रहम् ॥ १ ॥ पुत्रांश्चोत्पादयामासयज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः ॥ पितुश्चसर्वकालेषुचकाराज्ञानुपालनम् ॥ २ ॥ ततःकालेनमहतासंप्राप्यचरमंवयः ॥ चक्रेऽभिषेकंपुत्रस्यत स्यराज्येऋतध्वजः ॥ ३ ॥ भार्ययासहधर्मात्मायियासुस्तपसेवनम् ॥ अवतीर्णोमहीरक्षोमहाभागोमहीपतिः ॥ ४ ॥ मदालसाचतनयंप्राहेदंपश्चिमंवचः ॥ कामोपभोगसंसर्गप्रहाणायसुतस्यवै ॥ ५ ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ यदादुःखमसह्यंतेप्रियबन्धुवियोगजम् ॥ शत्रुबाधोद्भवंवापिवित्तनाशात्मसंभवम् ॥ ६ ॥ भवेत्तत्कुर्वतो राज्यंगृहधर्मावलम्बिनः ॥ दुःखायतनभूतोहिममत्वालम्बनोगृही ॥ ७ ॥

नको प्राप्त हो सम्यक् विधानानुसार विवाह किया ॥ १ ॥ क्रमशः पुत्र उत्पादन और विविध यज्ञका अनुष्ठानपूर्वक निरन्तर पिताकी आज्ञामें रहनेलगे ॥ २ ॥ अनन्तर दीर्घकाल बीतनेपर जब चरम अवस्था उपस्थित हुई, तब धर्मात्मा महाभाग महीपति ऋतध्वजने तपस्याके लिये स्त्रीसहित वनमें जानेकी इच्छा करके पुत्रको युवराज्यपदमें अभिषिक्त किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ तब मदालसा पुत्रका कामभोग निवृत्त करनेकी अभिलाषासे शेष वचनोंके द्वारा इसप्रकार कहनेलगी ॥ मदालसा बोली—जब तुमको प्रिय वा बन्धुके वियोगका असह्य दुःख प्राप्त हो वा शत्रुबाधा वा धननाशसे दुःख हो ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे वत्स ! गृहस्थ सदाही ममतापरायण

है, सुतरां स्वाभाविकही दुःखका आस्पदस्वरूप है. इसी कारण कहतीहूं कि, गृहस्थ धर्मावलम्बी होकर राज्यशासन करते करते दुःसह दुःख उपस्थित हो, तिस समय मेरी दीहुई इस अंगुलीयसे पत्र बाहर करके इसके मध्यस्थ सूक्ष्माक्षरोंसे लिखित शासन पाठ करना ॥ ७ ॥ ८ ॥ जडने कहा– मदालसाने इसप्रकार कहकर अपनी सुवर्णकी अँगूठी प्रदानपूर्वक पुत्रको गृहस्थके उपयुक्त आशिर्वाददिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर कुवलयाश्व पुत्रको राज्यप्रदानपूर्वक तपस्यार्थ देवी मदालसाके सहित वनमें चलेगये ॥ १० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ जड़ने कहा–धर्मात्मा अलर्कके न्यायानुसार पुत्रके समान प्रजापालन करनेसे उन्होंने परम आनन्द प्राप्त किया और सब स्वस्वविहित कार्यानुष्ठानमें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥ उन्होंने दुष्ट पुरुषोंको दंडविधान और शिष्टपुरुषोंका पालन करके परमानंदलाभ और अनेक प्रकारके श्रेष्ठ यज्ञ संपादन किये ॥ २ ॥ कालक्रमसे

तदास्मात्पुत्रनिष्कृष्यमदत्तादंगुलीयकात् ॥ वाच्यंतेशासनंपट्टेसूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥ ८ ॥ जडउवाच ॥ इत्युक्काप्रददौतस्मैसौवर्णंसांगुलीयकम् ॥ आशिषश्चापियायोग्याःपुरुषस्यगृहेसतः ॥ ९ ॥ ततःकुवलयाश्वोऽसौसाचदेवीमदालसा ॥ पुत्रायदत्त्वातद्राज्यंतपसेकाननंगतौ ॥१०॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ जडउवाच ॥ सोऽप्यलर्कोयथान्यायंपुत्रवन्मुदिताःप्रजाः ॥ पालयामासधर्मात्मास्वेस्वेकर्मण्यवस्थिताः ॥ ॥ १ ॥ दुष्टेषुदंडंशिष्टेषुसम्यक्चपरिपालनम् ॥ कुर्वन्परांमुदंलेभेइयाजचमहामखैः ॥ २ ॥ अजायंतसुताश्चास्यमहाबलपराक्रमाः ॥ धर्मात्मानो महात्मानोविमार्गपरिपन्थिनः ॥ ३ ॥ चकारसोऽर्थंधर्मेणधर्ममर्थेनवापुनः ॥ तयोश्चैवाविरोधेनबुभुजेविषयानपि ॥ ४ ॥ एवंबहूनिवर्षाणितस्यपालयतो महीम् ॥ धर्मार्थकामसक्तस्यजग्मुरेकमहर्यथा ॥५॥ वैराग्यंनास्यसंजज्ञेभुंजतोविषयान्प्रियान् ॥ नचाप्यलमभूत्तस्यधर्मार्थोपार्जनंप्रति ॥ ६ ॥ तंतथाभोगसंसर्गप्रमत्तमजितेन्द्रियम् ॥ सुबाहुर्नामशुश्रावभ्रातातस्यवनेचरः ॥७॥ तंबुबोधयिषुःसोऽथचिरंध्यात्वामहामतिः ॥ तद्वैरिसंश्रयंतस्यश्रेयोऽमन्यतभूपतेः ॥८॥

उनके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। वह सब महाबल पराक्रान्त, धर्मात्मा महात्मा और कुमार्गके नष्टकरनेवाले थे ॥ ३ ॥ अलर्क आत्मवान् होकर धर्मके सहित अर्थका और अर्थके सहित धर्मका रक्षण एवं धर्म और अर्थ इन दोनोंके अविरोधमें विषयभोग करनेलगे ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गके अनुसारी होकर पृथ्वी पालन करते करते उनको बहुत वर्ष एक दिनकी समान बीतगये ॥ ५ ॥ प्रियतम विषय संभोग करके भी उनको वैराग्यका संचार और धर्म अर्थोपार्जनके प्रति पूर्णताका उदय न हुआ ॥ ६ ॥ अलर्कका सुबाहु नामक एक भाई पहिलेसे ही वनवास आश्रय करताथा, उसने अलर्ककी भोग संयोगमें प्रमत्तता और परायणताका विषय सुना ॥ ७ ॥ इस कारण उस महामतिने भ्राताको तत्त्वज्ञान होनेकी इच्छासे बहुत कालतक चिन्ता करके अन्तमें उनके शत्रुका

आश्रय ग्रहण करनाही श्रेष्ठ समझा ॥ ८ ॥ अनन्तर कार्यकुशल सुबाहुने स्वीय राज्यलाभकी वासनासे महाबल बल-वाहनयुक्त काशीपतिकी अनेक बार शरण ग्रहण की ॥ ९ ॥ काशीराजनेभी अलर्कके प्रतिकूल सेनाका उद्योग करके उनके निकट दूत भेजा और यह कहलाभेजा कि, "सुबाहुको राज्य प्रदान करो" ॥ १० ॥ क्षत्रधर्मवित् अलर्कने इस बातको स्वीकार न करके काशिराजके दूतको यह उत्तर दिया कि, ॥ ११ ॥ "मेरे बडे भ्राता मेरे निकट आनकर विनयपूर्वक राज्यको प्रार्थना करैं, मैं आक्रमणके भयसे कणिकामात्र भूमि नहीं दूंगा" ॥ १२ ॥ महामति सुबाहुने प्रार्थना नहीं करी. क्योंकि प्रार्थना करना क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, एक मात्र वीर्यही उनका धन है ॥ १३ ॥ तदनन्तर काशिराज सब सेनासे परिवृत हो महीपति अलर्कके राज्यपर आक्रमण करनेकेलिये आये ॥ १४ ॥ उन्होंने अपने

ततःसकाशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् ॥ स्वराज्यमाप्तुमागच्छद्बहुशःशरणंकृती ॥ ९ ॥ सोऽपिचक्रेबलोद्योगमलर्कंप्रतिपार्थिवः ॥ दूतंचप्रेषयामासराज्य मस्मैप्रदीयताम् ॥ १० ॥ सोऽपिनैच्छत्तदादातुमाज्ञापूर्वंस्वधर्मवित् ॥ प्रत्युवाचचतंदूतमलर्कःकाशिभूभृतः ॥ ११ ॥ मामेवाभ्येत्यहार्देनयाचतांराज्यमग्रजः ॥ नाक्रांत्यासंप्रदास्यामिभयेनाल्पामपिक्षितिम् ॥ १२ ॥ सुबाहुरपिनोयाञ्चांचकारमतिमांस्तदा ॥ नधर्मःक्षत्रियस्येतियाञ्चावीर्यधनोहिसः ॥ १३ ॥ ततःसमस्त सैन्येनकाशीशःपरिवारितः ॥ आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमलर्कस्यमहीपतेः ॥ १४ ॥ अनन्तरैश्चसंश्लेषमभ्येत्यतदनन्तरम् ॥ तेषामन्यतमैर्भृत्यैःसमाक्रम्यानय द्वशम् ॥ १५ ॥ अपीडयंश्चसामंतांस्तस्यराष्ट्रोपरोधनैः ॥ तथादुर्गांतपालांश्चचक्रेचाटविकान्वशे ॥ १६ ॥ कांश्चिच्चोपप्रदानेनकांश्चिद्भेदेनपार्थिवान् ॥ साम्ने वान्यान्वशंनिन्येनिभृतास्तस्ययेऽभवन् ॥ १७ ॥ ततःसोऽल्पबलोराजापरचक्रावपीडितः ॥ कोशक्षयमवापोच्चैःपुरंचारुध्यतारिणा ॥ १८ ॥ इत्थंसंपीड्यमा नस्तुक्षीणकोशोदिनेदिने ॥ विषादमागात्परमंव्याकुलत्वंचचेतसः ॥ १९ ॥

सामन्तराजाओंके सहित मिलित होकर उनके अन्यभृत्योंसहित आगमनपूर्वक आक्रमणके पीछे अलर्कको अपने वशीभूत करलिया ॥ १५ ॥ उन्होंने भ्राता का राज्य अवरोधपूर्वक सामन्तगणोंको पीडित, दुर्गपाल और आटविक गण (वनवासी) को वशीभूत ॥ १६ ॥ और किसीको अर्थदानद्वारा, किसीको भेद द्वारा और किसीको सामद्वारा अपने वशमें कर लिया ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे अलर्क परचक्रद्वारा पीडित होकर क्षीणबल और क्षीणकोष होगये और उनका पुरभी शत्रुके द्वारा अवरुद्ध होगया ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दिन दिन क्षीणकोष और शत्रुके द्वारा पीडित होनेसे वह अत्यन्त विषादको प्राप्त हुए और उनका चित्त

व्याकुल होगया ॥ १९ ॥ क्रमानुसार अत्यन्त आर्त्तभावको प्राप्त होनेपर जननी मदालसाने पहले जो बात कहीथी, वही अँगूठीका विषय उनको स्मरण हुआ ॥ ॥ २० ॥ तब उन्होंने स्नानपूर्वक पवित्र होकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराया और वह निबद्ध शासन बाहर करके देखा, उसमें स्पष्ट स्पष्ट रूपसे अक्षर लिख रहेथे ॥ २१ ॥ माताका लिखाहुआ वह शासनपत्र पढतेही उनका शरीर पुलकायमान और दोनों नेत्र आनन्दसे उत्फुल्ल होगये ॥ २२॥ शासनमें लिखाथा कि, "सर्वान्तःकरणसे संग परित्याग करै" यदि संगत्यागमें समर्थ न हो तो वह संग साधुओंके सहित करना चाहिये क्योंकि साधुसंगही जगत्का औषधीस्वरूपहै ॥ २३ ॥ सर्वान्तःकरणसे कामका परित्याग करना उचितहै, यदि उसके त्याग करनेमें समर्थ न हो तो मुक्ति कामनाके प्रतिही उसका करना उचितहै, क्योंकि वही

आर्तिसपरमांप्राप्यतत्सस्मारांगुलीयकम् ॥ यदुद्दिश्यपुराप्राहमातातस्यमदालसा ॥ २० ॥ ततःस्नातःशुचिर्भूत्वावाचयित्वाद्विजोत्तमान् ॥ निष्कृष्यशासनं तस्माद्ददृशेप्रस्फुटाक्षरम् ॥ २१ ॥ तत्रैवलिखितंमात्रावाचयामासपार्थिवः ॥ प्रकाशपुलकांगोऽसौप्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥ २२ ॥ संगःसर्वात्मनात्याज्यःसचे त्यक्तुंनशक्यते ॥ ससद्भिःसहकर्त्तव्यःसतांसंगोहिभेषजम् ॥ २३ ॥ कामःसर्वात्मनाहेयोहातुंचेच्छक्यतेनसः ॥ मुमुक्षांप्रतितत्कार्यंसैवतस्यापिभे षजम् ॥ २४ ॥ वाचयित्वातुबहुशोनृणांश्रेयःकथंत्विति ॥ मुमुक्षयेतिनिश्चित्यसाचतत्सङ्गतोयतः ॥ २५ ॥ ततःससाधुसम्पर्कंचिन्तयन्पृथिवीपतिः ॥ दत्तात्रेयंमहाभागमगच्छत्परमार्तिमान् ॥ २६ ॥ तंसमेत्यमहात्मानमकल्मषमसङ्गिनम् ॥ प्रणिपत्याभिसम्पूज्ययथान्यायमभाषत ॥ २७ ॥ ब्रह्म न्कुरुप्रसादंमेशरण्यःशरणार्थिनाम् ॥ दुःखापहारंकुरुमेदुःखार्त्तस्यातिकामिनः ॥ २८ ॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ दुःखापहारमद्यैवकरोमितवपार्थिव ॥ सत्यंब्रूहिकिमर्थंतेदुःखंतत्पृथिवीपते ॥ २९ ॥

उसकी महौषध है ॥ २४ ॥ इसप्रकार वारम्वार मांताके दिये शासनका पाठ करके क्या करनेसे मनुष्यको कल्याणलाभ हो मोक्षकामनाही उस कल्याण लाभ होनेका उपाय है और सत्संगही उस मुमुक्षाके साधनका कारण है ॥ २५ ॥ इसप्रकार निश्चयकर साधुसंगलाभकी चिन्ता करनेलगे। अतीव आर्त्तभावातुर नरपति इसप्र कारसे चिन्ताकरके अन्तमें महाभाग दत्तात्रेयके निकट गये उन्होंने निष्पाप निःसंग और महानुभाव दत्तात्रेयको प्रणामपूर्वक पूजा करके न्यायानुसार कहा ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये, आपही शरणार्थीगणोंका आश्रयहैं, मैं विषयभोगकी कामना करताहुआ दुःखसे अभिभूत होगयाहूं, आप मेरा दुःख दूर कीजिये ॥ २८॥ दत्तात्रेय बोले—हे पार्थिव! मैं अभी तुम्हारा दुःख दूर करूंगा. हे पृथ्वीपते ! तुम सत्य कहो, किस कारण तुमको दुःखका उदय हुआ है? ॥ २९॥

तुम किसके हो ? किसका दुःखहै ? पहले यह विचारकरो। अंग अंगी भाव तथा निरंग इन सब अंगोंको विचारकरो ॥ ३० ॥ जड़ने कहा—महामति दत्तात्रेयके इसप्रकार पूछनेपर महीपति त्रिविध दुःखका स्थान और आत्मा इन दो विषयकी चिन्ता करनेसे प्रवृत्त हुए ॥ ३१ ॥ उदारमति धीरप्रकृति नरपति पुनः पुनः अनेक वार आत्मद्वारा आत्मविचार करके हँसते हुए कहनेलगे ॥ ३२ ॥ मैं भूमि जल नहीं, ज्योति नहीं, अनिल नहीं और आकाश भी नहीं हूं. किन्तु शरीरआश्रयपूर्वक सुखकी वासना करताहूं ॥ ३३ ॥ इस पांचभौतिक शरीरमें सुख दुःख उपस्थित होकर न्यूनातिरिक्तता प्राप्त होतीहै ॥ ३४ ॥ यदि इसप्रकार हो उसमें भी मेरी क्या हानि ? क्योंकि वे शरीर नहीं. शरीरसे स्वतंत्रभावमें अवस्थित हूं, मेरी न्यूनता अतिरिक्तताकी संभावना नहीं है मुझको नित्य प्रभूत सद्भाव उपस्थित होताहै, न्यूनाधिक्य

कस्यत्वंकस्यवादुःखंतत्त्वमेवंविचार्यताम् ॥ अंगान्यंगीनिरंगंचसर्वांगानिविचिंतय ॥ ३० ॥ जडउवाच ॥ ॥ इत्युक्तश्चिन्तयामाससराजातेनधीमता ॥ त्रिविधस्यापिदुःखस्यस्थानमात्मानमेवच ॥ ३१ ॥ सविमृश्यचिरंराजापुनःपुनरुदारधीः ॥ आत्मानमात्मनाधीरःप्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ नाहमुर्वीनस लिलंनज्योतिरनिलोनच ॥ नाकाशंकिंतुशारीरंसमेत्यसुखमिष्यते ॥ ३३ ॥ न्यूनातिरिक्ततांयातिपञ्चकेऽस्मिन्सुखासुखम् ॥ यदिस्यान्ममकिंनस्यादन्यस्थे ऽपिहितंमयि ॥ ३४ ॥ नित्यप्रभूतसद्भावेन्यूनाधिक्यान्नतोन्नते ॥ तथाचममतात्यक्तोविशेषेणोपलभ्यते ॥ ३५ ॥ तन्मात्रावस्थितेसूक्ष्मेतृतीयांशेचपश्यतः ॥ तथैवभूतसद्भावंशारीरंकिंसुखासुखम् ॥ ३६ ॥ मनस्यवस्थितंदुःखंसुखंवामानसंचयत् ॥ यतस्ततोनमेदुःखंसुखंवानह्यहंमनः ॥ ३७ ॥ नाहङ्कारोनचमनो बुद्धिर्नाहंयतस्ततः ॥ अन्तःकरणजंदुःखंपारक्यंममतत्कथम् ॥ ३८ ॥ नाहंशरीरंनमनोयतोऽहंपृथक्छरीरान्मनसस्तथाहम् ॥ तत्सन्तुचेतस्यथवापिदेहेसुखा निदुःखानिचकिंममात्र ॥ ३९ ॥ राज्यस्यवांछांकुरुतेऽग्रजोऽस्यदेहस्यचेत्पंचमयःसराशिः ॥ गुणप्रवृत्त्याममकिंनुतत्रतत्स्थःसचाहंचशरीरतोऽन्यः ॥ ४० ॥

वशतः नत और उन्नत भी होताहूं अतएव ममता त्यागकर विशेषरूपसे ज्ञानकी उपलब्धिकरनाही उचित है। मैं तन्मात्रावस्थित सूक्ष्म तृतीयांशमें अवस्थित हूं, मेरा शरीर भी भूतसद्भावसंघटित है सुतरां सुख और दुःखकी संभावना कहां है ? ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सुख और दुःख मनमेंही स्थिति करते हैं, वह मनकाही धर्म है। जब मैं वह मन भी नहीं हूं, तब मुझको सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं है ॥ ३७ ॥ जब मैं अहंकार नहीं, मन नहीं और बुद्धि भी नहीं हूं, तब मुझमें अन्तःकरण जनित पारक्य दुःख अर्थात् दूसरेका दिया दुःख किसप्रकारसे संभव होसकता है ? ॥ ३८ ॥ मैं शरीर नहीं, मन नहीं, मैं शरीर और मनसे पृथक् हूं, अत एव सुख मनमें हो वा शरीरमें स्थिति करै मेरा उसमें क्या ? अर्थात् मेरी उसमें हानि भी नहीं और फल भी नहीं है ॥ ३९ ॥ इस शरीरके अग्रज (बड़ेभाई) ही राज्यकी

प्रार्थना करते हैं: यदि यह शरीर पाञ्चभौतिक है तो उसकी गुणप्रवृत्तिमें मेरी क्या आवश्यकता है ? क्या अग्रज ? क्या मैं ? दोनों ही देहसे पृथक् पदार्थ हैं ॥ ॥ ४० ॥ जिसके हस्तादि अवयव मांस अस्थि और शिरा विभाग कुछ नहीं है, घोडा, हाथी और रथादि कोषमें उसकी क्या आवश्यकता है ? इसमें पुरुषका कोई संबंध नहीं दीखता ॥ ४१ ॥ अतएव मेरे शत्रुको दुःख, सुख, पुर, कोष, अश्वगजादि और सैन्य भी नहीं है. जिसप्रकार मेरा कुछ नहीं है इसी प्रकार मेरे अग्रजका और अन्यान्य किसी पुरुषका भी यह सब नहीं है ॥ ४२ ॥ एक मात्र अकाश ही जिसप्रकार घटी, कुम्भ और कमण्डलु भेदसे अनेक दिखाई देताहै, इसीप्रकार आत्मायक मात्र होकरभी सुबाहु काशिराज और मेरे इत्यादि देहक भेदसे नाना बोध होते हैं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

नयस्यहस्तादिकमप्यशेषंमांसंनचास्थीनिशिराविभागः ॥ कस्तस्यनागाश्वरथादिकोशैःस्वल्पोपिसम्बन्धइहास्तिपुंसः ॥ ४१ ॥ तस्मान्नमेऽरिर्नचमेऽस्तिदुःखंनमेसुखंनापिपुरंनकोशम् ॥ नचाश्वनागादिबलंनतस्यनान्यस्यवाकस्यचिद्वामामास्ति ॥ ४२ ॥ यथाघटीकुम्भकमण्डलुस्थमाकाशमेकंबहुधाहिदृष्टम् ॥ तथासुबाहुःसचकाशिपोऽहंमन्येचदेहेषुशरीरभेदैः ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे आत्मविवेकोनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ जडउवाच ॥ ॥ दत्तात्रेयंततोविप्रंप्रणिपत्यसपार्थिवः ॥ प्रत्युवाचमहात्मानंप्रश्रयावनतोवचः ॥ १ ॥ सम्यक्प्रपश्यतोब्रह्मन्ममदुःखंनकिंचन ॥ असम्यग्दर्शिनोमग्नाःसर्वदैवासुखार्णवे ॥ २ ॥ यस्मिन्यस्मिन्ममत्वेनबुद्धिःपुंसःप्रजायते ॥ ततस्ततःसमादायदुःखान्येवप्रयच्छति ॥ ३ ॥ मार्जारभक्षितेदुःखंयादृशंगृहकुक्कुटे ॥ नतादृङ्ममताशून्येकलविङ्केऽथमूषिके ॥ ४ ॥ सोऽहंनदुःखीनसुखीयतोऽहंप्रकृतेःपरः ॥ योभूताभिभवोभूतैःसुखदुःखात्मकोहिसः ॥ ५ ॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ एवमेतन्नरव्याघ्रयथैतद्व्याहृतंत्वया ॥ ममेतिमूलंदुःखस्यनममेतिचनिर्वृतिः ॥ ६ ॥

जडने कहा अनन्तर नरपति विनयसे नम्र हो महात्मा विप्र दत्तात्रेयको प्रणामकरके कहनेलगे ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! सम्यक्प्रकार दृष्टिका उदय होनेसे मुझको अब कुछभी दुःख नहीं है. असम्यक् दर्शी मनुष्यही सदा दुःखसागरमें निमग्न होतेहैं ॥ २ ॥ मनुष्यकी बुद्धि जिस जिसमें आसक्त होजातीहै उसी उसी विषयसे दुःख उत्पन्न होताहै ॥ ३ ॥ घरके पालेहुए मुरगेको बिल्लीके भक्षण करनेपर जिस प्रकार दुःखका उदय होताहै ममताशून्य कलविङ्क वा मूषकके भक्षित होनेपर वैसे दुखःकी सम्भावना नहीं है. क्योंकि ममता तो मुरगेमें रहतीहै ॥ ४ ॥ मैं सुखीभी नहीं और दुःखीभी नहीं हूं क्योंकि मैं प्रकृतिके अतीत हूं भूतगणके द्वारा भूताभिभवही सुखदुःखात्मक है अर्थात् जो इस संसारमें आसक्त रहता है उसीको सुख दुःखहोता है ॥ ५ ॥ दत्तात्रेयने कहा हे नरव्याघ्र ! तुमने जो कहा यह सत्य है मम

ताही दुःखका कारण और ममताही सुखका मूल है ॥ ६ ॥ मेरे पूछतेही तुम्हारे हृदयमें इस अनुत्तमज्ञानका उदय हुआ है इस ज्ञानके बलसेही तुम्हारी ममता रुई के समान उडगई है ॥ ७ ॥ अहंकाररूपी अंकुरसेही अज्ञानरूपी महावृक्षकी उत्पत्ति हुई है. ममत्व उस वृक्षका स्कन्ध है गृह क्षेत्र उसकी उच्चशाखा स्त्री पुत्रादि उसका पल्लव हैं ॥ ८ ॥ धन धान्य उसके बृहत् पत्र पुण्यापुण्य प्रधान कुसुम सुख उसका महाफल ॥ ९ ॥ और मोहाभिभूत होकर जो सम्यक् सम्बन्ध किया जाता है वही इस वृक्षका थांवणा है यह वृक्ष दिनमें बढता है और यह वृक्षही मुक्तिमार्गको ढककर स्थित है यह वृक्ष (बनायेरखनेकी कामना रूप भृङ्गमालासे समाकीर्ण है ॥ १० ॥ जो पुरुष संसारपथमें थकगये हैं) और भ्रान्तिज्ञान सुखके अधीन हो इस वृक्षकी छायाका आश्रय करते हैं उनको किस प्रकार मोक्षलाभहोगा ? ॥ ११ ॥ जो पुरुष विद्यारूपी कुठारको सत्संगरूपी पत्थरके द्वारा तेजकरके उससे ममतावृक्षके छेदन करनेमें समर्थ होतेहैं ॥

मत्प्रश्नादेवतेज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम् ॥ ममेतिप्रत्ययोयेनक्षिप्तःशाल्मलितूलवत् ॥ ७ ॥ अहमित्यंकुरोत्पन्नोममेतिस्कन्धवान्महान् ॥ गृहक्षेत्रोच्चशाखश्चपुत्रदारादिपल्लवः ॥ ८ ॥ धनधान्यमहापत्रोनैककालप्रवर्धितः ॥ पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्चसुखदुःखमहाफलः ॥ ९ ॥ अपवर्गपथव्यापीमूढसम्पर्कसेचनः ॥ विधित्साभृङ्गमालाढ्योऽकृत्यज्ञानमहातरुः ॥१०॥ संसाराध्वपरिश्रान्तायेतच्छायांसमाश्रिताः ॥ भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकंकुतः ॥११॥ यैस्तुसत्सङ्गपाषाणशितेनममतातरुः ॥ छिन्नोविद्याकुठारेणतेगतास्तेनवर्त्मना ॥१२॥ प्राप्यब्रह्मवनंशीतंनीरजस्कमकण्टकम् ॥ प्राप्नुवन्तिपरांप्राज्ञानिर्वृतिंवृत्तिवर्जिताः ॥ ॥१३॥ भूतेन्द्रियमयंस्थूलंनत्वंराजन्नचाप्यहम् ॥ नतन्मात्रंमयावाच्यंनैवान्तःकरणात्मकौ ॥१४॥ कंवापश्यामिराजेंद्रप्रधानमिदमावयोः ॥ यतःपरोहिक्षेत्रज्ञसंघातोहिगुणात्मकः ॥ १५ ॥ मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसांयथा ॥ एकत्वेऽपिपृथग्भावस्तथाक्षेत्रात्मनोर्नृप ॥ १६ ॥ ॥ अलर्कउवाच ॥ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनममाविर्भूतमुत्तमम् ॥ ज्ञानंप्रधानचिच्छक्तिविवेककरमीदृशम् ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ वही उस मार्गद्वारा ब्रह्मरूप वनमें उपस्थित होते हैं यह वन अतिशय शीतल, रजोविहीन और कंटकविहीन है. इस वनमें उपस्थित होनेसे वृत्तिरहित होकर परमबुद्धि और निर्वृत्तिलाभ होताहै ॥ १३ ॥ हे भूपते ! तुमभी भूतेन्द्रियमय वा स्थूल नहीं हो और मैंभी नहीं हूं । हम दोनोंमें कोईभी तन्मात्र नहीं और अन्तःकरणात्मक भी नहीं हैं ॥ १४ ॥ हे राजेन्द्र ! हम दोनोंमें किसीकोभी प्रधान अर्थात् प्रकृतिमय देखते हो ? क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष, प्रकृतिके अतीत और पाञ्चभौतिक पदार्थही गुणात्मक और प्रकृतिका विषयीभूत है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! मशक और गूलर अर्थात् गूलरमें मच्छर, इषीका (सींक) और मुंज तथा मछली और जल, यह जिसप्रकार एक होकर भी पृथक् भावायुक्त हैं, क्षेत्र और आत्माको भी इसीप्रकार जानना चाहिये ॥ १६ ॥ अलर्कने कहा—हे भगवन् ! आपके प्रसा

दसे मुझको प्रधान और चिच्छक्तिका विवेक करनेवाला अनुत्तम ज्ञानका उदय हुआ ॥ १७ ॥ किन्तु मेरा चित्त विषयोंमें खींचा रहनेसे मैं स्थिरता धारण नहीं करसकता और किसप्रकार प्रकृतिके बंधनसे छूटूंगा, यहभी नहीं जानसकता ॥ १८ ॥ किसप्रकारसे फिर पुनर्जन्म ग्रहण करना न हो? किसप्रकारसे निर्गुणत्व प्राप्त हो, किसप्रकारके अनुष्ठानसे शाश्वत ब्रह्मके सहित एकता प्राप्त हो ॥ १९ ॥ ऐसे योगका मुझको सम्यक् प्रकारसे उपदेश कीजिये ! हे महाप्राज्ञ ! मैं प्रणत होकर आपके निकट प्रार्थना करता हूं । सत्संगही मनुष्यका उपकारसाधन करता है ॥ २० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ दत्तात्रेयने कहा—योगारूढ पुरुषोंका ज्ञानलाभके द्वारा अज्ञानसे जो वियोग होता है, उसीको मुक्ति कहा जाता है और प्राकृतिक गुणोंके सहित अनैक्यही साक्षात् ब्रह्मके सहित एकता कही गई है ॥ १ ॥ हे महीपते ! योगसे मोक्ष, सम्यक् ज्ञानसे योग,दुःखसे सम्यक् ज्ञान और ममतासक्त चित्तसेही दुःखका

किन्त्वत्रविषयाक्रान्तेस्थैर्य्यंवत्त्वंनचेतसि ॥ नचापिवेद्मिमुच्येयंकथंप्रकृतिबन्धनात् ॥ १८ ॥ कथंनभूयांभूयश्चकथंनिर्गुणतामियाम् ॥ कथंचब्रह्मणै कत्वंव्रजेयंशाश्वतेनवै ॥ १९ ॥ तन्मेयोगंतथाब्रह्मन्प्रणतायाभियाचते ॥ सम्यग्ब्रूहिमहाप्राज्ञसत्सङ्गोह्युपकृन्नृणाम् ॥ २० ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयालर्कसंवादेपंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ ज्ञानपूर्वोवियोगोयोऽज्ञानेनसहयोगिनः ॥ सामुक्तिर्ब्रह्मणाचैक्यमनैक्यंप्राकृतै र्गुणैः ॥ १ ॥ योगेचशक्तिर्विदुषांयेनश्रेयःपरंभवेत् ॥ मुक्तिर्योगात्तथायोगःसम्यग्ज्ञानान्महीपते ॥ संगदोषोद्भवंदुःखंममत्वासक्तचेतसाम् ॥ २ ॥ तस्मात्स ङ्गंप्रयत्नेनमुमुक्षुःसंत्यजेन्नरः ॥ सङ्गाभावेममेत्यस्याःख्यातेर्हानिःप्रजायते ॥ ३ ॥ निर्ममत्वंसुखायैववैराग्याद्दोषदर्शनम् ॥ ज्ञानादेवचवैराग्यंज्ञानंवैराग्यपूर्वं कम् ॥ ४ ॥ तद्गृहंयत्रवसतिस्तद्भोज्यंयेनजीवति ॥ यन्मुक्तयेतदेवोक्तंज्ञानमज्ञानमन्यथा ॥ ५ ॥ उपभोगेनपुण्यानामपुण्यानांचपार्थिव ॥ कर्त्तव्यमिति नित्यानामकामकरणात्तथा ॥ ६ ॥

आविर्भाव होता है ॥ २ ॥ अतएव मुमुक्षु पुरुष यत्नसहित संग परित्याग करैं । विषयासक्ति छोड़तेही "मेरा" यह ज्ञान दूर होजाता है ॥ ३ ॥ निर्ममताही सुखका कारण और वैराग्यका संचार होनेपरही संसारके समस्त दोष * स्पष्टरूपसे हृदयङ्गम कर सकता है. ज्ञानसे जिस प्रकार वैराग्यका उदय होता है, वैराग्यसेभी इसी प्रकार ज्ञानका आविर्भाव होता है ॥ ४ ॥ जिस स्थानमें वास किया जाय उसीको गृह जिसके द्वारा जीवन धारण किया जाय उसीको भोज्य, जिसके द्वारा मोक्षलाभ हो उसीको ज्ञान और इसके अन्यथा होनेसे उसको अज्ञान कहा जाता है ॥ ५ ॥ हे पार्थिव ! पुण्यापुण्यका उपभोग होनेसे

* दोष—अर्थात् संसारकी असारता और अनित्यतादि ।

कामनाविहीन होकर नित्यक्रियाका अनुष्ठान करनेपर ॥ ६ ॥ पूर्वोपार्जित कर्मका क्षय होनेपर और अपूर्व कर्मका असंचय होनेसेही वारंवार शरीरबंधन प्राप्त नहीं होता हे राजन्! यह जो तुम्हारे निकट वर्णन किया इसीको योग कहते हैं। इस योगके लाभ होतेही योगीजन शाश्वत ब्रह्मके अतिरिक्त और किसीकोभी आश्रय नहीं करते ॥ ७ ॥ ८ ॥ सबसे पहिले आत्माके द्वारा आत्माको जय करना चाहिये। क्योंकि यह आत्माही योगियोंको दुर्जेय है. सुतरां उसके जीतनेमें यत्नवान् होना उचित है। जिसप्रकार आत्माको जीतना चाहिये वह कहता हूं—सुनो ॥ ९ ॥ दोषोंको प्राणायामद्वारा, पापोंको धारण द्वारा, विषयोंको प्रत्याहार द्वारा और समस्त अनीश्वर गुणोंको ध्यानद्वारा दग्ध करे ॥ १० ॥ जिस प्रकार दहन द्वारा पर्वतकी समस्त धातु निर्दोषताको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार प्राणवायुको निगृहीत करनेसेही इन्द्रियकृत समस्त दोष दग्ध होते हैं ॥ ११ ॥ योगवित् पुरुष प्रथम प्राणायामका साधन करे। प्राण और अपान इन दोनों वायुका

असंचयादपूर्वस्यक्षयात्पूर्वार्जितस्यच ॥ कर्मणोवन्धमाप्नोतिशरीरंचपुनःपुनः ॥ ७ ॥ कर्मणामोक्षमाप्नोतिवैपरीत्येनतस्यतु ॥ एतत्तेकथितंज्ञानंयोगं चेमंनिबोधमे ॥ यंप्राप्यब्रह्मणोयोगीशाश्वतान्नान्यतांव्रजेत् ॥ ८ ॥ प्रागेवात्मात्मनाजेयोयोगिनांसहिदुर्जयः ॥ कुर्वीततज्जयेयत्नंतस्योपायंशृणुष्वमे ॥ ॥ ९ ॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्चकिल्बिषम् ॥ प्रत्याहारेणविषयान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ १० ॥ यथापर्वतधातूनांध्मातानांदह्यतेमलम् ॥ तथेन्द्रियकृतादोषादह्यन्तेप्राणनिग्रहात् ॥ ११ ॥ प्रथमंसाधनंकुर्यात्प्राणायामस्ययोगवित् ॥ प्राणापाननिरोधस्तुप्राणायामउदाहृतः ॥ १२ ॥ लघुमध्यो त्तरीयाख्यःप्राणायामस्त्रिधोदितः ॥ तस्यप्रमाणंवक्ष्यामितदलर्कशृणुष्वमे ॥ १३ ॥ लघुर्द्वादशमात्रस्तुद्विगुणःसतुमध्यमः ॥ त्रिगुणाभिस्तुमात्राभि रुत्तमःपरिकीर्त्तितः ॥ १४ ॥ निमेषोन्मेषणेमात्राकालोलघ्वक्षरस्तथा ॥ प्राणायामस्यसंख्यार्थंस्मृतोद्वादशमात्रिकः ॥ १५ ॥ प्रथमेनजयेत्स्वेदंमध्यमे नचवेपथुम् ॥ विषादंहितृतीयेनजयेद्दोषाननुक्रमात् ॥ १६ ॥ मृदुत्वंसेव्यमानास्तुसिंहशार्दूलकुञ्जराः ॥ यथायान्तितथाप्राणोवश्योभवतियोगिनः ॥ १७ ॥

निरोधही प्राणायाम कहा गया है ॥ १२ ॥ प्राणायाम तीन प्रकारका है, लघु मध्यम और उत्तरीय. हे अलर्क ! इन तीनों प्राणायामका प्रमाण कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ लघुप्राणायाम द्वादशमात्रायुक्त, मध्यम उससे द्विगुण और उत्तम वा उत्तरीय प्राणायाम उससे त्रिगुण मात्रायुक्त कहागया है ॥ १४ ॥ निमेष और उन्मेष, इन दोनोंका समयही मात्राका काल कहकर निर्दिष्ट है अर्थात् यही एक मात्रा है. इसप्रकार द्वादश मात्रा होनेसेही लघुप्राणयाम होताहै ॥ ॥ १५ ॥ प्रथम प्राणायाम द्वारा स्वेद (पसीना) दूसरेके द्वारा वेपथु अर्थात् कम्प, और तीसरे प्राणायामद्वारा यथाक्रमसे विषादादि दोषोंको जीतना चाहिये ॥ १६ ॥ सिंह व्याघ्र और हाथी जिसप्रकार सेवा द्वारा मृदुत्व (कोमलता) को प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार प्राण और प्राणायाम द्वारा योगियोंमें वशता प्राप्त होती है ॥ १७ ॥

हाथीवान् जिस प्रकार वशीभूत मत्त हाथीको अपनी इच्छानुसार चलाता है योगीजनभी इसी प्रकार प्राणसाधित होनेपर उसके द्वारा सह जमें ही अपनी इच्छानुसार कार्य करसकते हैं ॥ १८ ॥ साधित सिंह जिसप्रकार मृगगणोंको निहत करता है किन्तु मनुष्यादिको नहीं मारता । इसीप्रकार प्राणवायुकी साधना करनेसे पापही नष्ट होते हैं शरीर नष्ट नहीं होता ॥ १९ ॥ अतएव योगी पुरुष सदा प्राणायामपरायण होनेमें यत्नवान् हो । प्राणायामकी अवस्था चार प्रकारकी है, उसके द्वारा मुक्तिफल प्राप्त होजाताहै, अब वही कहताहूं, सुनो ॥ २० ॥ हे महीपते ! प्राणायाम चार प्रकार है । ध्वस्ति प्राप्ति, संवित् और प्रसाद । अब क्रमानुसार इनका स्वरूप वर्णन करताहूं, सुनो ॥ २१ ॥ जिस अवस्थामें दुष्ट और अदुष्ट समस्त कर्मोंका फल क्षयको प्राप्त हो

वश्यंमत्तंयथेच्छातोनागंनयतिहस्तिपः ॥ तथैवयोगीछन्देनप्राणंनयतिसाधितम् ॥ १८ ॥ यथाहिसाधितःसिंहोमृगान्हंतिनमानवान् ॥ तद्वन्निषिद्धपवनः किल्बिषंननृणांतनुम् ॥ १९ ॥ तस्माद्युक्तःसदायोगीप्राणायामपरोभवेत् ॥ श्रूयतांमुक्तिफलदंतस्यावस्थाचतुष्टयम् ॥ २० ॥ ध्वस्तिःप्राप्तिस्तथासंवित्प्रसादश्चमहीपते ॥ स्वरूपंशृणुचैतेषांकथ्यमानमनुक्रमात् ॥ २१ ॥ कर्म्मणामिष्टदुष्टानांजायतेफलसंक्षयः ॥ चेतसोऽपकषायत्वंयत्रसाध्वस्तिरुच्यते ॥ ॥ २२ ॥ ऐहिकामुष्मिकान्कामाँल्लोभमोहात्मकान्स्वयम् ॥ निरुध्यास्तेसदायोगीप्राप्तिःसासार्वकालिकी ॥ २३ ॥ अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान् ॥ विजानातीन्दुसूर्य्यर्क्षग्रहाणांज्ञानसम्पदा ॥२४॥ तुल्यप्रभावस्तुयदायोगीप्राप्नोतिसंविदम् ॥ तदासंविदितिख्याताप्राणायामस्यसास्थितिः ॥ २५ ॥ यान्तिप्रसादंयेनास्यमनःपंचचवायवः ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्चसप्रसादइतिस्मृतः ॥ २६ ॥ शृणुष्वचमहीपालप्राणायामस्यलक्षणम् ॥ युञ्जतश्चसदायोगंयाद्दग्विहितमासनम् ॥ २७ ॥

और चित्तकी मलीनता दूर होजाय, उसको ध्वस्ति कहतेहैं ॥ २२ ॥ योगी पुरुष जिस अवस्थामें लोभमोहात्मक ऐहिक और आमुष्मिक समस्त कामको निरंतर स्वयं निरुद्ध करतेहैं, उस अवस्थाको प्राप्ति कहागयाहै ॥ २३ ॥ योगीजन जिसअवस्थामें ज्ञानसम्पत्तिवशतः चन्द्र, सूर्य और ग्रह नक्षत्रकी सदृश ज्ञानशक्तिको प्राप्त होकर ॥ २४ ॥ अतीत, अनागत और तिरोहित यह दूरस्थ सब विषय जान सकतेहैं, उसी अवस्थाको संवित् कहा जाताहै ॥ २५ ॥ जिस अवस्था द्वारा योगीका चित्त पंचवायु, इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषयसमूहसे शुद्धिलाभ करता है, उसी अवस्थाको प्रसाद कहतेहैं ॥ २६ ॥ हे महीपाल ! अब प्राणायामके

लक्षण और योगके आरंभमें जिसप्रकार आसनका अनुष्ठान करना चाहिये सो सुनो ॥ २७ ॥ पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन, इत्यादि आसनावलम्बनपूर्वक हृदयमें प्रणवजप करके योगानुष्ठानमें प्रवृत्त होवे ॥ २८ ॥ सरलभावसे सम आसनमें बैठकर दोनों चरणोंको सकोड मुखको मूँद और दोनों ऊरु सम्यक् प्रकारसे अग्रभागमें विष्ट (स्तब्ध) करके॥ २९॥ संयुक्त मनसे इसप्रकार स्थित होना चाहिये कि, जिससे हस्तद्वारा लिंग और अंडकोशका (स्पर्श) न हो उसी समय शिर कुछेक ऊपरको उठा हो और दांतसे दांतोंका स्पर्श न करै ॥ ३० ॥ और केवल मात्र अपनी नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि रक्खे, अन्य किसी ओर न देखे। इसी अवस्थामें योगवित् पुरुष रजोगुणद्वारा तामसी वृत्तिका और सत्वगुण द्वारा राजसिक वृत्तिका ॥ ३१ ॥ विनाश करके केवल मात्र निर्मल तत्त्वमें अवस्थान

पद्ममर्द्धासनंचापितथास्वस्तिकमासनम् ॥ आस्थाययोगंयुंजीतकृत्वाचप्रणवंहृदि ॥ २८ ॥ समःसमासनोभूत्वासंहृत्यचरणावुभौ ॥ संवृतास्यस्तथैवोरूसम्यग्विष्टभ्यचाग्रतः ॥२९ ॥ पार्ष्णिभ्यांलिङ्गवृषणावस्पृशन्प्रयतःस्थितः ॥ किंचिदुन्नामितशिरादन्तैर्दन्तान्नसंस्पृशेत् ॥ ३० ॥ संपश्यन्नासिकाग्रंस्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ रजसातमसोवृत्तिंसत्त्वेनरजसस्तथा ॥ ३१ ॥ संछाद्यनिर्म्मलेसत्त्वेस्थितोयुञ्जीतयोगवित् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यःप्राणादीन्मन एवच ॥ ३२ ॥ निगृह्यसमवायेनप्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ यस्तुप्रत्याहरेत्कामान्सर्वाङ्गानीवकच्छपः ॥ ३३ ॥ सदात्मरतिरेकस्थःपश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ सबाह्याभ्यन्तरंशौचंनिष्पाद्याकंठनाभितः ॥ ३४ ॥ पूरयित्वाबुधोदेहंप्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ प्राणायामादशद्वौचधारणासाभिधीयते ॥ ३५ ॥ द्वेधारणेस्मृते योगेयोगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ तथावैयोगयुक्तस्ययोगिनोनियतात्मनः ॥ ३६ ॥ सर्वेदोषाःप्रणश्यन्तिस्वस्थश्चैवोपजायते ॥ वीक्षतेचपरंब्रह्मप्राकृतांश्चगुणान्पृथक् ॥ ३७ ॥

पूर्वक योगाभ्यासमें नियुक्त हो इन्द्रियके विषयसे एवं मन और प्राणादिको ॥ ३२ ॥ निगृहीत करके कच्छप जिसप्रकार अपने समस्त अंगोंको सकोडलेता है इसी प्रकार प्रत्याहारमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ३३ ॥ इस प्रकारसे कामसमूहको प्रत्याहरणपूर्वक केवल मात्र आत्मामेंही सदा आसक्त होकर स्थित रहनेसे आत्मा द्वारा आत्माका दर्शन प्राप्त हो जाता है। विचक्षण योगी कंठसे नाभिदेशपर्यन्त बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धिविधानपूर्वक ॥ ३४ ॥ देह परिपूर्ण करके प्रत्याहार साधन करै। प्राणायाम दशविध और धारणा दो प्रकार कही गई है ॥ ३५ ॥ तत्त्वदर्शी योगीजनोंने योगाभ्यासमें दोही प्रकारकी धारणाका निर्देश किया है। नियतात्मा होकर योगसाधन करनेसे ॥ ३६ ॥ योगीके समस्त दोष प्रशमित होते हैं, शान्ति प्राप्त होती है पृथक् रूपसे समस्त प्राकृतगुण और

परब्रह्मका दर्शनलाभ होता है ॥ ३७ ॥ एवं आकाशादि परिमाणु और विशुद्ध आत्माका साक्षात्कार लाभ किया जाता है । इस प्रकारसे योगी नियताहारपूर्वक प्राणायाममें निरत हो ॥ ३८ ॥ शनैः शनैः योगभूमि जय करता हुआ अपने घरकी समान उसीमें आरूढ होवे. इसप्रकार भूमिके विजित न होनेसे उसके द्वारा कामादि दोष व्याधिसमूह ॥ ३९ ॥ और मोहकी वृद्धि प्राप्त होती है. अतएव अनिर्जिता भूमिमें आरोहण न करे जिसके द्वारा पंचप्राण संयत होते हैं उसीको प्राणयाम कहते हैं ॥ ॥ ४० ॥ जिसके द्वारा मनको धारण किया जाय वही धारणा कहाती है और नियतात्मा पुरुष जिस अवस्थामें इन्द्रियसमूहको शब्दादि स्व स्व विषयसे ॥ ४१ ॥ प्रत्याहरण करते हैं उसीको प्रत्याहार कहते हैं. योगसिद्ध ऋषियोंने इस विषयमें जो उपाय निरूपण किया है ॥ ४२ ॥ उसके द्वारा योगीके शरीरमें व्याधि इत्यादि आक्रमण नहीं करसकती जलार्थी जिस प्रकार यंत्रनालादिके सहित

व्योमादिपरमाणूंश्चतथात्मानमकल्मषम् ॥ इत्थंयोगीयताहारःप्राणायामपरायणः ॥ ३८ ॥ जितांजितांशनैर्भूमिमारोहेतयथागृहम् ॥ दोषन्व्याधीं स्तथामोहमाक्रान्ताभूरनिर्जिता ॥ ३९ ॥ विवर्धयतिनारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम् ॥ प्राणानामुपसंरोधात्प्राणायामइतिस्मृतः ॥ ४० ॥ धारणेत्युच्यते चेयंधार्य्यतेयन्मनोयया ॥ शब्दादिभ्यःप्रवृत्तानियदक्षाणियतात्मभिः ॥ ४१ ॥ प्रत्याह्रियन्तेयोगेनप्रत्याहारस्ततः स्मृतः ॥ उपायश्चात्रकथितोयोगिभिःपरमर्षिभिः ॥ ४२ ॥ येनव्याध्यादयोदोषानजायन्तेहियोगिनः ॥ यथातोयार्थिनस्तोयंयन्त्रनालादिभिःशनैः ॥ ४३ ॥ आपिबेयुस्तथावायुं पिबेद्योगीजितश्रमः ॥ प्राङ्नाभ्यांहृदयेचाथतृतीयेचतथोरसि ॥ ४४ ॥ कंठेमुखेनासिकाग्रेनेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु ॥ किञ्चतस्मात्परस्मिंश्चधारणा परमास्मृता ॥ ४५ ॥ दशैताधारणाःप्राप्यप्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ॥ नाध्मातःक्षुधितःश्रान्तोनचव्याकुलचेतनः ॥ ४६ ॥ युञ्जीतयोगंराजेन्द्रयोगीसिद्ध्यर्थमादृतः ॥ नातिशीतेनचोष्णेवैनद्वन्द्वेनानिलात्मके ॥४७॥ कालेष्वेतेषुयुञ्जीतनयोगंध्यानतत्परः ॥ सशब्दाग्निजलाभ्याशेजीर्णगोष्ठेचतुष्पथे ॥ ४८ ॥

धीरे धीरे जलपान करते हैं ॥ ४३ ॥ योगीपुरुषभी उसीप्रकार श्रम जीतकर वायुपान करते हैं. प्रथम नाभिमें, फिर हृदयमें, फिर वक्षस्थलमें ॥ ४४ ॥ फिर कंठमें, वदनमें, नासाग्रमें, लोचनमें, भ्रूमें, ऊर्द्ध्वप्रदेशमें और अन्तको उस परब्रह्ममें धारणा[1] करनी चाहिये ॥ ४५ ॥ धारणा यह दशविध कहकर निर्दिष्ट है इन दशप्रकारकी धारणासिद्धिसे ब्रह्मसारूप्यलाभ होता है. हे राजेन्द्र ! योगीपुरुष सिद्धिलाभार्थ अधिक भाषण क्षुधा थकावट और चित्तकी चंचलता ॥ ४६ ॥ दूरकरके यत्नपूर्वक योगाभ्यासमें प्रवृत्त हों अतिशीत और अतिग्रीष्मके समय एवं अति वायुवहन कालमें ॥ ४७ ॥ ध्यानतत्पर होकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये. सशब्द

१ मनकी धारणा करना अर्थात् स्वपदमें रखकर आत्मदर्शन करना ।

स्थानमें अग्नि और जलके निकट पुरानी गोशालामें चौराहेमें ॥ ४८ ॥ सूखेपत्तोंसे पूर्ण स्थानमें नदीतटमें श्मशानमें सर्पादिसे युक्त स्थानमें कूपतीरमें चैत्य (गहे) में और वल्मीकसमूहके टीलेमें ॥ ४९ ॥ तत्त्ववित्पुरुष योगाभ्यास न करे. सात्विकभावकी भलीभाँति सिद्धि न होनेपर अर्थात् जिसस्थानमें सात्विक वस्तु प्राप्त न हो वह देशकालभी परित्याग करना चाहिये ॥ ५० ॥और योगमें असत् बातोंका देखना भी उचित नहीं है. अतएव वह वर्जन करे । जो पुरुष मूर्खताके वश होकर इन सब स्थानोंका विचार न करके योगाभ्यासका अनुष्ठान करता है ॥ ५१ ॥ वह सब दोष उत्पन्न होकर उसके कार्यमें विघ्न साधन करते हैं. सो कहताहूं सुनो—उस योगीको बहरापन, जड़ता, गूँगापन, स्मृतिलोप, अन्धता ॥ ५२ ॥ और तत्क्षण ज्वर होता है प्रमाद

शुष्कपर्णचयेनद्यांश्मशानेससरीसृपे ॥ सभयेकूपतीरेवाचैत्यवल्मीकसंचये ॥ ४९ ॥ देशेष्वेतेषुतत्त्वज्ञोयोगाभ्यासंविवर्जयेत् ॥ सत्त्वस्यानुपपत्तौचदेशकालं विवर्जयेत् ॥ ५० ॥ नासतोदर्शनंयोगेतस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ दोषानेताननादृत्यमूढत्वाद्योयुनक्तिवै ॥ ५१ ॥ विघ्नायतस्यवैदोषाजायन्तेतान्निबोधमे ॥ बाधिर्यंजडतालोपःस्मृतेर्मूकत्वमन्धता ॥ ५२ ॥ ज्वरश्चजायतेसद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः ॥ प्रमादाद्योगिनोदोषायद्येतस्युश्चिकित्सितम् ॥ ५३ ॥ तेषां नाशायकर्त्तव्यंयोगिनांतन्निबोधमे ॥ स्निग्धांयवागूमत्युष्णांभुक्त्वातत्रैवधारयेत् ॥ ५४ ॥ वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्तेतथोदरे ॥ यवागूंवापिपवनंवायुग्रन्थिप्रतिक्षिपेत् ॥५५॥ तद्वत्कंपेमहाशैलंस्थिरंमनासिधारयेत् ॥ विघातेवचसोवाचंवाधिर्य्येश्रवणेंद्रियम् ॥ ५६ ॥ यथैवाम्रफलंध्यायेत्तृष्णार्त्तोरसनेन्द्रियम् ॥ यस्मिन्यस्मिन्रुजादेहेतस्मिंस्तदुपकारिणीम् ॥ ५७ ॥

वश इन सब दोषोंका आविर्भाव होनेपर उनकी शान्तिके लिये जिस प्रकारसे चिकित्सा करे ॥ ५३ ॥ वहभी सुनो भलीभाँति उष्ण कियाहुआ यवागूस्निग्ध करके भक्षणपूर्वक उदरमें धारण करे ॥ ५४ ॥ वात गुल्म और अफारा तथा उदररोग शान्त होनेके लिये यवागू अवश्य भक्षण करे. इसका भक्षण करनेसे वायु और वायुग्रंथिरोगभी नष्ट होता है ॥ ५५ ॥ और कंप होनेपर मनमें बड़े बोझको पर्वत धारण करै अर्थात् मनके चंचल होनेपर प्रलयकालीन स्थिर महाशैलको धारण करै वाक्शक्ति विलुप्त होनेसे वाक्यधारणा करनी चाहिये और श्रवणशक्तिके नष्ट होनेपर ॥ ५६ ॥ तृष्णार्त्त पुरुष जिस प्रकार रसनेन्द्रियमें लाभ होनेकी चिन्ता करता है ऐसेही श्रवणेन्द्रियकी धारणा करता रहै. इस प्रकार जिस जिस देहमें व्याधि उपस्थित हो उस उस देहमेंही तदुपकारिणी

धारणा धारण करै ॥ ५७ ॥ उष्णमें शीतल धारणा और शीतलमें उष्ण धारणाका अनुगामी होना चाहिये शिरमें सूक्ष्म कीलकका स्थापनपूर्वक काष्ठद्वारा उस कीलककाष्ठको ठोकनेसे ॥ ५८ ॥ लुप्तस्मृति रोगीकी तत्काल स्मृतिशक्तिका फिर उदय होता है अथवा स्मृतिशक्ति विलुप्त होनेसे आकाश, पृथ्वी, वायु और अग्निकी धारणा करै ॥ ५९ ॥ अमानुष सत्त्वके जनित विघ्नसमूहमें चिकित्सा इसप्रकार निर्दिष्ट है योगियोंके हृदयमें अमानुष सत्त्वके प्रविष्ट होनेपर वह ॥ ६० ॥ वायु और अग्निकी धारणासे उसको दग्ध करै. हे नृपते ! इसप्रकार सर्वान्तःकरणसे शरीरकी रक्षाविधान करना योगवित् पुरुषको उचित है ॥ ६१ ॥ क्योंकि शरीरही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गके साधनका मूल है. प्रवृत्ति स्वरूप वर्णन और विस्मय, इन दो कारणोंसे ही योगीका विज्ञान नष्ट हो

धारयेद्धारणामुष्णेशीतांशीतेचदाहिनीम् ॥ कीलंशिरसिसंस्थाप्यकाष्ठंकाष्ठेनताडयेत् ॥ ५८ ॥ लुप्तस्मृतेःस्मृतिःसद्योयोगिनस्तेनजायते ॥ द्यावापृथिव्यौ वाय्वग्नीव्यापिनावपिधारयेत् ॥ ५९ ॥ अमानुषात्सत्त्वजाद्वाबाधास्त्वितिचिकित्सितम् ॥ अमानुषंसत्त्वमन्तर्योगिनंप्रविशेद्यदि ॥ ६० ॥ वाय्वग्निधारणे नैनंदेहसंस्थंविनिर्दहेत् ॥ एवंसर्वात्मनारक्षाकार्य्यायोगविदानृप ॥ ६१ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांशरीरंसाधनंयतः ॥ प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनोविस्मयात्तथा ॥ विज्ञानंविलयंयातितस्माद्गोप्याःप्रवृत्तयः ॥ ६२ ॥ अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वंगन्धःशुभोमूत्रपुरीषमल्पम् ॥ कान्तिःप्रसादःस्वरसौम्यताचयोगप्रवृत्तेः प्रथमंहिचिह्नम् ॥ ६३ ॥ अनुरागंजनोयातिपरोक्षेगुणकीर्त्तनम् ॥ नबिभ्यतिचसत्त्वानिसिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्यबाधान विद्यते ॥ नभीतिमेतिचान्येभ्यस्तस्यासिद्धिरुपस्थिता ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेजडोपाख्यानेयोगनिरूपणंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

जाता है. इसी कारण प्रवृत्ति गुप्त रक्खै ॥ ६२ ॥ अचंचलता, आरोग्यता, अनिष्ठुरता, देहमें सुगंधिका संचार. मूत्र और पुरीषकी अल्पता, कान्ति, प्रसाद और मधुर स्वर, यह सब योगप्रवृत्तिके प्रथम चिह्न हैं ॥ ६३ ॥ जिस अवस्थामें मनुष्य अनुरागी होकर परोक्षमें अर्थात् पीछे गुणोंका कीर्त्तन करैं और किसी जीवको भय प्राप्त न हो. उसी समय सिद्धिका उत्तम लक्षण समझना चाहिये ॥ ६४ ॥ अत्यन्त उग्र शीत और उष्णादि जिसको बाधा देनेमें समर्थ न हों, तथा दूसरेसे जिसको भयका संचार न हो, उसीको सिद्धिलाभ हुई जाने ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दत्तात्रेयने कहा—आत्माका दर्शन होनेपर योगियोंको जो सब उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वह संक्षेपसे कहताहूं, सुनो ॥ १ ॥ उस समयमें नानाप्रकारकी काम्य क्रिया और मानसोचित नानाभाँतिके भोग भोगनेकी इच्छा होती है । स्त्री, दान, फल, विद्या, माया, कूप्य (कूपका जल) धन, स्वर्ग ॥ २ ॥ अमरत्व, देवेन्द्रत्व, नानाप्रकार रसायन, वायु भरे (स्थानमें कूदना) यज्ञ, जल और अग्निमें प्रवेश ॥ ३ ॥ समस्त श्राद्ध और दानसमूहका फल, तथा नियम इत्यादि विषयमें योगीकी कामना उदय होती है । उसकाल वह उपवास, पूर्त्तादि कर्म, देवतार्चन ॥ ४ ॥ जब जब उस उस कर्मसे संलग्न होनेकी वांछा करे मनके इस प्रकार होनेपर योगी तब २ यत्न सहित उसको उस उस विषयसे निवर्त्तित करै ॥ ५ ॥ इस प्रकारसे निवृत्त करके मनको ब्रह्मसाक्षी करसकनेसेही उपसर्गसे मुक्तिलाभ होजाता है ॥ ६ ॥ इन समस्त

दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ उपसर्गाःप्रवर्तन्तेदृष्टेह्यात्मनियोगिनः ॥ येतांस्तेसंप्रवक्ष्यामिसमासेननिबोधमे ॥ १ ॥ काम्याःक्रियास्तथाकामान्मानुषानभिवाञ्छति ॥ स्त्रियोदानफलंविद्यांमायांकुप्यंधनंदिवम् ॥२॥ देवत्वममरेशत्वंरसायनवयःक्रियाम् ॥ मरुत्प्रपतनंयज्ञंजलाग्न्यावेशनंतथा ॥३॥ श्राद्धानांसर्वदानानां फलानिनियमांस्तथा ॥ तथोपवासात्पूर्त्ताच्चदेवताभ्यर्चनादपि ॥ ४ ॥ तेभ्यस्तेभ्यश्चकर्मभ्यउपसृष्टोऽभिवाञ्छति ॥ चित्तमित्थंवर्तमानंयत्नाद्योगीनिवर्तयेत् ॥ ५ ॥ ब्रह्मसङ्गिमनःकुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते ॥ उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततःपुनः ॥ ६ ॥ योगिनःसंप्रवर्तन्तेसात्त्वराजसतामसाः ॥ प्रातिभःश्रावणोदैवोभ्रमावर्त्तौतथापरौ ॥७॥ पञ्चैतेयोगिनांयोगविघ्नायकटुकोदयाः ॥ वेदार्थाःकाव्यशास्त्रार्थाविद्याशिल्पान्यशेषतः ॥८॥ प्रतिभान्तियदस्येतिप्रातिभःसतुयोगिनः ॥ शब्दार्थानखिलान्वेत्तिशब्दंगृह्णातिचैवयत् ॥ ९ ॥ योजनानांसहस्रेभ्यःश्रावणःसोऽभिधीयते ॥ समन्ताद्वीक्षतेचाष्टौसयदादेवयोनयः ॥ १० ॥ उपसर्गतमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधाः ॥ भ्राम्यतेयन्निरालम्बंमनोदोषेणयोगिनः ॥ ११ ॥

उपसर्गके जीतनेपर फिर सात्विक राजसिक और तामसिक भेदसे अपरापर विघ्न आनकर योगीको आक्रमण करते हैं. उनमें प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त्त॥ ॥ ७ ॥ यह पांच प्रकारके उपसर्ग योगमें विघ्नसाधन करनेके लिये भयंकर रूपसे आविर्भूत होते हैं जिसके द्वारा निखिल वेदार्थ समस्तकाव्य शास्त्रार्थ यावतीय विद्या और शिल्प ॥ ८ ॥ योगीके चित्तमें प्रतिभात हो उसकोही प्रातिभ कहते हैं जिसके द्वारा सम्पूर्ण शब्दका अर्थ विदित होजाय ॥ ९ ॥ और सहस्र सहस्र योजन दूरका शब्द भी श्रवणगोचर हो वही श्रावण कहा गया है जिसके द्वारा मूर्त्तिमान् देवताके समान होकर योगी उन्मत्तकी सदृश आठों दिशाओंका दर्शन करता है ॥ १० ॥ पंडितगण उसीको दैवउपसर्ग कहते हैं जिसके द्वारा योगीका चित्त सम्पूर्ण आचार भ्रंशके कारण और मनके दोषोंके कारण निरालम्बभावसे भ्रमण करता है ॥ ११ ॥

उसीको भ्रम कहते हैं जिसके प्रभावमें ज्ञानावर्त्त जलावर्त्तके समान आकुल होकर ॥ १२ ॥ चित्तको विनाश करता है उसीको आवर्त्तउपसर्ग कहते हैं. योगीगण इन समस्त उपसर्गोंके प्रभावद्वारा सब देवयोनि ॥ १३ ॥ और योगसे भ्रष्ट होकर बारम्बार संसारचक्रमें लौटते हैं इसी कारण योगी मनोमय मनके बनाये श्वेत कम्बल से आवृत होकर ॥ १४ ॥ [शरीरमंडलमें गुरु ज्ञानका अवलोकन करे. कारण कि,बुद्धिमानको ज्ञानपूर्वक योग करना जानना चाहिये] ॥ १५ ॥ मनमें एक मात्र परब्रह्मकीही चिन्ताकर उनकाही ध्यान करना योगीका कर्त्तव्य है. योगी पुरुष निरंतर जितेन्द्रिय, लघुभोजी और योगयुक्त होकर ॥ १६ ॥ भूरादि सात प्रकारकी सूक्ष्म धारणा मस्तकमें धारण करे. वह धरित्रीको धारण करै तो उसको उसका सूक्ष्म विदित होगा ॥ १७ ॥ वह आत्माकी इसप्रकार चिन्ता करनेसे

समस्ताचारविभ्रंशाद्भ्रमःसपरिकीर्तितः ॥ आवर्तइवतोयस्यज्ञानावर्त्तोयदाकुलः ॥ १२ ॥ नाशयेच्चित्तमावर्तउपसर्गःसउच्यते ॥ एतैर्नाशितयोगास्तुसकलादेवयोनयः ॥ १३ ॥ उपसर्गैर्महाघोरैरावर्तन्तेपुनःपुनः ॥ प्रावृत्यकम्बलंशुक्लंयोगीतस्मान्मनोमयम् ॥ १४ ॥ (शरीरमंडलेदृष्ट्वागुरुज्ञानंततोहियत् ॥ ज्ञानपूर्वोपियोयोगोज्ञातव्योवैविपश्चिता) ॥ १५ ॥ चिन्तयेत्परमंब्रह्मकृत्वातत्प्रवणंमनः॥योगयुक्तःसदायोगीलघ्वाहारोजितेन्द्रियः ॥ १६ ॥ सूक्ष्मास्तुधारणाःसप्तभूराद्यामूर्ध्निधारयेत्॥ धरित्रींधारयेद्योगीतत्सौक्ष्म्यंप्रतिपद्यते ॥ १७ ॥ आत्मानंमन्यतेचोर्वींतद्गंधंचजहातिसः ॥ तथैवाप्सुरसंसूक्ष्मंतद्वद्रूपंचतेजसि ॥ १८ ॥ स्पर्शंवायौतथातद्वद्बिभ्रतस्तस्यधारणाम् ॥ व्योम्नःसूक्ष्मांप्रवृत्तिंचशब्दंतद्वज्जहातिसः ॥ १९ ॥ मनसासर्वभूतानांमनस्याविशतेयदा ॥ मानसींधारणांबिभ्रन्मनःसूक्ष्मंचजायते ॥ २० ॥ तद्वद्बुद्धिमशेषाणांसत्त्वानामेत्ययोगवित् ॥ परित्यजतिसम्प्राप्यबुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ॥ २१ ॥ परित्यजतिसूक्ष्माणिसप्तत्वेतानियोगवित् ॥ सम्यग्विज्ञाययोऽलर्कतस्यावृत्तिर्नविद्यते ॥२२॥ एतासांधारणानांतुसप्तानांसौक्ष्म्यमात्मवान् ॥ दृष्ट्वादृष्ट्वाततःसिद्धिंत्यक्त्वात्यक्त्वापरांव्रजेत् ॥ २३ ॥ यस्मिन्यस्मिंश्चकुरुतेभूतेरागंमहीपते ॥ तस्मिंस्तस्मिन्समासक्तिंसंप्राप्यसविनश्यति ॥ २४ ॥

धरित्रीका बंधन छेदन करनेमें समर्थ होगा. इसीप्रकारसे जलमें सूक्ष्म रस, तेजमें रूप॥ १८ ॥ वायुमें स्पर्श और आकाशमें सूक्ष्मा प्रवृत्ति और शब्दधारणपूर्वक परित्याग करना चाहिये ॥ १९ ॥ जब मनद्वारा समस्त भूतके मनमें प्रविष्ट होकर मानसी धारणा करी जाय, तबही सू[illegible]न उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ इस प्रकारसे योगी पुरुष समस्त भूतकी बुद्धिमें प्रविष्ट होकर अनुत्तमा सूक्ष्मबुद्धिस्वरूपलाभ करके उसको परित्याग करता है ॥ [illegible] ॥ हे अलर्क ! जो योगी इन सात प्रकारके सूक्ष्म भावको भलीभाँति जानकर परित्याग करता है, उसको फिर जन्मग्रहण करना नहीं पड़ता ॥ २२ ॥ आत्मवान् पुरुष इन सात प्रकारकी धारणाका सूक्ष्मत्व बारंबार दृष्टिगोचर करके बारंबार सिद्धिविसर्जनपूर्वक परमागतिको प्राप्त हो ॥ २३ ॥ हे महीपते ! वह जिस जिस भूतमें अनुरागी होता है, उस उस

भूतमेंही आसक्तिमान् होकर विनाशको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ अतएव जो देही परस्परसंसक्त भूतगणको जानकर परित्याग करता है, वही देही परमपदलाभ करता है ॥ २५ ॥ हे पार्थिव ! यह सप्तविध सूक्ष्म संधान करके भूतादिमें विगतराग होसकनेसेही सद्भावज्ञ पुरुष मुक्तिलाभ करता है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! गंधादिमें आसक्ति प्राप्त होनेसे ही नष्ट होना पड़ता है और फिर उसको संसार चक्रमें लौटना होता है ॥ २७ ॥ हे नरेश्वर ! योगीपुरुष इन सातप्रकारकी धारणाको अतिक्रम करके गमनकरनेकी इच्छा करनेपर उस उस सूक्ष्म भूतमें लयको प्राप्त होताहै और देवता, दानव, गंधर्व, पन्नग और राक्षस, इनके शरीरमें विलीन होजाता है, किन्तु किसीमें आसक्त नहीं होता ॥ २८ ॥ २९ ॥ वह अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, हे नरव्याघ्र ! ॥ ३० ॥ और कामावसायित्व इन अष्टविध निर्वाणप्रद ऐश्वरिक गुणोंका अधिकारी होता है ॥ ३१ ॥ जिसके द्वारा सूक्ष्मसेभी सूक्ष्मतर होसके उसका नाम अणिमा है. जिसके द्वारा क्षिप्रकारिता अर्थात् सब

तस्माद्विदित्वासूक्ष्माणिसंसक्तानिपरस्परम् ॥ परित्यजतियोदेहीसपरं प्राप्नुयात्पदम् ॥ २५ ॥ एतान्येवतुसंधायसप्तसूक्ष्माणिपार्थिव ॥ भूतादीनांविनाशोऽत्रसद्भावज्ञस्यमुक्तये ॥ २६ ॥ गन्धादिषुसमासक्तिसम्प्राप्यसविनश्यति ॥ पुनरावर्त्ततेभूपसब्रह्मापरमाणुपम् ॥ २७ ॥ सप्तैताधारणायोगीसमतीत्ययदिच्छति ॥ तस्मिंस्तस्मिँल्लयंसूक्ष्मेभूतेयातिनरेश्वर ॥ २८ ॥ देवानामसुराणांवागन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ देहेषुलयमायातिसंगंनाप्नोतिचक्कचित् ॥ २९ ॥ अणिमालघिमाचैवमहिमाप्राप्तिरेवच ॥ प्राकाम्यंचतथेशित्वं वशित्वंचतथापरम् ॥ ३० ॥ यत्रकामावसायित्वंगुणानेतांस्तथैश्वरान् ॥ प्राप्नोत्यष्टौनरव्याघ्रपरंनिर्वाणसूचकान् ॥ ३१ ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयाञ्छीघ्रत्वंलघिमागुणः ॥ महिमाशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्ययत् ॥ ३२ ॥ प्राकाम्यमस्यव्यापित्वादीशित्वंचेश्वरोयतः ॥ वशित्वाद्वशिमानामयोगिनःसप्तमोगुणः ॥ ३३ ॥ यत्रेच्छास्थानमप्युक्तंयत्रकामावसायिता ॥ ऐश्वर्यकारणैरेभियोंगिनःप्रोक्तमष्टधा ॥ ३४ ॥ मुक्तिसंसूचकंभूपपरंनिर्वाणमात्मनः ॥ ततोनजायतेनैववर्द्धतेनविनश्यति ॥ ३५ ॥

कार्योंमें शीघ्रता उत्पन्न हो उसको लघिमा कहते हैं. जिसके द्वारा सबका पूजनीय होजाय उसका नाम महिमा है. जिसके द्वारा समस्त अभिलाषित प्राप्त हो उसको प्राप्ति कहते हैं ॥ ३२ ॥ जिसके द्वारा व्यापित्वशक्ति उत्पन्न हो. उसका नाम प्राकाम्य है जिसके प्रभावसे सबका ईश्वर हो जाय उसको ईशित्व कहते हैं और जिसके प्रभावसे सब वशीभूत हो उसका नाम वशित्व है. यह वशित्वही योगीजनोंका सातवाँ गुण कहागया है ॥ ३३ ॥ जिसके द्वारा अपनी इच्छानुसार जहाँ तहाँ गमन और इच्छानुसार सब कार्य साधन होसके उसकाही नाम कामावसायिता है, इन आठ प्रकार गुणोंके प्रभावसे ईश्वरके समस्त कार्य करनेमें समर्थ होता है ॥ ३४ ॥ *हे राजन् ! यह सब गुण मुक्तिकी सूचना कर देते हैं अर्थात् इन सब गुणोंके प्रकाशित होनेपरही जानना चाहिये*

कि, योगी शीघ्रही मुक्तिलाभ करेगा, इसके निर्वाणलाभ होनेका समय उपस्थित है,अब उसको जन्मग्रहण करना नहीं पडेगा वृद्धिको प्राप्त होना नहीं पड़ेगा, तथा विनष्ट होनाभी नहीं पडेगा ॥ ३५ ॥ क्षयको प्राप्त नहीं होना पड़ेगा और उसका कोई परिणामभी नहीं होगा उसको फिर कभी भूरादिभूतवर्गसे छिन्न भिन्न, क्लिन्न (गीला) दग्ध वा शुष्कभी होना नहीं पड़ेगा ॥ ३६ ॥ शब्दादि सब उसको अपहृत करनेमें समर्थ नहीं होंगे, शब्दादि विषयके संग उसका फिर कोई संबंध नहीं रहता और शब्दादिका भोक्ता भी होना नहीं पडता और उनके संग उसका फिर कोई स्पर्श नहीं रहता ॥ ३७ ॥ हे महीपते ! जिस प्रकार एक स्वर्णखंडको अप द्रव्यकी समान बाहर दग्ध करके निर्दोष करनेपर अवर एक स्वर्णखंडके सहित उसका संयोग होता है ॥ ३८ ॥ किसी प्रकार उसका प्रभेद दिखाई नहीं देता इसी प्रकार योगअग्निद्वारा रागद्वेषादिरूप दोषोंको भस्म करनेसे योगीभी ब्रह्मके सहित सम्यक् प्रकारसे मिलित होते हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जिसप्रकार अग्निमें अग्नि

नापिक्षयमवाप्नोतिपरिणामंनगच्छति ॥ छेदंक्लेदंतथादाहंशोषंभूरादितोनच ॥ ३६ ॥ भूतवर्गादवाप्नोतिशब्दाद्यैर्ह्रियतेनच ॥ नचास्यसन्तिशब्दाद्यास्तद्भोक्तातैर्नयुज्यते ॥ ३७ ॥ यथाहिकानकंखण्डमपद्रव्यवदग्निना ॥ दग्धदोषंद्वितीयेनखण्डेनैक्यंव्रजेन्नृप ॥ ३८ ॥ नविशेषमवाप्नोतितद्वद्योगाग्निनायतिः ॥ निर्दग्धदोषस्तेनैक्यंप्रयातिब्रह्मणासह ॥ ३९ ॥ यथाग्निरग्नौसंक्षिप्तःसमानत्वमनुव्रजेत् ॥ तदाख्यस्तन्मयोभूतोनगृह्येतविशेषतः ॥ ४० ॥ परेणब्रह्मणातद्वत्प्राप्यैक्यंदग्धकिल्बिषः ॥ योगीयातिपृथग्भावंनकदाचिन्महीपते ॥ ४१ ॥ यथाजलंजलेनैक्यंनिक्षिप्तमुपगच्छति ॥ तथात्मासाम्यमभ्येतियोगिनःपरमात्मनि ॥ ४२ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगिसिद्धिर्नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥ ॥ अलर्कउवाच ॥ ॥ भगवन्योगिनश्चर्य्याश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन्यथायोगीनसीदति ॥१॥ दत्तात्रेयउवाच॥मानापमानौयावेतौप्रत्युद्वेगकरौनृणाम् ॥ तावेवविपरीतार्थौयोगिनःसिद्धिकारकौ॥२॥

डालीजाय तो वह तुल्यताको प्राप्त होती है एवं तदात्मा और तन्मय होजातीहै और उसका प्रभेद स्थिर नहीं किया जाता ॥४०॥ इसी प्रकार दोषोंके दग्ध होनेपर जब योगी ब्रह्मके संग एकवारही संयुक्त होते हैं,तब फिर उनको कभी पृथग्भाव भोगना नहीं पड़ता ॥४१॥ जल जिसप्रकार जलमें गिरकर समानभाव धारण करताहै, योगीपुरुषोंका आत्मा भी वैसेही परमात्मामें मिलितहोकर साम्यता अर्थात् समानताको प्राप्तहोताहै॥४२॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७॥ अलर्कने कहा।हे भगवन् ! योगियोंका आचार और जिसप्रकार ब्रह्मपथके अनुगामी होनेसे वह नाशको प्राप्त नहीं होते । वह विषय यथार्थ सुननेकी इच्छा करता हूं ॥१॥दत्तात्रेयने कहा । मान और अपमान, यह दोनोंही सबकी प्रीति और उद्वेगके कारण हैं, यदि यह दोनों योगीके निकट विपरीतार्थ हों अर्थात् अपमानको मान और

मानको अपमान समझैं तो सिद्धिप्रद होते हैं ॥ २ ॥ मान और अपमान, यही दोअमृत और विष कहेगये हैं, तिनमें अपमान अमृत और मानही विषम विष है योगी भलीभाँति देखकर वैर रक्खें, ॥ ३ ॥ वस्त्रमे छानकर जलपान करैं, सदा सत्य से पवित्रहुए वचन कहैं और बुद्धिपूर्वक भलीभांति विचार कर चिन्ता करैं ॥ ४ ॥ योगवित् पुरुष आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और महोत्सवमें कभी कहीं न जाय और सिद्धिके लिये महाजनोंके निकट जानाभी उचित नहीं है ॥ ५ ॥ जिस समय गृहस्थका घर अग्निविहीन और धूमरहित हो, जब गृहस्थ मनुष्य भोजन करके निश्चिन्त हो, योगी पुरुष नित्य उसी समय भिक्षाके लिये जाय ॥६॥ मनुष्य जिससे तिरस्कार वा अपमान करें, ऐसे कार्यका अनुष्ठानपूर्वक साधुजनोंकी पदवी किसीप्रकार दूषित न करके योगीको भ्रमण करना चाहिये ॥ ७ ॥ गृही पुरुषोंके घरसे और यायावर पुरुषोंके घरसे भिक्षा करनी उचित है, किन्तु प्रथमावृत्तिही प्रधान कही गई है ॥ ८ ॥ जो गृही लज्जावान्, श्रद्धावान्, चतुर, श्रोत्रिय

मानापमानौयावेतौताववाहुर्विषामृते ॥ अपमानोऽमृतंतत्रमानस्तुविषमंविषम् ॥३ ॥ चक्षुःपूतंन्यसेत्पादंवस्त्रपूतंजलंपिबेत् ॥ सत्यपूतांवदेद्वाणींबुद्धिपूतंचचिन्तयेत् ॥ ४ ॥ आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषुदेवयात्रोत्सवेषुच ॥ महाजनेषुसिद्ध्यर्थंनगच्छेद्योगवित्क्वचित् ॥ ५ ॥ व्यस्तेविधूमेव्यङ्गारेसर्वस्मिन्भुक्तवज्जने ॥ अटेतयोगविद्भैक्ष्यंनतुतेष्वेवनित्यशः ॥ ६ ॥ यथैवमवमन्यंतेजनाःपरिभवन्तिच ॥ तथायुक्तश्चरेद्योगीसतांवर्त्मनदूषयन् ॥ ७ ॥ भैक्ष्यंचरेद्गृहस्थेषुयायावरगृहेषुच ॥ श्रेष्ठातुप्रथमाचेतिवृत्तिरस्योपदिश्यते ॥ ८ ॥ अथनित्यंगृहस्थेषुशालीनेषुचरेद्यतिः ॥ श्रद्दधानेषुदान्तेषुश्रोत्रियेषुमहात्मसु ॥ ९ ॥ अतऊर्ध्वंपुनश्चापिअदुष्टापतितेषुच ॥ भैक्ष्यचर्य्याविवर्णेषुजघन्यावृत्तिरिष्यते ॥१०॥ भैक्ष्यंयवागूंतक्रंवापयोयावकमेववा ॥ फलंमूलंप्रियंगुंवाकणपिण्याकसक्तवः ॥ ११ ॥ इत्येतेचशुभाहारायोगिनांसिद्धिकारकाः ॥ तत्प्रयुंज्यान्मुनिर्भक्त्यापरमेणसमाधिना ॥ १२ ॥ अपःपूर्वंसकृत्प्राश्यतूष्णींभूत्वासमाहितः ॥ प्राणायेतिततस्तस्यप्रथमाह्याहुतिःस्मृता ॥ १३ ॥ अपानायद्वितीयातुसमानायेतिचापरा ॥ उदानायचतुर्थीस्याद्व्यानायेतिचपंचमी ॥ १४ ॥

और महात्मा हैं, तथा जो गृहस्थ दूषित और पतित नहीं हैं, उनके घरमेंही यतिगण भिक्षा करैं, विवर्ण पुरुषोंके यहांसे भिक्षा करनेपर उसको जघन्यवृत्ति कहते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ यवागू, मट्ठा, दुग्ध, यावक, कुलथी, फल, मूल, प्रियंगु, कण, पिण्याक और सत्तू, इन सब वस्तुओंकी योगी पुरुषोंको भिक्षा करनी चाहिये ॥ ॥ ११ ॥ यह सब वस्तु उनका कल्याणकर और सिद्धिदायक आहार कहकर निर्दिष्ट हैं अतएव परम सावधान और भक्तियुक्त होकर यह सब द्रव्य उपभोग करने चाहिये ॥ १२ ॥ योगी पुरुष भोजनके पूर्वमें मौनावलम्बनसहित प्रथमतः एकवार जलपान करके सावधान हो "प्राणाय स्वाहा" इस वाक्यसे आहार करैं । यही योगियोंकी प्रथमा आहुति कही गई है ॥ १३ ॥ फिर क्रमानुसार "अपानाय" कह कर दूसरी आहुती. "समानाय" कहकर तीसरी

"उदानाय" कहकर चौथी और "व्यानाय" कहकर पांचवी आहुति प्रदान करैं ॥ १४ ॥ फिर प्राणायामद्वारा पृथक् करते हुए अपनी इच्छानुसार शेष भोजन पूर्ण करैं, तदनन्तर फिर एकवार जलपान करके आचमनके पीछे हृदयको स्पर्श करना चाहिये ॥ १५ ॥ अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ और अहिंसा, यह पांच भिक्षुकके परम व्रत हैं ॥ १६ ॥ और क्रोधशून्यता, गुरुशुश्रूषा, शौच, आहारकी लघुता, और नित्य वेदाध्ययन,यह पांच उनके नियम कहे गये हैं ॥ १७॥ सारस्वरूप कार्यसिद्धि करनेवाले ज्ञानकी आलोचना करनी ही उचित है, क्यों कि,अनेक प्रकारकी ज्ञानविषयक चर्चा करनेसे योगमें विघ्न होता है ॥ १८ ॥ जो योगी "यह ज्ञेय है यह जान्ना उचित है" कहकर तृषित चित्तसे भ्रमण करते हैं सहस्र कल्पमें भी उनको ज्ञेय पदार्थ लाभ होनेकी संभावना नहीं है ॥ १९ ॥ संगपरित्यागपूर्वक जितक्रोध, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धियोग द्वारा विधान करके चित्तको ध्यानमें निमग्न करैं ॥ २० ॥ निर्जन प्रदेश गुहा और

प्राणायामैःपृथक्कृत्वाशेषंभुञ्जीतकामतः॥अपःपुनःसकृत्प्राश्यआचम्यहृदयंस्पृशेत्॥१५॥ अस्तेयंब्रह्मचर्यंचत्यागोऽलोभस्तथैवच ॥ व्रतानिपंचभिक्षूणाम हिंसापरमाणिवै ॥ १६ ॥ अक्रोधोगुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम् ॥ नित्यस्वाध्यायइत्येतेनियमाः परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥ सारभूतमुपासीतज्ञानं यत्कार्यसाधकम् ॥ ज्ञानानांबहुतायेयंयोगविघ्नकरीहिसा ॥ १८ ॥ इदंज्ञेयमिदंज्ञेयमितियस्तृषितश्चरेत् ॥ अपिकल्पसहस्रेषुनैवज्ञेयमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ त्यक्तसङ्गोजितक्रोधोलघ्वाहारीजितेन्द्रियः ॥ विधायबुद्ध्याद्वाराणिमनोध्यानेनिवेशयेत् ॥ २० ॥ शून्येष्वेवावकाशेषुगुहासुचवनेषुच॥नित्ययुक्तःसदायोगी ध्यानंसम्यगुपक्रमेत् ॥२१॥ वाग्दण्डःकर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रयः ॥ यस्यैतेनियतादण्डाःसत्रिदण्डीमहायतिः ॥२२ ॥ सर्वमात्ममयंयस्यसदसज्जगदीदृशम्॥गुणागुणमयंतस्यकःप्रियःकोनृपाप्रियः॥२३ ॥ विशुद्धबुद्धिःसमलोष्ठकाञ्चनःसमस्तभूतेषुसमःसमाहितः॥स्थानंपरंशाश्वतमव्ययंचयतिर्हिगत्वानपुनः प्रजायते ॥ २४ ॥ वेदाच्छ्रेष्ठाःसर्वयज्ञक्रियाश्चयज्ञाज्जाप्यंज्ञानमार्गश्चजप्यात् ॥ ज्ञानाद्ध्यानंसंगरागव्यपेतंतस्मिन्प्राप्तेशाश्वतस्योपलब्धिः ॥२५॥

वनमें जाकर नित्ययुक्त हो सर्वदा सम्यक् विधानसे ध्यानमें निविष्ट होना चाहिये ॥ २१ ॥ वाग्दंड कर्मदण्ड और मनोदण्ड, यह तीन जिसके वशीभूत हैं उसीको त्रिदण्डी और यह महायति कहाजाता है ॥ २२ ॥ जो इस सदसदात्मक गुणागुणमय दृश्यमान जगत्को आत्ममय विचारते हैं हे राजन् ! कौन पुरुष उनका प्रिय और कौन पुरुष उनका अप्रिय होता है ? ॥ २३ ॥ जो विशुद्धबुद्धियुक्त, क्या लोहा क्या कंचन दोनोंमेंही जिसका समान ज्ञान है, और जो पुरुष समस्त भूतमें समाहित होकर सर्वाधार शाश्वत अव्यय ब्रह्मकोही सर्वत्र विराजित देखता है, उसको फिर पुनर्जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता ॥ २४ ॥ निखिल वेद और सब प्रकारकी यज्ञक्रियाही श्रेष्ठ हैं। उस यज्ञकी अपेक्षा जप, जपकी अपेक्षा ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्गकी अपेक्षा निःसंग रागविहीन ध्यानही श्रेष्ठ है,

इस ध्यानयोगमें प्राप्त होनेसे शाश्वत ब्रह्मकी उपलब्धि होती है ॥ २५ ॥ जो महात्मा सावधान ब्रह्मपरायण, प्रमादशून्य पवित्र ऐकान्तिक अनुरागी और नियतेन्द्रिय होकर यह योगलाभ करते हैं, आत्मामें आत्माका संयोग होकर उनको मुक्तिलाभ होता है ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ दत्तात्रेयने कहा । इसप्रकार जो योगी सम्यक् विधानसे योगयुक्त होते हैं, शतशत जन्मान्तरमें भी फिर वह स्वपदसे निवृत्त नहीं होसकते ॥ १ ॥ जो विश्वरूपी; विश्वके ईश्वर और विश्वभावन हैं, विश्वही जिनके पाद हैं विश्वही जिनकी ग्रीवाऔर विश्वही जिनका मस्तक है, योगी उन्हीं परमात्माको प्रत्यक्ष करके ॥ २ ॥ उनको प्राप्त करनेके लिये यह पवित्र "ॐ" एकाक्षर जप करैं, यही उनका अध्ययन होगा, और इस ओंकारका स्वरूप श्रवण करैं ॥ ३ ॥ अकार उकार और मकार, यह तीन अक्षर ही

समाहितोब्रह्मपरोऽप्रमादीशुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः ॥ समाप्नुयाद्योगमिमंमहात्माविमुक्तिमाप्नोतिततःस्वयोगतः ॥२६॥ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगिचर्याकथनंनामअष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ एवंयोवर्त्ततेयोगीसम्यग्योगव्यवस्थितः ॥ नसव्यावर्तितुंशक्योजन्मान्तरशतैरपि ॥१॥ दृष्ट्वाचपरमात्मानंप्रत्यक्षंविश्वरूपिणम् ॥ विश्वपादशिरोग्रीवंविश्वेशंविश्वभावनम् ॥ २ ॥ तत्प्राप्तयेमहत्पुण्यमोमित्येकाक्षरंजपेत् ॥ तदेवाध्ययनंतस्यस्वरूपंशृण्वतःपरम् ॥ ३ ॥ अकारश्चतथोकारोमकारश्चाक्षरत्रयम् ॥ एतास्तिस्रःस्मृतामात्राःसात्त्वराजसतामसाः ॥ ४ ॥ निर्गुणायोगिगम्यान्याचार्धमात्रोर्ध्वसंस्थिता ॥ गान्धारीतिचविज्ञेयागान्धारस्वरसंश्रया ॥ ५ ॥ पिपीलिकागतिस्पर्शाप्रयुक्तामूर्ध्निलक्ष्यते ॥ यथाप्रयुक्तओङ्कारःप्रतिनिर्य्यातिमूर्द्धनि ॥ ६ ॥ तथोङ्कारमयोयोगीत्वक्षरेत्वक्षरोभवेत् ॥ प्राणोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मवेध्यमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ अप्रमत्तेनवेद्धव्यंशरवत्तन्मयोभवेत् ॥ ओमित्येतत्त्रयोवेदास्त्रयोलोकास्त्रयोऽग्नयः ॥ ८ ॥

ओंकारका स्वरूप हैं, और इन्ही को तीन मात्रा जानना चाहिये । यह तीनों मात्राक्रमानुसार सात्विक राजसिक और तामसिक अर्थात् अकार सात्विक, उकार राजसिक और मकार तामसिक है ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त ओंकारको और एक अर्द्ध मात्रा है, वह सात्विकादि तीनों गुणोंसे परे अर्थात् निर्गुण है, ऊर्ध्व में अवस्थित और योगी पुरुषोंको गम्य है, इसनें गान्धारस्वरका आश्रय किया है इस लिये यह गान्धारी नामसे विख्यात हैं ॥ ५ ॥ यह मात्रा पिपीलिका (चैंटी) की समान गति और स्पर्शयुक्त हैं, यह शिरोभागमें दिखाई देती है ओंकार प्रयुक्त होकर जिसप्रकार शिरोदेशके प्रति गमन करती है ॥ ६ ॥ इसी प्रकार योगयुक्त पुरुष अक्षर अक्षर में ओंकारमय होता है । प्राण धनुःस्वरूप, एवं आत्मा वाण और ब्रह्मको लक्ष्य स्वरूप जानना चाहिये ॥ ७ ॥ प्रमादहीन होकर

शरके समान ब्रह्मको संविद्ध करसकनेसे ही तन्मय हो सकता है ओंकार ही तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि, ॥ ८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, और ऋक्, साम, यजुःस्वरूप है, परमार्थतः ओंकारकी मात्रा साढेतीन हैं ॥ ९ ॥ इस ओंकार में संयुक्त हो सकनेसे ही योगी उसमें विलीन होते हैं । अकार भूर्लोक उकार भुवर्लोक ॥ १० ॥ और सव्यंजन मकार स्वर्लोक कहकर निरूपित हुआ है, उसकी पहिली मात्रा व्यक्ता, दूसरी अव्यक्ता ॥ ११ ॥ तीसरी चिच्छक्ति और चौथी मात्रा परमपद कही गई है इस प्रकार क्रमानुसार इनको योगभूमि जानना चाहिये ॥ १२ ॥ "ॐ" इस अक्षरका केवल उच्चारण करते ही समस्त सदा सत् असत् गृहीत होते हैं । पहिली मात्रा ह्रस्व, दूसरी मात्रा दीर्घ ॥ १३ ॥ और तीसरी मात्रा प्लुतस्वरूप है । किन्तु अर्द्धमात्राका स्वरूप वर्णन करना

विष्णुर्ब्रह्माहरश्चैवऋक्सामानियजूंषिच॥मात्राःसार्द्धाश्चतिस्रश्चविज्ञेयाःपरमार्थतः॥९॥तत्रयुक्तस्तुयोयोगीसतल्लयमवाप्नुयात् ॥ अकारस्त्वथभूर्लोकउकारश्चो च्यतेभुवः ॥ १० ॥ सव्यञ्जनोमकारश्चस्वर्लोकःपरिकल्प्यते ॥ व्यक्तातुप्रथमामात्राद्वितीयाव्यक्तसंज्ञिता ॥११॥ मात्रातृतीयाचिच्छक्तिरर्धमात्रापरंपदम् ॥ अनेनैवक्रमेणैताविज्ञेयायोगभूमयः ॥१२॥ ओमित्युच्चारणात्सर्वंगृहीतंसदसद्भवेत् ॥ ह्रस्वातुप्रथमामात्राद्वितीयादैर्घ्यसंयुता ॥१३॥ तृतीयाचप्लुतार्धाख्याव चसःसानगोचरा ॥ इत्येतदक्षरंब्रह्मपरमोंकारसंज्ञितम् ॥ १४ ॥ यस्तुवेदनरःसम्यक्तथाध्यायतिवापुनः ॥ संसारचक्रमुत्सृज्यत्यक्तत्रिविधबन्धनः ॥१५॥ प्राप्नोतिब्रह्मणिलयंपरमेपरमात्मनि ॥ आक्षीणकर्मबन्धश्चज्ञात्वामृत्युमरिष्टतः ॥१६॥ उत्क्रान्तिकालेसंस्मृत्यपुनर्योगित्वमृच्छति ॥ तस्मादसिद्धयोगेनासिद्ध योगेनवापुनः ॥ ज्ञेयान्यरिष्टानिसदायेनोत्क्रांतौनसीदति ॥ १७ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगधर्मेओंकारवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ अरिष्टानिमहाराजशृणुवक्ष्यामितानिते ॥ येषामालोकनान्मृत्युंनिजंजानातियोगवित् ॥१॥ देवमार्गंध्रुवंशुक्रंसोमच्छायामरुन्धतीम् ॥ योनपश्येन्नजीवेत्सनरःसंवत्सरात्परम् ॥ २ ॥

असाध्य है । इस प्रकारसे जो योगी ओंकारसंज्ञक अक्षरस्वरूप परब्रह्मको ॥ १४ ॥ जानकर उनका ध्यान करते हैं वह संसारचक्र उल्लंघनपूर्वक तीनों बंधनको छोड़कर ॥ १५ ॥ उस परमात्मा परब्रह्ममें विलीन होते हैं यदि उनके कर्मबंधनका क्षय न हो तो वह अरिष्टद्वारा मृत्युको जानकर ॥ १६ ॥ मरणकालमें जातिस्मृतिलाभपूर्वक फिर योगित्वको प्राप्त होतेहैं । इसी कारण सिद्ध योगी क्या असिद्धयोगी अरिष्टका सबकोही ज्ञान होना चाहिये । अरिष्टके जानलेनेसे मृत्युकालमें दुःखको प्राप्त होना नहीं पड़ता ॥ १७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ दत्तात्रेयने कहा । हे महाराज ! अब तुम्हारे निकट समस्त अरिष्ट कहता हूं सुनो । योगी पुरुष इन सबको देखकर अपनी मृत्यु जानै ॥ १ ॥ जो पुरुष देवमार्ग ध्रुव

शुक्र सोम अपनी छाया और अरुन्धती इन सबको नहीं देखसकता वह संवत्सरके पीछे ही मृत्युमुखमें गिरता है ॥ २ ॥ जो पुरुष सूर्यके बिम्बको रश्मि विहीन और अग्निको अंशुमान् देखे ग्यारह महीनेसे अधिक उसको जीवन धारणकरना नहीं पड़ता ॥ ३ ॥ स्वप्नमें मूत्र, पुरीष और वमन, इन सबमें सुवर्ण वा रजत का दर्शन करनेसे वह पुरुष केवल दश महीने प्राणधारण करके कालग्रासमें गिरता है॥ ४ ॥ जो पुरुष प्रेत और पिशाचादि, गंधर्वनगर और स्वर्णवर्ण वृक्ष देखताहै, उसको केवल नौमहीने जीवित रहना पडता है॥ ५॥ जो पुरुष सहसा स्थूल होकर कृश और फिर कृश होकर अकस्मात् स्थूल होजाय, उसकी परमायु आठ मासपर्यन्त अवशिष्ट जाने इसके पीछे प्रकृति भ्रष्ट होजाती है ॥ ६ ॥ रेते वा कीचडके भीतर पैर डालनेसे जिसको पार्ष्णि (एडि) या पैरके अग्रभागका चिह्न खंडित दिखाई दे,

अरश्मिबिम्बंसूर्य्यस्यवह्निंचैवांशुमालिनम्॥ दृष्ट्वैकादशमासेभ्योनरोनोर्ध्वंतुजीवति ॥२ ॥ वान्तेमूत्रपुरीषेचयःस्वर्णरजतंतथा ॥ प्रत्यक्षंकुरुतेस्वप्नेजीवेत्सद शमासिकम् ॥ ४ ॥ दृष्ट्वाप्रेतपिशाचादीन्गन्धर्वनगराणिच ॥ सुवर्णवर्णान्वृक्षांश्चनवमासान्सजीवति ॥ ५ ॥ स्थूलःकृशःकृशःस्थूलोयोऽकस्माद्देवजायते ॥ प्रकृतेश्चनिवर्तेततस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥ ६ ॥ खण्डंयस्यपदंपार्ष्ण्यांपादस्याग्रेचवाभवेत्॥पांशुकर्दमयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति ॥७॥ गृध्रःकपोतःकाको लोवायसोवापिमूर्द्धनि ॥ क्रव्यादोवाखगोनीलःषण्मासायुःप्रदर्शकः ॥ ८ ॥ हन्यतेकाकपंक्तिभिःपांशुवर्षेणवानरः ॥ स्वांछायामन्यथादृष्ट्वाचतुःपंचसजी वति ॥ ९ ॥ अनभ्रेविद्युतंदृष्ट्वादक्षिणांदिशमाश्रिताम् ॥ रात्राविन्द्रधनुश्चापिजीवितंहित्रिमासिकम् ॥ १० ॥ घृतेतैलेतथादर्शेतोयेवानात्मनस्तनुम् ॥ यःपश्येदशिरस्कांवामासादूर्ध्वंनजीवति ॥ ११ ॥ यस्यवस्तसमोगन्धोगात्रेशवसमोऽपिवा ॥ तस्यार्द्धमासिकंज्ञेयंयोगिनोनृपजीवितम् ॥ १२ ॥

वह केवल सातमहीने जीवनधारणा करता है ॥ ७ ॥ गृध्र, (कबूतर) काकोल (उल्लू) काक अथवा क्रव्याद वा अन्य कोई नीलवर्ण मांसाहारी पक्षी उडकर मस्त कमें बैठे तो छः मासकी आयु जानै ॥ ८ ॥ जो काकश्रेणी और धूलि वर्षनेसे आघातको प्राप्त होताहै और जो पुरुष अपने शरीरकी छायाको विपरीत देखता है चारमहीने वा पांच महीने वह जीवित रहताहै ॥ ९ ॥ विनाही मेघ दक्षिणदिशामें बिजलीके देखनेसे और रात्रिकालमें इन्द्रधनुषके देखनेसे मनुष्य केवल दो वा तीन महीने जीवित रहता है ॥ १० ॥ घृत, तेल, दर्पण और जल इन सबमें नेत्र डालनेसे स्वीयमूर्ति जिसको दिखाई न दे और अपने देह को मस्तकशून्य देखे एक माससे अधिक कालतक उसको जीवन धारण करना नहीं पडता ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जिसके गात्रसे मुर्देकीसी गंध निर्गत होती है, वह

योगी केवल अर्द्धमास जीवित रहता है ॥ १२॥ स्नान करतेही जिसका हृदय और पैर सूख जांय और जलपानकरते ही फिर तत्काल तृष्णासे जिसका कण्ठ शुष्क हो वह केवल दशदिनमात्र जीवित रहताहै ॥ १३ ॥ वायु छिन्नभिन्न होकर जिस पुरुषका मर्मस्थान विभिन्न करदे और जलस्पर्श करनेसे जिसको रोमांच न हो, उसका मृत्युकाल उपस्थित ही जाने ॥ १४ ॥ जो पुरुष स्वप्नमें ऋक्ष और वानरके यानमें चढकर गाता हुआ दक्षिण दिशामें जाय उसकी मृत्यु अति निकट जानै ॥ १५॥ स्वप्नमें लाल काले वस्त्र पहिरे स्त्री हास्यमुखसे गान करते करते जिसको दक्षिण दिशामें ले जाय, उसको शीघ्रही मृत्युमुखमें गिरना पड़ता है ॥ १६ ॥ स्वप्नमें महाबल नग्न क्षपणक बौद्धसंन्यासी को अकेला हंसते हंसते जाता देखनेसे जाने कि उसका मृत्युकाल बहुत निकट है ॥ १७ ॥ जो पुरुष स्वप्नमें अपने देहको मस्तकपर्यन्त

यस्यैवस्नातमात्रस्यहृत्पादमवशुष्यते ॥ पिबतश्चजलंशोषोदशाहंसोऽपिजीवति ॥१३॥ संभिन्नोमारुतोयस्यमर्मस्थानानिकृन्तति ॥हृष्यतेनाम्बुसंस्पर्शात्त स्यमृत्युरुपस्थितः ॥ १४ ॥ ऋक्षवानरयानस्थोगायन्योदक्षिणांदिशम्॥ स्वप्नेप्रयातितस्यापिनमृत्युःकालमिच्छति॥ १५॥रक्तकृष्णाम्बरधरागायन्तीहस तीचयम् ॥ दक्षिणाशांनयेन्नारीस्वप्नेसोपिनजीवति ॥१६॥ नग्नंक्षपणकंस्वप्नेहसमानंमहाबलम्॥ एवंसंवीक्ष्यवल्गन्तंविद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥१७॥ आमस्त कतलाद्यस्तुनिमग्नंपङ्कसागरे ।. स्वप्नेपश्यत्यथात्मानंससद्योम्रियतेनरः ॥१८॥ केशाङ्गारांस्तथाभस्मभुजङ्गान्निर्जलांनदीम्॥ दृष्ट्वास्वप्नेदशाहात्तुमृत्युरेका दशेदिने ॥ १९ ॥ करालैर्विकटैःकृष्णैःपुरुषैरुद्यतायुधैः ॥ पाषाणैस्ताडितःस्वप्नेसद्योमृत्युंलभेन्नरः ॥ २०॥ सूर्योदयेयस्यशिवाक्रोशन्तीयातिसंमुखम्॥ विपरीतंपरीतंवाससद्योमृत्युमृच्छति॥२१॥यस्यवैभुक्तमात्रस्यहृदयंबाध्यतेक्षुधा ॥जायतेदन्तघर्षश्चसगतायुर्नसंशयः ॥२२॥ दीपगन्धंनयोवेत्तित्रस्यत्यह्नि तथानिशि ॥ नात्मानंपरनेत्रस्थंवीक्षतेनसजीवति ॥ २३ ॥

कीचके सागरमें निमग्न देखे, शीघ्रही उसकी मृत्यु संघटित होती है ॥ १८ ॥ स्वप्नमें केश, अंगार, भस्म, सर्प और सूखी नदी यह सब देखनेसे दशदिनके पीछे ग्यारहवें दिन मृत्यु होती है ॥ १९ ॥ स्वप्नमें कराल और विकटाकार काले वर्णपुरुष सशस्त्र आनकर पाषाणद्वारा जिसको आघात करैं, शीघ्रही उसकी मृत्यु होतीहै ॥ २० ॥ सूर्योदयके समय जिस व्यक्तिके सन्मुख, पीछे अथवा चारोंओर होकर गीदडी गमन करैं, वह शीघ्रही मृत्युमुखमें पतित होता है॥ २१ ॥ भोजन करके उठतेही जिस मनुष्यका हृदय फिर तत्काल भूखसे व्याकुल हो और दन्तघर्ष उपस्थित हो, उसकी आयु निःसंदेह शेष हुई है॥ २२॥ जिसकी नासिकामें दीपगंध विदित न हो, जो दिनमें और रात्रिकालमें भयको प्राप्त हो और दूसरेके नेत्रमें जो पुरुष अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखसके उसके जीवनको निःशेष हुआ जाने ॥ २३ ॥

यदि आधी रातके समयमें इन्द्रधनुष और दिनमें ग्रहगण दिखाई दें तो आत्मवित् पुरुष उस परमायुका क्षय हुआ जाने ॥ २४ ॥ जिसकी नासिका टेढ़ी हो जाय, दोनों ऊंचे नीचे हों और वामनेत्रसे अश्रु गिरते रहें, उसकी परमायु पूरी हुई जाने ॥२५॥ मुख लोहित वर्ण और रसना श्याम वर्ण होनेसेही बुद्धिमान् पुरुष अपना मृत्युकाल निकट जाने ॥ २६ ॥ जो पुरुष स्वप्नमें ऊंट और गधेके यानमें चढकर दक्षिणदिशामें जाय, शीघ्रही उसकी मृत्यु होती है, इसमें संदेह नहीं॥ २७॥ दोनों कर्ण ढकनेसे स्वीय शब्द जिसको सुनाई न आवे और जिसके नेत्रोंकी ज्योति विलुप्त होजाय वह पुरुष शीघ्रही जीवन त्याग करता है॥ २८॥ जो पुरुष स्वप्नमें गर्त (गड्ढे) में गिरकर बाहर निकलनेके लिये द्वार न पावे, सुतरां उठनेमें असमर्थ हो, उसका परमायु निःशेष हुआ समझे ॥ २९ ॥ जिस पुरुषकी दृष्टि

शक्रायुधंचार्द्धरात्रेदिवाग्रहगणांस्तथा ॥ दृष्ट्वामन्येतसंक्षीणमात्मजीवितमात्मवित् ॥ २४ ॥ नासिकावक्रतामेतिकर्णयोर्नमनोन्नती ॥ नेत्रंचवामंस्रवति यस्यतस्यायुरुद्गतम् ॥ २५ ॥ आरक्ततामेतिमुखंजिह्वावाश्यामतांयदा ॥ तदाप्राज्ञोविजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः ॥ २६ ॥ उष्ट्ररासभयानेनयःस्वप्ने दक्षिणांदिशम् ॥ प्रयातितंचजानीयात्सद्योमृत्युंनरेश्वर ॥ २७ ॥ पिधायकर्णौनिर्घोषंनशृणोत्यात्मसम्भवम् ॥ नश्यतेचक्षुषोर्ज्योतिर्यस्यसोऽपिनजीवति ॥ ॥ २८ ॥ पततोयस्यवैगर्तेस्वप्नेद्वारंपिधीयते ॥ नचोत्तिष्ठतियःश्वभ्रात्तदन्तंतस्यजीवितम् ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वाचदृष्टिर्नचसंप्रतिष्ठारक्तापुनःसंपरिवर्तमाना ॥ मुखस्यचोष्माशिशिराचनाभिःशंसंतिपुंसामपरंशरीरम् ॥ ३० ॥ स्वप्नेऽग्निंप्रविशेद्यस्तुनचनिष्क्रमतेपुनः ॥ जलप्रवेशादपिवातदन्तंतस्यजीवितम् ॥३१॥ यश्चाभिहन्यतेदुष्टैर्भूतैरात्रावथोदिवा ॥ समृत्युंसप्तरात्रान्तेनरःप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ३२ ॥ स्ववस्त्रममलंशुक्लंरक्तंपश्यत्यथोसितम् ॥ यःपुमान्मृत्युमासन्नं तस्यापिहिविनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥ स्वभाववैपरीत्यंतुप्रकृतेश्चविपर्ययः ॥ कथयन्तिमनुष्याणांसमासन्नौयमान्तकौ ॥ ३४ ॥ येषांविनीतःसततंयेऽस्यपूज्य तमामताः ॥ तानेवचावजानातितानेवचविनिन्दति ॥ ३५ ॥

ऊर्ध्वभागमें स्थित नहीं होती, लोहितवर्ण होकर वारंवार घूर्णित और चंचल हो जाय और जिसका मुख ऊष्मा (गरमी) से परिपूर्ण और नाभि विस्तृत होजाय उसको वह देह त्यागकर दूसरा देह ग्रहण करना पडता है ॥ ३० ॥ जो पुरुष स्वप्नमें अग्नि वा जलके भीतर प्रवेश करके फिर बाहर न निकल सके उसका जीवन निःशेष हुआ जाने ॥ ३१ ॥ जो पुरुष दिनमें वा रात्रिकालमें दुष्टभूत गणोंसे ताडनाको प्राप्त हो सात रात्रिमें उसको मृत्युमुखमें गिरना होता है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष अपने शुक्लवर्ण पहेरे वस्त्रको लोहित वर्ण वा कृष्णवर्ण देखताहै उसका मृत्युकाल निकटही जानना चाहिये ॥ ३३ ॥ स्वभावकी विपरीतता और प्रकृतिका विपर्य्यय होनेसे यम और अन्तक उस मनुष्यके निकट होते हैं ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् पुरुष निश्चय जाने कि काल प्राप्त होनेपरही मनुष्य पूजनीय

पुरुषोंका और जिनके निकट सदा विनीत भावसे रहना उचित है उनका अपमान और निन्दा करता है ।। ३५ ।। देवताओंकी पूजासे विमुख होता है वृद्ध और ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, माता पिताका सत्कार तथा जामाताका आदर ।। ३६ ।। करनेसे विमुख होता है एवं योगी ज्ञानी और अन्यान्य महात्मा सबके ही असत्कारमें उद्यत होता है उसकी आयु समाप्त जाने ।। ३७ ।। हे अवनीपते ! योगीगण यत्नसहित निरन्तर जान रक्खें कि, यह सब अरिष्ट संवत्सरके अन्त में दिनरात फलप्रदान करते हैं ।। ३८ ।। वह इन समस्त अति भीषण फलोंके प्रति भली भांति दृष्टि रक्खे । यह सब फल सहजमें ही जाने जाते हैं । हे नरेश्वर ! इन समस्त फलको सम्यक् विधानसे जानकर उनके आगमनका समय सदा मनमें रखना चाहिये ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसे योगी उपस्थिति कालको जानकर भलीभांति निर्भयस्थानआश्रयपूर्वक योगमें अभिनिविष्ट हो जिससे कालका बल न चलै ॥ ४० ॥

देवान्नार्चयतेवृद्धान्गुरून्विप्रांश्चनिन्दति ॥ मातापित्रोर्नसत्कारंजामातॄणांकरोतिच ॥ ३६ ॥ योगिनांज्ञानविदुषामन्येषांचमहात्मनाम् ॥ प्राप्तेतुकाले पुरुषस्तद्विज्ञेयंविचक्षणैः ॥ ३७ ॥ योगिनांसततंयत्नादरिष्टान्यवनीपते ॥ संवत्सरान्तेतज्ज्ञेयंफलदानिदिवानिशम् ॥ ३८ ॥ विलोक्याविशदाचैषांफलपंक्तिःसुभीषणा ॥ विज्ञायकार्योमनसिसचकालेनरेश्वर ॥ ३९ ॥ ज्ञात्वाकालंचतंसम्यगभयस्थानमाश्रितः ॥ युञ्जीतयोगीकालोऽसौयथानास्याफलोभवेत् ॥ ४० ॥ दृष्ट्वारिष्टंतथायोगीत्यक्त्वामरणजंभयम् ॥ तत्स्वभावंतदालोक्यकालोयावद्विपाकदः ॥ ४१ ॥ तस्यभागेतथैवाह्नोयोगंयुञ्जीतयोगवित् ॥ पूर्वाह्णेचापराह्णेचमध्याह्नेचापितद्दिने ॥ ४२ ॥ यत्रवारजनीभागेतदरिष्टंनिरीक्षितम् ॥ तत्रैवतावद्युञ्जीतयावत्प्राप्तंहितद्दिनम् ॥ ४३ ॥ ततस्त्यक्त्वाभयंसर्वंजित्वातंकालमात्मवान् ॥ तत्रैवावसथेस्थित्वायत्रवास्थैर्यमात्मनः ॥ ४४ ॥ युञ्जीतयोगंनिर्जित्यत्रीन्गुणान्परमात्मनि ॥ तन्मयश्चात्मनाभूत्वाचिद्वृत्तिमपिसंत्यजेत् ॥ ४५ ॥

अरिष्टके देखते ही योगी मृत्युजनित भय छोड़ उस अरिष्टके स्वभावकी पर्यालोचना (विचार) करके जिस समय वह समागत हो ।। ४१ ।। योगवित् पुरुष दिनके उसी भागमें योगमें निविष्ट हो । उसी दिनके पूर्वाह्ण में, मध्याह्नमें, वा अपराह्ण में ।। ४२ ।। अथवा रात्रि कालमें, या जिस समय अरिष्ट दिखाई दिया है, उसी कालमें योगनिविष्ट होना चाहिये । जबतक वह दिन न आवे, तबतक इसी प्रकारसे योगक्रियाका आचरण करैं ।। ४३ ।। वह आत्मवान् होकर सब भय विसर्जन और तिस समय को पराजय करके उसी गृहमें अथवा अन्य जिस स्थानमें मनकी स्थिरता हो ।। ४४ ।। ऐसे स्थानमें वासकर तीनों गुणों को जीत योगयुक्त और परमात्मामें ऐकान्तिक चित्तसे अभिनिविष्ट हो और आत्मा को तन्मय करके अन्तमें चित्तवृत्तिको भी सर्वथा विसर्जन करना चाहिये ॥ ४५ ॥

इस प्रकार करनेसे ही वह इन्द्रियातीत, बुद्धिके अगोचर, और वाक्यका अतीत परम निर्वाण लाभकर सकते हैं ॥ ४६ ॥ हे अलर्क ! मैंने यथार्थ रूपसे तुम्हारे निकट यह सब वर्णन किया । अब जिस उपायसे ब्रह्म पदार्थ लाभ किया जाता है वह संक्षेपसे कहताहूं सुनो ॥ ४७ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंका संयोग होनेसे ही चन्द्र कान्तमणिसे जल निकलता है चन्द्रमाकी किरणोंके सहित संयोग न होनेसे कभी जल नहीं निकलता, यही योगीके योगसिद्धिका उपाय है, अर्थात् योगमें मनको अभि निविष्ट न करनेसे कभी योगीके हृदयमें आनन्दरसका संचार नहीं होता, योगमें मनको नियुक्त करनेसेही वह आनन्द होता है ॥ ४८ ॥ सूर्यकी किरणोंका संयोग होनेपरही सूर्यकान्तमणिसे अग्नि निकलती है, सूर्यकी किरणोंका विना संयोगहुए नहीं निकल सकती । यहभी योगीके योगसिद्धिकी और एक उपमा है अर्थात् योगमें युक्तचित्त न होनेसे कभी योगी ब्रह्मके साक्षात्कारमें समर्थ नहीं होता ॥ ४९ ॥ पिपीलिका, मूषिक, नकुल, गृहगोधा (घरकी गोय) और कपिञ्जल,

ततःपरमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम् ॥ यद्बुद्धेर्यन्नचाख्यातुंशक्यतेतत्समश्नुते ॥ ४६ ॥ एतत्सर्वंसमाख्यातंतवालर्कयथार्थवत् ॥ प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मसंक्षे पात्तन्निबोधमे ॥ ४७ ॥ शशाङ्करश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिःपयः ॥ समुत्सृजतिनायुक्तःसोपमायोगिनःस्मृता ॥ ४८ ॥ यथार्करश्मिसंयोगादर्ककान्तो हुताशनम् ॥ आविष्करोतिनैकःसन्नुपमासापियोगिनः ॥ ४९ ॥ पिपीलिकाखुनकुलगृहगोधाकपिंजलाः ॥ वसन्तिस्वामिवद्गेहेध्वस्तेयान्तिततोऽन्यतः ॥ ॥ ५० ॥ दुःखंतुस्वामिनोध्वंसेतस्यतेषांनकिंचन ॥ वेश्मनोयत्रराजेन्द्रसोपमायोगसिद्धये ॥ ५१ ॥ मृद्देहिकाल्पदेहापिमुखाग्रेणाप्यणीयसा ॥ करोति मृद्भारचयमुपदेशःसयोगिनः ॥ ५२ ॥ पशुपक्षिमनुष्याद्यैःपत्रपुष्पफलान्वितम् ॥ वृक्षंविलुप्यमानंतुदृष्ट्वासिध्यन्तियोगिनः ॥ ५३ ॥

कबूतर यह गृहस्वामीकी समान विद्यमान रहते हैं अर्थात् उस स्थानमें सदा वासकरते हैं उसके नष्ट होनेपर अन्य स्थानमें जाते हैं ॥ ५० ॥ गृहस्वामीके ध्वंस होनेसे वह कुछ भी दुःखी नहीं होते हे राजेन्द्र ! यह भी योगीके योगसिद्धिकी तीसरी उपमा है, अर्थात् स्वभावसेही शरीरके पीछे शरीरका आविर्भाव तिरोभाव होता है, अतएव उसके लिये दुःख वा ममताके वशीभूत होना अनुचित है योगी यह जानकर दुःखादि परित्यागपूर्वक योगसाधनमें मन लगावें ॥ ५१ ॥ देखो चेंटी अत्यन्त छोटी वस्तु होकरभी अत्यन्त सूक्ष्ममुखद्वारा (मट्टी खैंच २ कर ढेर) संचय करतीं हैं । यह भी योगीके लिये एक उपदेश है, अर्थात् यद्यपि ब्रह्मसाधन कठिन कार्य है किन्तु तोभी योगरूप सामान्य उपायके बलसेही उसको वशीभूत कियाजाताहै ॥ ५२ ॥ पशु पक्षी मनुष्य इत्यादि फल, पुष्प,

पत्रान्वित वृक्षको नष्ट कर देते हैं। योगी यह देखकरभी सिद्धिलाभ करैं अर्थात् समृद्धि होनेसेही ध्वंस है समयमें कालके हाथसे अवश्य नष्ट होना पड़ेगा! इसप्रकार जानकरही योगीगण योगसाधनमें निविष्ट होकर निर्वाणलाभ करैं ॥ ५३ ॥ रुरुशावक (मृगविशेष) के सींगका अग्रदेश तिलकाकार होकरभी उसके संग संगमें वह वृद्धिको प्राप्त होताहै, इसी दृष्टान्तके अनुगामी होकर भी योगी सिद्धिलाभ करते हैं। अर्थात् योगचर्या कितनीही भारी क्यों न हो, धीरे धीरे अभ्यास करनेसे अवश्यही कृतकार्य हो सकताहै ॥ ५४ ॥ और भी देखो! जब मनुष्य द्रवपरिपूर्णपात्र हाथमें लेकर पृथ्वीसे ऊंचे स्थानमें आरोहण करताहै, तिसकाल उसके अंग के प्रति सम्यक् प्रकार दृष्टि डालनेसे योगीका कोई विषय अज्ञात रहताहै ॥ ५५ ॥ मनुष्य जीवनके लिये अपना सर्वस्व नष्ट करनेकी जो चेष्टा करताहै, उसको सम्यक् प्रकार जाननेसे योगी कृतकृत्यताका लाभ करताहै ॥ ५६ ॥ जिस स्थानमें वासकिया जाय वही गृह, जिसके द्वारा प्राण धारण हो, वही भोज्य और जिसके द्वारा

रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्यातिलकाकृतिम् ॥ सहतेनविवर्द्धन्तंयोगीसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ द्रवपूर्णमुपादायपात्रमारोहतोभुवः ॥ तुङ्गमङ्गंविलोक्योच्चै र्विज्ञातंकिनयोगिना ॥ ५५ ॥ सर्वस्वेजीवनायालंनिखाते पुरुषस्यया ॥ चेष्टांतांतत्त्वतोज्ञात्वायोगिनःकृतकृत्यता ॥ ५६ ॥ तद्गृहंयत्रवसतितद्भोज्यंये नजीवति॥ येनसम्पद्यतेचार्थस्तत्सुखंममतात्रका ॥ ५७ ॥ अभ्यर्थितोऽपितैःकार्यकरोतिकरणैर्यथा ॥ तथाबुद्ध्यादिभिर्योगीपारक्यैः साधयेत्परम्॥५८॥ जडउवाच ॥ ततःप्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कःसमहीपतिः ॥ प्रश्रयावनतोवाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ॥ ५९ ॥ दिष्ट्यादेवैरिदंब्रह्मन्पराभिभवसम्भवम् ॥ उपपादितमत्युग्रं प्राणसंदेहदंभयम् ॥ ६० ॥ दिष्ट्याकाशिपतेर्भूरिबलसम्पत्पराक्रमः ॥ यदुच्छेदादिहायातःसयुष्मत्सङ्गदोमम ॥ ६१ ॥ दिष्ट्याम्हं दबलश्चाहंदिष्ट्याभृत्याश्चमेहताः ॥ दिष्ट्याकोषःक्षयंयातोदिष्ट्याहंभीतिमागतः ॥ ६२ ॥

अर्थ निष्पन्न हो, वही सुख कहा गयाहै, अतएव इस विषयमें ममता करनेकी क्या आवश्यकता है? ॥ ५७ ॥ जिस प्रकार कारणद्वारा अपना चिन्तित कार्य साधित होताहै, इसीप्रकार योगी पारलौकिक बुद्ध्यादिसेही ब्रह्मकी साधना करैं ॥ ५८ ॥ जडने कहा। अनन्तर नरपति अलर्क विनयावनत हो अत्रिनन्दन दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके आनन्दसहित कहने लगे ॥ ५९ ॥ हे ब्रह्मन्! सौभाग्यसेही मुझको यह अतिउग्र, प्राणोंको संदेहमें डालनेवाला भयदायी शत्रुसे तिरस्कार प्राप्त हुआहै ॥ ६० ॥ सौभाग्यवशही वह काशिराज महाबल पराक्रान्त और समृद्धिमान् हुएहैं जिसके कारण मुझे तुम्हारी संगति प्राप्त हुई है ॥ ६१ ॥ मैं सौभाग्यसेही क्षीणबल हुआहूं, सौभाग्यसेही मेरे भृत्यगण मारे गयेहैं और सौभाग्यसेही मेरा कोष क्षयको प्राप्त हुआ है तथा भयका संचार हुआ है ॥ ६२ ॥

सौभाग्यवश ही आपके चरणयुगल मेरे स्मृतिपथमें उदित हुए हैं सौभाग्यवशही आपके सब वचनोंने मेरे हृदयमें स्थान पाया है ॥ ६३ ॥ और सौभाग्य वश ही आपका समागमलाभ होनेसे मुझको ज्ञानका उदय हुआ। हे ब्रह्मन्! सौभाग्यवश ही आपने मेरे प्रति दया प्रदर्शन करी है ॥ ६४ ॥ पुरुषका शुभोदय होनेपर अनर्थ भी अर्थरूपमें परिणत होता है। इस भयंकर विपदनेभी आपसे मिलाकर मेरा उपकार साधन किया ॥ ६५ ॥ हे प्रभो! हे योगीश्वर! जिनके लिये मैं आपके निकट उपस्थित हुआहूं, वह सुबाहु और काशिराज, दोनों ही मेरे परम उपकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६६ ॥ आपकी प्रसादरूप अग्निद्वारा मेरे अज्ञानरूप पाप दग्ध होगये हैं, जिससे फिर ऐसे दुःखको प्राप्त होना न पडे अब मैं उसीके अनुष्ठानमें यत्नवान् हूंगा ॥ ६७ ॥ हे ब्रह्मन्! आप ज्ञानदाता और

दिष्ट्यात्वत्पादयुगुलंममस्मृतिपथंगतम् ॥ दिष्ट्यात्वदुक्तयःसर्वाममचेतसिसंस्थिताः ॥ ६३ ॥ दिष्ट्याज्ञानंममोत्पन्नंभवतश्चसमागमात् ॥ भवताचैवकारुण्यंदिष्ट्याब्रह्मन्कृतंमयि ॥ ६४ ॥ अनर्थोऽप्यर्थतांयातिपुरुषस्यशुभोदये ॥ तथेदमुपकारायव्यसनंसंगमात्तव ॥ ६५ ॥ सुबाहुरुपकारीमेसचकाशिपतिःप्रभो ॥ तयोः कृतेऽहंसंप्राप्तोयोगीश भवतोऽन्तिकम् ॥ ६६ ॥ सोऽहंतवप्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्बिषः ॥ तथायतिष्येयेनेदृङ्भूयोदुःखभाजनम् ॥ ६७ ॥ परित्यजिष्येगार्हस्थ्यमार्तिपादपकाननम् ॥ त्वत्तोऽनुज्ञांसमासाद्यज्ञानदातुर्महात्मनः ॥ ६८ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ गच्छराजेन्द्रभद्रंते यथातेकथितंमया ॥ निर्ममोनिरहङ्कारस्तथाचरविमुक्तये ॥६९॥ जडउवाच ॥ एवमुक्तःप्रणम्यैनमाजगामत्वरान्वितः॥यत्रकाशिपतिर्भ्रातासुबाहुश्चास्यसोऽग्रजः ॥७०॥समुत्पत्यमहाबाहुंसोलर्कःकाशिभूपतिम् ॥ सुबाहोरग्रतोवीरमुवाचप्रहसन्निव ॥ ७१ ॥ राज्यकामुककाशीशभुज्यतांराज्यमूर्जितम् ॥यथाचरोचतेतद्वत्सुबाहोःसंप्रयच्छवा ॥ ७२ ॥ काशिराजउवाच ॥ ॥ किमलर्कपरित्यक्तंराज्यंतेसंयुगंविना ॥ क्षत्रियस्यनधर्मोऽयंभवांश्चक्षत्रधर्मवित् ॥७३ ॥

महात्मा हैं, आपकी आज्ञा होनेपरही मैं गृहस्थाश्रमको परित्याग करूंगा। यह आश्रम दुःखरूपी वृक्षका वनस्वरूप है ॥ ६८ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—हे राजेन्द्र! तुम गमन करो। तुम्हारा मंगल हो। मैंने तुमको जिस प्रकार उपदेश प्रदान किया, तुम ममता और अहंकाररहित होकर मुक्तिलाभ होनेके लिये उसीके अनुरूप कार्य करो ॥ ६९ ॥ जड़ने कहा दत्तात्रेयजीके इस प्रकार कहनेपर अलर्क उनको प्रणाम करके शीघ्रतासहित अग्रज सुबाहु और काशीपतिके निकट उपस्थित हुए ॥ ७० ॥ उन्होंने महाबाहु काशीनाथके निकट सुबाहुके सन्मुख उपस्थित हो हँसतेहँसते कहा ॥ ७१ ॥ हे काशीपते! तुमने राज्यलाभकी कामना करी है, अत एव यह समृद्धिशाली साम्राज्य भोग करो अथवा सुबाहुको देदो, या तुम्हारी जो इच्छा हो, वही कर सकते हो ॥ ७२ ॥ काशीराजने कहा। हे अलर्क!

तुम विना युद्धके राज्य क्यों परित्याग करतेहो यह क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, तुम भी क्षात्रधर्म में विशारद हो ॥ ७३ ॥ नरपति अमात्य वर्गको जीतकर मरणभय परित्यागपूर्वक शत्रुको लक्ष्य निर्देशकर शरसंधानकरैं ॥ ७४ ॥ वह शत्रुका पराजय करके सिद्धिके लिये अभिलाषित अतिउत्तम भोगोंको भोगते अनेक श्रेष्ठ यज्ञका अनुष्ठान करै ॥ ७५ ॥ अलर्क ने कहा । हे वीर ! पहिले मेरीभी इसीप्रकार वासना थी और मेरा मनभी ऐसीही धारणा करताथा । किन्तु अब उसके विपरीतभावका संचार हुआहै, उसका कारण सुनो ॥ ७६ ॥ मनुष्यमात्रकाही संग जिसप्रकार भौतिक है, उनका अन्तःकरण और गुणसमूहभी उसी प्रकार भूतकी समष्टिमात्र हैं ॥ ७७ ॥ हे नृपते ! केवल मात्र चिच्छक्तिरूपी ब्रह्महो सत्य है उसके अतिरिक्त जब और कोईभी सत्य नहीं है ऐसा ज्ञानलाभ हुआहै तब शत्रु, मित्र और प्रभु भृत्यकी कल्पना किसप्रकारसे होगी ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! मैंने तुम्हारे भयसे अत्यन्त दुःखको प्राप्तहोकर इससमय दत्तात्रेयके प्रसादसे ज्ञान

निर्जितामात्यवर्गस्तुत्यक्त्वामरणजंभयम् ॥ संदधीतशरंराजालक्ष्यमुद्दिश्यवैरिणम् ॥ ७४ ॥ तंजित्वानृपतिर्भोगान्यथाभिलषितान्वरान् ॥ भुञ्जीतपरमं सिद्ध्यैयजेतचमहामखः ॥ ७५ ॥ अलर्कउवाच ॥ एवमीदृशकंवीरममाप्यासीन्मनःपुरा ॥ साम्प्रतंविपरीतार्थंशृणुचाप्यत्रकारणम् ॥ ७६ ॥ यथायंभौतिकःसंघस्तथान्तःकरणंनृणाम् ॥ गुणास्तुसकलास्तद्वदशेषेष्वेवजन्तुषु ॥ ७७ ॥ चिच्छक्तिरेकएवायंयदानान्योऽस्तिकश्चन ॥ तदाकानृपतेज्ञानान्मित्रारिप्रभुभृत्यता ॥ ७८ ॥ तन्मयादुःखमासाद्यत्वद्भयोद्भवमुत्तमम् ॥ दत्तात्रेयप्रसादेनज्ञानंप्राप्तंनरेश्वर ॥ ७९ ॥ निर्जितेंद्रियवर्गस्तुत्यक्त्वासंगमशेषतः ॥ मनोब्रह्मणिसंधास्येतज्जयेपरमोजयः ॥ ८० ॥ संसाध्यमन्यत्तत्सिद्ध्यैयतःकिंचिन्नविद्यते ॥ इन्द्रियाणिचसंयम्यततः सिद्धिंनियच्छति ॥ ८१ ॥ सोहंनतेऽरिर्नममासिशत्रुःसुबाहुरेषोनममापकारी ॥ दृष्टंमयासर्वमिदंयथात्माअन्विष्यतांभूपरिपुस्त्वयान्यः ॥ ८२ ॥ इत्थंसतेनाभिहितोनरेन्द्रोहृष्टःसमुत्थायततःसुबाहुः ॥ दिष्ट्येतितंभ्रातरमाभिनन्द्यकाशीश्वरंवाक्यमिदंबभाषे ॥८३॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेअलर्कनिर्वेदो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ ॥ यदर्थंनृपशार्दूलत्वामहंशरणंगतः ॥ तन्मयासकलंप्राप्तंयास्यामित्वंसुखीभव ॥ १ ॥

प्राप्त कियाहै ॥ ७९ ॥ अब जितेन्द्रिय होकर सम्यक् प्रकारसे समस्तसंग परित्यागपूर्वक मनको परब्रह्ममें अभिनिविष्ट करूंगा । ब्रह्मके जय होनेसेही समस्त जयहुई ॥ ८० ॥ एक मात्र जिनके अतिरिक्त और कोई विद्यमान नहीं है उनके साधनके लिये अन्यसाधना करना अनुचित है । जितेन्द्रिय होनेसेही सिद्धिलाभ करी जातीहै ॥ ॥ ८१ ॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारा वैरी वा तुमभी मेरे शत्रु नहीं हो, इस सुबाहुनेभी मेरा कोई अपकार नहीं किया यह मैंने भलीभांतिसे जानलियाहै, अतएव तुम अब अन्य शत्रुको खोजो ॥ ८२ ॥ अलर्कके इस प्रकार कहनेपर काशिराज अत्यंत संतुष्ट हुआ और सुबाहु हर्षसे उठकर "परम सौभाग्य" कहकर भ्राताको अभिनन्दन करते हुए काशीश्वरसे कहनेलगे ॥ ८३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ सुबाहुने कहा हे नृपशार्दूल! मैंने जिस कारण आपकी शरण ग्रहण

कीथी सब प्राप्त किया। अब मैं जाताहूं। आप सुखी हों ॥ १ ॥ काशीपति बोले हे सुबाहो! आपने किसलिये मेरी शरण ग्रहण करीथी और आपका क्या कार्य सम्पादित हुआ? सो कहो। यह जाननेके लिये मुझको परम कौतूहल उत्पन्न हुआहै ॥ २ ॥ अलर्क अपने पितृपैतामहिक समृद्ध राज्य भोग करताथा, आपने शत्रुको जीतकर वह राज्य छुडादेनेके लिये मुझको उत्तेजित किया ॥ ३ ॥ इसी कारण मैने आपके भ्राताका राज्य आक्रमणपूर्वक अपने वशमें कर लिया है, अब आप स्ववंशोचित राज्य भोगिये ॥ ४ ॥ सुबाहुने कहा हे काशीपते! मैने जिस कारण ऐसा उद्यम कियाथा और आपको इसमें प्रवर्तित कियाथा, सो सुनो ॥ ५ ॥ मेरे यह अनुज तत्त्वज्ञानी होकरभी ग्राम्य भोगमें आसक्त थे मेरे दो अग्रज विमूढ होकरभी तत्त्ववित् हुएहैं ॥६॥ हे अवनीपते! मेरी जननीने शैशवमें दोनों अग्रजके और मेरे मुखमें जिस प्रकार स्तन प्रदान कियाथा, वैसेही हमारे कानमें तत्त्वज्ञानकाभी उपदेश दियाथा ॥७॥ जो जो विषय मनुष्यमात्रको जानने उचित

काशिराजउवाच ॥ किंनिमित्तंभवान्प्राप्तोनिष्पन्नोऽर्थश्चकस्तव ॥ सुबाहोतन्ममाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिमे ॥२॥ समाक्रान्तमलर्केणपितृपैतामहंमहत् ॥ राज्यंदेहीतिनिर्जित्यत्वयाहमभिचोदितः ॥ ३ ॥ ततोमयासमाक्रम्यराज्यमस्यानुजस्यते ॥ एतत्तेबलमानीतंतद्भुङ्क्ष्वस्वकुलोचितम् ॥ ४ ॥ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ काशिराजनिबोधत्वंयदर्थमयमुद्यमः ॥ कृतोमयाभवांश्चैवकारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ॥ ५ ॥ भ्राताममायंग्राम्येषुसक्तोभोगेषुतत्त्ववित् ॥ विमूढौबोधवन्तौचभ्रातरावग्रजौमम ॥ ६ ॥ तयोर्ममचयन्मात्रावाल्येस्तन्यंयथामुखे ॥ तथाववोधोविन्यस्तःकर्णयोरवनीपते ॥७॥ तयोर्ममचविज्ञेयाःपदार्थायेमतान्नृभिः ॥ प्रकाश्यंमनसोनीतास्तेमात्रानास्यपार्थिव ॥ ८ ॥ यथैकमर्थंयातानामेकस्मिन्नवसीदति ॥ दुःखंभवतिसाधूनांतथास्माकंमहीपते ॥ ९ ॥ गार्हस्थ्यमोहमापन्नेसीदत्यस्मिन्नरेश्वर ॥ सम्बन्धिन्यस्यदेहस्यविभ्रातिभ्रातृकल्पनाम् ॥ १० ॥ ततोमयाविनिश्चित्यदुःखाद्वैराग्यभावना ॥ भविष्यतीत्यस्यभवानित्युद्योगायसंश्रितः ॥ ११ ॥ तदस्यदुःखाद्वैराग्यंसंबोधादवनीपते ॥ समुद्भूतंकृतंकार्यंभद्रंतेस्तुव्रजाम्यहम् ॥ १२ ॥ उक्त्वामदालसागर्भेपीत्वातस्यास्तथास्तनम् ॥ नान्यनारीसुतैर्यातंवर्त्मयात्वितिपार्थिव ॥ १३ ॥

हैं हे राजन्! माताने हमारे तीनों भाइयोंके हृदयमें वह सब प्रकाशित करदियेथे, किन्तु अलर्कको वह नहीं हुए ॥ ८ ॥ हेमहीपते! जिसप्रकार एक सार्थगत अर्थात् एक साथमें जानेवाली मनुष्योंमें एकमनुष्यके दुःखग्रसित होनेपर सब साधु दुःखित होतेहैं मेरीभी वही अवस्था हुईहै ॥ ९ ॥ क्योंकि अलर्कके संग मेरा संबंध है, इनको इस देहमें मैने भ्रातृकल्पना कियाहै, यह गार्हस्थ्यमोहमें अभिभूत होकर दुःखको प्राप्त होरहेथे ॥ १० ॥ इस कारण दुःख होनेपरही वैराग्यका उदय होगा, इसप्रकार स्थिर करके उद्योगार्थ आपका आश्रय ग्रहण कियाथा ॥ ११ ॥ हे अवनीपते! इससे उसको दुःखका संचार हुआ और उस दुःखसेही तत्त्वज्ञानका उदय होनेपर वैराग्यका संचार हुआहै सुतरां अब मैं कृतकार्य हुआहूं इस समय मैं प्रस्थान करताहूं, आपका कल्याण हो ॥ १२ ॥ हे पार्थिव! यह अलर्क मदालसाके उद

रमें स्थित हुआहै और उसका स्तनपान कियाहै, अतएव अन्यस्त्रीगर्भोत्पन्न पुत्रगण जिस मार्ग में जानेको समर्थ नहीं होते, यह उसी मार्ग में गमन करै ॥ १३ ॥ मैंने यह सब विचारकर आपका आश्रयग्रहणपूर्वक उसीके अनुरूप कार्यका अनुष्ठान कियाहै मेरा कार्यभी सम्पन्न हुआहै, अब फिर सिद्धिलाभके लिये गमन करताहूं ॥ ॥ १४ ॥ हे नरेन्द्र ! स्वजन, बांधव, और सुहज्जनों के दुःखी होनेपर जो व्यक्ति उनके प्रति उपेक्षा करताहै, मैं उसको विकलेन्द्रिय समझताहूं ॥ १५ ॥ सुहज्जन बन्धु और स्वजन इनके समर्थ होनेपरभी जो मनुष्य (दुःख) को प्राप्तहोताहै, उसके वह सुहज्जनादिही निन्दनीय एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे च्युत होते हैं, उसको निन्दनीय होना नहीं पड़ता ॥ १६ ॥ हे सत्तम ! मैंने आपका संगलाभ करके इस प्रकार महत् कार्य सम्पन्न किया है, आप सुखी और ज्ञानमार्गी हो मैं अब जाताहूं ॥ १७ ॥ काशीराजने कहा—आपने साधुमति अलर्कका बडा उपकार साधन किया किन्तु मेरा उपकार करनेमें मन

विचार्य्यतन्मयासर्वंयुष्मत्संश्रयपूर्वकम् ॥ कृतंतच्चापिनिष्पन्नंप्रयास्येसिद्धयेपुनः ॥ १४ ॥उपेक्ष्यतेसीदमानःस्वजनोबान्धवःसुहृत्॥यैर्नरेन्द्रनतान्मन्येसेन्द्रियाविकलाहिते ॥१५॥ सुहृदिस्वजनेबन्धौसमर्थेयोऽवसीदति ॥ धर्मार्थकाममोक्षेभ्योवाच्यास्तेतत्रनत्वसौ ॥१६॥ एतत्त्वत्सङ्गमाद्भूपमयाकार्यंमहत्कृतम् ॥ स्वस्तितेऽस्तुगमिष्यामिज्ञानभाग्भवसत्तम ॥ १७॥ काशिराजउवाच ॥ उपकारस्त्वयासाधोरलर्कस्यकृतोमहान् ॥ ममोपकारायकथंनकरोषिस्वमानसम् ॥ ॥ १८ ॥ फलदायीसतांसद्भिःसंगमोनाफलोयतः ॥ तस्मात्त्वत्संश्रयाद्युक्तामयाप्राप्तासमुन्नतिः ॥ १९ ॥सुबाहुरुवाच॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यंपुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ तत्रधर्मार्थकामास्तेसकलोहीयतेऽपरः ॥ २० ॥ तत्तेसंक्षेपतोवक्ष्येतदिहैकमनाःशृणु ॥ श्रुत्वाचसम्यगालोच्ययतेथाःश्रेयसेनृप ॥ २१ ॥ ममेतिप्रत्ययोभूपनकार्य्योऽहमितित्वया॥सम्यगालोच्यधर्मोहिधर्माभावेनिराश्रयः ॥२२॥ कोवाहमितिसंज्ञेयमित्यालोच्यत्वयात्मना ॥ बाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिषु ॥ २३ ॥

क्यों नहीं लगाते ॥१८॥ साधुओंके संग साधुओंका मिलना फलदायकही होता है कभी विफल होनेवाला नहीं है, अत एव आपके संग मिलनेमें मेरा उन्नतिलाभही संगत है ॥ १९ ॥ सुबाहुने कहा । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही चारों पुरुषार्थ कहे गये हैं, तिनमें आपका धर्म, अर्थ और काम सिद्ध हुआ है, मोक्षमात्रका अभाव विद्यमान है ॥ २० ॥ अत एव आपसे कहताहूं एकाग्र चित्तसे सुनो । मुझसे सुनकर उसकी भलीभांति आलोचना करके कल्याणलाभके लिये यत्नवान् होओ ॥ २१ ॥ हे भूप ! "यह मेरा" "यह मैं" इस प्रकार ममता और अहंकारके वशीभूत न होना सम्यक् प्रकारसे धर्मकी आलोचना करना । क्योंकि धर्मके अभावमेंही निराश्रय होना पड़ता है ॥ २२ ॥ आलोचना करनेसेही "मैं किसका हूं" यह सम्यक् प्रकार जाना जाता है । रात्रिके शेष भागमें आलो

चना करके बाह्यान्तर्गत आलोचना करनी आरंभ करो ॥ २३ ॥ अव्यक्तसे प्रकृतिपर्यन्त अविकारी, अचेतन व्यक्ताव्यक्त समस्त विषयको जानकर कौन ज्ञेय, कौन ज्ञाता और मैं कौन हूं, यह जानना चाहिये ॥ २४ ॥ यह सब विदित होनेसेही आप समस्त जानेंगे देहादि अनात्मवस्तुमें आत्मबोध और जो अपना नहीं है, उसको अपना जाननाही मूढता मात्र है ॥ २५ ॥ हे भूपते! "वही मैं" लौकिक व्यवहारमें सर्वगत हूं । आपने जो विषय पूछा था, वह वर्णन किया । अब मैं जाताहूं ॥ २६ ॥ जब महाबुद्धिमान् सुबाहु काशीराजसे यह कहकर चलेगये । तब काशीपतिनेभी अलर्ककी सम्यक् प्रकार पूजा करके अपने नगरमें प्रस्थान किया ॥ २७ ॥ अलर्कभी अपने ज्येष्ठनंदनको राज्यपदमें प्रतिष्ठित करके सब संगपरित्यागपूर्वक आत्म

अव्यक्तादिविशेषान्तमविकारमचेतनम् ॥ व्यक्ताव्यक्तंत्वयाज्ञेयंज्ञाताकश्चाहमित्युत ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नेवविज्ञातेविज्ञातमखिलंत्वया ॥ अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वेस्वमितिमूढता ॥२५॥ सोऽहंसर्वगतोभूपलोकसंव्यवहारतः ॥ मयेदमुच्यतेसर्वंत्वयापृष्टोऽत्रजाम्यहम् ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वाययौधीमान्सुबाहुःकाशिभूमिपम्॥काशिराजोऽपिसंपूज्यसोऽलर्कंस्वपुरंययौ ॥२७॥ अलर्कोऽपिसुतंज्येष्ठमभिषिच्यनराधिपम् ॥वनंजगामसन्त्यक्तसर्वसङ्गःस्वसिद्धये ॥२८॥ ततःकालेनमहता।निर्द्वन्द्वो ।निष्परिग्रहः ॥ प्राप्ययोगर्द्धिमतुलांपरंनिर्वाणमाप्तवान् ॥ २९ ॥ पश्यञ्जगदिदंसर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ पाशैर्गुणमयैर्बद्धंबध्यमानंचनित्यशः॥३०॥पुत्रादिभ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभावितैः ॥ आकृष्यमाणंकरणैर्दुःखार्त्तंभिन्नदर्शनम् ॥ ३१ ॥ अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारंमहामतिः ॥ आत्मानंचसमुत्तीर्णंगाथामेतामगायत ॥ ३२ ॥ अहोकष्टंयदस्माभिःपूर्वंराज्यमनुष्ठितम् ॥ इतिपश्चान्मयाज्ञातंयोगान्नास्तिपरंसुखम् ॥ ३३ ॥

सिद्धिके अर्थ वनवासी हुए ॥ २८ ॥ फिर बहुत काल बीतनेपर छन्दरहित औरनिष्परिग्रह हो अतुल योगसम्पत्तिलाभपूर्वक परमनिर्वाणपदवी लाभ करी ॥ २९ ॥ सुर असुर मनुष्यादि पूर्ण यह दृश्यमान संपूर्ण जगत् गुणमय पाशद्वारा बंधकर नित्यही बध्यमान होताहै ॥ ३० ॥ पुत्रादि–भ्रातृ–पुत्रादि एवं अपने और पराये पुरुषोंके द्वारा यह पाश निर्मित है । यह भिन्न–दर्शन जगत् संसार उसी पाशमें आकृष्यमाण होनेके कारण दुःखसे पराभूत होगयाहै ॥ ३१ ॥ इसपरभी फिर अज्ञानरूपी कीचडमें निमग्न होनेसे निकलनेकाभी उपाय नहीं है। मतिमान् अलर्कने यह सब देखकर और "मेरा उद्धार हुआहै" इस भांति विचारकर यह गाथा गाई थी ॥ ३२ ॥ "अहो क्या कष्ट है ? मैं प्रथम राज्यभोग करताथा, अंतमें जाना–योगकी अपेक्षा परम सुख और कुछ नहींहै" ॥ ३३ ॥

पुत्रनेकहा—हेतात!आप मुक्तिलाभके लिये उस अनुत्तम योगका आचरण कीजिये तो ब्रह्मको प्राप्त होसकोगे, उस ब्रह्मके लाभ होनेसे फिर शोकमें अभिभूत होना नहीं पडेगा मैंभी गमन करूंगा! ॥ ३४ ॥ यज्ञ और जपकी मुझको क्या आवश्यकता है! कृतकृत्य मनुष्यका कार्य केवल ब्रह्मलाभके निमित्त है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ अतएव मैं आपकी आज्ञा ग्रहण करके द्वन्द्वरहित और परिग्रहशून्य हो जिससे निर्वाण लाभवह मुक्तिके लिये उस विषयमें सम्यक् प्रकार यत्नवान् हूंगा ॥ ३६ ॥ पक्षी बोले हे द्विज! महा बुद्धिमान् वह जड़ पितासे इस प्रकार कह उनकी आज्ञा ग्रहणपूर्वक निष्परिग्रह होकर चलागया ॥ ३७ ॥ उसके महामति पिताने भी क्रमक्रमसे वानप्रस्थता अवलम्बनपूर्वक चतुर्थ आश्रममें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ वह पुत्रके सहित संगत होकर गुणादिबंधविसर्जनपूर्वक तत्कालोत्पन्न बुद्धिके प्रभावसे परम सिद्धिको प्राप्तहुए ॥ ३९ ॥ हे ब्रह्मन् !

पुत्रउवाच ॥ तातैनंत्वंसमातिष्ठमुक्तयेयोगमुत्तमम् ॥ प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥ ३४ ॥ ततोऽहमपियास्यामिकिंयज्ञैःकिंजपेनमे ॥ कृतकृत्यस्यकरणंब्रह्मभावायकल्पते ॥ ३५ ॥ ततोऽनुज्ञामवाप्याहंनिर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः ॥ प्रयतिष्येतथामुक्तौयथायास्यामिनिर्वृतिम् ॥ ३६ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ एवमुक्त्वासपितरंप्राप्यानुज्ञांततश्चसः ॥ ब्रह्मञ्जगाममेधावीपरित्यक्तपरिग्रहः ॥ ३७ ॥ सोऽपितस्यपितातद्वत्क्रमेणसुमहामतिः ॥ वानप्रस्थंसमास्थायचतुर्थाश्रममभ्यगात् ॥ ३८ ॥ तत्रात्मजंसमासाद्यहित्वावन्धंगुणादिकम् ॥ प्रापसिद्धिंपरांप्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मतिः ॥ ३९ ॥ एतत्तेकथितंब्रह्मन्यत्पृष्टाभवतावयम् ॥ सुविस्तरंयथावच्चकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्विप्रपठेद्वासुसमाहितः ॥ ४१ ॥ यदश्वमेधावभृथस्नातःप्राप्नोतिवैफलम् ॥ सकलंतदवाप्नोतिश्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥ ४२ ॥ एतत्संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् ॥ अलर्कात्रेयसंवादमशुभान्मुच्यतेनरः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेजडोपाख्यानेएकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ ॥ सम्यगेतन्ममाख्यातंभवद्भिर्द्विजसत्तमाः ॥ प्रवृत्तंचनिवृत्तंचद्विविधंकर्मवैदिकम् ॥ १ ॥

आपने मुझसे जो पूछाथा वह आपके निकट विस्तारसहित यथावत् वर्णन किया। अब और क्या सुननेकी इच्छा है, सो प्रकाश करो ॥ ४० ॥ हे विप्र! जो इसको सुने वा सावधान होकर पढै ॥ ४१ ॥ सो अश्वमेधके अवभृथस्नानके फल को प्राप्तहोता है हे मुनिसत्तम इसके सुननेसे वह सब मिलता है ॥ ४२ ॥ यही संसारमें भ्रमणकरनेवालोंको उत्तम रक्षा है इस अलर्क और दत्तात्रेयके संवादको सुनकर मनुष्य अशुभसे छूटजाताहै ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ जैमिनीने कहा हे द्विजश्रेष्ठगण! वैदिककर्म दोप्रकारका है; प्रवृत्ति और निवृत्ति! आपने वह विषय मुझसे सम्यक् प्रकार वर्णन किया ॥ १ ॥

अहो पिताके प्रसादसे आपने ऐसा ज्ञान प्राप्त किया है,उस ज्ञानके बलसे तिर्यक् योनिको प्राप्त होकर भी आपका मोह दूर हुआ है॥ २॥ आपका मन जब सिद्धिलाभार्थ पूर्वावस्थामेंही रहता है, तब आपही धन्य हैं, विषयजनितमोह आपके मनको विचलित नहीं करसकता ॥ ३॥ सौभाग्यवशही महामति भगवान् मार्कण्डेयजीने आपकी कथा कहीथी, आप सभी संदेह हरण करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ इस संकटमय संसारमें जो भ्रमण करतेहैं, आपकी समान तपस्वियों से मिलना उनके भाग्यमें कठिन है॥ ५॥ आप ज्ञानदर्शी हैं आपका संग प्राप्त होकरभी यदि मेरा मनोरथ सिद्ध न हो, तो फिर और कहीं भी होनेकी संभावना नहीं है ॥ ६ ॥ आपको प्रवृत्त और निवृत्त, इस दो प्रकारके ज्ञान कर्ममें ऐसी विशदबुद्धि प्राप्त हुई है. मेरे विचारमें ऐसी और किसीको नहीं है ॥ ७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठगण ! यदि मेरे प्रति आपकी

अहोपितृप्रसादेनभवतांज्ञानमीदृशम् ॥ येनतिर्यक्त्वमप्येतत्प्राप्यमोहस्तिरस्कृतः ॥ २ ॥ धन्याभवन्तःसंसिद्धचैप्रागवस्थास्थितंयतः ॥ भवतांविषयोद्भूतैर्न मोहैश्चाल्यतेमनः ॥ ३ ॥ दिष्ट्याभगवतातेनमार्कण्डेयेनधीमता ॥ भवन्तोवैसमाख्याताःसर्वसन्देहहृत्तमाः ॥ ४ ॥ संसारेऽस्मिन्मनुष्याणांभ्रमतामति सङ्कटे ॥ भवद्विधैःसमंसङ्गोजायतेनातपस्विनाम् ॥ ५ ॥ यद्यहंसङ्गमासाद्यभवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभिः ॥ नस्यांकृतार्थस्तन्नूनंनमेऽन्यत्रकृतार्थता ॥ ६ ॥ प्रवृत्तेचनिवृत्तेचभवतांज्ञानकर्मणि ॥ मतिमस्तमलांमन्येयथानान्यस्यकस्यचित् ॥ ७ ॥ यदित्वनुग्रहवतीमयिवुद्धिर्द्विजोत्तमाः ॥ भवतांतत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः ॥ ८ ॥ कथमेतत्समुद्भूतंजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ कथंचप्रलयंकालेपुनर्यास्यतिसत्तमाः ॥ ९ ॥ कथंचवंशादेवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः ॥ मन्वन्तराणिचकथंवंशानुचरितंचयत् ॥ १० ॥ यावत्यःसृष्टयश्चैवयावन्तःप्रलयास्तथा ॥ यथाकल्पविभागश्चयाचमन्वन्तरस्थितिः ॥ ११ ॥ यथाच क्षितिसंस्थानंयत्प्रमाणंचवैभुवः ॥ यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नगाःकाननानिच ॥ १२ ॥ भूर्लोकादिश्चलोकानांगणः पातालसंश्रयः ॥ गतिस्तथार्कसोमादि ग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥ १३ ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहंसर्वमेतदाभूतसंप्लवम् ॥ उपसंहृतेचयच्छेषंजगत्यस्मिन्भविष्यति ॥ १४ ॥

मति अनुग्रहवती हुई है तो मै जो पूंछताहूं, वह विस्तारसहित कहिये ॥ ८ ॥ किस प्रकारसे इस स्थावरजंगमात्मक जगत्की सृष्टि हुई ? और फिर किस प्रकार प्रलय कालमें लयको प्राप्त होगी ? ॥ ९ ॥ किसप्रकार वंशसे देवता, ऋषि, पितृगण और भूतादिकी उत्पत्ति होती है, किस प्रकारसे सब मन्वन्तरोंका आविर्भाव होता है ? इसके अतिरिक्त वंशोंका आनुपूर्वीक विवरण ॥ १० ॥ समस्त सृष्टि, समस्त प्रलय, कल्पविभाग, मन्वन्तरों की स्थिति ॥ ११॥ पृथ्वीका संस्थान, और परिमाण, गिरि, शैल, सरित् और वनोंका विवरण ॥ १२ ॥ मृत्युलोक, स्वर्गलोक, और पातालसमूहका वृत्तान्त, एवं सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष्क इत्यादिकी गति ॥ १३ ॥ यह सब प्रलयपर्यन्त सुननेकी इच्छा करता हूं । जगत् संसार प्रलयकालमें उपसंहृत होनेपर जो अवशेष रह

ताहै वह श्री सुननेकी अभिलाषा करताहूं ॥ १४ ॥ पक्षी बोले—हे जैमिने हे मुनिसत्तम ! आपने हमारे ऊपर अतुलनीय प्रश्नभार डालाहै; तुम्हारे पूछनेसे हम कहतेहैं सुनो ॥ १५ ॥ पहले मार्कण्डेयजीने जिसप्रकार शान्तवृत्ति विद्यास्नातक क्रौष्टुकिके निमित्तसे कथन किया है सो कहेंगे ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! आपने जो पूछा, क्रौष्टुकिनेभी ब्राह्मणोंसे उपासित महात्मा मार्कण्डेयके निकट यही प्रश्न किया था ॥ १७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! भृगुनन्दनने प्रसन्नचित्त होकर जो कहाथा मैं वही तुमसे कहताहूं सुनो ॥ १८ ॥ जो जगत्कारण पद्मयोनि पितामहरूपसे इस विश्वको उत्पन्न करतेहैं विष्णु स्वरूपसे स्थिति विधान करतेहैं रौद्रस्वरूप रुद्र रूपसे प्रलयकालमें सबका संहार करतेहैं, उन्हीं जगन्नाथको प्रणाम करके हमभी वही सविशेष वर्णन करतेहैं सुनो ॥ १९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—पूर्वकालमें

पक्षिणऊचुः ॥ ॥ प्रश्नभारोऽयमतुलोयस्त्वयामुनिसत्तम ॥ पृष्टस्तंतेप्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेहजैमिने ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयेनकथितंपुराक्रौष्टुकयेयथा ॥ द्विजपुत्रायशान्तायव्रतस्नातायधीमते ॥ १६ ॥ मार्कण्डेयंमहात्मानमुपासीनंद्विजोत्तमैः ॥ क्रौष्टुकिःपरिपप्रच्छयदेतत्पृष्टवान्प्रभो ॥ १७॥ तस्यचाक थयत्प्रीत्यायन्मुनिर्भृगुनन्दनः ॥ तत्ते प्रकथयिष्यामःशृणुत्वंद्विजसत्तम ॥ १८ ॥ प्रणिपत्यजगन्नाथंपद्मयोनिंपितामहम् ॥ जगद्योनिंस्थितंसृष्टौस्थितौ विष्णुस्वरूपिणम् ॥ प्रलयेचान्तकर्त्तारंरौद्रंरुद्रस्वरूपिणम् ॥ १९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ उत्पन्नमात्रस्यपुराब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ पुराणमेतद्वे दाश्चमुखेभ्योऽनुविनिःसृताः ॥ २० ॥ पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुलाःपरमर्षयः ॥ वेदानांप्रविभागश्चकृतस्तैस्तुसहस्रशः ॥ २१ ॥ धर्मज्ञानंचवैराग्यमैश्वर्य्यं चमहात्मनः ॥ तस्योपदेशेनविनानहिसिद्धंचतुष्टयम् ॥ २२ ॥ वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमानसाः ॥ पुराणंजगृहुश्चाद्यामुनयस्तस्यमानसाः ॥ ॥ २३ ॥ भृगोःसकाशाच्च्यवनस्तेनोक्तंचद्विजन्मनाम् ॥ ऋषिभिश्चापिदक्षायप्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥ २४ ॥ दक्षेणचापिकथितमिदमासीत्तदामम ॥ तत्तुभ्यंकथयाम्यद्यकलिकल्मषनाशनम् ॥ २५ ॥

अव्यक्तयोनि ब्रह्माजीके उत्पन्नहोतेही उनके चारों मुखसे वेदों और पुराणोंका आविर्भाव हुआ ॥ २० ॥ ऋषियोंने उस पुराणसंहिताको विविध अंशमें और वेदकोभी सहस्र सहस्र भागमें विभक्त किया ॥ २१ ॥ उन महात्माके विना उपदेश, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वरीक भाव, इन चारके सिद्ध होनेकी संभावना नहीं है ॥ २२ ॥ उनके मनसे सप्तर्षिगणों के उत्पन्न होनेपर उन मानस ऋषियोंने उनके निकटसे समस्त वेद और तदीय मानसोत्पन्न अन्यान्य आद्य ऋषियों ने पुराण ग्रहण किये ॥ २३ ॥ च्यवनने भृगुके समीपसे उस पुराणको लेकर ऋषियों के निकट प्रकाश किया, महात्मा ऋषियोंने वह पुराण दक्षसे कहा ॥ २४ ॥ दक्षनेही वह हम

को प्रदान कियाहै, तबसे वह हमारे पास रहताहै अब तुमसे कहतेहैं इसके प्रसादसे कलियुगमें पापसमूह नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ २५ ॥ हे मुने ! हे महाभाग ! हमने पहिले दक्षके निकटसे जिस प्रकार सुनाहै,सावधानचित्त होकर हमसे वह सब सुनो॥ २६॥ जो जगत्के कारण, जन्मरहित, और अव्यय हैं, जो चराचर जगत्के एक मात्र आश्रय और धाता हैं जो परमपदस्वरूप हैं ॥ २७ ॥ जो सृष्टिस्थिति प्रलयके कारण आदिपुरुष हैं जो उपमारहित और जिनमें समस्तही प्रतिष्ठित रहताहै ॥ २८ ॥ उन धीमान् हिरण्यगर्भको प्रणामकरके अनुत्तम प्रपंच सम्यक्प्रकार वर्णन करतेहैं ॥ २९ ॥ महत्से विशेषपर्यन्त जितने भौतिक–सृष्टि–विकार लक्षण पंचविध प्रमाण और षट्स्रोतके सहित आनुपूर्विक कहेंगे ॥ ३० ॥ हे महाभाग ! यह भूतसृष्टि पुरुषसे अधिष्ठित और इसी कारण नित्य होकर भी जिसप्रकार अनित्यकी समान

सर्वमेतन्महाभागश्रूयतां मेसमाधिना ॥ यथाश्रुतंमयापूर्वंदक्षस्यगदतोमुने ॥ २६ ॥ प्रणिपत्यजगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् ॥ चराचरस्यजगतोधातारं परमंपदम् ॥ २७ ॥ ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे ॥ यत्कारणमनौपम्यंयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ २८ ॥ तस्मैहिरण्यगर्भायलोकतन्त्रायधीमते ॥ प्रणम्यसम्यग्वक्ष्यामिभूतवर्गमनुत्तमम् ॥ २९ ॥ महदाद्यंविशेषान्तंसवैरूप्यंसलक्षणम् ॥ प्रमाणैःपंचभिर्गम्यंस्रोतोभिःषड्भिरन्वितम् ॥ ३० ॥ पुरुषाधिष्ठितंनित्यमनित्यमिवचस्थितम् ॥ तच्छ्रूयतांमहाभागपरमेणसमाधिना ॥ ३१ ॥ प्रधानंकारणंयत्तदव्यक्ताख्यंमहर्षयः ॥ यदाहुःप्रकृतिंसूक्ष्मांनित्यां सदसदात्मिकाम् ॥ ३२ ॥ ध्रुवमक्षय्यमजरममेयंनान्यसंश्रयम् ॥ गन्धरूपरसैर्हीनंशब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥३३ ॥ अनाद्यंतंजगद्योनिंत्रिगुणप्रभवाप्ययम् ॥ असाम्प्रतमविज्ञेयंब्रह्माग्रेसमवर्त्तत ॥ ३४ ॥ प्रलयस्यानुतेनेदंव्याप्तमासीदशेषतः ॥ गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ॥ ३५ ॥ गुणभावात्सृज्यमानात्सर्गकालेततःपुनः ॥ प्रधानंतत्त्वमुद्भूतंमहान्तंतत्समावृणोत् ॥ ३६ ॥

अवस्थित रहतीहै वह भी वर्णन करते हैं, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ३१ ॥ जो अव्यक्तनामसे कहीजातीहै, महर्षिगण जिसको सदसदात्मिका नित्य सूक्ष्मा प्रकृति कहतेहैं ॥ ३२ ॥ जो नित्य अक्षय, अजर और अपरिमेय है जो किसीका आश्रय ग्रहण करके अवस्थित नहींहै, जो गंधविहीन, रूपविहीन, रसहीन और शब्दस्पर्शरहित है ॥ ३३ ॥ जो अनादि और अनन्त हैं, जो जगत्के उत्पत्ति स्थानहैं, जिनसे तीनों गुण उत्पन्न हुएहैं, जो अविनाशी हैं, जो सदा विद्यमान और अविज्ञेय हैं और जो सबके कारण हैं, वह प्रधानस्वरूप ब्रह्मही सबके आगे विराजितरहकर ॥ ३४ ॥ प्रलयके पीछे अखिल जगत्को सम्यक् प्रकारसे व्याप्तकरके विराजमान रहतेहैं । तीनों गुण परस्पर अनुकूल और अव्याहत रूपसे उनमेंही अधिष्ठित रहतेहैं ॥ ३५ ॥ सृष्टिकालमें क्षेत्रज्ञके अधिष्ठानके कारण उनके उस उस

गुणकी सहायतासे, सृष्टिकार्यमें उद्यत होनेपर प्रथम तो प्रधानतत्त्व आविर्भूत होकर महत्तत्त्वको आच्छन्न कर देताहै ॥ ३६ ॥ बीज जिस प्रकार त्वचाद्वारा ढका रहताहै प्रधानभी उसी प्रकार महत्तत्त्वको आवृत करताहै यह महत्तत्त्व त्रिविध है सात्विक, राजस और तामस ॥ ३७ ॥ फिर महत्तत्वसे अहंकारकी उत्पत्ति होती है । यह अहंकार भी तीन प्रकार है. वैकारिक, तैजस और तामस । यह तामस अहंकारही भूतादिके नामसे कहाहै ॥ ३८ ॥ महत्तत्त्व जिस प्रकार प्रधान तत्त्वके द्वारा समाच्छन्न होताहै, ऐसेही यह अहंकारभी महत्तत्त्वके द्वारा ढका रहताहै और उसीके प्रभावसे विकारको प्राप्तहोकर शब्दतन्मात्रको सृजन कर देताहै ॥ ३९ ॥ शब्दलक्षण आकाश इस शब्द तन्मात्रसेही उत्पन्न होता है तब तामस अहंकार द्वारा शब्द मात्र आकाश आच्छादित होता है ॥ ४० ॥ इससे निःसन्देह स्पर्श त

यथाबीजंत्वचातद्वदव्यक्तेनावृतोमहान् ॥ सात्त्विकोराजसश्चैवतामसश्चत्रिधोदितः ॥ ३७ ॥ ततस्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधोवैव्यजायत ॥ वैकारिकस्तैजस श्चभूतादिश्चसतामसः ॥ ३८ ॥ महताचावृतःसोऽपियथाव्यक्तेनवैमहान् ॥ भूतादिस्तुविकुर्वाणःशब्दतन्मात्रकंततः ॥ ३९ ॥ ससर्जशब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ॥ आकाशंशब्दमात्रन्तुभूतादिश्चावृणोत्ततः ॥ ४० ॥ स्पर्शतन्मात्रमेवेहजायतेनात्रसंशयः ॥ बलवाञ्जायतेवायुस्तस्यस्पर्शगुणोमतः ॥ ॥ ४१ ॥ वायुश्चापिविकुर्वाणोरूपमात्रंससर्जह ॥ ज्योतिरुत्पद्यतेवायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ४२ ॥ स्पर्शमात्रस्तुवैवायुरूपमात्रंसमावृणोत् ॥ ज्योति श्चापिविकुर्वाणंरसमात्रंससर्जह ॥ ४३ ॥ सम्भवन्तिततोह्यापश्चासन्वैतारसात्मिकाः ॥ रसमात्रन्तुताह्यापोरूपमात्रंसमावृणोत् ॥ ४४ ॥ आपश्चापिविकुर्व त्योगन्धमात्रंससर्जिरे ॥ संघातोजायतेतस्मात्तस्यगन्धोगुणोमतः ॥ ४५ ॥ तस्मिंस्तस्मिंस्तुतन्मात्रंतेनतन्मात्रतास्मृता ॥ अविशेषवाचकत्वादविशेषास्त तश्चते ॥ ४६ ॥ नशान्तानापिघोरास्तेनमूढाश्चाविशेषतः ॥ भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तुतामसात् ॥ ४७ ॥

न्मात्रकी उत्पत्ति होती है; तब महाबली स्पर्शगुणयुक्त वायु उत्पन्न होता है ॥ ४१ ॥ शब्दमात्र आकाशसे स्पर्शमात्र आवृत रहता है इसीसे वायुकी विकृतिके कारण रूपमात्र उत्पन्न होता है वायुसे रूपगुणयुक्त ज्योतिका आविर्भाव हुआ ॥ ४२ ॥ स्पर्शमात्र वायुके द्वारा रूपमात्र आवृत होता है पीछे ज्योति विकृत होकर रस मात्रको उत्पन्न करती है ॥ ४३ ॥ इसीसे रसात्मक जल उत्पन्न होता है, वही रसात्मक जल रूपमात्रसे आवृत होता है ॥ ४४ ॥ फिर रसमात्र जल विकृत होकर गंधमात्रको उत्पन्न करताहै, उसीसे गंधगुणयुक्त पृथ्वी की उत्पत्ति होतीहै ॥४५॥ इस प्रकारसे उन उन पदार्थों में जो तन्मात्रा है, उसके द्वाराही तन्मात्रताकी गिन्ती होतीहै, इसके लिये कोई विशेष वाचक नहीं होनेसे यह भी अविशेष हैं ॥ ४६ ॥ इस अविशेषके कारण वह शान्त, घोर वा मूढ़ भी नहींहैं

तामस अहंकारसेही इस प्रकार भूत तन्मात्राकी उत्पत्ति होतीहै ॥ ४७ ॥ सत्वोद्रिक्त सात्विक और वैकारिक अहंकारसे एक साथ वैकारिक सृष्टि प्रवर्त्तित होतीहै ॥ ४८ ॥ पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रियको तैजसइन्द्रिय कहाहै वहां वैकारिक दश देवता हैं ॥ ४९ ॥ मन ग्यारहवाँ है. उल्लिखित दश इन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन, तहां वैकारिक देवता कहे गयेहैं. श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जीभ और नासिका ॥ ५० ॥ इनके द्वारा शब्दादिका बोध होताहै, इसीकारण यह बुद्धीन्द्रिय कही गई हैं चरण वायु (गुदा) उपस्थ हस्त और वाक्य ॥ ५१ ॥ इत्यादिको कर्मेन्द्रिय कहतेहैं. इनके द्वारा गति, मलत्याग, आनन्द, शिल्प और वाक्यकथन यह सब कार्य समापन होतेहैं, शब्दमात्र आकाश स्पर्शमात्रमें आविष्ट होकर ॥ ५२ ॥ द्विगुण वायुको उत्पन्न करताहै, किन्तु स्पर्शही उसका विशेषगुण है, शब्द और स्पर्श यह दोनों गुण रूपमें आविष्ट होकर ॥ ५३ ॥

वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तुसात्त्विकात् ॥ वैकारिकःससर्गस्तुयुगपत्संप्रवर्त्तते ॥ ४८ ॥ बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपंचकर्मेन्द्रियाणिच ॥ तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिकादश ॥ ४९ ॥ एकादशंमनस्तत्रदेवावैकारिकाःस्मृताः ॥ श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचैवपंचमी ॥ ५० ॥ शब्दादीनामवाप्त्यर्थंबुद्धियुक्तानिवक्ष्यते ॥ पादौपायुरुपस्थश्चहस्तौवाक्पंचमीभवेत् ॥ ५१ ॥ गतिर्विसर्गोह्यानन्दःशिल्पंवाक्यंचकर्मतत् ॥ आकाशंशब्दमात्रंतुस्पर्शमात्रंसमाविशत् ॥ ५२ ॥ द्विगुणोजायतेवायुस्तस्यस्पर्शोगुणोमतः ॥ रूपंतथैवाविशतःशब्दस्पर्शगुणावुभौ ॥ ५३ ॥ त्रिगुणस्तुततश्चाग्निःसशब्दस्पर्शरूपवान् ॥ शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसमात्रंसमाविशत् ॥ ५४ ॥ तस्माच्चतुर्गुणाह्यापोविज्ञेयास्तारसात्मिकाः ॥ शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसोगन्धंसमाविशत् ॥ ५५ ॥ संहतागन्धमात्रेणआवृण्वंस्तेमहीमिमाम् ॥ तस्मात्पंचगुणाभूमिःस्थूलाभूतेषुदृश्यते ॥ ५६ ॥ शान्तावोराश्चमूढाश्चविशेषास्तेनतेस्मृताः ॥ परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्तिपरस्परम् ॥ ५७ ॥ भूमेरन्तस्त्विमंसर्वंलोकालोकंघनावृतम् ॥ विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्यानियतत्वाच्चतेस्मृताः ॥ ५८ ॥

अग्नि उत्पन्न करते हैं. यह अग्निशब्द, स्पर्श और रूप इन तीन गुणसे युक्त है, अनन्तर शब्द, स्पर्श और रूप, यह रसमात्रमें आविष्ट होकर ॥ ५४ ॥ चौगुणे रसात्मक जलको उत्पन्न कर देते हैं, अन्तमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस गंधमात्रमें आविष्ट होनेसे ॥ ५५ ॥ उनके संघट्टमें संहत होकर इस पृथ्वीको समावृत करतेहैं इसी कारण भूतगणमें पंचगुणसंपन्न स्थूलाकार भूमि दिखाई देतीहै ॥ ५६ ॥ इसी हेतु वह शान्त, घोर और मूढ़ कहकर परिगणित हैं, वह परस्पर अनुप्रवेशपूर्वक परस्परको धारण करतेहैं ॥ ५७ ॥ यह घनावृत समस्त लोकालोक भूमिके अन्तरमें सन्निविष्ट रहते हैं, नियतत्वके हेतु यह इन्द्रियग्राह्य "विशेष" नामसे कहेहैं ॥ ५८ ॥

पहले पहले गुण उत्तरोत्तरमें अनुप्रवेश करतेहैं, यह नानावीर्यवान् सातपदार्थ जवतक परस्पर मिलित न होकर पृथक् भावमें अवस्थित रहतेहैं ॥ ५९ ॥ तबतक प्रजासृष्टिमें समर्थ नहीं होते। यह जिस समय परस्परमें मिलित होकर परस्परको अवलम्बनपूर्वक ॥ ६० ॥ सम्यक् प्रकार ऐक्य ताको प्राप्त होते हैं एवं जिस समय पुरुषका अधिष्ठान और प्रकृतिका अनुग्रह लाभकरतेहैं ॥ ६१ ॥ उसी समय महतसे विशेषपर्यन्त इन सबमें अण्ड उत्पादन करते हैं यह अण्ड जलबुद्बुदकी समान जलमें आश्रयपूर्वक क्रमशः वर्द्धित होता रहताहै ॥ ६२ ॥ हेमहामते ! सलिलमें स्थित यह अंड भूतगणसे बृहत् है. ब्रह्मसंज्ञक क्षेत्रज्ञभी उस प्राकृत अण्डमें वृद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ ६३ ॥ वही प्रथम शरीरी और पुरुष नामसे अभिहित हैं, वही भूतगणके आदिकर्ता ब्रह्मा हैं,वही इन सबसे आगे

गुणंपूर्वस्यपूर्वस्यप्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ॥ नानावीर्य्याः पृथग्भूताःसप्तैतेसंहतिंविना ॥५९॥ नाशक्नुवन्प्रजाःस्रष्टुमसमागम्यकृत्स्नशः॥समेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिणश्चते ॥६०॥ एकसंघातचिह्नाश्चसंप्राप्यैक्यमशेषतः ॥ पुरुषाधिष्ठितत्वाच्चअव्यक्तानुग्रहेणच ॥६१॥ महदाद्याविशेषान्ताह्यण्डमुत्पादयन्तिते ॥ जलबुद्बुदवत्तत्रक्रमाद्वैवृद्धिमागतम् ॥६२॥ भूतेभ्योऽण्डंमहाबुद्धे बृहत्तदुदकेशयम्॥प्राकृतेऽण्डेविवृद्धःसन्क्षेत्रज्ञोब्रह्मसंज्ञितः॥६३॥ सवैशरीरीप्रथमःसवैपुरुषउच्यते ॥ आदिकर्ताचभूतानांब्रह्माग्रेसमवर्तत ॥६४॥तेनसर्वमिदंव्याप्तंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ मेरुस्तस्यानुसंभूतोजरायुश्चापिपर्वताः ॥ ६५ ॥ समुद्रागर्भसलिलंतस्याण्डस्यमहात्मनः ॥ तस्मिन्नण्डेजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ ६६॥ द्वीपाद्याद्रिसमुद्राश्चसज्योतिर्लोकसंग्रहः॥जलानिलानलाकाशैस्ततोभूतादिनाबहिः ॥६७॥ वृतमण्डंदशगुणैरेकैकत्वेनतैःपुनः॥महतातत्प्रमाणेनसहैवानेनवेष्टितः ॥६८॥ महांस्तैःसहितःसर्वैरव्यक्तेनसमावृतः ॥ एभिरावरणैरण्डंसप्तभिःप्राकृतैर्वृतम् ॥६९॥अन्योन्यमावृत्यचताअष्टौप्रकृतयःस्थिताः॥एषासाप्रकृतिर्नित्यातदन्तःपुरुषश्चसः ॥ ७० ॥

विराजित होतेहैं ॥ ६४ ॥ वही सचराचर त्रैलोक्य व्याप्तकर रहे हैं. मेरु उस बृहत् अण्डका पर्वत उसका जरायु ॥ ६५ ॥ और समुद्र उसका गर्भसलिल है । सुरअसुर और मनुष्योंसे पूर्ण समस्त जगत् उस अंडेमेंही ॥ ६६ ॥ द्वीपादि, पर्वत, सागर और ज्योतिष्कसहित सब लोक उसमें स्थित । जल, वायु, अग्नि, और आकाश, यह भूतादिसहित ॥६७॥ प्रत्येक उत्तरोत्तर दशगुण नियमसे बहिर्भागमें उस अंडेको परिवेष्टित किये रहतेहैं इसके अतिरिक्त उसी प्रमाण से महत्तत्त्वने भी उनके संग अण्डको आच्छादित किया है ॥ ६८ ॥ प्रकृति इस महत्तत्त्वके सहित अंडेको आवरण करके शोभा पाती है । इस प्रकार सप्त प्राकृत आवरणद्वारा उक्त अंड आच्छादित है ॥ ६९ ॥ इसी प्रकारसे अष्ट प्रकृति परस्परको आवरण करके स्थित हैं इन प्रकृतिको नित्यस्वरूप जानना चाहिये इसके अन्तमें वह पुरुष है ॥७०॥

तुम्हारे निकट जो ब्रह्मसंज्ञित पुरुषका उल्लेख किया, उनका विषय संक्षेपसे कहताहूं, सुनो । जलमें डूबाहुवा पुरुष जिसप्रकार जलके भीतरसे उठनेके समयमें जल और जलमें प्रगट ॥ ७१ ॥ द्रव्य फेंक देताहै, ब्रह्माको भी उसी प्रकार प्रकृतिकाविभु जानना चाहिये । यह प्रकृतिही क्षेत्र और ब्रह्माही क्षेत्रज्ञ नामसे कथित हैं ॥ ७२ ॥ यही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके लक्षण हैं, इस प्रकारही क्षेत्रज्ञाधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धिपूर्वक प्रथम बिजलीके समान आविर्भूत हुई है ॥ ७३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ क्रौष्टुकि बोले हे भगवन् ! आपने अण्डेकी उत्पत्ति और ब्रह्माण्डमें महात्मा ब्रह्माजीका जन्म यथावत् वर्णन किया ॥ १ ॥ हे भृगुवंशोद्भव ! प्रलयके अवसानमें समस्त संहारको प्राप्त होनेपर जब सृष्टिका कुछभी विद्यमान नहीं था, इसके पीछे

ब्रह्माख्यःकथितोयस्तेसमासाच्छ्रूयतांपुनः ॥ यथामग्नोजलेकश्चिदुन्मज्जञ्जलसम्भवम् ॥ ७१ ॥ वलयंक्षिपतिब्रह्मासतथाप्रकृतीर्विभुः ॥ अव्यक्तंक्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्माक्षेत्रज्ञउच्यते ॥ ७२ ॥ एतत्समस्तंजानीयात्क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम् ॥ इत्येषप्राकृतःसर्गःक्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तुसः ॥ अबुद्धिपूर्वःप्रथमःप्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥ ॥ ७३ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेब्रह्मोत्पत्तिर्नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवंस्त्वण्डसंभूतिर्यथावत्कथितामम ॥ ब्रह्माण्डेब्रह्मणोजन्मतथाचोक्तमहात्मनः ॥ १ ॥ एतदिच्छाम्यहंश्रोतुंत्वत्तोभृगुकुलोद्भव ॥ यदानसृष्टिर्भूतानामस्तिकिंनुनचास्तिवा ॥ कालेवैप्रलयस्यान्ते सर्वस्मिन्नुपसंहृते ॥ २ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ यदातुप्रकृतौयातिलयंविश्वमिदंजगत् ॥ तदोच्यतेप्राकृतोऽयंविद्वद्भिःप्रतिसंचरः ॥ ३ ॥ स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्तेविकारेप्रतिसंहृते ॥ प्रकृतिःपुरुषश्चैवसाधर्म्येणावतिष्ठतः ॥ ४ ॥ तदातमश्चसत्त्वंचसमत्वेनगुणौस्थितौ ॥ अनुद्रिक्तावनूनौचओतप्रोतौ परस्परम् ॥ ५ ॥ तिलेषुवायथातैलंघृतंपयसिवास्थितम् ॥ तथातमसिसत्त्वेचरजोऽप्यनुसृतंस्थितम् ॥ ६ ॥

फिर किसप्रकारसे भूतगणकी उत्पत्ति हुई ? अब वही विषय आपसे सुननेकी अभिलाषा करताहूं ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-जिससमय यह विश्व प्रकृतिमें लीन होताहै, तब विद्वज्जन उसीको प्राकृत प्रलय कहतेहैं ॥ ३ ॥ प्रकृतिके आत्मामें अवस्थित होनेसे संपूर्ण सृष्ट पदार्थ संहारको प्राप्त होतेहैं जिससमय प्रकृति और पुरुष साधर्म्यमें अवस्थित होतेहैं ॥ ४ ॥ तिस कालमें सत्व और तम, यह दो गुण समभावसहित अधिष्ठित होतेहैं । तिस समय उनमें किसीकोभी किसी प्रकारकी वृद्धि वा न्यूनता विद्यमान नहीं रहती, वह दोनों परस्पर समभावसे मिलकर ताने वानेकी समान अधिष्ठित रहतेहैं ॥ ५ ॥ तिलमें तेल और दूधमें घृतके समान रजोगुणभी

सत्व और तमोगुणमें प्राप्त होकर स्थित होताहै ॥६॥ सर्वेश्वर ब्रह्माकी परमायुका परिमाण द्विपरार्द्धपर्यन्त है। उनके दिनका परिमाण जिसप्रकार है, रात्रिकाभी उसीप्रकार है ॥ ७ ॥ आठसहस्रयुगका प्रजापतिका दिनरात होताहै इसी मानसे ब्रह्माजी सौवर्ष जीतेहैं ब्रह्माकी सौ अवस्था बीतनेसे विष्णुकी अवस्थाका प्रमाण है शिवके आधे निमेषमें १४००० चौदहसहस्र विष्णु होचुकते हैं और ब्रह्मा कितने होतेहैं इसकी संख्या नहींहै क्षेपक है। वह जगत्के आदि हैं, किन्तु उनका आदि कोई नहीं है। वह सबके कारण, अचिंत्यात्मा, परमेश्वर और क्रियाके अतीत हैं ॥ ८ ॥ वह जगत्पति परमेश्वर परम योगहेतु प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको विक्षोभित करते हैं ॥ ९ ॥ मदगर्व वा वसन्त वायु जिसप्रकार नव युवतियोंके अन्तरमें प्रविष्ट होकर क्षोभित

उत्पत्तिर्ब्रह्मणोयावदायुर्वैद्विपरार्द्धिकम् ॥ तावद्दिनंपरेशस्यतत्समासंयमेनिशा॥७॥(अष्टौयुगसहस्राणिअहोरात्रंप्रजापतेः॥अनेनैवतुमानेनशतंब्रह्मासजीवति॥ पितामहशतेनैवविष्णोर्मानंविधीयते ॥ निमेषार्धेनशंभोस्तुसहस्राणिचतुर्दश ॥ विनश्यंतितथाविष्णोरसंख्याताःपितामहाः॥)अहर्मुखेप्रबुद्धस्तुजगदादिरनादिमान् ॥ सर्वहेतुरचिन्त्यात्मापरःकोऽप्यपरक्रियः ॥ ८ ॥ प्रकृतिंपुरुषंचैवप्रविश्याशुजगत्पतिः ॥ क्षोभयामासयोगेनपरेणपरमेश्वरः ॥९॥ यथामदोनवस्त्रीणां यथावामाधवानिलः ॥ अनुप्रविष्टःक्षोभायतथासौयोगमूर्त्तिमान् ॥१०॥ प्रधानेक्षोभ्यमाणेतुसदेवोब्रह्मसंज्ञितः ॥ समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थोयथातेकथितंमया॥ ॥ ११ ॥ सएवक्षोभकःपूर्वंसक्षोभ्यःप्रकृतेःपतिः ॥ ससंकोचविकाशाभ्यांप्रधानत्वेऽपिसंस्थितः ॥ १२ ॥ उत्पन्नःसजगद्योनिरगुणोऽपिरजोगुणम् ॥ भुञ्जन्प्रवर्ततेसर्गेब्रह्मत्वंसमुपाश्रितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मत्वेसप्रजाःसृष्ट्वाततःसत्त्वातिरेकवान् ॥ विष्णुत्वमेत्यधर्मेणकुरुतेपरिपालनम् ॥ १४ ॥ ततस्तमोगुणोद्रिक्तोरुद्रत्वेचाखिलंजगत् ॥ उपसंहृत्यवैशेतेत्रैलोक्यंत्रिगुणोऽगुणः ॥ १५ ॥

करते हैं योगमूर्तिमान् ब्रह्माभी इसी प्रकार प्रकृति और पुरुषको विक्षोभित करते हैं ॥ १० ॥ प्रकृतिके क्षोभित होनेपर वह ब्रह्मा नामधारी देवता अंडकोषमें स्थित होकर समुत्पन्न होतेहैं। मैंने तुम्हारे निकट यह कहाहै ॥ ११ ॥ वह प्रथम तो क्षोभित करतेहैं, फिर प्रकृतिके पति होकर स्वयं विक्षोभित होते हैं। इसप्रकार संकोच और विकाशद्वारा वह प्रकृतिरूपमें विराजित रहते हैं ॥ १२ ॥ वह जगत्योनि निर्गुण होकरभी प्रगट होकर रजोगुण अवलम्बनपूर्वक ब्रह्माके रूपसे उत्पन्न हो सृष्टि करनेका उद्योग करते हैं ॥ १३ ॥ वह ब्रह्मरूपसे प्रजासृजनपूर्वक सत्वगुणकी अधिकताके कारण विष्णुमूर्ति धारण करके न्यायानुसार प्रजाका पालन करते हैं ॥ १४ ॥ तदनन्तर तमोगुणके उद्वेगसे रुद्रमूर्ति ग्रहण करके संपूर्ण विश्वका संहार करते हुए शयन करतेहैं इस प्रकारसे वह निर्गुण होकरभी

उल्लिखित तीन, कालमें तीनों गुणकी भजना करतेहैं ॥ १५ ॥ सबके जननक्षेत्र सर्वव्यापी वह ईश्वर इसप्रकारसे सृजन, रक्षण और संहार करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर संज्ञाको प्राप्त हुए हैं ॥ १६ ॥ वह ब्रह्मत्वमें संपूर्ण लोकोंको उत्पन्न, रुद्रत्वमें निधन और विष्णुत्वमें उदासीन होकर अवस्थान करते हैं अर्थात् पालन करते हैं, स्वयम्भूकी यह तीन अवस्था हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्माही साक्षात् रजोगुण, रुद्र तमोगुण और जगत्पति विष्णु सत्वगुण हैं ॥ १८ ॥ जिसप्रकारसे यह तीनों देवता तीनों गुणरूपमें परस्पर निपुणभावसे परस्परको आश्रयपूर्वक विराजमान रहते हैं, क्षणमात्रकोभी इनका वियोग नहीं है और मुहूर्तमात्रके लियेभी कोई किसीको परित्याग नहीं करता ॥ १९ ॥ इस प्रकार जगत्के आदि देवदेव चतुरानन रजोगुण अवलम्बन करके सबके सृजनकार्यमें प्रवृत्त होतेहैं ॥ २० ॥

यथाप्राग्व्यापकःक्षेत्रीपालकोलावकस्तथा ॥ तथाससंज्ञामाप्नोतिब्रह्मविष्णुहरात्मिकाम् ॥१६॥ ब्रह्मत्वेसृजतेलोकान्रुद्रत्वेसंहरत्यपि ॥ विष्णुत्वेचाप्युदासी नास्तिस्रोऽवस्थाःस्वयम्भुवः ॥ १७ ॥ रजोब्रह्मातमोरुद्रोविष्णुःसत्त्वंजगत्पतिः ॥ एतएवत्रयोदेवाएतएवत्रयोगुणाः ॥ १८ ॥ अन्योन्यमिथुनाह्येतेअन्यो न्याश्रयिणस्तथा ॥ क्षणंवियोगोनह्येषांनत्यजन्तिपरस्परम् ॥ १९ ॥ एवंब्रह्माजगत्पूर्वो देवदेवश्चतुर्मुखः ॥ रजोगुणंसमाश्रित्यस्रष्टृत्वेसव्यवस्थितः ॥ २० ॥ हिरण्यगर्भोदेवादिरनादिरुपचारतः ॥ भूपद्मकर्णिकासंस्थोब्रह्माग्रेसमजायत ॥ २१ ॥ तस्यवर्षशतंत्वेकंपरमायुर्महात्मनः ॥ ब्राह्म्येणैवहिमानेनतस्यसं ख्यांनिबोधमे ॥२२॥ निमेषैर्दशभिःकाष्ठातथापञ्चभिरुच्यते ॥ कलास्त्रिंशच्चवैकाष्ठामुहूर्त्तस्त्रिंशदेवताः ॥२३॥ अहोरात्रंमुहूर्त्तानांनृणांत्रिंशत्तुवैस्मृतम् ॥ अहोरात्रैश्चत्रिंशद्भिःपक्षौद्वौमासउच्यते ॥ २४ ॥ तैःषड्भिरयनंवर्षंद्वेयनेदक्षिणोत्तरे ॥ तद्देवानामहोरात्रंदिनंतत्रोत्तरायणम् ॥ २५ ॥ दिव्यैर्वर्षसहस्रै स्तुकृतत्रेतादिसंज्ञितम् ॥ चतुर्युगंद्वादशभिस्तद्विभागंशृणुष्वमे ॥ २६ ॥

वह हिरण्यगर्भ देवादि और एक प्रकारसे अनादि हैं। वह भूपद्मकर्णिका अवलम्बनपूर्वक सबके आगे आविर्भूत होतेहैं ॥ २१ ॥ उन महात्माकी परमायुसंख्या ब्राह्म मानके शतवर्ष निरूपित है। उनकी संख्या कहताहूं, सुनो ॥ २२ ॥ पन्द्रह निमेषमें एक काष्ठा, तीस काष्ठामें एक कला, तीस कलामें एक मुहूर्त्त ॥ २३ ॥ और तीस मुहूर्त्तमें मनुष्यका एक दिनरात्र होताहै, तीस दिनरात्रमें अथवा दोपक्षमें एकमास होताहै ॥ २४ ॥ छः मासमें एक अयन, और दोअयनमें एक वर्ष होताहै अयन दोप्रकार है दक्षिणायन और उत्तरायण। इस प्रकार नरमानके एक वर्षमें देवताओंका एक अहोरात्र होताहै, तिनमें उत्तरायण उनका दिन है ॥ २५ ॥ दिव्यपरिमाणसे बारह

हजार वर्षमें सत्यादि चार युग होतेहैं, उन चारों युगका विभाग कहताहूं, सुनो ॥ २६ ॥ दिव्य चार हजार वर्षमें सत्ययुग होताहै, चार सौ वर्ष उसकी संध्या और ४०० वर्ष संध्यांश है ॥ २७ ॥ तीनहजार दिव्य वर्षमें त्रेतायुग होताहै, देवमानके तीन सौ वर्षमें उसकी संध्या और ३०० वर्ष संध्यांश होताहै ॥ २८ ॥ द्वापर युगका परिमाण दो हजार दिव्य वर्ष है। दोसौ दिव्य वर्षमें उसकी संध्या और वर्ष २०० संध्यांश होताहै ॥ २९ ॥ हे मुनिसत्तम ! एक हजार दिव्यवर्ष वर्षमें कलियुग होताहै, एवं उसकी संध्या और संध्यांश, दोनोंही एक शत २ दिव्यवर्ष हैं ॥ ३० ॥ कवियोंने इस प्रकारसे चारो युगका परिमाण बारह हजार दिव्य वर्षमें विभाग कियाहै, इसको सहस्र गुण करनेसे जो होताहै, वही ब्रह्माका एक दिन निरूपित है ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माके इस एक दिनमें यथा विभाग चौदह मनु

चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणांकृतमुच्यते ॥ शतानिसन्ध्याचत्वारिसन्ध्यांशश्चतथाविधः ॥ २७ ॥ त्रेतात्रीणिसहस्राणिदिव्याब्दानांशतत्रयम् ॥ तस्यसन्ध्या समाख्यातामध्यांशश्चतथाविधः ॥ २८ ॥ द्वापरंद्वेसहस्रेतुवर्षाणांद्वेशतेतथा ॥ तस्यसन्ध्यासमाख्याताद्वेशताब्देतदंशकः ॥ २९ ॥ कलिःसहस्रंदि व्यानामब्दानांद्विजसत्तम ॥ सन्ध्यासन्ध्यांशकश्चैवशतकौसमुदाहृतौ ॥ ३० ॥ एषाद्वादशसाहस्रीयुगाख्याकविभिःकृता ॥ एतत्सहस्रगुणितमहोब्राह्ममु दाहृतम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मणोदिवसेब्रह्मन्मनवःस्युश्चतुर्दश ॥ भवन्तिभागशस्तेषांसहस्रंतद्विभज्यते ॥ ३२ ॥ देवाःसप्तर्षयःसेन्द्रामनुस्तत्सूनवोनृपाः ॥ मनुना सहसृज्यन्तेसंह्रियन्तेचपूर्ववत् ॥ ३३ ॥ चतुर्युगानांसंख्याताससाधिकाह्येकसप्ततिः ॥ मन्वन्तरंतस्यसंख्यांमानुषाब्दैर्निबोधमे ॥ ३४ ॥ त्रिंशत्कोट्यस्तुसं पूर्णाःसंख्याताःसंख्ययाद्विज ॥ सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसंख्यया ॥ ३५ ॥ विंशतिश्चसहस्राणिकालोऽयंसाधिकंविना ॥ एतन्मन्वन्तरंप्रोक्तं दिव्यैर्वर्षैर्निबोधमे ॥ ३६ ॥ अष्टौवर्षसहस्राणिदिव्ययासंख्ययायुतम् ॥ द्विपञ्चाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानितु ॥ ३७ ॥ चतुर्दशगुणोह्येषकालो ब्राह्म्यमहःस्मृतम् ॥ तस्यान्तेप्रलयःप्रोक्तोब्राह्मोनैमित्तिकोबुधैः ॥ ३८ ॥

उत्पन्न होतेहैं, उनका सहस्र विभाग कल्पित होताहै ॥ ३२ ॥ इन्द्रादि देवता, सप्तर्षिगण, मनुगण और मनुपुत्र नृपतिगण मन्वन्तरके सहित उत्पन्न होतेहैं और पूर्वके समान संहारको प्राप्त होतेहैं ॥ ३३ ॥ इकहत्तर चतुर्युगमें एक मन्वन्तर होता है, नरमानके अनुसार इसकी संख्या कह ताहूं सुनो ॥ ३४ ॥ संपूर्ण तीसकरोड़ सड़सठलाख वीससहस्र ३०६७२००० मनुष्यवर्षही एक मन्वन्तरका परिमाण है, अब दिव्यमानके वर्षानुसार सुनो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ आठलाख बावनहजार दिव्यवर्षमें एक मन्वन्तर होता है ॥ ३७ ॥ इस कालको चतुर्दशगुणित करनेसे ११९२८००० दिव्य वर्षका

ब्रह्माका एक दिन होता है ४२९४०००००० यह मनुष्य वर्षोंका ब्रह्माका एकदिन होता है हे ब्रह्मन् ! इस ब्राह्म दिनके अन्तमें जो प्रलय संघटित होता है पण्डितगण उसीको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ॥ ३८ ॥ भूर्लोक भुवर्लोक तथा स्वर्लोकके निवासी इन लोकोंके नाशको प्राप्त होनेपर महर्लोकमें जाकर रहतेहैं ॥ ३९ ॥ महर्लोकके निवासी प्रलयकालजनित तापसे जनलोकमें प्रस्थान करते हैं, तब त्रिभुवन एकार्णव होता है, ब्रह्मा रात्रिकालमें शयन करते हैं ॥ ४० ॥ दिनका परिमाण जिसप्रकार है, ब्रह्माजीकी रात्रिका परिमाण भी उसी प्रकार है। रात्रिके अन्तमें फिर सृजन कार्य आरंभ होताहै। इसप्रकार तीनसौ साठ दिनमें अर्थात् इतनी प्रलयमें ब्रह्माका एक वर्ष होता है ॥ ४१ ॥ एक शत वर्षको पर कहते हैं, इसप्रकार पञ्चाशत् वर्षमें एक परार्द्ध होता है ॥ ४२ ॥ हे द्विजसत्तम ! इस भाँतिसे ब्रह्माका एक परार्द्ध बीत गयाहै ॥

भूर्लोकोऽथभुवर्लोकःस्वर्लोकस्तन्निवासिनः ॥ तदाविनाशमायांतिमहर्लोकश्चतिष्ठति ॥ ३९ ॥ तद्वासिनोऽपितापेनजनलोकंप्रयान्तिवै ॥ एकार्णवेचत्रैलोक्येब्रह्मास्वपितिवैनिशि ॥ ४० ॥ तत्प्रमाणैवसारात्रिस्तदन्तेसृज्यतेपुनः ॥ एवंतुब्रह्मणोवर्षमेकंवर्षशतंतुतत् ॥ ४१ ॥ शतंहितस्यवर्षाणांपरमित्यभिधीयते ॥ पंचाशद्भिस्तथावर्षैःपरार्द्धमितिकीर्त्यते ॥ ४२ ॥ एकमस्यपरार्द्धंतुव्यतीतंद्विजसत्तम ॥ यस्यान्तेऽभून्महाकल्पःपाद्मइत्यभिविश्रुतः ॥ ४३ ॥ द्वितीयस्यपरार्द्धस्यवर्त्तमानस्यवैद्विज ॥ वाराहइतिकल्पोऽयंप्रथमःपरिकल्पितः ॥ ४४ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेब्रह्मायुःप्रमाणकथनंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ यथाससर्जवैब्रह्माभगवानादिकृत्प्रजाः ॥ प्रजापतिःपतिर्देवस्तन्मेविस्तरतोवद ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयाम्येषतेब्रह्मन्ससर्जभगवान्यथा ॥ लोककृच्छाश्वतःकृत्स्नंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ २ ॥ पाद्मावसानसमयेनिशासुप्तोत्थितःप्रभुः ॥ सत्त्वोद्रिक्तस्तदाब्रह्माशून्यंलोकमवैक्षत ॥ ३ ॥ इमंचोदाहरन्त्यत्रश्लोकंनारायणंप्रति ॥ ब्रह्मस्वरूपिणंदेवंजगतःप्रभवाप्ययम् ॥ ४ ॥

उसीके अन्तमें पाद्म नामक महाकल्प उपस्थित हुआ था ॥ ४३ ॥ हे द्विज ! अब दुसरा परार्द्ध विद्यमान है, इसीको वाराह कल्प कहते हैं, यही प्रथमकल्प कहकर परिकल्पित है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ क्रौष्टुकिने कहा । भगवान् प्रजापति प्रभु आदिस्रष्टा ब्रह्माजीने जिसप्रकार प्रजाको उत्पन्न किया था, वह मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे ब्रह्मन् ! जगत्कारण भगवान् अनादिने जिसप्रकार इस स्थावर जंगमपूर्ण समस्त जगत्को निर्माण किया था, वह आपसे कहताहूं ॥ २ ॥ पाद्म नामक प्रलयका अवसान होनेपर अर्थात् पाद्मकल्पके शेष होनेपर सत्वगुणद्वारा उद्रिक्त प्रभु ब्रह्माजी जब रात्रि बीतनेमें सोकर उठे तो संपूर्ण भुवनको शून्य देखा ॥ ३ ॥ उस समय जगत्कारण अव्यय ब्रह्मस्वरूपी नारायणके प्रति यह श्लोक कहा

268

जाताहै कि ॥ ४ ॥ "सुनाहै. जल शब्दका नाम नार—तनु है । उसमें वह अयन शयन करते हैं, इसकारण वह नारायण नामसे कीर्तित होतेहैं" ॥ ५ ॥ नारायणने जागरित होकर पृथ्वीको उस जलमें डूबाहुआ अनुमान किया और उसके उद्धारकी कामनासे ॥ ६ ॥ पूर्व पूर्व कल्पमें मत्स्य कूर्मादिके समान वाराहमूर्ति धारण की ॥ ७ ॥ वह वेदयज्ञमें प्रभु वेदयज्ञरूप शरीरको धारणकरके वह सर्वगामी सर्वभावन वाराहरूपधर जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ८ ॥ और फिर पातालसे उद्धारकर पृथ्वीको जलके ऊपर स्थापन किया फिर जनलोकनिवासी महर्षियोंसे चिन्त्यमान वह जगत्पति प्रभु देखने लगे ॥ ९ ॥ कि यह जलमें नौकाकी समान डोलतीहै विस्तार होनेसे यह ठहरती नहीं ॥ १० ॥ इसके पीछे पृथ्वीको बराबर करके प्रथम तो पर्वतोंकी सृष्टि करी । प्रथम सृष्टिको सम्वर्तक अग्निने जलायाथा ॥ ११ ॥

आपोनाराइतिप्रोक्ता आपोवैनरसूनवः ॥ तासुशेतेसयस्माच्चतेननारायणःस्मृतः ॥५॥ विबुद्धःसलिलेतस्मिन्विधायान्तर्गतांमहीम् ॥ अनुमानात्समुद्धारंकर्तुं कामस्तदाक्षितेः ॥६॥ अकरोत्सतनूरन्याःकल्पादिषुयथापुरा ॥ मत्स्यकूर्मादिकास्तद्वद्वाराहंवपुरास्थितः ॥७॥ वेदयज्ञमयंदिव्यंवेदयज्ञमयोविभुः ॥ रूपंकृत्वाविवेशाप्सुसर्वगःसर्वसम्भवः ॥८॥ समुद्धृत्यचपातालान्मुमोचसलिलेभुवम् ॥ जनलोकस्थितैःसिद्धैश्चिन्त्यमानोजगत्पतिः ॥९॥ तस्योपरिजलौघस्यमहतीनौरिवस्थिता ॥ विस्तृतत्वात्तुदेहस्यनमहीयातिसंप्लवम् ॥१०॥ ततःक्षितिंसमीकृत्यपृथिव्यांसोऽसृजद्गिरीन् ॥ प्राक्सर्गेदह्यमानेतुतदासंवर्तकाग्निना ॥११॥ तेनाग्निनाविशीर्णास्तेपर्वताभुविसर्वशः ॥ शैलाएकार्णवेमग्नावायुनापस्तुसंहताः ॥१२॥ निषक्तायत्रयत्रासंस्तत्रतत्राचलाभवन् ॥ भूविभागंततःकृत्वासप्तद्वीपोपशोभितम् ॥१३॥ भूराद्यांश्चतुरोलोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ॥ सृष्टिंचिन्तयतस्तस्यकल्पादिषुयथापुरा ॥१४॥ अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ तमोमोहोमहामोहस्तामिस्रोह्यन्धसंज्ञितः ॥१५॥ अविद्यापंचपर्वैषाप्रादुर्भूतामहात्मनः ॥ पंचधावस्थितःसर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥१६॥ बहिरन्तश्चाप्रकाशःसंवृतात्मानगात्मकः ॥ मुख्यानगायतश्चोक्तामुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥१७॥ तंदृष्ट्वासाधकंसर्गममन्यदपरंपुनः ॥ तस्याभिध्यायतःसर्गतिर्यक्स्रोतोह्यवर्तत ॥१८॥

सब पर्वत उस अग्निके सन्तापसे विशीर्णकलेवर होकर समुद्रमें डूब गये थे तब वहाँका जलभी वायुद्वारा एकत्रित होगया ॥ १२ ॥ अतएव पर्वत जिस जिस स्थलमें संलग्न हुएथे उसी उसी स्थानमें अचल होगये, अनन्तर सप्तद्वीप रूपमें भू विभाग करके ॥ १३ ॥ पूर्ववत् भूर्लोकादि चार लोकका विभाग किया । पूर्व पूर्व कल्पके समान सृष्टि—विषयकी चिन्ता करते करते ॥ १४ ॥ तमोमय तमः, मोह, महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्रनामक ॥ १५ ॥ पंच अविद्या उन महात्मासे प्रादुर्भूत हुई, इसप्रकार चिन्ता करनेसे अप्रतिबोधयुक्त सृष्टि पांचप्रकारसे स्थित हुई ॥ १६ ॥ वह संवृतात्मक और पर्वतस्वरूप तथा अपने बहिर्भाग और अन्तर देशमें सबही अप्रकाशित थी, यह सृष्टि पर्वतप्रधान होनेके कारण मुख्य सर्गके नामसे कही गईहै ॥ १७ ॥ उन्होंने यह असाधक सृष्टि देखकर फिर दूसरी सृष्टिकी इच्छाकरी तब उनके ध्यानसे

तिर्यक्स्रोत प्रवृत्त हुआ ॥ १८ ॥ सृष्टिकी चिन्ता करते २ उनसे तिर्यक्स्रोत प्रवाहित होनेके कारण यह तिर्यक्स्रोत कहाताहै; इससे अधिक तमोगुणवाले पशु आदिक अज्ञानी हुए ॥ १९ ॥ वह अज्ञानमें ज्ञान माननेवाले उन्मार्गगामी हुए वे अहंकारी अहंमानी अट्ठाईस प्रकारके हुए ॥ २० ॥ यह सब अन्तःप्रकाश और परस्परको आवरण करके अवस्थित हैं इस सृष्टिको भी असाधक विचारकर फिर चिन्ता करनेसे अन्य ॥ २१ ॥ ऊर्ध्वपथगामी तीसरा सात्विक स्रोत प्रवाहित होनेलगा, उसमें जो उत्पन्न हुए, वह सुख प्रीतिकी अधिकाईवाले बाहर भीतर अनावृत ॥ २२ ॥ भीतर बाहर प्रकाशवाले और तुष्टात्मा थे, इस तीसरी सृष्टिको देवसर्ग कहतेहैं ॥ २३ ॥ इस सृष्टिके उत्पन्न होनेसे ब्रह्माजीको अत्यन्तसंतोष हुआ, तब वह फिर उत्तम साधक सर्गकी चिन्ता करनेलगे

यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तिःसातिर्यक्स्रोतस्ततःस्मृतः ॥ पश्वादयस्तेविख्यातास्तमःप्रायाह्यवेदिनः ॥ १९ ॥ उत्पथग्राहिणश्चैवतेऽज्ञानेज्ञानमानिनः ॥ अहंकृता अहंमानाअष्टाविंशद्विधात्मकाः ॥ २० ॥ अन्तःप्रकाशास्तेसर्वेआवृतास्तुपरस्परम् ॥ तमप्यसाधकंमत्वाध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥ २१ ॥ ऊर्द्धस्रोतस्तृतीयस्तुसात्त्विकोर्द्धमवर्तत ॥ तेसुखप्रीतिवहुलावहिरन्तस्त्वनावृताः ॥२२॥ प्रकाशावहिरन्तश्चऊर्ध्वस्रोतःसमुद्भवाः ॥ तुष्टात्मनस्तृतीयस्तुदेवसर्गोहिसस्मृतः ॥२३॥ तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्नेब्रह्मणस्तदा ॥ ततोऽन्यंसतदादध्यौसाधकंसर्गमुत्तमम् ॥२४॥ तथाभिध्यायतस्तस्यसत्याभिध्यायिनस्ततः ॥ प्रादुर्बभौतदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तुसाधकः ॥२५॥ यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्तततोऽर्वाक्स्रोतसस्तुते ॥ तेचप्रकाशवहुलास्तमोद्रिक्तारजोऽधिकाः ॥ २६॥ तस्मात्तेदुःखवहुलाभूयोभूयश्चकारिणः ॥ प्रकाशावहिरन्तश्चमनुष्याःसाधकाश्चते ॥२७॥ पंचमोऽनुग्रहःसर्गःसचतुर्द्धाव्यवस्थितः ॥ विपर्ययेणसिद्ध्याचशान्त्यातुष्ट्यातथैवच ॥ २८ ॥ निवृत्तंवर्तमानंचतेऽर्थंजानन्तिवैपुनः ॥ भूतादिकानांभूतानांषष्ठःसर्गःसउच्यते ॥ २९ ॥ तेपरिग्रहिणःसर्वेसंविभागरतास्तथा ॥ चोदनाश्चाप्यशीलाश्चज्ञेयाभूतादिकाश्चते ॥ ३० ॥

॥ २४ ॥ तब उन यथार्थ चिन्तासमन्वित ब्रह्माजीके चिन्ता करने पर अव्यक्तसे अर्वाक्स्रोत नामक साधक सर्ग उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ यह अर्वाक् ऊर्ध्वसे अग्र हुए हैं, इस कारण इसको अर्वाक्स्रोत सर्ग कहते हैं, इनमें प्रकाश अधिक तम थोड़ा, और रजोगुण बहुत है ॥ २६ ॥ इसीकारण इनमें दुःख अधिक और वारम्वार कार्य करते हैं, यह बाहरभीतर प्रकाशवाले साधक मनुष्य हैं ॥ २७ ॥ पांचवीं सृष्टि अनुग्रहनामक है, विपर्यय, सिद्धि, शान्ति, और तुष्टिद्वारा चार भागमें विभक्त है ॥ २८ ॥ जो भूत और वर्त्तमान समस्त अर्थको जानतेहैं, उन भूतादिक और समस्त भूतोंकी सृष्टि छः सर्ग कहा गयाहै ॥ २९ ॥ वह सवही स्त्री रखनेवाले सम्यक् विभाग विषयमें रत, प्रेरणामें निपुण और कुत्सितस्वभाव हैं, इनकोही भूतादिक कहतेहैं ॥ ३० ॥

प्रथम जिससे ब्रह्माजीकी सृष्टि होती हैं; उसको महत् सृष्टि कहतेहैं, ब्रह्मांशकी सृष्टि दूसरी है, उसको भूतसर्ग कहते हैं ॥ ३१ ॥ ऐन्द्रियक वैकारिक सृष्टि तीसरी है; यहीप्राकृत सर्ग और बुद्धिपूर्वक है ॥ ३२ ॥ मुख्य सर्ग चौथा है, स्थावरगणकोही मुख्य कहा गयाहै, कथित तिर्यक् योनिरूप तिर्यक्स्रोत पंचम सर्ग है ॥ ३३ ॥ ऊर्ध्वस्रोतकी सृष्टि छठी है, वह देवसर्गके नामसे कही गई है, इसके पीछे अर्वाक्स्रोत सातवीं सृष्टि है वह मानुष है ॥ ३४ ॥ अनुग्रह सर्ग आठवाँ है, वह सात्विक और तामस भेदसे दोप्रकारका है यह पाँच वैकृतसृष्टि और पूर्वोक्त तीन प्राकृत सृष्टि है ॥ ३५ ॥ प्राकृत और विकारी कौमार नामक सृष्टि नवम है, इस भाँति प्रजापतिकी नवसंख्यक सृष्टि कही गई है ॥ ३६ ॥ यह प्राकृत और विकारीही जगत्के मूलकारण हैं, जो जगदीशने सृजन किये हैं, अब और क्या सुनने की

प्रथमोमहतःसर्गोविज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः ॥ तन्मात्राणांद्वितीयस्तुभूतसर्गःसउच्यते ॥ ३१ ॥ वैकारिकस्तृतीयस्तुसर्गश्चैन्द्रियकःस्मृतः ॥ इत्येषप्राकृतःसर्गःसंभूतोबुद्धिपूर्वकः ॥ ३२ ॥ मुख्यःसर्गश्चतुर्थस्तुमुख्यावैस्थावराःस्मृताः ॥ तिर्यक्स्रोतस्तुयःप्रोक्तस्तिर्यग्योन्यःसपंचमः ॥ ॥ ३३ ॥ तथोर्द्धस्रोतसांषष्ठोदेवसर्गस्तुसस्मृतः ॥ ततोर्वाक्स्रोतसांसर्गःसतमःसतुमानुषः ॥३४॥ अष्टमोऽनुग्रहःसर्गःसात्त्विकस्तामसश्चसः ॥ पंचैतेवैकृताः सर्गाःप्राकृतास्तुत्रयःस्मृताः ॥३५॥ प्राकृतोवैकृतश्चैवकौमारोनवमःस्मृतः ॥ इत्येतेवैसमाख्यातानवसर्गाःप्रजापतेः ॥३६॥ प्राकृतावैकृताश्चैवजगतोमूलहेतवः ॥ सृजतोजगदीशस्यकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे प्राकृतवैकृतसर्गवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ समासात्कथितासृष्टिःसम्यग्भगवतामम ॥ देवादीनांभवंब्रह्मन्विस्तरात्तुब्रवीहिमे ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ कुशलाकुशलैर्ब्रह्मन्भावितापूर्वकर्मभिः ॥ ख्यात्याताथाह्यनिर्मुक्ताःप्रलयेह्युपसंहृताः ॥२॥ देवाद्याःस्थावरान्ताश्चप्रजाब्रह्मंश्चतुर्विधाः॥ब्रह्मणःकुर्वतःसृष्टिंजज्ञिरेमानसास्तदा ॥ ॥ ३ ॥ ततोदेवासुरपितॄन्मानुषांश्चचतुष्टयम् ॥ सिसृक्षुरम्भस्येतानिस्वमात्मानमयूयुजत् ॥ ४ ॥

इच्छा है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४४ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन्! आपने मुझसे जिस प्रकार सृष्टिप्रकरण वर्णन किया, वह अतिसंक्षेपसे हुआहै, अतएव हे ब्रह्मन्! अब देवता इत्यादिकी उत्पत्ति विस्तारसहित कहिये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे ब्रह्मन्! पूर्वजन्मके शुभ अशुभ कर्मसेही फिर उत्पत्ति होतीहै, कारण कि वह प्रलयमें संहृत होतेहैं, मुक्त नहीं होते ॥ २ ॥ देवता इत्यादिसे स्थावर पर्यन्त चार प्रकारकी प्रजाके प्रलय कालमें नष्ट होनेपर ब्रह्माजीने फिर उसकी सृष्टिके निमित्त इच्छा की, तब अपने मनसे ॥ ३ ॥ देवता, असुर, पितर और मनुष्य, यह चार प्रकार प्रजा उत्पन्न करनेकी

इच्छासे उन्होंने जलमें अपना अंश निक्षेप किया ॥ ४ ॥ सृष्टिकी इच्छा करनेवाले प्रजापतिमें तमोगुणका उद्रेक होनेके कारण पहिले उनकी जंघासे असुरगण उत्पन्न हुए॥५॥इसी निमित्त उनको तमोगुणात्मक शरीर प्रदान किया और वही शरीर त्यक्त होकर तत्काल तमोगुणात्मिका रात्रिके नामसे विख्यात हुआ ॥ ६ ॥ अनन्तर प्रजापति अन्य शरीर ग्रहण करके प्रसन्नताको प्राप्त हुए, उसमें सत्वगुणका उद्रेक होनेके कारण उनके मुखसे देवताओंकी सृष्टि होनेपर ॥ ७ ॥ उनको सात्विकशरीर दिया; तब त्यागाहुआ सत्वगुणबहुल कलेवरही दिन नामको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ फिर सत्वमय दूसरा शरीरग्रहणपूर्वक पितरोंकी इच्छासे पितरोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ पितरोंको उत्पन्न करके प्रभुने उस शरीरको भी परित्याग किया, तब वही दिन रात्रिके अभ्यन्तर स्थित संध्यारूपमें परिणत हुआ ॥ १० ॥

युक्तात्मनस्तमोमात्राउद्रिक्ताभूत्प्रजापतेः ॥ सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुराजज्ञिरेततः ॥ ५ ॥ उत्ससर्जततस्तांतुतमोमात्रात्मिकांतनुम् ॥ सापविद्धातनुस्तेनसद्योरात्रिरजायत ॥ ६ ॥ अन्यांतनुमुपादायसिसृक्षुःप्रीतिमापसः ॥ सत्त्वोद्रेकास्ततोदेवामुखतस्तस्यजज्ञिरे ॥ ७॥ उत्ससर्जचभूतेशस्तनुंतामप्यसौविभुः ॥ साचापविद्धादिवसंसत्त्वप्रायमजायत ॥ ८॥ सत्त्वमात्रात्मिकामेवततोऽन्यांजगृहेतनुम् ॥ पितृवन्मन्यमानस्यपितरस्तस्यजज्ञिरे ॥ ९॥ सृष्ट्वापितॄनुत्ससर्जततनुंतामपिसप्रभुः ॥ साचोत्सृष्टाभवत्सन्ध्यादिननक्तान्तरस्थिता ॥ १० ॥ रजोमात्रात्मिकामन्यांतनुंभेजेऽथसप्रभुः ॥ ततोमनुष्याःसम्भूतारजोमात्रसमुद्भवाः ॥ ११ ॥ सृष्ट्वामनुष्यान्सविभुरुत्ससर्जतनुंततः ॥ ज्योत्स्नासमभवत्साचनक्तांतेऽहर्मुखेचया ॥ १२ ॥ इत्येतास्तनवस्तस्यदेवदेवस्यधीमतः ॥ ख्यातारात्र्यहनीचैवसन्ध्याज्योत्स्नाचवैद्विज ॥ १३ ॥ ज्योत्स्नासन्ध्यातथैवाहःसत्त्वमात्रात्मकंत्रयम् ॥ तमोमात्रात्मिकारात्रिःसावैतस्मात्तमोधिका ॥ १४ ॥ तस्माद्देवादिवारात्रावसुरास्तुबलान्विताः ॥ ज्योत्स्नागमेचमनुजास्सन्ध्यायांपितरस्तथा ॥ १५॥ भवन्तिबलिनोऽधृष्याविपक्षाणांनसंशयः ॥ तद्विपर्ययमासाद्यप्रयान्तिचविपर्ययम् ॥ १६ ॥

इसके पीछे रजोमात्रात्मिका अन्य तनु ग्रहणपूर्वक रजोगुणबहुल मनुष्य सृष्टि उत्पन्न करी ॥ ११ ॥ मनुष्योंको उत्पन्न करके उस विभुने वह शरीर भी त्याग किया, वही ज्योत्स्ना हुआ, यह ज्योत्स्ना रात्रिके शेष और दिनके प्रथमभागमें प्रादुर्भूत होतीहै ॥ १२ ॥ हेद्विज ! बुद्धिमान् देवदेवके यह समस्त विग्रहही दिवा, रात्रि संध्या और ज्योत्स्नाके नामसे विख्यात हुएहैं॥ १३ ॥ज्योत्स्ना संध्या और दिवा यह तीन सत्वमात्रात्मिका है; रात्रि तामसी है इसकारणही रात्रि त्रियामा हुई है॥ १४ ॥पूर्वोक्त गुणाधिक्यसेही दिनमें देवता, रात्रिमें असुर, ज्योत्स्नामें मनुष्य और संध्याकालमें पितरगण ॥ १५ ॥ अधिक बलशाली होकर शत्रुओं से

अजेय होतेहैं अर्थात् शत्रु इनको संग्राममें नहीं जीत सकते और विपरीत कालमें उससे विपरीत बलशाली होतेहैं ॥ १६ ॥ प्रजापतिने दिन, रात्रि, संध्या और ज्योत्स्ना, यह चार प्रकारके शरीर उत्पन्न किये, यह ब्रह्माजीका त्रिगुणात्मक शरीर है ॥ १७ ॥ प्रजापतिने इन चारों शरीरोंको उत्पन्न करके भूँख प्याससे युक्त रज और तमोमयी रात्रिको ग्रहण किया ॥ १८ ॥ उस अंधकारमें भगवान्‌अज (ब्रह्मा) ने भूंखसे कृश विरूप डाढ़ी मूँछवालोंको सृजन किया तब वह उस शरीरके खानेको प्रवृत्त हुए ॥ १९ ॥ हे द्विज ! जब वह शरीर भक्षण करनेलगे तब जिन्होंने "रक्षा करो" यह कहा, वह राक्षस और जिन्होंने "भक्षण करूंगा" यह कहा, वह यक्ष नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २० ॥ उनको देखकर अप्रसन्नता उपस्थित होनेसे विधाताके सब केश गिरनेलगे, यह केश ब्रह्माके

ज्योत्स्नाराञ्यहनीसन्ध्याचत्वार्येतानिवैप्रभोः ॥ ब्रह्मस्तुशरीराणित्रिगुणोपसृतानितु ॥ १७ ॥ चत्वार्येतान्यथोत्पाद्यतनुमन्यांप्रजापतिः ॥ रजस्तमोमयींरात्रौजगृहेक्षुत्तृडन्वितः ॥ १८ ॥ तदन्धकारेक्षुत्क्षामानसृजद्भगवानजः ॥ विरूपाञ्छमश्रुलानत्तुमारब्धास्तेचतांतनुम् ॥ १९ ॥ रक्षामइतितेभ्योऽन्येयउचुस्तेतुराक्षसाः ॥ खादामइतियेचोचुस्तेयक्षायक्षणाद्द्विज ॥२०॥ तान्दृष्ट्वाह्यप्रियेणास्यकेशाःशीर्यन्तवेधसः ॥ समारोहणहीनाश्चशिरसोब्रह्मणस्तुते ॥ ॥ २१॥ सर्पणात्तेऽभवन्सर्पाहीनत्वादहयःस्मृताः ॥ सर्पान्दृष्ट्वाततःक्रोधात्क्रोधात्मानोविनिर्ममे ॥२२॥ वर्णेनकपिलेनोग्रास्तेभूताःपिशिताशनाः ॥ ध्यायतोगांततस्तस्यगन्धर्वाजज्ञिरेसता ॥ २३ ॥ जज्ञिरेपिबतोवाचंगन्धर्वास्तेनतेस्मृताः ॥ अष्टास्वेतासुसृष्टासुदेवयोनिषुसप्रभुः ॥ २४ ॥ ततःस्वदेहतोऽन्यानिवयांसिपशवोऽसृजत् ॥ मुखतोऽजाःससर्जाथवक्षसश्चावयोऽसृजत् ॥ २५ ॥ गाश्चैवोदरतोब्रह्मापार्श्वाभ्यांचविनिर्ममे ॥ पद्भ्यांचाश्वान्समातङ्गान्रासभाञ्छशकान्मृगान् ॥ २६ ॥ उष्ट्रानश्वतरांश्चैवनानारूपाश्चजातयः ॥ ओषध्यःफलमूलिन्योरोमभ्यतस्यजज्ञिरे ॥ २७ ॥ एवंपश्वोषधीःसृष्ट्वाह्ययजच्चाध्वरेविभुः ॥ तस्मादादौतुकल्पस्यत्रेतायुगमुखेतदा ॥ २८ ॥

मस्तकसे गिरकर ॥ २१ ॥ विचरण करनेके कारण सर्पसंज्ञाको प्राप्त हुए, हीनजाती होनेसे इन्हें अहिभी कहतेहैं, सर्पोंके देखनेसे क्रोधयुक्त होकर उनको क्रोधात्मा किया ॥ २२ ॥ कपिलवर्णसे उत्पन्न उग्रस्वभाव पिशिताशन (मांसभोजी) गणोंका प्रादुर्भाव हुआ। गौकी चिन्ताकालमें गंधर्वोंकी उत्पत्ति हुई ॥ २३ ॥ वाक्य ग्रहण करते करते उत्पन्न होनेके कारण वह गंधर्व नामको प्राप्त हुए हैं । इस प्रकार अष्टविध देवयोनि उत्पन्न करके ॥ २४ ॥ अपने देहसे अन्य समस्त पशु पक्षी उत्पन्न किये मुखसे छाग, हृदयसे पक्षी ॥ २५ ॥ उदर और पार्श्व स्थानसे गौ, दोनों पैरोंसे अश्व, हस्ती, गर्दभ, शशक (खरगोश) मृग ॥ २६ ॥ ऊंट और खच्चर तथा रोमसे फलमूलशाली अनेक प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥ २७ ॥ भगवान् त्रेतायुगके प्रारंभमें इस प्रकार पशु

और औषधी उत्पन्न करके यज्ञसृष्टिमें नियुक्त हुएथे ॥ २८ ॥ गौ, छाग, महिष, मेष, अश्व, खच्चर और गर्दभ, इन सब पशुओंको ग्राम्य कहते हैं, अब आरण्य अर्थात् वनके पशु कहताहूं ॥ २९ ॥ श्वापद, द्विखुर, हस्ती, वानर, पक्षी, जलचर, पशु और सरीसृप सर्पादि । इन सातको आरण्यवासी प्राणी कहते हैं ॥ ३० ॥ विधाताने प्रथम मुखसे यज्ञकी गायत्री, त्रि-ऋक्, त्रि-वृत्, साम रथन्तर और अग्निष्टोम उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥ दक्षिण मुखसे यजुः, त्रैष्टुभछन्द, पंचदश स्तोम बृहत्साम और उक्थको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ पश्चिम मुखसे साम जगतीछन्द, पंचदश स्तोम तथा वैरूप और अतिरात्रको उत्पन्न किया ॥ ३३ ॥ उत्तर मुखसे इक्कीस अथर्व, आप्तोर्याम, आनुष्टुभ और वैराजको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ भगवान् विभुने कल्पके पहिले बिजली, वज्र, मेघ, रोहित

गौरजःपुरुषोमेषोअश्वाश्वतरगर्दभाः ॥ एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्चनिबोधमे ॥२९॥ श्वापदंद्विखुरंहस्तीवानराःपक्षिपंचमाः ॥ औदकाःपशवःषष्ठाःस तमास्तुसरीसृपाः॥३०॥गायत्रीञ्चतृचंचैवत्रिवृत्सामरथन्तरम्॥अग्निष्टोमंचयज्ञानांनिर्ममेप्रथमान्मुखात् ॥३१॥ यजूंषित्रैष्टुभंछन्दःस्तोमंपंचदशंतथा॥बृहत्सा मतथोक्तंचदक्षिणादसृजन्मुखात्॥३२॥सामानिजगतीच्छन्दःस्तोमंपंचदशंतथा ॥ वैरूपमतिरात्रंचनिर्ममेपश्चिमान्मुखात् ॥३३ ॥ एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्या माणमेवच ॥ आनुष्टुभंसवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥३४॥ विद्युतोऽशनिमेघाश्चरोहितेन्द्रधनूंषिच॥वयांसिचससर्जादौकल्पस्यभगवान्विभुः॥३५॥उच्चावचा निभूतानिगात्रेभ्यस्तस्यजज्ञिरे ॥ सृष्ट्वाचतुष्टयंपूर्वंदेवासुरपितृन्प्रजाः ॥३६॥ ततोऽसृजत्सभूतानिस्थावराणिचराणिच॥ यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान्॥३७॥नरकिन्नररक्षांसिवयःपशुमृगोरगान् ॥ अव्ययंचव्ययंचैवयदिदंस्थाणुजङ्गमम्॥ ३८ ॥ तेषांयेयानिकर्माणिप्राक्सृष्टेःप्रतिपेदिरे ॥ तान्येवप्रति पद्यन्तेसृज्यमानाःपुनःपुनः॥३९॥ हिंस्राहिंस्रेमृदुक्रूरेधर्माधर्मावृतानृते॥तद्भाविताःप्रपद्यन्तेतस्मात्तत्तस्यरोचते ॥४०॥ इन्द्रियार्थेषुभूतेषुशरीरेषुचसप्रभुः ॥ नानात्वंविनियोगंचधातैवव्यदधात्स्वयम् ॥४१॥

(लाल) इन्द्र धनुष, और पक्षियोंकी सृष्टि की है ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त देवता, असुर, पितृ और मनुष्योंके उत्पन्न होनेपर उनके शरीरसे नानाविध प्राणी उत्पन्न हुए हैं ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त स्थावर, जंगम, भूतगण, यक्ष, पिशाच, गंधर्व और अप्सरागण ॥ ३७ ॥ नर, किन्नर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और भुजंग इत्यादि संपूर्ण नश्वर और अविनश्वर स्थावर जंगम पदार्थ उत्पन्न हुए हैं ॥ ३८ ॥ जिनका जो कर्म है, वंह सृष्टिके प्रथमही निर्दिष्ट हुआहै, अतएव वह वारंवार उत्पन्न होकर उन्हीं सब कर्मोंको प्राप्त होतेहैं ॥ ३९ ॥ प्राणीगण पूर्व जन्ममें हिंसा, अहिंसा, मृदुता (कोमलता) क्रूरता, धर्म, अधर्म, सत्य और मिथ्या इनकी जिसप्रकार चिन्ता करते हैं पर जन्ममें उनको वही प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥ प्राणियोंमें इन्द्रियोंके

अर्थ और शरीरों में इन्द्रियाँ अनेक प्रकारके कर्मानुसार उस विभुने स्वयं निर्माण कीहै ॥ ४१ ॥ प्राणियों के नाम और रूप उनके कृत अकृत्य प्रपंच तथा देवताओं के कर्म आदिमें वेद शब्दसे निर्माण किये ॥ ४२ ॥ ऋषियों के नाम तथा देवताओंकी सृष्टि सब उन्होंने प्रलयके उपरान्त पूर्वके समान कीहै ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार ऋतुके बदलनेमें उसके लिङ्गादि दीखने लगतेहैं, ऐसेही युग युगमें आनेवाले भाव प्रगट होतेहैं ॥ ४४ ॥ इसप्रकार अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी प्रतिकल्पमेंही प्रलयान्तके समय सृष्टि करतेहैं ॥ ४५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे भाषाटीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

क्रौष्टुकिने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने अर्वाक्स्रोता मनुष्योंका जो विषय कहा अब फिर उसीको विस्तार सहित कहिये ॥ १ ॥ हे महामते ! जिस गुणयुक्त समस्त

नामरूपंचभूतानांकृत्यानांचप्रपंचनम् ॥ वेदशब्देभ्यएवादौदेवादीनांचकारसः ॥ ४२ ॥ ऋषीणांनामधेयानियाश्चदेवेषुसृष्टयः ॥ शर्वर्यन्तेप्रसूतानामन्येषां चददातिसः ॥४३॥ यथर्त्तावृतुलिङ्गानिनानारूपाणिपर्यये ॥ दृश्यन्तेतानितान्येवतथाभावायुगादिषु ॥ ४४ ॥ एवंविधाःसृष्टयस्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ शर्वर्यन्तेप्रबुद्धस्यकल्पेकल्पेभवन्तिवै ॥ ४५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसृष्टिप्रकरणेपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ अर्वाक्स्रोतस्तुकथितोभवतायस्तुमानुषः ॥ ब्रह्मन्विस्तरतोब्रूहिब्रह्मासमसृजद्यथा ॥ १ ॥ यथाचवर्णानसृजद्यद्गुणांश्चमहामते ॥ यच्चयेषांस्मृतंकर्मविप्रादीनांवदस्वतत् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ब्रह्मणःसृजतःपूर्वंसत्याभिध्यायिनस्तथा ॥ मिथुनानांसहस्रंतुमुखात्सोऽथासृजन्मुने ॥ ३ ॥ जातास्तेह्युपपद्यन्तेसत्त्वोद्रिक्ताःस्वतेजसः ॥ सहस्रमन्यद्वक्षस्तोमिथुनानांससर्जह ॥ ४ ॥ तेसर्वेरजसोद्रिक्ताःशुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः ॥ ससर्जान्यत्सहस्रंतुद्वंद्वानामूरुतःपुनः ॥ ५ ॥ रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ताईहाशीलास्तुतेस्मृताः ॥ पद्भ्यांसहस्रमन्यच्चमिथुनानांससर्जह ॥ ६ ॥ उद्रिक्तास्तमसासर्वेनिःश्रीकाह्यल्पतेजसः ॥ ततःसंघर्षमाणास्तेद्वन्द्वोत्पन्नास्तुप्राणिनः ॥ ७ ॥

वर्णोंकी जिस प्रकार सृष्टि हुई है और ब्राह्मणादिका जो जो कर्तव्य है वह सब कथा प्रकाशित कीजिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–सृष्टिके प्रथमही ध्यानशील ब्रह्माजीके मुखसे सहस्र मिथुनकी उत्पत्ति हुई है ॥ ३ ॥ यह सब तेजवान् और सत्वकी अधिकतावाले हुए, उनके वक्षस्थल (छाती) से अन्य सहस्र मिथुन उत्पन्न हुएथे ॥ ४ ॥ वह सब तेजस्वी और क्रोधितस्वभाव तथा रजोगुणी थे, उनके ऊरुदेशसे जो सहस्र मिथुनकी उत्पत्ति हुई ॥ ५ ॥ वह रज और तमोगुणोद्रिक्त तथा ईर्षायुक्त हुए और दोनों पैरोंसे जो सहस्र मिथुन हुये ॥६॥ वह तमोगुणी और लक्ष्मीरहित निस्तेज हुए, फिर संघर्षणसे द्वन्द्वरूप प्राणीहुये ॥ ७ ॥

और वह द्वन्द्वोत्पन्न प्राणी प्रसन्न चित्तसे परस्पर मैथुन करनेमें प्रवृत्त हुए तबसे इस कल्पमें इस भांति मिथुनकी उत्पत्ति हुई ॥ ८ ॥ पहिले स्त्रियोंका प्रतिमासमें रजोधर्म नहीं होताथा, इस कारण वह दूसरे समयमें मैथुन करकेभी ॥ ९ ॥ सन्तान उत्पन्न नहीं करतीं थीं, केवल अवस्थाके अन्तमें एकवार सन्तान होतीथी (कुलिक और कुलका यह अन्त अवस्थामें प्रगट होतेथे) तबसे इस कल्पमें मिथुनकी इसी प्रकार उत्पत्ति होती आतीहै ॥ १० ॥ जब ब्रह्माजीने प्रजाकी चिन्ता करी, तब उनके मनसे एक साथ जो पंचमहाभूत और शब्दादि विषय उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ इसीको प्रजापति की मानसी सृष्टि कहते हैं, इस समय उसी सृष्टिसे जगत् परिपूर्ण होरहाहै ॥ १२ ॥ पूर्वयुगमें प्रजागण अल्प शीतोष्ण होकर सरित् सरोवर और समुद्रके समीप तथा पर्वतोंमें

अन्योन्यंहृच्छयाविष्टमैथुनायोपचक्रमुः ॥ ततःप्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानांहिसम्भवः ॥ ८ ॥ मासिमास्यार्तवंयत्तुनतदासीत्तुयोषिताम् ॥ तस्मात्तदानसुषुवुःसेवितैरपिमैथुनैः ॥९॥ आयुषोन्तेप्रसूयन्तेमिथुनान्येवताःसकृत् ॥ (कुलिकंकुलिकाचैवउत्पद्यंतेमुमूर्षतां)॥ ततःप्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानांहिसम्भवः ॥१०॥ ध्यानेनमनसातासांप्रजानांजायतेसकृत् ॥ शब्दादिर्विषयःशुद्धःप्रत्येकंपंचलक्षणः ॥११॥ इत्येषामानुषीसृष्टिर्यापूर्वंवैप्रजापतेः ॥ तस्यान्ववायसम्भूतायैरिदंपूरितंजगत् ॥१२॥ सरित्सरःसमुद्रांश्चसेवन्तेपर्वतानपि ॥ तास्तदाह्यल्पशीतोष्णायुगेतस्मिंश्चरन्तिवै ॥१३॥ तृप्तिंस्वाभाविकींप्राप्ताविषयेषुमहामते ॥ नतासांप्रातिघातोऽस्तिनद्वेषोनापिमत्सरः ॥१४॥ पर्वतोदधिसेविन्योह्यनिकेतास्तुसर्वशः ॥ तावैनिष्कामचारिण्योनित्यंमुदितमानसाः ॥१५॥ पिशाचोरगरक्षांसितथामत्सरिणोजनाः ॥ पशवःपक्षिणश्चैवनक्रामत्स्याःसरीसृपाः ॥१६॥ अवारकाह्यण्डजावातेह्यधर्मप्रसूतयः ॥ नमूलफलपुष्पाणिनार्तवावत्सराणिच ॥१७॥ सर्वकालसुखःकालोनात्यर्थघर्मशीतता ॥ कालेनगच्छतातेषांपित्रासिद्धिरजायत ॥ १८॥ ततश्चतेषांपूर्वाह्णेमध्याह्नेचवितृप्तता ॥ पुनस्तथेच्छतांतृप्तिरनायासेनसाभवत् ॥ १९ ॥

विचरण करतेथे ॥ १३ ॥ हे महामते ! वह उपभोग्य विषयमें स्वाभाविक तृप्तिलाभ करते और उनमें किसी प्रकारका विघ्न, द्वेष वा मत्सरादि नहीं था ॥ १४ ॥ वह घर न बनाकर पर्वत और समुद्रके तटमें वास करते एवं सदा निष्कामचारी और प्रसन्नचित्त थे ॥ १५ ॥ पिशाच उरग, राक्षस, अभिमानी मनुष्य, पशु, पक्षी, नक्र (नाके) मत्स्य, विच्छू ॥ १६ ॥ अवारक, (प्राणी विशेष) और अंडज प्राणी अधर्मसे उत्पन्न हुए हैं । तिस काल मूल फल पुष्प ऋतु और वर्ष इत्यादि कछ नहीं था ॥ १७ ॥ तिस समय अत्यन्त गरमी वा अत्यन्त शीत कुछ नहीं था, सर्वदाही अत्यन्त सुखका समय था। कालक्रमसे उनको अद्भुत सिद्धि उत्पन्न हुई ॥ १८ ॥ पूर्वाह्णमें वा मध्याह्नमें उनकी तृप्ति न होनेपर इच्छाकरनेसे सहजमेंही वह तृप्त होजाते ॥ १९ ॥

और इच्छा करतेही मनसे उनका मनोरथ प्रगट हो जाताथा तब जलकी सूक्ष्मताके कारण उनकी नानाप्रकार रसोल्लासवती नामक अन्य सिद्धि ॥ २० ॥ उपस्थित होकर संपूर्ण अभिलाषा पूर्ण करती । वह 'संस्कारहीन होकरभी' स्थिरयौवनवाले थे ॥ २१ ॥ संकल्पके विनाही उनकी मिथुन प्रजा उत्पन्न होती, यह मिथुन प्रजा जिस प्रकार एक संग उत्पन्न होती, वैसेही रूपादिकी समता लाभ करके एक संगही प्राण त्याग करती ॥ २२ ॥ उनकी परस्परके प्रति अभिलाषा वा द्वेष कुछ नहीं था । सबही समान भावसे समय बितातेथे, उनमें कोई उत्तम वा अधम नहीं था क्योंकि सब आयु और रूपादिमें समान भावसे रहतेथे ॥ २३ ॥ यह मिथुन प्रजा मनुष्य परिमाणके चारहजार वर्ष जीवित रहती और विनाही क्लेश

इच्छतांचतथायासोमनसःसमजायत ॥ अपांसौक्ष्म्यंततस्तासांसिद्धिर्नाम्नारसोल्लसा ॥ २० ॥ समजायतचैवान्यासर्वकामप्रदायिनी ॥ असंस्कार्यैःशरीरैश्चप्रजास्ताःस्थिरयौवनाः ॥ २१ ॥ तासांविनातुसंकल्पंजायन्तेमिथुनाःप्रजाः ॥ समंजन्मचरूपंचम्रियन्तेचैवताःसमम् ॥ २२ ॥ अनिच्छाद्वेषसंयुक्तावर्तन्तेतुपरस्परम् ॥ तुल्यरूपायुषःसर्वाअधमोत्तमतांविना ॥ २३ ॥ चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणांमानुषाणितु ॥ आयुःप्रमाणंजीवन्तिनचक्लेशाद्विपत्तयः ॥ २४ ॥ क्वचित्क्वचित्पुनःसाभूत्क्षितिर्भाग्येनसर्वशः ॥ कालेनगच्छतानाशमुपयान्तियथाप्रजाः ॥ २५ ॥ तथाताःक्रमशोनाशंजग्मुःसर्वत्रसिद्धयः ॥ तासुसर्वासुनष्टासुनभसःप्रच्युतारसाः ॥ २६ ॥ पयसःकल्पवृक्षास्तेसंभूतागृहसंस्थिताः ॥ सर्वेप्रत्युपभोगाश्चतासांतेभ्यःप्रजायत ॥ ॥ २७ ॥ वर्तयन्तिस्मतेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखेतदा ॥ ततःकालेनवैरागस्तासामाकस्मिकोऽभवत् ॥ २८ ॥ मासिमास्यार्तवोत्पत्त्यागर्भोत्पत्तिःपुनःपुनः ॥ रागोत्पत्त्याततस्तासांवृक्षास्तेगृहसंस्थिताः ॥ २९ ॥ प्रणेशुरपरेचासंश्चतुःशाखामहीरुहाः ॥ वस्त्राणिचप्रसूयन्तेफलेष्वाभरणानिच ॥ ३० ॥

तथा विपत्तिके प्राणत्याग करती थीं ॥ २४ ॥ दैववशतः पृथ्वी किसी किसी स्थानमें इसप्रकार होजाती कि जिससे प्रजा क्रमानुसार जीवने विसर्जन करती॥ २५॥ तब क्रमानुसार वह सब सिद्धियें नष्ट होगई, उनके नष्ट होनेपर आकाशसे रस गिरने लगे ॥ २६ ॥ जल दूधकी प्राप्ति हुई और घरोंमें कल्पवृक्ष भी उत्पन्न होगये; इन कल्पवृक्षोंसेही उनका समस्त भोग प्राप्त होने लगा ॥ २७ ॥ त्रेतायुगके प्रारंभ में मनुष्यगण इसप्रकार जीवनयात्रा निर्वाह करतेथे; अनन्तर कालवशतः उनको आकस्मिक राग होगया॥ २८॥ तब इस प्रकार रागकी उत्पत्तिसे उनकी मास मासमें ऋतु और इसी कारण वारंवार गर्भोत्पत्ति होने लगी और उनके घरों में स्थित कल्पवृक्षोंमें राग उत्पन्न होने लगा ॥ २९॥ तब वह कल्पवृक्ष नष्ट होगये और चार शाखावाले दूसरे वृक्ष उत्पन्न होगये, उनके फलोंमें वस्त्र और आभरण लगतेथे॥ ३०॥

और उन फलोंके प्रत्येक पुटमें सुन्दर गंध और वर्णयुक्त बलकारक विना मक्खियोंके मधु उत्पन्न होताथा ॥ ३१ ॥ त्रेतायुगके प्रारंभमें यह मधुपान करके उस समयकी प्रजा जीवन धारण करतीथीं अनन्तर कालक्रमसे वह अत्यन्त लोभी होकर ॥ ३२ ॥ ममतायुक्त मनसे उन सब वृक्षोंको ग्रहण करनेलगे, तब इस अपचारसे सब वृक्ष नष्ट होगये ॥ ३३ ॥ (क्योंकि वृक्षोंकी जड़ोंमें रहनेकी जगह शाला बना लीथी) अनन्तर शीत, उष्ण, क्षुधा, इत्यादि समस्त द्वन्द्व उत्पन्न हुए, उन सब द्वन्द्वको निवारण करनेके लिये उन्होंने पाहिले पुर बनाये ॥ ३४ ॥ तब मरुभूमि पर्वत और गुफा इत्यादिमें सब दुर्ग निर्मित होनेपर वह वृक्षोंके, पर्वतोंके और जल इत्यादिके दुर्गमें वास करने लगे ॥ ३५ ॥ और अपनी अपनी अंगुली आदिके परिमाणसे समस्त कृत्रिम दुर्ग परिमित करके

तेष्वेवजायतेतेषांगन्धवर्णरसान्वितम् ॥ अमाक्षिकंमहावीर्यंपुटकेपुटकेमधु ॥ ३१ ॥ तेनतावर्तयन्तिस्ममुखेत्रेतायुगस्यवै ॥ ततःकालान्तरेणैवपुनर्लोभान्वितास्तुताः॥३२॥ वृक्षास्ताःपर्यगृह्णन्तममत्वाविष्टचेतसः ॥ नेशुस्तेनापचारेणतेहितासांमहीरुहाः ॥३३॥ (मूलेषुचापरंवासंचक्रुःशालामहीरुहाम् ॥) ततोद्वन्द्वान्यजायन्तशीतोष्णक्षुन्मुखानिवै ॥ तास्तद्वन्द्वोपघातार्थंचक्रुःपूर्वंपुराणितु ॥ ३४ ॥ मरुधन्वसुदुर्गेषुपर्वतेषुदरीषुच ॥ संश्रयन्तिचदुर्गाणिवार्क्षंपार्वतमौदकम् ॥३५॥ कृत्रिमंचतथादुर्गंमित्वामित्वात्मनोऽगुलैः ॥ मानार्थानिप्रमाणानितास्तुपूर्वंप्रचक्रिरे॥३६॥परमाणुःपरंसूक्ष्मंत्रसरेणुर्महीरजः ॥ वालाग्रंचैवलिक्षांचयूकांचाथयवोदरम् ॥ ३७ ॥ क्रमादष्टगुणान्याहुर्यवानष्टौतथांगुलम् ॥ षडंगुलंपदंतच्चवितस्तिर्द्विगुणंस्मृतम् ॥३८॥ द्विवितस्तीतथाहस्तोब्राह्म्यतीर्थादिवेष्टितः ॥ चतुर्हस्तंधनुर्दण्डोनाडिकायुगमेवच ॥ ३९ ॥ क्रोशोधनुःसहस्रेद्वेगव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम् ॥ प्रोक्तंचयोजनंप्राज्ञैःसंख्यानार्थमिदंपरम् ॥ ४० ॥ चतुर्णामथदुर्गाणांस्वसमुत्थानित्रीणितु ॥ चतुर्थंकृत्रिमंदुर्गंतच्चक्रुर्यत्नतस्तुवै ॥ ४१ ॥

परिमाण निरूपणके लिये प्रमाण नियत किया ॥ ३६ ॥ अति सूक्ष्म प्रमाणार्थ परमाणु जालीके छिद्रोंमें किरण पड़नेसे सूक्ष्म रज दीख पड़ती है, उसके तीसरे भागको परमाणु कहतेहैं त्रसरेणु (तीस परमाणुका एक त्रसरेणु) और धूलि और स्थूल प्रमाणार्थ केशाग्र (तीस त्रसरेणुका एक केशाग्र) निष्क (तीसकेशाग्रका एक निष्क) यूका (तीस निष्कका एक यूका) और यव स्थिर हुआ है ॥ ३७ ॥ आठ यवमें एक अंगुल होताहै, छः अंगुलमें एक पद, दो पदमें एक वितस्ति (विलस्त) ॥ ३८ ॥ दो विलस्तमें एक हाथ, ब्राह्मतीर्थपर्यन्त वेष्टित चार हाथमें एक धनुर्दंड वा नाड़िका युग ॥ ३९ ॥ दो हजार धनुमें एक गव्यूति (दोकोश) और चार गव्यूतिमें एक योजन होताहै। बुद्धिमान् पुरुषोंने संख्या निरूपण करनेके लिये इस प्रकार निर्द्धारण कियाहै ॥ ४० ॥ पूर्वोक्त चार प्रकारके

दुर्गमें तीन स्वाभाविक हैं, अपर कृत्रिम अर्थात् मनुष्यकृत है ? यही दुर्गकर्त्तव्य है ॥४१॥ हे द्विज ! इसके पीछे उन्होंने उन सब स्थानोंमें पुर, खेटक, (छोटे ग्राम) द्रोणीमुख, शाखानगर, खर्वटक, द्रमी ॥ ४२ ॥ ग्राम और संघोष इन सबको वसा करके उन सबमें फिर पृथक्पृथक् (निवासस्थान) बनाये जिनके चारों ओर ऊंची दीवारें और परिखावरण खाई थीं ॥ ४३ ॥ जो लम्बाईमें दोकोश और जो अष्ट भागमें चौड़ा है, उसको पुर कहतेहैं । इस पुरका पूर्व और उत्तर भाग जलद्वारा प्लावित होनेसेःऔर उसमें विशुद्ध वंश निर्मित बहिर्गम (सेतु) होनेसे वह श्रेष्ठ होताहै ॥ ४४ ॥ पुरके आधे लक्षणयुक्त स्थानको खेटक, उससे आधे लक्षणयुक्तको खर्वटक और पुरके अष्ट भाग लक्षणाक्रान्तको द्रोणीमुख कहतेहैं ॥ ४५ ॥ जिस पुरमें प्राकार है और परिखा नहीं है, उसको वर्म्मवत् पुर कहते हैं जिसमें मंत्री और सामन्तादिक वास करते हों, और उसमें नानाप्रकार भोगके पदार्थ भी हों उसको शाखानगर कहतेहैं ॥

पुरंचखेटकंचैवतद्वद्द्रोणीमुखंद्विज ॥ शाखानगरकंचापितथाखर्वटकंद्रमी ॥ ४२ ॥ ग्रामसंघोषविन्यासंतेषुचावसथान्पृथक् ॥ सोत्सेधवप्रकारंचसर्वतःपरिखावृतम् ॥ ४३ ॥ योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतंपुरम् ॥ प्रागुदक्प्रवणंशस्तंशुद्धवंशबहिर्गमम् ॥ ४४ ॥ तदर्द्धेनतथाखेटंतत्पादेनचखर्वटम् ॥ न्यूनंद्रोणीमुखंतस्मादष्टभागेनचोच्यते ॥ ४५ ॥ प्राकारपरिखाहीनंपुरंखर्वटमुच्यते ॥ शाखानगरकंचान्यन्मन्त्रिसामन्तभुक्तिमत् ॥ ४६ ॥ तथाशूद्रजनप्रायाःस्वसमृद्धकृषीवलाः ॥ क्षेत्रोपभोग्यभूमध्येवसतिर्ग्रामसंज्ञिता ॥ ४७ ॥ अन्यस्मान्नगरादेर्याकार्यमुद्दिश्यमानवैः ॥ क्रियतेवसतिःसावैविज्ञेयावसतिर्नरैः ॥ ४८ ॥ दुष्टप्रायोविनाक्षेत्रैःपरभूमिचरोबली ॥ ग्रामएवद्रमीसंज्ञोराजवल्लभसंश्रयः ॥ ४९ ॥ शकटारूढभाण्डैश्चगोपालैर्विपणंविना ॥ गोसमूहैस्तथाघोषोयत्रेच्छाभूमिकेतनः ॥५० ॥ तएवंनगरादींस्तुकृत्वावासार्थमात्मनः ॥ निकेतनानिद्वंद्वानांचक्रुश्चोपशमायवै ॥ ५१ ॥

॥ ४६ ॥ जिस स्थानमें शूद्रगण और स्वीय स्वीय समृद्धियुक्त किसान वास करते हैं और जिसके चारों ओर खेत तथा उपभोग्य भूमि (उद्यानादि) विद्यमान हैं, उसको ग्राम कहते हैं ॥ ४७ ॥ कोई कार्य उद्देश्य करके अन्यान्य नगरादिसे मनुष्य आनकर वास करतेहैं, उसको वसति कहते हैं ॥ ४८ ॥ जहां के सब मनुष्य दुष्टप्राय बलवान् और अपना क्षेत्र न होने पर भी पराया क्षेत्र ग्रहण करते हैं और जहां राजप्रिय मनुष्य वास करते हैं, उस ग्रामको द्रमी कहते हैं ॥ ॥ ४९ ॥ गोपाल लोग जहां अपने बर्तन भांडा गाडीपर लादकर रखते हैं और जहां गायें अधिक वास करतीं हैं, एवं जहां बाजार हाट न हो और अपनी इच्छानुसार विना धन धरती मिलती हो, उसको घोष कहते हैं ॥५०॥ उन्होंने इस प्रकार अपने रहनेके लिये नगरादि निर्माण करके समस्त द्वन्द्व (दुःख) निवारणके अर्थ

और व्यापारादि करनेके लिये घर बनाये ॥ पहिले समस्त वृक्ष जिस प्रकार उनके गृहतुल्य थे, उनको स्मरण करके उसी प्रकार सब गृह निर्माण किये ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ वृक्षकी शाखाएँ जिस भांति एकके पीछे एक नीचे और ऊंचे भावसे अवस्थित होती हैं, इसी भाँति उन्होंने समस्त गृह बनाये ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तम ! पूर्वमें कल्पवृक्षकी जो सब शाखाएं थीं;उन सब शाखाओंने इस समय उनके सब गृहोंका शालात्व लाभ किया अर्थात् वैसेही ढालू और ऊँचे शिखरके घर किये ॥५४॥ जब इन शालाओंने उनके शीत उष्ण इत्यादि सब दुःखोंका विनाश किया, तब वह सब जीविका निर्वाहकी चिन्ता करने लगे,क्योंकि तिसकाल मधुके सहित समस्त कल्पवृक्ष नष्ट होगयेथे॥५५॥तब वह समस्त प्रजा विषादसे व्याकुल और भूंख प्याससे व्याकुल अत्यन्त कातर होगई।उसी समय त्रेतायुगके प्रारम्भमें उनकी इसप्रकार सिद्धि उत्पन्न

गृहाकारायथापूर्वंतेषामासन्महीरुहाः ॥ तथासंस्मृत्यतत्सर्वंचक्रुर्वेश्मानिताःप्रजाः ॥ ५२ ॥ वृक्षस्यैवङ्गताःशाखास्तथैवंचपरागता ॥ नताश्चैवोन्नताश्चैवतद्वच्छाखाःप्रचक्रिरे ॥ ५३ ॥ याःशाखाःकल्पवृक्षाणांपूर्वमासन्द्विजोत्तम ॥ ताएवशाखागेहानांशालात्वंतेनतासुतत् ॥५४ ॥ कृत्वाद्वंद्वोपघातंतेवातोंपायमचिंतयन् ॥ नष्टेषुमधुनासार्द्धंकल्पवृक्षेष्वशेषतः ॥५५॥ विषादव्याकुलास्तावैप्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः ॥ ततःप्रादुर्बभौतासांसिद्धिस्त्रेतामुखेतदा ॥ ॥ ५६ ॥ वार्त्तास्वसाधिताह्यन्यावृष्टिस्तासांनिकामतः ॥ तासांवृष्ट्युदकानीहयानिनिम्नगतानिवै ॥ ५७ ॥ वृष्ट्यावरुद्धैरभवन्स्रोतःखातानिनिम्नगाः ॥ येपुरस्तादपांस्तोकाआपन्नाःपृथिवीतले ॥५८॥ ततोभूमेश्चसंयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन् ॥ अफालकृष्टाश्चानुप्ताग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥५९॥ ऋतुपुष्पफलाश्चैववृक्षागुल्माश्चजज्ञिरे ॥ प्रादुर्भावस्तुत्रेतायामाद्योऽयमौषधस्यतु ॥ ६० ॥ तेनौषधेनवर्तन्तेप्रजास्त्रेतायुगेमुने ॥ रागलोभौसमासाद्यप्रजाश्चाकस्मिकौतदा ॥ ६१ ॥

हुईथी ॥ ५६ ॥ तिस समय उनकी इच्छा होनेपरही बहुत वर्षा होती, वह वर्षाके समस्त जल निम्नगामी होकर ॥ ५७ ॥ रुकाहुआ समस्त वृष्टिका जल स्रोतद्वारा खात (गहराई) करता हुआ निम्नगा (नदी)रूपमें परिणत हुआ । पहिले जो सामान्य जल पृथ्वीमें गिराथा ॥५८॥ इस समय वही सब जल मिट्टीके संयोगसे दोषरहित होगया इसमें ग्राम्य और आरण्य जो चौदह वृक्ष एवं समस्त गुल्म विनाही जोते बोये उत्पन्न हुएथे ॥ ५९॥ वह सब ऋतुकालमें फल और पुष्प उत्पन्न करने लगे॥ इसप्रकारसे त्रेतायुगके प्रारंभमें संपूर्ण औषधी उत्पन्न हुई ॥ ६० ॥ हे मुने ! प्रजागण अकस्मात् राग और लोभको प्राप्त होकर उन औषधियोंसे उत्पन्न पदार्थों के

द्वारा त्रेतायुगके प्रारम्भमें जीवन धारण करने लगे ॥ ६१ ॥ तदनन्तर जिससे अपने शरीर अतिशय बलवान् हों, इसकारण नदी, क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और समस्त औषधियोंका आश्रय करने लगे ॥ ६२ ॥ हेद्विजवर ! इसी दोषसे देखते देखते वह सब औषधीं नष्ट होगईं अर्थात् हे महामते ! पृथ्वीने एक कालमेंही उन सब औषधियोंको ग्रासकरलिया ॥ ६३ ॥ इसप्रकार सब औषधियोंके नष्ट होनेपर फिर संपूर्ण प्रजा विभ्रान्त होगई और भूंखसे आतुर होकर परमेष्ठी ब्रह्माजीकी शरण ग्रहण करी ॥ ६४ ॥ उन विभु भगवान् ब्रह्माजीने पृथ्वीको सम्यक् प्रकार ग्रासकारिणी जान सुमेरुपर्वतको बछडा बनाकर दुहा ॥ ६५ ॥ तब भूमि पृथ्वीतलमें समस्त धान्य दुहाने लगी उससे सब बीज उत्पन्न हुए एवं ग्राम और वनके वृक्ष उत्पन्न हुए ॥ ६६ ॥ सत्रह प्रकारके फल पकनेपर सूखनेवाली समस्त औषधी

ततस्ताःपर्यगृह्णन्तनदीक्षेत्राणिपर्वतान् ॥ वृक्षगुल्मौषधीश्चैवमात्सर्याच्चयथाबलम् ॥ ६२ ॥ तेनदोषेणतानेशुरोषध्योमिषतांद्विज ॥ अग्रसद्भूर्युगपत्तास्तदौषध्योमहामते ॥ ६३ ॥ पुनस्तासुप्रणष्टासुविभ्रान्तास्ताःपुनःप्रजाः ॥ ब्रह्माणंशरणंजग्मुःक्षुधार्त्ताःपरमेष्ठिनम् ॥ ६४ ॥ सचापितत्त्वतोज्ञात्वातदाग्रस्तांवसुन्धराम् ॥ वत्संकृत्वासुमेरुंतुदुदोहभगवान्विभुः ॥ ६५ ॥ दुग्धेयंगौस्तदातेनसस्यानिपृथिवीतले ॥ जज्ञिरेतानिवीजानिग्राम्यारण्यास्तुताःपुनः ॥ ६६ ॥ ओषध्यःफलपाकान्तागणाःसप्तदशस्मृताः ॥ व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिलाः ॥ ६७ ॥ प्रियङ्गवःकोविदाराःकोरदूषाःसतीनकाः ॥ माषामुद्गामसूराश्चनिष्पावाःसकुलत्थकाः ॥ ६८ ॥ आढक्यश्चणकाश्चैवशणाःसप्तदशस्मृताः ॥ इत्येताओषधीनांतुग्राम्याणांजतयःपुरा ॥ ६९ ॥ ओषध्योयज्ञियाश्चैवग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिलाः ॥ ७० ॥ प्रियंगुषष्ठावैह्येतेसप्तमास्तुकुलत्थकाः ॥ श्यामाकास्त्वथनीवारायत्तिलाःसगवेधुकाः ॥ ७१ ॥ कुरुविन्दामर्कटकास्तथावेणुयवाश्चये ॥ ग्राम्यारण्याःस्मृताह्येताओषध्यश्चचतुर्दश ॥ ७२ ॥

उत्पन्न हुई उनके नाम व्रीहि (चावल धान्य) यव गेहूं कोदों तिल ॥ ६७ ॥ प्रियङ्गु फलिनी राई कोविदार लालकचनार कोदो मटर उरद मूंग मसूर लोबिया कुलथी ॥ ६८ ॥ आढक (अरहर) और चने पहिले सब ग्राम औषधियोंकी यह सत्रह प्रकार जाति उत्पन्न हुई ॥ ६९ ॥ ग्राम और वनकी जो चौदह प्रकार औषधी हैं वह यज्ञके व्यवहारमें आतीहैं व्रीहि (धान्य) यव गेहूं अणु (साँवा) तिल ॥ ७० ॥ प्रियङ्गु (फलिनी) कुलथी श्यामाक (सामा) अलसी जर्त्तिल (तिल) गवेधुक गरहेहुआ धान्य ॥ ७१ ॥ कुरुविन्द (कुलथी) मर्कटक धान्यविशेष और वेणु यव बाँसके चावल यह चौदह प्रकारकी औषधी ग्रामारण्य हैं ॥ ७२ ॥

इसप्रकार जब वह सब श्रेष्ठ औषधियें फिर नहीं उपजीं तब ब्रह्माजी उनकी वृद्धिके लिये जीवनोपायकी चिन्ता करने लगे ॥ ७३ ॥ तब भगवान् स्वयम्भू ब्रह्माजीने कर्मसे सिद्ध होनेवाली हस्तसिद्धि करी तबसेही कृष्टपच्या औषधी (जोतनेसे उत्पन्न होनेवाली उत्पन्न हुई) ॥ ७४ ॥ इस प्रकार उनके जीवनका उपाय निर्द्धारित होनेपर स्वयं प्रभु ब्रह्माजीने न्यायानुसार और गुणानुसार मर्यादा स्थापन करी ॥ ७५ ॥ हे धार्मिकश्रेष्ठ ! तब समस्तवर्ण और आश्रमोंका धर्म एवं धर्मार्थपालक सर्व वर्णोत्पन्न लोकों का धर्म निरूपण किया ॥ ७६ ॥ क्रियानिष्ठ ब्राह्मणोंके लिये उन्हों ने प्राजापत्यस्थान नियत किया संग्राममें नहीं भागनेवाले क्षत्रियोंके निमित्त ऐन्द्रस्थान ॥ ७७ ॥ स्वधर्मपरायण वैश्यों के लिये मारुतस्थान और सेवापरायण शूद्रों के लिये गान्धर्वस्थानकी कल्पना करी ॥ ७८ ॥ ऊर्ध्वरेता अठासी हजार

यदाप्रसृष्टाओषध्योनप्ररोहन्तिताःपुनः ॥ ततःसतासांवृद्ध्यर्थंवार्त्तोपायंचकारह ॥ ७३ ॥ ब्रह्मास्वयम्भूर्भगवान्हस्तसिद्धिंचकर्मजाम् ॥ ततःप्रभृत्यथौषध्यःकृष्टपच्यास्तुजज्ञिरे ॥ ७४ ॥ संसिद्धायांतुवार्त्तायांततस्तासांस्वयंप्रभुः ॥ मर्यादांस्थापयामासयथान्यायंयथागुणम् ॥ ७५ ॥ वर्णानामाश्रमाणांचधर्मान्धर्मभृतांवर ॥ लोकानांसर्ववर्णानांसम्यग्धर्मार्थपालिनाम् ॥ ७६ ॥ प्राजापत्यंब्राह्मणानांस्मृतंस्थानंक्रियावताम् ॥ स्थानमैन्द्रंक्षत्रियाणांसंग्रामेष्वपलायिनाम् ॥ ७७ ॥ वैश्यानांमारुतंस्थानंस्वधर्ममनुवर्तताम् ॥ गांधर्वंशूद्रजातीनांपरिचर्यानुवर्तिनाम् ॥ ७८ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ स्मृतंतेषान्तुयत्स्थानंतदेवगुरुवासिनाम् ॥ ७९ ॥ सप्तर्षीणांतुयत्स्थानंस्मृतंतद्वैवनौकसाम् ॥ प्राजापत्यंगृहस्थानांन्यासिनांब्रह्मणःक्षयम् ॥ योगिनाममृतंस्थानमितिवैस्थानकल्पना ॥ ८० ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसृष्टिप्रकरणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोऽभिध्यायतस्तस्यजज्ञिरेमानसीःप्रजाः ॥ तच्छरीरसमुत्पन्नैःकार्यैस्तैःकारणैःसह ॥ १ ॥ क्षेत्रज्ञाःसमवर्तन्तगात्रेभ्यस्तस्यधीमतः ॥ तेसर्वेसमवर्त्तन्तये मयाप्रागुदाहृताः ॥ २ ॥

ऋषियोंके जो स्थान कल्पित हुएहैं, गुरुके घरमें वास करनेवाले ब्राह्मणोंके लिये भीवही स्थान कल्पित हुए ॥ ७९ ॥ जो स्थान सप्तर्षियोंके निमित्त निर्दिष्ट है, वनवासियोंके लिये भी वही स्थान कल्पित हुए । गृहस्थके लिये प्राजापत्य, संन्यासियोंके लिये अक्षय ब्रह्मपद और योगियोंके लिये अमृतमोक्षस्थान कल्पित हुआ ॥ ८० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, अनन्तर ब्रह्माजीके पुनर्वार चिन्ता करनेपर उनके शरीरसे कार्य और कारणके सहित मानसी प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ उन बुद्धिमान् ब्रह्माजीकेगात्रसे समस्त क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए । इसके अतिरिक्त और जो उत्पन्न हुए पूर्व में उनका

उल्लेख कियाहै ॥ २ ॥ देवतासे स्थावर पर्यन्त सबही त्रिगुणयुक्त हैं। इसप्रकार ब्रह्माजीने स्थावर और जंगम चराचर जीवोंको उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ फिर जब बुद्धिमान् ब्रह्माजीने अपनी सब प्रजाको बढ़ता हुआ नहीं देखा, तब अपनेही समान मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ यह ब्रह्माके मानसी पुत्र हुए ॥ ५ ॥ यह नौ ब्रह्माके मानस पुत्र पुराणोंमें निश्चय किये गये हैं। तब फिर उन्होंने क्रोधात्मक रुद्रको उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ इसके पीछे संकल्प और धर्मको उत्पन्न किया। जोकि प्रथमसेही प्रगट हैं और सनन्दनादिकोंको स्वयम्भूकी पूर्व सृष्टिमेंही उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ यह सब भविष्यत् ज्ञानसंपन्न, वीतराग मत्सरहीन, निरपेक्ष और समाधिमान् हुए, प्रजा सृष्टि विषयमें सज्जित न हुए ॥ ८ ॥ उनके सृष्टि विषयमें

देवाद्याःस्थावरांताश्चत्रैगुण्यविषयाःस्मृताः ॥ एवंभूतानिसृष्टानिस्थावराणिचराणिच ॥ ३ ॥ यदास्यताःप्रजाःसर्वानव्यवर्द्धतधीमतः ॥ अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥ ४ ॥ भृगुंपुलस्त्यंपुलहंक्रतुमङ्गिरसंतथा ॥ मरीचिंदक्षमत्रिंचवसिष्ठंचैवमानसम् ॥५॥ नवब्रह्मणइत्येतेपुराणेनिश्चयङ्गताः॥ ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मारुद्रंक्रोधात्मसम्भवम् ॥ ६ ॥ सङ्कल्पंचैवधर्मंचपूर्वेषामपिपूर्वजम् ॥ सनन्दनादयोयेचपूर्वंसृष्टाःस्वयंभुवा ॥ ७ ॥ नतेलोकेषुसज्जन्तो निरपेक्षाःसमाहिताः ॥ सर्वेतेऽनागतज्ञानावीतरागाविमत्सराः ॥ ८ ॥ तेष्वेवंनिरपेक्षेषुलोकसृष्टौमहात्मनः ॥ ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः ॥ ॥ ९ ॥ अर्द्धनारीनरवपुःपुरुषोऽतिशरीरवान् ॥ विभजात्मानमित्युक्त्वासतदान्तर्दधेततः ॥ १० ॥ सचोक्तोवैपृथक्स्त्रीत्वं पुरुषत्वंतथाकरोत् ॥ बिभेदपुरुषत्वंचदशधाचैकधातुसः ॥ ११ ॥ सौम्यासौम्यैस्तथाशान्तैःपुंस्त्वंस्त्रीत्वंचसप्रभुः ॥ बिभेदबहुधादेवःपुरुषैरसितैःसितैः ॥ १२ ॥ ततोब्रह्मात्मसम्भूतंपूर्वंस्वायम्भुवंप्रभुः ॥ आत्मनःसदृशंकृत्वाप्रजापाल्येमनुंद्विज ॥ १३ ॥

इस प्रकार निरपेक्ष होनेपर महात्मा ब्रह्माजीको अत्यन्त क्रोध उदय हुआ। उसीक्रोधसे (भयंकर देहयुक्त) सूर्यके समान तेजस्वी एक पुरुषने जन्म ग्रहण किया ॥ ॥ ९ ॥ उसके देहका आधाभाग पुरुष और आधाभाग नारी था तदनन्तर 'अपनेदेहको विभक्तकर' यह कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये ॥ १० ॥ उस पुरुषने भी ब्रह्माजीकी इसप्रकार आज्ञा पाय देहको दो भागमें विभक्त किया। उसमें स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक् प्रगट हुआ तिनमें जो भाग पुरुषाकार था, उसको सौम्य, असौम्य, शान्त, असित और सित इत्यादि भेदसे ग्यारह भागमें विभक्त किया ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे द्विज ! अनन्तर प्रभु ब्रह्माजीने उस पूर्वोत्पन्न

अपनी समान पुरुषका "स्वायंभुवमनु" नाम रखकर प्रजापालक किया ॥ १३ ॥ और तपस्याद्वारा जिसने अपने पापोंको नष्ट किया उस कामिनीको 'शतरूपा' नाम प्रदान किया । देव विभु स्वायम्भुव मनुने शतरूपाको अपनी पत्नी बनाया ॥ १४ ॥ उस पुरुषसे शतरूपाके दो पुत्र उत्पन्न हुए । उन दोनोंका नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद हुआ । यह दोनों अपने अपने कर्मसे विख्यात है ॥ १५ ॥ इनके अतिरिक्त जो शतरूपाके दो कन्या उत्पन्न हुईं, उन दोनोंका नाम आकूती और प्रसूती हुआ । पिता स्वायंभुवने प्रसूतीनामक कन्या दक्षको और आकूतीनामक कन्याको प्रजापति रुचिके ॥ १६ ॥ हाथमें समर्पण किया हे महाभाग ! उनके जो एक पुत्र और एक कन्याने जन्म ग्रहण किया, उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा हुआ । उन दोनोंने दाम्पत्यभाव

शतरूपांचतांनारींतपोनिर्धूतकल्मषाम्॥स्वायम्भुवोमनुर्देवः पत्नीत्वेजगृहेविभुः॥१४॥तस्माच्चपुरुषात्पुत्रौशतरूपाव्यजायत ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौप्रख्याता वात्मकर्मभिः॥१५॥कन्येद्वेचतथाकूतिंप्रसूतिंचततःपिता ॥ ददौप्रसूतिंदक्षायतथाकूतिंरुचेःपुरा॥१६॥प्रजापतिःसजग्राहतयोर्यज्ञःसदक्षिणः ॥ पुत्रोजज्ञेमहा भागदम्पतीमिथुनंततः ॥ १७ ॥ यज्ञस्यदक्षिणायान्तुपुत्राद्वादशजज्ञिरे ॥ यामाइतिसमाख्यातादेवाःस्वायंभुवेऽन्तरे ॥१८॥ तस्यपुत्रास्तुयज्ञस्यदक्षिणायां सुभास्वराः ॥ प्रसूत्यांचतथादक्षश्चतस्रोविंशतिस्तथा ॥१९॥ ससर्ज्जकन्यास्तासांचसम्यङ्नामानिमेशृणु ॥ श्रद्धालक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिःपुष्टिर्मेधाक्रियातथा ॥ ॥२०॥ बुद्धिर्लज्जावपुःशान्तिःसिद्धिःकीर्तिस्त्रयोदशी ॥ पत्न्यर्थंप्रतिजग्राहधर्मोदाक्षायणीःप्रभुः ॥२१॥ ताभ्यःशिष्टायवीयस्यएकादशसुलोचनाः ॥ ख्यातिः सत्यथसम्भूतिःस्मृतिःप्रीतिस्तथाक्षमा ॥२२॥ सन्ततिश्चानसूयाचऊर्जास्वाहास्वधातथा ॥ भृगुर्भवोमरीचिश्चतथाचैवाङ्गिरामुनिः ॥ २३॥ पुलस्त्यःपुलह श्चैवक्रतुश्चऋषयस्तथा ॥ वसिष्ठोऽत्रिस्तथावह्निःपितरश्चयथाक्रमम् ॥ २४ ॥

धारण किया ॥ १७ ॥ उस दक्षिणामें यज्ञके जो बारह पुत्र उत्पन्न हुए वह स्वायंभुव मन्वन्तरमें 'याम' नामक देवता कहकर प्रसिद्ध हैं ॥ १८ ॥ भास्वर इत्यादि और भी कितनेही पुत्र दक्षिणाक गर्भमे यज्ञके द्वारा उत्पन्न हुएथे। इधर दक्षप्रजापतिने प्रसूतीके गर्भसे जो चौवीस ॥ १९ ॥ कन्याको उत्पन्न किया उनके नाम सम्यक् प्रकारसे सुनो । श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया ॥ २० ॥ बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्त्ति, इन दक्षकी तेरह कन्याको पत्नीके अर्थ धर्मने ग्रहण कियाथा ॥ २१ ॥ और अवशिष्ट जो ग्यारह सुलोचना कन्या थीं—जो ख्याति, सती, संभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा ॥ २२ ॥ सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामसे विख्यात थीं उनको भृगु इत्यादि सबने क्रमानुसार ग्रहण किया ॥ २३ ॥ भृगु, महादेव, मरीचि, अंगिरा मुनि, पुलस्त्य,

पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितृगण ॥ २४ ॥ इन मुनि ऋषि और मुनिसत्तम गणों ने ख्याति इत्यादि इन ग्यारह दक्षकी कन्याओंको यथाक्रमसे ग्रहण किया। तिनमें श्रद्धाने कामको, श्रीने दर्पको, धृतिने नियमको ॥ २५ ॥ तुष्टिने संतोषको, पुष्टिने लोभको, मेधाने श्रुतको, क्रियाने दंडको ॥ २६ ॥ बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने व्यवसायको, शान्तिने क्षेमको ॥ २७ ॥ सिद्धिने सुखको और कीर्तिने यशको उत्पन्न किया। यही धर्मकी सन्तान हैं। कामसे अतिहृष्ट हर्षनामक धर्मका पौत्र उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ अधर्मकी भार्याकानाम हिंसा हुआ, उसके गर्भसे अनृतकी उत्पत्ति हुई अनृतने उस निर्ऋतिके गर्भसे नरक और भयनामक दो पुत्र ॥२९॥ और माया तथा वेदना नामक दो कन्याको उत्पन्नकिया यह परस्पर मिथुनभावापन्न हैं। तिनमें मायाने प्राणियोंका संहार करनेवाला मृत्यु

ख्यात्याद्याजगृहुःकन्यामुनयोमुनिसत्तमाः ॥ श्रद्धाकामंश्रीश्चदर्पंनियमंधृतिरात्मजम् ॥ २५ ॥ सन्तोषंचतथातुष्टिर्लोभंपुष्टिरजायत ॥ मेधाश्रुतंक्रियादण्डं नयंविनयमेवच ॥ २६ ॥ बोधंबुद्धिस्तथालज्जाविनयंवपुरात्मजम् ॥ व्यवसायंप्रजज्ञेवैक्षेमंशान्तिरसूयत ॥ २७ ॥ सुखंसिद्धिर्यशःकीर्तिरित्येतेधर्मयोनयः ॥ कामादतिमुदंहर्षंधर्मपौत्रमसूयत ॥ २८ ॥ हिंसाभार्यात्वधर्मस्यतस्यांजज्ञेतथानृतम् ॥ कन्याचनिर्ऋतिस्तस्यांसुतौद्वौनरकंभयम् ॥२९॥ मायाचवेदनाचैवमिथुनंद्वयमेतयोः ॥ तयोर्जज्ञेऽथवैमायामृत्युंभूतापहारिणम् ॥३०॥ वेदनात्मसुतंचापिदुःखंजज्ञेऽथरौरवात् ॥ मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधश्चजज्ञिरे ॥ ॥३१॥ दुःखोद्भवाःस्मृताह्येतेसर्वेवाधर्मलक्षणाः ॥ नैषांभार्यास्तिपुत्रोवासर्वेतेह्यूर्द्ध्वरेतसः ॥ ३२ ॥ निर्ऋतिश्चतथाचान्यामृत्योर्भार्याभवन्मुने ॥ अलक्ष्मीर्नामतस्यांचमृत्योः पुत्राश्चतुर्दश ॥ ३३ ॥ अलक्ष्मीपुत्रकाह्येतेमृत्योरादेशकारिणः ॥ विनाशकालेपुनरान्भजन्त्येतेशृणुष्वतान् ॥ ३४ ॥ इन्द्रियेषुदशस्वेतेतथामनसिचास्थिताः ॥ स्वेस्वेनरंस्त्रियंवापिविषयेयोजयन्तिहि ॥ ३५ ॥

नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३० ॥ और नरकसे दुःखनामक एक पुत्रको वेदनाने उत्पन्न किया। इस मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए ॥ ॥ ३१ ॥ यह सब दुःखसे उत्पन्न और महा अधर्मी हुए, इनके भार्या वा पुत्र कोई नहीं है क्योंकि यह सब ऊर्ध्वरेता है ॥ ३२ ॥ हे मुनिवर ! निर्ऋतिनामक मृत्युकी जो और एक भार्या थी जिसको लोकमें अलक्ष्मी कहतेहैं मृत्युने उससे चौदह पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३३ ॥ मृत्युके आज्ञावर्त्ती पुत्रगण 'अलक्ष्मीपुत्र' के नामसे विख्यात हैं, यह विनाशके समय मनुष्यों के जिस जिस अंगमें रहते हैं उनके नाम कहताहूं सुनो ॥ ३४ ॥ यह प्रथम दश दश इन्द्रियों में वास करतेहैं और ग्यारह वा

सबके मनके ऊपर वास करताहै, यही सब स्त्री और पुरुषोंको अपने अपने विषयमें मिलालेताहै ॥ ३५॥ हे द्विज ! अनन्तर राग और क्रोधादिद्वारा समस्त इन्द्रियोंको आक्रमण करके अधर्मादिके सहित संयोजित करताहै, जिससे प्राणियोंकी हानि होतीहै ॥ ३६ ॥ अपर एक अर्थात् बारहवाँ मृत्युका पुत्र अहंकारको आश्रय करके वर्त्तमान है, अपर प्राणियोंकी बुद्धिके ऊपर अवस्थान करताहै, इससेही पुरुषगण मोहित होकर स्त्रियोंका विनाश करनेमें यत्नवान् होतेहैं ॥ ३७॥ अपर एक अर्थात् चौदहवाँ जो अलक्ष्मीका पुत्र है, उसका नाम दुःसहहै यह पुरुषोंके घर घरमें वास करता है । यह दुःसह सदाही क्षुधातुर, अधोमुख, नग्न, चीर धारी और काककी समान शब्द करनेवाला है ॥ ३८ ॥ बोध होताहै ब्रह्माजीने सब पदार्थको भक्षण करनेके लियेही इस तपोनिधिको उत्पन्न कियाहै । अनन्तर

अथेन्द्रियाणिचाक्रम्यरागक्रोधादिभिर्नरान् ॥ योजयन्तियथाहानिंयान्त्यधर्मादिभिर्द्विज ॥ ३६ ॥ अहङ्कारगताश्चान्येतथान्येबुद्धिसंस्थिताः ॥ विनाशायन रस्त्रीणांयतन्तेमोहसंश्रिताः ॥ ३७ ॥ तथैवान्योगृहेपुंसांदुःसहोनामविश्रुतः ॥ क्षुत्क्षामोऽधोमुखोनग्नश्चीरीकाकसमस्वनः ॥ ३८ ॥ ससर्वान्खादितुंसृष्टो ब्रह्मणातमसोनिधिः ॥ दंष्ट्राकरालमत्यर्थंविवृतास्यंसुभैरवम् ॥३९॥ तमत्तुकाममाहेदंब्रह्मालोकपितामहः ॥ सर्वब्रह्ममयःशुद्धःकारणंजगतोऽव्ययः ॥४०॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ नात्तव्यंतेजगदिदंजहिकोपंशमंव्रज ॥ त्यजैनांतामसींवृत्तिमपास्यरजसःकलाम् ॥ ४१ ॥ दुःसहउवाच ॥ ॥ क्षुत्क्षामोऽस्मिजग न्नाथपिपासुश्चापिदुर्बलः ॥ कथंतृप्तिमियांनाथभवेयंबलवान्कथम् ॥ कश्चाश्रयोममाख्याहिवर्तेयंयत्रनिर्वृतः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ तवाश्रयोगृहंपुंसां जनश्चाधार्मिकोबलम् ॥ पुष्टिर्नित्यक्रियाहान्याभवान्वत्सगमिष्यति ॥ ४३ ॥

दुःसहको कराल दाढ़, मुख फैलाये अत्यन्त भयंकर मूर्तिसे शब्द करते ॥ ३९ ॥ सबको भक्षण करनेमें उद्यत देखकर लोक पितामह, सर्व ब्रह्मय, शुद्ध और जगत्‌के कारण अविनाशी ब्रह्माजी कहने लगे॥ ४०॥ ब्रह्माजी बोले—हे दुःसह ! जगतको तुम्हारा भक्षण करना उचित नहींहै, कोप परित्याग करके शान्ति लाभ करो। इस तमोगुणकी वृत्तिको त्यागदो, और रजोगुणके अंशकोभी त्यागदो ॥ ४१ ॥ दुःसहने कहा—हे जगन्नाथ ! मैं भूंखसे अत्यन्त कृश और प्यासके मारे अत्यन्त दुर्बल होगयाहूं । हे नाथ ! किस प्रकार तृप्ति लाभ करूं ! और किस प्रकारसे बलवान् हूं तथा किसका आश्रय करके सुखसे रहूं ! यह आप कृपा करके कहिये ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे वत्स ! पुरुषोंका घरही तुम्हारा आश्रय, अधर्मी मनुष्यही तुम्हारा बल और मनुष्यों के नित्यकृत्यकी हानि होनेसेही तुम पुष्टिलाभ करोगे ॥ ४३ ॥

मकरीके जाले और सब स्फोट (फोड़े) ही तुम्हारे वस्त्र हैं । अब तुमको आहार प्रदान करताहूं । जिस स्थानमें कीड़े उत्पन्न हुए हैं जिसको कुत्तेने देखलियाहै, ऐसे घावका स्थानही तुम्हारा आहार है ॥ ४४ ॥ और जो पदार्थ फूटे बर्तनमें रक्खाहो, वा मुखसे फूंक मारकर ठंढा किया हो, अथवा उच्छिष्ट वा कच्चा हो, या जो अन्न संस्काररहीन हो ॥ ४५ ॥ वा फटेहुए आसनपर बैठकर, वा घर आये अतिथिको विना जिमाये या दक्षिणदिशाकी ओरको मुख करके, किंवा संध्याके समय अथवा नृत्यके समय, गानेके समय वा बजानेके समय जो कोई भोजन करताहै ॥ ४६ ॥ या रजस्वला स्त्रीका देखा हुआ वा उसका छुआ हुआ अथवा किसीका उच्छिष्ट किया हुआ, किंवा कोई दूषित पाक यदि कोई भोजन करता हो ॥ ४७ ॥ यह सब पदार्थ तुम्हारे खाद्य और पुष्टिकारक होंगे? हे दुःसह ! तुम्हारी पुष्टिके लिये और भी

लूताःस्फोटाश्चतेवस्त्रमाहारंचददामिते ॥ क्षुतकीटावपन्नंचतथाश्वभिरवेक्षितम् ॥ ४४ ॥ भग्नभाण्डगतंतद्वन्मुखवातोपशामितम् ॥ उच्छिष्टापक्वमस्विन्न मवलीढमसंस्कृतम् ॥ ४५ ॥ भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेवच ॥ विदिङ्मुखंसन्ध्ययोश्चनृत्यवाद्यस्वनाकुलम् ॥ ४६ ॥ उदक्योपहतंभुक्तमुदक्या दृष्टमेवच ॥ यच्चोपघातवत्किंचिद्भक्ष्यंपेयमथापिवा ॥४७॥ एतानितवपुष्ट्यर्थमन्यच्चापिददामिते ॥ अश्रद्धयाहुतंदत्तमस्नातैर्यदवज्ञया ॥ ४८ ॥ यन्नाम्बु पूर्वंकंक्षिप्तमनात्मीकृतमेवच ॥ त्यक्तुमाविष्कृतंयत्तुदत्तंचैवातिविस्मयात् ॥ ४९ ॥ दुष्टंक्रुद्धार्तदत्तंचयक्ष्मन्प्राप्स्यसितत्फलम् ॥ यच्चपौनर्भवः किंचि त्करोत्यामुष्मिकंक्रमम् ॥ ५० ॥ यच्चपौनर्भवायोषित्तद्यक्ष्मतवतृप्तये ॥ कन्याशुल्कोपधानायसमुपास्तेधनक्रियाः ॥ ५१ ॥ तथैवयक्ष्मपुष्ट्यर्थमसच्छा स्त्रक्रियाश्रयाः ॥ यच्चार्थनिर्वृतौकिंचिदधीतंयन्नसत्यतः ॥ ५२ ॥

देताहूं । जो विनास्नान किये अश्रद्धापूर्वक होम करताहै, जो अज्ञानी मनुष्योंके द्वारा दिया जाताहै ॥ ४८ ॥ जल स्पर्श न करके जो दिया हो अर्थात् जो वस्तु विना जलके पवित्रकी हो; वा जो वस्तु व्यर्थ पड़ीहो, परित्याग करनेके लिये जो विस्तार कीहो फैलाईहो, जो अत्यन्त आश्चर्य अर्थात् डरकर दी गई ॥ ४९ ॥ जो दुष्ट, क्रोधित और आर्त्तमनुष्योंने दीहो और जो फल हो, यह सब भोग करो । हेयक्ष्म ! यही तुम्हारे वशीभूत हैं । जो दूसरीबार विवाही स्त्रीके पुत्रने परलोकसम्बन्धी कार्य कियाहो ॥ ५० ॥ और पुनर्भवा स्त्री जो कर्म करतीहै; हे यक्ष्म ! वह तुम्हारी ही तृप्तिके लिये है ! हेयक्ष्म ! (जो कन्याके ऊपर द्रव्य लेनेमें धर्म क्रिया की जातीहै) ॥५१॥ इसी प्रकार जो क्रिया असत् शास्त्रद्वारा संपादित होतीहै;वह तुम्हारी ही पुष्टिके अर्थ है।और जो अर्थप्राप्तिके निमित्त कार्य है जो असत्यतासे पढ़ाहै॥ ५२॥

हे दुःसह ! वही तुम्हारी पुष्टिका हेतु होगा । अब तुम्हारी सिद्धिके लिये तुमको समय देताहूं; सुनो । जब मनुष्य गर्भवती स्त्रीसे रमण करतेहैं. जब संध्या वा नित्य कार्यका व्यतिक्रम होताहै ॥ ५३ ॥ और जब मनुष्यगण असत् शास्त्रोक्त कार्य कलापद्वारा दूषित होतेहैं, हे दुःसह ! उसी समय तुम उनके तिरस्कारकी सामर्थ्य लाभ करोगे ॥ ५४ ॥ जहां पंक्तिभेद हो, जहां वृथा पाक बनताहो अर्थात् अपनेही लिये भोजन बनताहो, वा जहां सदा क्लेश रहताहो वहा तुम्हारा वास होगा ॥ ५५ ॥ जिन घरोंमें बिना अन्न तृण दिये गाय घोडा इत्यादि जो और पशु हैं,उनको भूंखा बांध रखतेहैं और जिन घरोंमें सूर्यास्त होनेसे पहले असंध्याकालमें बुहारी नहीं लगती हे दुःसह ! वहां के मनुष्योंको तुमसे भय होगा ॥ ५६ ॥ नक्षत्रपीडा, ग्रहपीडा, वा त्रिविध उत्पातके दिखाई देनेपर जो मनुष्य शान्ति नहीं करते, उन

तत्सर्वंतवकामांश्चददामितवसिद्धये ॥ गुर्विण्यभिगमेसन्ध्यानित्यकार्यव्यतिक्रमे ॥ ५३ ॥ असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषुचदुःसह ॥ तवाभिभवसामर्थ्यंभ विष्यतिसदानृषु ॥ ५४ ॥ पङ्क्तिभेदेवृथापाकेपाकभेदेतथाकृते ॥ नित्यंचगेहकलहेभवितावसतिस्तव ॥ ५५ ॥ अपोष्यमाणेचतथाभृत्यगोवाहनादिके ॥ असन्ध्याभ्युक्षितागारेकालेत्वत्तोभयंनृणाम् ॥ ५६ ॥ नक्षत्रग्रहपीडासुत्रिविधोत्पातदर्शने ॥ अशान्तिकपरान्यक्ष्मन्नरानभिभविष्यसि ॥ ५७ ॥ वृथोपवा सिनोमर्त्याद्यूतस्त्रीषुसदारताः ॥ त्वद्भाषणोपकर्त्तारोवैडालव्रतिकाश्चये ॥ ५८ ॥ अब्रह्मचारिणाधीतमिज्याचाविदुषाकृता ॥ तपोवनेग्राम्यभुजांतथैवा निर्जितात्मनाम् ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांचस्वकर्मतः ॥ परिच्युतानांयाचेष्टापरलोकार्थमीप्सताम् ॥ ६० ॥ तस्याश्चयत्फलंसर्वंतत्तेयक्ष्म न्भविष्यति ॥ अन्यच्चतेप्रयच्छामिपुष्ट्यर्थंसंनिबोधतत् ॥ ६१ ॥ भवतोवैश्वदेवान्तेनामोच्चारणपूर्वकम् ॥ एतत्तवेतिदास्यन्तिभवतोबलिमूर्ज्जितम् ॥ ६२ ॥

मनुष्योंको तुम अभिभूत करोगे ॥ ५७ ॥ जो वृथा उपवास करतेहैं, जूए और स्त्रीमें जो सदा आसक्त हैं वा जो तुम्हारेही उपकारकी बातचीत करतेहैं और वैडालव्रतिक अर्थात्, जो बिल्लीकी समान अपना प्रयोजन सिद्ध करतेहैं ॥ ५८ ॥ जो लोग बिना ब्रह्मचर्यके वेद पाठ करतेहैं, और मूर्खोंका किया यज्ञ, और तपो वनमें गृहस्थियोंकी समान कर्म और चंचलचित्त अजितेन्द्रियोंका अध्ययन ॥ ५९ ॥ स्वकर्मभ्रष्ट परलोकमें सुखकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी तपोवनमें चेष्टा ॥ ६० ॥ और इन सब कार्योंका फल, हे यक्ष्म ! तुम्हारे आधीन हैं । तुम्हारी पुष्टिके लिये और भी देताहूं ॥ ६१ ॥ जो वैश्वदेवके (होमाङ्ग विशेषके) अन्तमें तुम्हारा नाम उच्चारण करके 'यह तुम्हारा है' इसप्रकार कह मनुष्यगण तुमको ऊर्जित बलिप्रदान करतेहैं ॥ ६२ ॥

जो मनुष्य विधिपूर्वक समस्त संस्कृत पदार्थ भोजन करतेहैं अन्तर और बाहरमें सदा पवित्र निर्लोभ और स्त्रियें जिसको वशीभूतकरनेमें समर्थ नहीं होतीं, तुम उनका गृह परित्याग करो॥६३॥ जिस घरमें हव्य कव्य द्वारा देवता और पितृगण सर्वदा पूजित होतेहैं, और जहां अतिथिगण सदा पूजित होतेहैं हे यक्ष्म! तुम उस घरको परित्याग करो॥६४॥ जिस घरमें बालक, वृद्ध, युवक, युवती और स्वजनवर्ग सदा मित्रतासंपन्न हैं, उस घरको भी तुम परित्याग करो ॥ ६५ ॥ जिस घरकी स्त्री अनुरक्त हैं बाहर जानेकी इच्छा नहीं करती और सर्वदा लज्जायुक्त हैं, वह घर तुम्हारे त्यागने योग्य है ॥६६॥ हे यक्ष्म ! जिस घरमें अपनी अवस्था और अपने वैभवानुसार शयन वा भोजन करतेहो; तुमको उस घरका भी मेरे वचनसे परित्याग करना उचित है ॥ ६७ ॥ जिस घरके मनुष्य अत्यन्त करुणाके वशीभूत हैं सर्वदा सत्कार्यमें अव

यः संस्कृताशी विधिवच्छुचिरन्तस्तथाबहिः ॥ अलोलुपोजितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्जय ॥ ६३ ॥ पूज्यन्तेहव्यकव्याभ्यांदेवताःपितरस्तथा ॥ जामयोऽतिथयश्चापितद्गेहंयक्ष्मवर्जय ॥ ६४ ॥ यत्रमैत्रीगृहेबालवृद्धयोषिन्नरेषुच ॥ तथास्वजनवर्गेषु गृहंतच्चापिवर्जय ॥ ६५ ॥ योषितोऽभिमतायत्रनबहिर्गमनोत्सुकाः ॥ लज्जान्विताःसदागेहंयक्ष्मततपरिवर्जय ॥ ६६ ॥ वयःसम्बंधयोग्यानिशयनान्यशनानिच ॥ यत्रगेहेत्वयायक्ष्मतद्वर्ज्यंद्वचनान्मम ॥ ६७ ॥ यत्रकारुणिकानित्यंसाधुकर्मण्यवस्थिताः ॥ सामान्योपस्करैर्युक्तास्त्यजेथायक्ष्मतद्गृहम् ॥ ६८ ॥ यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सुगुरुवृद्धद्विजातिषु ॥ नतिष्ठन्तिगृहंतच्चवर्ज्यंयक्ष्मत्वयासदा ॥ ६९ ॥ तरुगुल्मादिभिर्द्वारंनविद्धंयस्यवेश्मनः ॥ मर्मभेदोनवापुंसस्तच्छ्रेयोभवनंनते ॥ ७० ॥ देवतापितृभृत्यानामतिथीनांचवर्तनम् ॥ यस्यावशिष्टेनान्नेनपुंसस्तस्यगृहंत्यज ॥ ७१ ॥ सत्यवाक्यान्क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः ॥ पुरुषानीदृशान्यक्ष्मत्यजेथाश्चानसूयकान् ॥ ७२ ॥ भर्तृशुश्रूषणेयुक्तामसत्स्त्रीसङ्गवर्जिताम् ॥ कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टांचत्यजयोषितम् ॥ ७३ ॥

स्थित और सामान्य (सामग्री) द्वारा संयुक्त हैं हे यक्ष्म ! तुम उसको त्यागदेना॥ ६८ ॥ जहां गुरु वृद्ध और ब्राह्मणोंके आसनमें बैठनेपर भी जो आसन ग्रहण नहीं करते। हे यक्ष्म ! उस घरको तुम सर्वदा परित्याग करना ॥६९॥ जिस घरका द्वार वृक्ष गुल्मादिसे रुद्ध न हो जो किसीकी मर्मभेदी बात न कहताहो उस सुन्दर मंदिरमें जानेसे तुम्हारा कभी कल्याण नहीं होगा ॥ ७० ॥ जो पुरुष देवता, पितृ, मनुष्य और अतिथिको भोजन कराकर उनके बचेहुए उच्छिष्ट मात्रसे अपनी जीवन यात्रा निर्वाह करताहै, उसका घर तुम छोड़ देना ॥ ७१ ॥ जो सत्यवादी, क्षमाशील, अहिंसक, अनुतापरहित, और जो असूयाके वशीभूत नहींहैं, हे यक्ष्म ! उन पुरुषोंको तुम सदा परित्याग करना ॥ ७२ ॥ जो स्त्री सदा स्वामीकी सेवामें तत्पर है, असतीका संग परित्याग करतीहै और कुटुम्ब तथा स्वामीके भोजनसे

बचेहुए अन्नद्वारा अपना पोषण करतीहै, ऐसी स्त्रीको तुम परित्याग करो ॥ ७३ ॥ जो ब्राह्मण यजन, अध्ययन, अभ्यास और दान विषयमें सदा आसक्तचित्त है, एवं याजन, अध्यापन और दान प्रतिग्रह द्वारा जीविका निर्वाह करतेहैं, उन ब्राह्मणोंको तुम परित्याग करो ॥ ७४ ॥ हे दुःसह ! जो क्षत्रिय सर्वदा दान, अध्ययन और यज्ञ करनेमें प्रवृत्त रहते हैं और स्वीय पवित्र शस्त्रजीविका द्वारा वेतन ग्रहण करते हैं, उनको तुम परित्याग करो ॥ ७५ ॥ जो वैश्य त्रिविध पूर्व गुणयुक्त और पशु पालन, व्यापार और खेतीके द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं उन निष्पाप वैश्य गणको तुम परित्याग करना ॥ ७६ ॥ जो शूद्र दान, यज्ञ और ब्राह्मणोंकी सेवामें तत्पर हैं और ब्राह्मणादिकी सेवाद्वारा अपनी वृत्तिके परिपोषक हैं, हे दुःसह ! ऐसे शूद्रोंको सम्यक् प्रकारसे त्याग देना ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य घरमें वास करके श्रुति और स्मृतिके अविरोधमें वृत्ति निर्वाह करतेहैं, और उनकी पत्नीभी उनकेही अनुगत होती हैं॥ ७८॥ जिस घरमें पुत्रगण देवता, गुरु और पितरोंकी पूजाकरतेहैं,

यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिंसदा ॥ याजनाध्यापनादानकृतवृत्तिंद्विजंत्यज ॥ ७४ ॥ दानाध्ययनयज्ञेषुसदोद्युक्तंचदुःसह ॥ क्षत्रियंत्यजसच्छुल्क शस्त्राजीवात्तवेतनम् ॥७५॥ त्रिभिःपूर्वगुणैर्युक्तंपाशुपाल्यवणिज्ययोः ॥ कृषेश्चावाप्तवृत्तिंचत्यजवैश्यमकल्मषम् ॥ ७६ ॥ दानेज्याद्विजशुश्रूषातत्परं यक्ष्मसंत्यज ॥ शूद्रंचब्राह्मणादीनांशुश्रूषावृत्तिपोषकम् ॥ ७७॥ श्रुतिस्मृत्यविरोधेनकृतवृत्तिर्गृहेगृही ॥ यत्रतत्रचतत्पत्नीतस्यैवानुगतात्मिका ॥ ७८ ॥ यत्रपुत्रोगुरोःपूजांदेवानांचतथापितुः ॥ पत्नीचभर्तुःकुरुतेतत्रालक्ष्मीभयंकुतः ॥ ७९ ॥ सदानुलिप्तंसन्ध्यासुगृहमम्बुसमुक्षितम् ॥ कृतपुष्पबलिंय क्ष्मनत्वंशक्तोषिवीक्षितुम् ॥ ८० ॥ भास्कराद्दृष्टशय्यानिनित्याग्निसलिलानिच ॥ सूर्यावलोकदीपानिलक्ष्म्यागेहानिभाजनम् ॥ ८१ ॥ यत्रोक्षाचन्दनंवी णाआदर्शोमधुसर्पिषी ॥ विषाज्यताम्रपात्राणितद्गृहंनतवाश्रयः ॥ ८२ ॥ यत्रकण्टकिनोवृक्षायत्रनिष्पाववल्लरी ॥ भार्यापुनर्भूर्वल्मीकस्तद्यक्ष्मतवम न्दिरम् ॥ ८३ ॥ यस्मिन्गृहेनराःपंचस्त्रीत्रयंतावतीश्चगाः ॥ अन्धकारेन्धनाग्निश्चतद्गृहंवसतिस्तव ॥ ८४ ॥

स्त्रियें स्वामीकी सेवा करती हैं, हे यक्ष्म ! उस स्थानमें किस प्रकारसे अलक्ष्मीका भय होगा ॥ ७९ ॥ जो घर तीनों संध्यामें लीपाजाय, अथवा जल छिडककर पवित्र किया जाय और सुगंधित पुष्पोंके द्वारा देवताओंको बलि दिया जाय, उस घरके देखनेमेंभी तुम समर्थ नहीं होगे॥ ८० ॥ सूर्य जिस घरकी शय्याको नहीं देखते हों और जिस घरमें अग्नि और जल विद्यमान रहता है, और जो सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशितहोताहै वह घर लक्ष्मीका स्थान है ॥ ८१ ॥ जिस घरमें चंदन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, विष और तांबेके बर्तन विद्यमान हों, उस घरको तुम अपना आश्रय नहीं करसकोगे ॥ ८२ ॥ जिस घरमें कंटकयुक्त वृक्ष, निष्पावलता (लोबियेकी वेल) पुनर्भू भार्या और वल्मीक बमई वर्तमान हो, हे यक्ष्म ! वह तुम्हाराही घर है ॥ ८३ ॥ जिस घरमें पाँच पुरुष तीन स्त्री, तीन गाय, अन्धकार, काष्ठ और अग्नि अवस्थित

है, उसी घरमें तुम्हारा वास होगा ॥ ८४ ॥ हे यक्ष्म ! जिस घरमें एक छाग (बकरी) दो स्त्री, तीन गाय, पाँच भैंसे, छः घोड़े और सात हाथी रहते हों उस घरको शीघ्रही शोषित अर्थात् विनाश करो ॥ ८५ ॥ जिस घरमें कुदाल दात्र (दराती) पीढ़ा और थाली इत्यादि समस्त पात्र इधर उधर बिखरे पड़े रहतेहैं, वहांके मनुष्य तुमको अपने घरमें आश्रय देनेकी इच्छा करतेहैं ॥ ८६ ॥ हे यक्ष्म ! जिस घरमें स्त्री मुसल वा ओखलीके ऊपर बैठकर वा गूलरके वृक्षको आँगनमें लगाकर उसके नीचे बैठी रहतीहै और घरके पिछवारे रहनेवाली स्त्रीसे बातें करती रहतीहै,यह सर्व कार्य तुम्हारेही उपकारके लियेहैं ॥ ८७ ॥ जिस घरमें पका या विना पका हुआ धान्य और सत् शास्त्रका अनादर होता है हेदुःसह ! उस घरमें तुम इच्छानुसार विचरण करो॥८८॥और जिस घरमें थाली ढकना अथवा

एकच्छागंद्विवालेयंत्रिगवंपञ्चमाहिषम्॥षडश्वंसप्तमातङ्गंगृहंयक्ष्माशुशोषय॥८५॥कुद्दालदात्रपिटकंतद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् ॥ यत्रतत्रैवक्षिप्तानितवद्युःप्रतिश्रयम्॥८६॥ मुशलोलूखलेस्त्रीणामास्यातद्वदुदुम्बरे॥अवस्करेमन्त्रणंचयक्ष्मतदुपकृत्तव॥८७॥लंघ्यन्तेयत्रधान्यानिपक्वापक्वानिवेश्मनि॥तद्वच्छास्त्राणितत्रत्वंयथेष्टंचरदुःसह॥८८॥ स्थालीपिधानेयत्राग्निर्दत्तोदर्व्वीफलेनवा॥गृहेतत्रहिरिष्टानामशेषाणांसमाश्रयः॥८९॥मानुषास्थिगृहेयत्रदिवारात्रंमृतास्थितिः॥तत्रयक्ष्मतववासस्तथान्येषांचरक्षसाम् ॥९०॥ अदत्त्वाभुञ्जतेयेवैबन्धोःपिण्डंतथोदकम्॥ सपिण्डान्सोदकांश्चैवतत्कालेतान्नरान्भज ॥९१॥ यत्रपद्ममहापद्मौसुरभिर्मोदकाशिनी ॥ वृषभैरावतौयत्रकल्प्यंतेतद्गृहंत्यज ॥ ९२ ॥ अशस्त्रादेवतायत्रसशस्त्राश्चाहवंविना॥कल्प्यन्तेमनुजैरर्च्यास्ततपरित्यजमान्दिरम्॥९३॥पौरजानपदैर्यत्रप्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः ॥ क्रियंते पूर्ववद्गेहेनत्वंतत्रगृहेचर ॥ ९४ ॥ शूर्पवातघटाम्भोभिःस्नानंवस्त्राम्बुविप्रुषैः ॥ नखाग्रसलिलैश्चैवतान्याहितलक्षणान् ॥ ९५ ॥

करछलीसे घरवाली स्त्री किसीको आग देतीहो, वह घर सब अरिष्टका स्थान है॥८९॥मनुष्यकी हड्डी और मृतपदार्थ जिस घरमें दिनरात रहे, वहां और अन्यान्य समस्त राक्षसोंका वास होगा॥९०॥जब मनुष्य बंधु, सपिंड, वा समानोदक पुरुषोंको पिंड वा जल दान नहीं करते उसी समयमें तुम उनकी भजना करो ॥९१॥ जिस घरमें पद्म और महापद्म (निधि विशेष) वर्तमान हैं, स्त्रियें सदा मोदक (लड्डू) भोजन करतीहैं एवं बैल और ऐरावत वर्तमान रहता है, उस घरको तुम परित्याग करो ॥९२॥ जहां अशस्त्र देवता युद्धके विनाही मनुष्योंके द्वारा सशस्त्र अवस्थामें कल्पित होकर पूजे जातेहैं.उस मन्दिरको तुम परित्याग करो॥९३॥पूर्ववत् जिन सब घरोंमें तथा पुरवासी पुरोंमें और समस्त जनपद पूर्वप्रसिद्ध महोत्सवसे संयुक्त होतेहैं. उस घरमें तुम मत जाना ॥ ९४ ॥ जो छाजकी वायु कलशके जल वस्त्रके निचोड़ेहुए

जल और पादाग्रजल चरणके अग्रभागको लगे जलसे स्नान करतेहैं, उन हतलक्षण मनुष्योंके निकट तुम गमन करो ॥ ९५॥ जो मनुष्य देशाचार, समय, ज्ञाति, धर्म, जप, होम, मंगलकार्य, देवपूजा, सम्यक् शौच और यथाविधि समस्त लोकवादका आचरण करतेहैं उन मनुष्यों के सहित तुम्हारा संग न हो ॥ ९६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे द्विजवर! ब्रह्माजी दुःसहको इस प्रकार आज्ञा देकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगये और वह दुःसह भी पद्मजन्मा ब्रह्माजीका अनुशासन उसी प्रकार पालन करने लगा ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां यक्ष्मानुशासनंनाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि दुःसहकी भार्या निर्माष्टि हुई यह निर्माष्टि यमकी कन्या थी। यमपत्नी ऋतुमती होकर चाण्डालके देखनेपर उस गर्भसे निर्माष्टिने जन्म ग्रहण किया ॥

देशाचारान्समयाञ्ज्ञातिधर्मंजपंहोमंमङ्गलंदेवतेष्टिम् ॥ सम्यक्छौचंविधिवल्लोकवादान्पुंसस्त्वयाकुर्वतोमाऽस्तुसङ्गः ॥ ९६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्त्वादुःसहंब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत ॥ चकारशासनंसोऽपितथापंकजजन्मनः ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयक्ष्मानुशासनंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥
॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ दुःसहस्याभवद्भार्यानिर्माष्टिर्नामनामतः ॥ जाताकलेस्तुभार्यायामृतौचाण्डालदर्शनात् ॥ १ ॥ तयोरपत्यान्यभवञ्जगद्व्यापीनि षोडश ॥ अष्टौकुमाराः कन्याश्चतथाष्टावतिभीषणाः ॥ २ ॥ दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्चपरिवर्तस्तथापरः ॥ अङ्गध्रुक्छकुनिश्चैवगण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥ ३ ॥ गर्भहासस्यहाचान्यः कुमारास्तनयास्तयोः ॥ कन्याश्चान्यास्तथैवाष्टौतासांनामानिमेशृणु ॥४॥ नियोजिकावैप्रथमातथैवान्याविरोधिनी॥स्वयंहारकरीचैव भ्रामणीऋतुहारिका ॥५॥ स्मृतिबीजहरेचान्येतयोः कन्येसुदारुणे ॥ विद्वेषण्यष्टमीनामकन्यालोकभयावहा ॥६॥ एतासांकर्मवक्ष्यामिदोषप्रशमनंचयत् ॥ अष्टानांचकुमाराणांश्रूयतांद्विजसत्तम ॥ ७ ॥ दन्ताकृष्टिःप्रसूतानांबालानांदशनस्थितः ॥ करोतिदंतसंघर्षंचिकीर्षुर्दुःसहागमम् ॥ ८ ॥

॥ १ ॥ इसके उपरान्त दुःसहके द्वारा निर्माष्टिके गर्भसे जगत्व्यापी अत्यन्त भीषणाकार सोलह सन्तान हुईं तिनमें आठ पुत्र और आठ कन्या ॥ २ ॥ दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त्त, अङ्गध्रुक्, शकुनि, गण्ड, प्रान्तरति, ॥ ३ ॥ गर्भहा,और शस्यहा यह आठ पुत्र हुए अब आठ कन्याओंके नाम कहतेहैं सुनो ॥ ४ ॥ नियोजिका, विरोधिनी, स्वयंहारकरी, भ्रामणी, ऋतुहारिका ॥ ५ ॥ स्मृतिहरा, बीजहरा, यह दोनों महाभयंकर हुईं और आठवीं विद्वेषिणी जो सब लोकोंको महा भय दिखनेवाली थी ॥६॥ हे द्विजसत्तम ! अब इन आठों कुमारोंके कर्म और उनके दोष शमन करनेका उपाय कहताहूं; सुनो॥ ७॥दन्ताकृष्टि तो प्रसूत बालकके

दांतोंमें रहकर दांतोंको अत्यन्त किड़किड़ाताहै इसीके आश्रयसे वहां पर दुःसहभी आताहै ॥ ८ ॥ इसके शमन करने का उपाय यह है कि सोते हुए बालकके दाँतों पर और शय्या पर सफेद सरसों डालदे ॥ ९ ॥ वा औषधियोंके जलसे स्नान करावे. सत्शास्त्रका कीर्त्तन करावे. या ऊंट वा गेंडेकी अस्थिका यंत्र बनाकर बालकके गलेमें डाले अथवा रेशमीन वस्त्र धारण करानेसे बालककी शान्ति होतीहै ॥ १० ॥ दूसरा कुमार तथोक्ति "यही हां" इसप्रकार कहकर सब मनुष्योंके शुभाशुभ विषयमें नियुक्त होताहै यह सत्य है ॥ ११ ॥ इसकी शान्तिके लिये पण्डितगण श्रेष्ठता और मंगल दोनोंको सदा प्रकाश करैं और मन्दविषय सुनने वा कहनेपर जनार्दन भगवानके नामका कीर्तन करैं ॥ १२ ॥ या चराचर जगत्के गुरु ब्रह्माजीके नामका कीर्त्तन करैं अथवा जो जिसका कुलदेवता है, वह उसीका नाम कीर्त्तन करै

तस्योपशमनंकार्य्यंसुप्तस्यासितसर्षपैः ॥ शयनस्योपरिक्षिप्तैर्मानुषैर्दशनोपरि ॥९॥ सौवर्चलौषधीस्नानात्तथासच्छास्त्रकीर्त्तनात् ॥ उष्ट्रकण्टकगण्डास्थिक्षौमवस्त्रविधारणात् ॥१०॥ तिष्ठत्यन्यकुमारस्तुतथास्त्वित्यसकृद्ब्रुवन् ॥ शुभाशुभेनृणांयुङ्क्तेतथोक्तिस्तच्चनान्यथा ॥११॥ तस्माददुष्टंमङ्गल्यंवक्तव्यंपण्डितैःसदा ॥ दुष्टेश्रुते तथैवोक्ते कीर्त्तनीयोजनार्दनः ॥ १२ ॥ चराचरगुरुर्ब्रह्मायायस्यकुलदेवता ॥ अन्यगर्भेपरान्गच्छन्सदैवपरिवर्तयन् ॥ १३ ॥ रतिमाप्नोतिवाक्यंचविवक्षोरन्यदेवयत् ॥ परिवर्त्तकसंज्ञोऽयंतस्यापिसितसर्षपैः ॥१४॥ रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्चरक्षांकुर्वीततत्त्ववित् ॥ अन्यश्चानिलवन्नृणामङ्गेषुस्फुरणोदितम् ॥ १५ ॥ शुभाशुभं समाचष्टेकुशैस्तस्याङ्गताडनम् ॥ काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यः श्वादेरंगगतोऽपिवा ॥ १६ ॥ शुभाशुभंचशकुनिःकुमारोऽन्योब्रवीतिवै ॥ तत्रापिदुष्टेव्याक्षेपःप्रारम्भत्यागएवच ॥ १७ ॥ शुभेद्रुततरंकार्यमितिप्राहप्रजापतिः ॥ गण्डान्तेषुस्थितश्चान्योमुहूर्तार्द्धंद्विजोत्तम ॥ १८ ॥

परिवर्त्तक नामक तीसरा कुमार सदा अन्यगर्भमें अपर गर्भ स्थापन ॥ १३ ॥ और एकप्रकारके कहनेके वचनोंको अन्यरीतिसे कहलाकर प्रसन्न होताहै उसके दूर होनेको सफेद सरसों बखेरे ॥ १४ ॥ अथवा तत्त्ववित् रक्षोघ्न मंत्रका जप करके रक्षा करै । अंगधुक् नामक चौथा कुमार वायुके समान मनुष्यके अंगमें स्पन्दन (फड़काना) ॥ १५ ॥ और लोभ हर्षणके कारण शुभाशुभ विषय प्रकाश करताहै, उसकी शान्ति करनी हो तो शरीरमें कुशाघात करै । शकुनी नामक पाँचवाँ कुमार काक इत्यादि पक्षीमें और कुत्ते अथवा गीदड़के शरीरमें रहकर ॥ १६ ॥ मनुष्यके शुभाशुभ प्रकाश करता है इस समय अशुभ-सूचक चिह्न प्रकाशित होनेपर समस्त कार्यका उद्योग परित्याग करना चाहिये ॥ १७ ॥ हे द्विजोत्तम ! शुभसूचक

चिह्न प्रकाशित होनेपर अति शीघ्र कर्तव्य कार्यका आरंभ करै । यह प्रजापतिने स्वयं कहाहै । गण्डान्तरति नामक छठाँ कुमार आधे मुहूर्त गण्डान्तमें रहकर ॥ १८ ॥ समस्त कार्यारम्भ माङ्गल्य कर्म, और अनसूयता (अनिन्द्यता) नष्ट करता है । हे द्विजोत्तम ! उसकी शान्तिके लिये ब्राह्मणका आशिर्वाद, देवताकी स्तुति मूल नक्षत्रकी शान्ति ॥ १९ ॥ गोमूत्र और सफेद सरसोंसे स्नान उस नक्षत्र और ग्रहकी पूजा धर्मोपनिषद् श्रवण शास्त्रदर्शन ॥ २० ॥ और जन्मावज्ञा जन्मका तिरस्कार करनेसे गण्डदोषकी शान्ति होतीहै। गर्भहा नामक जो भयंकर सातवाँ कुमार है वह स्त्रियोंके गर्भमें कलल नाश करताहै ॥२१॥ उसकी शान्तिका उपाय यह है कि सदा शुद्ध भावसे रहना प्रसिद्ध मंत्र (कवचादि) लिखना माल्यादि धारण ॥ २२ ॥ विशुद्ध घरमें वास और आयास (परिश्रम) परित्याग करना चाहिये । हे ब्राह्मण इसीप्रकार, शस्यहा नामक आठवाँ कुमार संपूर्ण शस्य (धान्य) नष्ट करताहै ॥ २३ ॥ पुरा

सर्वारंभान्कुमारोऽत्तिशमंतस्यनिशामय ॥ विप्रोक्त्यादेवतास्तुत्यामूलोत्खातेनचाद्विज ॥ १९ ॥ गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तद्दक्षग्रहपूजनैः ॥ पुनश्चधर्मोपनिपत्करणैःशास्त्रदर्शनैः ॥ २० ॥ अवज्ञयाजन्मनश्चप्रशमंयातिगण्डवान् ॥ गर्भस्त्रीणांतथाऽन्यस्तुकललाशीसुदारुणः ॥ २१ ॥ तस्यरक्षासदाकार्यानित्यंशौचनिषेवणात् ॥ प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिधारणात् ॥२२॥ विशुद्धगेहावसनादनायासाच्चवैद्विज ॥ तथैवसस्यहाचान्यःसस्यर्द्धिमुपहन्तियः ॥ २३ ॥ तस्यापिरक्षांकुर्वीतजीर्णोपानद्विधारणात् ॥ तथापसव्यगमनाच्चण्डालस्यप्रवेशनात् ॥ २४ ॥ बहिर्वलिप्रदानाच्चसोमाम्बुपरिकीर्तनात् ॥ परदारपरद्रव्यहरणादिषुमानवान् ॥ २५ ॥ नियोजयतिचैवान्यान्कन्यासाचनियोजिका ॥ तस्याःपवित्रपठनात्क्रोधलोभादिवर्जनात् ॥ २६ ॥ नियोजयतिमामेषविरोधाच्चविवर्जनात् ॥ आक्रुष्टोऽन्येनमन्येतताडितोवानियोजिका ॥ २७ ॥ नियोजयत्येनमितिनगच्छेत्तद्वशंबुधः ॥ परदारादिसंसर्गेचित्तमात्मानमेवच ॥ ॥ २८ ॥ नियोजयत्यत्रसामामितिप्राज्ञोविचिन्तयेत् ॥ विरोधंकुरुतेचान्यादम्पत्योःप्रीयमाणयोः ॥ २९ ॥ बन्धूनांसुहृदांपित्रोःपुत्रैःसावर्णिकैश्चया ॥ विरोधिनीसातद्रक्षांकुर्वीतबलिकर्मणा ॥ ३० ॥

ना जूता शस्य (खेत) में रखने अपसव्य गमन अर्थात् वाईं ओरसे खेतमें जाय चाण्डालका प्रवेश करावे ॥ २४ ॥ बाहिरे बलिप्रदान एवं सोमाम्बु (मंत्रविशेष) का पाठ करानेसे उसकी शान्ति होतीहै । पहिली कन्या नियोजिका सब मनुष्योंको परस्त्रीगमन और परद्रव्यहरणादि कार्यमें नियोजित करती है । इसकी शांतिके लिये पुण्य ग्रंथ पाठ और क्रोधलोभादिका परित्याग करै ॥ २५ ॥ २६ ॥ और अन्य किसी मनुष्यके दुर्वचन कहने वा ताड़ना करनेपर भी क्रोधके वशीभूत न हो क्योंकि विचक्षण पण्डितगण इसकी शान्तिका कारण "जो परदारागमनआदि दुष्कर्ममें सदाही नियोजिका प्रेरणा करतीहै" यह चिन्ताकरके इस असद्वृत्तिसे मनको निवृत्त करै दूसरी कन्या विरोधिनी है । यह अत्यन्त प्रिय दम्पतिमें ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ एवं सुहृद् बंधु, पिता, माता, पुत्र और अपने मनुष्योंमें विवाद उपस्थित

करातीहै उसकी शान्तिके लिये बलि कर्म करना चाहिये ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सब झगड़ोंको छोड़कर शास्त्रानुसार पवित्र पवित्र क्रियाओंको करना चाहिये। और जो दुःसहकी तीसरी खरिहान नामक कन्या है, वह घरके अन्न और गऊ दूध और दूधसे घृत ॥ ३१ ॥ और द्रव्यादिककी हानि करके ऋद्धि और सिद्धिको हरण करतीहै उसका नाम स्वयंहारिणी है और वह सदा गुप्त रहतीहै ॥ ३२ ॥ और रसोई व घरकी वस्तुओंमें प्रवेश करके कभी अन्नको इकठा नहीं होने देती और भोजन करनेवालेके संग आप भोजन करतीहै ॥ ३३ ॥ हे द्विजोत्तम ! जिस घरमें अन्नके ढेरसे कोई चोरी करताहै तो उस अन्नको वही चुरातीहै, जो घरमें कोई उत्तम कर्म नहीं होता उस घरकी ऋद्धि और सिद्धिको वही हरतीहै ॥ ३४ ॥ गाय स्त्रियोंके स्तनोंमेंसे दूध और दहींमेंसे घृत, तिलोंमेंसे तेल

तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् ॥ धान्यंखलाद्गृहाद्गोष्ठात्पयःसर्पिस्तथापरा ॥ ३१ ॥ समृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्तिचकन्यका ॥ सास्वयंहारिके त्युक्तासदान्तर्धानतत्परा ॥ ३२ ॥ महानसादर्द्धसिद्धमन्नागारस्थितंतथा ॥ परिविष्यमाणंचसदासार्द्धंभुङ्क्तेचभुञ्जता ॥ ३३ ॥ उच्छेषणंमनुष्याणां हरत्यन्नंचदुर्हरा ॥ कर्मान्तागारशालाभ्यःसिद्धयृद्धिंहरतिद्विज ॥३४॥ गोस्त्रीस्तनेभ्यश्चपयःक्षीरहारीसदैवसा ॥ दध्नोघृतंतिलात्तैलंसुरागारात्तथासुराम् ॥ ॥ ३५ ॥ रागंकुसुम्भकादीनांकार्पासात्सूत्रमेवच ॥ सास्वयंहारिकानामहरत्यविरतंद्विज ॥ ३६ ॥ कुर्याच्छिखण्डिनोर्द्वन्द्वंरक्षार्थंकृत्रिमांस्त्रियम् ॥ रक्षाश्चैवगृहेलेख्यावर्ज्याचोच्छिष्टतातथा ॥ ३७ ॥ होमाग्निदेवताधूपभस्मनाचपरिष्क्रिया ॥ कार्याक्षीरादिभाण्डानामेवंतद्रक्षणंस्मृतम् ॥ ३८ ॥ उद्वेगंजनयत्यन्याएकस्थाननिवासिनः ॥ पुरुषस्यतुयाप्रोक्ताभ्रामणीसातुकन्यका ॥ ३९ ॥ तस्याथरक्षांकुर्वीतविक्षिप्तैःसितसर्षपैः ॥ आसनेशयनेचोर्व्यांयत्रास्ते सतुमानवः ॥ ४० ॥ चिन्तयेच्चनरःपापामामेपादुष्टचेतना ॥ भ्रामयत्यसकृज्जप्यंभुवः सूक्तंसमाधिना ॥ ४१ ॥

और सुराकी भट्टीमेंसे सुरापान करलेतीहै ॥ ३५ ॥ कुसुम्भादि पुष्पका राग (रंग) । कपाससे सूत्र (डोरा) स्वयं हरण करतीहै इसी कारण इसका नाम स्वयंहारिका है ॥ ३६ ॥ इसकी शान्तिके लिये अपने घरमें एक स्त्री और दो मोरोंके चित्र लिखने चाहिये और वह चित्र सदा चमकते रहैं, घिसने नहीं ॥ ३७ ॥ हवन करै देवताओंके लिये अग्निमें धूपदे फिर उसी अग्निकी भस्म लेकर दुग्धादिके वर्तनमें लगादे और स्त्री अपने कुचाओंमें मलदे क्यों कि इस भस्मसे समस्त दोष मिटजातेहैं॥ ३८ ॥ और जो भ्रामणी नामक चौथी कन्या है, वह एक स्थानपर वास करनेवाले मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश करके उद्वेग उत्पन्न करातीहै ॥ ३९ ॥ इसकी शान्ति करनी हो तो आसनमें शय्यामें और भूमिमें सफेद सरसों बखेरे किसी पापकार्यमें चित्तके दौडनेपर "दुष्टात्मा भ्रामणी मुझको प्रेरण करतीहै" यह

विचार समाधियुक्त हो भूमिसूक्त (मंत्रविशेषका जप करै) ॥ ४१ ॥ पाँचवी कन्या ऋतुहारिका है, यह ऋतुमती स्त्रियोंकी रज हरण करतीहै ॥ ४२ ॥ इसकी शान्तिके लिये तत्त्वज्ञ पण्डितगण पर्वतकी कन्दराओं में और तीर्थोंमें मन्दिर बनवावें और नदीके संगम स्थानमें प्रातः समय स्नान करैं ॥ ४३ ॥ मंत्रके ज्ञाता यह सब प्रभातमें करै और धूपादि उपहारसे उनका पूजन करावै और श्रेष्ठ वैद्यसे उत्तम औषधिका प्रयोग करावे ॥ ४४ ॥ छठी कन्या स्मृति हारिका वराङ्गनाओंकी तथा मनुष्योंकी स्मृतिको हरण करतीहै ॥ ४५ ॥ इसकी शान्तिके लिये उत्तम, परिष्कृत रमणीय स्थानको सेवा करै सातवीं कन्या बीजापहारिणी है । यह स्त्री और पुरुष दोनोंकी रतिका विनाश करती है इसकी शान्तिके लिये पवित्र अन्न भोजन और स्नान करै ॥ ४६ ॥ यह दुराचारिणी

स्त्रीणांपुष्पंहरत्यन्याप्रवृत्तंसातुकन्यका ॥ तथाप्रवृत्तंसाज्ञेयादुःसहाऋतुहारिका ॥४२॥ कुर्वीततीर्थदेवौकश्चैत्यपर्वतसानुषु ॥ नदीसङ्गमखातेषुस्नपनंतत्प्र शान्तये॥४३॥ मन्त्रविद्भूततत्त्वज्ञःपर्वसूषसिचद्विज ॥ (तेषांतुपूजनंकार्यंधूपवत्युपहारकैः)॥चिकित्साज्ञश्ववैद्यः संप्रयुक्तैर्वरौषधैः ॥४४॥ स्मृतिंचापहर त्यन्या (प्रवृत्तांसातुकन्यका ॥ अथाप्रवृत्तासाज्ञेया) नृणांसास्मृतिहारिका ॥४५॥ विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चोपशमोभवेत् ॥ बीजापहारिणीचान्यास्त्रीपुं सोरतिभीषणा ॥ मेध्यान्नभोजनैःस्नानैस्तस्याश्चोपशमोभवेत्॥४६॥ दारुणासादुराचारादारुणंकुरुतेभयम् ॥ तत्प्रशांत्यैप्रकुर्वीतद्विजानामर्चनंशुभम्॥४७॥ अष्टमीद्वेषणीनामकन्यालोकभयावहा ॥ याकरोतिजनद्विष्टंनरंनारीमथापिवा ॥ ४८ ॥ मधुक्षीरघृताक्तांस्तुशान्त्यर्थंहोमयेत्तिलान् ॥ कुर्वीतमित्रविन्दांचत थेष्टिंतत्प्रशान्तये ॥४९॥ एतेषांतुकुमाराणांकन्यानांद्विजसत्तम ॥ अष्टत्रिंशदपत्यानितेषांनामानिमेशृणु ॥५०॥ दन्ताकृष्टेरभूत्कन्याविजल्पाकलहातथा ॥ अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पातत्प्रशान्तये ॥ ५१ ॥ तामेवचिन्तयेत्प्राज्ञःप्रयतश्चगृहीभवेत् ॥ कलहाकलहंगेहेकरोत्यविरतंनृणाम् ॥ ५२ ॥

दारुण कठिन भय उत्पन्न करतीहै उसकी शान्तिके अर्थ ब्राह्मणका पूजन शुभ है ॥ ४७ ॥ आठवीं कन्या सर्वलोकभयंकरी द्वेषिणी नामक है । यह कन्या नर नारियोंमें द्वेष कराती है ॥ ४८॥ इसकी शान्तिके लिये मधु, दुग्ध और घृत संयुक्त तिलकी आहुति देकर मित्रविन्दा नामक यज्ञ करै ॥ ४९ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इन सब कुमार और कुमारियोंकी अष्टत्रिंशत् (३८) संतान हुईं, उनके नाम कहताहूं, सुनो ॥ ५० ॥ दन्ताकृष्टिके विजल्पा और कलहा नामक दो कन्या हुईं, विजल्पा अवज्ञा (निरादर) मिथ्या और दुष्ट वचन कहलानेवाली है, उसकी शान्तिके लिये ॥ ५१ ॥ बुद्धिमान् गृही संयत होकर उसीकी चिन्ता करै ।

कलहा मनुष्योंके घरमें सदा कलह कराती है ॥ ५२ ॥ और उनके कुटुम्ब नाशका हेतुस्वरूप है इसकी शान्तिके लिये दूबके अंकुर, मधु, दुग्ध और बलिपूर्वक ॥ ५३ ॥ अग्निमें हवन करना चाहिये और सब घरमें जल छिड़के,मित्रविन्दाका कीर्तन करै और भली भाँति यश विनयके सहित भूतोंकी पूजा वर्णन करै, जिससे बालककी शान्ति होजाय ॥ ५४ ॥ इसके पीछे फिर यह कहे कि विद्या, तप, संयम,यम, कृषि (खेती) और व्यापार लाभमें तुम हमारी सदा रक्षा करो ॥ ५५ ॥ और यथाविधि पूजित होकर समस्त कूष्माण्ड तथा यातुधान इत्यादि और भी जो अनेक गण हैं, वह मेरी इस पूजाको स्वीकार करके संतुष्ट हों ॥ ५६ ॥ महादेवके अनुग्रह और महेश्वरके अभिमतानुसार समस्त मनुष्योंके प्रति शीघ्र संतुष्ट होकर नित्य रक्षा करो ॥ ५७ ॥ और संतुष्ट होकर मेरे समस्त पाप दुष्ट

कुटुम्बनाशहेतुःसातत्प्रशान्तिनिशामय ॥ दूर्वाकुरान्मधुघृतक्षीराक्तान्बलिकर्मणि ॥५३॥ विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवानलंमित्रंचकीर्तयेत् ॥ भूतानांमातृभिःसार्द्धं बालकानांतुशान्तये ॥५४॥ विद्यानांतपसांचैवसंयमस्ययमस्यच ॥ कृष्यांवाणिज्यलाभेचशान्तिंकुर्वन्तुमेसदा ॥५५॥ पूजिताश्चयथान्यायंतुष्टिंगच्छन्तुसर्वशः ॥ कूष्माण्डायातुधानाश्चयेचान्येगणसंज्ञिताः॥५६॥ महादेवप्रसादेनमहेश्वरमतेनच ॥ सर्वएतेनृणांनित्यंतुष्टिमाशुव्रजन्तुते ॥५७॥ तुष्टाःसर्वंनिरस्यन्तु दुष्कृतंदुरनुष्ठितम् ॥ महापातकजंसर्वंयच्चान्यद्विघ्नकारणम् ॥ ५८ ॥ तेषामेवप्रसादेनविघ्नानश्यन्तुसर्वशः ॥ उद्वाहेषुचसर्वेषुवृद्धिकर्मसुचैवहि ॥ ५९ ॥ पुण्यानुष्ठानयोगेषुगुरुदेवार्चनेषुच ॥ जपयज्ञविधानेषुयात्रासुचचतुर्दश ॥ ६० ॥ शरीरारोग्यभोग्येषुसुखदानधनेषुच ॥ वृद्धबालातुरेष्वेवशान्तिंकुर्वंतु मेसदा ॥ ६१ ॥ सोमाम्बुपौतथाम्भोभिः सविताचानिलानलौ ॥ तथोक्तेःकलिजिह्वोऽभूत्पुत्रस्तालनिकेतनः ॥ ६२ ॥ सयेषांरसनासंस्थस्तानसाधून् विवादयेत् ॥ परिवर्तसुतौद्वौतुविरूपविकृतौद्विज ॥ ६३ ॥ तौतुवृक्षाद्रिपरिखाप्राकाराम्भोधिसंश्रयौ ॥ गुर्विण्याः परिवर्ततौकुरुतः पादपादिषु ॥ ६४ ॥

कर्म, और महापातकसे उत्पन्न जो कष्ट अथवा और भी जो जो विघ्नके कारण हैं,उन सबका विनाश करो ॥ ५८ ॥ और विवाह आदि शुभकार्योंकी वृद्धिमें यदि कुछ विघ्न होजाय तो आपके प्रसादसे वह भी सब नाशको प्राप्तहो ॥ ५९ ॥ पुण्य कार्यके अनुष्ठानमें, गुरु देवताकी पूजामें, जप, यज्ञादि कर्त्तव्य अनुष्ठानमें, चौदह यात्रामें ॥ ६० ॥ शारीरिक आरोग्य भोगमें, सुख दान और धनविषयमें एवं वृद्ध,बालक और पीडित व्यक्तिके संबंधमें सदा शान्ति स्थापन करो ॥ ६१ ॥ और सोम, वरुण, सागर, सूर्य, वायु, अग्नि इत्यादि भी मेरी रक्षा करैं । तथोक्तिका तालवृक्षवासी कालजिह्व नामक एक पुत्र है॥६२॥हे द्विज! यह कालजिह्व जिस स्त्रीकी रसनामें स्थित होताहै,उसके बालकको बहुत पीडा देताहै।पारिवर्त्तकके दो पुत्र उत्पन्न हुए, एकका नाम विरूप और दूसरेका नाम विकृत हुआ ॥६३॥ वह वृक्षाग्र (वृक्षके

अग्रभागमें) परिखा (खाई) चारदिवारी और (सागर) में वास करके गर्भिणीका परिवर्त्तन करते हैं ॥ ६४ ॥ हे क्रौष्टुकि ! जो गर्भवती स्त्री ऐसे स्थानोंमें विचरण करतीं हैं वह उसके गर्भमें महाकष्ट देतेहैं अतएव गर्भवती नारीको वृक्षोंमें,कोठेपर नदीकें तटपर ॥ ६५ ॥ और खाईमें कभी नहीं जाना चाहिये । अंगध्रुक्ने पिशुन नामक पुत्र लाभ कियाहै ॥ ६६ ॥ पिशुन अज्ञानान्ध मनुष्योंकी अस्थि मज्जामें प्रवेश करके बलभोजन करताहै शकुनिके श्येन, काक, कपोत, गृध्र और उलूक ॥ ६७ ॥ यह पांच शकुनिके पुत्रहैं उनको सुरासुरने ग्रहण कियाहै । श्येनको मृत्युने काकको कालने ॥६८॥ उलूकको नैर्ऋतिने गृध्रको व्याधिने और व्याधीश्वर स्वयं यमने कपोतको ग्रहण किया ॥ ६९ ॥ यह सबही पापोत्पादन करतेहैं इसलिये बाज इत्यादिके मस्तकपर बैठनेसे ॥ ७० ॥ आत्मरक्षाके

क्रौष्टुकेपरिवर्तःस्याद्गर्भस्यान्योदरात्ततः ।। नवृक्षंचैवनैवाद्रिंनप्राकारंमहोदधिम् ॥६५॥ परिखांवासमाक्रामेदबलागर्भधारिणी ॥ अङ्गध्रुक्तनयंलेभेपिशुनंनाम नामतः ॥६६॥ सोऽस्थिमज्जागतःपुंसांबलमत्त्यजितात्मनाम् ॥ श्येनकाककपोतांश्चगृध्रोलूकौचवैसुतान् ॥६७॥ अवापशकुनिःपंचजगृहुस्तान्सुरासुराः ॥ श्येनंजग्राहमृत्युश्चकाकंकालोगृहीतवान् ॥६८॥ उलूकंनिर्ऋतिश्चैवजग्राहातिभयावहम् ॥ गृध्रंव्याधिस्तदीशोऽथकपोतंचस्वयंयमः ॥ ६९ ॥ एतेषामेवचैवोक्ताभूताःपापोपपादने ॥ तस्माच्छ्येनादयोयस्यनिलीयेयुःशिरस्यथ ॥७०॥ तेनात्मरक्षणायालंशान्तिकुर्य्याद्द्विजोत्तम ॥ गेहे प्रसूतिरेतेषांतद्वन्नीडनिवेशनम् ॥ ७१ ॥ नरस्तंवर्जयेद्गेहंकपोताक्रान्तमस्तकम् ॥ श्येनःकपोतोगृध्रश्चकाकोलूकौगृहेद्विज ॥७२॥ प्रविष्टःकथयेदन्तंवसतांतत्रवेश्मनि ॥ ईदृक्परित्यजेद्गेहंशान्तिकुर्याच्चपण्डितः ॥७३॥ स्वप्नेऽपिहिकपोतस्यदर्शनंनप्रशस्यते ॥ षडपत्यानिकथ्यन्तेगण्डप्रान्तरतेस्तथा ॥७४॥ स्त्रीणांरजस्यवस्थानंतेषांकालांश्चमेशृणु ॥ चत्वार्य्यहानिपूर्वाणितथैवान्यत्रयोदशम् ॥ ७५ ॥ एकादशंतथैवान्यदपत्यंतस्यवैदिने ॥ अन्यद्दिनाभिगमनेश्राद्धदानेतथापरे ॥ ७६ ॥ पर्व्वस्वथान्यत्तस्मात्तुवर्ज्यान्येतानिपण्डितैः ॥ गर्भहन्तुःसुतोनिघ्नोमोहनीचापिकन्यका ॥ ७७ ॥

लिये शान्तिकार्य करना चाहिये । जिस घरमें यह घोसला बनावे वा बच्चे उत्पन्न करे॥ ७१ ॥मनुष्य उस घरकोभी परित्याग करे । हे द्विज ! बाज, कबूतर, गृध्र, काक उलूकगण ॥ ७२ ॥ घर में प्रवेश करके उस गृहवासीके अन्तकालकी सूचना देतेहैं अतएव पण्डितगण ऐसे गृहको परित्याग करके शान्ति कार्य करैं ॥ ७३ ॥ स्वप्नमें भी कबूतरका देखना अमंगलदायक है गंड प्रान्तरितके जो छः पुत्र कहेहैं ॥ ७४ ॥ वह स्त्रियोंकी रजमें वास करतेहैं उनका समय कहताहूं सुनो । प्रथम चार दिन त्रयोदश दिन ॥ ७५ ॥ एकादश दिन दिनका अन्त श्राद्धदिन दानकार्यदिवस ॥ ७६ ॥ और पर्वदिन यह सब उनके रहनेका समय है अतएव पण्डितगण

इन सब दिनोंको परित्याग करै गर्भहन्ताका विघ्ननामक एक पुत्र और मोहनी नामक एक कन्या हुईथी ॥ ७७ ॥ यह गर्भ में प्रवेश करतीहै विघ्न स्वच्छ गर्भका भोजन करता है और मोहनी मोह प्रदान करतीहै उस मोहके कारणही सर्प भेडक कछुए ॥ ७८ ॥ और विच्छू इत्यादि जन्तुगण तथा पुरीषकी उत्पत्ति होतीहै । गर्भवती छः महीनेतक मांसभोजन करनेसे असंयत होनेसे॥७९॥ रात्रिकेसमय वृक्ष तलमें त्रिपथ वा चतुष्पथ (चौराहे) में अवस्थित रहनेसे श्मशान इत्यादि उत्कट स्थानमें गमन करनेसे वा उत्तरीयरहित अर्थात् नग्नहोनेसे ॥ ८० ॥ और रात्रिके समय रोदन करनेसे विघ्न उस स्त्रीमें प्रवेश करताहै । शस्यहन्ताका क्षुद्रक नामक एक पुत्र हुआ ॥ ८१ ॥ वह छिद्र पातेही शस्य वृद्धिकी हानि करता है । जो मनुष्य अमंगल दिनमें अतृप्त होकर धान्य

प्रविश्यगर्भमत्त्येकोभुङ्क्तामोहयतेऽपरा ॥ जायन्तेमोहनात्तस्याःसर्पमण्डूककच्छपाः ॥ ७८ ॥ सरीसृपाणिचान्यानिपुरीषमथवापुनः ॥ षण्मासाद्गर्विणींमां समश्नुवानामसंयताम् ॥ ७९ ॥ वृक्षच्छायाश्रयांरात्रावथवात्रिचतुष्पथे ॥ श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम् ॥ ८० ॥ रुद्यमानांनिशीथेऽथआ विशेत्तामिमौस्त्रियम् ॥ सस्यहन्तुस्तथैवैकःक्षुद्रकोनामनामतः ॥ ८१ ॥ सस्यर्द्धिंससदाहन्तिलब्ध्वारन्ध्रंशृणुष्वतत् ॥ अमङ्गल्यदिनारम्भेमुतृप्तोवपते चयः ॥ ८२ ॥ क्षेत्रेष्वनुप्रवेशंवेकरोत्यन्तोपसंगिषु ॥ ८३ ॥ अमंगल्यादिनारंभंमंगलानांचवर्जयेत् ॥ (महद्भयंप्रयच्छंतियत्रवैतत्प्रसंगिषु ॥) तस्मा कल्पःसुप्रशस्तेदिनेऽभ्यर्च्यनिशाकरम् ॥ ८४ ॥ कुर्यादारम्भमुर्तिचहृष्टस्तुष्टः सहायवान् ॥ नियोजिकेतियाकन्यादुःसहस्यमयोदिता ॥ ८५ ॥ जातं प्रचोदिकासंज्ञंतस्याःकन्याचतुष्टयम्॥ मत्तोन्मत्तप्रमत्तांस्तुनरान्नारीस्तुताः सदा ॥ ८६ ॥ समाविशन्तिनाशायचोदयन्तीहदारुणम् ॥ अधर्मंधर्मरूपे णकामंचाकामरूपिणम् ॥ ८७ ॥ अनर्थंचार्थरूपेणमोक्षंचामोक्षरूपिणम् ॥ दुर्विनीतान्विनाशोचंदर्शयन्तिपृथङ्नरान् ॥ ८८ ॥

बोनेका कार्य प्रारंभ करताहै ॥ ८२ ॥ उसके उस खेतमें क्षुद्रक प्रवेश करताहै ॥ ८३ ॥ वह अमंगलका आरंभकर मंगलोंको वर्ज देताहै (और संगीयोंमें बड़ा भ यकरताहै) इसका उपाय यही कहा गयाहै कि अच्छे पवित्रदिनमें चन्द्रमाकी पूजाकरके ॥ ८४ ॥ प्रसन्न चित्तसे कृषिकार्यका आरंभ और बीज वपन करै दुःसहकी नियोजिका नामक कन्याथी जिसका वर्णन मैं पहिले आपसे कर चुकाहूं ॥ ८५ ॥ उसकी प्रचोदिका नामक चार कन्या हुई वह सदाही अति प्रमत्त यौवनके मदसे गर्वित नरनारियोंमें प्रवेशकर ॥ ८६ ॥ नाशकरनेके निमित्त उनको दारुण रूपसेप्रेरण करतीहै दुर्विनीतभाव (खोटेपन) के द्वारा धर्मरूपमें अधर्मको अकामरूपमें कामको ॥ ८७ ॥ अर्थरूपमें अनर्थको और अमोक्षरूपमें मोक्षको प्रेरणपूर्वक मनुष्योंको पृथक् पृथक् दर्शन कराकर अत्यन्त दारुण भावसे नाश करनेके लिये

प्रवेश करतीहैं॥८८॥ पूर्वोक्त आठ कन्याओंके द्वारा पुरुषार्थसे पृथक् होकर पुरुषभ्रष्ट हो भ्रमण करतेहैं इनका प्रवेश घरोंमें के गूलरमें नक्षत्रकी संधिमें होताहै ॥ ८९॥ और धाता विधाताको जब पूजा नहीं दी जाती उसी समय वह घरमें प्रविष्ट होतीहै संगीगणोंके सहित भोजन और जलपानके समय कुल्लेके समयमें ॥ ९० ॥ उनका नर नारियोंमें संक्रमण होताहै विरोधिनीके तीन पुत्र हुए एकका नाम चोदक और दूसरेका नाम ग्राहक ॥ ९१ ॥ और जो तीसरा तमःप्रच्छादक पुत्र है, उसका स्वरूप सुनो ।जहां मुसल वा ओखली दीपकके तेलसे दूषित वा उलँघी जातीहै ॥ ९२ ॥ जहां मुसल ओखली स्त्रियोंकी पादुका और आसन होताहै वा दूषित होता अथवा उलँघा जाताहै, जहां पैरोंसे आसन और छाज, दराती इत्यादि सरकाती हैं ॥ ९३ ॥ जहां लिपेहुयेमें बिना पूजन किये बिहार किया जाताहै और

भ्रंशत्याभिःप्रविष्टाभिः पुरुषार्थात्पृथङ्नराः ॥ तासांप्रवेशश्चगृहेसन्ध्यृक्षेषुद्युदुम्बरे ॥ ८९ ॥ धात्रेविधात्रेचबलिर्यत्रकालेनदीयते ॥ भुञ्जतां पिबतांवापिसंगिभिर्जलविप्रुषैः ॥ ९० ॥ नरनारीषुसंक्रान्तिस्तासामाश्वभिजायते ॥ विरोधिन्यास्त्रयःपुत्राश्चोदकोग्राहकस्तथा ॥ ९१ ॥ तमःप्रच्छा दकश्चान्यस्तत्स्वरूपंशृणुष्वमे ॥ प्रदीपतैलसंसर्गद्रूषितेलंघितेखले ॥ ९२ ॥ मुसलोलूखलेयत्रपादुकेवासनेस्त्रियः ॥ शूर्पदात्रादिकंयत्रप दाकृष्टंतथासनम् ॥ ९३ ॥ यत्रोपलितेनाभ्यर्च्यविहारःक्रियतेगृहे ॥ दर्वीमुखेनयत्राग्निराहृतोऽन्यत्रनीयते ॥ ९४ ॥ विरोधिनीसुतास्तत्रवि जृम्भन्तेप्रचोदिताः ॥ एकोजिह्वागतःपुंसांस्त्रीणांचालीकसत्यवान् ॥ ९५ ॥ चोदकोनामसप्रोक्तःपैशुन्यंकुरुतेगृहे ॥ अवधानगतश्चान्यःश्रवणस्थो ऽतिदुर्मतिः ॥ ९६ ॥ करोतिग्रहणंतेषांवचसांग्राहकस्तुसः ॥ आक्रम्यान्योमनोनृणांतमसाच्छाद्यदुर्मतिः ॥९७॥ क्रोधंजनयतेयस्तुतमःप्रच्छादकस्तुसः ॥ स्वयंहार्यास्तुचौर्येणजनितंतनयत्रयम् ॥ ९८ ॥ सर्वहार्यर्द्धहारीचवीर्यहारीतथैवच ॥ अनाचान्तगृहेष्वेतेमन्दाचारगृहेषुच ॥ ९९ ॥

जहां करछलीसे आग निकालकर दूसरेको दी जाती है ॥ ९४ ॥ उन सब स्थानोंमें इस विरोधिनीके पुत्र विक्रम प्रकाश करते हैं । एक तो स्त्री और पुरुषोंकी जिह्वामें वास करके मिथ्या और सत्य कहलाता है ॥९५॥ उसका नाम चोदक है वही मनुष्योंके घरमें पिशुनता अर्थात् कुटिलता और नीचकर्म करताहै, अति दूर्मतिग्राहक कानोंमें वास करके ॥ ९६ ॥ उन सब वाक्योंको ग्रहण करता है, तमःप्रच्छादक मनुष्योंके मनको आक्रमण करके ॥ ९७ ॥ तम (अंधकार) द्वारा आच्छादन पूर्वक क्रोधकी उत्पत्ति करताहै स्वयंहारीके तीन पुत्र हुएहैं ॥९८॥ सर्वाहारी, अर्द्धहारी और वीर्यहारी यह अपवित्र गृहमें मन्दाचार गृहमें ॥ ९९ ॥

विना पैर धोये पाकशालामें प्रवेश और जिसके खलमें (खरहानमें गोष्ठम और घरमें विद्रोह उपस्थित होता है ॥ १०० ॥ उन सब स्थानोंमें अन्याय रीतिसे विहार और रमण करते हैं। काकजंघ नामक भ्रामणीका पुत्र हुआ ॥ १०१ ॥ उसके प्रविष्ट होनेपर घरमें कोई प्रसन्नताको प्राप्त नहीं होता; जो पुरुष भोजन करनेके समय गान करतेहैं मित्रोंसे बात चीत करतेहैं वा हँसते हैं ॥ १०२ ॥ और जो संध्याकालमें मैथुन करते हैं, उनपर काकजंघ आक्रमण करता है हेद्विज! ऋतुकालमें हरिणीने तीन कन्या उत्पन्न करी ॥ १०३ ॥ पहली कन्याका नाम कुचहरा, दूसरीका नाम व्यञ्जनहारिका और तीसरि कन्याका नाम जातहारिणी हुआ ॥ १०४ ॥ सम्यक् प्रकारकी विधिसे जिस कन्याका विवाह नहीं किया जाता और विवाहकी लग्नके बीत जानेपर विवाह होता है, उस

अप्रक्षालितपादेषुप्रविशत्सुमहानसम् ॥ खलेषुगोष्ठेषुचवैदोहोयेषुगृहेषुवै ॥ १०० ॥ तेषुसर्वेषुयथान्यायंविहरन्तिरमन्तिच ॥ भ्रामण्यास्तनयस्त्वेकःकाकजंघइतिस्मृतः ॥१०१॥ तेनाविष्टोरतिंसर्वोनैवप्राप्नोतिवैमुने ॥ भुञ्जन्योगायतेमैत्रेगायतेहसतेचयः ॥१०२॥ सन्ध्यामैथुनिनंचैवनरमाविशतिद्विज ॥ कन्यात्रयंप्रसूतासायाकन्याऋतुहारिणी ॥१०३॥ एकाकुचहराकन्याअन्याव्यञ्जनहारिका ॥ तृतीयातुसमाख्याताकन्यकाजातहारिणी ॥१०४॥ यस्यानक्रियतेसर्वःसम्यग्वैवाहिकोविधिः ॥ कालातीतेऽथवातस्याहरत्येकाकुचद्वयम् ॥ १०५ ॥ सम्यक्श्राद्धमदत्त्वाचतथानभ्यर्च्यमातृकाः ॥ विवाहितायाःकन्यायाहरतिव्यञ्जनंतथा ॥ १०६॥ अग्न्यम्बुशून्येचतथाविधूपेसूतिकागृहे ॥ अदीपशस्त्रमुसलेभूतिसर्षपवर्जिते ॥ १०७ ॥ अनुप्रविश्यसाजातमपहृत्यात्मसम्भवम् ॥ क्षणप्रसविनीबालंतत्रैवोत्सृजतेद्विज ॥ १०८ ॥ साजातहारिणीनामसुघोरापिशिताशना ॥ तस्मात्संरक्षणंकार्यंयत्नतःसूतिकागृहे ॥ १०९ ॥ स्मृतिंचाप्रयतानांचशून्यागारनिषेवणात् ॥ अपहन्तिसुतस्तस्याः प्रचण्डोनामनामतः ॥ ११० ॥ पौत्रेभ्यस्तस्यसंभूतालीकाशतसहस्रशः ॥ चण्डालयोनयश्चाष्टौदण्डपाशातिभीषणाः ॥ १११ ॥

नारीके दोनों कुचाओंको वह कुचहरा हरण करती है ॥१०५॥ श्राद्धादि कार्य भली भाँति न करके और माताकी बिना पूजा किये जो कन्या व्याही जाती है, उसका व्यंजनहारिका व्यंजन हरण करती है ॥ १०६ ॥ सूतिकागृह अर्थात् सोवरमें अग्नि, जल, धूप, दीप, शस्त्र, मुसल, भस्म और सरसोंके न होनेसे ॥ १०७ ॥ जात हारिणी वहां प्रवेश करके वहांके बालकोंको हरण कर तत्कालोत्पन्न अन्यबालकोंको उस स्थानमें रख देती है ॥ १०८ ॥ इसकारण पिशिताशना भयंकरी उस जात हारिणीसे सोवरमें यत्नपूर्वक सदा बालककी रक्षा करे ॥ १०९ ॥ उसका पुत्र प्रचण्ड है, सूने घरमें रहनेके कारण असंयतचित्त मनुष्योंकी स्मृति नष्ट करता है ॥ ११० ॥ उसके पौत्रोंसे सैकड़ों हजारों लोक उत्पन्न हुए दण्ड पाश धारण करनेवाली महाभयंकर आठ चाण्डालयोनिभी इसी वंशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ १११ ॥

लीका और चाण्डाल जातिगण भूखसे आतुर होकर परस्परको भक्षण करनेकी इच्छासे जब दौड़ी ॥ ११२ ॥ तब प्रचंडने उसको निवारण करके जिस समयमें स्थापन किया था, सो सुनो ॥ ११३ ॥ जो पुरुष आजसे लीकोंको स्थान देगा उसको मैं निःसन्देह अत्यन्त दारुण दंड दूंगा ॥ ११४ ॥ चाण्डालके घरमें वास करके वा पराये गृह (वेश्यागृह) में जो स्त्री संतान उत्पन्न करती है. वह लीक उसकी समस्त संतानका विनाश करती है ॥ ११५ ॥ स्त्री पुरुषके वीर्यको हरने वाली बीजापहारिणीने वातरूपा और अरूपा नामक जो दो कन्याको उत्पन्न किया ॥ ११६ ॥ तिनमें वातरूपा अभिषेक समयमें शुक्रको जिसमें निक्षेप करती है. वह पुरुष वा स्त्री वातशुक्रत्व (रोग विशेष) को प्राप्त होते हैं॥ ११७॥ जो मनुष्य विना स्नान किये और विना भोजन किये स्त्रीसंभोग करता है तथा

क्षुधाविष्टास्ततोलीकास्ताश्चचण्डालयोनयः ॥ अभ्यधावन्तचान्योन्यमत्तुकामाःपरस्परम् ॥ ११२ ॥ प्रचण्डोवारयित्वातुयास्ताश्चण्डालयोनयः ॥ समये स्थापयामासयादृशेतादृशंशृणु ॥ ११३ ॥ अद्यप्रभृतिलोकानामावासंयोहिदास्यति ॥ दण्डंतस्याहमतुलंपातयिष्येनसंशयः ॥ ११४ ॥ चण्डालयोन्या वसथेलीकायाप्रसविष्यति ॥ तस्याश्चसन्ततिःपूर्वासाचसद्योनशिष्यति ॥ ११५ ॥ प्रसूतेकन्यकेद्वेतुस्त्रीपुंसोर्बीजहारिणी ॥ वातरूपामरूपांचतस्याःप्रहरणं तुते ॥ ॥ ११६ ॥ वातरूपानिषेकान्तेसायस्मैक्षिपतेसुतम् ॥ सपुमान्वातशुक्रत्वंप्रयातिवनितापिवा ॥ ११७ ॥ तथैवगच्छतःसद्योनिर्बीजत्वमरूपया ॥ अस्नाताशीनरोयोऽसौतथाचापिवियोगिनः ॥११८॥ विद्वेषिणीतुयाकन्याभृकुटीकुटिलानना ॥ तस्यद्वौतनयौपुंसामपकारप्रकाशकौ ॥ ११९॥ निर्बीजत्वं नरोयातिनारीवाशौचवर्जिता ॥ पैशुन्याभिरतंलोलमसज्जलनिषेवणम् ॥ १२० ॥ पुरुषद्वेषिणंचैतौनरमाक्रम्यतिष्ठतः ॥ मात्राभ्रात्रातथामित्रैरभीष्टैःस्वजनैः परैः ॥ १२१ ॥ विद्विष्टोनाशमायातिपुरुषोधर्मतोऽर्थतः ॥ एकस्तुस्वगुणाँल्लोकेप्रकाशयतिपापकृत् ॥ १२२ ॥

किसीवियोनिमें मैथुनासक्त होता है अरूपा उसको शीघ्र निर्बीज करती है ॥ ११८ ॥ कुटिल मुख और भृकुटि चढ़ानेवाली विद्वेषिणीके दो पुत्र हुए वह सदा पुरुषोंका अपकार प्रकाश करते हैं ॥ ११९ ॥ शौचवर्जित अर्थात् अपवित्र रहनेवाले नर नारीगणही निर्बीजता लाभ करते हैं । विद्वेषणीके दोनों पुत्र पैशुन्यरत ॥ पराई निन्दामें रत) लाल (चपल) अशुद्धजलसेवी ॥ १२० ॥ और पुरुषद्वेषी पुरुषको आक्रमण करके अवस्थान करते हैं । यथार्थमें किसी माता, भ्राता, मित्र, प्रियजन और आत्मीय जनोंके ॥१२१॥ विद्वेषी होनेसे धर्म और अर्थका नाश करते हैं।पापाचारी एक पुत्र अपने गुणोंको लोकमें प्रकाशित करता है॥ १२२॥

दूसरा लोकोंका गुण और मैत्री को आकर्षण करलेता है । इस प्रकार पापाचारी दुःसहगण संपूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रहे हैं ॥ १२३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां दौःसहोत्पत्तिसमापनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी यह तामसी सृष्टि कही गई । अब रुद्रसर्गका विषय कहताहूं सुनो ॥ १ ॥ आठ पुत्र, उनकी पत्नी, और समस्त पुत्र कल्पादिमें आत्मतुल्य पुत्रकी चिन्ता करनेसे वैसेही हुए ॥२॥ हे द्विजसत्तम ! उन आठों कुमारोंमें जो एक कुमार नीललोहित शरीरवाला ब्रह्माजीके शरीरसे उत्पन्न हुआ था वह प्रभुकी गोदीमें सुस्वरसे रोदन करने लगा ॥ ३ ॥ उसको रोता देखकर ब्रह्माजीने पूछा "तू किस निमित्त रोताहै"कुमारने कहा "हे जगत्पते ! मुझको नाम प्रदानकीजिये" ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले

द्वितीयस्तुगुणान्मैत्रींलोकस्थामपकर्षति ॥ इत्येतेदौःसहाःसर्वेयक्ष्मणःसन्ततावथ ॥ पापाचाराःसमाख्यातायैर्व्याप्तमखिलंजगत् ॥ १२३ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदौःसहोत्पत्तिसमापनंनामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ इत्येषतामसःसर्गोब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ रुद्रसर्गंप्रवक्ष्यामितन्मेनिगदतःशृणु ॥ १ ॥ तनवश्चतथैवाष्टौपत्न्यःपुत्राश्चतेतथा ॥ कल्पादावात्मनस्तुल्यंसुतंप्रध्यायतःप्रभोः ॥ २ ॥ प्रादुरासीदथाङ्केऽस्यकुमारोनीललोहितः ॥ रुरोदसुस्वरंसोऽथद्रवंश्चद्विजसत्तम ॥ ३ ॥ किंरोदिषीतितंब्रह्मारुदन्तंप्रत्युवाचह ॥ नामदेहीतितंसोऽथप्रत्युवाचजगत्पतिम् ॥ ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ रुद्रस्त्वंदेवनाम्नासिमारोदीर्धैर्य्यमावह ॥ एवमुक्तस्ततःसोऽथसप्तकृत्वोरुरोदह ॥ ५ ॥ ततोऽन्यानिददौतस्मैसप्तनामानिवैप्रभुः ॥ स्थानानिचैषामष्टानांपत्नीःपुत्रांश्चवैद्विज ॥ ६ ॥ भवंशर्वंतथेशानंतथापशुपतिंप्रभुः ॥ भीममुग्रंमहादेवमुवाचसपितामहः ॥ ७ ॥ चक्रेनामान्यथैतानि स्थानान्येषांचकारह ॥ सूर्य्योजलंमहीवह्निर्व्वायुराकाशमेवच ॥ ८ ॥ दीक्षितोब्राह्मणःसोमइत्येतास्तनवःक्रमात् ॥ सुवर्चलातथैवोमाविकेशीचापरास्वधा ॥ ॥ ९ ॥ स्वाहादिशस्तथादीक्षारोहिणीचयथाक्रमम् ॥ सूर्य्यादीनांद्विजश्रेष्ठरुद्राद्यैर्नामभिःसह ॥ १० ॥

तुम्हारा "रुद्र" नाम हुआ अब मत रोओ, धैर्य धारण करो । ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर कुमार सातवार फिर रोया ॥ ५ ॥ हे द्विज ! तब क्रमानुसार उसको और भी सात नाम प्रदान किये । फिर इन आठोंको आठस्थान,पत्नी और पुत्र दान किये ॥६॥ पितामह ब्रह्माजीने रुद्र, भव, शर्व, ईशान,पशुपति,भीम,उग्र, और महादेव॥७॥यह आठ नाम प्रदान करके आठ स्थानका निर्देश किया। सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि,वायु, आकाश ॥८॥ दीक्षित, ब्राह्मण और सोम यह आठ मूर्त्ति और सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा ॥ ९ ॥ स्वाहा, दिक्, दीक्षा और रोहिणी, यह रुद्रादि नामक रुद्रकी पत्नी हैं. हे द्विजश्रेष्ठ ! अब रुद्रादिके नामसहित सूर्यके

पुत्रोंके नाम कहताहूं, सुनो ॥ १० ॥ शनैश्वर, शुक्र,लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध यह आठ क्रमशः रुद्रादिके पुत्र हैं ॥ ११ ॥ यह रुद्र इस प्रकारसे सतीको भार्यारूपसे प्राप्त हुएथे। फिर दक्षके कोपसे सतीने अपना देह त्यागकिया ॥ १२॥ (कारण कि जहाँ शिवजीका निरादर होवे वहाँ विद्वानको स्थित रहना नहीं चाहिये यह सब ब्राह्मण जो महेश्वरसे द्वेष करते हैं वे पापसे नष्टचित्त हो वेदसे बाहर हों तथा पाखण्डमें निरत होकर नरकगामी हों यह कलियुग प्राप्त होनेसे दरिद्र और शूद्रोंका जप करने वाले हों) ऐसा शाप दे मेनकाके गर्भमें हिमवान्‌की पुत्री हुईथी, समुद्रका सखा मैनाक उनका भाई था ॥ १३ ॥ भगवान् भवने फिर पार्वतीसे विवाह किया और भृगुजीकी भार्या जो ख्याति नामसे प्रसिद्ध थी,उसके दो पुत्र हुए । एकका नाम धाता और दूसरेका विधाता रक्खा गया ॥ १४॥

शनैश्वरस्तथाशुक्रोलोहिताङ्गोमनोजवः ॥ स्कन्दःसर्गोऽथसन्तानोबुधश्चानुक्रमात्सुताः ॥ ११ ॥ एवम्प्रकारोरुद्रोऽसौसतींभार्य्यामविन्दत ॥ दक्षकोपाच्चतत्याजसासतीस्वंकलेवरम् ॥ १२॥ शंभोरवज्ञायत्रास्तेस्थातव्यंनैवसूरिभिः ॥ (एतेचब्राह्मणाःसर्वे यद्विषंतोमहेश्वरम् ॥ भवंतुतेवेदबाह्याःपापोपहतचेतसः ॥ पाखंडाचारनिरताःसर्वेनिरयगामिनः ॥ कलौयुगेतुसंप्राप्तेदरिद्राःशूद्रजापकाः ॥ हिमवद्दुहितासाभून्मेनायांद्विजसत्तमः ॥) तस्याभ्रातातुमैनाकःसखाम्भोधेरनुत्तमः ॥ १३ ॥ उपयेमेपुनश्चैनामनन्यांभगवान्भवः ॥ देवौधाताविधातारौभृगोःख्यातिरसूयत ॥ १४ ॥ श्रियंचदेवदेवस्यपत्नीनारायणस्यया ॥ आयतिर्नियतिश्चैवमेरोःकन्येमहात्मनः ॥ १५ ॥ भार्येधाताविधात्रोस्तेतयोर्जातौसुतावुभौ ॥ प्राणश्चैवमृकण्डुश्चपितामममहायशाः ॥ १६ ॥ मनस्विन्यामहंतस्मात्पुत्रोवेदशिराममम ॥ धूम्रवत्यांसमभवत्प्राणस्यापिनिबोधमे ॥ १७ ॥ प्राणस्यद्युतिमान्पुत्रउत्पन्नस्तस्यचात्मजः ॥ अजराश्चतयोः पुत्राः पौत्राश्चबहवोऽभवन् ॥ १८ ॥ पुत्रीमरीचेः संभूतिःपौर्णमासमसूयत ॥ विरजाः पर्वतश्चैव तस्यपुत्रौमहात्मनः ॥ १९ ॥

और जो देवदेव भगवान् नारायण हैं. उनकी पत्नी लक्ष्मीजी हुई और जो महात्मा मेरुकी आयति और नियति नामक दो कन्या थीं ॥ १५ ॥ सो धाता विधाताकी भार्या हुई । एक एक पुत्र इन दोनोंके उत्पन्न हुआ आयतिके जो पुत्र हुआ, उसका नाम धाताने प्राण रक्खा और नियतिके पुत्रका नाम विधाताने मृकण्डु रक्खा यही महायशवान् मुझ मार्कण्डेयके पिता हैं ॥ १६ ॥ मेरे पिता मृकण्डुजीका विवाह मनस्विनीसे हुआ जो मेरी जननी है और मेरे जो पुत्र हुआ, उसका नाम मैंने वेदशिरा रक्खा । प्राणकी पत्नी धूम्रवती हुई उसके जो पुत्र हुए, उनको कहताहूं ॥ १७ ॥ धूम्रवतीके गर्भसे द्युतिमान् और अजरानामक प्राणके दो पुत्र उत्पन्न हुए इनके बेटे पोते अनेक हुएथे ॥ १८ ॥ मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया । विरजा और पर्वतनामक उसके दो महात्मा पुत्र हुए॥ १९॥

हे द्विजवर ! इनके पुत्रोंकी वंशकीर्तिके लिये रक्षा करूंगा अर्थात् राजवंशके वर्णनमें कीर्तन करूंगा । अंगिराकी पत्नी स्मृतिने ॥ २० ॥ सिनीवाली कुहू, राका और अनुमतिनामक चार कन्याको उत्पन्न किया । अत्रिसे अनसूयाने पापरहित ॥ २१ ॥ सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेयनामक तीन योगियोंको पुत्ररूपमें प्राप्त कियाथा । पुलस्त्यकी भार्या प्रीतिके गर्भसे दत्त वा दम्भोलिकी उत्पत्ति हुई ॥ २२ ॥ यही पूर्वजन्म अर्थात् स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्य नामसे विख्यात थे । प्रजापति पुलहकी भार्या क्षमाने कर्दम अर्ववीर, और सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये । ऋतुकी भार्या सन्नतिने ॥ २३ ॥ २४ ॥ ऊर्द्धरेता साठ हजार वालखिल्यगणको उत्पन्न किया है, उर्ज्जाके गर्भसे वसिष्ठके सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ उनके नाम रज, गात्र, ऊर्द्धबाहु, सवल, अनघ, सुतपा

तयोः पुत्रांस्तुवक्ष्येहंवंशसंकीर्त्तनेद्विज ॥ स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नीप्रसूताकन्यकास्तथा॥२०॥सिनीवालीकुहूश्चैवराकाचानुमतिस्तथा ॥ अनसूयातथैवात्रेर्जज्ञेपु त्रानकल्मषान् ॥२१॥ सोमंदुर्वाससंचैवदत्तात्रेयंचयोगिनम्॥प्रीत्यांपुलस्त्यभार्यायांदत्तोन्यस्ततसुतोऽभवत्॥२२॥पूर्वजन्मनिसोऽगस्त्यःस्मृतःस्वायम्भुवेऽ न्तरे॥कर्दमश्चार्ववरिश्चसहिष्णुश्चसुतत्रयम् ॥२३॥ क्षमातुसुषुवेभार्यापुलहस्यप्रजापतेः ॥ क्रतोस्तुसन्नतिर्भार्यावालखिल्यानसूयत ॥२४॥ षष्टिर्यानिसहस्रा णिऋषीणामूर्द्धरेतसाम् ॥ ऊर्जायान्तुवसिष्ठस्यसप्ताजायन्तवैसुताः ॥२५॥ रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्चसबलश्चानवस्तथा ॥ सुतपाःशुक्रइत्येतेसर्वेसप्तर्षयःस्मृताः ॥ ॥२६॥ योसावग्निरभीमानीब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ॥ तस्मात्स्वाहासुताँल्लेभेत्रीनुदारौजसोद्विज ॥२७॥ पावकंपवनंचैवशुचिंचापिजलाशिनम् ॥ तेषांतुसन्तता वन्येचत्वारिंशच्चपञ्च च ॥ २८ ॥ कथ्यन्तेबहुशश्चैतेपितापुत्रत्रयंचयत् ॥ एवमेकोनपंचाशद्दुर्जयाःपरिकीर्तिताः ॥ २९ ॥ पितरोब्रह्मणासृष्टायेव्याख्याता मयातव ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषदोऽनग्नयःसाग्नयश्चये ॥ ३० ॥ तेभ्यः स्वधासुतेजज्ञेमेनांवैधारिणींतथा ॥ तेउभेब्रह्मवादिन्यौयोगिन्यौचाप्युभेद्विज ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेरुद्रसर्गाभिधानोनामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

और शुक्र, यही सप्त ऋषिके नामसे विख्यात हैं ॥ २६ ॥ हे द्विज ! अभिमानी अग्नि ब्रह्माजीके ज्येष्ठ पुत्र हैं, उनका विवाह स्वाहाके संग हुआ और उनके भी तीन पुत्र बड़े प्रतापी और महाबलवान् हुए ॥ २७ ॥ पावक, पवमान और शुचि जो सदा जलका पान करते रहते हैं, उनके पैंतालीस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ और अन्य तीन पुत्र पिता पुत्र नामसे कहे हैं वह अग्निके पोते हैं, यह उनचास (४९) अग्निके पोते दुर्जय कहे गये हैं ॥ २९ ॥ मैंने तुमसे इनकोही पूर्वमें पितरोंके नामसे व्याख्या करी है अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, अनग्नि और साग्नि ॥ ३० ॥ पितरोंसे स्वधाने मेना और वैधारिणी नामक दो कन्या प्राप्त करी । हे द्विज ! यह दोनों कन्या परम ब्रह्मवादिनी और योगाभ्यासमें तत्पर हुईं ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रुद्रसर्गाभिधानो नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने जो यह स्वायंभुव मन्वन्तरका विषय वर्णन किया, उसको सम्यक् प्रकारसे सुननेकी इच्छा करताहूं आप कहो ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! मन्वन्तरका प्रमाण देवता देवर्षि क्षितीश (राजा) और देवेन्द्रकी कथा विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—मन्वन्तरकी संख्या कुछ अधिक इकहत्तर (७१) चौयुगी है, उसको मनुष्यके प्रमाणसे कहताहूं सुनो ॥ ३ ॥ तीसकरोड सडसठलाख, वीसहजार वर्ष मनुष्यके एक मन्वन्तरमें बीतते हैं ॥ ४ ॥ यह मन्वन्तरका प्रमाण अधिकाई के विना है देवताओंके आठलाख ॥ ५ ॥ बावनसहस्र वर्ष एक मन्वन्तरमें बीचजातेहैं. पहला मनु स्वायंभुव, दूसरा स्वारोचिष॥६॥औत्तम, तामस, रैवत, और चाक्षुष, यह छः मनु वीतगयेहैं इससमय वैवस्वत मनु वर्त्तमान हे ॥ ७ ॥ और पंचसावर्णि रौच्य

क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ स्वायम्भुवंत्वयाख्यातमेतन्मन्वतरंचयत् ॥ तदहंभगवन्सम्यक्श्रोतुमिच्छामिकथ्यताम् ॥ १ ॥ मन्वन्तरप्रमाणंचदेवादेवर्षयस्तथा ॥ येचक्षितीशाभगवन्देवेन्द्रश्चैवयस्तथा ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ मन्वन्तराणांसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ॥ मानुषेणप्रमाणेनशृणुमन्वन्तरंचमे ॥ ३ ॥ त्रिंशत्कोटयस्तुसंख्याताः सहस्राणिचविंशतिः ॥ सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसंख्यया ॥ ४ ॥ मन्वन्तरप्रमाणंचइत्येतत्साधिकंविना ॥ अष्टौशतसहस्राणिदिव्ययासंख्ययास्मृतम् ॥५ ॥ द्विपंचाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानिच ॥ स्वायम्भुवोमनुः पूर्वं मनुःस्वारोचिषस्तथा॥६॥ औत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ षडेतेमनवोऽतीतास्तथावैवस्वतोऽधुना ॥ ७॥ सावर्णाःपंचरौच्याश्चभौत्याश्चागामिनस्त्वमी ॥ एतेषांविस्तरंभूयोमन्वंतरपरिग्रहे ॥ ८ ॥ वक्ष्येदेवानृषींश्चैवदेवेन्द्राःपितरश्चये ॥ उत्पत्तिसंग्रहंब्रह्मन्श्रूयतामस्यसंततिः ॥ ९ ॥ यच्चतेषामभूत्क्षेत्रंतत्पुत्राणांमहात्मनाम् ॥ मनोःस्वायम्भुवस्यासन्दशपुत्रास्तुतत्समाः ॥१०॥ यैरियंपृथिवीसर्वासप्तद्वीपासपर्वता ॥ ससमुद्राऽऽकरवतीप्रतिवर्षंनिवेशिता॥११॥ स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्वमाद्येत्रेतायुगेतथा ॥ प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तैःपौत्रैःस्वायम्भुवस्यच॥१२॥प्रियव्रतात्प्रजावत्यांवीरात्कन्याव्यजायत ॥ कन्यासातुमहाभागाकर्दमस्यप्रजापतेः॥१३॥

और भौत्य यह आगामि हैं अर्थात् अब आगे आवेंगे, इनका संपूर्ण वृत्तान्त मन्वन्तरोंके वर्णनमें विस्तारसहित आपसे कहूंगा ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन् ! देवता, ऋषि, इन्द्र और पितर जो जो मन्वन्तरों में होतेहैं, उन सबकी उत्पत्ति और संग्रह सन्तानसहित वर्णन करताहूं, आप सुनिये॥९॥ और उन महात्मा पुरुषोंके जो जो स्थान तथा जोजो संतान उत्पन्न हुई, वहभी कहताहूं । स्वायंभुवमनुके दश पुत्र उत्पन्न हुए, सो सब उनकेही समानथे ॥ १० ॥ जिन्होंने सप्तद्वीपवाली सपर्वता,ससमुद्रा और आकर(खान)वती इस पृथ्वीको वर्षों में विभक्त कियाथा ॥ ११ ॥ पूर्व में स्वायम्भुव मन्वन्तर अर्थात् त्रेतायुगके आदिमें प्रियव्रतके पुत्र और स्वायम्भुवके पोतोंने भी ऐसाही कियाथा ॥ १२ ॥ कर्दम प्रजापतिकी प्रजावती नामक महाभाग कन्याके गर्भमें और प्रियव्रतके औरससे ॥ १३ ॥

दश पुत्र और दोकन्याओंने जन्म ग्रहण किया। इन दोनों कन्याने सम्राट् और कुक्षि नाम धारण किया था. और उपरोक्त दशभ्राता महा शूर और प्रजापतिके समान हुए ॥ १४ ॥ उन दशोंके नाम—अग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य, और सवन ॥ १५ ॥ हे महाभाग! इनमें सबसे छोटे मेधा, अग्निबाहु और मित्र इन तीनने जातिस्मर होनेसे राज्यनहीं किया, बरन् योगपरायण हुए। तब शेष उन सात पुत्रोंको राजा प्रियव्रतने सातोंद्वीपका राज्य दिया और वह लोगभी धर्मसहित सातों द्वीपोंका राज्य करकरने लगे। अब मैं उन द्वीपोंका नाम भी वर्णन करताहूं ॥ १६ ॥ अर्थात् राजा प्रियव्रतने अग्नीध्रको जम्बूद्वीपका राजा किया और मेधातिथिको प्लक्षद्वीपका राज्य दिया ॥ १७ ॥ फिर वपुष्मानको शाल्मलिद्वीपका, ज्योतिष्मानको कुशद्वीपका, द्युतिमान्को क्रौञ्चद्वीपका और भव्यको

कन्येद्वेदशपुत्रांश्चसम्राट्कुक्षीचतेउभे ॥ तयोर्वैभ्रातरःशूराःप्रजापतिसमादश ॥१४॥ आग्नीध्रोमेधातिथिश्चवपुष्मांश्चतथापरः ॥ ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्यः सवनःसप्तएवते ॥ १५ ॥ मेधाग्निबाहुमित्रास्तुत्रयोयोगपरायणाः ॥ जातिस्मरामहाभागानराज्यायमनोदधुः ॥ प्रियव्रतोऽभ्यषिंचत्तान्सप्तसप्तसुपार्थिवान् ॥ द्वीपेषुतेनधर्मेणद्वीपांश्चैवनिबोधमे ॥१६॥ जम्बुद्वीपेतथाग्नीध्रंराजानंकृतवान्पिता ॥ प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापितेनमेधातिथिःकृतः ॥ १७ ॥ शाल्मलेस्तुवपुष्मन्तं ज्योतिष्मन्तंकुशाह्वये ॥ क्रौंचद्वीपेद्युतिमन्तंभव्यंशाकाह्वयेश्वरम् ॥ १८ ॥ पुष्कराधिपतिंचापिसवनंकृतवान्सुतम् ॥ महावीतोधातकिश्चपुष्कराधिपतेः सुतौ ॥१९॥ द्विधाकृत्वातयोर्वर्षंपुष्करेसन्यवेशयत् ॥ भव्यस्यपुत्राःसप्तासन्नामतस्तान्निबोधमे ॥२०॥ जलदश्चकुमारश्चसुकुमारोमणीवकः ॥ कुशोत्तरोऽथमेधावीसप्तमस्तुमहाद्रुमः ॥२१॥ तन्नामकानिवर्षाणिशाकद्वीपेचकारसः ॥ तथाद्युतिमतःसप्तपुत्रास्तांस्तुनिबोधमे ॥२२॥ कुशलोमनुगश्चोष्णःप्राकारश्चार्थकारकः ॥ मुनिश्चदुन्दुभिश्चैवसप्तमःपरिकीर्तितः ॥२३॥ तेषांस्वनामधेयानिक्रौंचद्वीपेतथाभवन् ॥ ज्योतिष्मतःकुशद्वीपेपुत्रनामाङ्कितानिवै ॥ २४ ॥

शाकद्वीपका राजा किया ॥ १८ ॥ सवन नामक पुत्रको पुष्करद्वीपका अधिपति किया, तब इन पुष्कराधिपति सवनके मेधावी और धातकी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ तब उन दोनों पुत्रोंको महाराज सवनने पुष्करद्वीपके दो भाग करके बाँट दिये, और शाकद्वीपके राजा भव्यके सात पुत्र हुए, उन सबके नाम वर्णन करताहूं ॥ २० ॥ जलद, कुमार, सुकुमार, मनीवक, कुशोत्तर, मेधावी और सातवाँ महाद्रुम नाम हुआ ॥ २१ ॥ तब शाकद्वीपके सातभाग करके उस राजाने सातों पुत्रोंको दे दिये, वह सप्तभाग, सप्तवर्ष इन्हींके नामसे प्रसिद्ध हुए। इसीप्रकार क्रौञ्चद्वीपके राजा द्युतिमानके भी सात पुत्र हुए,उनके भी नाम कहताहूं॥२२॥ कुशल, मनुग, उष्ण, आकार, अर्थकारकमुनि और सातवाँ दुन्दुभि नामक हुआ ॥ २३ ॥ इन सात नामोंके अनुसार क्रौञ्चद्वीपकेभी सातभाग हुए थे । ज्योति

ष्मान्ने सप्तपुत्रोंके नामानुयायी सप्तवर्षका कुशद्वीपमें विभाग किया था ॥२४॥ (वहाँ भी सातवर्ष बनाये उनके नाम मुझसे सुनो)उनके नाम ये हैं उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन ॥ २५ ॥ धृतिमान्, प्रभाकर और कपिल. और शाल्मलिद्वीपका जो वपुष्मान् राजा था उसके भी सातपुत्र उत्पन्न हुए ॥ २६ ॥ उनके नाम-श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सातवाँ केतुमान् हुआ ॥ २७ ॥ इन्हींके नामसे वह शाल्मलिद्वीपभी सप्तभाग होकर वर्षके नामसे प्रसिद्ध हुआ और जो मेधातिथि प्लक्षद्वीपका नरेश्वर था, उसके भी सातपुत्र हुए ॥२८॥ तब इसने भी अपने सातोंपुत्रोंको प्लक्षद्वीपके सातभाग करके दे दिये और इन्हीं सबके नामसे वर्ष विख्यात हुए उनके नाम—शाकभव, शिशिर और सुखोदय ॥ २९ ॥ आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव, तथा प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, और शाक इत्यादि इन पाँचों द्वीपोंमें

(तत्रापिसप्तवर्षाणितेषांनामानिमेशृणु) ॥ तस्यापिसप्तपुत्रास्तुज्ञेयास्तेपिमहौजसः ॥ उद्भिदंवैणवंचैवसुरथंलम्बनंतथा ॥ २५ ॥ धृतिमत्प्राकरंचैव कापिलंचापिसप्तमम् ॥ वपुष्मतःसुताःसप्तशाल्मलेशस्यचाभवन् ॥ २६ ॥ श्वेतश्चहरितश्चैवजीमूतोरोहितस्तथा ॥ वैद्युतोमानसश्चैवकेतुमान्सप्तमस्तथा ॥ ॥ २७ ॥ तथैवशाल्मलेतेषांसमनामानिसप्तवै ॥ सप्तमेधातिथेःपुत्राःप्लक्षद्वीपेश्वरस्यवै ॥ २८ ॥ येषांनामाङ्कितैर्वर्षैःप्लक्षद्वीपस्तुसप्तधा ॥ पूर्वंशाकभवंवर्षं शिशिरंतुसुखोदयम् ॥ २९ ॥ आनन्दंचशिवंचैवक्षेमकंचध्रुवंतथा ॥ प्लक्षद्वीपादिभूतेषुशाकद्वीपान्तिमेषुवै ॥ ३० ॥ ज्ञेयःपंचसुधर्मश्चवर्णाश्रमविभागजः ॥ नित्यःस्वाभाविकश्चैवअहिंसाविधिवर्जितः ॥ ३१ ॥ (यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ॥ सुखमायुश्चरूपंचबलंधर्मश्चनित्यशः) पंचस्वेतेषुवर्षेषुसर्वसाधारणःस्मृतः ॥ अग्नीध्रायपितापूर्वंजम्बूद्वीपंददौद्विज ॥ ३२ ॥ तस्यपुत्राबभूवुर्हिप्रजापतिसमानव ॥ ज्येष्ठोनाभिरितिख्यातस्तस्यकिंपुरुषोऽनुजः ॥ ३३ ॥ हरिवर्षस्तृतीयस्तुचतुर्थोऽभूदिलावृतः ॥ वश्यश्चपंचमःपुत्रोहिरण्यःषष्ठउच्यते ॥ ३४ ॥ कुरुस्तुसप्तमस्तेषांभद्राश्वश्चाष्टमः स्मृतः ॥ नवमःकेतुमालश्चतन्नाम्नावर्षसंस्थितिः ॥ ३५ ॥ यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ॥ तेषांस्वभावतःसिद्धिःसुखप्रायाह्ययत्नतः ॥ ३६ ॥

॥३० ॥ और इनके विभागोंमें सदा वर्णाश्रमका धर्म बना रहता है तथा नित्य स्वभासेही वहाँ हिंसाविधि वर्जित है अर्थात् हिंसा नहीं होती ॥ ३१ ॥ (और हिमालयको छोड़कर जो किम्पुरुषादि वर्ष हैं उनमें सुख पूर्णायुरूप बल और धर्म सदा बनारहता है) हे द्विजोत्तम ! संपूर्ण धर्म इन पाँचों द्वीपोंमें साधारण हैं । जिन अग्नीध्रको उनके पिताने जम्बूद्वीप प्रदान किया था ॥ ३२ ॥ उनके प्रजापतिकी समान नौ पुत्र उत्पन्न हुएथे । ज्येष्ठका नाम नाभि, दूसरेका किंपुरुष ॥ ३३ ॥ तीसरेका हरि, चौथेका इलावृत, पाँचवेका रम्य, छठेका हिरण्य ॥ ३४ ॥ सातवेंका कुरु आठवेंका भद्र और नवमका नाम केतुमाल है इन सबके नामानुसार वर्षका भी विभाग हुआ है ॥ ३५ ॥ हिमालयके अतिरिक्त जिनको किंपुरुष कहते हैं उनको स्वभावसे सिद्धि और विनाही यत्नकिये सुख लाभ होताहै ॥ ३६ ॥

विपर्याय वा जरामृत्युजनित उनको कोई भय नहीं होता । वहाँ धर्माधर्म, उत्तम मध्यम और अधम विभाग ॥ ३७ ॥ चारों युगकी भिन्न अवस्था विभिन्न ऋतुकी अवस्था वा ऋतुविभाग नहीं है—अग्नीध्रके पुत्र नाभिकी सन्तान ऋषभ हुआ ॥ ३८ ॥ और ऋषभके पुत्र भरत हुए । ऋषभने पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करके संन्यास अवलम्बन किया था ॥ ३९ ॥ और पुलहाश्रममें वास करके इन महाभागने तपस्या करी थी । हिमनामक दक्षिणवर्ष भरको उनके पिताने समर्पण किया था ॥ ४० ॥ इसी कारण उनके नामानुसार भारतवर्ष नाम हुआहै । भरतके सुमतिनामक एक धार्मिक पुत्र था ॥ ४१ ॥ वह भी सुमतीको राज्य

विपर्ययोनतेष्वस्तिजरामृत्युभयंनच ॥ धर्माधर्मौनतेष्वास्तांनोत्तमाधममध्यमाः ॥ ३७ ॥ नवैचतुर्युगावस्थानाश्रमाऋतवोनच ॥ आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तुऋषभोऽभूत्सुतोद्विज ॥ ३८ ॥ ऋषभाद्भरतोजज्ञेवीरः पुत्रशताद्वरः ॥ सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रंमहाप्राव्राज्यमास्थितः ॥ ३९ ॥ तपस्तेपेमहाभागःपुलहाश्रमसंश्रयः ॥ हिमाह्वंदक्षिणंवर्षंभरतायपितादद‍ौ ॥ ४० ॥ तस्मात्तुभारतंवर्षंतस्यनाम्नामहात्मनः ॥ भरतस्याप्यभूत्पुत्रः सुमतिर्नामधार्मिकः ॥ ४१ ॥ तस्मिन्राज्यंसमावेश्यभरतोऽपिवनंययौ ॥ एतेषांपुत्रपौत्रैस्तुसप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ ४२ ॥ प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तु भुक्तास्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ एषस्वायम्भुवःसर्गःकथितस्तेद्विजोत्तम ॥ पूर्वमन्वन्तरेसम्यक्किमन्यत्कथयामिते ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभुवनकोशेस्वायंभुवमन्वन्तरकथनंनामपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ कतिद्वीपाःसमुद्रावापर्वतावाकतिद्विज ॥ कियन्तिचैववर्षाणितेषांनद्यश्चकामुने ॥ १ ॥ महाभूतप्रमाणंचलोकालोकंतथैवच ॥ पर्य्यासंपरिमाणंचगतिंचन्द्रार्कयोरपि ॥ २ ॥ एतत्प्रब्रूहिमेसर्वं विस्तरेणमहामुने ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ शतार्द्धकोटिविस्तारापृथिवीकृत्स्नशोद्विज ॥ तस्याःसंस्थानमखिलंकथयामिशृणुष्वतत् ॥ ४ ॥

देकर वनको गये थे, इनके पुत्र पौत्रगण और प्रियव्रतके पुत्रगण स्वायंभुव मन्वन्तरमें इस सप्तद्वीपवाली पृथ्वीका भोग करते आतेहैं ॥ ४२ ॥ यह स्वायंभुव सर्ग पूर्व मन्वन्तरमें सम्यक् प्रकार कहा है, अब अधिक क्याकहूं? ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भुवनकोशे स्वायंभुवमन्वन्तरकथनंनाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ क्रौष्टुकि बोले हे मुने ! द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियें कितनी हैं ? ॥ १ ॥ महाभूत और लोकालोकका प्रमाण क्या है ? और चन्द्र सूर्यका व्यास परिमाण और गति किसप्रकार है ? ॥ २ ॥ हे महामुने ! यह सब विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विज ! समस्त पृथ्वीका विस्तार

पचासकरोड़ योजन है, उसके सब स्थानोंके संबंधमें कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥ हे द्विज ! हे महाभाग ! जम्बू इत्यादि पुष्करान्त जिन सबद्वीपोंका विषय कहा है, वह फिर विस्तारसहित कहता हूं ॥ ५ ॥ जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्करद्वीप, यह पूर्व पूर्व द्वीपसे यथाक्रम द्विगुण हैं ॥ ६ ॥ लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि (घृत) दधि, दुग्ध और जलसमुंद्र द्वारा द्विगुण द्विगुण वृद्धिभावसे वह परिवेष्टित हैं ॥ ७ ॥ जम्बूद्वीपकी आकृतिका परिमाण कहता हूं, विस्तार दीर्घता, और गोलाईमें एकलक्ष योजन जम्बूद्वीपका परिमाण है ॥ ८ ॥ हिमवान्, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृंगी, यह सात उसके वर्षपर्वत हैं ॥ ९ ॥ मध्य स्थलमें दो लाख योजन विस्तृत जो दो महागिरि हैं, उनकी दक्षिण और उत्तरदिशामें जो दो दो गिरि अवस्थित हैं ॥ १० ॥ वह परस्पर दश दश सहस्र न्यून

येतेद्वीपामयाप्रोक्ताजम्बुद्वीपादयोद्विज॥पुष्करान्तामहाभागशृण्वेषांविस्तरंपुनः॥५॥द्वीपात्तुद्विगुणोद्वीपोजम्बुःप्लक्षोऽथशाल्मलिः॥ कुशःक्रौंचस्तथाशाकः पुष्करद्वीपएवच ॥ ६ ॥ लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलाब्धिभिः ॥ द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्ध्यासर्वतःपरिवेष्टिताः ॥७॥ जम्बुद्वीपस्यसंस्थानंप्रवक्ष्येऽहंनिबोधमे ॥ लक्षमेकंयोजनानांवृत्तोविस्तारदैर्घ्यतः ॥ ८ ॥ हिमवान्हेमकूटश्चनिषधोमेरुरेवच ॥ नीलःश्वेतस्तथाशृङ्गीसप्ततद्वर्षपर्वताः ॥९॥ द्विलक्षयोजनायामौमध्येत त्रमहाचलौ ॥ तयोर्दक्षिणतोयौतुयौतथोत्तरतोगिरी ॥ १० ॥ दशभिर्दशभिर्न्यूनैःसहस्रैस्तेपरस्परम् ॥ द्विसाहस्रोच्छ्रयाःसर्वेतावद्विस्तारिणश्चते ॥ ११ ॥ समुद्रान्तःप्रविष्टाश्चषडस्मिन्वर्षपर्वताः ॥ दक्षिणोत्तरतोनिम्नामध्येतुङ्गायथाक्षितिः ॥१२॥ वेद्यर्द्धेदक्षिणेत्रीणित्रीणिवर्षाणिचोत्तरे ॥ इलावृतंतयोर्मध्येचन्द्रा र्द्धाकारवत्स्थितम् ॥ १३ ॥ ततःपूर्वेणभद्राश्वंकेतुमालंचपश्चिमे ॥ इलावृतस्यमध्येतुमेरुःकनकपर्वतः ॥१४॥ चतुराशीतिसाहस्रस्तस्योच्छ्रायोमहागिरेः॥ प्रविष्टःषोडशाधस्ताद्विस्तारःषोडशैवतु ॥ १५ ॥ शरावसंस्थितत्वाच्चद्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृतः ॥ शुक्लपीतोऽसितोरक्तःप्राच्यादिषुयथाक्रमम् ॥ १६ ॥

संख्यायुक्त हैं, अन्य सब दो हजार योजन ऊंचे और इसी प्रकार विस्तृत हैं ॥ ११ ॥ इसके बीच समुद्रमें प्रविष्ट छः वर्षपर्वत हैं। यह पृथ्वी उत्तर दक्षिणमें नीची एवं मध्यस्थलमें ऊंची और चौड़ी है ॥ १२ ॥ तीन वर्ष उत्तरमें और तीन वर्ष दक्षिणमें जाने । इन दोनोंके बीचमें इलावृतवर्ष अर्द्धचन्द्राकारसे अवस्थित है ॥ १३ ॥ उसकी पूर्वदिशामें भद्राश्व और पश्चिममें केतुमाल है। इलावृतके मध्यस्थलमें कनक पर्वत सुमेरु है ॥ १४ ॥ इस महापर्वतकी उंचाई चौरासी हजार योजन है। सोलह हजार योजन भूमिमें प्रविष्ट और वहाँसे सोलह हजार योजन विस्तृत है ॥ १५ ॥ इसकी चोटी शरावेके समान बत्तीस हजार योजन चौड़ी है। इस गिरिका वर्ण पूर्वकी ओर श्वेत, दक्षिणकी ओर पीत, पश्चिमकी ओर नीला और उत्तरकी ओर लाल है ॥ १६ ॥

इसकी पूर्वादिआठों दिशामें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका क्रमशः वास है॥ १७॥ उसके ऊपर पूर्वादिके क्रमसे इन्द्रादि लोकपालोंकी और मध्यस्थलमें ब्रह्माकी चौदह हजार योजन विस्तृत सभा शोभायमान है ॥ १८ ॥ इसके नीचे दश हजार योजन ऊंचे पूर्वआदि चारोंदिशाओंमें चार विष्कम्भ पर्वत हैं । उनके नाम मन्दार, गंधमादन ॥ १९ ॥ विपुल और सुपार्श्व, इन चारों पर्वतोंके ऊपर केतुकी समान शोभायमान चार वृक्ष हैं अर्थात् मन्दर पर कदम्ब, गंधमादन पर जामुन ॥ २० ॥ विपुलपर पीपल और सुपार्श्वके ऊपर महान् वरगदका वृक्ष है । इन पर्वतोंका प्रमाण ग्यारहसौ योजन है ॥ २१ ॥ पूर्व दिशामें जठर और देवकूट पर्वत है, वह परस्पर नील और निषध पर्यन्त दीर्घ है ॥ २२ ॥ मेरुके पश्चिम पार्श्वमें निषध और पारियात्र हैं, पूर्वदिशाको समान यह भी नील और निषध पर्यन्त

विप्रोवैश्यस्तथाशूद्रःक्षत्रियश्चस्ववर्णतः ॥ तस्योपरितथैवाष्टौपुर्योदिक्षुयथाक्रमम् ॥ १७ ॥ तस्योपरिसभादिव्याःपूर्वादिषुक्रमेणतु ॥ इंद्रादिलोकपाला नांतन्मध्येब्रह्मणःसभा ॥ योजनानांसहस्राणिचतुर्दशसमुच्छ्रिता ॥ १८ ॥ अयुतोच्छ्रायास्तस्याधस्तथाविष्कम्भपर्वतः ॥ प्राच्यादिषुक्रमेणैवमन्दरो गन्धमादनः ॥ १९ ॥ विपुलश्चसुपार्श्वश्चकेतुपादपशोभिताः ॥ कदम्बोमन्दरेकेतुर्जम्बुर्वैगन्धमादने ॥ २० ॥ विपुलेचतथाश्वत्थःसुपार्श्वेचवटोमहान् ॥ एकादशशतायामायोजनानामिमेनगाः ॥ २१ ॥ जठरोदेवकूटश्चपूर्वस्यांदिशिपर्वतौ ॥ आनीलनिषधायातौपरस्परानिरन्तरौ ॥ २२ ॥ निषधःपारि यात्रश्चमेरोःपार्श्वेतुपश्चिमे ॥ यथापूर्वौतथाचैतावानीलनिषधायतौ ॥ २३ ॥ कैलासोहिमवांश्चैवदक्षिणेनमहाचलौ ॥ पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यव स्थितौ ॥२४॥ शृङ्गवाञ्जारुधिश्चैवतथैवोत्तरपर्वतौ ॥ यथैवदक्षिणेतद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२५॥ मर्यादापर्वताह्येतेकथ्यन्तेऽष्टौद्विजोत्तम ॥ हिमवद्धेमकू टादिपर्व्वतानांपरस्परम् ॥२६॥ नवयोजनसाहस्रंप्रागुदग्दक्षिणोत्तरम् ॥ मेरोरिलावृतेतद्वदन्तरंवैचतुर्दिशम् ॥२७॥ फलानियानिवैजम्ब्वागन्धमादनपर्वते ॥ गजदेहप्रमाणानिपतन्तिगिरिमूर्द्धनि ॥ २८ ॥ तेषांस्रावात्प्रभवतिख्याताजम्बूनदीतिवै ॥ यत्रजाम्बूनदंनामकनकंसम्प्रजायते ॥ २९ ॥

विस्तृत हैं ॥ २३ ॥ दक्षिण दिशामें कैलास और हिमवान्नामक महागिरि हैं, यह पूर्व पश्चिममें आयत, (लम्बायमान) होकर समुद्रमें प्रविष्ट हुए हैं ॥ २४ ॥ उत्तरमें शृंगवान् और जारुधि हैं, दक्षिणदिशाकी समान यह भी समुद्रपर्यन्त विस्तृत हैं ॥ २५ ॥ हे द्विजोत्तम ! यही आठो पर्वतोंकी मर्यादा है, सो मैंने तुमसे कही और हिमवान् तथा हेमकूट आदि पर्वतोंका परस्परमें ॥ २६ ॥ नौ हजार योजन विस्तार है और मेरुके पूर्व दक्षिणआदि चारों दिशामें इलावृतके बीचमें यह सब पर्वत हैं ॥ २७ ॥ गंधमादन पर्वतसे हाथीके देहकी समान जो जम्बूफल पर्वतके शिखरसे गिरते हैं ॥ २८ ॥ उनकी रसोत्पन्न नदीको जम्बू

नदी कहते हैं; इस जम्बूनदीसे जाम्बूनद नामक स्वर्णकी उत्पत्ति हुई है ॥ २९॥ हे द्विजशार्दूल! मेरु पर्वत की चारां ओर परिक्रमा करके वह जम्बूनदी उसी जामुनिके वृक्षके नीचे आनकर वहती है और वहाँके वासकरनेवाले मनुष्य उसीका जल पान करते हैं ॥ ३०॥ भद्राश्वमें अश्वशिरा भारतमें कूर्माकृतिविष्णु के तुमालमें वराह और उत्तरमें मत्स्य रूपसे नारायण स्थित हैं ॥ ३१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! इन चारों पर्वतोंमें नक्षत्रों ऋषियोंकी स्थिति और नक्षत्रोंका गम नागमन होता है और ग्रहोंका अच्छा बुरा फल भी होता रहता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां जम्बूद्वीपवर्णनंनामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे द्विजोत्तम! मन्दरादि चार पर्वतोंमें जो चार वन और सरोवर हैं सो कहताहूं सुनो ॥ १ ॥ पूर्व शैलमें चैत्ररथ, दक्षिणमें नन्दन, पश्चिममें

सापरिक्रम्यवैमेरुंजम्बूमूलंपुनर्नदी॥विशतिद्विजशार्दूलपीयमानाजनैश्वतैः ॥३०॥ भद्राश्वेऽश्वशिराविष्णुर्भारतेकूर्मसंस्थितिः ॥ वराहःकेतुमालेचमत्स्यरूप स्तथोत्तरे॥३१॥तेषुनक्षत्रविन्यासादृषयःसमवस्थिताः॥चतुर्ष्वपिद्विजश्रेष्ठग्रहाभिभवपाठकाः ॥ ३२॥ ॥इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेभुवनकोशेजम्बूद्वीपवर्णनंना मैकपंचाशत्तमोध्यायः॥५१॥ ॥मार्कण्डेयउवाच॥ ॥शैलेषुमन्दराद्येषुचतुर्ष्वपिद्विजोत्तम॥वनानियानिचत्वारिसरांसिचनिबोधमे॥१॥ पूर्वे चैत्ररथंनामदक्षिणे नन्दनंवनम्॥वैभ्राजंपश्चिमेशैलेसावित्रंचोत्तराचले॥२॥अरुणोदंसरःपूर्वेमानसंदक्षिणेतथा॥शीतोदंपश्चिमेमेरोर्महाभद्रंतथोत्तरे॥३॥ शीतार्तश्चक्रमुंजश्चकुलीरो ऽश्वश्चकङ्कवान् ॥मणिशैलोऽथवृषवान्महानीलीभवाचलः॥४॥सुविन्दुर्मन्दरोवेणुस्तामसोनिषधस्तथा ॥ देवशैलश्चपूर्वेणमन्दरस्यमहाचलः ॥ ५ ॥ त्रिकूटः शिखराद्रिश्चकलिङ्गोऽथपतङ्गकः ॥ रुचकःसानुमांश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथविशाखवान् ॥ ६ ॥ श्वेतोदरःसमूलश्चवसुधारश्चरत्नवान् ॥ एकशृङ्गोमहाशैलो राजशैलःपिपाठकः ॥ ७ ॥ पंचशैलोऽथकैलासोहिमवांश्चाचलोत्तमः ॥ इत्येतेदक्षिणेपार्श्वेमेरोःप्रोक्तामहाचलाः ॥ ८ ॥

वैभ्राज और उत्तरमें सावित्र नामक वन है ॥ २ ॥ मेरुके पूवम अरुणोद, दक्षिणमें मानस, पश्चिममें शीतोद और उत्तरमें महाभद्र नामक सरोवर अवस्थित है ॥ ३ ॥ मन्दरकी पूर्वदिशामें शीतार्त, चक्रमुंज, कुलीर, सुकंकवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानीली, भवाचल ॥ ४ ॥ बिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध, और देवशैल, यह सब पर्वत हैं ॥ ५ ॥ त्रिकूट, शिखर, कलिंग, पतङ्गक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान् ॥ ६ ॥ श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एकशृंग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक ॥ ७ ॥ पंचशैल, कैलास और पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्, यह सब महापर्वत मेरुके दक्षिण पार्श्वमें स्थित हैं ॥ ८ ॥

सुराक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिङ्गल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु ॥ ९ ॥ अंजन, कुक्कुट, कृष्णा, पाण्डुर, सहस्रशिखर पारियात्र और शृंगवान् ॥ १० ॥ यह मेरु और विष्कम्भकी पश्चिम दिशासे बाहर स्थित हैं। अब उत्तरदिशाके पर्वतोंका वर्णन करताहूं, सुनो ॥ ११ ॥ शंखकूट, वृषभ, हंस नाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान्, नील ॥ १२ ॥ स्वर्णशृंगी, शातशृंग, पुष्पक, मेघपर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि तथा मयूर और जारुधि ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन्! यह सब पर्वत मेरुके उत्तर भागमें कहे गये हैं। इन पर्वतोंकी कन्दरा अत्यन्त मनोहर हैं ॥ ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम! यह संपूर्ण पर्वत, वन और स्वच्छ जलयुक्त सरोवरोंसे अत्यन्त शोभायमान हैं और इस परम पुण्यमय भूमिमें पुण्यवान् मनुष्योंकाही जन्म होता है ॥ १५ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! स्वर्गकी अपेक्षा अधिक गुणशाली यह सब स्थान भौम

सुरक्षःशिशिराक्षश्चवैदूर्यःपिङ्गलस्तथा ॥ पिंजरोऽथमहाभद्रःसुरसःकपिलोमधुः ॥ ९ ॥ अञ्जनः कुक्कुटःकृष्णः पाण्डुरश्चाचलोत्तमः ॥ सहस्रशिखरश्चा द्रिःपारियात्रःसशृङ्गवान् ॥ १० ॥ पश्चिमेनतथामेरोर्विष्कम्भात्पश्चिमाद्बहिः ॥ एतेऽचलाःसमाख्याताःशृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ॥ ११ ॥ शङ्खकूटो ऽथवृषभोहंसनाभस्तथाचलः ॥ कपिलेन्द्रस्तथाशैलःसानुमान्नीलएवच ॥ १२ ॥ स्वर्णशृङ्गःशातशृङ्गःपुष्पकोमेघपर्वतः ॥ विरजाक्षोवराहाद्रिर्मयूरोजारु धिस्तथा ॥ १३ ॥ इत्येतेकथिताब्रह्मन्मेरोरुत्तरतोनगाः ॥ एतेषांपर्वतानांतुद्रोण्योतीवमनोहराः ॥ १४ ॥ वनैरमलपानीयैःसरोभिरुपशोभिताः ॥ तासुपु ण्यकृतांजन्ममनुष्याणांद्विजोत्तम ॥१५॥ एतेभौमाद्विजश्रेष्ठस्वर्गाःस्वर्गगुणाधिकाः ॥ नतासुपुण्यपापानामपूर्वाणामुपार्जनम् ॥ १६ ॥ पुण्योपभोगएवो क्तोदेवानामपितास्वपि ॥ शीतान्ताद्येषुचैतेषुशैलेषुद्विजसत्तम ॥ १७ ॥ विद्याधराणांयक्षाणांकिन्नरोरगरक्षसाम् ॥ देवानांचमहावासागन्धर्वाणांचशो भनाः ॥ १८ ॥ सभाःपुर्योमनोज्ञाश्चसदैवोपवनैर्युताः ॥ सरांसिचमनोज्ञानिसर्वर्तुसुखदोनिलः ॥ १९ ॥ नचैतेषुक्कमोबाधावैमनस्यंचकुत्रचित् ॥ तदेतत्पा र्थिवंपद्मंचतुष्पत्रंमयोदितम् ॥ २० ॥ भद्राश्वभारताद्यानिपत्राण्यस्यचतुर्दिशम् ॥ भारतंनामयद्वर्षंदक्षिणेनमयोदितम् ॥ २१ ॥

स्वर्ग के नामसे विख्यात हैं, यहाँ अपूर्व पुण्यपापका उपार्जन नहीं है ॥ १६ ॥ हे द्विजसत्तम! इन सब शीतान्तादि पर्वतोंका उपभोग देवताओंको भी पुण्यभोग कहा गया है ॥ १७ ॥ वहाँ विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस, देवता और गंधर्वोंका शोभायमान वासस्थान है ॥ १८ ॥ यह पृथ्वी महापुण्यरूप और अत्यन्त मनोरम्य है और देवताओं के—उपवन तथा सुन्दर सुन्दर मनहरण सरोवरोंसे शोभायमान है और यहांकी पवन भी सब ऋतुओं में सुख देनेवाली है ॥ १९ ॥ किसी स्थानमेंही मनुष्यों के कुछ वैमनस्यका कारण दिखाई नहीं देता इसीलिये मैं ने इसको चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहकर वर्णन कियाहै ॥ २० ॥ भद्राश्वभारतादिही इसके चारों

ओर चार पत्ते हैं। पहले दक्षिणदिशामें जो भारतवर्षका वर्णन किया है ॥२१॥ वह कर्मभूमि है, दूसरे किसी स्थानमें पापपुण्यकी प्राप्ति नहीं है, इसमें सब प्रतिष्ठित रहनेके कारण भारतवर्ष प्रधान कहकर प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ हेद्विज ! कर्मभूमिके कारणही मनुष्यगण स्वर्ग, अपवर्ग, मनुष्यता, नरक, पक्षीयोनि वा अन्यान्य अवस्थाको प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे भाषाटीकायां जम्बूद्वीपान्तर्गतखण्डवर्णनंनाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि—जगद्योनि नारायणका जो ध्रुवाधार नामक पद है, उससेही त्रिपथगामिनी गंगा देवी उत्पन्न हुई है ॥ १ ॥ वह समस्त जलकी आधार स्वरूप सुधायोनि चन्द्रमण्डलमें प्रविष्ट होकर वहां सम्वध्यमान सूर्यकी किरणोंके मिलनेसे अति पवित्रहो ॥ २ ॥ सुमेरुपर्वतके ऊपर गिरी है और वहांके समस्त कूट प्रान्तसे निपतित और वर्त्तित होकर चार धारामें निर्गत हुई हैं ॥ ३ ॥इस प्रकार जलके विस्तारवाली अवलम्बरहित गंगा देवी समस्त मन्दरादि पर्वतमें

तत्कर्मभूमिर्नान्यत्रसंप्राप्तिःपुण्यपापयोः ॥ एतत्प्रधानंविज्ञेयंयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ २२ ॥ अस्मात्स्वर्गापवर्गौचमानुष्यनारकावपि ॥ तिर्यक्त्वमथवाप्यन्यन्नरः प्राप्नोतिवैद्विज ॥२३॥ इति श्रीमा० भुवनकोशेजम्बूद्वीपांतर्गतखण्डवर्णनंनामद्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ धराधारंजगद्योनेः पदंनारायणस्यच ॥ ततःप्रवृत्तायादेवीगङ्गात्रिपथगामिनी ॥१॥ साप्रविश्यसुधायोनिंसोममाधारमम्भसाम् ॥ ततः संवर्द्धमानार्करश्मिसङ्गतिपावनी ॥ २ ॥ पपातमेरुपृष्ठेचसाचतुर्द्धाततोययौ ॥ मेरुकूटतटान्तेभ्योनिपतन्तीविवर्तिता ॥३॥ विकीर्यमाणसलिलानिरालम्बापपातसा ॥ मन्दराद्येषुपादेषुप्रविभक्तोदका समम् ॥४॥चतुर्ष्वपिपपाताम्बुविभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया ॥ पूर्वासीतेऽतिविख्याताययौचैत्ररथंवनम् ॥ ५॥ तत्प्लावयित्वाचययौवरुणोदंसरोवरम् ॥ शीतान्तंच गिरिंतस्मात्ततश्चान्यान्गिरीन्क्रमात् ॥ ६ ॥ गत्वाभुवंसमासाद्यभद्राश्वेजलधिंगता ॥ तथैवालकनन्दाख्यादक्षिणेगन्धमादने ॥ ७॥ मेरुपादवनंगत्वानन्दनंदेवनन्दनम् ॥ मानसंचमहावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ॥ ८ ॥ आसाद्यशैलराजानंरम्यंत्रिशिखरंगता ॥ तस्माच्चपर्वतान्सर्वान्दक्षिणेयेक्रमोदिताः ॥ ९ ॥

विभक्त होकर समान भावसे गिरी हैं ॥ ४ ॥ और क्रमशः समस्त पर्वतकी शिलाओंको तोड़ती हुई गई हैं, तिनमें गंगा देवीकी जो जलधारा पूर्वदिशामें प्रवाहित होकर चैत्ररथ वनकी ओर गई है, उसका नाम सीता विख्यात है ॥ ५ ॥ वही सीता गंगा चैत्ररथ वनको जलमय करके वरुणोद सरोवरमें गई है, फिर वहांसे शीतान्तपर्वत और अन्यान्य सब पर्वत अतिक्रम करके ॥ ६ ॥ पृथ्वीमें जाय भद्राश्व वर्ष होती हुई समुद्रमें गई है और सुमेरुकी दक्षिणदिशासे गंगाका जो जल गंधमादन पर्वतमें गिरा है उसका नाम अलकनन्दा है ॥ ७ ॥ अलकनन्दाने सुमेरुके निकटवर्त्ती देवताओंके आह्लादजनक नन्दनवनमें जाकर महा वेगसे मानस सरोवरको प्लावित किया है ॥ ८ ॥ मानससरोवरके प्लावित करनेपर पर्वतराज रम्य पर्वतके शिखर देश और वहांसे दक्षिणके समस्त पर्वतों को अतिक्रम करके॥ ९॥

और प्लावितकर महाद्रि हिमालयमें गिरी है; तहां वृषध्वज भगवान् शम्भुने गंगाको धारण किया और उन्हों ने किसी प्रकार भी उनको नहीं छोड़ा ॥ १० ॥ अनन्तर जब महाराज भगीरथने उपवास और स्तुति आदिसे उसकी आराधना करी, तब उन्हेंने गंगाको छोड़ा और गंगा देवीने श्रीमहादेवजीके हाथसे छूटतेही सप्त भाग होकर दक्षिण समुद्रमें प्रवेश कियाहै ॥ ११ ॥ तिनमें महा नदीके तीन भाग पूर्वकी ओर प्लावित करके समुद्र में प्रविष्ट हुई है और एक धारा भगीरथके रथके पीछे पीछे जाकर दक्षिण समुद्रमें मिली है ॥ १२ ॥ सुमेरु पर्वतके पश्चिममें विपुल पाद होकर गंगाकी जो धारा निकली है उस महानदी का नाम सुचक्षु है. वह वैभ्राज पर्वतमें वैभ्राज वनको पवित्र करके ॥ १३ ॥ शीतोद सरोवरको प्लावित करती है. और वहांसे क्रमानुसार संपूर्ण पर्वतोंके शिखरपर होकर सुचक्षु

तान्प्लावयित्वा संप्राप्ताहिमवन्तंमहागिरिम् ॥ दधारतत्रतांशम्भुर्नमुमोचवृषध्वजः ॥१०॥ भगीरथेनोपवासैःस्तुत्याचाराधितोविभुः ॥ तत्रमुक्ताचशर्वेण सप्तधादक्षिणोदधिम् ॥ ११ ॥ प्रविवेशत्रिधाप्राच्यांप्लावयन्तीमहानदी ॥ भगीरथरथस्यानुस्रोतसैकेनदक्षिणाम् ॥१२॥ तथैवपश्चिमेपादेविपुलेसामहानदी ॥ सुचक्षुरितिविख्यातावैभ्राजंसावनंययौ ॥ १३ ॥ शीतोदंचसरस्तस्मात्प्लावयन्तीमहानदी ॥ तस्मात्क्रमेणचाद्रीणांशिखरेषुनिपत्यसा ॥ सुचक्षुःपर्वतंप्राप्तातत श्चत्रिशिखंगता ॥ १४ ॥ केतुमालंसमासाद्यप्रविष्टादक्षिणोदधिम् ॥ १५ ॥ (गत्वोत्तरांदिशंगङ्गादिव्यासाचमहानदी ॥ तस्माच्चऋषभादींश्चक्रमादुत्तर जान्नगान् ॥) सुपार्श्वंतुतथैवाद्रिंमेरुपादंहिसागता ॥ भद्रसोमेतिविख्यातासाययौसवितुर्वनम् ॥ १६ ॥ तत्पावयन्तीसंप्राप्तामहाभद्रंसरोवरम् ॥ ततश्चशङ्ख कूटंसाप्रयातावैमहानदी ॥ १७ ॥ तस्माच्चवृषभादीन्साक्रमात्प्राप्याशिलोच्चयान् ॥ महार्णवमनुप्राप्ताप्लावयित्वोत्तरान्कुरून् ॥ १८ ॥ एवमेषामयागङ्गाक थितातेद्विजर्षभ ॥ जम्बूद्वीपनिवेशश्चवर्षाणिचयथातथम् ॥१९॥ वसन्तितेषुसर्वेषुप्रजाःकिंपुरुषादिषु ॥ सुखप्रायानिरातङ्कान्यूनतोत्कर्षवर्जिताः ॥२०॥

पर्वतपर होती हुई त्रिशिखर पर्वतमें गई है ॥ १४ ॥ फिर केतुमालवर्षमें प्रविष्ट होकर दक्षिण समुद्रमें गईहै ॥१५॥ इसके पीछे यह महादिव्य गंगा नदी उत्तर दिशामें जाकर फिर ऋषभादिक उत्तर पर्वतों में गई है । यह चौथीधार सुपार्श्व और मेरु पर्वतपर होकर सविता वनमें पहुंची, वहां उसका नाम भद्रसोमा विख्यात हुआ वह भद्रसोमा गंगा सवितृवनको ॥ १६ ॥ पवित्रकर महाभद्र सरोवरमें गई है, अनन्तर वह महानदी शंखकूट पर्वत ॥ १७ ॥ और वहांसे वृषभादि पर्वतोंमें जाकर समस्त उत्तर कुरुदेशको पवित्र करती हुई महासागरके संगमिलित हुई है ॥ १८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने तुमसे यह गंगाजीका विषय वर्णन किया । जम्बूद्वीपके निवेशमें जो ॥ १९ ॥ किंपुरुषादि समस्त वर्ष वर्णित हुए हैं, उनमें यथावत् जो सब प्राणीवास करते हैं, वह प्रायः सुखी, निरातङ्क एवं न्यूनता और अधिकता रहित हैं ॥ २० ॥

जो नववर्ष कहे गये हैं उनमें भी सात सात कुलाचल हैं और प्रत्येक देशमेंही पर्वत प्रवाहित समस्त नदियें विद्यमान हैं॥ २१ ॥ हे द्विजोत्तम ! किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष हैं उनमें जो जल है वह केवल मात्र उद्भिद है क्योंकि इस भारतवर्षमेंही मेघका जल होता है ॥ २२ ॥ और यह जो आठवर्ष हैं वहां वार्क्षी स्वाभाविकी देश्या तोयोत्था मानसी और कर्मजा, यह छः प्रकार मात्र मनकी सिद्धि है ॥२३ ॥ अभिलाषा प्रदान करनेवाले वृक्षसे जो सिद्धि उत्पन्न होती है उसका नाम वार्क्षी है। स्वभावोत्पन्न सिद्धिका नाम स्वाभाविकी है, देशजात सिद्धिका नाम देश्या ॥२४॥ और जलकी सूक्ष्मतावशतः जो सिद्धि होती है वह तोयोत्था सिद्धि है, सिद्धिके नामसे मानसीसिद्धि ध्यानद्वारा संपादित होती है और उपासनादि कार्यद्वारा जो सिद्धिलाभ होती है,वह कर्मजा विख्यात है॥ २५॥ हे द्विजोत्तम ! इन समस्त वर्षमें युगभेद आधिव्याधि और पुण्य वा पापका समारम्भ कुछ नहीं है ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां गंगावतरणवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

नवस्वपिचवर्षेषुसप्तसप्तकुलाचलाः ॥ एकैकस्मिंस्तथादेशेनद्यश्चाद्रिविनिःसृताः॥२१॥यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्षाण्यष्टौद्विजोत्तम ॥ तेषूद्भिज्जानितोयानिनैवंवा यत्रभारते ॥२२॥ वार्क्षीस्वाभाविकीदेश्यातोयोत्थामानसीतथा॥ कर्मजाचनृणांसिद्धिर्वर्षेष्वेतेषुचाष्टसु ॥२३॥ कामप्रदेभ्योवृक्षेभ्योवार्क्षीसिद्धिःस्वभावजा॥ स्वाभाविकीसमाख्यातातृप्तिर्देश्याचदैशिकी ॥२४॥ अपांसौक्ष्म्याच्चतोयोत्थाध्यानोपेताच्चमानसी ॥ उपासनादिकार्यात्तुकर्मजासाप्युदाहृता ॥२५॥ नचैतेषुयुगावस्थानाधयोव्याधयोनच ॥ पुण्यापुण्यसमारम्भानैवतेषुद्विजोत्तम ॥२६॥ इतिश्रीमा०गङ्गावतरणवर्णनंनामत्रिपंचाशत्तमोऽध्याय॥५३॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कथितंत्वेतज्जम्बूद्वीपंसमासतः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तंकर्मनान्यत्रपुण्यदम् ॥१॥ पापायवामहाभागवर्जयित्वातुभारतम् ॥ इतःस्वर्गश्चमोक्षश्चमध्यश्चान्तश्चगम्यते ॥२॥ नखल्वन्यत्रमर्त्यानांभूमौकर्मविधीयते ॥ तस्माद्विस्तरशोब्रह्मन्ममैतद्भारतंवद ॥३॥ येचास्यभेदायावन्तोयथावत्स्थितिरेवच॥ वर्षोऽयंद्विजशार्दूलयचास्मिन्देशपर्वताः ॥४॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ भारतस्यास्यवर्षस्यनवभेदान्निबोधमे ॥ समुद्रान्तरिताज्ञेयास्तेत्वगम्याःपरस्परम् ॥५॥

क्रौष्टुकिने कहा–हे भगवन् ! आपने इस जम्बूद्वीपका विषय संक्षेपसे वर्णन किया ॥ जो हो हे महाभाग ! आपने कहा कि भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य) किसी स्थानमेंही कोई कर्म ॥ १॥ पाप वा पुण्यके निमित्त अनुष्ठित नहीं होता इसी स्थानसे स्वर्ग और मोक्ष मध्यदशा और अन्त्यदशा (मरणदशा) ॥ २ ॥ समस्त लाभ होती है अन्य किसी स्थानमें मनुष्योंका कर्मानुष्ठान नहीं होता । सुतरां हे ब्रह्मन् ! इस भारतवर्षकी कथा विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ हे द्विजशार्दूल ! इस भारतवर्षमें जितने भेद हैं उन सब भेदोंका जितना परिमाण है, जिसप्रकार स्थिति है. उसमें जितने देश और जितने पर्वत हैं, सब विस्तारसहित कहिये ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे विप्रोत्तम ! इस भारत वर्ष के नव भेद हैं, वह समस्तही समुद्रद्वारा अन्तरित और परस्पर अगम्य हैं, उनका

वर्णन करताहूं ॥ ५ ॥ इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व. वारुण ॥ ६ ॥ और नवम भारत है। यह भारत नामक जो नवम द्वीप है, यह सागरसे घिराहै एवं दक्षिण और उत्तरमें सहस्रयोजनपरिमित है ॥ ७ ॥ हेद्विज ! इसके पूर्वभागमें किरात, एवं पश्चिम सीमामें यवनगण वास करतेहैं। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण इसके मध्यभागमें स्थितहैं ॥ ८ ॥ यह यज्ञ, अध्ययनऔर वाणिज्य इत्यादि अपने अपने कर्म से पवित्र होतेहैं और सब कर्मों के द्वारा उनका सम्यक् प्रकार व्यवहार ॥ ९ ॥ स्वर्गलाभ, मोक्षप्राप्ति और पुण्य पापादि समस्तही उपस्थित होतेहैं। महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष ॥ १० ॥ विन्ध्य और पारियात्र नामक सात कुल पर्वत इसमें वर्तमान हैं। इन सब कुलाचलोंके समीपवर्त्ती सहस्र सहस्र पर्वत हैं ॥ ११ ॥ तिनमें कोलाहल वैभ्राज,

इन्द्रद्वीपःकशेरूमांस्ताम्रवर्णोगभस्तिमान् ॥ नागद्वीपस्तथासौम्योगान्धर्वोवारुणस्तथा ॥ ६ ॥ अयंतुनवमस्तेषांद्वीपःसागरसंवृतः ॥ योजनानांसहस्रं वैद्वीपोऽयंदक्षिणोत्तरम् ॥ ७ ॥ पूर्वेकिरातायस्यान्तेपश्चिमेयवनास्तथा ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चान्तःस्थिताद्विज ॥ ८ ॥ इज्याध्यायवणिज्याद्यैः कर्मभिःकृतपावनाः ॥ तेषांसंव्यवहारश्चएभिःकर्मभिरिष्यते ॥ ९ ॥ स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्चपुण्यंपापंचवैतदा ॥ महेन्द्रोमलयःसह्यःशुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥ १० ॥ विन्ध्यश्चपारियात्रश्चसप्तैवात्रकुलाचलाः ॥ तेषांसहस्रशश्चान्येभूधरायेसमीपगाः ॥ ११ ॥ विस्तारोच्छ्रयिणोरम्याविपुलाश्चित्रसानवः ॥ कोलाहलःसवैभ्राजोम न्दरोदर्दुराचलः ॥ १२ ॥ वातस्वनोवैद्युतश्चमैनाकःस्वरसस्तथा ॥ तुंगप्रस्थोनागगिरीरोचनःपाण्डुराचलः ॥ १३ ॥ पुष्पोगिरिर्दुर्जयन्तोरैवतोऽर्बुदएवच ॥ ऋष्यमूकःसगोमन्तःकूटशैलःकृतस्मरः ॥ १४ ॥ श्रीपर्वतश्चकोरश्चशतशोऽन्येचपर्वताः ॥ तैर्विमिश्राजनपदाम्लेच्छाश्चार्याश्चभागशः ॥ १५ ॥ तैःपीयन्तेस रिच्छ्रेष्ठायास्ताःसम्यङ्निबोधमे ॥ गङ्गासरस्वतीसिन्धुश्चन्द्रभागातथापरा ॥ १६ ॥ यमुनाचशतद्रुश्चवितस्तेरावतीकुहूः ॥ गोमतीधूतपापाचब हुदाचदृषद्वती ॥ १७ ॥

मन्दर, दर्दुर, ॥ १२ ॥ वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डुर ॥ १३ ॥ पुष्प, दुर्जयन्त, रैवतक, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूट शैल, कृतस्मर ॥ १४ ॥ श्रीपर्वत और कोरपर्वत यह अत्यन्त ऊंचे, मनोहर, विस्तीर्ण और विपुल हैं। इनमें औरभी शतशत जनपद हैं। इन सब पर्वतों के द्वारा मिलित समस्त जनपद भागानुसार म्लेच्छ और आर्य नामसे विख्यात हुएहैं ॥ १५ ॥ उन जनपदोंमें वास करनेवाले मनुष्य जिन सब श्रेष्ठ नदियोंका जलपान करतेहैं, अब उनके नाम कहताहूं भलीभाँति अवगत होओ। गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, ॥ १६ ॥ यमुना, शतद्रु, वितस्ता, इरावती, कुहू,

गोमती, पुण्यसलिला, बाहुदा, दृषद्वती ॥ १७ ॥ विपाशा, देविका, ऋक्षु, निश्चीरा, गण्डकी और कौशिकी। हे विप्र ! यह सब नदियें हिमालयके प्रत्यन्त सब पर्वतोंसे निकलीं हैं ॥ १८ ॥ और देवस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, देवा, सानन्दनी, सदानीरा, मही ॥ १९ ॥ पारा, चर्मण्वती, तापी, विदिशा, वेत्रवती, शिवा और अवर्णी, यह सब नदियें पारियात्र पर्वतसे निकलीं हैं॥ २० ॥ महानद शोणा और नर्मदा, सुरथाद्रिसे उत्पन्न हुई हैं मन्दाकिनी और दशार्णानदी चित्रकूट पर्वतसे निकली हैं ॥ २१ ॥ चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलिश्रोणि, विपाशा, मञ्जुला ॥ २२ ॥ सुमेरुजा, शुक्तिमती, शकुली, सिदिवा, और आक्रमु यह वेगवाहिनी सब नदियें स्कन्दपाद वा ऋक्ष पर्वतके उन्नतस्थानों से निकली हैं ॥ २३ ॥ क्षिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेणवा, वैतरणी,

विपाशादेविकारंक्षुर्निश्चीरागण्डकीतथा ॥ कौशिकीचापगाविप्रहिमवत्पादनिःसृताः ॥ १८ ॥ वेदस्मृतिर्वेदवतीवृत्रघ्नीसिन्धुरेवच ॥ वेणासानन्दनाचैवसदानारामहीतथा ॥ १९ ॥ पाराचर्मण्वतीनूपीविदिशावेत्रवत्यपि ॥ क्षिप्राह्यवन्तीचतथापारियात्राश्रयाःस्मृताः ॥ २० ॥ शोणोमहानदश्चैवनर्मदासुरथाद्रिजा ॥ मन्दाकिनीदशार्णाचचित्रकूटातथापरा ॥ २१ ॥ चित्रोत्पलासतमसाकरमोदापिशाचिका ॥ तथान्यापिप्पलश्रोणिर्विपाशावञ्जुलानदी ॥ २२ ॥ सुमेरुजाशुक्तिमतीसकुलीत्रिदिवाक्रिमुः ॥ ऋक्षपादप्रसूतावैतथान्यावेगवाहिनी ॥ २३ ॥ क्षिप्रापयोष्णीनिर्विन्ध्यातापीचनिषधावती ॥ वेण्यावैतरणीचैवसिनीवालीकुमुद्वती ॥ २४॥ करतोयामहागौरीदुर्गाचान्तःशिवातथा ॥ विन्ध्यपादप्रसूतास्तानद्यःपुण्यजलाःशुभाः ॥ २५ ॥ गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्यातथापरा ॥ तुङ्गभद्रासुप्रयोगावाह्याकावेर्यथापगा ॥ २६ ॥ सह्यपादविनिष्क्रान्ताइत्येताःसरिदुत्तमाः ॥ कृतमालाताम्रपर्णीपुष्पजासूत्पलावती ॥ २७ ॥ मलयाद्रिसमुद्भूतानद्यःशीतजलास्त्विमाः ॥ पितृसोमर्षिकुल्याचइक्षुकात्रिदिवाचया ॥२८॥ लांगूलिनीवंशकरामहेन्द्रप्रभवाःस्मृताः ॥ ऋषिकुल्याकुमारीचमंदगामन्दवाहिनी ॥ २९ ॥ कुशापलाशिनीचैवशुचिमत्प्रभवाःस्मृताः ॥ सर्वाःपुण्याःसरस्वत्यःसर्वागङ्गाःसमुद्रगाः ॥ ३० ॥

सिनीवाली, कुमुद्वती ॥ २४ ॥ करतोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तशिरा यह पुण्यजलवाली शुभप्रद समस्त नदियें विन्ध्यपादसे निकली हैं २५ ॥ गोदावरी, भीमरथा, कृष्णवेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या और महानदी कावेरी ॥ २६ ॥ यह भी विन्ध्यपर्वतसे निकली हैं । और कृतमाला, ताम्रपर्णी और उत्पलावती नदी पुष्प पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं ॥२७॥ पितृकुल्या, सोमकुल्या ऋषिकुल्या इक्षुका और त्रिदिवा, यह शीतलजल वाली नदियें मलयाद्रिसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २८ ॥ लाङ्गलिनी और वंशकरा नामक दो नदी महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न हुईं हैं ॥ ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी ॥ २९ ॥ कुशा और पलाशिनी, यह सब नदियें शुक्तिमान् पर्वतसे निकलीं हैं। हे द्विजवर ! यह जो सब नदियोंके नाम कहे, यह सबही अत्यन्त पुण्यप्रद और अधिक

कजलवाली हैं, इनमें कितनीही गंगा और कितनीही समुद्रमें गिरीं हैं ।।३०।।हे द्विजोत्तम! यह सबही विश्व संसारकी मातास्वरूप और समस्तही पापोंकी हरने वाली हैं। इनके अतिरिक्त और भी सहस्र सहस्र छोटी नदियें हैं ॥ ३१।। तिनमें कोई वर्षाके समय बहतीं हैं और किसीमें सदा जल रहता है।मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुण्डल, काशी, कोशल ।। ३२ ।। अथर्व, कलिंग, आमलक और वृक, यह संपूर्ण जनपद (देश) प्रायः मध्यदेशके कहे गये हैं ।। ३३ ।। सह्यपर्वतकी उत्तरदिशा के जिस स्थानमें गोदावरी नदी बहती है, संपूर्ण पृथ्वीमें वही स्थान अत्यन्त मनोरम है ॥३४॥ वहां महात्मा भार्गवकी गोवर्द्धननामक मनोहर नगरी है और बाह्लीक, वाटधान, आभीर और कालतोयक ॥ ३५ ॥ यह अपरान्तदेश है। शूद्रपह्लव, चर्मखण्डित, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक ॥ ३६ ॥ शतद्रुज,

विश्वस्यमातरःसर्वाः सर्वपापहराःस्मृताः ॥ अन्याःसहस्रशश्चोक्ताःक्षुद्रनद्योद्विजोत्तम॥ ३१॥ प्रावृट्कालवहाः काश्चित्सर्वकालवहाश्चयाः ॥ मत्स्याश्वकूटाः कुल्याश्चकुन्तलाः काशिकोशलाः ॥ ३२ ॥ अर्बुदाश्चार्कलिंगाश्चमलकाश्चवृकैः सह ॥ मध्यदेश्याजनपदाःप्रायशोमीप्रकीर्त्तिताः ॥ ३३ ॥ सह्यस्यचोत्तरे यास्तुयत्रगोदावरीनदी ॥ पृथिव्यामपिकृत्स्नायांसप्रदेशोमनोरमः ॥३४॥ गोवर्द्धनपुरंरम्यंभार्गवस्यमहात्मनः ॥ बाह्लीकावाटधानाश्चआभीराः कालतोयकाः ॥३५॥ अपरान्ताश्चशूद्राश्चपह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ॥ गान्धारायवनाश्चैवसिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥३६॥ शतद्रुजाःकलिङ्गाश्चपारदाहारभूषिकाः ॥ माठरा वहुभद्राश्चकैकेयादशमालिकाः ॥ ३७ ॥ क्षत्रियोपनिवेशाश्चवैश्यशूद्रकुलानिच ॥ काम्बोजादरदाश्चैवबर्बराअंगलौकिकाः ॥ ३८ ॥ चीनाश्चैवतुषाराश्च पह्लवावाह्यतोदराः ॥ आत्रेयाश्चभरद्वाजाःपुष्कलाश्चकशेरुकाः ॥३९॥ लम्पाकाःशूलकाराश्चचुलिकाजागुडैःसह॥औपधाश्चानिमद्राश्चकिरातानांचजातयः ॥ ४० ॥ तामसाहंसमार्गाश्चकाश्मीरास्तुगणास्तथा ॥ शूलिकाःकुहकाश्चैवऊर्णादार्वास्तथैवच ॥ ४१ ॥ एतेदशह्युदीच्यास्तुप्राच्यान्देशान्निबोधमे ॥ अभ्रारकामुद्गरकाअन्तर्गिरिर्वहिर्गिराः ॥ ४२ ॥

लिंगपाद, हारभूषिक, माठर, बहुभद्र, केकय और दशमालिका ।। ३७ ।। इत्यादि सब देशोंमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकुल वास करते हैं, काम्बोज, दरद, बर्बर, अंगलौकिक (हर्षवर्द्धन)॥ ३८ ॥ चीन, तुषार और बहुल, इन प्रदेशोत्पन्न मनुष्यगण बहिर्देशज कहलाते हैं । आत्रेय, भारद्वाज, पुष्कल, कशेरुक, ।। ३९ ।। लम्बाक, शूलकार, चुलिक, जागुड़, औषध और अनिभद्र इत्यादि जातिके मनुष्य किरातजातिका भेदविशेष हैं ॥४०॥ और तामस, हंसमार्ग, काश्मीर तङ्गण, शूलिक, कुहक, ऊर्ण और दर्व।। ४१ ।। इत्यादि समस्त देश उत्तरमें स्थित हैं। इनके पीछे पूर्वदेश सुनो । अभ्रारक, मुदकर, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि ॥ ४२ ॥

प्रवङ्ग, रङ्गेय, मानद, मानवर्त्तिक, उत्तरब्रह्म, प्रविजय, भार्गव ज्ञेयमल्लक ॥ ४३ ॥ प्राग्ज्योतिष मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध और गोमन्त इत्यादि समस्त जनपद पूर्वदिशामें अवस्थित हैं ॥ ४४ ॥ अनन्तर दक्षिणपथस्थित समस्त जनपदोंका वर्णन करताहूं । पाण्डव, केरल, चोल, कुन्त्य ॥ ४५ ॥ शैलूष, मूषिक, कुसुम, नामवासक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिंग ॥ ४६ ॥ आभीर, वैशिक, आढकी जहांपर शबरलोग वास करते हैं । पुलिन्द, विन्ध्यमौलेय, वैदर्भ, दण्डक ॥ ४७ ॥ पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, नैमिषिक, कुन्तल, अन्ध, उद्भिद और वनदारक ॥ ४८ ॥ इत्यादि भोगवर्द्धन समस्त देश दाक्षिणात्य कहे गये हैं, अब पश्चिमदेशकी कथा कहताहूं सुनो । सूर्यारक, कालिवल, दुर्ग, आलीकट ॥ ४९ ॥ पुलिन्द, सुमीन, रूपप, स्वापद और कुरुमिन

तथाप्लुवङ्गारङ्गेयामालदामलवर्त्तिकाः ॥ ब्राह्मोत्तराःप्रविजयाभार्गवागेयमल्लकाः ॥ ४३ ॥ प्राग्ज्योतिषाश्चमद्राश्चविदेहास्ताम्रलिप्तकाः ॥ मल्लामगधगोमेदाःप्राच्याजनपदाःस्मृताः ॥ ४४ ॥ अथापरेजनपदादक्षिणापथवासिनः ॥ पांड्याश्चकेरलाश्चैवचोलाःकुंत्यास्तथैवच ॥ ४५ ॥ शैलूषामूषिकाश्चैवकुमारावानवासकाः ॥ महाराष्ट्रामाहिषिकाः कलिङ्गाश्चैवसर्वशः ॥ ४६ ॥ आभीराः सहवैशिक्याआटव्याःशबराश्चये ॥ पुलिन्दाविन्ध्यमालेयावैदर्भादण्डकैःसह ॥ ४७ ॥ पौरिकामौलिकाश्चैवअश्मकाभोगवर्द्धनाः ॥ नैषिकाःकुन्तलाआन्ध्राउद्भिदावनदारकाः ॥ ४८ ॥ दाक्षिणात्यास्त्वमीदेशाअपरांस्तान्निबोधमे ॥ सूर्यारकाः कालिवलादुर्गाश्चामीकटैःसह ॥ ४९ ॥ पुलिन्दाश्चसुमीनाश्चरूपपाःस्वापदैःसह ॥ तथाकुरुमिनश्चैवसर्वेचैवकठाक्षराः ॥ ५० ॥ (कारस्करालोहजंघावाजेयाराजभद्रकाः) ॥ तोसलाःकोसलाश्चैवत्रैपुराविदिशस्तथा॥(तुषारास्तुंबुराश्चैवसर्वे चैवकरस्कराः॥)नासिक्यावाश्चयेचान्येयेचैवोत्तरनर्म्मदाः॥५१॥भीरुकच्छाःसमाहेयाःसहसारस्वतैरपि॥काश्मीराश्चसुराष्ट्राश्चआवन्त्याश्चार्बुदैःसह॥५२॥इत्येतेह्यपरान्ताश्चशृणुविन्ध्यनिवासिनः ॥ सरजाश्चकरूषाश्चकेरलाश्चोत्कलैः सह॥५३॥उत्तमर्णादशार्णाश्चभोज्याः किष्किन्धकैःसह॥तुम्बरास्तुम्बुलाश्चैवपटवीनैषधैःसह ॥५४॥ अन्नजास्तुष्टिकाराश्चवीरहोत्राह्यवन्तयः ॥एतेजनपदाःसर्वेविन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥५५॥अतोदेशान्प्रवक्ष्यामिपर्वताश्रयिणश्चये ॥ नीहाराहंसमार्गाश्चकुरवोगुर्गणाःखसाः ॥ ५६ ॥

इत्यादि देशको कटाक्षर ॥ ५० ॥ (कारस्कर लोहजंघ वाजेय, राजभद्र) तोशल और कोशल, त्रिपुर, विदिश (तुषार और तुबुर यह सब कारस्कार है) वा नासिक्याव कहते हैं । और उत्तर नर्मदा, भीरुकच्छ, माहेय, सारस्वत ॥ ५१ ॥ काश्मीर, सुराष्ट्र, आरम्भ और अर्बुद इत्यादि समस्त देश अपरान्त अर्थात् पाश्चात्त्य कहकर विख्यात हैं, अब विन्ध्यवासी सब देशोंका वर्णन सुनो ॥ ५२ ॥ सरज, करुष, केरल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किन्धक ॥५३॥ तुम्बुरु, तुम्बुल, पट्टु, नैषध॥५४॥अन्नज, तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवन्ति,यह संपूर्ण जनपद विन्ध्यपर्वतकी पीठमें स्थित हैं ॥ ५५ ॥ अब जो देश पर्वता

श्रयी अर्थात् पर्वतका आश्रय लेनेवाले हैं, इनके पीछे उन्हींका वर्णन किया जाता है। यथा नदीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस ॥ ५६ ॥ कुन्त, प्रावरण, उर्ण, दार्व्व, कुत्रक, त्रिगर्त्त, मालव, तामस और किरात इन सब देशोंको पार्वतीय देश कहतेहैं ॥ ५७ ॥ और इसी भारतवर्षमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर इत्यादि चारों युगोंकी विधि विद्यमान रहतीहै और चार संस्थान करके इस भारतवर्षकी स्थिति है॥५८॥ इसको पूर्वदक्षिण और पश्चिम दिशामें महासागर धनुषाकारसे घेर रहा है और उत्तर दिशामें हिमालय पर्वत धनुषके गुणकी समान विद्यमान रहता है ॥ ५९ ॥ हे द्विजवर ! यह वही भारतवर्ष सबका बीजस्वरूप है। इसमें ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व, देवत्व और मनुष्यत्व सभी वर्त्तमान है॥६०॥यही मृग, पशु आदि और अप्सराओंको उत्पन्न करनेवाला, और इसमेंही सरीसृप (बिच्छू) आदि उत्पन्न होतेहैं। हे ब्रह्मन् ! स्थावर जंगमादि यावतीय पदार्थ,समस्तही इसमें शुभाशुभ कर्मके फलसे उत्पन्नहोते हैं॥६१॥हे ब्रह्मन् ! हे विप्रर्षे ! समस्त लोकोंमें यह भारतवर्षही एकमात्र कर्मभूमि है।

कुन्तप्रावरणाश्चैवऊर्णादार्वाःसकुत्रकाः ॥ त्रिगर्त्तामालवाश्चैवकिरातास्तामसैः सह ॥५७॥ कृतत्रेतादिकश्चात्रचतुर्युगकृतांविधिः ॥ एतत्तुभारतंवर्षंचतुःसंस्थानसंस्थितम्॥५८॥दक्षिणापरतोह्यस्यपूर्वेणचमहोदधिः॥हिमवानुत्तरेणास्यकार्मुकस्ययथागुणः॥५९॥तदेतद्भारतंवर्षंसर्वबीजंद्विजोत्तम॥ ब्रह्मत्वममरेशत्वंदेवत्वंमर्त्यतांतथा ॥ ६० ॥ मृगपश्वप्सरोयोनिस्तद्वत्सर्वसरीसृपाः ॥ स्थावराणांचसर्वेषामितोब्रह्मञ्शुभाशुभैः ॥ ६१॥ प्रयांतिकर्मभूर्ब्रह्मन्नान्यलोकेषुविद्यते॥देवानामपिविप्रर्षेसदाएषमनोरथः॥६२॥अपिमानुष्यमाप्स्यामोदेवत्वात्प्रच्युताःक्षितौ॥मनुष्यःकुरुतेतत्तुयन्नशक्यंसुरासुरैः॥६३॥तत्कर्मनिगडग्रस्तैःस्वकर्मख्यापनोत्सुकैः ॥ नकिंचित्क्रियतेकर्मसुखलेशोपबृंहितैः ॥ ६४ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनद्यादिवर्णनोनामचतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कथितंसम्यग्भवताभारतंमम ॥ सरितःपर्व्वतादेशायेचतत्रवसन्तिवै ॥ १ ॥ किन्तुकूर्मस्त्वयापूर्वंभारते भगवान्हरिः ॥ कथितस्तस्यसंस्थानंश्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ २ ॥

देवतागणभी सदा अभिलाषा करते हैं ॥ ६२ ॥ कि यदि देवत्वसे कभी भ्रष्ट हो तो पृथ्वीके मध्य इस भारतवर्षमें हो मनुष्य योनि प्राप्त करें, क्योंकि मनुष्यगण जिस कार्यकेकरनेमें समर्थ होते हैं, देवता वा असुर वह कार्य नहीं करसकते ॥ ६३ ॥ देखो, यह कर्मरूपी बेड़ियोंसे ग्रसित मनुष्यगण लेशमात्र सुखके द्वारा मोहित होकर अपने कर्म विख्यातिके अभिलाषी होकर कुछ कर्म नहीं करते हैं ॥ ६४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नद्यादिवर्णनोनाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् !आपने मुझसे भारतवर्षका विषय सम्यक् प्रकार वर्णन किया । और उस भारतमें जो सब नदी, पर्वत देश और उसमें जो वास करतेहैं, वह सब कहा ॥ १ ॥ किन्तु आपने पहिले कहाहै कि जिस भारतवर्षमें भगवान् हरि कूर्मरूपसे वास करतेहैं, उनकी स्थिति किस प्रकार है, वह इस

समय भलीभाँति सुननेकी इच्छा है ॥ २ ॥ उन देवदेव जनार्दनने किस प्रकार कूर्मरूपमें वास किया था ? और उनके द्वारा मनुष्योंका शुभाशुभ किस प्रकार प्रकाशित हुआथा हे भगवन् ! उनका मुख और चरण कैसे हैं, यह सब कथा भलीभांतिसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे ब्रह्मन् ! वही देवभगवान् कूर्मरूप धारण पूर्वक इस नवधा भिन्न अर्थात् नव खण्डोंमें विभक्त भारतवर्षको आक्रमण करते हुए पूर्वमुखसे वास करते हैं ॥ ४ ॥ नक्षत्र और संपूर्ण विषयभी नवभागोंमें विभक्त होकर उनके चारों ओर वास करतेहैं। हे द्विजवर ! यह विवरण भलीभांतिसे सुनो ॥ ५ ॥ विमाण्डव्य, वेदमंत्र, शाल्व, नीव, शक, उज्जिहान, घोषसंख्य, खस ॥ ६ ॥ सारस्वत, मत्स्य, शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव, गुडाश्मक ॥ ७ ॥ उद्देहक, पांचाल, संकेत, कंक, मारुत, कालकोटि

कथंससंस्थितोदेवःकूर्मरूपीजनार्दनः ॥ शुभाशुभंमनुष्याणांव्यज्यतेचततःकथम् ॥ यथामुखंयथापादास्तस्यतद्ब्रूह्यशेषतः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ प्राङ्मुखोभगवान्देवःकूर्मरूपीव्यवस्थितः ॥ आक्रम्यभारतंवर्षंनवभेदमिदंद्विज ॥ ४ ॥ नवधासंस्थितेन्यस्यनक्षत्राणिसमन्ततः ॥ विषयाश्च द्विजश्रेष्ठयेसम्यक्तान्निबोधमे ॥ ५ ॥ वेदिमद्रारिमाण्डव्याःशाल्वानीपास्तथाशकाः ॥ उज्जिहानास्तथावत्सघोषसंख्यास्तथाखशाः ॥ ६ ॥ मध्येसारस्वतामत्स्याःशूरसेनाःसमाथुराः ॥ धर्म्मारण्याज्योतिषिकागौरग्रीवागुडाश्मकाः ॥ ७ ॥ वैदेहकाःसपांचालाःसंकेताःकङ्कमारुताः ॥ कालकोटिसपाषण्डाःपारियात्रनिवासिनः ॥ ८ ॥ कापिंजलाःकुरोर्बाह्यास्तथैवोदुम्बराजनाः ॥ गजाह्वयाश्चकूर्मस्यजनामध्यनिवासिनः ॥ ९ ॥ कृत्तिकारोहिणीसौम्याएतेषांमध्यवासिनाम् ॥ नक्षत्रत्रितयंविप्रशुभाशुभविपाकदम् ॥ १० ॥ वृषध्वजोऽञ्जनश्चैवजम्ब्वाख्योमानवाचलः ॥ शूर्पकर्णो व्याघ्रमुखोमुर्वरःकर्वटाशनः ॥ ११ ॥ तथाचन्द्रेश्वराश्चैवखशाश्चमगधास्तथा ॥ शिवयोमैथिलाःशुभ्रास्तथावदनदन्तुराः ॥ १२ ॥ प्राग्ज्योतिषाःसलौहित्याःसामुद्राःपुरुषादकाः ॥ पूर्णोत्कटोभद्रगौरस्तथोदयगिरिर्द्विज ॥ १३ ॥ काशयोमेखलामुष्टास्ताम्रलिप्तैकपादपाः ॥ वर्द्धमानाः कोसलाश्चमुखेकूर्मस्यसंस्थिताः ॥ १४ ॥

पाखण्ड, पारियात्रनिवासीगण ॥ ८ ॥ कापिंगल, बाह्यकुरु, उडुम्बर और गजाह्व यह संपूर्णदेश कूर्मके मध्यस्थलमें वास करते हैं ॥ ९ ॥ कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिर, यह तीनों नक्षत्र उन्हीं मध्यवासी मनुष्योंके शुभाशुभकी सूचना देतेरहते हैं ॥ १० ॥ वृषध्वज, अंजन, जम्बुनामक मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख खर्माक, कर्वटाशन ॥ ११ ॥ चन्द्रेश्वर, खस, मगध, शिव, मैथिल, शुभ्र और वदन, दन्तुर ॥ १२ ॥ समस्तपर्वत, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्रक, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर, उदयाचल ॥ १३ ॥ कषाय, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एकपादप, वर्द्धमान और कोशल, यह सब कूर्मरूपी भगवान्‌के मुखमें स्थित हैं ॥ १४ ॥

आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य, यह तीनों नक्षत्रभी मुखमेंही अवस्थित हैं । उनके दक्षिणपदमें जो सब देश हैं. हे क्रौष्टुके ! उनका वर्णन करताहूं सुनो ॥ १५ ॥ कलिंग, वंग, जठर, कोशक, मूषिक, चेदि, ऊर्ध्वकर्ण और मत्स्य इत्यादि जो सब देश विन्ध्य पर्वतके निकट अवस्थित हैं ॥ १६ ॥ और विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलीक. व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी ॥ ॥ १७ ॥ कैष्किन्ध, हैमकूट, निषध, कटकस्थल, दशार्ण, हारिक, काकुलालक, नग्न, निषध देश ॥१८॥और पर्णशबर इत्यादि समस्त देश तथा आश्लेषा,मघा और पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र ॥ १९ ॥ उनके पूर्व दक्षिण पादमें वास करते हैं ।

रौद्रंपुनर्वसुःपुष्योनक्षत्रत्रितयंमुखे ॥ पादेतद्दक्षिणेदेशाःक्रौष्टुकेवदतःशृणु ॥ १५ ॥ कलिङ्गवङ्गजठराःकोशलामूषिकास्तथा ॥ चेदयश्चोर्द्ध्वकर्णाश्चमत्स्यांध्राविन्ध्यवासिनः ॥ १६ ॥ विदर्भानारिकेलाश्चधर्मद्वीपास्तथैलिकाः॥व्याघ्रग्रीवामहाग्रीवास्त्रैपुराःश्मश्रुधारिणः ॥१७॥ कैष्किन्ध्याहैमकूटाश्च निषधाःकटकस्थलाः ॥ दशार्णाहारिकानग्नानिषधाःकाकुलालकाः ॥ १८ ॥ तथैवपर्णशबराःपादेवैपूर्वदक्षिणे ॥ आश्लेषर्क्षंतथापैत्र्यफाल्गुन्यःप्रथमास्तथा ॥ १९ ॥ नक्षत्रत्रितयंपादमाश्रितंपूर्वदक्षिणम् ॥ लंकाकालाजिनाश्चैवशैलिकानिकटास्तथा ॥ २० ॥ महेन्द्रमलयाद्रौचदर्दुरेचवसन्तिये ॥ कर्कोटकवनेयेचभृगुकच्छाःसकोङ्कणाः ॥ २१ ॥ सर्व्वाश्चैवतथाभीराश्वेण्यास्तीरनिवासिनः ॥ अवन्तयोदासपुरास्तथैवाकारिणोजनाः ॥ २२ ॥ महाराष्ट्राःसकर्णाटागोनर्दाश्चित्रकूटकाः ॥ चोलाःकौलगिराश्चैवक्रौंचद्वीपजटाधराः ॥ २३ ॥ कावेरीऋष्यमूकस्थानासिक्याश्चैवयेजनाः॥ शंखशुक्त्यादिवैदूर्य्यशैलप्रान्तचराश्चये ॥ २४ ॥ तथावारिचराःकोलाश्चर्मपट्टनिवासिनः ॥ गणबाह्याःपराःकृष्णाद्वीपवासनिवासिनः ॥ २५ ॥ सूर्याद्रौकुमुदाद्रौचतेवसन्तितथाजनाः ॥ रौद्रस्वनाःसपिशिकास्तथायेकर्मनायकाः ॥ २६ ॥ दक्षिणाःकौरुषायेचऋषिकास्तापसाश्रमाः ॥ ऋषभाःसिंहलाश्चैवतथाकांचीनिवासिनः ॥ २७ ॥

लंका, कालाजिन, शैलिक, निकट ॥ २० ॥ महेन्द्र, मलय, और दर्दुर,पर्वतस्थ समस्त जनपद, कर्कटकवनस्थित संपूर्ण देश, भृगुकच्छ, कोङ्कण ॥ २१ ॥ आभीर, वेण्या नदीके तीर स्थित, सब देश अवन्ति दाशपुर आकरनी॥ २२ ॥ महाराष्ट्र, कर्णाट, गोनर्द, चित्रकूट, चोल, कोलगिरि, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर ॥२३ ॥ कावेरी और ऋष्यमूक स्थित–संपूर्ण देश शंखशुक्ति इत्यादि वैदूर्य शैल और जो समीपवर्ती ॥ २४ ॥ वारिचल कोल, चर्मपट्ट, और गणबाह्य कृष्णाद्वीपनिवासी मनुष्य, ॥ २५ ॥ सूर्याद्रि और कुमुदाद्रि इन दोनों पर्वतमें वसनेवाले मनुष्य और रौद्रशब्दवाले पिशिक, कर्मनायक, ॥ २६ ॥ दक्षिण कौरुष, ऋषिक, ताप

साश्रम, ऋषभ, सिंहल, काञ्चीनिवासी ॥ २७ ॥ तिलङ्ग, कुञ्जर, और दरी कच्छस्थित मनुष्य तथा ताम्रपर्णी, यह सब कूर्मकी दक्षिण कुक्षिमें अवस्थित हैं ॥ ॥ २८ ॥ उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, और चित्रा यह तीनों नक्षत्र कूर्मके दक्षिणकी ओर विराजमान हैं । बाह्यपाद ॥२९॥ काम्बोज, पह्लव, वडवामुख, सिन्धु, सौवीर आनर्त्त, वनितामुख ॥ ३० ॥ द्रावण, सार्गिग, शूद्र, कर्ण, प्राधेय, बर्बर, किरात,पारद, पाण्डय, पारशव, कल ॥ ३१ ॥ धूर्तक, हैमगिरिक, सिन्धु, कालक वैरत, सौराष्ट्र, दरद, द्राविड और महार्णव ॥ ३२ ॥ यह संपूर्ण जनपद कूर्मके दक्षिण पदमें वास करते हैं स्वाती, विशाखा और अनुराधा यह तीनों नक्षत्र इन सब देशों के शुभाशुभका सूचना देते हैं ॥ ३३ ॥ मणिमेघ, क्षुराद्रि, खंजन अस्तगिरि. अपरान्तिक, हैहय, शान्तिक, विप्रशतस्क, ॥ ३४ ॥ कोङ्कण, पञ्चनद,

त्रिलङ्गाःकुञ्जरदरीकच्छवासाश्चयेजनाः॥ताम्रपर्णीतथाकुक्षिरितिकूर्मस्यदक्षिणः ॥२८॥ फाल्गुन्यश्चोत्तराहस्तश्चित्राचर्क्षत्रयंद्विज ॥ कूर्मस्यदक्षिणेकुक्षौ बाह्यपादस्तथापरम् ॥ २९ ॥ काम्बोजाःपह्लवाश्चैवतथैववडवामुखाः ॥ तथाचासिन्धुसौवीराःसानर्त्तावनितामुखाः ॥३०॥ द्रावणाः सार्गिगाः शूद्राःकर्णप्राधेयबर्बराः ॥ किराताःपारदाःपाण्डयास्तथापारशवाःकलाः ॥ ३१ ॥ धूर्त्तकाहैमगिरिकाःसिन्धुकालकवैरताः ॥ सौराष्ट्रादरदाश्चैवद्राविडाश्चमहार्णवाः ॥३२॥एतेजनपदाःपादेस्थितावैदक्षिणेऽपरे ॥ स्वात्योविशाखामैत्रंचनक्षत्रत्रयमेवच ॥ ३३॥ मणिमेघक्षुराद्रिश्चखंजयोऽस्तगिरिस्तथा॥ अपरान्तिकानोहयाश्चशान्तिकाविप्रशस्तकाः ॥ ३४ ॥ कोंकणाःपंचनदकावमनाह्यवरास्तथा ॥तारक्षुराह्यङ्गतकाःशर्कराःशाल्मवेश्मकाः ॥३५॥गुरुस्वराःफाल्गुनकावेणुमत्यांचयेजनाः ॥ तथाफल्गुलुकाघोरागुरुहाश्चकलास्तथा ॥ ३६ ॥ एकेक्षणावाजिकेशादीर्घग्रीवाःसचूलिकाः ॥ अश्वकेशास्तथापुच्छेजनाः कूर्मस्यसंस्थिताः॥ ३७ ॥ ऐन्द्रंमूलंतथाषाढानक्षत्रत्रयमेवच ॥ माण्डव्याश्चंडखाराश्चअश्वकालनदास्तथा ॥ ३८ ॥ कुशात्तालडहाश्चैवस्त्रीवाह्यावालिकास्तथा ॥ नृसिंहवेणुमत्यांचबलावस्थास्तथापरे ॥ ३९ ॥ धर्मबद्धास्तथोलूकाउरुकर्मस्थिताजनाः ॥ (तथाफल्गुलकाघोराघुरलाहेमतारकाः ॥ एकेक्षणावाजिकोशादीर्घपादास्तथैवच) वामेपरेजनाःपादेस्थिताःकूर्मस्यभागुरे ॥ ४० ॥

वमन, अवर, तारक्षुर, अंगतक, शर्कर, शाल्मल ॥ ३५ ॥ गुरुस्वर, फल्गुनक, वेणुमत्त, फाल्गुलुक, गुरुह, कल ॥ ३६ ॥ एक नेत्रवाले वाजिसे केशवाले दीर्घ गर्दनवाले सूचुलिक, और अश्वकेश, यह समस्त देशवासी कूर्मकी पूंछमें अवस्थित हैं ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढा, यह तीन नक्षत्रभी कूर्मकी पूंछमें वास करते हैं । माण्डव्य, चण्डखार, अश्मक, लालन ॥ ३८ ॥ कुशात्त, लड़ह, स्त्रीवाह्य, बालिक, नृसिंह, वेणुमती, बलावस्था ॥ ३९ ॥ धर्मबद्ध, उलूक, ऊरुकर्म–स्थित मनुष्य (तथा फल्गुलका , घोरा, घुरल, हेमतारक, एकेक्षण, वाजिकोश और दीर्घपाद) यह सब देश भगवान् कूर्मके वामपदमें

स्थित हैं ॥ ४० ॥ उत्तराषाढा, श्रवण और धनिष्ठा यह तीनों नक्षत्र भी उसी स्थानमें स्थित हैं । कैलास, हिमालय, धनुष्मान्, वसुमान् ॥ ४१ ॥ क्रौञ्च, कुरुबक, क्षुद्रवीण, रसालय, कैकय, भोगप्रस्थ, यामुन ॥ ४२ ॥ अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्निज, अर्दन, अश्वमुख, प्राप्त, चिविड, केशधारी ॥ ४३ ॥ दासेरक, वाटधान, शवधान, पुष्कल, अधम, कैरात, तक्षशिल ॥ ४४ ॥ अम्बाल, मालव, मद्र, वेणुक, वदन्तिक, पिंगल, मानकलह, हूण, कोहल ॥ ४५ ॥ माण्डव्य, भूतियुवक, शातक, हैमतारक, यशोमत्य, गान्धार, स्वरस, गर, राशि, ॥ ४६ ॥ यौधेय, दासमेय, राजन्य, श्यामक, और क्षेमधूर्त्त, यह सब जनपद कूर्मरूपी भगवान्की वामकुक्षिमें वास कर

आषाढाश्रवणेचैवधनिष्ठायत्रसंस्थिता ॥ कैलासोहिमवांश्चैवधनुष्मान्वसुमांस्तथा ॥ ४१ ॥ क्रौंचाःकुरुबकाश्चैवक्षुद्रवीणाश्चयेजनाः ॥ रसालयाःसकैकेयाभोगप्रस्थाःसयामुनाः ॥ ४२ ॥ अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्चअग्नीज्याःसार्दनाजनाः ॥ तथैवाश्वमुखाःप्राताश्चिविडाःकेशधारिणः ॥ ४३ ॥ दासेरकावाटधानाःशवधानास्तथैवच ॥ पुष्कलाधमकैरातास्तथातक्षशिलाश्रयाः ॥ ४४ ॥ अम्बष्ठामालवामद्रावेणुकाः सवदन्तिकाः ॥ पिङ्गलामानकलहाहूणाःकोहलकास्तथा ॥ ४५ ॥ माण्डव्याभूतियुवकाःशातकाहेमतारकाः ॥ यशोमत्याःसगान्धाराःखरसागरराशयः ॥ ४६ ॥ यौधेयादासमेयाश्चराजन्याःस्यामकास्तथा ॥ क्षेमधूर्त्ताश्चकूर्मस्यवामकुक्षिमुपाश्रिताः ॥ ४७ ॥ वारुणंचात्रनक्षत्रंतद्वत्प्रोष्ठपदाद्वयम् ॥ येनकिन्नरराज्यंचपशुपालंसकीचकम् ॥ ४८ ॥ काश्मीरकंतथाराष्ट्रमभिसारजनस्तथा ॥ दरदास्त्वंगणाश्चैवकुलटावनराष्ट्रकाः ॥ ४९ ॥ सैरिष्ठाब्रह्मपुरकास्तथैवतनवाह्यकाः ॥ किरातकौशिकानन्दाजनाःपह्लवलोलनाः ॥ ५० ॥ दार्वादामरकाश्चैवकुरटाश्चान्नदारकाः ॥ एकपादाःखशाघोषाःस्वर्गभौमानवद्यकाः ॥ ५१ ॥ तथासयवनाहिंगाश्चीरप्रावरणाश्चये ॥ त्रिनेत्राःपौरवाश्चैवगन्धर्वाश्चद्विजोत्तम ॥ ५२ ॥ पूर्वोत्तरंतुकूर्मस्यपादमेतेसमाश्रिताः ॥ रेवत्यश्वाश्विदैवत्यंयाम्यंचर्क्षमितित्रयम् ॥ ५३ ॥

ते हैं ॥ ४७ ॥ शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, और उत्तरभाद्रपद यह तीन नक्षत्र वहां के शुभाशुभकी सूचना देते हैं । किन्नरराज्य, पशुपाल, कीचक ॥ ४८ ॥ काश्मीर, अभिसारजन, दरद, त्वंगण, कुलट, वनराष्ट्रक ॥ ४९ ॥ सैरिष्ठ, ब्रह्मपुरक, वनवाह्यक, किरात, कौशिकानन्द, पह्लव, लोलन ॥ ५० ॥ दार्वाद, मरक, कुरट, अन्न दारक, एकपाद, खस, घोष, स्वर्गभौम, अनवद्यक ॥ ५१ ॥ यवन, हिंग, चिरप्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव, और गंधर्व ॥ ५२ ॥ यह समस्त देश कूर्मके पूर्व उत्तरमें अव

स्थित हैं रेवती, अश्विनी और भरणी इन तीन नक्षत्रोंसे उक्त देशोंका शुभाशुभ जाना जाता है ॥ ५३ ॥ हे मुनिसत्तम ! हे द्विजोत्तम ! जिसप्रकार मैंने आपसे कथन किया; इतने देशोंमें इतनेही नक्षत्र, इतनेही मनुष्य और इतनेही पर्वत हैं ॥५४ ॥ हे विप्र ! उक्तदेशोंमें क्रमानुसार इन्हीं नक्षत्रोंके विगड़नेसे मनुष्योंको पीड़ा उपस्थित होती है और वही ग्रह जब सम्यक् प्रकार श्रेष्ठ ग्रहके संग मिलित होते हैं तब पुरुषको सुख प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस नक्षत्रका जो अधिपति है. उसके विगड़नेसे उस देशमें पुरुषोंको दुःख अथवा भय उपस्थित होता है और उसीके श्रेष्ठ स्थानमें होनेसे मनुष्योंको शुभ होता है॥ ५६ ॥ हे द्विजोत्तम ! प्रत्येक देशकी समान वहां के मनुष्योंको भी नक्षत्र वा ग्रहजनित भय अथवा शुभ होता है ॥ ५७ ॥ संपूर्ण मनुष्योंको समस्त देशोंमें अपने अपने नक्षत्रके विगड़नेसे अत्यन्त भय और दुःख

तत्रपादेसमाख्यातंपाकायमुनिसत्तम ॥ देशेष्वेतेषुचैतानिनक्षत्राण्यपिवैद्विज ॥ ५४ ॥ एतत्पीडाअर्मीदेशाःपीड्यन्तेयेक्रमोदिताः ॥ यान्तिचाभ्युदयं विप्रग्रहैःसम्यगवस्थितैः ॥ ५५ ॥ यस्यर्क्षस्यपतिर्यो वैग्रहस्तद्भावतोभयम् ॥ तद्देशस्यमुनिश्रेष्ठतदुत्कर्षेशुभागमः ॥ ५६ ॥ प्रत्येकंदेशसामान्यंनक्षत्रग्रहसम्भवम् ॥ भयंलोकस्यभवतिशोभनंवाद्विजोत्तम ॥ ५७ ॥ स्वर्क्षैरशोभनैर्जन्तोःसामान्यमितिभीतिदम् ॥ ग्रहैर्भवतिपीडोत्थमल्पायासमशोभनम् ॥ ५८ ॥ तथैवशोभनःपाकोदुःस्थितैश्चतथाग्रहैः ॥ अल्पोपकारायनृणांदेशज्ञैरुदितोबुधैः ॥ ५९ ॥ द्रव्येगोष्ठेऽथभृत्येषुसुहृत्सुतनयेषुवा ॥ भार्यायांचग्रहेदुःस्थेभयंपुण्यवतांनृणाम् ॥ ६० ॥ आत्मन्यथाल्पपुण्यानांसर्वत्रैवातिपापिनाम् ॥ नैकत्रापिह्यपापानांभयमस्तिकदाचन ॥ ॥ ६१ ॥ दिग्देशजनसामान्यंनृपसामान्यमात्मजम् ॥ नक्षत्रग्रहसामान्यंनरोभुङ्क्तेशुभाशुभम् ॥ ६२ ॥ परस्पराभिरक्षाचग्रहदौस्थ्येनजायते ॥ एतेभ्यएवविप्रेन्द्रशुभहानिस्तथाशुभैः ॥ ६३ ॥

उत्पन्न होता है ॥ ५८ ॥ तथा ग्रहोंके वक्र होनेपर जो भय उपस्थित होता है.उस ग्रहभयको मिटानेके लिये बुद्धिमान् ज्योतिषीगण मनुष्योंको जप और दान करनेका उपदेश देते हैं ॥ ५९ ॥ ग्रहके विगड़नेसे पुण्यात्मा पुरुषोंको भी द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य,हित पुत्र और स्त्री आदिके सहित पीड़ा होती है ॥ ६० ॥ अल्प पुण्य मनुष्योंको अपने देहमें पीड़ा होती है और पापियोंको सर्वत्र ग्रह पीड़ाका भय होता है; किन्तु पुण्यवानोंको वास्तविक किसी स्थानमें भय नहीं है ॥ ६१ ॥ दिशा, देश, जन नृप, पुत्र, सुख, तथा दुःखआदि मनुष्योंको नक्षत्र और ग्रहके अनुकूल तथा प्रतिकूलके अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥हे विप्रेन्द्र ! ग्रहोंके स्वस्थता

पूर्वक रहनेसे मनुष्योंको सुख मिलता है और ग्रहोंकी दुःस्थिति होनेसे मनुष्योंको अशुभ प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ यह जो नक्षत्रोंके सहित मैंने कूर्मभगवान्के संस्थानका वर्णन किया यह सब देशोंमें शुभाशुभका देनेवाला है ॥ ६४ ॥ हे द्विजसत्तम ! इसीकारण बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि देश, नक्षत्र और ग्रहकी करीहुई पीड़ाको जानकर उसकी शान्ति करै ॥ ६५ ॥ आकाशमें देवता और दैत्योंका शत्रु जब स्वर्गसे गिरता है और वही लोकवादके नामसे विख्यात है ॥ ६६ ॥ अतएव बुद्धिमान् मनुष्यको ग्रह और लोकवाद दोनोंकी शान्ति करनी चाहिये क्योंकि मनुष्योंको इन्हीं सबके गिरनेसे यहां शुभ और अशुभ प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ हे द्विजसत्तम ! जब यह ग्रहादिक अनुकूल होते हैं, तब शुभका उदय और पापकी हानि करते हैं और जब यही ग्रहादिक विपरीत होते हैं तब द्रव्य तथा बुद्धिकी हानि करते हैं ॥ ६८ ॥ इसकारण लोकवादरत बुद्धिमान् मनुष्यको पीड़ाके समय लोकवाद और ग्रहकी

यदेतत्कूर्मसंस्थानंनक्षत्रेषुमयोदितम् ॥ एतत्तुदेशसामान्यमशुभंशुभमेवच ॥ ६४ ॥ तस्माद्विज्ञायदेशर्क्षग्रहपीडांतथात्मनः ॥ कुर्व्वीतशान्तिमेधावीलोकवादांश्चसत्तम ॥ ६५ ॥ आकाशाद्देवतानांचदैत्यादीनांचदोर्हृदाः ॥ पृथ्व्यांपतन्तितेलोकेलोकवादाइतिश्रुताः ॥ ६६ ॥ तांतथैवबुधःकुर्याल्लोकवादान्नहापयेत् ॥ तेषान्तत्करणान्नृणांयुक्तोदुष्टागमक्षयः ॥ ६७ ॥ शुभोदयंप्रहानिंचपापानांद्विजसत्तम ॥ प्रज्ञाहानिंप्रकुर्व्युस्तेद्रव्यादीनांचकुर्वते ॥ ६८ ॥ तस्माच्छान्तिपरः प्राज्ञोलोकवादरतस्तथा ॥ लोकवादांश्चशान्तीश्चग्रहपीडासुकारयेत् ॥ ६९ ॥ अद्रोहानुपवासांश्चशस्तंदेवादिवन्दनम् ॥ जपोहोमस्तथादानंस्नानंक्रोधादिवर्जनम् ॥ ७० ॥ अद्रोहंसर्वभूतेषुमैत्रींकुर्याच्चपण्डितः ॥ वर्जयेदसतींवाचमतिवादांस्तथैवच ॥ ७१ ॥ ग्रहपूजांचकुर्वीतसर्वपीडासुमानवः ॥ एवंशाम्यन्त्यशेषाणिघोराणिद्विजसत्तम ॥ ७२ ॥ प्रयतानांमनुष्याणांग्रहर्क्षोत्थान्यशेषतः ॥ एषकूर्मोमयाख्यातोभारतेभगवान्विभुः ॥ ७३ ॥ नारायणोह्यचिन्त्यात्मायत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ अत्रदेवाःस्थिताःसर्वेप्रतिनक्षत्रसंश्रयाः ॥ ७४ ॥

शान्ति अवश्य करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ और आप किसीसे द्रोह न करै, उपवास (व्रत) करै, शान्तिस्तोत्रका पाठ करै, तथा जप होम, स्नान दान करै और क्रोधादिसे दूर रहना उचित है ॥ ७० ॥ सर्वभूत (संसार) से अद्रोह अर्थात् वैररहित हो पण्डित होकर सबसे मित्रता करै मिथ्या न बोले और अधिक विवाद भी नहीं करना चाहिये ॥ ७१ ॥ हे द्विजसत्तम ! संपूर्ण पीड़ाओंमें मनुष्यको ग्रहका पूजन करना उचित है क्योंकि इसप्रकार शान्ति और पूजा करनेसे सब घोर पीड़ा भी दूर हो जाती है ॥ ७२ ॥ और जो पुरुष पवित्र हैं उनको भी ग्रहोंके कारणसे शुभ अशुभ फल प्राप्त होता है । इसप्रकारसे भारतवर्षमें यह कूर्मभगवान विभु विद्यमान रहते हैं जिनका वृत्तान्त मैंने आपसे वर्णन किया ॥ ७३ ॥ यह नारायण कूर्म अचिन्त्यात्मा हैं इन्हींमें समस्त देव नक्षत्रोंके स्वामी स्थित रहते हैं ॥ ७४ ॥

उनके मध्यमें अग्नि, पृथ्वी और चन्द्र विद्यमान हैं,मेषादि तीन राशि उनके मध्यस्थलमें अवस्थित हैं मिथुनादि दो राशि उनके मुखमें स्थित हैं॥ ७५॥ कर्कट और सिंहराशि उनके पूर्व दक्षिण चरणमें वास करतीं हैं,सिंह, कन्या और तुल यह तीन राशि उनकी कुक्षिमें विराजमान हैं॥ ७६॥ तुल और वृश्चिक राशि दक्षिण पश्चिम पदमें विद्यमान हैं वृश्चिक और धनुराशि उनके पृष्ठदेशमें ॥ ७७॥ धनु और मकरादि तीनिराशि उनके वायव्य चरणमें कुंभ और मीन राशि उनकी उत्तर कुक्षिमें स्थित रहती हैं ॥ ॥ ७८ ॥ हे द्विजोत्तम ! हे विप्र ! पूर्व और उत्तर चरणमें मीन मेष स्थित रहती हैं । इस कूर्ममें देश, देशमें नक्षत्र ॥ ७९ ॥ नक्षत्रमें राशि और ग्रह ग्रहमें राशि स्थित हैं । इस कारण ग्रह नक्षत्रकी पीड़ामें देशपीड़ा समझनी चाहिये ॥ ८० ॥देश पीड़ादिके होनेपर स्नानकरके दान होमादि संपूर्ण नियम

तथामध्येहुतवहःपृथ्वीसोमश्चवैद्विज ॥ मेषादयस्त्रयोमध्येमुखेद्वौमिथुनादिकौ ॥७५॥ प्राग्दक्षिणेतथापादेकर्किसिंहौव्यवस्थितौ॥सिंहकन्यातुलाश्चैवकुक्षौरा शित्रयंस्थितम् ॥७६॥ तुलाथवृश्चिकश्चोभौपादेदक्षिणपश्चिमे ॥ पृष्ठेचवृश्चिकेनैवक्षहधन्वीव्यवस्थितः ॥ ७७॥ वायव्येचास्यवैपादेधनुर्ग्राहादिकंत्रयम् ॥ कुम्भमीनौतथैवास्यउत्तरांकुक्षिमाश्रितौ ॥ ७८ ॥ मीनमेषौद्विजश्रेष्ठपादेपूर्वोत्तरेस्थितौ ॥ कूर्मेदेशास्तथर्क्षाणिदेशेष्वेतेषुवैद्विज ॥ ७९ ॥ राशयश्चतथर्क्षे षुग्रहराशिष्ववस्थिताः॥तस्माद्ग्रहर्क्षपीडासुदेशपीडांविनिर्दिशेत् ॥८०॥ तत्रस्नात्वाप्रकुर्वीतदानहोमादिकंविधिम् ॥ सएषवैष्णवःपादोब्रह्मन्मध्येग्रहस्ययः ॥ ८१॥ (नारायणख्योचिन्त्यात्माकारणंजगतःप्रभुः ॥) ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेभारतीयकूर्मनिवेशोनामपंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंतु भारतं वर्षं यथावत्कथितं मुने ॥ कृतंत्रेताद्वापरंचतथातिष्यंचतुष्टयम् ॥१ ॥ अत्रैवैतद्युगानान्तुचातुर्वर्ण्यंचवैद्विज ॥ चत्वारित्री णिद्वेचैवतथैकंचशरच्छतम् ॥ २ ॥

करने चाहिये । यह जो विष्णुके चरणस्वरूप ब्रह्माजी ग्रहोंके बीचमें अवस्थान करते हैं, यही नारायण अचिन्त्यात्मा, जगत्कारण और जगत्के प्रभु हैं॥८१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां कूर्मनिवेशोनामपंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! यह मैंने भारतवर्षका विषय यथावत् वर्णन किया इस भारतवर्षमेंही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलिरूप चारोंयुग वर्त्तमान हैं ॥ १॥ और इस स्थानमेंही ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंका भेद है, यहां पर सत्य त्रेता द्वापर और कालि इन चारों युगोंके भेदसे इस स्थानके मनुष्य क्रमानुसार चारसौ,तीनसौ, दोसौ और एकसौ वर्ष जीवित रहते हैं । पूर्व दिशामें देवकूट

नामक महापर्वतके ॥ २ ॥ ३ ॥ पूर्वकी ओर जो वर्ष स्थित है,उसका नाम भद्राश्व वर्ष है । अब उसकी कथा वर्णन करताहूं । श्वेतपर्ण, नील, शैवाल ॥ ४ ॥ क्रौञ्च, और पर्णशालाग्र नामक पाञ्च श्रेष्ठ कुलाचल इस वर्षमें स्थित हैं और इन सब पर्वतोंसे उत्पन्न हुए अनेक छोटे छोटे पर्वत भी इस वर्षमें हैं ॥ ५ ॥ इस वर्षमें, कुमुद सङ्काश, शुद्धसानु, सुमंगल इत्यादि अन्यान्य शतसहस्र (सैकड़ों हजारों) जनपद छोटे छोटे पर्वतोंसे युक्त होकर नानाभांतिसे अवस्थान करते हैं । सीता शंखावती, भद्रा और चक्रावर्त्तादि ॥ ६ ॥ ७ ॥ अनेकानेक अत्यन्त शीतलजलवाहिनी नदियें विस्तीर्ण होकर इस वर्षमें बहतीं हैं । इस वर्षमें जो मनुष्य जन्म लेते हैं वह समस्तही शंख और निर्मल सुवर्णकी समान प्रभायुक्त होते हैं ॥ ८॥ और श्रेष्ठ संग तथा पवित्र होकर हजारवर्ष जीवित रहते हैं, उनमें कोई अधम वा उत्तम नहीं

जीवन्त्यत्रनराब्रह्मन्कृतत्रेतादिषुक्रमात् ॥ देवकूटस्यपूर्वस्यशैलेन्द्रस्यमहात्मनः ॥ ३ ॥ पूर्वेणयत्स्थितंवर्षंभद्राश्वंतन्निबोधमे ॥ श्वेतपर्णश्चनीलश्चशैवाल श्चाचलोत्तमः ॥ ४ ॥ कौरञ्जः पर्णशालाग्रःपंचैतेतुकुलाचलाः ॥ तेषांप्रसूतिरन्येयेबहवःक्षुद्रपर्वताः ॥ ५ ॥ तैर्विमिश्राजनपदानानारूपाःसहस्रशः ॥ ततःकुमुदसंकाशाःशुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥६॥ इत्येवमादयोऽन्येऽपिशतशोऽथसहस्रशः ॥ सीताशङ्खावतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥७॥ नद्योऽथबह्वचो विस्तीर्णाःशीततोयौघवाहिकाः ॥ अत्रवर्षेनराःशङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ॥ ८ ॥ दिव्यसङ्गमिनःपुण्यादशवर्षशतायुषः ॥ अधमोत्तमंनतेष्वस्तिसर्वेतेसमदर्श नाः॥९॥तितिक्षादिभिरष्टाभिःप्रकृत्यात्मगुणैर्युताः ॥ तत्राप्यश्वशिरादेवश्चतुर्बाहुर्जनार्दनः ॥ १० ॥ शिरोहृदयमेढ्राङ्घ्रिहस्तैश्चाक्षित्रयान्वितः ॥ तस्या प्यथैवंविषयाविज्ञेयाजगतःप्रभोः ॥ ११ ॥ केतुमालमतोवर्षंनिबोध ममपश्चिमम् ॥ विशालःकम्बलःकृष्णोजयन्तोहरिपर्वतः ॥ १२ ॥ विशोकोवर्द्ध मानश्चसप्तैतेकुलपर्वताः ॥ अन्येसहस्रशःशैलायेषुलोकगणःस्थितः ॥ १३ ॥

है, क्योंकि सभी समदर्शन हैं ॥ ९ ॥ वहांके संपूर्ण मनुष्य स्वभावसेंही सहनशीलताआदि आठ गुणोंमें गुणवान् होते हैं । इस भद्राश्व वर्षमें भगवान् चतुर्बाहु जनार्दन हयग्रीवरूपसे ॥ १० ॥ शिर, हृदय,मेढ्र, चरण हस्त और तीन नेत्र युक्त होकर अवस्थान करते हैं उन प्रभु जगदीश्वरका संपूर्ण विषय भी इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ ११ ॥ अनन्तर सुमेरुके पश्चिम देशमें स्थित केतुमालवर्षकी कथाका वर्णन करताहूं—इस वर्षमें जो सप्त कुलपर्वत हैं, उनके नाम यथा विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत॥ १२॥ विशोक,और वर्द्धमान । इनके अतिरिक्त पृथ्वीके मौलिस्वरूप महाकाय और भी हजारों पर्वत हैं जिनमें अनेक लोग रहते हैं ॥ १३॥

उनमें शाक, पोत, करम्भक और अच्चुलाख्य इत्यादि अनेक प्रकारके जन वास करते हैं ॥ १४ ॥ यह मनुष्य जिन महानदियोंका जल पीते हैं. उनके नाम—वक्षु, श्यामा, कम्बला, अमोघा, कामिनी और सुमेधा, इसी प्रकार और और भी हजारों नदियें बहती हैं ॥ १५ ॥ वहांपर भी मनुष्योंकी आयु पूर्वकी समान है और उस देशमें भगवान् हरि वराहरूपसे विराजमान रहते हैं। उनके चरण, हृदय, मुख, पीठ तथा पार्श्वमें मुख नासिका कण्ठ दाँत और पुच्छसे तीन नक्षत्रों से युक्त होकर संपूर्ण देश स्थित हैं और वहां भी नक्षत्रोंसे शुभ अशुभ विदित होता है ॥ १६ ॥ हे मुनिसत्तम ! इसप्रकार जो केतुमाल नामक वर्ष है, उसका भी मैंने आपसे वर्णन किया ॥ १७ ॥ अनन्तर उत्तरकुरुदेशकी कथा कहता हूँ सुनो इस उत्तर कुरुदेशमें सर्व कालके फलपुष्पयुक्त,

मालयस्तेमहाकायाःशाकपोतकरम्भकाः ॥ अचुलप्रमुखाश्चापिवसन्तिशतशोजनाः ॥ १४ ॥ येपिबन्तिमहानद्योवंक्षुश्यामांस्वकम्बलाम् ॥ अमोघांकामिनींश्यामांतथैवान्याःसहस्रशः ॥ १५ ॥ अत्राप्यायुःसमंपूर्वैरत्रापिभगवान्हरिः ॥ वराहरूपीपादोस्यहृत्पृष्ठेपार्श्वतस्तथा ॥ १६ ॥ (मुखेनासादतश्चैवकण्ठतःपुच्छतस्तथा) ॥ त्रिनक्षत्रयुतेदेशेनक्षत्राणियुतानिच ॥ इत्येतत्केतुमालेतकथितंमुनिसत्तम ॥ १७ ॥ अतःपरंकुरून्वक्ष्येनिबोधेहममोत्तरान् ॥ तत्रवृक्षामधुफलानित्यपुष्पफलोपगाः ॥ १८ ॥ वस्त्राणिचप्रसूयन्तेफलेष्वाभरणानिच ॥ सर्वकामप्रदास्तेहिसर्वकालफलप्रदाः ॥ १९ ॥ भूमिर्मणिमयीवायुःसुगन्धःसर्व्वदासुखः ॥ जायन्तेमानवास्तत्रदेवलोकपरिच्युताः ॥२०॥ मिथुनानिप्रसूयन्तेसमकालस्थितानिवै ॥ अन्योन्यमनुरक्तानिचक्रवाकोपमानिच ॥ २१ ॥ चतुर्दशसहस्राणितेषांसार्द्धानिवैस्थितिः ॥ चन्द्रकान्तश्चशैलेन्द्रःसूर्य्यकान्तस्तथापरः ॥२२॥ तस्मिन्कुलाचलेवर्षेतन्मध्येचमहानदी ॥ भद्रसोमाप्रयात्युर्व्यांपुण्यामलजलौघिनी ॥ २३ ॥

मधुरफलसे युक्त सर्वकामनादायक और सर्वकालफलदायक संपूर्ण वृक्ष ॥ १८ ॥ वस्त्र उत्पन्न करते हैं और उनके संपूर्ण फलोंसे नानाप्रकारके गहने उत्पन्न होते हैं ॥ १९ ॥ वहांकी भूमि मणिमयी, वायु सुन्दर गन्धयुक्त और सर्वदा सुखदायक है देवलोकसे भ्रष्ट होकर मनुष्य वहां जन्मलेते हैं ॥ २० ॥ वह चक्रवाकके समान परस्पर प्रीति करते हैं और समकालमें स्थित हुए बालक बालिका उत्पन्न करते हैं ॥ २१ ॥ वह साढ़ेचौदहहजार वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं। इस वर्षमें चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो श्रेष्ठ कुलपर्वत वर्तमान हैं ॥ २२ ॥ उस पर्वतमें पवित्र और निर्मल जल बहनेवाली भद्रसोमानामक महानदी पृथ्वीमें बहती है ॥ २३ ॥

तथा और भी छोटी छोटी हजारों नदियें वहां वर्तमान हैं, दूसरी और जो नदियें हैं उनमें कोई क्षीरवाहिनी कोई घृतवाहिनी॥ २४॥ और कोई दधिके तलावसे युक्त हैं। और इन सात कुल पर्वतों के अतिरिक्त और भी छोटेछोटे बहुत पर्वत हैं। इस उत्तर कुरुदेशस्थ सैकडों हजारों वनोंके मध्यवर्त्ती समस्त वृक्षोंमें भांतिभांतिके स्वादयुक्त फल फलते हैं इस स्थानमें भी भगवान् नारायण मत्स्यरूप धारणपूर्वक पूर्वको मस्तककर वास करते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे विप्र ! इस उत्तर कुरुदेशमें नक्षत्र नव भागोंमें विभक्त होकर तीन तीन क्रमानुसार स्थिति करते हैं। हे मुनिसत्तम ! इसीप्रकार सब देश भी नव भागमें विभक्त हैं ॥ २७ ॥ हे महामुने ! इस वर्षमें चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप नामक दो प्रसिद्ध द्वीप हैं, दोनोंही समुद्रके बीचमें अवस्थित और पवित्र हैं ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मैंने तुमसे उत्तर कुरुवर्षकी कथा कही,

सहस्रशस्तथैवान्यानद्योवर्षेऽपिचोत्तरे ॥ तथान्याःक्षीरवाहिन्योघृतवाहिन्यएवच ॥ २४ ॥ दध्नोह्रदास्तथातत्रतथान्येचानुपर्व्वताः ॥ अमृतास्वादकल्पानिफलानिविविधानिच ॥ २५ ॥ वनेषुतेषुरम्याणिशतशोऽथसहस्रशः ॥ तत्रापिभगवान्विष्णुःप्राक्छिरामत्स्यरूपवान् ॥ २६ ॥ विभक्तोनवधाविप्रनक्षत्राणांत्रयंत्रयम् ॥ देशास्तत्रापिनवधाविभक्तामुनिसत्तम॥ २७॥ चन्द्रद्वीपःसमुद्रेचभद्रद्वीपस्तथापरः ॥तत्रापिपुण्योविख्यातःसमुद्रान्तर्महामुने ॥२८॥ इत्येतत्कथितंब्रह्मन्कुरुवर्षमयोत्तरम् ॥ शृणुकिंपुरुषादीनिवर्षाणिगदतोमम ॥ २९ ॥ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेउत्तरकुरुकथनंनामषट्पंचाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ यत्तुकिम्पुरुषंवर्षंतत्प्रवक्ष्याम्यहंद्विज ॥ तत्रायुर्दशसाहस्रंपुरुषाणांवपुष्मताम् ॥ १ ॥ अनामयाह्यशोकाश्चनरायत्रतथास्त्रियः ॥ प्लक्षःखण्डश्चयत्रोक्तःसुमहान्नन्दनोपमः ॥ २ ॥ तस्यतेवैफलरसंपिबन्तःपुरुषाःसदा ॥ स्थिरयौवननिष्पन्नाःस्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥ ३ ॥ अतः परंकिंपुरुषाद्धरिहर्षंप्रचक्षते ॥ महारजतसंकाशाजायंतेतत्रमानवाः ॥ ४ ॥ देवलोकच्युताः सर्वेदेवरूपाश्चसर्वशः ॥ हरिवर्षेनराः सर्वेपिबन्तीक्षुरसंशुभम् ॥ ५ ॥

इसके उपरान्त किम्पुरुषादि वर्षका विषय वर्णन करताहूं, सुनो ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामुत्तरकुरुकथनं नाम षट्पंचाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम ! अब किम्पुरुष नामक जो वर्ष है; उसकी कथा कहताहूं सुनो वहां शरीरधारी पुरुष दशहजार वर्ष जीवित रहते हैं ॥ १ ॥ वहांके स्त्री पुरुष नीरोग और शोकरहित होते हैं । उस स्थानमें नन्दनवनके समान महान् एक प्लक्षखंड है ॥ २ ॥ वहांके मनुष्य सदा उन वृक्षोंके फलोंका रस पीकर स्थिरयौवन हुए हैं. और स्त्रियें पद्मकी समान गंधयुक्त हुई हैं ॥ ३ ॥ इस किम्पुरुषवर्षके पीछे हरिवर्ष नामक और एक वर्ष है, वहां जो पुरुष जन्मलेते हैं, वह श्रेष्ठ चांदीकी समान वर्णशाली होते हैं ॥ ४ ॥ जो देवरूपी मनुष्य देवलोकसे गिरकर हरिवर्षमें जन्मलेते हैं, वह वहां उत्तम इक्षु (ऊख) का रस पीतेहैं ॥ ५ ॥

बुढ़ापा उनको पीड़ित नहीं करता, अतएव कोई भी जीर्ण नहीं होता। और जितने कालतक वह जीवित रहते हैं तबतक सदा युवा अवस्था बनी रहती है और निरामय रहते हैं ॥ ६ ॥ मेरुवर्ष नामक जो मध्यम वर्ष है जिसको इलावृत कहते हैं वहां सूर्यका ताप नहीं है और मनुष्य बुढ़ापेसे जीर्ण नहीं होते ॥ ७ ॥ चन्द्र सूर्य, ग्रह, और संपूर्ण नक्षत्रोंकी किरणें वहां आत्मलाभ अर्थात् उज्ज्वलता प्राप्त नहीं करसकतीं क्यों कि वहां सुमेरुपर्वतकी अत्यन्त ज्योति प्रकाशित होती है ॥ ८ ॥ मरुवर्षमें जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वह समस्तही पद्मकी समान प्रभायुक्त, पद्मगंध पद्मपत्रकी समान चौड़े नेत्रोंवाले और जम्बुके फलोंका रस पीनेवाले होते हैं ॥ ॥९॥ उन पुरुषोंकी आयु तेरहहजार वर्षकी होती है और उस इलावृतके मध्यमें मेरुनामक जो पर्वत है, उसका आकार शरावेकी समान है ॥ १० ॥ उस वर्षमें

नजराबाधतेतत्रनजीर्यन्तेचकर्हिचित् ॥ तावन्तमेवतेकालंजीवन्त्यथनिरामयाः ॥ ६ ॥ मेरुवर्षमयाप्रोक्तंमध्यमंयदिलावृतम् ॥ नतत्रसूर्यस्तपतिनतेजीर्यन्तिमानवाः ॥ ७ ॥ लभन्तेनात्मलाभंचरश्मयश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ नक्षत्राणांग्रहाणांचमेरोस्तत्रपराद्युतिः ॥ ८ ॥ पद्मप्रभाःपद्मगन्धाजम्बूफलरसाशिनः ॥ पद्मपत्रायताक्षास्तुजायन्तेतत्रमानवाः ॥ ९ ॥ वर्षाणान्तुसहस्राणितत्राप्यायुस्त्रयोदश ॥ शरावाकारसंस्तारोमेरुमध्येइलावृते ॥ १० ॥ मेरुस्तत्रमहाशैलस्तदाख्यातामिलावृतम् ॥ रम्यकंवर्षमस्माच्चकथयिष्येनिबोधतम् ॥ ११ ॥ वृक्षस्तत्रापिचोत्तुङ्गोन्यग्रोधोहरितच्छदः ॥ तस्यापितेफलरसंपिबन्तोवर्तयन्तिवै ॥ १२ ॥ वर्षायुतायुपस्तत्रनरास्तत्फलभोगिनः ॥ रतिप्रधानविमलाजरादौर्गन्ध्यवर्जिताः ॥ १३॥ तस्मादथोत्तरंवर्षनाम्नाख्यातंहिरण्मयम् ॥ हिरण्वतीनदीयत्रप्रभूतकमलोज्ज्वला ॥ १४ ॥ महाबलाःसतेजस्काजायन्तेतत्रमानवाः ॥ महाकायामहासत्त्वाधनिनःप्रियदर्शनाः ॥ १५ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभुवनकोशवर्णनंनामसप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ॥

महापर्वत मेरुही विख्यात है जो इलावृत कहलाता है अब रम्यकवर्षका वृत्तान्त कहताहूं सुनो ॥ ११ ॥ रम्यकवर्षमें बहुत ऊंचा न्यग्रोध नामक एक वृक्ष है, उसके सब पत्ते हरितवर्ण हैं वहां के मनुष्य उस वृक्षके फलोंका रस पीकर जीवन धारण करते हैं॥ १२ ॥ जो उस वृक्षके फलोंका भोजन करते हैं वह दशहजार वर्षतक जीवित रहते हैं और वह रतिक्रीड़ामें निपुण, सुन्दर तथा जरा दौर्गन्ध्यरहित होते हैं ॥ १३ ॥ उसके उत्तरमें जो वर्ष है उसका नाम हिरण्मय वर्षहै इस वर्षमें अनेक कमलोंके पुष्पोंसे शोभायमान हिरण्वती नामक नदी बहती है ॥ १४ ॥ वहां जो मनुष्य जन्मते हैं वह अत्यन्त बलशाली तेजस्वी, महाकाय, अत्यन्त सत्वसंपन्न धनी और प्रियदर्शन होते हैं ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भुवनकोशवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

क्रौष्टुकिने कहा—हे महामुने! जो मैंने पूछा था उसका तो आपने भलीभांति वर्णन किया और पृथ्वी समुद्रादिकी स्थिति; परिमाण तथा ग्रहका परिमाण ॥ १ ॥ नक्षत्र इत्यादिकी स्थिति और परिमाण और भूरादि सप्तलोक, सप्तपाताल ॥ २ ॥ आर स्वायंभुवनामक प्रसिद्ध मन्वन्तर; इन सबका भी मुझसे वर्णन किया है; अब उक्त मन्वन्तरके पीछेके अपर समस्त मन्वन्तर; उन उन मन्वन्तरोंके अधिपति; तद्वंशीय नृपति; देवता और ऋषियोंका वृत्तान्त सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—मैंने तुमसे जिस स्वायंभुव मन्वन्तरका विषय कहा है; उसके पीछे स्वारोचिष नामक अपर मन्वन्तरकी कथा सुनो ॥ ४ ॥ दोनों अश्विनी कुमारोंकी अपेक्षा भी रूपवान् शान्तस्वभाव सच्चरित्र वेदवेदाङ्गपारदर्शी कोई एक ब्राह्मण वरुणानदीके तटपर अरुणास्पद नगरमें वास करता था

क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ कथितंभवतासम्यग्यत्पृष्टोऽसिमहामुने ॥ भूसमुद्रादिसंस्थानंप्रमाणानितथाग्रहाः ॥ १ ॥ तेषांचैवप्रमाणंयन्नक्षत्राणांचसंस्थितिः ॥ भूरादयस्तथालोकाः पातालान्यखिलान्यपि ॥ २ ॥ स्वायम्भुवंतथाख्यातंमुनेमन्वन्तरंमम ॥ तदन्तराण्यहंश्रोतुमिच्छेमन्वन्तराणिवै ॥ मन्वन्तराधिपान्देवानृषींस्तत्तनयान्नृपान् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच॥ ॥ मन्वन्तरंमयाख्यातंतवस्वायम्भुवंचयत् ॥ स्वारोचिषाख्यमन्यत्तुशृणुतस्मादनन्तरम् ॥ ४॥ कश्चिद्द्विजातिप्रवरःपुरेऽभूदरुणास्पदे ॥ वरुणायास्तटेविप्रोरूपेणात्यश्विनावपि ॥ ५ ॥ मृदुस्वभावःसद्वृत्तोवेदवेदाङ्गपारगः ॥ सदातिथिप्रियोरात्रावागतानांसमाश्रयः ॥ ६ ॥ तस्यबुद्धिरियंत्वासीदहंपश्येवसुन्धराम् ॥ अतिरम्यवनोद्यानांनानानगरशोभिताम् ॥ ७ ॥ अथागतोऽतिथिःकश्चित्कदाचित्तस्यवेश्मनि ॥ नानौषधिप्रभावज्ञोमन्त्रविद्याविशारदः ॥ ८ ॥ अभ्यर्थितस्तुतेनासौश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ तस्याचख्यौसदेशांश्चरम्याणिनगराणिच ॥ ९ ॥ नदीवनानिशैलांश्चपुण्यान्यायतनानिच ॥ सततोविस्मयाविष्टःप्राहतंद्विजसत्तमम् ॥ १० ॥ अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः ॥ त्वंनातिवृद्धोवयसानातिवृत्तश्चयौवनात् ॥ कथमल्पेनकालेनपृथिवीमटसिद्विज ॥ ११ ॥

अतिथिके पानेपर वह सदाही प्रसन्न होता। सुतरां रात्रिकालमें आये हुए मनुष्योंका आश्रयस्वरूप था ॥ ५–६ ॥ सदाही उसके मनमें यह इच्छा होती कि, "मैं अतिरमणीय वन और उद्यानोंसे युक्त तथा अनेक नगरोंसे शोभायमान इस पृथ्वीको देखूं" ॥ ७ ॥ अनन्तर एक दिन सब ओषधियोंके प्रभावका जाननेवाला और मंत्रविद्यामें पारदर्शी एक अतिथि उसके घर आया ॥ ८ ॥ श्रद्धायुक्त मनसे ब्राह्मणके पूछने पर उस अतिथिने उससे अनेक देश, मनोहर नगर ॥ ९ ॥ वन, नदी, पर्वत और संपूर्ण पवित्र स्थान कहे उससे वह अरुणास्पद नगरमें वास करनेवाला ब्राह्मण आश्चर्ययुक्त होकर कहने लगा ॥ १० ॥ हे द्विजवर! आपने अनेक देशों

में भ्रमण किया है किन्तु आपके देहमें उसकी कुछ भी थकावट विदित नहीं होती आप बूढ़े भी नहीं हैं और न अधिक तरुणही हैं, आपकी आयु भी अधिक नह दीखती, फिर थोड़ेही कालमें आपने किस प्रकार सब पृथ्वीमें भ्रमण किया है ॥ ११ ॥ आये हुए ब्राह्मणने कहा हे विप्र ! मैं मंत्र और औषधियोंके प्रभावसे अप्रतिहतगति होकर आधे दिनमें हजार योजन जा सकता हूं ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर उस अरुणास्पदनिवासी ब्राह्मणने विद्वान् अतिथिके वचनमें श्रद्धायुक्त होकर आदरसहित फिर उससे यह वचन कहा ॥ १३ ॥ हेभगवन् ! आप मेरे प्रति औषधी प्रदान रूप कृपा कीजिये । क्योंकि मेरी इस पृथ्वी को देखनेके लिये अत्यन्त इच्छा हुई है ॥ १४ ॥ यह वचन सुनकर उस आयेहुए उदाराचित्त ब्राह्मणनें नगरवासी द्विजवरके पदमें औषधीका लेप कर दिया

ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ मन्त्रौषधिप्रभावेणविप्राप्रतिहतागतिः ॥ योजनानांसहस्रंहिदिनार्द्धेनव्रजाम्यहम् ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसविप्रस्तंभूयःप्रत्युवाचेदमादरात् ॥ श्रद्धधानोवचस्तस्यब्राह्मणस्याविपश्चितः ॥ १३ ॥ ममप्रसादंभगवन्कुरुमन्त्रप्रभावजम् ॥ द्रष्टुमेतांममहीमतीवेच्छा प्रवर्तते ॥ १४ ॥ प्रादात्सब्राह्मणश्चास्मैपादलेपमुदारधीः ॥ अभिमन्त्रयामासदिशंतेनाख्यातांचयत्नतः ॥ १५ ॥ तेनानुलिप्तपादोऽथसद्विजोद्विजसत्तम ॥ हिमवन्तमगाद्द्रष्टुंनानाप्रस्रवणान्वितम् ॥ १६ ॥ सहस्रंयोजनानांहिदिनार्धेनव्रजामियत् ॥ आयास्यामीतिसंचिन्त्यतदर्द्धेनापरेणाहि ॥ १७ ॥ संप्राप्तो हिमवत्पृष्ठंनातिश्रान्ततनुर्द्विज ॥ विचचारततस्तत्रतुहिनाचलभूतले ॥ १८ ॥ पादाक्रान्तेनतस्याथतुहिनेनविलीयता ॥ प्रक्षालितःपादलेपःपरमौषधिसंभवः ॥ १९ ॥ ततोजडगतिःसोऽथइतश्चेतश्चपर्यटन् ॥ ददर्शातिमनोज्ञानिसानूनिहिमभूभृतः ॥ २० ॥ सिद्धगन्धर्वजुष्टानिकिन्नराभिरतानिच ॥ क्रीडाविहाररम्याणिदेवादीनामितस्ततः ॥ २१ ॥

और कहीहुई दिशाओंका यत्नपूर्वक उपदेश भी दिया ॥ १५ ॥ हे मुनिसत्तम ! जब उस अतिथिने पैरमें लेप लगा दिया; तब वह ब्राह्मण " दिनके प्रथमार्द्धमें सहस्र योजन जाऊंगा और अपरार्द्ध दिनमें वहांसे आभी सकता हूं " इसप्रकार चिन्ताकरके अनेक झरनोंसे युक्त हिमालय पर्वतको देखनेके लिये गया ॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ द्विजवर सहजमेंही हिमालयकी पीठपर पहुंचकर उस हिमाचलकी भूमिमें विचरण करने लगा ॥ १८ ॥ वहां विचरण करते करते पैरमें अधिक शीतलताके लगनेसे उसका परमौषधीसम्भूत पाद लेप धुल गया ॥ १९ ॥ तब उस ब्राह्मणकी जड़गति हो गई अनन्तर वह इधर उधर विचरण करते उस हिमालय पर्वतके मनोहर सानुप्रान्त भाग देखने लगा ॥ २० ॥ कि वहांपर सिद्ध, गंधर्व, किन्नर विहार कर रहे हैं और उस पर्वतके किनारे देवताओंके क्रीड़ा और विहारके

लिये अत्यन्त रमणीक स्थान बन रहे हैं ॥ २१ ॥ हे मुने! वह उत्तम ब्राह्मण उस स्थानको सैकडों अप्सराओंसे युक्त देखने लगा, कि जिसके देखनेसे उसका देह पुलकित हुआ और वह अपने मनको किसीप्रकार तृप्त नहीं करसका ॥ २२ ॥ यह ब्राह्मण प्रसन्नतासे देखने लगा कि हिमालय पर्वत किसी स्थानमें पत्थरोंसे छूटी हुई जल राशिके गिरनेसे शोभा पाता है;कहीं नाचनेवाले मोरोंके केकारवसे शब्दायमान हो रहा है । और कहीं अन्यान्य पक्षी मनभाविनी सुहाविनी बोलियाँ बोल रहे हैं ॥ २३ ॥ कहीं अत्यन्त मनोहर दात्यूह पपीहा कोयष्टि टिटीहरी इत्यादि पक्षियोंसे व्याप्त हो रहा है; कहीं पुंस्कोकिलके समान मनोहर मधुरालापसे प्रतिध्वनित हो रहा है ॥ २४ ॥ और कहीं वृक्षोंके खिले हुए पुष्पोंकी गंधसे सुवासित वायुद्वारा वीजित हो रहा है । वह ब्राह्मण

दिव्याप्सरोगणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् ॥ नातृप्यतद्विजश्रेष्ठःप्रोद्भूतपुलकोमुने ॥ २२ ॥ क्वचित्प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् ॥ प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्चनिनादितम् ॥ २३ ॥ दात्यूहकोयष्टिकाद्यैःक्वचिच्चातिमनोहरैः ॥ पुंस्कोकिलकलालापैःश्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥ २४ ॥ प्रफुल्लतरुगन्धेनवासितानिलवीजितम् ॥ मुदायुक्तःसदद्दशेहिमवन्तंमहागिरिम् ॥ २५ ॥ दृष्ट्वाचैतंद्विजसुतोहिमवन्तंमहाचलम् ॥ श्वोद्रक्ष्यामीतिसंचिन्त्यमतिंचक्रेगृहंप्रति ॥ २६ ॥ विभ्रष्टपादलेपोऽथचिरेणजडितक्रमः ॥ चिन्तयामासकिमिदंमयाऽज्ञानादनुष्ठितम् ॥ २७ ॥ यदिप्रलेपोनष्टोमेविलीनोहिमवारिणा ॥ शैलोऽतिदुर्गमश्चायंदूरंचाहमिहागतः ॥ २८ ॥ प्रयास्यामिक्रियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् ॥ कथमत्रकरिष्यामिसंकटंमहदागतम् ॥ २९ ॥ इदम्परमिदंरम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ॥ सक्तदृष्टिरहंतृप्तिंनयास्येऽब्दशतैरपि ॥ ३० ॥

इसप्रकार हिमवन्त नामक महागिरिकी शोभाको देखकर अत्यन्त मुदित हुआ ॥ २५ ॥ इसके पीछे ब्राह्मणकुमार हिमवन्तनामक महाचलको देखकर अपने मनमें विचार करने लगा कि "फिर कल प्रातः समय आनकर देखूंगा" यह बात अपने चित्तमें स्थिर करके घर चलनेकी इच्छा करी ॥ २६ ॥ वहां विलम्ब होनेके कारण पादलेप धुल जानेसे जड़गति हो ब्राह्मण चिन्ता करने लगा कि मैंने अज्ञानके वश होकर क्या कार्य किया ॥ २७ ॥ कि, जब मेरा चरणलेप इस शीतलजलसे नष्ट हो गया है, तब यहांसे जाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह पर्वत महादुर्गम है और मेरा घर बहुत दूर है ॥ २८ ॥ अब मुझको महासंकट उपस्थित हुआ है, यहां अग्निशुश्रूषणादि कार्य किसप्रकार करूंगा, अतएव नित्यक्रिया भी सब नष्ट हो गई ॥ २९ ॥ "यह भी रमणीय, यह भी रमणीय" इस प्रकार करके

इस श्रेष्ठ पर्वतमें आसक्तदृष्टि हो मैं सौ वर्षमें भी तृप्त नहीं हो सकूंगा ॥ ३० ॥ अहाहा चारोंओरसे किन्नरोंका कानोंको सुखदायक मधुर आलाप सुनाई आता है । कुसुमित वृक्षोंसे सुगन्धि प्राप्तकर नासिका तृप्त हुई है ॥ ३१ ॥ यहांका वायु सुखस्पर्श, समस्त फल सुरस, मनोहर सरोवरसे मानो बलपूर्वक मेरा चित्त आकर्षित होता है ॥ ३२॥ अब इसप्रकार कुछ काल वीतनेपर यदि किसी तपोधनको देखूं, तो उनसे घर जानेका उपदेश ग्रहण करूं ॥ ३३॥ मार्कण्डेयजी बोले। पैरमें लगीहुई औषधीकी शक्तिके नष्ट होजानेसे परमदुःखित हो वह द्विजवर इस प्रकार चिन्ता करता करता हिमालयमें विचरण करने लगा ॥ ३४ ॥ तिस काल वरूथिनीनामक मौलेया रूपशालिनी किसी एक महाभाग अप्सरा श्रेष्ठने उस उत्तममुनिको विचरण करते देखा ॥ ३५ ॥ द्विजवरको देखतेही कामबाणोंसे जर्ज

किन्नराणांकलालापाःसमन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ॥ प्रफुल्लतरुगन्धांश्चघ्राणमत्यन्तमृच्छति॥३१॥ सुखस्पर्शस्तथावायुःफलानिरसवन्तिच ॥ हरन्तिप्रसभंचेतोमनोज्ञानिसरांसिच ॥ ३२ ॥ एवंगतेतुपश्येयंयदिकंचित्तपोनिधिम् ॥ सममोपदिशेन्मार्गंगमनायगृहंप्रति ॥ ३३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सएवंचिन्तयन्विप्रोबभ्रामचहिमाचले ॥ भ्रष्टपादौषधिवलोवैक्लव्यंपरमंगतः ॥३४॥ तंददर्शभ्रमन्तंचमुनिश्रेष्ठंवरूथिनी ॥ वराप्सरामहाभागामौलेयारूपशालिनी ॥३५॥ तस्मिन्दृष्टेततःसाभूद्द्विजवर्येवरूथिनी ॥ मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहितत्क्षणात् ॥ ३६ ॥ चिन्तयामासकोन्वेषरमणीयतमाकृतिः ॥ सफलंमेभवेज्जन्मयदिमांनावमन्यते ॥ ३७ ॥ अहोऽस्यरूपमाधुर्यमहोऽस्यललितागतिः ॥ अहोगम्भीरतादृष्टेःकुतोऽस्यसदृशोभुवि ॥ ३८ ॥ दृष्टादेवास्तथादैत्याःसिद्धगन्धर्वपन्नगाः॥ कथमेकोऽपिनास्त्यस्यतुल्यरूपोमहात्मनः ॥ ३९॥ यथाहमस्मिन्मय्येषसानुरागस्तथायदि ॥ भवेदत्रमयाकार्यस्तत्कृतःपुण्यसंचयः ॥ ४० ॥ यद्येषमयिसुस्निग्धांदृष्टिमद्यानिपातयेत् ॥ कृतपुण्यानमत्तोऽन्यात्रैलोक्येवनितातत: ॥ ४१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंसंचिन्तयन्तीसादिव्ययोषित्स्मरातुरा ॥ आत्मानंदर्शयामासकमनीयतराकृतिम् ॥ ४२ ॥

रितहृदय हो वह वरूथिनी तत्काल उसमें अनुरागवती हुई ॥ ३६ ॥ और विचार करने लगी कि यह मनोहर आकृति कौन पुरुष है, यदि यह मेरा अनादर न करे, तो मेरा जन्म सफल हो ॥ ३७ ॥ अहो ! इसकी क्या अपूर्वरूपमाधुरी है,क्या मनोहर गति है, दृष्टिकी गंभीरतामें क्या चमत्कार है, भूमण्डलमें इसकी समान पुरुष कौन है ? ॥ ३८ ॥ देव, दैत्य, सिद्ध, गंधर्व और पन्नग, यह समस्तही देखे हैं, किन्तु उनमें इन महात्माकी समान रूपवान् किसको भी नहीं देखा ॥ ३९ ॥ मैं इनके प्रति जिसप्रकार प्रीतिमती हुई हूं, यह भी यदि मुझमें उसी प्रकार अनुरक्त हो, तो मेरे पूर्वजन्मकृत पुण्यसंचयका फल प्राप्त हुआ समझना चाहिये ॥ ४० ॥ यदि यह मुझको स्निग्ध दृष्टिसे देखें, तो तीनों लोकमें मेरी समान स्त्री दूसरी कौन है ? ॥४१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले । दिव्याङ्गना वरूथिनीने

कामातुर हो इसप्रकार चिन्ता करते करते अपने मनोहर संपूर्ण अङ्गप्रत्यङ्ग उस ब्राह्मणको दिखाये ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणकुमार उस शोभायमान रूपवती वरूथिनीको देख, सम्यक् रीतिसे पाद्यादि उपचार ले,उसके निकट आनकर कहने लगा ॥४३॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा वर्ण कमलके गर्भकी समान मनोहर है, तुम कौन हो ? किसकी भार्या हो?यहां क्या कार्य करती हो ? मैं ब्राह्मण अरुणास्पद नगरसे यहां आगया हूं ॥ ४४ ॥ हे मदिरेक्षणे ! मैं जिसके प्रभावसे यहां आया हूं वह मेरा औषधीका पादलेप शीतलजलसे नष्ट होगया है और (इस वर्फसमूहमें) लीन हो गया है ॥ ४५ ॥ वरूथिनी बोली हे महाभाग ! मैं वरूथिनीनामक विख्यात अप्सरा सदाही इस रमणीय पर्वतपर विचरण करती रहती हूं ॥ ४६ ॥ हे विप्रवर ! अब तुमको देखकर मैं कामके वशीभूत हो निन्दनीय होती हूं, आज्ञा कीजिये, मैं क्या

तांतुदृष्ट्वाद्विजसुतश्चारुरूपांवरूथिनीम् ॥ सोपचारंसमागम्यवाक्यमेतदुवाचह ॥ ४३ ॥ कात्वंकमलगर्भाभेकस्यांकिंवानुतिष्ठसि ॥ ब्राह्मणोऽह मिहायातोनगरादरुणास्पदात् ॥ ४४ ॥ पादलेपोऽत्रमेध्वस्तोविलीनोहिमवारिणा ॥ यस्यानुभावादत्राहमागतोमदिरेक्षणे ॥ ४५ ॥ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ मौलेयाहंमहाभागानाम्नाख्यातावरूथिनी ॥ विचरामिसदैवात्ररमणीयमहाचले ॥ ४६ ॥ साहंत्वद्दर्शनाद्विप्रकामवैक्लव्यतांगता ॥ प्रशाधियन्मयाकार्यं त्वदधीनास्मिसांप्रतम् ॥ ४७ ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ॥ येनोपायेनगच्छेयंनिजगेहंशुचिस्मिते ॥ तन्ममाचक्ष्वकल्याणिहानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ॥४८॥ नित्यनैमित्तिकानांतुमहाहानिर्द्विजन्मनः ॥ भवत्यतस्त्वंहेभद्रेमामुद्धरहिमालयात् ॥ ४९ ॥ प्रशस्यतेनप्रवासोब्राह्मणानांकदाचन ॥ अपराध्यतिमेभीरुदे शदर्शनकौतुकम् ॥ ५० ॥ सतोगृहेद्विजाग्र्यस्यनिष्पत्तिःसर्वकर्मणाम् ॥ नित्यनैमित्तिकानांचहानिरेवंप्रवासिनः ॥ ५१ ॥ सात्वंकिंबहुनोक्तेनतथाकु रुयशस्विनि ॥ यथानास्तंगतेसूर्येपश्यामिनिजमालयम् ॥ ५२ ॥ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ ॥ मैवंब्रूहिमहाभागमाभूत्सदिवसोमम ॥ मांपरित्यज्ययत्र त्वंनिजगेहमुपैष्यसि ॥ ५३ ॥

करूं ? क्योंकि अब मैं आपकेही आधीन हुई हूं ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणने कहा हे शुचिस्मिते ! मैं जिस उपायसे अपने घर जासकूं वही मुझसे कह, हे कल्याणी ! परदेशके कारण यहां मेरे नित्य नैमित्तिक संपूर्ण कर्मोंकी हानि होती है ॥ ४८ ॥ब्राह्मणके पक्षमें नित्य नैमित्तिक कर्मोंकी हानि महाअनिष्टकारक है, अतएव हे भद्रे ! इस हिमालयसे मुझको निकालो ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणका पर देशमें रहना कभी प्रशंसनीय नहीं है हे भीरु ! मैंने कोई अपराध नहीं किया है देशोंको देखनेके कौतू हलसे परदेशी हुआ हूं ॥ ५० ॥ घरमें वास करनेवाले ब्राह्मणके नित्यनैमित्तिक संपूर्ण कर्म संपन्न होते हैं, किन्तु परदेशी होनेसे उन सबकी हानि होती है ॥ ॥ ५१ ॥ हे यशस्विनी! बहुत कहनेका प्रयोजन क्या है,इससमय जिस प्रकार सूर्यास्तके पहिलेही अपने घरको देखसकूं तू वही कर ॥५२॥ वरूथिनी बोली हे महाभाग!जिस

दिन आप मुझको छोड़कर अपने घर जाँय, वह दिन मेरे लिये उपस्थित न हो ॥५३॥ हे द्विजनन्दन! स्वर्ग भी इस स्थानकी अपेक्षा मनोहर नहीं है, अतएव मैं स्वर्ग को छोड़कर इस स्थानमें वास करूंगी ॥ ५४ ॥ हे कान्त ! आप इस रमणीय हिमाचलमें मेरे संग विहार करते हुए बांधवोंको भी स्मरण नहीं करेंगे ॥ ५५ ॥ यहां मैं तुमको माल्य, वस्त्र, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य और अनुलेपन प्रदान करूंगी, क्यों कि कामसे हरी जाकर मैं तुम्हारे वशीभूत हुई हूं ॥ ५६ ॥ हे महाभाग! इस स्थानमें वास करनेसे वीणा, वेणुका शब्द, किन्नरोंका मनोहर संगीत, आह्लादजनक वायु, उष्ण अन्न, पवित्र जल ॥५७ ॥ अभिलाषित शय्या, सुगंधित अनुलेपन, यह सब तुमको सुलभ होंगे इन सबकी अपेक्षा तुम्हारे घरमें अधिक क्या है? ॥५८॥ इस स्थानमें वास करनेसे तुम कभी जराग्रसित अर्थात् बूढ़े नहीं होगे, क्यों कि

अहोरम्यतरः स्वर्गोनयतोद्विजनन्दन ॥ अतोवयंपरित्यज्यतिष्ठामोऽत्रसुरालयम् ॥ ५४ ॥ सत्वंसहमयाकान्तकान्तेऽत्रतुहिनाचले ॥ रममाणोनमर्त्यानां बान्धवानांस्मरिष्यसि ॥ ५५ ॥ स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान्भक्ष्यभोज्यानुलेपनम् ॥ दास्याम्यत्रतथाहन्तेस्मरेणवशगाहृता ॥ ५६ ॥ वीणावेणुस्वनं गीतंकिन्नराणांमनोरमम् ॥ अङ्गाह्लादकरोवायुरुष्णान्नमुदकंशुचि ॥ ५७ ॥ मनोभिलषिताशय्यासुगन्धमनुलेपनम् ॥ इहासतोमहाभागगृहेकिंतेनिजे ऽधिकम् ॥ ५८ ॥ इहासतोनैवजराकदाचित्तेभविष्यति ॥ त्रिदशानामियंभूमिर्यौवनोपचयप्रदा ॥ ५९ ॥ इत्युक्त्वासानुरागासासहसाकमलेक्षणा ॥ आलिलिङ्गप्रसीदेतिवदन्तीकलमुन्मनाः ॥ ६० ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ मामांस्प्राक्षीर्व्रजान्यत्रदुष्टेयःसदृशस्तव ॥ मयान्यथायाचितात्वमन्यथैवाभ्युपैषिमाम् ॥ ६१ ॥ सायंप्रातर्हुतंहव्यंलोकान्यच्छतिशाश्वतान् ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलंमूढेहव्येप्रतिष्ठितम् ॥ ६२ ॥ तमुपायंसमाचक्ष्वयेनयामिस्वमालयम् ॥ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ ॥ किंतेनाहंप्रियाविप्ररमणीयोनाकिंगिरिः ॥ गन्धर्वान्किन्नरादींश्चत्यक्त्वाभीष्टोहिकस्तव ॥ ६३ ॥

यह देवभूमि यौवनकी वृद्धि करनेवाली हैं ॥५९ ॥ यह कह कर अनुरागवती उस कमलकी समान नेत्रोंवाली वरूथिनीने अत्यन्त व्याकुल हो मधुर स्वरसे "प्रसन्न हो ओ" यह वात कहते कहते उसको सहसा आलिंगन किया ॥६०॥ ब्राह्मणने कहा रेदुष्टे! मुझको स्पर्श मत करे, जो तेरे योग्य हो, उसकेही समीप जा। मैंने तुझसे जोप्रार्थना करी, तू उसके विपरीत विचार कर मुझसे मिलनेकी चेष्टा करती है ॥ ६१ ॥ प्रातः काल और सायंकालमें होमकरने से नित्य संपूर्ण शाश्वत लोक प्राप्त होते हैं। रेमूढ़े ! यह समस्त त्रैलोक्य होमद्वाराही प्रतिष्ठित है ॥ ६२ ॥ अत एव उसका निर्वाह करनेके लिये जिस उपायसे मैं अपने घर पहुंच सकूं, उसको शीघ्र कह। वरूथिनी बोली–हे विप्र! मुझको देखकर क्यों तुम्हें प्रसन्नता नहीं होती यह हिमालय क्या रमणीय नहीं है ? गंधर्व किन्नरादिकोंके अतिरिक्त और किस

पुरुषकी आप इच्छा करते हैं? ॥ ६३ ॥ आप निःसन्देह यहांसे अपने घर जा सकेंगे, किन्तु इस समय मेरे संग यहां कुछ कालतक दुर्लभ सुखभोग कीजिये ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणने कहा गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि यह तीन अग्निही मेरी अभीष्ट हैं, अग्निगृहही रमणीयस्थान और विष्टरिणी वेदिही मुझको प्रसन्न करती है ॥ ६५ ॥ वरूथिनी बोली—हे द्विज ! आठप्रकारके आत्मगुणोंमें दयाही प्रधान है, फिर आप सद्धर्मपालक होकर भी प्रीति दया क्यों मेरे प्रति नहीं करते ॥ ६६ ॥ मैं आपके प्रति जिसप्रकार प्रीतिमती अर्थात् अनुरागिणी हुई हूं, इससे आपके विना जीवित नहीं रह सकती, मैं मिथ्या नहीं कहती हूं, आप अपने कुलको आनन्द देनेवाले हैं अब आप मुझपर प्रसन्न हूजिये ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणने कहा—यदि तू मेरेप्रति सत्यही प्रीतिमती हुई है, और मुझसे जो कहा, वह यदि मिथ्या वचन

निजमालयमप्यस्माद्भवान्यास्यत्यसंशयम् ॥ स्वल्पकालंमयासार्द्धंभुङ्क्ष्वभोगान्सुदुर्लभान् ॥ ६४ ॥ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ अभीष्टागार्हपत्याद्याःसततेमं त्रयोऽग्नयः ॥ रम्यंममाग्निशरणंवेदीविष्टरिणीप्रिया॥६५॥ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ ॥ अष्टावात्मगुणायेहितेषामादौदयाद्विज॥तांकरोषिकथंनत्वंमयिसद्धर्मपालक ॥ ६६ ॥ त्वद्विमुक्तानजीवामितथाप्रीतिमतीत्वयि ॥ नैतद्वदाम्यहंमिथ्याप्रसीदकुलनन्दन ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ॥ यदिप्रीतिमतीसत्यंनोपचाराद्ब्रवीषिमाम् ॥ तदुपायंसमाचक्ष्वयेनयामिस्वमालयम् ॥ ६८ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ ॥ निजमालयमप्यस्माद्भवान्यास्यत्यसंशयम् ॥ स्वल्पकालंमयासार्द्धंभुङ्क्ष्वभोगान्सुदुर्लभान् ॥ ६९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ॥ नभोगार्थायविप्राणांशस्यतेहिवरूथिनि ॥ इहक्लेशायविप्राणांचेष्टाप्रेत्यफलप्रदा ॥ ७० ॥ वरूथिन्युवाच ॥ ॥ सन्त्राणंम्रियमाणायाममकृत्वापरत्रते ॥ पुण्यस्यैवफलंभाविभोगाश्चान्यत्रजन्मनि ॥७१॥एवंचद्वयमप्यत्रतवोपचयकारणम्॥प्रत्याख्यानादहंमृत्युंत्वंचपापमवाप्स्यसि ॥ ७२ ॥ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ परस्त्रियंनाभिलषेदित्यूचुर्गुरवोमम ॥ तेनत्वांनाभिवाञ्छामिकामंविशुलपष्यवा ॥ ७३ ॥

नहीं है, तो मैं जिस उपायसे अपने घर पहुंचसकूं, वह मुझसे कह ॥ ६८ ॥ वरूथिनी बोली—आप निःसन्देह इस स्थानसे अपने घर जा सकते हैं, किन्तु अब मेरे संग अल्पकालतक दुर्लभसुख भोगिये ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे वरूथिनी ! शास्त्रकी आज्ञा ब्राह्मणके लिये भोगकरनेको नहीं है क्यों कि स्त्रीकी चेष्टा ब्राह्मणको इस लोकमें क्लेश और पर लोकमें विपरीत फल प्रदान करती है ॥ ७० ॥ वरूथिनी बोली—मैं मृतप्राय हुई हूं मेरी रक्षा करनेसे आपको परलोकमें उसी पुण्यका फल प्राप्त होगा। और दूसरे जन्ममें आप उसीके द्वारा अनेक भोग प्राप्त करेंगे ॥ ७१ ॥ परलोक और जन्मान्तरमें भोग, इन दोनों प्रकारके पुण्योंका फलही आपको लाभदायक है, किन्तु मुझको निराश करनेसे मेरी मृत्यु होगी और आपभी पापके भागी होंगे॥ ७२ ॥ ब्राह्मणने कहा—मेरे गुरुने कहा है, परस्त्रीमें इच्छा

न करना अतएव तू विलापकर अथवा यौवन त्यागकर, मैं तेरी इच्छा नहीं करता ॥ ७३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–वरूथिनीसे इसप्रकार कहकर वह नियमवान् महाभाग ब्राह्मण आचमनके अन्तमें शुद्ध हो गार्हपत्य अग्निको प्रणामपूर्वक उपांशु जपद्वारा यह कहने लगा ॥ ७४ ॥ हे भगवन् ! गार्हपत्यअग्ने ! तुम्हीं सब कर्मोंके बीजस्वरूप हो । आहवनीय और दक्षिण यह दोनों अग्नि तुमसेही उत्पन्न हुए हैं अन्य कोई इनका उत्पन्न करनेवाला नहीं है ॥ ७५ ॥ तुम्हारे प्रसन्न होनेपरही देवता वृष्टि और शस्य इत्यादि प्रदान करते हैं, तथा शस्य (धान्य) सेही जगत् प्रतिष्ठित है, अन्य किसी प्रकार नहीं रह सकता ॥ ७६ ॥ जिस सत्यद्वारा यह जगत् तुममें इसीप्रकार प्रतिष्ठित है, मैं उसी सत्यद्वारा जिससे अभी सूर्यके विद्यमान रहते रहते अपने घरको देख सकूं॥ ७७॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वासमहाभागःस्पृष्ट्वापःप्रयतःशुचिः ।। प्राहेदंप्रणिपत्याग्निंगार्हपत्यमुपांशुना॥७४॥भगवन्गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वंसर्वकर्मणाम् ॥ त्वत्तआहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्चनान्यतः ॥ ७५ ॥ युष्मदाप्यायनाद्देवावृष्टिसस्यादिहेतवः ॥ भवन्तिसस्यादखिलंजगद्भवतिनान्यतः ॥७६॥ एवंत्वत्तोभवत्येतद्येनसत्येनवैजगत्॥तथाहमद्यस्वंगेहंपश्येयंसातिभास्करे॥७७॥यथावैवैदिकंकर्मस्वकालेनोज्झितंमया॥तेनसत्येनपश्येयंगृहस्थोऽद्यदिवाकरम्॥७८॥ यथाचनपरद्रव्येपरदारेचमेमतिः॥कदाचित्साभिलाषाभूत्तथैतात्सिद्धिमेतुमे॥७९॥ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेब्राह्मणवाक्यंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंतुवदतस्तस्यद्विजपुत्रस्यपावकः॥गार्हपत्यःशरीरेतुसन्निधानमथाकरोत् ॥१॥तेनचाधिष्ठितःसोऽथप्रभामण्डलमध्यगः ॥व्यदीपयततंदेशंमूर्तिमानिवहव्यवाट् ॥ २ ॥ तस्यास्तुसुतरांतत्रतादृग्रूपेद्विजन्मनि॥ अनुरागोऽभवद्विप्रपश्यन्त्यादेवयोषितः ॥ ३ ॥

जिस सत्यसे संपूर्ण वैदिक कर्म यथोचित कालमें संपादित होते हैं, मैं उसी सत्यसे गृहवासी होकर अभी दिवाकरको देखूं ॥ ७८ ॥ जिस सत्यसे कभी मेरी मति परद्रव्य अथवा पराई स्त्रीमें अभिलाषिणी नहीं हुईहै, उसी सत्यसे मेरी वह मति अब इस विषयमें सिद्धि लाभ करे ॥ ७९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे ब्राह्मणवाक्यंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–इस प्रकार कहतेकहते द्विजपुत्रके शरीरमें गार्हपत्य अग्नि ने आनकर अधिष्ठान किया ॥ १ ॥ उससे प्रभामण्डलमध्यवर्त्ती हो वह ब्राह्मण मूर्त्तिमान् अग्निकी समान स्वयं उस देशको प्रकाशित करने लगा ॥ २ ॥ हे विप्र ! जब वरूथिनी नामक अप्सराने इसप्रकार उस ब्राह्मणकुमारका रूप देखा, तब अत्यन्त अनुरागसे और भी अधिक मोहित होगई ॥ ३ ॥

जब इस द्विजनन्दनमें अग्निका अधिष्ठान अर्थात् प्रवेश हुआ, तो तत्कालही वह पूर्ववत् शक्तिमान् हो गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ ४ ॥ तन्वङ्गी वरूथिनी खड़ी देखती रही और यह विप्रकुमार अत्यन्त शीघ्रतायुक्त गतिसे चल दिया, जब वह इसको दिखाई नहीं दिया, तब यह लम्बेलम्बे श्वास लेती हुई कम्पायमान होने लगी ॥ ५ ॥ तदनन्तर वह उत्तम ब्राह्मण क्षणकालमेंही अपने घर पहुंचा और पूर्वोक्त नित्य नैमित्तिक संपूर्ण क्रियाकलापका अनुष्ठान करने लगा ॥ ६ ॥ फिर उस सर्वाङ्गमनोहर वरूथिनीने उक्त द्विजवरके प्रति आसक्तचित्त हो दीर्घश्वास छोड़ते छोड़ते उस दिनका शेषभाग और रात्रि विताई ॥ ७ ॥ मदिरेक्षणा सर्वाङ्गसुन्दरी वह अप्सरा हाहाकार शब्दसे रोदन और वारम्वार दीर्घ श्वास छोड़ते छोड़ते अपने आपको अत्यन्त हतभाग्य जान निन्दा करने लगी ॥ ८ ॥ क्या आहार,

ततःसोऽधिष्ठितस्तेनहव्यवाहेनतत्क्षणात् ॥ यथापूर्वंतथागन्तुंप्रवृत्तोद्विजनन्दनः ॥ ४ ॥ जगामचत्वरायुक्तस्तयासास्त्रंनिरीक्षितः ॥ आदृष्टिपातात्तन्वङ्ग्या निश्वासोत्कम्पिकन्धरम्॥५॥ ततःक्षणेनैवतदानिजगेहमवाप्यसः ॥ यथाप्रोक्तंद्विजश्रेष्ठश्चकारसकलाःक्रियाः ॥६॥ अथसाचारुसर्वाङ्गीतत्रासक्तात्ममानसा॥ निश्वासपरमानिन्येदिनशेषंतथानिशाम् ॥ ७ ॥ निश्वसन्त्यनवद्याङ्गीहाहेतिरुदतीमुहुः ॥ मन्दभाग्येतिचात्मानंनिनिन्दमदिरेक्षणा ॥ ८ ॥ नविहारेनचाहारेरमणीयेनवावने ॥ नकन्दरेषुरम्येषुसाबबन्धतदारतिम् ॥ ९ ॥ चकाररममाणेचचक्रवाकयुगेस्पृहाम् ॥ मुक्तातेनवरारोहा निनिन्दनिजयौवनम् ॥ १० ॥ क्वागताहमिमंशैलंदुष्टदैववलात्कृता ॥ क्वचप्रातःसमेदृष्टेगोंचरंतादृशोनरः ॥ ११ ॥ यद्यद्यसमहाभागोनमेसंगमुपे ष्यति ॥ तत्कामाग्निरवश्यंमांक्षपयिष्यतिदुःसहः ॥ १२ ॥ रमणीयमभूद्यत्तत्पुंस्कोकिलनिनादितम् ॥ तेनहीनंतदेवैतद्दहतीवाद्यमामलम् ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्थंसामदनाविष्टाजगाममुनिसत्तमम् ॥ ववृधेचतदारागस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम् ॥ १४ ॥

क्या विहार, क्या रमणीय वन, क्या मनोहर पर्वतोंकी कन्दरा. किसींसे भी वह तोष प्राप्त नहीं करसकी ॥ ९ ॥ दो चक्रवाकोंको रमण करता हुआ देखकर उसको रमणविषयमें स्पृहा उत्पन्न हुई; किन्तु वह द्विजवरसे त्यागी गई थी; इस लिये अपने यौवनकी निन्दा करने लगी ॥ १० ॥ दुष्ट दैवके वशीभूत होकर मैं जो इस पर्वतमें आई; यह क्या कभी संभव था और वह सर्वाङ्गसुन्दर पुरुषश्रेष्ठ जो मुझको दिखाई दिया; उसको मैं क्या जानती थी? ॥ ११ ॥ इस समय यदि वह महाभाग मेरे सहित संगत न होंगे, तो मैं दुःसह कामाग्निसे भस्म होकर अवश्य जीवन परित्याग करूंगी ॥ १२ ॥ पहिले जो मेरा श्रवणरंजन था, इस समय द्विजवरके विरहमें वह कोकिलका शब्द मानो अग्निकी समान मुझको दग्ध करता है ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—वरूथिनीने इसप्रकार कामासक्त हो

सहसा मुनिसत्तमको मनसे देखा, तब उनमें प्रतिक्षण उसका अनुराग बढ़ने लगा ॥ १४ ॥ पहिले इस अप्सराने जो कि इसके प्रति अत्यन्त अनुरक्त था, उस कलिनामक एक गंधर्वका निरादर कर दिया था,वह इससमय इसकी ऐसी अवस्था देखकर ॥ १५ ॥ चिन्ता करनेलगा "इस पर्वतमें यह जो गजगामिनी प्रतिक्षण निश्वास पवनघातसे परिम्लान होती है, यह क्या वही वरूथिनी है ॥ १६ ॥ क्या यह मुनिके शापसे ग्रसित हुई है या किसीने इसका अपमान किया है। क्योंकि इसके मुखपर आसुओंकी बूँदे दिखाई देती हैं "॥ १७॥अनन्तर कलिने कौतूहलके वशीभूत हो, बहुतकालतक उस विषयकी चिन्ता कर ध्यानके द्वारा संपूर्ण यथार्थ वृत्तान्त जान लिया ॥ १८ ॥ मुनिघटित वह सब वृत्तान्त जानकर फिर चिन्ता करनेलगा "मेरे पहिले किये पुण्यके फलसे मेरा यह अभिलाषित विषय सिद्ध हुआ" ॥ ॥ १९ ॥ मेरे अनुरक्त होकर वारंवार प्रार्थना करनेपर भी जिसने मेरा निरादर किया था वही वरूथिनी अब मुझको सुलभ होगी अर्थात् प्राप्त होगी ॥२०॥ यह

कलिर्नाम्नातुगन्धर्वःसानुरागोनिराकृतः ॥ तयापूर्वमभूत्सोऽथतदवस्थांददर्शताम् ॥ १५ ॥ सचिन्तयामासतदाकिंन्वेषागजगामिनी ॥ निश्वासपवनम्लाना गिरावत्रवरूथिनी ॥ १६ ॥ मुनिशापक्षताकिंनुकेनचित्किंविमानिता ॥ बाष्पवारिपरिक्लिन्नमियंधत्तेयतोमुखम् ॥ १७ ॥ ततःसदध्यौसुचिरंतमर्थंकौतुकात्कलिः ॥ ज्ञातवांश्चप्रभावेणसमाधेःसयथातथम् ॥ १८ ॥ पुनःसचिन्तयामासतद्विज्ञायमुनेःकलिः ॥ ममोपपादितंसाधुभाग्यैरेतत्पुराकृतैः ॥१९॥ मय्येषासानुरागेणबहुशःप्रार्थितासती ॥ निराकृतवतीसेयमद्यप्राप्याभविष्यति ॥ २० ॥ मानुषेसानुरागेयंतत्रतद्रूपधारिणि ॥ रंस्यतेमय्यसन्दिग्धंकिंकालेनकरोमितत् ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ आत्मप्रभावेणततस्तस्यरूपंद्विजन्मनः ॥ कृत्वाचचारयत्रास्तेनिषण्णासावरूथिनी ॥ २२ ॥ सातंदृष्ट्वावरारोहाकिंचिदुत्फुल्ललोचना ॥ समेत्यप्राहतन्वंगीप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥ २३ ॥ त्वयात्यक्तानसन्देहः परित्यक्ष्यामिजीवितम् ॥ तत्राधर्मःकष्टतरः क्रियालोपोभविष्यति ॥ २४ ॥ मयासमेत्यरम्येऽस्मिन्महात्मन्वनकन्दरे ॥ मत्परित्राणजंधर्ममवश्यंप्रतिपत्स्यसे ॥ २५ ॥

अप्सरा मनुष्यके प्रति अनुरागवती हुई है. इस समय मैं यदि मुनिका रूप धारणकरूं तो मेरे प्रति भी निःसन्देह प्रीतिमती होगी।अब विलम्ब नहीं करना चाहिये ॥ ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसके पीछे वह कलि आत्मप्रभावसे उस ब्राह्मणका रूप धारणकर जिस स्थानमें वरूथिनी बैठीथी, वहां विचरण करने लगा ॥ २२ ॥ कृशाङ्गी वरारोहा उस मुनिवेशधारी कलिको देख, मुनि जान, आह्लादसे कुछेक प्रफुल्लनेत्र हो उसके समीप जाकर "मुझपर प्रसन्न होओ" यह बात वारं वार कहने लगी ॥ २३ ॥ और यह भी कहा कि, यदि आप मुझको छोड़ेंगे तो मैं जीवन परित्याग करूंगी । मेरे जीवन त्याग करनेसे आपको अधर्म होगा और उस अधर्मके कारण क्रिया भी अवश्य लोप होगी ॥ २४ ॥ यदि इस महाकन्दरा युक्त हिमालय पर्वतकी मनोहर गुहामें मेरे संग रमण करके

मेरी रक्षा करोगे, तो उस रक्षाकरनेका धर्म भी अवश्य आपको प्राप्त होगा ॥ २५ ॥ हे महामते ! अबतक मेरी अवस्था शेष नहीं हुई है, इसीकारण आपने निवृत्त होकर मेरे हृदयमें आनन्द अनुभव कराया ॥२६॥ कलिने कहा हे कृशोदरि ! मैं क्या करूं । इस स्थानमें रहनेसे मेरी क्रियाका लोप तो होहीगा और तुम भी इस प्रकारके अनुरोधवचन कहती हो ॥ २७ ॥ अतएव संकटको प्राप्त होकर मुझको तुम्हारी बातमें सम्मत होना पड़ा । किन्तु मैं जो कहताहूं वह यदि स्वीकार करो तो तुम्हारे संग मेरा मिलन हो अन्यथा नहीं ॥ २८ ॥ वरूथिनी बोली—आप प्रसन्न हूजिये, आप जो कहेंगे, मैं वही करूंगी, इसमें संदेह न कीजिये मैं मिथ्या नहीं कहती हूं आपकी कही बात मैं अभी संपादन करूंगी ॥ २९ ॥ कलिने कहा हे सुभ्रू ! तो यह बात अंगीकार करो कि, "वनमें

आयुषःसावशेषंमेनूनमस्तिमहामते ॥ निवृत्तस्तेननूनंत्वंहृदयाह्लादकारकः ॥ २६ ॥ कलिरुवाच ॥ किंकरोमिक्रियाहानिर्भवत्यत्रसतोमम ॥ त्वमप्येवंविधंवाक्यंब्रवीषितनुमध्यमे ॥ २७ ॥ तदहंसङ्कटंप्राप्तोयद्ब्रवीमिकरोषि तत् ॥ यदिस्यात्संगमोमेद्यभवत्यासहनान्यथा ॥ २८ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ प्रसीदयद्ब्रवीषित्वंतत्करोमिनतेमृषा ॥ ब्रवीम्येतदनाशङ्क्यंयत्तत्कार्यंमयाधुना ॥ २९ ॥ कलिरुवाच ॥ ॥ नाद्यसंभोगसमयेद्रष्टव्योहंत्वयावने ॥ निमीलिताक्ष्याःसंसर्गस्तवसुभ्रुमयासह ॥ ३० ॥ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ ॥ एवंभवतुभद्रंतेयथेच्छसितथास्तुतत् ॥ मयासर्वप्रकारंहिवशेस्थेयंतवाधुना ॥ ३१ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेएकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥ ॥छ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसहतयासोथररामगिरिसानुषु ॥ फुल्लकाननहृद्येषुमनोज्ञेषुसरःसुच ॥ १ ॥ कन्दरेषुचरम्येषुनिम्नगापुलिनेषुच ॥ मनोज्ञेषुतथान्येषुदेशेषुमुदितोद्विज ॥ २ ॥ वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्यद्रूपंतस्यतेजसा ॥ अचिन्तयद्भोगकालेनिमीलितविलोचना ॥३॥ ततःकालेनसागर्भमवापमुनिसत्तम ॥ गन्धर्ववीर्य्यतोरूपंचिन्तनाच्चद्विजन्मनः ॥ ४ ॥

विहारके समय तुम मुझको न देखो, तुमको मेरे संग नेत्र मूद कर संसर्ग करना होगा" ॥ ३० ॥ वरूथिनी बोली—"यही हो" आपकी जिसप्रकार इच्छा है, वह उसी प्रकार संपन्न होगी । मैं इस समय स्वीकार करती हूं कि सब प्रकारसे आपके वशीभूत हुई । आपका मंगल हो ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषेमन्वन्तरे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—कलि वरूथिनीके संग पर्वतके कंगूरे, मनोहर कुसुमितवना मनोज्ञ सरोवर ॥ १ ॥ रमणीय गुहा, नदी-पुलिन, और अन्यान्य संपूर्ण देशोंमें प्रसन्न चित्तसे रमण करने लगा ॥ २ ॥ अग्निसे अधिष्ठित होनेके कारण उस ब्राह्मण तेजस्वीका जो रूप होगया था । वरूथिनी संभोगकालमें नेत्र मूंदकर उसीकी चिन्ता करने लगी ॥ ३ ॥ हे मुनिसत्तम ! तदनन्तर उस अप्सराने यथा समयमें

गंधर्वके औरससे गर्भधारण किया । विहार कालमें ब्राह्मणके रूपकी चिन्ताकरनेसे उस समय उसका रूप भी उसीकी समान तेजस्वी हुआ ॥ ४ ॥ वह विप्ररूप धारी गंधर्व गर्भवती वरूथिनीको समुझाय उससे विदा होकर चला गया ॥ ५ ॥ सूर्यनारायण जिस प्रकार अपनी किरणोंके द्वारा समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अंगकी प्रभासे चारों दिशाको दीप्तिमान् कर प्रज्वलित अग्निकीसमान दीप्तिशाली एक बालकने यथा कालमें जन्मग्रहण किया ॥ ६ ॥ स्वरोचि अर्थात् अपने अंगकी प्रभासे सूर्यकी समान दीप्ति पानेके कारण वह बालक'स्वरोचिः,नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! चन्द्रमाकी कला जिसप्रकार शुक्लपक्षमें दिन दिन बढ़ती है, उसी प्रकार उक्त महानुभाव बालकके गुण भी प्रतिदिन अवस्थाके अनुसार बढ़ने लगे ॥ ८ ॥ उस महाभाग स्वरोचिने क्रमानुसार चारों वेद,संपूर्ण

तांगर्भधारिणींसोऽथसान्त्वयित्वावरूथिनीम् ॥ विप्ररूपधरोयातस्तयाप्रीत्याविसर्जितः ॥ ५ ॥ जज्ञेसबालोद्युतिमाञ्ज्वलन्निवविभावसुः ॥ स्वरोचिभिर्य थासूर्य्योभासयन्सकलादिशः ॥ ६ ॥ स्वरोचिभिर्यतोभातिभास्वानिवसबालकः ॥ ततःस्वरोचिरित्येवंनाम्नाख्यातोबभूवसः ॥७॥ ववृधेचमहाभागोवयसानु दिनंतथा ॥ गुणैर्वैश्वयथावालःकलाभिःशशलाञ्छनः ॥ ८ ॥ सजग्राहधनुर्वेदंवेदांश्चैवयथाक्रमम् ॥ विद्याश्चैवमहाभागस्तदायौवनगोचरः ॥९॥ मन्दराद्रौ कदाचित्सविचरंश्चारुचेष्टितः ॥ ददर्शैकांतदाकन्यांगिरिप्रस्थेभयातुराम् ॥१०॥ त्रायस्वेतिनिरीक्ष्यैनंसातदावाक्यमब्रवीत् ॥ माभैषीरितिसप्राहभयविप्लुत लोचनाम् ॥ ११ ॥ किमेतदितितेनोक्तेवीरवाक्येमहात्मना ॥ ततःसाकथयामासश्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥ १२ ॥ कन्योवाच ॥ ॥ अहमिन्दीवराख्यस्यसु ताविद्याधरस्यवै ॥ नाम्नामनोरमाजातासुतायांमरुधन्वनः ॥ १३ ॥ मन्दारविद्याधरजासखीममविभावरी ॥ कलावतीचाप्यपरासुतापारस्यवैमुनेः ॥ १४ ॥

शास्त्र और धनुर्वेदमें सुशिक्षित हो यौवनकी सीमामें पदार्पण किया ॥ ९ ॥ उस शोभनगति स्वरोचिने किसी समय मन्दरपर्वतपर विचरण करते करते पर्वत प्रान्तमें एक भयसे आतुर हुई कन्याको देखा ॥ १० ॥ उस कन्याने इनको देखकर 'रक्षा करो' इस प्रकार कहा । तब उन्होंने भी कन्याको भयसे विह्वल देखकर "भय नहीं है" यह कहकर समुझाया ॥ ११ ॥ इसके पीछे उन महात्माने वीरजनोचित वचनों से "तुमको क्या हुआ है।" इस भांति पूछा। तब कन्या श्वास लेती हुई टूटे फूटे शब्दों से कहने लगी ॥ १२ ॥ कन्या बोली हे महाभाग ! इन्दीवर नामक विद्याधरके औरस और मरुधन्वाकी कन्याके गर्भसे मेरा जन्म हुआ है मेरा नाम मनोरमा है ॥ १३ ॥ विभावरी और कलावती नामक मेरी दो सखी हैं । पहली मन्दारनामक विद्याधरकी कन्या और दूसरी पारमुनिकी

कन्या है ॥ १४ ॥ एक दिन मैंने उनके संग अतिउत्तम कैलासके तटमें जाकर वहां एक मुनिको देखा था। वह अत्यन्त दुबले उनके अंग तपके क्लेशसे अत्यन्त कृश ॥ १५ ॥ क्षुधासे कंठ क्षीण (नेत्र मानो खखोडलसे होगये हैं वे मानो चक्षु फाड़कर निकले पडते हैं) जब मैंने उन तपस्वीकी हँसी करी तब उन्हों ने क्रोधित हो अत्यन्त क्षीण कंठसे कुछेक कम्पायमान होठकर तत्काल मुझको यह शाप दिया " हे अनार्ये! दुष्टतापसी तैंने मेरी हँसी करी है ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसकारण तू शीघ्रही राक्षसके निकटसे पराभवको प्राप्त होगी" मुनिके इसप्रकार शाप देनेपर मेरी उन दोनों सखियोंने उन मुनिकी भर्त्सना (बुराई) करी ॥१८॥ तुम सरीखे क्षमाहीन ब्राह्मणको धिक्कार है तुमने जो तपस्या करी है वह सब वृथा है। जानपड़ता है क्रोधसेतुम्हारा शरीर कृश हो रहा है तपसे नहीं ॥ १९ ॥ क्योंकि ब्राह्मण क्षमाके आधार

ताभ्यांसहमयायातंकैलासतटमुत्तमम् ॥ तत्रदृष्टोमुनिःकश्चित्तपसातिकृशाकृतिः ॥ १५ ॥ क्षुत्क्षामकण्ठोनिस्तेजादूरपाताक्षितारकः ॥ मयावहसितः क्रुद्धः सतदामांशशापह ॥ १६॥ क्षामक्षामस्वरःकिंचित्कंपिताधरपल्लवः ॥ त्वयावहसितोयस्मादनार्य्येदुष्टतापसि ॥ १७ ॥ तस्मात्त्वामचिरेणैवराक्षसोभिभविष्यति ॥ दत्तेशापेमत्सखीभ्यांसतुनिर्भर्त्सितोमुनिः ॥१८॥ धिक्तेब्राह्मण्यमक्षान्त्याहतंतेनिखिलंतपः ॥ अमर्षणैर्धर्षितोऽसितपसानातिकर्शितः ॥१९॥ क्षान्त्यास्पदंवैब्राह्मण्यंक्रोधसंयमनंतपः ॥ एतच्छ्रुत्वाददौशापंतयोरप्यमितद्युतिः ॥२०॥ एकस्याःकुष्ठमङ्गेषुभाव्यन्यस्यास्तथाक्षयः ॥ तयोस्तथैवतज्जातंयथोक्तंतेनतत्क्षणात् ॥ २१ ॥ ममाप्येवंमहद्रक्षःसमुपैतिपदानुगम् ॥ नश्रृणोषिमहानादंतस्यादूरेऽपिगर्जतः ॥२२॥ तृतीयमद्यदिवसंयन्मेपृष्ठंनमुंचति ॥ अस्त्रग्रामस्यसर्वस्यहृदयज्ञाहमग्रते ॥ २३ ॥ तंप्रयच्छामिमांरक्षरक्षसोऽस्मान्महामते ॥ प्रादात्स्वायम्भुवस्यादौस्वयंरुद्रःपिनाकधृक् ॥ २४ ॥

हैं और क्रोधसंयमही उनकी तपस्या है तुम तपस्या में परिपक्व न होकर इस बीचमेंही अपने क्रोधसे आप नष्ट हुए। यह तिरस्कार सुनतेही उन अतुलप्रभावशाली मुनिने उनको भी शाप दिया ॥ २० ॥ एकसे कहा "तेरे सर्वाङ्गमें कुष्ठ होगा" और दूसरीसे " तेरे क्षयरोग होगा " यह कह कर शाप दिया। मुनिके यह वचन कहते कहतेही तत्काल उनके उसीप्रकार रोग उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ और मेरे पीछे भी एक महाराक्षस दौड़ा। आज तीसरा दिन हुआ किसी प्रकारसे भी वह मेरा संग नहीं छोड़ता, यह निकटही महान् गर्जन कररहा है, वह शब्द क्या आपको सुनाई नहीं आता ? संपूर्ण अस्त्रों के सार द्वारा बना हुआ यह प्रसिद्ध अस्त्र ॥ २२॥२३॥ आपको देती हूं आप इसके द्वारा मेरी विपदसे रक्षा कीजिये। हे महामते! यह अस्त्र पहले पिनाकपाणि रुद्रने स्वायम्भुव मनुको दिया था ॥२४॥

स्वायम्भुवने वह सिद्ध श्रेष्ठ अस्त्र वशिष्ठको दिया, फिर मेरे नाना चित्रायुधने वशिष्ठजीसे वह अस्त्र प्राप्त कर ॥ २५ ॥ विवाहके यौतुकमें मेरे पिताको दिया हे वीर ! मैंने बाल्यकालमें पितासे सब अस्त्रोंके सारभूत इस अस्त्रकी शिक्षा पाई थी॥ २६ ॥ यह समस्त अस्त्रोंका हृदय जो शत्रुओंका नाश करनेवाला है, इसको आप शीघ्र ग्रहण कीजिये, यह सब अस्त्रोंका काम देता है ॥ २७ ॥ इसको ग्रहणकरके शीघ्र इस दुष्टात्मा राक्षसको मारो जो ब्राह्मणके शापसे मेरे पीछे पड़ा हुआ है ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–फिर जब स्वरोचि अस्त्र ग्रहण करनेमें सम्मत हुए,तब उस मनोरमा नामक विद्याधरीने आचमनपूर्वक रहस्य और निवर्तन मंत्रके सहित वह अस्त्र हृदय मंत्र उनको दिया ॥२९ ॥ इसी अवसरमें स्वरोचिने देखा कि वह भयंकरआकार राक्षस महाशब्दसे गर्जता हुआ शीघ्र आनकर उपस्थित हुआ ॥ ३०॥ वह आनकर "मेरे आक्रमण करनेपर क्या कोई रक्षा पासकता है, अब विलम्बकी क्या आवश्यकता है शीघ्र आओ, मैं भोजन करूं" इस

स्वायम्भुवोवसिष्ठायसिद्धवर्यायदत्तवान् ॥ तेनापिदत्तंमन्मातुःपित्रेचित्रायुधायवै ॥ २५ ॥ प्रादादौद्वाहिकंसोऽपिमातृपित्रेश्वशुरःस्वयम् ॥ मयापिशिक्षितंवीरसकाशाद्बालयापितुः ॥ २६॥ हृदयंसकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् ॥ तदिदंगृह्यतांशीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥२७॥ ततोजहिदुरात्मानमेनंराक्षसमागतम् ॥२८॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ तथेत्युक्तेततस्तेनवार्य्युपस्पृश्यतस्यतत् ॥ अस्त्राणांहृदयंप्रादात्सरहस्यनिवर्तनम् ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेरक्षस्तत्तदाभीषणाकृति ॥नर्दमानंमहानादमाजगामत्वरान्वितम् ॥ ३० ॥ मयाभिभूताकिंत्राणमुपैतिद्रुतमेहिमे ॥ भक्षायकिंचिरेणेतिब्रुवाणंतद्ददर्शसः ॥ ३१ ॥ स्वरोचिश्चिन्तयामासदृष्ट्वातंसमुपागतम् ॥ गृह्णात्येषवचःसत्यंतस्यास्त्वितिमहामुनेः ॥३२॥ जग्राहसमुपेत्यैनांत्वरयासोऽपिराक्षसः ॥ त्राहित्राहीतिकरुणंविलपन्तींसुमध्यमाम्॥ ३३ ॥ ततःस्वरोचिःसंक्रुद्धश्चण्डास्त्रमतिभैरवम् ॥ दृष्ट्वानिवेश्यतद्रक्षोददर्शानिमिषेक्षणः ॥ ३४॥ तदाभिभूतःसतदातामुत्सृज्यनिशाचरः ॥ प्रसीदशाम्यतामस्त्रंश्रूयतांचेत्यभाषत ॥ ३५ ॥ मोक्षितोऽहंत्वयाशापादतिघोरान्महाद्युते ॥प्रदत्तादतितीव्रेणब्रह्ममित्रेणधीमता ॥ ३६ ॥

प्रकार कहते हुए उस राक्षसको उन्होंने देखा ॥ ३१ ॥ उसको आया हुआ देखकर स्वरोचि चिन्ता करने लगे कि "यदि यह राक्षस इस कन्याको ग्रहण करे तो उन महामुनि महर्षिका वचन सत्य होगा"॥ ३२ ॥ स्वरोचिके इस प्रकार चिंता करते करतेही उस राक्षसने शीघ्र आनकर विद्याधरीको ग्रहण किया; इससे वह सुमध्यमा " त्राहि–त्राहि " शब्दद्वारा करुणास्वरसे विलाप करने लगी ॥ ३३ ॥ तदनन्तर स्वरोचिने अत्यन्त क्रोधित हो धनुषमें अत्यन्त भयंकर प्रचण्डास्त्र चढ़ाय, उस राक्षसकी ओर एक टक देखा ॥ ३४ ॥ उनको देख भयसे विह्वल हो उस निशाचरने मनोरमा कन्याको छोड़, स्वरोचिसे कहा । आप प्रसन्न हूजिये और अस्त्र परित्याग कीजिये । मैं अपना वृत्तान्त कहता हूं, सुनिये ॥ ३५ ॥हे महाद्युतिमान् ! अत्यन्त तेजस्वी बुद्धिमान् ब्रह्ममित्रने मुझको जो कठिन

शाप दिया था, आपने मुझे उससे छुडाया ॥ ३६ ॥ हे महाभाग ! आपकी समान मेरा अधिक उपकार करनेवाला और कोई नहीं है,क्योंकि आपने मुझको महा क्लेशदायक ब्रह्मशापसे छुडाया है ॥ ३७ ॥ स्वरोचिने कहा—महात्मा ब्रह्ममित्र मुनिने तुमको पूर्वकालमें किस निमित्त कैसा शाप दिया था ॥ ३८ ॥ राक्षसने कहा ब्रह्ममित्र मुनिने अथर्व वेदके त्रयोदश अधिकारमें ज्ञान प्राप्त कर आठ भागमें विभक्त संपूर्ण आयुर्वेद अध्ययन किया था ॥ ३९ ॥ मेरा नाम इन्दीवर विख्यात है, मैं इस कन्याका पिता और खड्गनिलनाभ नामक विद्याधरका पुत्र हूं ॥ ४० ॥ मैं ने पहिले उक्त ब्रह्ममित्र मुनिसे यह प्रार्थना करीथी कि हे भगवन् ! मुझको संपूर्ण आयुर्वेद शास्त्र प्रदान कीजिये ॥ ४१ ॥ हे वीर ! विनयसे नम्र होकर वारम्वार याचन करने पर भी जब मुनिने मुझको आयुर्वेदविद्या नहीं दी ॥ ४२ ॥ हे अनघ ! तब

उपकारोनमेत्वत्तोमहाभागाधिकोपरः ॥ येनाहंसुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ॥ ३७ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ ॥ ब्रह्ममित्रेणमुनिनाकिन्निमित्तंमहात्मना ॥ शप्तस्त्वंकीदृशश्चैवशापोदत्तोऽभवत्पुरा ॥ ३८ ॥ राक्षसउवाच ॥ ॥ ब्रह्ममित्रोऽष्टधाभिन्नमायुर्वेदमधीतवान् ॥ त्रयोदशाधिकारंचप्रगृह्याथर्वणोद्विजः ॥ ३९ ॥ अहंचेन्दीवराक्षेतिख्यातोऽस्याजनकोऽभवम् ॥ विद्याधरपतेःपुत्रोनलनाभस्यखड्गिनः ॥ ४० ॥ मयाचयाचितःपूर्वंब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः ॥ आयुर्वेदमशेषंमेभगवन्दातुमर्हसि ॥ ४१ ॥ यदातुबहुशोवीरप्रश्रयावनतस्यमे ॥ नप्रादाद्याचितोविद्यामायुर्वेदात्मिकांमम ॥ ४२ ॥ शिष्येभ्योददतस्तस्यमयान्तर्धानगेनहि ॥ आयुर्वेदात्मिकाविद्यागृहीताभूत्तदानघ ॥ ४३ ॥ गृहीतायांतुविद्यायांमासैरष्टाभिरन्तरात् ॥ ममातिहर्षादभवद्धासोऽतीवपुनःपुनः ॥ ४४ ॥ प्रत्यभिज्ञायमांहासान्मुनिःकोपसमन्वितः ॥ विकम्पिकन्धरःप्राहमामिदंपरुषाक्षरम् ॥ ४५ ॥ राक्षसेनेवयस्मान्मेत्वयाऽदृश्येनदुर्मते ॥ हृताविद्यावहासश्चमामवज्ञायवैकृतः ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वंराक्षसः पापमच्छापेननिराकृतः ॥ भविष्यसिनसन्देहःसप्तरात्रेणदारुणः ॥ ४७ ॥ इत्युक्तेप्रणिपाताद्यैरुपचारैः प्रसादितः ॥ समामाहपुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानसः ॥ ४८ ॥ यन्मयोक्तमवश्यंतद्भाविगन्धर्वनान्यथा ॥ किन्तुत्वंराक्षसोभूत्वापुनःस्वंप्राप्स्यसेवपुः ॥ ४९ ॥

मैं ने उनके शिष्यको प्रदान करनेके समय छिपकर उस विद्याका अभ्यास किया अर्थात् समस्त आयुर्वेद विद्या ग्रहण की ॥ ४३ ॥ आठ महीनेमें समस्त आयुर्वेद विद्याका अभ्यास होजाने पर मैं अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुआ और वारंवार हँसने लगा ॥ ४४ ॥ मुनिने मेरा हँसना जान, क्रोधयुक्त हो कंपायमान गर्दन कर यह निष्ठुर वचन कहे ॥ ४५ ॥ हे दुर्मते! तैंने राक्षसकी समान अदृश्य होकर विद्या हरण करी है,और मेरी अवज्ञा करके हास्य किया है ॥ ४६ ॥ इस कारण तू मेरे शापद्वारा अपने अधिकारसे गिरकर सातरात्रिमेंही महा दारुण राक्षस होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७ ॥ जब उन्हों ने इसप्रकार कहकर शाप दिया तब मैने प्रणामादि अनेक उपचारोंसे उनको प्रसन्न किया,इससे वह ब्राह्मण तत्काल प्रसन्नमन होकर कहने लगे ॥ ४८ ॥ हे गंधर्व ! मैं ने जो कहा है वह अवश्यही होगा । इसके अन्यथा नहीं होगा. किन्तु तू राक्षस

होकर पुनर्वार अपने देहको प्राप्त होगा॥ ४९ ॥ तू जब राक्षसपनेको प्राप्त हो नष्टस्मृति होनेपर क्रोधके वशीभूत हो अपनी पुत्रीके भक्षण करनेकी इच्छा करेगा,तब अपने अस्त्रानलसे परितापित हो॥ ५० ॥ फिर स्मृति लाभकर अपने देह और गंधर्व लोक तथा अपने अधिकारको प्राप्त होगा ॥ ५१ ॥ हे महाभाग ! आपने इससमय मुझको इस निशाचरत्वरूप महाभयसे छुडाया है, अतएव हे वीरवर ! मुझसे वरकी प्रार्थना करो ॥५२॥ हे महामते ! यह कन्या आपको देता हूँ, आप इसको भार्या रूपमें ग्रहण कीजिये और मुझको उन मुनिसे जो संपूर्ण अष्टांग आयुर्वेद प्राप्त हुआ है,वह भी देता हूं ग्रहण कीजिये ॥५३॥ मार्कण्डेयजी बोले दिव्याम्बर दिव्यमाला दिव्यभूषण और पहिलेकी समान दिव्यदेहधारी उस गंधर्वने इसप्रकार कह स्वरोचिको ॥ ५४ ॥ आयुर्वेद विद्याप्रदान कर जब कन्या देनेका यत्न किया

नष्टस्मृतिर्यदाक्रुद्धःस्वमपत्यंचिखादिषुः ॥ निशाचरत्वेगन्तासितदस्त्रानलतापितः॥५०॥पुनःसंज्ञामवाप्यस्वामवाप्स्यसिनिजंवपुः ॥ तथैवस्वमधिष्ठानंलोके गन्धर्वसंज्ञिते॥५१॥सोऽहंत्वयामहाभागमोक्षितोऽस्मान्महाभयात् ॥ निशाचरत्वाद्वद्वीरतेनमेप्रार्थनांकुरु॥५२॥ इमांतेतनयांभार्याप्रयच्छामिप्रतीच्छताम्॥ आयुर्वेदश्चसकलस्त्वष्टाङ्गोयोमयाततः ॥ मुनेःसकाशात्संप्राप्तस्तंगृह्णीष्वमहामते ॥५३॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्त्वाप्रददौविद्यांसचदिव्याम्बरोज्ज्वलः॥ स्रग्भूषणधरोदिव्यंपौराणंवपुरास्थितः ॥५४॥ दत्त्वाविद्यांततःकन्यांसदातुमुपचक्रमे ॥ तमाहसातदाकन्याजनितारंस्वरूपिणम् ॥ ५५॥ अनुरागोममाऽप्यत्रतातातीवमहात्मनि ॥ दर्शनादेवसंजातोविशेषेणोपकारिणि ॥५६॥ किन्त्वेषामेसखीसाचमत्कृतेदुःखपीडिते ॥ अतोनाभिलषेभोगान्भोक्तुमेतेनवैसमम् ॥ ॥ ५७ ॥ पुरुषैरपिनोशक्याकर्तुमित्थंनृशंसता ॥ स्वभावरुचिरैर्माद्दक्कथंयोषित्करिष्यति ॥ ५८ ॥ साहंयथातेदुःखार्त्तेमत्कृतेकन्यकेपितः ॥ तथास्थास्या मिदुःखार्तातच्छोकानलतापिता ॥ ५९ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ ॥ आयुर्वेदप्रसादेनतेकरिष्येपुनर्नवे ॥ सख्यौतवमहाशोकंसमुत्सृजसुमध्यमे ॥ ६० ॥

तब वह कन्या निजरूपधारी अपने पितासे कहने लगी ॥ ५५ ॥ इन महात्माका दर्शन करतेही इनके प्रति मेरा अत्यन्त अनुराग उत्पन्न हुआ है और विशेष कर यह इस समय उपकारी हैं॥ ५६ ॥किन्तु मेरी दो सखी मेरेही लिये दुःख भोगरही हैं,अतएव इस समय इनके संग मुझको भोगकी इच्छा करनी उचित नहीं है ॥५७॥ मनोहरस्वभाव पुरुष भी जब इसप्रकार कठोरताका आचरण नहीं करसकता, तब मेरी समान सरल रमणी वह किसप्रकार कर सकती है ॥५८॥ वह जिसप्रकार मेरे निमित्त कन्या अवस्थामें दुःख भोगती हैं,मैं भी उसीप्रकार दुःख शोकानलसे सन्तापित होकर उन्हींके अनुसार अवस्थामें रहूंगी ॥ ५९ ॥ स्वरोचिने कहा—हेसुमध्यमे।

शोक परित्याग करो। आयुर्वेद शास्त्रके प्रसादसे तुम्हारी दोनों सखीको रोगसे छुडाऊंगा ॥ ६० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर स्वरोचिने मन्दराचलमें पिता की दी हुई उस शोभायमान नेत्रोंवाली कन्याका यथाविधानसे पाणिग्रहण किया ॥६१॥ गंधर्व, कन्या प्रदान करनेके पीछे उसको समुझाय बुझाय दिव्य विमानमें बैठ अपने गन्धर्व लोकमें चला गया ॥ ६२ ॥ मनोरमाकी दोनों सखी मुनिके शापसे रोगाक्रान्त हो जिस उद्यानमें अवस्थान करतीं थीं, स्वरोचि कृशाङ्गी युवती भार्याके सहित वहां गये॥६३॥इसके पीछे आयुर्वेद शास्त्रमें विशारद अप्रतिहतप्रभाव स्वरोचिने रोगघ्न औषधियोंके रसोंसे उन दोनों सखियोंके देहको नीरोगकर दिया॥६४॥ तब उन व्याधिविमुक्त अर्थात् रोगसे छुटी हुई अत्यन्त रूपवती दोनों कन्याओंके अंगकी कान्तिसे मन्दर पर्वतकी समस्त दिशा दीप्ति पाने लगीं ॥ ६५ ॥

मार्कण्डेयउवाच॥ ॥ ततःपित्रास्वयंदत्तांतांकन्यांसविधानतः ॥ उपयेमेगिरौतस्मिन्स्वरोचिश्चारुलोचनाम् ॥६१॥ दत्त्वांतुतांतदाकन्यामभिसान्त्व्यचभाविनीम् ॥जगामदिव्ययागत्यागन्धर्वःस्वपुरंततः ॥६२॥ सचापिसहितस्तन्व्यातदुद्यानंतदाययौ ॥ कन्यकायुगलंयत्रतच्छापोत्थणदातुरम् ॥६३॥ ततस्तयोः सतत्त्वज्ञोरोगघ्नैरौषधैरसैः ॥ चकारनीरुजेदेहस्वरोचिरपिराजितः॥६४॥ ततोऽतिशोभनेकन्येविमुक्तेव्याधितःशुभे॥स्वकान्त्योज्ज्योतिदिग्भागंचक्रातेतन्महीधरम् ॥६५॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेषष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंविमुक्तरोगातुकन्यकातंमुदान्विता ॥ स्वरोचिषमुवाचेदंश्रृणु ष्ववचनंप्रभो ॥१॥ मन्दारविद्याधरजानाम्नाख्याताविभावरी ॥ उपकारिन्स्वमात्मानंप्रयच्छामिप्रतीच्छमाम् ॥२॥ विद्यांचतुभ्यंदास्यामिसर्वभूतरुतानिते ॥ ययाभिव्यक्तिमेष्यन्तिप्रसादप्रवणोभव ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवमस्त्वितितेनोक्तेधर्मज्ञेनस्वरोचिषा ॥ द्वितीयातुतदाकन्या इदंवचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषमन्वन्तरे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—मनोरमाकी दोनों सखियोंमेंसे पहिली, उक्त प्रकार रोगसे छूट प्रसन्नचित्त हो, स्वरोचिसे इस प्रकार कहने लगी हे प्रभो! मेरा वचन सुनो ॥ १ ॥ मैं मन्दारनामक विद्याधरकी कन्या हूं और मेरा नाम विभावरी है आपने जो मेरा महान् उपकार किया है, उसका प्रतिदानस्वरूप आपको आत्मा समर्पण करती हूं ॥ २ ॥ और जिससे सब प्राणियोंका स्वर (बोली) जाना जाता है, वह विद्याभी आपको देती हूं, आप प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कीजिये ॥३॥ मार्कण्डेयजी बोले.—धर्मके जाननेवाले स्वरोचिने " यही हो " इस प्रकार कह

कर विभावरी कन्याका वचन स्वीकार किया तब फिर दूसरी कन्या यह बात कहने लगी कि ॥ ४ ॥ कौमार अवस्थासेही ब्रह्मचर्यावलम्बी, वेद वेदाङ्गमें पारंगत महाभाग पार नामक ब्रह्मर्षि मेरे पिता हैं ॥५॥ एक समय मनोहर वसन्त कालमें कामीभजनोंका मन हरनेवाले पुंस्कोकिलके मधुरालापसे तपोवन प्रतिध्वनित हो रहा था, उसी समय प्रसिद्ध पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा उनके समीप आई ॥ ६ ॥ इससे वह मुनिपुंगव काम शत्रुके वशीभूत हो गये इसके उपरान्त उनके सहवास और उस अप्सराके गर्भसे इस महाचलमेंही मेरा जन्म हुआ है ॥ ७ ॥ अनन्तर सर्व श्वापद (हिंसक जन्तु) युक्त इस निर्जन वनमें भूमिके ऊपरही मुझको अकेली छोड़कर माता चली गई ॥८॥ फिर एक महात्मा गंधर्व मुझको लेजाकर पालन करने लगा। वहां शुक्लपक्षमें बढती हुई चन्द्रमाकी कलासे परिपुष्ट होकर मैं वृद्धि पाने लगी। किन्तु कृष्णपक्षमें जब चन्द्रमाकी कलाका क्षय होता, तब मेरा क्षय नहीं होता, यह देखकर उस प्रतिपालक गंधर्वने मेरा "कलावती" नाम

कुमारब्रह्मचार्यासीत्पारोनामपितामम ॥ ब्रह्मर्षिःसुमहाभागोवेदवेदाङ्गपारगः ॥ ५ ॥ तस्यपुंस्कोकिलालापरमणीयमधौपुरा ॥ आजगामाप्सरोभ्याशं प्रख्यातापुञ्जिकस्थला ॥६॥ कामवैक्लव्यतांनीतःसतदामुनिपुङ्गवः ॥ तत्संयोगेऽहमुत्पन्नातस्यामत्रमहाचले ॥ ७ ॥ विहायमांगतासाचमातास्मिन्निर्जनेवने॥ बालामेकांमहीपृष्ठेव्यालश्वापदसंकुले ॥ ८ ॥ ततःकलाभिःसोमस्यवर्द्धन्तीभिरहःक्षये॥ आप्यायमानाहरहोवृद्धिंयातास्मिसत्तम ॥ ९ ॥ ततःकलावतीत्येत न्ममनाममहात्मना॥गृहीतायाःकृतंपित्रागन्धर्वेणशुभात्मना॥१०॥नदत्ताहंतदातेनयाचितेनमहात्मना॥ देवारिणानिशासुप्तस्ततोमेघातितःपिता॥११॥ततोऽ हमतिनिर्वेदादात्मव्यापादनोद्यता॥ निवारिताशम्भुपत्न्यासत्यासत्यप्रतिश्रवा॥१२॥ माशुचःसुभ्रुभर्त्तातेमहाभागोभविष्यति ॥ स्वरोचिर्नामपुत्रश्चमनुस्तस्य भविष्यति ॥ १३ ॥ आज्ञांचनिधयःसर्वेकरिष्यंतितवादृताः ॥ यथाभिलषितंवित्तंप्रदास्यन्तिचतेशुभे ॥ १४ ॥ यस्यावत्सेप्रभावेणविद्यायास्तांगृहाणमे ॥ पद्मिनीनामविद्येयंमहापद्माभिपूजिता ॥ १५ ॥ इत्याहमांदक्षसुतासतीसत्यपरायणा ॥ स्वरोचिस्त्वंध्रुवंदेवीनान्यथासावादिष्यति ॥ १६ ॥

रक्खा ॥ ९ ॥ १० ॥ कुछ समय पीछे एक दिन अलिनामक असुरने आनकर महात्मा पितासे मुझको माँगा और उन्होंने जब उसको नहीं दिया, तब उसने रात्रिमें सोते हुए मेरे पिताको मार डाला ॥ ११ ॥ मैं उस दुःखसे दृढ़प्रतिज्ञ होकर आत्मघात करनेमें उद्यत हुई, तब शंभुपत्नी सतीने निवारण करके कहा ॥ १२ ॥ हे सुभ्रू ! शोक मत करो, स्वरोचिनामक एक महाभाग तुम्हारे भर्त्ता होंगे तथा उनका पुत्र मनु होगा ॥ १३ ॥ हे शुभे ! संपूर्ण निधियें सादर तुम्हारी आज्ञा प्रतिपालन करेंगी और तुम्हारा अभिलाषित वित्तादि प्रदान करेंगी ॥ १४ ॥ किन्तु हेवत्से ! जिस विद्याके प्रभावसे निधिगण आज्ञा नुवर्त्ती होगीं, वह महापद्माभिपूजिता पद्मिनी नामक विद्या मुझसे ग्रहण करो ॥ १५ ॥ सत्यपरायण दक्षसुता सतीने मुझसे यह बात कही है वह कभी मिथ्या नहीं

कहेंगीं, अतएव आप निःसंदेह वही स्वरोचि हैं ॥ १६ ॥ मैं आपको देह, प्राण और वह विद्या देती हूं, आप मेरे प्रति प्रसन्न होकर ग्रहण कीजिये ॥१७॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर स्वरोचिने कलावतीसे "यही हो" इस प्रकार अंगीकार—वचन कहा।फिर स्निग्धदृष्टिद्वारा विभावरी और कलावती दोनोंकी अनुमति पाकर ॥१८॥देवकान्ति स्वरोचिने उनका भी पाणि ग्रहण किया। विवाहके समय देवतूर्य अर्थात् समस्त देवबाजे बजने लगे और अप्सरागण नृत्य करने लगीं॥१९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥ मार्कण्डेयजी बोले। तदनन्तर अमरकांति स्वरोचि अपनी पत्नियोंके संग उस मलयाचलके रमणीय कानन और निर्झर स्थानों में विहार करने लगे ॥ १ ॥ निधियें पद्मिनी विद्याके वशवर्त्ती होकर उपभोग करनेके लिये विविध रत्न मधुर मद्य

साहंप्राणप्रदायाद्यतांविद्यांस्वंतथावपुः ॥ प्रयच्छामिप्रतीच्छत्वंप्रसादसुमुखोभव॥१७॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवमस्त्विवतितामाहसतुकन्यांकलावतीम्॥ विभावर्याःकलावत्याःस्निग्धदृष्टयानुमोदितः ॥१८॥ जग्राहचततःपाणीसतयोरमरद्युतिः॥ ननृतुर्देवतूर्येषुनृत्यन्तीस्वप्सरःसुच॥१९॥ ॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेएकषष्टितमोध्यायः॥ ६१ ॥ ७॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसताभिःसहितःपत्नीभिरमरद्युतिः ॥ रराम तास्मिञ्छैलेन्द्रेरम्यकाननिर्झरे ॥१॥ सर्वोपभोगरत्नानिमधूनिमधुराणिच ॥ निधयःसमुपाजग्मुःपद्मिन्यावशवर्तिनः ॥२॥ स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान्गन्धाढ्यमनुलेपनम् ॥ आसनान्यतिशुभ्राणि कांचनानियथेच्छया ॥ ३ ॥ सौवर्णानिमहाभागकरकान्भाजनानिच ॥ तथाशय्याश्चविविधादिव्यैरास्तरणैर्युताः ॥४॥ एवंसताभिःसहितो दिव्यगन्धाधिवासिते ॥ रराम स्वरुचिर्भाभिर्भासितेवरपर्वते ॥५॥ ताश्चापिसहतेनेतिलेभिरेमुदमुत्तमाम् ॥ रममाणायथास्वर्गेतथातत्रशिलोच्चये ॥६॥ कलहंसीजगादैकांचक्रवाकींजलेसतीम् ॥ तस्यतासांचललितेसम्बन्धेचस्पृहावती ॥ ७॥ धन्योऽयमतिपुण्योऽयंयोऽयंयौवनगोचरः ॥ दयिताभिःसहैताभिर्भुङ्क्तेभोगानभीप्सितान् ॥ ८ ॥

॥ २ ॥ माल्य, वस्त्र, गहने, सुगंधित अनुलेपन, आसन, रजत, कांचन ॥३ ॥ कमण्डलु सुवर्णनिर्मित विविध पात्र और दिव्य बिछौनेसे युक्त विविध शय्या इत्यादि द्रव्य उनकी इच्छानुसार देने लगी॥४॥उक्त स्वरोचि दिव्य गंधादिवासित और रत्नादिसे प्रकाशित पर्वत प्रदेशम तीनों भार्याके सहित रमण करने लगे ॥५॥स्वर्गकी समान मनोहर उस पर्वतश्रेष्ठमें विहार करती हुई उक्त पत्नियेंभी अत्यन्त आह्लादित हुई॥६॥ तिस काल स्वरोचि और उनकी पत्नियोंकी ऐसी प्रणय देखकर उन्हींके समान प्रणयानुरागिनी एक कलहंसीने जलस्थित दूसरी चक्रवाकीसे कहा॥७॥"यह जो युवक स्त्रियोंके सहित इच्छानुसार समस्तभोगोंको भोगरहे हैं, यही पुण्यवान् और धन्यहैं॥८॥

जगत्में रूपयौवनशाली ऐसे पुरुष अनेक हैं कि जिनकी पत्नी रूपवती नहीं है, किन्तु पति और पत्नी दोनोंही सुन्दरतासे विभूषित हों, ऐसे दाम्पत्य अत्यन्त विरले हैं ॥ ९ ॥ कोई पति अपनी कान्तामें अनुरक्त और कोई पत्नी कान्तके प्रति अनुरागिनी है, किन्तु परस्परमें समान अनुराग करनेवाले स्त्री पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ १० ॥ अतएव पत्नियोंके प्रियतम यह युवक धन्य और इनकी प्रियतमा यह पत्नियेंभी धन्य हैं, क्योंकि इस जगत्में जो धन्य हैं, उनकाही इस प्रकार परस्पर अनुराग उत्पन्न होताहै" ॥ ११ ॥ कलहंसीके कहे यह वचन सुनकर चक्रवाकीने अधिक विस्मित मन न हो उससे यह बात कही ॥ १२ ॥ "हे सखी ! यह स्वरोचि धन्य नहीं हैं एक स्त्रीके समीप दूसरी स्त्रीसे भोग करते हैं सुतरां इनको कुछ भी लज्जा नहीं है इनकी अभिलाषा सब पत्नियोंमें समान नहीं है ॥ १३ ॥ चित्तका अनुराग जब एक मात्र आधारमेंही रह सकता है तब यह स्वरोचि सब भार्याओंके प्रति किसप्रकार समान अनुरागी होंगे ॥ १४ ॥ यह पत्नियें भी इनको

सन्तियौवनिनःश्लाघ्यास्तत्पत्न्योनातिशोभनाः ॥ जगत्यामल्पकाःपत्न्यःपतयश्चातिशोभनाः ॥ ९ ॥ अभीष्टाकस्यचित्कान्ताकान्तःकस्याश्चिदीप्सितः ॥ परस्परानुरागाढ्यंदाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥ १० ॥ धन्योऽयंदयिताभीष्टोह्येताश्चास्यातिवल्लभाः ॥ परस्परानुरागोहिधन्यानामेवजायते ॥ ११ ॥ एतन्निशम्यवचनंकलहंसीसमीरितम् ॥ उवाचचक्रवाकीतांनातिविस्मितमानसा ॥ १२ ॥ नायंधन्योयतोलज्जानान्यस्त्रीसन्निकर्षतः ॥ अन्यांस्त्रियमयंभुङ्क्ते नसर्वास्वस्यमानसम् ॥ १३ ॥ चित्तानुरागएकस्मिन्नधिष्ठानेयतःसखि ॥ ततोतिप्रीतिमानेषभार्यासुभविताकथम् ॥ १४ ॥ एतानदयिताःपत्युर्नैतासांदयितःपतिः ॥ विनोदमात्रमेवैतायथापरिजनोपरः ॥ १५ ॥ एतासांचयदीष्टोऽयंतत्किंप्राणान्नमुञ्चति ॥ आलिङ्गत्यपरांकान्तांध्यातोवैकान्तयान्यया ॥ १६ ॥ विद्याप्रदानमूल्येनक्रीतोह्येषसुभृत्यवत् ॥ प्रवर्त्ततोनहिप्रेमसमंवह्वीषुतिष्ठति ॥ १७ ॥ कलहंसिपतिर्धन्योममधन्याहमेवच ॥ यस्यैकस्यांचिरंचित्तंयस्याश्चैकत्रसंस्थितम् ॥ १८ ॥

प्रियतम नहीं हैं और यह पति भी उनको अत्यन्त प्रिय नहीं हैं, अन्य परिजनोंके द्वारा जिस प्रकार चित्तको विनोद प्राप्त होता है इसीप्रकार पत्नियें भी इनके विनोदकी सामग्री मात्र हैं ॥ १५ ॥ यह यदि सब पत्नियोंके अभीष्ट होते तो इनका सब काल और समान भावसे संतोष संपादन करनेमें समर्थ होकर क्या इतने दिन जीवित रहते ? एक स्त्री जब इनकी अभिलाषा करती है, तब यह दूसरी स्त्रीको आलिंगन करते रहते हैं, अतएव इनमें परस्परका अनुराग अधिकतर दाम्पत्य प्रेम कहां है ? ॥ १६ ॥ विद्याप्रदानके मूल्यमें विककर यह स्वरोचि पत्नियोंके निकट भृत्यके समान आचरण करते हैं, प्रेम बहुत पत्नियोंमें समान भावसे नहीं रह सकता ॥ १७ ॥ हे सखी कलहंसी ! मेरे पति धन्य और मैं धन्य हूं, क्योंकि मैं उनकी एक मात्र पत्नी हूं मेरे प्रतिही उनके

चित्तका अनुराग और मैं भी उन एक मात्र पतिमेंही अनुरागिणी हूं ॥ १८ ॥ संसारमें बहुत स्त्रियोंवाला पतिही पुण्य और पापका कारण है घरमें रहनेवाली शब्दवाले भूषणोंसे और विषम आगमोंके साथ निश्चयसे ॥ १९ ॥ युक्त रहनेवाला विषमता करनेसे महापापको प्राप्त होता है, बड़ीको तो छोटे भावसे और छोटी को बड़पनके भावमें प्राप्त करै ॥ २० ॥ और गुरुको दक्षिणारूप वर देकर जैसे और समिधाओंसे होम करना है, विवाहिता स्त्रीके सहित नित्य नैमित्तिक क्रिया करनी चाहिये ॥ २१ ॥ अन्यभावसे करनेपर मनुष्य पापी होता है मार्कण्डेयजी बोले—सब जीवोंकी बात समझनेवाले अपराजित स्वरोचि ॥ २२ ॥ उनके इस प्रकार वचन सुननेसे लज्जित होकर चिन्ता करने लगे कि "इसने जो कहा वह सत्य है, कुछ भी मिथ्या नहीं है" तो भी पत्नियोंके सहित महाशैलमें विहार करते

बहुपत्नीपतिर्लोकःशरणंपुण्यपापयोः ॥ गृहाशनासनाद्यैश्चभूषणैश्चसहागमैः ॥ १९ ॥ विषमैःक्रियमाणेहियुज्यतेमहदेनसा ॥ ज्येष्ठांकनीयभावेनक निष्ठांज्येष्ठतांनयेत् ॥२०॥ गुरवेतुवरंदत्त्वाहुत्वान्यांसमिधंयथा॥ऊढयासहकर्त्तव्यानित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥२१॥ जगादाथान्यभावेनपापीयाञ्जायतेनरः॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ सर्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौस्वरोचिरपराजितः ॥ २२ ॥ निशम्यलज्जितोदध्यौसत्यमेवहिनानृतम् ॥ ततोवर्षशतेयातेरममाणोमहागिरौ ॥ रममाणःसमन्ताभिर्ददर्शपुरतोमृगम् ॥ २३ ॥ सुस्निग्धपीनावयवंमृगीयूथविहारिणम् ॥ वासिताभिःस्वरूपाभिर्मृगीभिः परिवारितम् ॥ २४ ॥ आकृष्टघ्राण पुटकाजिघ्रन्तीस्तास्ततोमृगीः ॥ उवाचसमृगोऽलंवोलज्जात्यागेनगम्यताम् ॥ २५ ॥ नाहंस्वरोचिस्तच्छीलोनचैवाहंसुलोचनाः ॥ निर्लज्जावहवः स न्तितादृशास्तत्रगच्छत ॥ २६ ॥ एकात्वनेकानुगतायथाहासास्पदंजने ॥ अनेकाभिस्तथैवैकोभोगदृष्ट्यानिरीक्षितः ॥ २७ ॥

करते स्वरोचिको सौवर्ष बीतगये । फिर एक दिन पत्नियोंके संग विहार कर रहे थे,इसी समयमें सन्मुखवर्त्ती ॥ २३ ॥ चिकना और स्थूलकाय, सब अवयवोंसे पुष्ट मृगीयूथविहारी एक मृगको देखा । यह मृग—अपनी समान मृगियोंके यूथमें घिरा हुआ था ॥ २४ ॥ तब मृगियें नासिका सिकोड़कर मृगका गात्र सूंघने लगीं, यह देख उक्त मृग उनसे बोला हे मृगियों ! तुमने लज्जाका त्याग किया इससे अन्यत्र गमन करो ॥ २५ ॥ हे सुलोचनाओ ! मैं स्वरोचि नहीं हूं और स्वरोचिके समान मेरा स्वभाव भी नहीं है स्वरोचिकी समान अनेक निर्लज्ज मिलेंगे, उनके निकट जाओ ॥ २६ ॥ एक स्त्री अनेक पुरुषोंकी अनुगत होनेसे जिसप्रकार वह जनसमाजमें हास्यास्पद होती है, इसीप्रकार एकमात्र पुरुष अनेक रमणियोंसे भोग दृष्टिसे देखा जाकर हास्यास्पद होता है ॥ २७ ॥

उस पुरुषकी नित्यधर्मक्रियाकी हानि होती है, वह पुरुष एक भार्याके सहित संगत होकर अन्यभार्यासंगमकी सदाही कामना करता है ॥ २८ ॥ अतएव परलोकपराङ्मुख ऐसा स्वरोचिके स्वभावसम्पन्न अन्य जो कोई हो उसकी कामना करो तुम्हारा मंगल हो, मैं स्वरोचिके तुल्य नहीं हूं ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले । उक्त मृगाङ्गना हरिणके द्वारा इसप्रकार निराश हुई तब यह सब सुननेके पीछे स्वरोचि अपने आपको पतित जानने लगे ॥१॥ हे मुनिसत्तम ! उन्होंने चक्रवाकी और मृगकेद्वारा इसप्रकार निन्दाको प्राप्तहो और मृगका आचरण देख. अपनेको निन्दित जान पत्नियोंके त्याग करनेकी अभिलाषा की ॥२॥ किन्तु पत्नियोंके सहित मिलित होतेही फिर कामप्रवृत्ति बलवती होनेसे उनका

तस्यधर्मक्रियाहानिरहन्यहनिजायते॥ सक्तोऽन्यभार्यथाचान्यकामासक्तःसदैवसः ॥ २८ ॥ यस्तादृशोऽन्यस्तच्छीलःपरलोकपराङ्मुखः ॥ तंकामयतभद्रंवोनाहंतुल्यःस्वरोचिषा ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ छ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंनिरस्यमानास्ताहरिणेनमृगाङ्गनाः ॥ श्रुत्वास्वरचिरात्मानंमेनेसपतितंयथा ॥ १ ॥ त्यागेचकारचमनःसतासांमुनिसत्तम ॥ चक्रवाकीमृगप्रोक्तोमृगचर्याजुगुप्सितः ॥ ॥ २ ॥ समेत्यताभिर्भूयश्चवर्द्धमानमनोभवः ॥ आक्षितनिर्वेदकथोरेमेवर्षशतानिषट् ॥ ३ ॥ किन्तुधर्माविरोधेनकुर्वन्धर्माश्रिताः क्रियाः ॥ भुङ्क्तेस्वरोचिर्विषयान्सहताभिरुदारधीः ॥ ४ ॥ ततश्चजज्ञिरेतस्यत्रयःपुत्राःस्वरोचिषः ॥ विजयोमेरुनन्दश्चप्रभावश्चमहाबलः ॥ ५ ॥ मनोरमाचविजयंप्रासूतेन्दीवरात्मजा ॥ विभावरीमेरुनन्दंप्रभावंचकलावती ॥ ६ ॥ पद्मिनीनाम्याविद्यासर्वभोगोपपादिका ॥ सतेषांतत्प्रभावेणपिताचक्रेपुरत्रयम् ॥ ७ ॥ प्राच्यांतुविजयंनामकामरूपेनगोत्तमे ॥ विजयायसुतायादौसददौपुरमुत्तमम् ॥ ८ ॥

वैराग्य नष्ट होगया और इसके पीछे भी उनके संग छैःसो वर्ष पर्यन्त विहार किया ॥ ३ ॥ किंतु उदारबुद्धि स्वरोचि पत्नियोंके साहित जब विषयभोग करते, तब स्वयं धर्मपथमें रहकर समस्त धर्माश्रित क्रिया यथाविहित संपन्न करते थे ॥ ४ ॥ अनन्तर विजय, मेरुनन्द, और प्रभाव नामक स्वरोचिके तीन महाबलवान् पुत्र हुए ॥ ५ ॥ इन्दीवर विद्याधरकी कन्या मनोरमाके गर्भसे विजय, विभावरीके गर्भसे मेरुनन्द और कलावतीके गर्भसे प्रभावका जन्म हुआ ॥ ६ ॥ सर्व भोगसंपादिनी पद्मिनी नामक विद्याकें प्रभावसे पिता स्वरोचिने तीन पुर निर्माण किये ॥ ७ ॥ पूर्व दिशामें कामरूप पर्वतके ऊपर बना हुआ विजयनामक श्रेष्ठ पुर विजयनामक पुत्रको

प्रदान किया ॥ ८ ॥ फिर उत्तर दिशामें अत्यन्त ऊंची दिवार प्राकारसे संयुक्त नन्दवती नामक विख्यात पुरी मेरुनन्दको ॥ ९ ॥ और दक्षिणपथ स्थित ताल नामक पुर कलावतीके पुत्र प्रभावको दिया ॥ १० ॥ हे विप्र ! उक्त पुरुषश्रेष्ठ इस प्रकार तीनों पुत्रोंको तीनों पुरमें स्थापन करके पत्नियोंके सहित अत्यन्त मनो हर प्रदेशमें विहार करने लगे ॥ ११ ॥ एक समय उन्होंने धनुर्धारी होकर वनमें विहार करते करते अति दूर स्थित वराहको देखकर धनुष खैंचा ॥ १२ ॥ इसी समयमें एक हरिणी आनकर उनसे वारंवार कहने लगी "यह बाण मेरे प्रति चलाओ मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ १३ ॥ इस वराहका मारना निष्फल है, शीघ्र मेरे प्रति बाण चलाओ,आपका चलाया हुआ बाण मेरी दुःखसे रक्षा करेगा " ॥ १४ ॥ स्वरोचिने कहा—तेरा शरीर रोगी दिखाई नहीं देता तो फिर तू किस कारण

उदीच्यांमेरुनंदस्यपुरींनन्दवतीमिति ॥ ख्यातांचकारप्रोत्तुङ्गवप्रप्राकारमालिनीम् ॥ ९ ॥ कलावतीसुतस्यापिप्रभावस्यनिवेशितम् ॥ पुरंतालमिति ख्यातंदक्षिणापथमाश्रितम् ॥ १० ॥ एवंनिवेश्यपुत्रान्सपुरेषुपुरुषर्षभः ॥ रेमेताभिःसमंविप्रमनोज्ञास्वद्रिभूमिषु ॥ ११ ॥ एकदातुगतोऽरण्येविहरन्सध नुर्द्धरः ॥ चकर्षधनुरालोक्यवराहमतिदूरगम् ॥१२॥ अथाहकाचिदभ्येत्यतंतदाहरिणाङ्गना ॥ मय्येवपात्यतांबाणःप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥ १३॥ किमनेनहते नाथमामाशुविनिपातय ॥ त्वयानिपातितोबाणोदुःखान्मांमोक्षयिष्यति ॥१४॥ स्वरोचिरुवाच ॥ ॥ नतेशरीरंसरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ॥ किन्नुतत्कारणं येनत्वंप्राणान्हातुमिच्छसि ॥१५॥ मृग्युवाच ॥ ॥ अन्यास्वासक्तहृदयेयस्मिश्चेतःकृतास्पदम् ॥ ममतेनविनामृत्युरौषधंकिमिहापरम् ॥ १६ ॥ स्वरोचि रुवाच॥ ॥कस्त्वांनाभिलषेद्भीरुकस्यानुरागासिकुत्रवा॥यदप्राप्तौनिजान्प्राणान्परित्यक्तुंव्यवस्यसि॥१७॥ मृग्युवाच ॥ त्वामेवेच्छामिभद्रंतेत्वयामेऽपहृतंमनः॥ वृणोम्यहमतोमृत्युंमयिबाणोनिपात्यताम् ॥१८॥ स्वरोचिरुवाच॥ ॥त्वंमृगीचंचलापाङ्गीनरहूपधरावयम् ॥ कथंत्वयासमंयोगोमद्विधस्यभविष्यति ॥१९॥

प्राण त्याग करनेकी इच्छा करती है ॥ १५ ॥ मृगी बोली—जिसका हृदय अन्य स्त्रीमें आसक्त है, मेरा चित्त उसीके प्रति आसक्त हुआ है, अतएव उसके न पानेसे मृत्युही मेरे इस रोगकी औषधी है. दूसरा उपाय क्या है?॥ १६ ॥ स्वरोचिने कहा हे भीरु ! कौन तेरी अभिलाषा नहीं करता किसके प्रति तू अनुरा गिनी हुई है जिसको न पानेसे प्राण त्याग करनेका संकल्प किया है ? ॥ १७ ॥ मृगी बोली—मैं आपकीही इच्छा करती हूं, आपका मंगल हो आपनेही मेरा चित्त हरण कियाहै । इसी कारण मैं मृत्युकी अभिलाषा करती हूं.आप शीघ्र मेरे प्रति बाण चलाइये ॥ १८ ॥ स्वरोचिने कहा तू चंचलापाङ्गी मृगी है और मैं

मनुष्यरूपधारी हूं, अतएव मेरी समान मनुष्यका तुम्हारे संग किस प्रकार संयोग होगा? ॥ १९ ॥ मृगी बोली यदि मेरे प्रति आपका चित्त सानुराग हुआ है तो मुझे आलिंगन कीजिये । यदि आपका चित्त साधु हो तो मैं आपकी इच्छानुसार कार्य सम्पादन करूंगी ॥ २० ॥ इससे आपके द्वारा मैं अतिसन्मानित हूंगी । मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर स्वरोचिने उस हरिणाङ्गनाको आलिङ्गन किया ॥ २१ ॥ उनके आलिंगन करतेही वह मृगी तत्काल दिव्य देहधारिणी कामिनी हो गई । इससे स्वरोचिने अत्यन्त आश्चर्य युक्त होकर "तुम कौन हो ?" इस प्रकार कहा ॥ २२ ॥ उस मृगीने भी प्रेम भरी लज्जासे गद्गद वचन द्वारा उससे कहा "मैं इस वनकी अधिदेवता हूं, देवताओंकी प्रार्थनासे तुम्हारे समीप आई हूं ॥ २३ ॥ हे महामते ! मुझमें मनु उत्पन्न करना तुम्हारा कर्त्तव्य है, मैं तुम्हारे प्रति अनुरागिनी हूं, मुझमें

मृग्युवाच ॥ यदिसापेक्षितंचित्तंमयितेमांपरिष्वज ॥ यदिवासाधुचित्तंतेकरिष्यामियथेप्सितम् ॥ २० ॥ एतावताहंभवताभविष्याम्यतिमानिता ॥ मार्कण्डेयउवाच॥ आलिलिङ्गततस्तांसस्वरोचिर्हरिणाङ्गनाम् ॥ २१ ॥ तेनचालिङ्गितासद्यःसाभूद्दिव्यवपुर्धरा ॥ ततःसविस्मयाविष्टःकात्वमित्यभ्यभाषत ॥ ॥ २२ ॥ साचास्मैकथयामासप्रेमलज्जाजडाक्षरम् ॥ अहमभ्यर्थितादेवैःकाननस्यास्यदेवता ॥२३॥ उत्पादनीयोहिमनुस्त्वयामयिमहामते ॥ प्रीतिमत्यां मयिसुतंभूर्लोकपरिपालकम् ॥२४॥ तमुत्पादयदेवानांत्वामहंवचनाद्वदे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततःसतस्यांतनयंसर्वलक्षणलक्षितम् ॥२५॥ तेजस्विनमिवात्मानंजनयामासतत्क्षणात् ॥ जातमात्रस्यतस्याथदेववाद्यानिसस्वनुः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ २६ ॥ सिषिचुःशीकरैर्नागाऋषयश्चतपोधनाः ॥ २७ ॥ देवाश्चपुष्पवर्षंचमुमुचुश्चसमन्ततः ॥ तस्यतेजःसमालोक्यनामचक्रेपितास्वयम् ॥२८॥ द्युतिमानितियेनास्यतेजसाभासितादिशः ॥ सबालोद्युतिमान्नाममहाबलपराक्रमः ॥ २९ ॥ स्वरोचिषःसुतोयस्मात्तस्मात्स्वारोचिषोऽभवत् ॥ सचापिविचरन्रम्येकदाचिद्गिरिनिर्झरे ॥ ३० ॥

वह भूर्लोकपरिपालक पुत्र उत्पन्न कीजिये ॥ २४ ॥ यह मैंने देवताओंके वचनानुसार कहा । मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर स्वरोचिने उस वनदेवताके गर्भसे तत्काल सर्वलक्षणयुक्त आत्मतुल्य तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया । तब उस पुत्रका जन्म होतेही समस्त देववाजे बजने लगे, गंधर्वपति गान करने लगे और अप्सराओंके यूथके यूथ नाचने लगे ॥ २५ ॥ २६ ॥ दिशाओंके हाथी जलशीकर सिंचन करने लगे एवं तपोधन ऋषिगण ॥ २७ ॥ और देवतागण चारों दिशाओंमें पुष्पवृष्टि करने लगे । उस बालकके तेजसे संपूर्ण दिशा प्रकाशमान हुई थीं, ऐसी अंगकी द्युति देखकर पिता स्वरोचिने पुत्रका ॥ २८ ॥ "द्युतिमान्" यह सार्थक नाम रक्खा यह द्युतिमान् बालक महाबली पराक्रमी हुआ ॥ २९ ॥ स्वरोचिका पुत्र होनेके कारण उस महाबली द्युतिमान् नामक

बालकका "स्वारोचिष" यह नाम भी हुआ था । फिर किसी समय रमणीय गिरिनिर्झरमें विचरण करते करते॥ ३०॥उक्त स्वरोचिने निज पत्नीके सहित एक हंसको देखा वह हंस अभिलाषायुक्त हंसीसे वारम्वार कहने लगा ॥ ३१॥ हे जलचरि! मनको निवृत्त कर, तेरे संग मैंने बहुत कालतक विहार किया है सदा तुम्हारे संग भोग करनेसे क्या लाभ होगा ? अब वृद्ध अवस्था उपस्थित है ॥ ३२ ॥ यह तुम्हारे और मेरे दोनोंके विषयवासना त्यागनेका समय है । हंसी बोली–भोगका कालाकाल क्या ? देखो, यह जगत् सर्व भोगमय है ॥ ३३ ॥ क्योंकि संयतात्मा ब्राह्मणगण भोगके निमित्तही यज्ञ करते हैं और ज्ञानीपुरुष दृष्टादृष्ट भोगोंकी कामना करते हुए॥ ३४ ॥दान और पूर्त धर्म (वापी कूप देवमन्दिर निर्माणका) अनुष्ठान करते हैं । संयतात्मा और विवेकी मनुष्योंका भी जब भोगही कर्म फल है तो तिर्यक् जातिके

स्वरोचिर्ददृशेहंसंनिजपत्नीसमन्वितम् ॥ उवाचसततदाहंसींसाभिलाषांपुनःपुनः ॥ ३१ ॥ उपसंह्रियतामात्माचिरंतेक्रीडितंमया ॥ किंसर्वकालंभोगैस्ते आसन्नंचरमंवयः ॥ ३२ ॥ परित्यागस्यकालोमेतवचापिजलेचरि ॥ हंस्युवाच ॥ ॥ अकालःकोहिभोगानांसर्वभोगात्मकंजगत् ॥ ३३ ॥ यज्ञाः क्रियन्तेभोगार्थंब्राह्मणैःसंयतात्मभिः॥दृष्टादृष्टांस्तथाभोगान्वाञ्छमानाविवेकिनः ॥३४॥ दानानिचप्रयच्छन्तिपूतान्धर्मांश्चकुर्वते॥सत्वंनेच्छसिकिंभोगान्भोग श्चेष्टफलंनृणाम् ॥ ३५ ॥ विवेकिनांतिरश्चांचकिंपुनःसंयतात्मनाम् ॥ ॥ हंसउवाच ॥ ॥ भोगेष्वासक्तचित्तानांपरमार्थान्वितामतिः ॥ भविष्यतिकदास ङ्गमुपेतानांचबन्धुषु ॥३६॥ पुत्रमित्रकलत्रेषुसक्ताःसीदन्तिजन्तवः ॥ सरःपङ्कार्णवेमग्नाजीर्णावनगजाइव ॥३७॥ किंनपश्यसिवाभद्रेजातसङ्गंस्वरोचिषम् ॥ आवाल्यात्कामसंसक्तंमग्नंस्नेहाम्बुकर्दमे ॥ ३८ ॥ यौवनेऽतीवभार्यासुसाम्प्रतंपुत्रनप्तृषु ॥ स्वरोचिषोमनोमग्नमुद्धारंप्राप्स्यतेकुतः ॥ ३९ ॥

पक्षमें फिर कहनाही क्या है ॥ ३५ ॥ अतएव उस भोगकी तुम किस कारणसे इच्छा नहीं करते ? हंसने कहा–जिनका चित्त भोगमें आसक्त नहीं है, उनकी मति परमात्मानुगामिनी है, बन्धुवर्गके साहित संगतिवाले मनुष्यकी क्या कभी वैसी मति हो सकती है ? ॥ ३६ ॥ पुत्र मित्र और स्त्रीमें आसक्त प्राणीगण सरोवरकी कीचड़में डूबे हुए बूढ़े वनहाथीके समान दुःखको प्राप्त होते हैं ॥ ३७॥ हे भद्रे! बाल्य अवस्थासे कामासक्त स्नेहरूपी सजल कीचड़में डूबे हुए जातसंग (विषयानुरागी) स्वरोचिको क्या तुमने नहीं देखा है ? ॥ ३८ ॥ यौवनवती भार्या और पुत्र तथा नातियोंमें निमग्न हुए स्वरोचिके मनका किसप्रकार उद्धार होगा ॥ ३९ ॥

हेजलचरि ! मैं स्वरोचिके समान स्त्रीगणों के वशीभूत नहीं हूं मैं ज्ञानवान् हूं अब भोगसे निवृत्त हुआ हूं" ॥ ४० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—खगके कहे इसप्रकार वचन सुनकर स्वरोचि तीनों भार्या के सहित तपस्या करनेके लिये तपोवनमें चले गये ॥ ४१ ॥ वहां उदारबुद्धि स्वरोचिने पत्नियोंके सहितः घोर तपस्याका आचरण करके संपूर्ण पापोंसे छूट विमललोक (स्वर्गादि) में गमन किया ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरेत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर भगवान्ने द्युतिमान् वा स्वारोचिष नामक प्रजापतिको मनु किया था, उनका मन्वन्तर सुनो ॥ १ ॥ हे क्रौष्टुके ! उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें जो देवता, मुनि, और मनुपुत्र भूपालगण थे, उनका मैं वर्णन करता हूं, तुम मुझसे श्रवण करो ॥ २ ॥ हे द्विज ! उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें देवगण पारा

नाहंस्वरोचिषस्तुल्यःस्त्रीवश्योवाजलेचरि ॥ विवेकवांश्चभोगानांनिवृत्तोऽस्मिचसाम्प्रतम् ॥४०॥ मार्कण्डेयउवाच॥स्वरोचिरेतदाकर्ण्यजातोद्वेगःखगेरितम्॥ आदायभार्यास्तपसेययावन्यत्तपोवनम् ॥ ४१ ॥ तत्रतप्त्वातपोघोरंसहताभिरुदारधीः ॥ जगामलोकानमलान्निवृत्ताखिलकल्मषः ॥ ४२ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेत्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततःस्वारोचिषंनाम्नाद्युतिमन्तंप्रजापतिम् ॥ मनुंचकारभगवांस्तस्यमन्वन्तरंशृणु ॥ १ ॥ तत्रान्तरेतुयेदेवामुनयस्तत्सुताश्चये ॥ भूपालाःक्रौष्टुकेयेतान्गदतस्त्वंनिशामय ॥ २ ॥ देवाःपारावतास्तत्रतथैवतुषिताद्विज ॥ स्वारोचिषेऽन्तरेचेन्द्रोविपश्चिदितिविश्रुतः ॥ ३॥ ऊर्जस्तम्बस्तथाप्राणोदत्तोलिर्ऋषभस्तथा ॥ निश्चरश्चार्ववीरांश्चतत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥४॥ चैत्रकिंपुरुषाद्याश्चसुतास्तस्यमहात्मनः ॥ सप्तासन्सुमहावीर्याःपृथिवीपरिपालकाः ॥५॥ तस्यमन्वन्तरंयावत्तावत्तद्वंशविस्तरे ॥ भुक्तेयमवनिःसर्वाद्वितीयंवैतदन्तरम् ॥६॥ स्वरोचिषस्तुचरितंजन्मस्वारोचिषस्यच ॥ निशम्यमुच्यतेपापैःश्रद्दधानोहिमानवः ॥ ७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषसमाप्तिर्नामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कथितंसर्वंविस्तरेणत्वयामम ॥ स्वरोचिषस्तुचरितंजन्मस्वारोचिषस्यतु ॥ १ ॥

वत और तुषित नामसे तथा इन्द्र विपश्चित् नामसे विख्यात थे ॥ ३ ॥ ऊर्ज्जस्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ निश्चर, और अर्वरीवान् नामसे विख्यात सप्तर्षि थे ॥ ४ ॥ महात्मा स्वारोचिष मनुके चैत्र और किम्पुरुष इत्यादि महावीर्यवान् सातपुत्र पृथ्वीपालक थे ॥ ५ ॥ जितने दिनतक उनका मन्वन्तर था, तबतक उसके वंशके राजाओंने सब पृथ्वीको भोग किया, मन्वन्तरोंमें स्वारोचिष मन्वन्तर दूसरा है॥ ६ ॥ इन स्वरोचिका चरित्र और स्वारोचिष मनुका जन्म श्रद्धासहित सुननेपर मनुष्यपापोंसे छूट जाता है॥ ७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषसमाप्तिर्नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥ ६४ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! स्वरोचिका चरित्र और स्वारो

चिष मनुके जन्मका वृत्तान्त आपने मुझसे विस्तारपूर्वक कहा है ॥ १ ॥ किन्तु सर्वभोगसम्पादिनी पद्मिनीनामक विद्याके आश्रित जो सब निधि हैं, उनका विषय मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे गुरो ! आठ प्रकारकी निधियोंका स्वरूप और द्रव्यसंस्थिति भलीभाँति आपके मुखसे सुननेकी अभिलाषा हुई है ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-पद्मिनीनामक विद्याकी अधिष्ठात्री देवता लक्ष्मी है यह विद्या आठ प्रकारकी निधिका आधारस्वरूप है । मैं तुमसे इसका विषय कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शंखनामक आठ निधि पद्मिनी विद्याके आश्रित हैं ॥ ॥ ५ ॥ समृद्धि होनेसे यह निधियें और उनकी ! सिद्धि लाभ होती है क्रौष्टुके ! यह अष्टविध निधि तुम्हारे निकट कही गई ॥ ६ ॥ हे मुने ! देवताके प्रसाद और

यातुसापद्मिनीनामविद्याभोगोपपादिका ॥ तत्संश्रयायेनिधयस्तान्मेविस्तरतोवद ॥२॥ अष्टौयेनिधयस्तेषांस्वरूपंद्रव्यसंस्थितिः॥भवताभिहितंसम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यहंगुरो ॥३॥ मार्कण्डेयउवाच॥पद्मिनीनामयाविद्यालक्ष्मीस्तस्याश्चदेवता॥तदाधाराश्चनिधयस्तन्मेनिगदतःशृणु॥४॥यत्रपद्ममहापद्मौतथामकरकच्छपौ ॥ मुकुन्दोनंदकश्चैवनीलःशङ्खोऽष्टमोनिधिः ॥५॥ सत्यामृद्धौभवन्त्येतेसिद्धिस्तेषांहिजायते ॥ एतेह्यष्टौसमाख्यातानिधयस्तवक्रौष्टुके ॥ ६ ॥ देवतानांप्रसादेनसाधुसंसेवनेनच ॥ एभिरालोकितंवित्तंमानुषस्यसदामुने ॥ ७ ॥ यादृक्स्वरूपंभवंतितन्मेनिगदतःशृणु ॥ पद्मोनामनिधिःपूर्वंसयस्यभवतिद्विज ॥ ८ ॥ सतस्यतत्सुतानांचतत्पौत्राणांचनित्यशः ॥ दाक्षिण्यसारःपुरुषस्तेनचाधिष्ठितोभवेत् ॥९॥ सत्त्वाधारोमहाभागोयतोऽसौसात्त्विकोनिधिः ॥ सुवर्णरूप्यताम्रादिधातूनांचपरिग्रहम् ॥ १० ॥ करोत्यतितरांसोऽथतेषांचक्रयविक्रयम् ॥ करोतिचतथायज्ञान्दक्षिणांचप्रयच्छति ॥११॥ (संपादयतिकामांश्च सर्वानेवयथाक्रमम् ॥) सभांदेवनिकेतांश्चसकारयतितन्मनाः ॥ सत्त्वाधारोनिधिश्चान्योमहापद्मइतिश्रुतः ॥ १२ ॥

साधुसेवाके फलसे मनुष्यका वित्त, निधियोंके द्वारा सर्वदा अवलोकित होता है ॥ ७ ॥ इसका जैसा स्वरूप है, वह मैं कहता हूं, सुनो । हे द्विज ! पद्मनामकनिधि पहले सदा मयदानवके ॥८॥ और फिर क्रमानुसार उसके पुत्र पौत्र और प्रपौत्रके आधीनमें थी। इस निधिके द्वारा अधिष्ठित होनेसे पुरुष चतुरतासंपन्न ॥ ९ ॥ सत्वगुणसम्पन्न और महाभागी होता है, क्योंकि यह निधि सात्विक है । यह पद्मनिधियुक्त पुरुष बहुतसे सुवर्ण, चाँदी ताम्र आदि सब धातुओंको परिग्रह ॥ १० ॥ और क्रयविक्रय करता है, बहुतसे यज्ञ करके विपुल दक्षिणा देता है ॥ ११ ॥ (यथाक्रम संपूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करता है) और एकाग्र

चित्तसे सभा और देवालय (मन्दिर) बनवाता है, महापद्म निधि सत्वाधारके नाम से प्रसिद्ध है ॥१२॥ तदधिष्ठित मनुष्य भी सत्वप्रधान होता है । महापद्माधिष्ठित मनुष्य पद्मरागादि रत्नोंका संचय ॥१३॥ तथा मोती और मूंगेका स्वामी होकर उनका क्रय विक्रय करता है, योगियोंको उनका स्थान प्रदान ॥ १४ ॥ और साधारण पुरुषोंको योगाभ्यासमें उत्साह प्रदान करता है और स्वयं भी योगशील होता है। तद्वंशीय पुत्र पौत्रादि क्रमशः उसके अनुरूपही शीलवान् होते हैं ॥१५॥ किन्तु यह महापद्मनिधि पूर्ववर्त्ती पुरुषोंकी अपेक्षा पीछेके सब पुरुषोंमें क्रमशः [illegible] अर्द्ध परिमाणसे स्थित होकर सात पुरुषतक नहीं त्यागती, मकरनामक निधि तामस है । तदधिष्ठित पुरुष ॥ १६ ॥ प्रायः तमोगुणप्रधान और सुशील होता है, वह मकराधिष्ठित पुरुष धनुर्बाण, खड्ग, ढाल और ऋष्टि (आयुध) ग्राही होता है

सत्त्वप्रधानोभवतितेनचाधिष्ठितोनरः ॥ करोतिपद्मरागादिरत्नानांचपरिग्रहम् ॥ १३ ॥ मौक्तिकानांप्रवालानांतेषांचक्रयविक्रयान् ॥ ददातियोग[illegible]लिभ्यस्ते षामावसथांस्तथा ॥ १४ ॥ सकारयतितच्छीलःस्वयमेवचजायते ॥ तत्प्रसूतास्तथाशीलाःपुत्रपौत्रक्रमेण च ॥ १५ ॥ पूर्वार्द्धिमात्रःसप्तासौपुरुषां श्चनमुंचति ॥ तामसोमकरोनामनिधिस्तेनावलोकितः ॥ १६ ॥ पुरुषोऽथतमःप्रायःसुशीलोऽपिहिजायते ॥ बाणखड्गर्ष्टिधनुषांचर्मणांचपरि ग्रहम् ॥ १७ ॥ दंशनानांचकुरुतेयोतिमैत्रींचराजभिः ॥ ददातिशौर्यवृत्तीनांभूभुजांयेचतत्प्रियाः ॥ १८ ॥ क्रयविक्रयेचशस्त्राणांनान्यत्रप्रीतिमे तिच ॥ एकस्यैवभवत्येषनरस्यनसुतानुगः ॥ १९ ॥ द्रव्यार्थंदस्युतोनाशंसंग्रामेवापिसव्रजेत् ॥ कच्छपश्चनिधिर्योऽसौनरस्तेनाभिवीक्षितः ॥ २० ॥ तमःप्रधानोभवतियतोऽसौतामसोनिधिः ॥ व्यवहारानशेषांस्तुपुण्यजातैःकरोतिच ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ भोजन करनेकी वस्तुका भलीभांति स्वाद ग्रहण करने में समर्थ होता है राजाओंके संग मित्रता स्थापन करता है, भूपालका प्रिय शौर्य वृत्तिवाले मनुष्योंको दान करके तृप्त होता है ॥ १८ ॥ शस्त्रोंके क्रय विक्रय विना प्रसन्न नहीं होता है और वह पुरुष द्रव्यके लोभसे तस्करद्वारा अथवा युद्धमें विनाशको प्राप्त होता है । यह मकरनिधि, एक पुरुषानुगामी अर्थात् एक पीढ़ीतक प्राप्त रहती है, इसके पीछेके पुरुषकी अनुगामी नहीं है । कच्छप (मकर) नामक निधि तामस कही गई है. जिस पुरुष पर इसकी दृष्टि पडती है ॥ १९-२० ॥ वह पुरुष तमोगुणप्रधान होता है वह पुरुष पुण्ययुक्त संपूर्ण आचार व्यवहार ॥ २१ ॥

और कर्मके आधीन हुआ संपूर्ण भोग्य पदार्थोंको भोगता है, किसीका भी विश्वास नहीं करता, और कछुआ जिसप्रकार अपना अंग छिपाता है ॥ २२ ॥ इसीप्रकार अपना अभिप्राय गुप्त रीतिसे स्थिरकर चित्तसंयमपूर्वक स्थिति करता है; और विनाशके भयसे डरकर स्वयं वित्त (धनादिको) नहीं भोगता और दूसरेको भी नहीं देसकता ॥ २३ ॥ यह निधि एक पीढ़ीतक भूतलमें स्थित रहती है हे द्विज ! मुकुन्दनामक अन्य निधि रजोगुणमय है ॥ २४ ॥ जिस मनुष्य पर इसकी दृष्टि पड़ती है, वह मनुष्य रजोगुणयुक्त होता है । मुकुन्दाश्रित मनुष्य वीणा, वेणु, मृदंग, इत्यादि चार प्रकारके बाजोंका परिग्रह करता है ॥ २५ ॥ गाने और नाचने वालोंको बहुत धन देता है, वन्दी, सूत, मागध, विट, (लम्पट) और लास्यपाठी गान नृत्य विशेषवाले मनुष्योंको ॥ २६ ॥ रातदिन अभिलाषित भोग प्रदान करता

कर्मस्थानखिलांश्चैवनविश्वसितिकस्यचित् ॥ समस्तानियथाङ्गानिसंहरत्येवकच्छपः ॥ २२ ॥ तथाविष्टभ्यरत्नानितिष्ठत्याकुलमानसः ॥ नददाति नवाभुङ्क्तेतद्विनाशभयाकुलः ॥२३॥ निधानमुर्व्यांकुरुतेनिधिःसोप्येकपूरुषः ॥ रजोगुणमयश्चान्योमुकुंदोनामयोनिधिः॥२४॥ नरोऽवलोकितस्तेनतद्गुणो भवतिद्विज ॥ वीणावेणुमृदङ्गानामातोद्यस्यपरिग्रहम् ॥ २५ ॥ करोतिगायतांवित्तंनृत्यतांचप्रयच्छति ॥ वन्दिमागधसूतानांविटानांलास्यपाठिनाम् ॥२६॥ ददात्यहर्निशंभोगान्भुङ्क्तेतैश्चसमंद्विज ॥ कुलटासुरतिश्चास्यभवत्यन्यैश्चतद्विधैः ॥२७॥ प्रयातिसङ्गमेकंचयंनिधिर्भजतेनरम् ॥ रजस्तमोमयश्चान्योन न्दोनाममहानिधिः ॥ २८ ॥ उपैतिस्तम्भमधिकंनरस्तेनावलोकितः ॥ समस्तधातुरत्नानांपुण्यधान्यादिकस्यच ॥ २९ ॥ परिग्रहंकरोत्येपतथैवक्रयविक्र यम् ॥ आधारःस्वजनानांचआगताभ्यागतस्यच ॥ ३० ॥ सहतेनापमानोक्तिस्वल्पामपिमहामुने ॥ स्तूयमानश्चमहतींप्रीतिंबध्नातियच्छति ॥ ३१ ॥

है, और उनके संग स्वयं भोजन करता है । हे द्विज ! इस मनुष्यकी कुलटा और आत्मातुल्य मनुष्यके साथ प्रीति होती है ॥ २७ ॥ यह निधि जिसकी भजना करती है, उसकी अनुगामी रहती है उसके वंशवालोंकी अनुगामी नहीं होती । नन्दनामक महानिधि रज और तम इन दोनों गुणोंसे युक्त है ॥ २८ ॥ जिस मनुष्यपर इसकी दृष्टि पड़ती है, वह अत्यन्त स्तम्भित अर्थात् जड़ताको प्राप्त होता है । नन्दाधिष्ठित मनुष्य समस्त धातु रत्न और धान्यादि पवित्र ॥ २९ ॥ द्रव्यका परिग्रह और क्रय विक्रय करता है । हे महामुने ! वह मनुष्य स्वजनवर्ग एवं आगत और अभ्यागत पुरुषोंका आश्रयस्वरूप होता है ॥ ३० ॥ किंचित् अपमानोक्ति अर्थात् निरादर नहीं सह सकता प्रशंसा करनेसे अत्यन्त आनन्दित होता है ॥ ३१ ॥

अर्थीगण जिस । जिस वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, उनको वही वही वस्तु देता है। वह स्वयं मृदुस्वभावसम्पन्न होताहै, और पुत्रवती अतिसुन्दरी बहुत भार्यायें उसकी प्रीति संपादन करती हैं ॥ ३२ ॥ हे सत्तम ! नन्दनिधि प्रतिपुरुषमें क्रमशःअष्टम भागमें बढ़ते बढ़ते सात पुरुष पर्यन्त अनुगामी होती है ॥ ३३ ॥ और आश्रित पुरुषको दीर्घायु करती है नन्दाधिष्ठित मनुष्य बंधु—वर्ग और दूर देशसे आये हुए मनुष्योंका भरण पोषण करता है ॥ ३४ ॥ किन्तु यह परलोक के प्रति यत्नवान् नहीं होता, और जो नगरवासियोंसे वह स्नेह भी नहीं करता ॥ ३५ ॥ और पूर्व मित्रमें शिथिलता और नवीन कृत्रिम प्रीति स्थापित होती है । इसी प्रकार सत्व और रजोगुणसम्पन्न महानिधि है ॥ ३६ ॥ उसका नाम नीलनिधि है, उससे अधिष्ठित पुरुषभी सत्व और रजोगुणयुक्त होता है । जिस मनुष्यपर इसकी दृष्टि पडती है, वह मनुष्य

यंयमिच्छतिवैकामंमृदुत्वमुपयातिच ॥ बह्व्योभार्य्याभवन्त्यस्यसूतिमत्योऽतिशोभनाः ॥३२॥ भजतेसप्तचनराञ्चिधिर्नन्दोऽनुवर्त्तते॥प्रवर्द्धमानोऽथनरमष्टभागेनसत्तम ॥३३॥ दीर्घायुष्ट्वंचसर्वेषांपुरुषाणांप्रयच्छति ॥ बन्धूनामेवभरणंयेचदूरादुपागताः ॥३४॥ तेषांकरोतिवैनन्दःपरलोकेनचादृतः ॥ भवत्यस्यनच स्नेहःसहवासिषुजायते ॥ ३५ ॥ पूर्वमित्रेषुशैथिल्यंप्रीतिमन्यैःकरोतिच ॥ तथैवसत्त्वरजसीयोविभर्त्तिमहानिधिः ॥३६॥ सनीलसंज्ञस्तत्सङ्गीनरस्तच्छीलवान्भवेत् ॥ वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ॥३७॥ मुक्ताविद्रुमशङ्खानांशुक्त्यादीनांतथामुने ॥ काष्ठादीनांकरोत्येषयच्चान्यज्जलसम्भवम्॥३८॥ क्रयविक्रयमन्येषांनान्यत्ररमतेमनः ॥ तडागान्पुष्करिण्योऽथतथारामान्करोतिच ॥ ३९ ॥ बन्धंचसरितांवृक्षांस्तथारोपयतेनरः ॥ अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वाभिजायते ॥४०॥ त्रिपौरुषश्चापिनिधिर्नीलोनामैषजायते ॥ रजस्तमोमयश्चान्यःशङ्खसंज्ञोहियोनिधिः ॥४१॥ तेनापिनीयतेविप्रतद्गुणित्वंनिधीश्वरः॥ एकस्यैवभवत्येषनरंनान्यमुपैतिच ॥ ४२ ॥

वस्त्र, कपास, धान्यादि शस्य, फल, पुष्प ॥ ३७ ॥ मोती, मूंगा, शंख, सीपी इत्यादि तथा जलोत्पन्न वस्तु और काष्ठादि पदार्थोंको ग्रहण करता है ॥ ३८ ॥ और अपने भोगनेयोग्य वस्तुके अतिरिक्त फिर इन सब पदार्थोंका क्रय विक्रयभी करता है इस को छोड़कर अन्य विषयमें इसकी मानसिक प्रीति उत्पन्न नहीं होती ॥ ३९ ॥ वह मनुष्य तलाव, पुष्करिणी, उपवन और नदीका पुल बंधवाता है, तथा वृक्ष (पंचाम्र इत्यादि) लगाता है और अनुलेपन पुष्पादि भोग्य वस्तुओंको भोगकर ख्याति लाभ करता है ॥ ४० ॥ यह नीलनामक निधि त्रिपौरुष अर्थात् तीन पुरुष पर्यन्त अनुगामी होती है, शंखनामक जो अन्य निधि है, वह रज और तमोगुणमय है ॥ ४१ ॥ इसके संगसे शंख निधीश्वर पुरुष भी रजोगुण और तमोगुणसंपन्न होता है। यह शंखनिधि एक पुरुषकी अनुगामी है, कभी उसके परवर्त्ती पुरु

षमें अधिष्ठान नहीं करती ॥ ४२ ॥ हे क्रौष्टुके ! शंखनिधि जिसके वशीभूत होती है, उसका स्वरूप सुनो। शंखनिधीश्वर स्वयं अपना उपार्जित उत्तम अन्न भोजन और उत्तम वस्त्र पहरता है ॥ ४३ ॥ किन्तु उसके कुटुम्बी मनुष्य, कुत्सित अन्न भोजन और कुवस्त्र पहरकर कष्टसे समय बिताते हैं। शंखी पुरुष सुहृद, भार्या, भाई, पुत्र और पुत्रवधू आदिका भरण पोषण करनेके लिये कुछ नहीं देता ॥ ४४ ॥ अपनाही पोषण करनेमें तत्पर होता है, यह निधि सब मनुष्योंकी अर्थ देवता कहकर प्रसिद्ध हैं ॥ ४५ ॥ इनके देखनेसे मनुष्य उल्लिखितस्वभावसंपन्न होता हैं। किन्तु यह निधिगण मिश्रावलोकनसे मिश्र फलदायक और स्वतंत्रावलोकनसे अपना अपना फल देनेवाली होतीं हैं। हे द्विज ! यह श्रीरूपिणी पद्मिनी नामक विद्या उक्त आठ प्रकारकी निधिके आधिपत्यमें स्थित है ॥ ४६ ॥

यस्यशङ्खोनिधिस्तस्यस्वरूपंक्रौष्टुकेशृणु ॥ एकएवात्मनासृष्टमन्नंभुङ्क्तेतथाम्बरम् ॥ ४३ ॥ कदन्नभुक्परिजनोनचशोभनवस्त्रधृक् ॥ नददाति सुहृद्भार्य्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु ॥ ४४ ॥ स्वपोषणपरःशङ्खीनरोभवतिसर्वदा ॥ इत्येतेनिधयः ख्यातानराणामर्थदेवताः ॥ ४५ ॥ मिश्रावलोकनान्मिश्राः स्वभावफलदायिनः ॥ यथाख्यातस्वभावस्तुभवत्येवविलोकनात् ॥ सर्वेषामाधिपत्येचश्रीरेषांद्विजपद्मिनी ॥ ४६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनिधिवर्ण नंनामपंचषष्टितमोध्यायः ॥ ६५ ॥ ॥क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ विस्तरात्कथितंब्रह्मन्ममस्वारोचिषंत्वया ॥ मन्वन्तरंतथैवाष्टौयेपृष्टानिधयोमया ॥ १ ॥ स्वायम्भुवंपूर्वमेवमन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ मन्वन्तरंतृतीयंमेकथयौत्तमसंज्ञितम् ॥२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमोनामनामतः ॥ सुरुच्या स्तनयःख्यातोमहाबलपराक्रमः ॥ ३ ॥ धर्मात्माचमहात्माचपराक्रमधनोनृपः ॥ अतीत्यसर्वभूतानिबभौभानुपराक्रमः ॥ ४ ॥ समःशत्रौचमित्रेचपरेपुत्रेचधर्म वित् ॥ दुष्टेचयमवत्साधौसोमवच्चमहामुने ॥ ५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां निधिवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने स्वारोचिषमन्वन्तर विस्तारसे कहा इसीप्रकार और आठ मन्वन्तर तथा जो निधि मैंने पूछी है, सो कहिये ॥ १ ॥ स्वायम्भुव मन्वन्तर तो आप पहिले कथन कर चुके हैं अब औत्तमनामक तीसरे मन्वन्तरकी कथा कहिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—सुरुचिनामक रानीके गर्भसे उत्तानपादनृपतिके महाबल पराक्रमशाली उत्तमनामक प्रसिद्ध पुत्रका जन्म हुआ ॥ ३ ॥ धर्मशील और पराक्रमशाली वह उत्तमनामक महात्मा नृपति अपने पराक्रमसे सब प्राणियोंमें सूर्यकी समान दीप्तिमान् थे ॥ ४ ॥ हे महामुनि ! वह धर्मात्मा राजा शत्रुमित्रमें और प्रजापुत्रमें समानदृष्टि थे । वह दुष्टोंके निकट यमके समान उग्र और शिष्टोंके निकट चन्द्रमाके समान सौम्यप्रकृति रहते ॥ ५ ॥

इन्द्रने जिसप्रकार सर्वलोकविख्यात शचीसे विवाह कियाहै ऐसेही उन उत्तानपादतनय धर्मज्ञ उत्तमने बभ्रु—तनया बहुला नामक प्रसिद्ध कन्यासे विवाह किया था॥ ६ ॥हे द्विजवर ! शशधर (चन्द्रमा) का चित्त जिसप्रकार रोहिणीके प्रति अत्यन्त आसक्त है इसीप्रकार उन भूपालका चित्तभी उक्त बहुलाके प्रति अत्यन्त अनुरक्त था ॥ ७॥ उन राजाका चित्त बहुलाके अतिरिक्त अन्य किसीके प्रति आसक्त नहीं होता,अधिक क्या स्वप्नमें भी उनका मन उस एक मात्र प्रियाकाही अवलम्वी होता,अर्थात् बहुलाके अतिरिक्त अन्य नारी स्वप्नके समयभी उनके मनमें स्थान नहीं पाती ॥ ८ ॥ वह पार्थिव दर्शनमात्रसेही उल्लिखित रूपवती प्रियाका अंग स्पर्श करते और स्पर्श करतेही तन्मय होजाते॥ ९॥ किन्तु रानी उन पृथ्वीपतिके प्रिय वचन भी कानोंको कडवे और उनका अत्यन्त सन्मान करनाभी अपना अपमान जान्ती थी॥ १०॥रानी उनकी दी हुई माला और रमणीय आभरणों (गहनों) में अवज्ञा प्रकाश करती अत्यन्त उत्तम आसव पानके समय उनके निकटसे दुःख अनुभव करती व्यथितशरीर

वाभ्रव्यांवहुलांनामउपयेमेसधर्मवित् ॥ उत्तानपादतनयःशचीमिन्द्रइवोत्तमः ॥ ६ ॥ तस्यामतीवतस्यासीद्विजवर्यमनःसदा ॥ स्नेहवच्छशिनोयद्वद्रोहिण्यांनिहितास्पदम् ॥ ७ ॥ अन्यप्रयोजनासक्तिमुपैतिनहितन्मनः ॥ स्वप्नेचैवतदालम्बिमनोऽभूत्तस्यभूभृतः ॥ ८ ॥ सचतस्याःसुचार्वङ्ग्यादर्शनादेवपार्थिवः ॥ ददाहलोचनैर्गात्रैगात्रस्पर्शश्चतन्मयः ॥ ९ ॥ श्रोत्रोद्वेगकरंवाक्यंप्रियमप्यवनीपतेः ॥ तस्यापिभूरिसन्मानंमेनेपरिभवंततः ॥ १० ॥ अवमेनेस्रजंदत्तांशुभान्याभरणानिच ॥ उत्तस्थावर्धपीतेवपिबतोऽस्यवरासवम् ॥ ११ ॥ भुञ्जताचनरेन्द्रेणक्षणमात्रंकरेधृता ॥ बुभुजेस्वल्पकंभक्ष्यंद्विजनातिमुदावती ॥ १२॥ एवंतस्यानुकूलस्यनानुकूलामहात्मनः ॥ प्रभूततरमत्यर्थंचक्रेरागंमहीपतिः ॥१३॥ अथपानगतोभूपःकदाचित्तांमनस्विनीम् ॥ सुराभृतंपानपात्रंग्राहयामाससादरः ॥ १४ ॥ पश्यतांभूमिपालानांवारमुख्यासमन्वितः ॥ प्रगीयमानोमधुरैर्गेयगायनतत्परैः ॥१५॥ सातुनेच्छतितत्पात्रमादातुंतत्पराङ्मुखी ॥ समक्षमवनीशानांततः क्रुद्धःसपार्थिवः ॥१६॥ उवाचद्वाःस्थमाहूयनिश्वसन्नुरगोयथा ॥ निराकृतस्तयादेव्याप्रिययापतिरप्रियः ॥१७॥

वाली की समान उठजाती ॥ ११ ॥ हे द्विज ! नरेन्द्र भोजन करते करते यदि हाथ पकड़कर उसको अनुरोध करते, तब वह अप्रसन्न चित्तसे कुछेक थोड़ा भोजन करती ॥ १२ ॥ इसप्रकार महात्मा महीपतिके प्रति रानीके अनुकूल न होनेपरभी वह अधिकतर अनुराग प्रकाश करते ॥ १३ ॥ अनन्तर एक समय संगीतमें चतुर श्रेष्ठ वाराङ्गनागण मधुर स्वरसे राजाके समीप गान कर रहीथीं उसीसमय भूपालने पानासक्त होकर समीपमें स्थित राजवर्गके सामनेही सादर उस मनस्विनी पत्नीको सुरासे भराहुआ पानपात्र दिया ॥ १४ ॥ १५ ॥ किन्तु राजाआके सामने भी रानीने उनसे विमुख होकर पानपात्र ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं की, इससे राजा क्रोधित होकर ॥ १६ ॥ सर्पकी समान श्वास छोड़ते हुये द्वारपालको बुलाकर कहने लगे, हे प्रतिहारिन् ! इस प्रियतमा देवी बहुलाने अप्रिय जानकर मेरा

निरादर किया है ॥ १७ ॥ इसकारण इस दुष्टहृदयाको लेजाकर शीघ्र निर्जन वनमें छोड़ आओ। मेरी यह आज्ञा अच्छी है वा बुरी है इसके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उक्त द्वारपाल अच्छे बुरेका विचार न करके "राजाकी आज्ञा" केवल इतनाही विचार उस सुभ्रू रानीको रथमें चढ़ाय वनमें छोड़ आया ॥ १९ ॥ महीपतिके वनमें त्याग करनेपर "अब राजाके सामने नहीं होना पड़ेगा" रानी यही राजाका महत् अनुग्रह मानने लगी ॥ ॥ २० ॥ इस ओर उन उत्तानपादके पुत्र भूपालने रानीके प्रति अत्यन्त प्रीति होनेके कारण दुःखसे दह्यमानहृदय हो अन्य भार्या ग्रहण नहीं करी ॥ २१ ॥ केवल दुःखित चित्तसे उसी शोभायमान अंगवाली पत्नीको स्मरण करने लगे। किन्तु वह ऐसी अवस्थामें भी धर्मानुगत होकर प्रजा पालन करते हुए अपने राज्यका शासन करते ॥ २२ ॥ भूपति औरस पुत्रकी समान प्रजा पालन करते थे उसी समय एक दिन कोई ब्राह्मण उनके समीप आनकर दुःखित

द्वाःस्थैनांदुष्टहृदयामादायविजनेवने ॥ परित्यज्याशुनैतत्तेविचार्यंवचनंमम ॥ १८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोनृपस्यवचनमविचार्यमवेक्ष्यसः ॥ द्वाःस्थस्तत्याजतांसुभ्रूमारोप्यस्यन्दनेवने॥१९॥साचतंविपिनेत्यागंनीतातेनमहीभृता॥अपश्यमानातंमेनेपरंकृतमनुग्रहम् ॥२०॥सोऽपितत्रानुरागार्तिदह्यमा नात्ममानसः ॥ औत्तानपादिर्भूपालोनान्यांभार्यामविन्दत ॥ २१ ॥ सस्मारतांसुचार्वंगीमहर्निशमनिर्वृतः ॥चकारचनिजंराज्यंप्रजाधर्मेणपालयन् ॥ २२ ॥ प्रजाःपालयतस्तस्यपितुःपुत्रानिवौरसान् ॥ आगत्यब्राह्मणःकश्चिदिदमाहार्त्तमानसः ॥२३॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥महाराजभृशार्त्तोऽस्मिश्रूयतांगदतोमम ॥ नृणामार्तिपरित्राणमन्यतोननराधिपात् ॥ २४ ॥ ममभार्याप्रसुप्तस्यकेनाप्यपहृतानिशि ॥ गृहद्वारमनुद्धाट्यतांसमानेतुमर्हसि ॥ २५ ॥ राजो वाच ॥ ॥ नवेत्सिकेनापहृताक्ववानीतातुसाद्विज ॥ यतामिविग्रहेकस्यकुतोवाप्यानयामिताम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ तथैवस्थगितेद्वारिप्रसुप्तस्य गृहेमम ॥ हृताहिभार्याकिंकेनेत्येतद्विज्ञायतेभवान् ॥ २७ ॥ त्वंरक्षितानोनृपतेषड्भागादानवेतनः ॥ धर्मस्यतेऽतोनिश्चिन्ताःस्वपन्तिमनुजानिशि ॥ २८ ॥

चित्तसे यह वचन कहने लगा ॥ २३ ॥ हे महाराज! मैं अत्यन्त क्लेश पारहा हूं, मेरा वचन सुनिये, क्योंकि राजाके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी मनुष्योंका क्लेश निवारण नहीं होता ॥ २४ ॥ मैं रात्रिकालमें सोरहा था, उसीसमय घरका द्वार विनाहीखोले किसीने मेरी भार्याको हरणकिया है अब आप मेरी उस पत्नीको ला दीजिये ॥ २५ ॥ राजा बोले—हे द्विज! आपकी भार्याको किसने हरण किया है? और कहाँ रक्खाहै? यह जब मैं कुछभी नहीं जानता तो मैं किससे विरोध करूं और कहाँसे उसको लाऊं? ॥ २६ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे महीपते! मेरे सोते हुए गृहद्वार उक्त प्रकारसे बन्द रहने पर भी मेरी भार्याको किसभाँति से हरण किया, यह आपही जाने ॥ २७ ॥ क्योंकि आपही नृपति हैं, धर्मका छठाँ अंश वेतन स्वरूपमें ग्रहण करके रक्षक रूपसे नियुक्त हैं, इसी कारण मनुष्य निश्चिन्त होकर रात्रिकालमें

सोते हैं ॥ २८ ॥ राजाने कहा—मैंने आपकी भार्याको कभी नहीं देखा, अब अपनी ब्राह्मणीकी आकृति, अवस्था और स्वभाव यह सब भलीभाँति कहिये ॥ २९ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे भूपाल! मेरी पत्नी कठोर नेत्रवाली, अत्यन्त दीर्घाकृति, छोटी भुजावाली कृशानना (लम्बे उदरवाली, सूक्ष्मकमरवाली तथा लघु स्तनोंवाली) और अत्यन्त विरूप है किन्तु मैं तो भी उसकी निन्दा नहीं करता ॥ ३० ॥ हे महीपते! उसका वाक्य और स्वभाव, यह दोनों अत्यन्त कर्कश हैं और पहिली अवस्था कुछेक बीत गई है, अपनी उस दुर्निरीक्षणा भार्याका समस्तही विषय मैंने आपके निकट कहा। मेरी भार्या जो ऐसी है,यह मैंने सत्यही निवेदन किया ॥ ३१–३२ ॥ राजा बोले—हे ब्राह्मण! आपको ऐसी कुलक्षण भार्याकी क्या आवश्यकता है, मैं आपको अन्य भार्या देता हूं, शुभलक्षणयुक्त भार्या सुखके निमित्त और आपकी भार्याके समान कुलक्षणा पत्नी केवल दुःखके लियेही होतीहै ॥ ३३ ॥ हे विप्र ! सौन्दर्य और सत्स्वभावही मंगलका कारण

राजोवाच ॥ नतेदृष्टामयाभार्यायादृग्रूपाचदेहतः ॥ वयश्चैवसमाख्याहिकिंशीलाब्राह्मणीचते ॥२९॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ कठोरनेत्रासात्युच्चाह्रस्वबाहुःकृशानना ॥ (लंबोदरीह्रस्वास्फिजंतथाह्रस्वस्तनींनृप) ॥ विरूपरूपाभूपालननिन्दामितथैवताम् ॥३०॥ वाचिभूपातिपरुषानसौम्यासाचशीलतः ॥ इत्याख्यातामयाभार्यासाकरालनिरीक्षणा ॥ ३१ ॥ मनागतीतंभूपालतस्याश्चप्रथमंवयः ॥ तादृग्रूपाहिमेभार्यासत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३२ ॥ राजोवाच ॥ अलंते ब्राह्मणतयाभार्यामन्यांददामिते॥सुखायभार्याकल्याणीदुःखहेतुर्हितादृशी ॥३३ ॥ अल्पाकुरूपताविप्रकारणंशीलमुत्तमम् ॥ रूपशीलविहीनायात्याज्याते न्येनसाद्धता ।। ३४।। ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ रक्ष्याभार्यामहीपालइतिचश्रुतिरुत्तमा ॥ भार्यायांरक्ष्यमाणायांप्रजाभवतिरक्षिता ॥ ३५ ॥ आत्माहिजायतेतस्य सारक्ष्यातोनरेश्वर ॥ प्रजायांरक्ष्यमाणायामात्माभवतिरक्षितः ॥ ३६ ॥ तस्यामरक्ष्यमाणायांभवितावर्णसङ्करः ॥ सपातयेन्महीपालपूर्वान्स्वर्गादधः पितॄन् ॥ ३७ ॥ (अनुज्ञायगुरूंराजन्दत्त्वान्यांजातवेदसे ॥ ३८ ॥ समिधंतुमयाभार्यावृतेयंकर्कशायतः ॥ कथमेतांविहायान्यभार्ययासहसंचरे ॥ ३९ ॥

है, इस कारण करूप और दुःशील भार्याको सम्यकप्रकार त्याग करनाही उचित है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणने कहा हे महीपाल ! " भार्या सम्यक्प्रकार रक्षणीय है " यह श्रुति मैं जानता हूं भार्याकी रक्षा करनेसे सन्तानकी रक्षा होती है ॥ ३५ ॥ हे नरेश्वर ! आत्माही पुत्ररूपसे भार्याके गर्भमें जन्म ग्रहण करता है इसी कारण सन्तानकी रक्षा करनेसे आत्माकीही रक्षा होती है ॥ ३६ ॥ अतएव भार्याकी सम्यक्प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये । हे महीपते ! उस भार्याकी भलीभाँति रक्षा न करनेसे तत्काल वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती, है, वह पूर्व पितरोंको स्वर्गसे नीचे गिराता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! गुरुजनोंकी अनुज्ञासे अग्निके समक्षमें ॥ ३८ ॥ यह कर्कश समिधा भार्या मुझको वरी गई है अतएव इसको छोड़कर किसप्रकार अन्य स्त्रीके साथ मेल करूं ? ॥ ३९ ॥

जिसकारण कि ऐसे आचरणसे मनुष्योंको गृहधर्म और शाश्वतब्रह्म प्राप्त होता है इससे पूर्व स्त्रीके साथ धर्म करता हुआ गृहस्थी दुःखी नहीं होता है ॥ ४० ॥ और उसको छोडकर जो क्रिया करता है उसका उसको फल प्राप्त नहीं होता जो शुभाअग्निके साथ घर लाईगई है ॥४१॥ धर्मके ग्रहणमें वह पहलीही प्रशंसाके योग्य है उस शठाके त्यागसे वर्णसंकर उत्पन्न होनेकी संभावना है ॥ ४२ ॥ भार्याविहीन होनेसे मेरे धर्मकी प्रतिदिन हानि होती है, इस प्रकार नित्य क्रिया कलापके नष्ट होनेपर इससे भी मुझको पतित होना पड़ेगा ॥४३॥ हे पृथ्वीनाथ !उसी भार्याके गर्भसे मेरे जो संतान होगी, वह आपको धर्मपूर्वक छठाँ भाग देगी ॥ ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! मैं इन्हीं सब कारणोंसे कहता हूं कि मेरी हरीहुई पत्नीको ला दीजिये, क्यों कि आपही हमारी रक्षाके लिये नियुक्त हैं ॥४५॥ मार्कण्डेयजी

गृह्यधर्मोयतोब्रह्मप्राप्यतेशाश्वतंनरैः ॥ पूर्वोढयातुधर्मेणगृहीकुर्वन्नसीदति ॥ ४० ॥ त्यक्त्वातांचक्रियांकुर्वन्नैवकर्मफलंलभेत् ॥ अग्निनासहयानूनंसा जगामगृहंशुभा ॥ ४१ ॥ धर्मस्यग्रहणेसातुपूर्वोढैवप्रशस्यते ॥ शठायाचारणात्तस्याजायतेवर्णसङ्करः ॥ ४२ ॥) धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्यभवेन्मम ॥ नित्यक्रियाणांविभ्रंशात्सचापिपतनायमे ॥ ४३ ॥ तस्यांचपृथिवीपालभवित्रीममसन्ततिः ॥ तवषड्भागदात्रीसाभवित्रीधर्महेतुकी ॥ ४४ ॥ तदेतत्तेमयाख्यातापत्नीयामेहृताप्रभो ॥ तांसमानयरक्षायांभवानधिकृतोयतः ॥४५॥ मार्कण्डेयउवाच॥ ॥ सतस्यैवंवचः श्रुत्वाविमृष्यचनरेश्वरः ॥ सर्वोपकरणैर्युक्तमारुरोहमहारथम् ॥४६॥ इतश्चेतश्चतेनासौपरिवभ्राममेदिनीम् ॥ ददर्शचमहारण्येतापसाश्रममुत्तमम् ॥ ४७ ॥ अवतीर्यचतत्रासौ प्रविश्यददृशेमुनिम् ॥ कौश्यांवृष्यांसमासीनंज्वलन्तमिवतेजसा ॥ ४८ ॥ सदृष्ट्वानृपतिंप्राप्तंसमुत्थायत्वरान्वितः ॥ संमान्यस्वागतेनैवशिष्यमाहार्घ्यमानय ॥ ॥ ४९ ॥ तमाहशिष्यःशनकैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्यकिंमुने ॥ तदाज्ञापयसंचिन्त्यतवाज्ञांहिकरोम्यहम् ॥ ततोऽवगतवृत्तान्तोभूपतेस्तस्यसद्द्विजः ॥ सम्भाषासनदानेनचक्रेसम्मानमात्मवान् ॥ ५० ॥

बोले—महाराज उत्तम, उक्त ब्राह्मणके यह वचन सुन कछकाल चिन्ताकर सब सामग्रीसे युक्त एक महारथमें चढ़े ॥ ४६ ॥ राजाने उस रथमें चढ़कर इधर उधर पृथ्वी भ्रमण करते करते महावनमें एक अतिउत्तम तापसाश्रम देखा ॥ ४७ ॥ वहाँ रथसे उतर,आश्रममें प्रवेशकर कुशासनपर विराजमान अपने तेजसे जलतीहुई अग्निकी समान दीप्यमान एक मुनिको देखा ॥ ४८ ॥ राजाको आयाहुआ देखकर मुनि शीघ्र उठे, और अत्यन्त सन्मानके सहित उनका स्वागत पूछकर तत्काल शिष्यसे कहा "अर्घ्य लाओ" ॥ ४९ ॥ यह सुनकर शिष्यने अत्यन्त मृदुस्वरसे कहा "इन राजाको अर्घ्य देना उचित है वा नहीं यह आप विचार कर आज्ञा दीजिये, आपकी आज्ञा मैं अभी पालन करूंगा" अनन्तर उन आत्मवान् मुनिने समस्त वृत्तान्त जानकर केवल संभाषण और आसन प्रदानद्वाराही राजाका सन्मान

किया॥ ५०॥ ऋषिने कहा हे नृप ! आप उत्तानपादके पुत्र उत्तम हैं; यह मैं जानताहूँ, आप किसलिये यहाँ आये हैं और आपका अभिलाषित विषय क्या है? ॥ ५१॥ राजा बोले हे मुने ! कोई अज्ञातमनुष्य ब्राह्मणके घरसे उसकी भार्या हरण करके ले गया है, उस द्विजपत्नीको खोजनेके निमित्तही मैं यहाँ आया हूं ॥ ५२ ॥ हे भगवन् ! मैं प्रणत होकर आपसे जो पूछता हूं "घर आया हुआ मनुष्य कृपा करनेयोग्य है" अनुग्रहपूर्वक यह विचार कर उसके कहनेकी अनुमति दीजिये ॥ ५३ ॥ ऋषिने कहा हे पृथ्वीपाल ! पूछनेकी बात आप निःशंक होकर पूछिये, यदि मेरे कहनेकी होगी, तो मैं आपसे वह विषय यथार्थही कहूंगा ॥ ५४ ॥ राजा बोले हे मुने ! आपके घर आनेपर प्रथम देखतेही आप मुझको अर्घ्य देनेमे उद्यत हुए थे, किन्तु फिर किस निमित्त उससे निवृत्त हुए अर्थात् अर्घ्य नहीं दिया

ऋषिरुवाच ॥ ॥ किंनिमित्तमिहायातोभवान्किंतेचिकीर्षितम् ॥ उत्तानपादतनयंवेद्मित्वामुत्तमंनृप ॥ ५१ ॥ राजोवाच ॥ ब्राह्मणस्यगृहाद्भार्य्या केनाप्यपहृतामुने ॥ अविज्ञातस्वरूपेणतामन्वेष्टुमिहागतः ॥ ५२ ॥ पृच्छामियत्तेतन्मेत्वंप्रणतस्यानुकम्पया ॥ अभ्यागतस्याथगृहंभगवन्वक्तुमर्हसि ॥ ५३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पृच्छमामवनीपालयत्प्रष्टव्यमशङ्कितः ॥ वक्तव्यंचेत्तवमयाकथयिष्यामितत्त्वतः ॥ ५४ ॥ राजोवाच॥ ॥ गृहागतायमह्यंप्रथमेदर्शनेमुने ॥ त्वयासमुद्यतोदातुंकथंसोऽर्घ्योनिवर्तितः ॥ ५५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ त्वद्दर्शनेनरभसादाज्ञप्तोऽयंमयानृप ॥ यदातदाहमेतेनशिष्येण प्रतिबोधितः ॥ ५६ ॥ एषवेत्तिजगत्यत्रमत्प्रसादादनागतम् ॥ यथाहंसमतीतंचवर्त्तमानंचसर्वतः ॥५७॥ आलोच्याज्ञापयेत्युक्तेततोज्ञातंमयापितत् ॥ ततो नदत्तवानर्घ्यमहंतुभ्यंविधानतः ॥ ५८ ॥ सत्यंराजंस्त्वमर्घ्यार्हःकुलेस्वायम्भुवस्यच ॥ तथापिनार्घ्ययोग्यंत्वांमन्यामोवयमुत्तमम् ॥ ५९ ॥

॥५५॥ ऋषिने कहा हे नृप! आपको देखतेही उत्सुकताके वश होकर ज्योंही मैंने अर्घ्य प्रदान करनेकी आज्ञादी, उसी समय इस शिष्यने मुझको समझाया ॥ ५६ ॥ मैं जिस प्रकार अतीत और वर्त्तमान सब विषय, प्रत्यक्ष हों वा गुप्त हों भलीभाँति जानता हूं, इसीप्रकार यह शिष्य भी मेरे प्रसादसे जगत्का समस्त भूत, भविष्य और वर्त्तमान विषय जानता है॥ ५७॥ इस शिष्यके "विचार करके आज्ञा दो" यह कहनेपर मैंने सब बात जानली, इसी कारण मैंने आपको यथा विधानसे अर्घ्य नहीं दिया ॥ ५८ ॥ हेराजन्! आपने स्वायंभुव मनुके कुलमें जन्म ग्रहण किया है सुतरां आप अर्घ्यके योग्य हैं, यह सत्य है, किन्तु तो भी मैं आपको श्रेष्ठ अर्घ्यके योग्य नहीं विचारता ॥ ५९ ॥

राजा बोले–हे ब्रह्मन् ! ज्ञानसे वा अज्ञानसे मैंने ऐसा क्या कार्य कियाहै, जिससे मैं नवीन आया हुआ होकर भी आपके निकट अर्घ्ययोग्य नहीं हुआ ॥ ६० ॥ ऋषिने कहा हेनृप! आपने जो अपनी पत्नीको वनमें त्याग दिया है, वह क्या इस समय भूल गयेहो ? जान लीजिये कि उस पत्नीके संग संपूर्ण धर्मकोभी आपने त्याग दिया है ॥ ६१ ॥ और देखो, एक पक्षतक भी जिसकी क्रियाकी हानि हो वह मनुष्य उस हानिके कारण जनसमाजमें स्पर्श करनेके योग्य नहीं रहता और फिर तुम्हारी तो वर्षोंसे नित्य कर्मकी हानि है और भार्याके विना आपके नित्य कर्मकी हानि होती है, इससे आपकी अर्घ्ययोग्यता कितनी है, सो आप विचार करके देखिये ॥ ६२ ॥ हे नरेश्वर ! स्वामी जिस किसी प्रकार चरित्रयुक्त क्यों न हो, पतिका अनुवर्ती होना जिसभाँति पत्नीको उचित है, ऐसेही भार्याके

राजोवाच ॥ किंकृतंहिमयाब्रह्मञ्ज्ञानादज्ञानतोऽपिवा ॥ येनत्वत्तोऽर्घ्यमर्हामिनाहमभ्यागतश्चिरात्॥६०॥ऋषिरुवाच ॥ ॥ किंविस्मृतंतेयत्पत्नीत्वयात्यक्ता चकानने ॥ परित्यक्तस्तयासार्द्धंत्वयाधर्मोनृपाखिलः ॥६१॥ पक्षेणकर्मणोहान्याप्रयात्यस्पृश्यतांनरः ॥ किमत्रवार्षिकीयस्यहानिस्तेनित्यकर्मणः ॥ ६२ ॥ पत्न्यानुकूलयाभाव्यंयथाशीलेऽपिभर्त्तरि ॥ दुःशीलापितथाभार्य्यापोषणीयानरेश्वर ॥६३॥ प्रतिकूलाहिसापत्नीतस्यविप्रस्ययाहृता ॥ तथापिधर्मकामोऽसौत्वामुद्द्योतितवान्नृप ॥ ६४ ॥ चलतःस्थापयस्यन्यान्स्वधर्मेषुमहीपते ॥ त्वांस्वधर्माद्विचालितंकोऽपरःस्थापयिष्यति ॥६५॥ (द्वीपिकडंगरीयेवाराज्ञिचान्यायवर्तिनि ॥ पापकृत्सुचविद्वत्सुनियंताजंतुरत्रकः ॥) मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ विलक्ष्यःसमहीपालइत्युक्तस्तेनधीमता ॥ तथेत्युक्त्वाचपप्रच्छहृतांपत्नीं द्विजन्मनः ॥ ६६ ॥ भगवन्केननीतासापत्नीविप्रस्यकुत्रवा ॥ अतीतानागतंवेत्तिजगत्यवितथंभवान् ॥ ६७ ॥

दुःशील होनेपर भी पतिको पत्नीका भरण पोषण करना अवश्य कर्त्तव्य है॥६३॥हे नृप ! देखो, ब्राह्मणकी जो पत्नी हरी गई है, वह इससे प्रतिकूल होनेपर भी केवल कर्म–कामनावान् होनेके कारण यह ब्राह्मण उसका इतना खोज करता है॥६४॥हे महीपते ! जो धर्मसे भ्रष्ट होता है, आपही उसको स्वधर्ममें स्थापन करते हैं किन्तु जब आप स्वयं स्वधर्मसे विचलित होंगे, तब आपको कौन उस में प्रवृत्त करसकेगा॥६५॥(जंगली गेंडके खेतके धान्य भक्षण करके अपना निर्वाहकरते रहते वा राजाके अन्यायी होनेपर, और विद्वानोंके पापकरने पर इस संसारमें फिर कौन जीव शिक्षक होगा?) मार्कण्डेयजी बोले–बुद्धिमान् ऋषिके इस प्रकार कहनेपर महीपति लज्जित हुए और वह सब स्वीकार कर हरीहुई ब्राह्मणकी पत्नीका वृत्तान्त पूछने लगे ॥ ६६ ॥ हे भगवन् ! जगतकी संपूर्ण अतीत और भविष्यत् घटना आप यथार्थ रूपसे

जानते हैं, अब उस ब्राह्मणकी स्त्रीको किसने हरण किया है और कहाँ रक्खा है? आप अनुग्रहपूर्वक बताइये ॥ ६७ ॥ ऋषिने कहा—हे भूपते ! उस ब्राह्मणीको अद्रि पुत्र बलाक—नामक राक्षसने हरण किया है,आप अभी उसको उत्पलावतनामक वनमें देखेंगे॥६८॥प्रस्थान कीजिये।द्विजोत्तमको उसकी भार्याके सहित शीघ्र मिलाइये जिससे उक्तब्राह्मणको आपकी समान दिन दिन पापका भागी होना न पड़े॥६९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तमे मन्वन्तरे ऋषिदर्शनं नाम षट्षष्टितमो ऽध्यायः॥६६॥मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर उक्त महर्षिको प्रणामपूर्वक अपने रथमें चढ़ राजा उत्तमने उनके बताये उत्पलावत नामक वनमें पहुँकर ॥ १ ॥ देखा कि पतिने जैसा जैसा स्वरूप बताया है.उसीके अनुसार रूपशालिनी द्विजपत्नी श्रीफल भक्षण कर रही है ॥२॥ उसको देखकर पूछा हे भद्रे ! तुम किस प्रकार इस वनमें

ऋषिरुवाच ॥ ॥ तांजहाराद्रितनयोबलाकोनामराक्षसः ॥ द्रक्ष्यतेचाद्यतांभूपउत्पलावतकेवने ॥ ६८ ॥ गच्छसंयोजयाशुत्वंभार्ययाहिद्विजोत्तमम् ॥ मापापास्पदतांयातुत्वमिवासौदिनेदिने ॥ ६९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऔत्तमेमन्वन्तरेऋषिदर्शनंनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अथारुरोहस्वरथंप्रणिपत्यमहामुनिम् ॥ तेनाख्यातंवनं[illegible]यथावुत्पलावतम् ॥ १ ॥ यथाख्यातस्वरूपांचभार्य्यांभर्त्राद्विजस्यताम् ॥ भक्षयन्तीं ददर्शाथश्रीफलानिनरेश्वरः ॥ २ ॥ पप्रच्छचकथंभद्रेत्वमेतद्वनमागता ॥ स्फुटंब्रवीहिवैशालेरपिभार्य्यासुशर्मणः ॥ ३ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ सुताहमतिरात्रस्यद्विजस्यवनवासिनः ॥ पत्नीविशालपुत्रस्ययस्यनामत्वयोदितम् ॥ ४ ॥ साहंहृताबलाकेनराक्षसेनदुरात्मना ॥ प्रसुप्ताभवनस्यान्तर्भ्रातृमातृवियोजिता ॥ ५ ॥ भस्मीभवतुतद्रक्षोयेनास्म्येवंवियोजिता ॥ मात्राभ्रातृभिरन्यैश्चतिष्ठाम्यत्रसुदुःखिता ॥ ६ ॥ अस्मिन्वनेऽतिगहनेयेनानीयाहमुज्झिता ॥ नवेद्मिकारणंकिंतन्नोपभुङ्क्तेनखादति ॥ ७ ॥

आई हो ? और तुम विशालके पुत्र सुशर्मानामक ब्राह्मणकी भार्या हो वा नहीं, सो स्पष्ट कहो ॥ ३ ॥ ब्राह्मणीने कहा मैं वनवासी अतिरात्रनामक ब्राह्मणकी कन्या और आपने जिन विशालपुत्रका नाम लिया, मैं उन्हींकी पत्नी हूं ॥ ४ ॥ मैं घरमें सोरही थी. इसी बीचमें दुरात्मा राक्षस भ्राता मातासे वियोग कराकर मुझको हर लाया है ॥ ५ ॥ जननी, भ्राता और अन्य सब आत्मीय पुरुषोंसे अलग होकर अब मैं दुःखित चित्तसे यहाँ स्थिति करती हूं । जिसने मेरी यह दशा की है, वह राक्षस भस्म हो ॥ ६ ॥राक्षसने मुझको इस निर्जन गहन वनमें लाकर रक्खा है नहीं जानती कि वह किस

कारण मुझको भोजन वा उपभोग नहीं करता? ॥ ७ ॥ राजा बोले–हे द्विजनन्दिनी ! तुम्हारे भर्तानेही मुझको यहाँ भेजा है, क्या तुम जानती हो कि वह राक्षस तुमको यहाँ छोड़ कर इस समय कहाँ गया है ॥ ८ ॥ ब्राह्मणीने कहा–वह राक्षस इस वनकेही प्रान्त भागमें स्थिति करता है यदि उसका भय न करो, तो प्रवेश करके देखो वह दिखाई देगा ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–ब्राह्मणीके मार्ग दिखाने पर राजाने वहाँ प्रवेश करके परिवारसे घिरे हुए उस राक्षसको देखा ॥ १० ॥ अनन्तर राजाको देखतेही शीघ्र उठकर दूरसेही मस्तक द्वारा भूमिस्पर्श करता हुआ वह राक्षस उनके चरणोंमें उपस्थित होकर कहने लगा ॥ ११ ॥ राक्षसने कहा मेरे प्रति महाराजका महा अनुग्रह है कि महाराज मेरे घर आये हैं, मैं आपके राज्यमें वास करता हूं, मुझको आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूं ! ॥ १२ ॥ यह अर्घ्य ग्रहण

राजोवाच ॥ अपितज्ज्ञायतेरक्षस्त्वामुत्सृज्यक्ववैगतम् ॥ अहंभर्त्रातवैवात्रप्रेषितोद्विजनन्दिनि ॥ ८ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ ॥ अस्यैवकाननस्यान्तःसतिष्ठतिनिशाचरः ॥ प्रविश्यपश्यतुभवान्नबिभेतितितोयदि ॥ ९ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ प्रविवेशततःसोथतयावर्त्मनिदर्शिते ॥ ददृशेपरिवारेणसमवेतंचराक्षसम् ॥ १० ॥ दृष्टमात्रेततस्तस्मिस्त्वरमाणःसराक्षसः ॥ दूरादेवमहींमूर्ध्नास्पृशन्पादान्तिकंययौ ॥ ११ ॥ राक्षसउवाच ॥ ॥ ममात्रागच्छतागेहंप्रसादस्तेमहान्कृतः ॥ प्रशाधिर्किंकरोम्यषवसामिविषयेतव ॥ १२ ॥ अर्घ्यंचेमंप्रतीच्छत्वंस्थीयतांचेदमासनम् ॥ वयंभृत्याभवान्स्वामीदृढमाज्ञापयस्वमाम् ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ ॥ कृतमेवत्वयासर्वंसर्वामेपचितिःकृता ॥ किमर्थंब्राह्मणवधूस्त्वयानीतानिशाचर ॥ १४ ॥ नेयंसुरूपासन्त्यन्याभार्य्यार्थंचेद्धृतात्वया ॥ भक्ष्यार्थंचेत्कथंनात्तात्वयैतत्कथ्यतांमम ॥ १५ ॥ राक्षस उवाच ॥ ॥ नवयंमानुषाहाराअन्येतेनृपराक्षसाः॥सुकृतस्यफलंयत्तुतदश्नीमोवयंनृप ॥ १६ ॥ (सुकृतस्यफलंयत्तुतत्तेवक्ष्याम्यहंनृप ॥ राक्षसींयोनिमापन्नःक्रूरांलोकभयंकरीम् ॥) स्वभावंचमनुष्याणांयोषितांचविमानिताः ॥ नामिपंचसमश्नीमोनवयंजन्तुखादकाः ॥ १७ ॥

करो, इस आसनपर बैठो आप प्रभु और मैं आपका सेवक हूं, आप संकोचरहितचित्तसे मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १३ ॥ राजा बोले हे निशाचर ! तैंने कर्त्तव्य कार्य समस्तही संपन्न किया है,और यथोचित अतिथिसत्कार भी किया है,किन्तु ब्राह्मणकी वधूको किसनिमित्त ले आया है ॥ १४ ॥ " भार्या बनानेके लिये हरण किया है " यह भी कैसे कहूं, क्यों कि यह ब्राह्मणपत्नी रूपवती नहीं है,सुतरां तू ऐसी रूपवती भार्याके होते इसको क्यों लाता, और यदि भक्षण करनेके अर्थ लाया है, तो किस अर्थ भक्षण नहीं करता? यह तू मुझको कह ॥ १५ ॥ राक्षस बोला हे नृप ! मैं मनुष्यभोजी राक्षस नहीं हूं–वह राक्षस अलग हैं, पुण्यका जो फल है, मैं वही भोजन करता हूं ॥ १६ ॥ (हे राजन् ! जो कुछ पुण्यका फल है, वह आपसे कहता हूं, क्रूर और संसारको भय देनेवाली

राक्षसयोनिको प्राप्त हुआ) सन्मानित वा अपमानित जो क्मेई क्यों न हो, सदा मैं नर नारियोंका स्वभाव भोजन करता हूं, मैं जन्तु खानेवाला नहीं हूं ॥ १७ ॥ सुतरां क्षमागुणयुक्त स्वभाव भोजन करनेसे मनुष्य क्रोधित होते हैं, और जब दुष्ट स्वभाव भोजन करता हूं तब वह गुणवान् होते हैं ॥ १८ ॥ हे भूपाल ! मेरी अप्सराओंकी समान राक्षसी भार्या अनेक हैं, उनके रहते मानुषीकी अभिलाषा क्यों होगी? ॥ १९ ॥ राजा बोले हे निशाचर ! यदि यह ब्राह्मणकी पत्नी तुम्हारे भोगने योग्य वा भक्षण करने योग्य नहीं थी, तो किस कारण ब्राह्मणके घरमें घुसकर इसको चुराया ? ॥ २० ॥ राक्षसने कहा—हे नृप ! वह ब्राह्मण श्रेष्ठ मंत्रज्ञ हैं, वह प्रायः सब यज्ञोंमें गमनपूर्वक रक्षोघ्नमंत्र पाठ करके मुझको उच्चाटित करते हैं ॥ २१ ॥ जब ब्राह्मण इस प्रकार मंत्रद्वारा मेरा उच्चाटन

यदस्माभिर्नृणां क्षान्तिर्भुक्ताकुध्यन्तितेतदा ॥ भुक्तेदुष्टेस्वभावेचगुणवन्तोभवन्तिच ॥ १८ ॥ सन्तिनःप्रमदाभूपरूपेणाप्सरसांसमाः ॥ राक्षस्यस्तासुतिष्ठत्सुमानुषीषुरतिःकथम्॥१९॥राजोवाच॥ ॥यद्येपानोपभोगायनाहारायनिशाचर॥गृहंप्रविश्यविप्रस्यतत्किमेषाहृतात्वया॥२०॥राक्षसउवाच॥ ॥मन्त्रवित्सद्विजश्रेष्ठोयज्ञेयज्ञेगतस्यमे ॥ रक्षोघ्नमन्त्रपठनात्करोत्युच्चाटनंनृप॥२१॥ वयंबुभुक्षितास्तस्यमन्त्रोच्चाटनकर्मणा॥क्वयामःसर्वयज्ञेषुसऋत्विग्भवतिद्विजः ॥ ॥ २२ ॥ ततोऽस्माभिरिदंतस्यवैकल्यमुपपादितम् ॥ पत्न्याविनापुमानिज्याकर्मयोग्योनजायते ॥२३॥ मार्कण्डेयउवाच॥ ॥ वैकल्योच्चारणात्तस्यब्राह्मणस्यमहामतेः ॥ ततःसराजातिभृशंविषण्णःसमजायत॥ २४॥ वैकल्यमेषविप्रस्यवदन्मामेवनिन्दति ॥ अनर्हमर्घस्यचगांसोऽप्याहमुनिसत्तमः ॥ २५ ॥ वैकल्यंतस्यविप्रस्यराक्षसोऽप्याहमेयथा ॥ अपत्नीकतयासोऽहंसङ्कटंमहदास्थितः ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंचिन्तयतस्तस्यपुनरप्याहराक्षसः ॥ प्रणामनम्रोराजानंबद्धांजलिपुटोमुने ॥ २७ ॥

करते हैं, तब मैं भूंखा होकर कहाँ जाऊं ? वह सब यज्ञोंमें ऋत्विक् होते हैं ॥ २२ ॥ इस लिये उनके चित्तमें उद्वेग उत्पन्न करायाहै, क्योंकि पत्नीके विना पुरुष कभी यज्ञ कार्यमें समर्थ नहीं होसकता ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले "महामते ! ब्राह्मणके चित्तमें उद्वेग उत्पन्न कराया" राक्षसका कहा यह वचन सुनतेही राजा अत्यन्त विषादको प्राप्त हुये ॥ २४ ॥ और विचारा कि "विप्रके चित्तमें विकलता उत्पन्न हुई है" यह कहकर राक्षस मेरीही निन्दा करता है इसके पहिले उन मुनिसत्तमने भी मुझको इसी निमित्त अर्घ्यके अयोग्य कहा है ॥ २५॥ और अब यह राक्षस भी "मेरीही समान पत्नीविहीन होकर उस ब्राह्मणके चित्तमें उद्वेग उत्पन्न हुआ है" कहताहै ? अतएव पत्नीविहीन होकर घोर संकटमें पड़ा हूं ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! राजा इस प्रकार चिन्ता करते थे, इसी

समयमें राजाको नम्र भावसे प्रमाणकर, हाथ जोड़ वह राक्षस फिर कहने लगा॥२७॥हे नरेन्द्र! मैं आपके राज्यकी प्रजा हूं अतएव इस प्रणत भृत्यको आज्ञा देकर अनुग्रह कीजिये॥२८॥राजाने कहा हे निशाचर!तुमने जो कहा कि,"मैं स्वभाव भोजन करताहूं"अतएव मैं जिस कार्यका प्रार्थी हूं,सो कहता हूं सुनो॥२९॥अब तुम इस ब्राह्मणीकी दुश्चरित्रता (खुटाई) भोजन करो । क्योंकि तुम्हारे द्वारा इसका दुःस्वभाव भक्षित होनेपर यह विनीत होगी ॥ ३० ॥ इसके पीछे हे निशाचर ! यह जिसकी भार्या है उसीके घर इसको रख आओ । इस प्रकार करनेसे तुम्हारे द्वारा मेरा अतिथिसत्कार हो जायगा ॥ ३१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर उस राक्षसने अपनी मायाके बलसे उस ब्राह्मणीके अन्तरमें प्रवेश करके राजाकी आज्ञानुसार निजशक्तिद्वारा ब्राह्मणीका दुःस्वभाव भक्षण कर लिया ॥ ३२॥ तब अतिप्रचंड दुःस्व

नरेन्द्राज्ञाप्रदानेनप्रसादःक्रियतांमम ॥ भृत्यस्यप्रणतस्येत्थंयुष्मद्विषयवासिनः ॥ २८ ॥ राजोवाच ॥ ॥ स्वभावंवयमश्नीमस्त्वयोक्तंयन्निशाचर ॥ तदर्थिनोतयंयेनकार्येणशृणुतन्मम ॥ २९ ॥ अस्यास्त्वयावब्राह्मण्यादौःशील्यमुपभुज्यताम् ॥ येनत्वयात्तदौःशील्यातद्विनीताभवेदियम् ॥ ३० ॥ नीयतांयस्यभार्य्येयंतस्यवेश्मनिशाचर ॥ अस्मिन्कृतेकृतंसर्वंगृहमभ्यागतस्यमे ॥ ३१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसराक्षसस्तस्याःप्रविश्यान्तःस्वमायया ॥ भक्षयामासदौःशील्यंनिजशक्त्यानृपाज्ञया ॥ ३२ ॥ दौःशील्येनातिरौद्रेणपत्नीतस्यद्विजन्मनः ॥ तेनसासम्परित्यक्तातमाहजगतीपतिम् ॥ ३३ ॥ स्वकर्मफलपाकेनभर्तुस्तस्यमहात्मनः ॥ वियोजिताहंतद्धेतुरयमासीन्निशाचरः ॥ ३४ ॥ नास्यदोषोनवातस्यममभर्तुर्महात्मनः ॥ ममैवदोषोनान्यस्यस्वकृतंह्युपभुज्यते ॥ ३५ ॥अन्यजन्मनिकस्यापिविप्रयोगःकृतोमया ॥ सोऽयंमयाप्युपगतःकोदोषोऽस्यमहात्मनः ॥ ३६ ॥ राक्षसउवाच ॥ ॥ प्रापयामितवादेशादिमांभर्तृगृहंप्रभो ॥ यदन्यत्करणीयंतेतदाज्ञापयपार्थिव ॥३७॥ राजोवाच ॥ अस्मिन्कृतेकृतंसर्वंत्वयामेरजनीचर॥आगन्तव्यंचतेवीरकार्य्यकालेस्मृतेनमे ॥३८॥

भावसे छूटकर वह द्विजपत्नी राजासे कहने लगी ॥ ३३ ॥ मैं अपने कर्म फलके कारण महात्मा स्वामीसे वियोगको प्राप्त हुई थी,यह निशाचर उसका केवल कारण मात्र है ॥ ३४ ॥ इस राक्षसका दोष नहीं और मेरे उन महात्मा पतिका भी दोष नहीं है दोष मेरे अतिरिक्त और किसीका नहीं है, क्यों कि अपने किये कर्मका फल अवश्यही भोगना पड़ता है ॥३५॥ जानपड़ता है, मैंने अन्य जन्मम किसीकावियोग कराया था,इसी कारण मेरा इन स्वामीसे वियोग हुआ,इस महात्मा निशाचरका क्या दोष है ? ॥ ३६ ॥ राक्षस बोला—हे प्रभो ! आपकी आज्ञासे अभी इसके पतिके घर इसको लिये जाता हूं । हे राजन् ! आज्ञा दीजिये अब आपका और क्या कार्य करना होगा ? ॥३७॥ राजाने कहा हे रजनीचर ! इस कार्यके करनेसे तुमने प्रायः मेरे समस्तही कार्य किये,इसके अतिरिक्त हे वीर ! कार्यके समय

तुम स्मरण करनेसे उपस्थित होओ ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसके पीछे राक्षस यह बात स्वीकार करके दुःस्वभाव नष्ट होनेके कारण शुद्ध हुई उस ब्राह्मणकी पत्नीको उसके पतिके घर लेगया ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरे ब्राह्मणभार्यानयनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—राजा उस ब्राह्मणकी पत्नीको उसके पतिके घर भेजकर लम्बेलम्बे श्वांस लेते हुए चिन्ता करने लगे कि, अब क्या करनेसे भला हो? ॥ १ ॥ उन महामना महर्षिने मुझसे “ पत्नीवियोगके कारण तुम अर्घ्य पानेके उपयुक्त पात्र नहीं हो ” यह विषादजनक वचन कहा है और इस निशाचरने भी विप्रको लक्ष्य करके इसी प्रकार पत्नीवियोग—जनित वैकल्यका विषय कहा ॥ २ ॥ मैंने अपनी पत्नीको त्याग किया है, अब मैं क्या करूं या मैं उन ज्ञानदृष्टिसंपन्न मुनि

मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तथेत्युक्त्वातुतद्रक्षस्तामादायद्विजाङ्गनाम् ॥ निन्येभर्तृगृहंशुद्धांदौःशील्यापगमात्तदा ॥ ३९ ॥ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे ब्राह्मणभार्यानयनंनामसप्तषष्टितमोध्यायः ॥ ६७ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तांप्रेषयित्वाराजापिस्वभर्तृगृहमंगनाम् ॥ चिन्तयामासनिःश्वस्यकिमत्रसुकृतंभवेत् ॥ १ ॥ अनर्घयोग्यताकष्टंसयामाहमहामनाः ॥ वैकल्यंविप्रमुद्दिश्यतथाहायंनिशाचरः ॥ २ ॥ सोऽहंकथंकरिष्यामित्यक्तापत्नीमयाहिसा॥ अथवाज्ञानदृष्टिंतंपृच्छामिमुनिसत्तमम् ॥३॥ संचिन्त्येत्थंसभूपालःसमारुह्यचतंरथम् ॥ ययौयत्रसधर्मात्मात्रिकालज्ञोमहामुनिः ॥४ ॥ अवरुह्यरथात्सोऽथतंसमेत्यप्रणम्यच ॥ यथावृत्तंसमाचख्यौराक्षसेनसमागमम् ॥ ५ ॥ ब्राह्मण्यादर्शनंचैवदौःशील्यापगमंतथा ॥ प्रेषणंभर्तृगेहेचकार्यमागमनेचयत् ॥ ६॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ ज्ञातमेतन्मयापूर्वंयत्कृतंतेनराधिप ॥ कार्यमागमनेचैवमत्समीपेतवाखिलम् ॥७॥ प्रष्टुमामिहकिंकार्यमयेत्युद्विग्नमानसः॥ त्वमागतोमहीपालशृणुकार्यंचयत्त्वया ॥ ८ ॥

श्रेष्ठसे पूछूँ ॥ ३ ॥ इस प्रकार चिन्ता करके वह राजा रथपर चढ़ जहाँ वह त्रिकालज्ञ धर्मात्मा महामुनि वास करते थे, वहाँ गये ॥ ४ ॥ फिर उन्होंने रथसे उतर कर उनके समीप उपस्थित हो उनको प्रणामपूर्वक, राक्षसका समागम ब्राह्मणीका दर्शन, उसके दुष्टस्वभावका नाश, उसको पतिके घर भेजना और अपने पुनर्वार आनेका उद्देश्य आद्योपान्त वर्णन किया ॥ ५–६ ॥ ऋषि बोले—हे नराधिप ! आपका किया कार्य, और मेरे समीप आपके आनेका उद्देश्य, मैंने यह सब पहिले ही जान लिया है ॥ ७ ॥ तो भी आप मुझसे स्वयं पूछे, यही उद्विग्न मनसे प्रतीक्षा करता था । हे महीपाल ! अब आपका कर्त्तव्य कार्य क्या है ? वह सुनिये ॥ ८॥

पत्नीही मनुष्योंकी धर्मार्थ काम साधनका प्रबल कारण है विशेष कर भार्यात्यागी धर्मको भी त्याग करते हैं ॥९॥ हे भूपते! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी पत्नी त्याग करके निज कार्यके अनुष्ठानमें समर्थ नहीं होते ॥ १० ॥ हे नृपते! आपने पत्नी त्याग कर अच्छा नहीं किया, जिसभाँति स्त्रीको पतिका त्याग नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार पतिको भी भार्याका त्याग करना उचित नहीं है ॥ ११ ॥ राजाने कहा "हे भगवन्! मैं क्या करूं यह पत्नी-परित्याग मेरे पूर्वजन्ममें किये कार्यका परिणाम है। मैं सदाही उसके प्रति अनुकूल था किन्तु वह मेरे प्रति कुछ भी अनुकूल नहीं थी, इसी कारण मैंने उसको त्याग दिया है ॥ १२ ॥ हे भगवन्! उसके वियोगकी यातनासे मेरा अन्तरात्मा भिन्न होता है और चित्त जलता है, इसी कारण उस पत्नीने जो जो अप्रिय आचरण किये

पत्नीधर्मार्थकामानांकारणंप्रबलंनृणाम् ॥ विशेषतश्चधर्मस्यसत्यक्तस्त्यजताहिताम् ॥ ९ ॥ अपत्नीकोनरोभूपनयोग्योनिजकर्मणाम् ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियो वापिवैश्यःशूद्रोऽपिवा नृप ॥ १० ॥ त्यजताभवतापत्नींनशोभनमनुष्ठितम् ॥ अत्याज्योहियथाभर्त्तास्त्रीणांभार्यातथानृणाम् ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ ॥ भगवन्किंकरोम्येषविपाकोममकर्मणाम् ॥ नानुकूलानुकूलस्ययस्मात्त्यक्तातततोमया ॥ १२ ॥ यद्यत्करोतितत्क्षान्तंदह्यमानेनचेतसा ॥ भगवंस्तद्वियो गातिविभींतेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥ साम्प्रतंतुवनेत्यक्तानवेद्मिक्वनुसागता ॥ भक्षितावापिविपिनेसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ नभ क्षितासाभूपालसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ॥ सात्वविप्लुतचारित्रासाम्प्रतंतुरसातले ॥ १५ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ सानीताकेनपातालमास्तेसाऽदूषिताकथम् ॥ अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ पातालेनागराजोऽस्तिप्रख्यातश्चकपोतकः ॥ तेनदृष्टात्वयात्यक्ताभ्रममाणामहावने ॥१७॥

वह सब क्षमा किये ॥ १३॥ किन्तु अब वनमें त्यागी हुई मेरी वह पत्नी कहां चली गई है, अथवा वनमें सिंह, व्याघ्र वा राक्षस उसको भक्षण कर गये, सो नहीं जानता" ॥ १४ ॥ ऋषि बोले-हे भूपाल! सिंह व्याघ्र वा निशाचर आदिने उसको भक्षण नहीं किया, इस समय आपकी वह पत्नी विशुद्ध चरित्रसे रसातलमें वास करती है ॥ १५ ॥ राजाने कहा-हे ब्रह्मन्! मेरी वह पत्नी किसके द्वारा रसातलमें पहुँची और किस प्रकारसे अदूषित होकर वहाँ वास करती है? यह अद्भुत विषय यथावत् वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ ऋषि बोले-हे राजन्! पातालमें कपोतक नामक विख्यात नागराज वास करते हैं, वह आपके द्वारा त्यागीहुई तुम्हारी उस रूपशालिनी युवती

भार्याको महावनमें भ्रमण करता देख, उसके प्रति अनुरागी हो अपना अभिप्राय प्रगटकर उसको पातालमें लेगये हैं ॥ १७-१८ ॥ हे महीपते ! उन बुद्धिमान् नागराजकी सुंदरी कन्याका नाम नन्दा है और उनकी भार्याका नाम मनोरमा है ॥ १९ ॥ उस नागकन्या नन्दाने इस सुंदरीको अपनी माताकी भविष्यत् सपत्नी देख अन्तःपुरमें अपने घरके भीतर ले जाकर छिपा रक्खा ॥ २० ॥ नागराज जब नन्दाके निकट उस सुन्दरीके लिये प्रार्थना करते, तब नन्दा उनको कुछ उत्तर नहीं देती, तदनन्तर नागराजने इस कन्यासे कहा "तू वाक्छक्तिहीन अर्थात् गूँगी होगी" ॥ २१ ॥ हे भूपते ! वह नागराजकी कन्या नन्दा पितासे इस प्रकार शापको प्राप्त हुई है और उन उरगेन्द्रके द्वारा पातालमें पहुँची हुई उस सतीको उनकी कन्याने पकड़ रक्खा है ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर राजाने परम हर्षको प्राप्त

सारूपशालिनीतेनसानुरागेणपार्थिव ॥ वेदितार्थेनपातालंनीतासायुवतीतदा ॥ १८ ॥ ततस्तस्यसुतासुभ्रूर्नन्दानाममहीपते ॥ भार्यामनोरमाचास्य नागराजस्यधीमतः ॥ १९ ॥ तयामातुःसपत्नीयंसाभवित्रीतिशोभना ॥ दृष्ट्वास्वगेहंसानीतागुप्ताचान्तःपुरेशुभा ॥ २० ॥ यदातुयाचितानन्दानददा तिनृपोत्तरम् ॥ मूकाभविष्यसीत्याहतदातांतनयांपिता ॥ २१ ॥ एवंशप्तासुतातेनसाचास्तेतत्रभूपते ॥ नीतातेनोरगेन्द्रेणधृतातत्सुतयासती ॥ २२ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोराजापरंहर्षमवाप्यतमपृच्छत ॥ द्विजवर्यंस्वदौर्भाग्यकारणेदयितांप्रति ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्सर्वलोक स्यमयिप्रीतिरनुत्तमा ॥ किन्नुतत्कारणंयेनस्वपत्नीनातिवत्सला ॥ २४ ॥ ममचासावतीवेष्टाप्राणेभ्योऽपिमहामुने ॥ साचमांप्रतिदुःशीलाब्रूहितत्कारणंद्विज ॥ ॥ २५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ पाणिग्रहणकालेत्वंसूर्यभौमशनैश्वरैः ॥ शुक्रवाचस्पतिभ्यांचतवभार्यावलोकिता ॥ २६ ॥ तन्मुहूर्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याःसोमसुतस्तथा । परस्परविपक्षौतौततःपार्थिवतेभृशम् ॥ २७ ॥ तद्गच्छत्वंस्वधर्मेणपरिपालयमेदिनीम् ॥ पत्नीसहायःसर्वाश्चकुरुधर्मवतीःक्रियाः ॥ २८ ॥

होकर उन द्विजश्रेष्ठसे अपने प्रति प्रियाके अप्रिय भावका कारण पूछा ॥ २३ ॥ राजाने कहा—हे भगवन् ! मेरे प्रति संपूर्ण मनुष्योंकी अत्युत्तम प्रीति है, किन्तु मेरी स्वीय पत्नी मुझमें अनुरक्त नहीं है, इसका क्या कारण है? ॥ २४ ॥ हे महामुने ! हे द्विजोत्तम ! मेरी वह पत्नी प्राणोंकी अपेक्षा प्रियतम होनेपर भी जिस कारण मेरे प्रति बुरा व्यवहार करती है, सो कहिये ॥ २५ ॥ ऋषि बोले—विवाहके समयमें आपके ऊपर रवि, मंगल और शनैश्चरकी दृष्टि थी और आपकी भार्याको शुक्र एवं बृहस्पति देख रहे थे ॥ २६ ॥ और उसी मुहूर्त्तमें आपकी पत्नीके चन्द्र और आपके बुध, यह परस्पर अत्यन्त विपक्ष थे ॥ २७ ॥ अब जाइये और स्वधर्मद्वारा

पृथ्वीका पालन तथा भार्याके सहित मिलित होकर सब प्रकार धर्मयुक्त कार्यका अनुष्ठान कीजिये ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-महामना ऋषिके इस प्रकार कहनेपर पृथ्वीपाल उत्तम उनको प्रणामकर रथमें चढ़ अपने पुरमें आगये ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ॥ ६८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर राजा उत्तमने अपने नगरमें पहुँचकर उस ब्राह्मणको सुशील भार्याके संग स्थित और हर्षयुक्त देखा ॥ १ ॥ ब्राह्मणने राजासे कहा हे राजश्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ हुआहूं क्योंकि आपने धर्म जाननेके कारण मेरी भार्या लाकर मेरे धर्मकी रक्षा कीहै ॥ २ ॥ राजा बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! अपना धर्म प्रतिपालनके कारण आप कृतार्थ हुए हैं, किन्तु हे विप्र ! मेरे घरमें पत्नी नहीं है अतएव मैं अत्यन्त संकटमें पड़ा हूं ॥ ३ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे नरेन्द्र !

मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तेप्रणिपत्यैनमारुह्यस्यन्दनंततः ॥ उत्तमःपृथिवीपालआजगामनिजंपुरम् ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऔत्तममन्वन्तरे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःस्वनगरंप्राप्यतंददर्शद्विजंनृपः ॥ समेतंभार्ययाचैवशीलवत्यामुदान्वितम् ॥ १ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ राजवर्यकृतार्थोऽस्मियतोधर्म्मोंहिरक्षितः ॥ धर्मज्ञेनेहभवताभार्यामानयतामम ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ ॥ कृतार्थस्त्वंद्विजश्रेष्ठनिजधर्मा नुपालनात् ॥ वयंसङ्कटिनोविप्रयेषांपत्नीनवेश्मनि ॥ ३ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ नरेन्द्रसाहिविपिनेभक्षिताश्वापदैर्यदि ॥ क्रोधस्यवशमागम्यधर्मो नावेक्षितस्त्वया ॥ अलंतथाकिमन्यस्यानपाणिर्गृह्यतेमवया ॥ संतिराज्ञांगृहेकन्याः शोभनानृपनन्दन ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ नभक्षितामेदयिताश्वापदैःसाहि जीवति ॥ अविदूषितचारित्राकथमेतत्करोम्यहम् ॥ ५ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ यदिजीवतितेभार्यानचैवव्यभिचारिणी ॥ अपत्नीकत्वतोजन्मकिंपापंक्रियते त्वया ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ ॥ आनीतापिहिसाविप्रप्रतिकूलासदैवमे ॥ दुःखायनसुखायालंतस्यामैत्रीनवैमयि ॥ यथातेब्राह्मणीविप्रवशगातवसुंदरी ॥ तथात्वंकुरुयत्नंमेयथासावशगामिनी ॥ ७ ॥

यदि उसको वनमें हिंसक जीवोंने भक्षण कर लिया है, तो आपने क्रोधके वशवर्ती होकर धर्मको देखानहीं अब क्या ? यदि नष्ट होगई हो तो उसके मिलनेकी आशा छोड़कर अन्य कन्याका पाणिग्रहण क्यों नहीं करते ? हे नृपनन्दन ! कारण कि राजोंके घरमें अनेक कन्यायें हैं ॥ ४ ॥ राजा बोले—मेरी पत्नीको हिंसक जीवोंने नहीं खाया, अबतक विशुद्ध चरित्रसे जीवित है, फिर किस प्रकारसे मैं स्त्री ग्रहण करूं ? ॥ ५ ॥ ब्राह्मणने कहा यदि आपकी पत्नी अभीतक अव्यभिचारिणी होकर जीवित है, तो तुम पत्नी परित्याग करके पाप क्यों करते हो ? ॥ ६ ॥ राजा बोले हे विप्र ! अपनी पत्नीके लानेपर भी वह सदा मेरे प्रतिकूल रहेगी, वह सुखका कारण नहीं है, केवल दुःखकाही कारण है क्योंकि मुझमें उसका स्नेह नहीं है । हे विप्रोत्तम ! जिससे

वह मेरी पत्नी मेरे वशीभूत हो, आप उसीमें यत्नकीजिये ॥ ७ ॥ ब्राह्मणने कहा मित्रताकी कामना करनेवाले जो उपकारी श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं, मैं तुम्हारी और तुम्हारी पत्नीकी प्रीतिके लिये वही "मित्रविन्दा" नामक यज्ञ करूंगा ॥ ८ ॥ हे मनुजेन्द्र ! असंतुष्ट स्त्रीपुरुषोंकी प्रीतिकारी और परम प्रीति उत्पन्न करनेवाली शक्तिका देनेवाला वह यज्ञ आपके निमित्त करूंगा ॥ ९ ॥ हे महीपते ! आपकी वह सुभ्रू भार्या जिस स्थानमें वास करती है वहांसे उसको लेआओ, वह आपमें परम प्रीतिवाली होगी ॥ १० ॥ (उसके तुम्हारे हितके अर्थ ऐसे अवसरमें धर्म नष्ट नहीं होताहै) मार्कण्डेयजी बोले—वह राजा उत्तम ब्राह्मणका वचन सुनकर संपूर्ण यज्ञकी सामग्री लाई और उस द्विजश्रेष्ठने भी उल्लिखित यज्ञ किया ॥ ११ ॥ अनन्तर उस द्विजोत्तमने राजाकी भार्याको सुशील करनेके लिये पुनः पुनः सातवार

ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ त्वयिसंप्रीतयेतस्यावरेष्टिरुपकारिणी ॥ क्रियतेमित्रकामैर्यामित्रविन्दांकरोमिताम् ॥ ८ ॥ अप्रीतयोः प्रीतिकरीसाहिसंजननीपरम् ॥ भार्यापत्योर्मनुष्येन्द्रतांतवेष्टिंकरोम्यहम् ॥ ९ ॥ यत्रतिष्ठतिसासुभ्रूस्तवभार्यामहीपते ॥ तस्मादानीयतांसातेपरांप्रीतिमुपैष्यति ॥ १० ॥ (तस्यास्तवहितार्थायधर्मोयत्रनसीदति ॥) मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तःसतुसम्भारानशेषानवनीपतिः ॥ आनिनायचकारेष्टिंसचतांद्विजसत्तमः ॥ ११ ॥ सप्तकृत्वःसतुतदाचकारेष्टिंपुनःपुनः ॥ तस्यराज्ञोद्विजश्रेष्ठोभार्यासम्पादनायवै ॥ १२ ॥ यदारोपितमैत्रांताममन्यतमहामुनिः ॥ स्वभर्त्तरितदाविप्रस्तमुवाचनराधिपम् ॥ १३ ॥ आनीयतांनरश्रेष्ठयातवेष्टात्मनोऽन्तिकम् ॥ भुंक्ष्वभोगांस्तयासार्द्धंयजयज्ञांस्तथादृतः ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तस्तेनविप्रेणभूपालोविस्मितस्तदा ॥ सस्मारतंमहावीर्यंसत्यसन्धंनिशाचरम् ॥ १५ ॥ स्मृतस्तेनतदासद्यः समुपेत्यनराधिपम् ॥ किंकरोमीतिसोऽप्याहप्रणिपत्यमहामुने ॥ १६ ॥ ततस्तेननरेन्द्रेणविस्तरेणनिवेदिते ॥ गत्वापातालमादायराजपत्नीमुपाययौ ॥ १७ ॥

वह यज्ञ किया ॥ १२ ॥ जब महामुनिने उस राजमहिषीको स्वीय पतिके प्रति अनुरागवती समझा, तब राजासे कहा ॥ १३ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब अपनी उस प्रिय भार्याको अपने समीप लाकर उसके संग सांसारिक भोग भोगिये और यत्नसहित यज्ञ संपन्न कीजिये ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले— उस ब्राह्मणका इस प्रकार वचन सुनकर राजा अत्यन्त अचंभेमें हुए, और उसी समय महावीर्य, सत्यप्रतिज्ञ उस निशाचरको स्मरण किया ॥ १५ ॥ हे महामुने ! स्मरण करतेही उस निशाचरने तत्काल वहाँ उपस्थित हो उनको प्रणामकरके कहा कि "मैं क्या करूं" ॥ १६ ॥ अनन्तर राजाके सब विस्तारसहित कहने पर निशाचर पातालमें जाय

राजपत्नीको लेकर फिर उपस्थित हुआ ॥ १७ ॥ उसने आनकर हार्दिक अत्यन्त प्रणयके सहित अपने पतिका दर्शन किया और प्रीतियुक्त होकर "मेरे प्रति प्रसन्न होओ" इस प्रकार वारंवार कहने लगी ॥ १८ ॥ अनन्तर राजाने उत्सुकताके सहित मानिनी पत्नीको आलिंगन करके कहा "हे प्रिये ! मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्नही हूं तुम वारंवार क्यों कहती हो" ॥१९॥ राजपत्नी बोली–हे नरेन्द्र ! यदि आपका मन मेरे प्रति प्रसन्न हुआ है, तो मैं प्रार्थना करती हूं, आप मेरे यथायोग्य सन्मान की रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ राजाने कहा–हे भीरु ! अपना अभिलाषित विषय निःशंक भावसे वर्णन करो । मेरे समीप तुमको कुछभी अलभ्य नहीं है । मैंही तुम्हारे आधीन हूं, इसमें अन्यथा नहीं है ॥ २१ ॥ राजपत्नी बोली–मेरी सखी नागराजकी कन्या मेरेही कारण नागराजके द्वारा "तू गूँगी होगी" इस

आनीताचातिहार्देनसादर्शतदापतिम् ॥ उवाचचप्रसीदेतिभूयोभूयोमुदान्विता ॥ १८ ॥ ततःसराजारभसापरिष्वज्याहमानिनीम् ॥ प्रियेप्रसन्नएवाहं भूयोऽप्येवंब्रवीषिकिम् ॥ १९ ॥ पत्न्युवाच ॥ ॥ यदिप्रसादप्रवणंनरेन्द्रमयितेमनः ॥ तदेतदभियाचेत्वांतत्कुरुष्वममार्हणम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ ॥ निःशंकंब्रूहिमत्तोयद्भवत्याकिंचिदीप्सितम् ॥ तदलभ्यंनतेभीरुतवायत्तोऽस्मिनान्यथा ॥ २१ ॥ पत्न्युवाच ॥ ॥ मदर्थेतेननागेनसुताशप्तासखीमम ॥ मूकाभविष्यसीत्याहसाचमूकत्वमागता ॥ २२ ॥ तस्याःप्रतिक्रियांप्रीत्याममशक्नोतिचेद्भवान् ॥ वाग्विघातप्रशान्त्यर्थंततःकिंनकृतंमम ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसराजातंविप्रमाहास्मिन्कीदृशीक्रिया ॥ तन्मूकतापनोदायसचतंप्राहपार्थिवम् ॥२४॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ भूपसारस्वतीमिष्टिंकरोमिवचनात्तव॥पत्नीतवेयमानृण्यंयातुतद्वाक्प्रवर्तनात्॥२५॥मार्कण्डेयउवाच॥ ॥इष्टिंसारस्वतींचक्रेतदर्थंसद्विजोत्तमः॥सारस्वतानिसूक्तानिजजापचसमाहितः॥ २६ ॥ ततःप्रवृत्तवाक्यांतांगर्गःप्राहरसातले ॥ उपकारःसखीभर्त्राकृतोऽयमतिदुष्करः ॥ २७ ॥

प्रकार शापको प्राप्त हो वाक्शक्तिविहीन हुई है ॥ २२ ॥ आप मेरे प्रति प्रीतिके कारण यदि उसकी मूकताप्रशमनार्थ प्रतीकार करनेमें समर्थ हों तो मेरा आपने क्या कार्य नहीं किया ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–तदनन्तर राजाने उस ब्राह्मणसे पूछा कि नागराजकी कन्याका गूँगापन दूर होनेके लिये इस समय क्या कार्य करना आवश्यक है? ॥ २४ ॥ ब्राह्मणने कहा–हे भूप ! आपके वचनानुसार सारस्वती इष्टि करूंगा । आपकी यह पत्नी उसको मूकता दूर होनेपर ऋण–मुक्त होगी ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले । उस द्विजश्रेष्ठने उसकी मूकता नष्टहोनेके लिये सारस्वतीइष्टिका आरंभ किया और सावधान होकर सारस्वत सूक्तका जप करने लगा ॥ २६ ॥ तदनन्तर गर्गऋषिने रसातलमें प्रवृत्तवाक्या अर्थात् बोलनेकी शक्तिको प्राप्त हुई नागकन्यासे कहा तुम्हारी सखीके पतिने तुम्हारा यह

दुष्कर उपकार किया है ॥ २७ ॥ नागकन्या नन्दा यह जानकर शीघ्रगतिसे उस पुरमें जाय अपनी सखी राज्ञीको आलिंगन ॥ २८ ॥ और उन भूपालके गुण गान करके आसनपर बैठ कल्याणवचनों के द्वारा मधुर भावसे वारंवार कहने लगी ।। २९ ॥ हे वीर ! इस समय आपके द्वारा मेरा जो उपकार साधित हुआ है, उससे आकृष्टहृदय होकर मैं जो कहती हूं वह सुनो ॥ ३० ॥ हे नराधिप ! आपको महावीर्यवान् पुत्र उत्पन्न होगा और इस पृथ्वीमें उसका अखण्ड राज्यमण्डल प्रतिष्ठित होगा ॥ ३१ ॥ आपका सर्वार्थशास्त्रमें तत्त्वज्ञ, धर्मानुष्ठानमें तत्पर, वह बुद्धिमान् पुत्र मन्वन्तराधिपति मनु होगा ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हेमुने ! तदनन्तर नागराजकी कन्या नन्दा उनको इस प्रकार वर दे, और उस सखीको गाढ आलिंगनकर पातालमें चली गई ।। ३३ ॥ इधर पत्नीके सहित रमणपरायण उन पृथ्वी

इत्थंज्ञात्वासमासाद्यनन्दाशीघ्रगतिःपुरम् ॥ ततोराज्ञींपरिष्वज्यस्वसखीमुरगात्मजा ॥ २८ ॥ तंचसंस्तूयभूपालंकल्याणोक्त्यापुनःपुनः ॥ उवाचमधुरंनागी कृतासनपरिग्रहा ॥२९॥ उपकारःकृतोवीरभवतायोममाधुना ॥ तेनास्म्याकृष्टहृदयायद्ब्रवीमिशृणुष्वतत् ॥ ३० ॥ तवपुत्रोमहावीर्योभविष्यतिनराधिपः॥ तस्याप्रतिहतंचक्रमस्यांभुविभविष्यति ॥ ३१ ॥ सर्वार्थशास्त्रतत्त्वज्ञोधर्मानुष्ठानतत्परः ॥ मन्वन्तरेश्वरोधीमान्भविष्यतिसवैमनुः ॥ ३२ ॥ मार्कण्डे यउवाच ॥ ॥ इतिदत्त्वावरंतस्मैनागराजसुताततः ॥ सखींतांसंपरिष्वज्यपातालमगमन्मुने ॥३३॥ तत्रतस्यतयासार्द्धंरमतःपृथिवीपतेः॥जगामकालःसुमहा न्प्रजाःपालयतस्तथा ॥ ३४ ॥ ततःसतस्यांतनयोजज्ञेराज्ञोमहात्मनः ॥ पौर्णमास्यांयथाकान्तश्चन्द्रःसंपूर्णमण्डलः ॥ ३५ ॥ तस्मिञ्जातेमुदंप्रापुःप्रजाः सर्वाःसहामराः ॥ देवदुन्दुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिःपपातच ॥ ३६ ॥ तस्यदृष्ट्वावपुःकान्तंभविष्यंशीलमेवच ॥ औत्तमश्चेतिमुनयोनामचक्रुःसमागताः ॥ ३७ ॥ जातोऽयमुत्तमेवंशेबालःकालेतथोत्तमे ॥ उत्तमावयवस्तेनऔत्तमोऽयंभविष्यति ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ उत्तमस्यसुतःसोऽथनाम्नाख्यातस्तथौ त्तमः ॥मानुरासीत्तत्प्रभावोभागुरेश्रूयतांमम ॥ ३९ ॥

पतिका प्रजा पालन करते करते बहुतकाल बीतगया ॥ ३४ ॥ अनन्तर रानीके गर्भसे महात्मा राजाके पूर्णिमाके संपूर्ण चन्द्रमण्डलकी समान मनो हर–कान्ति एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ उन महात्माके जन्मग्रहणमें समस्त प्रजाने महाआनंद प्राप्त किया था, समस्त देवताओंकी दुन्दुभी बजीं थीं और फूलोंकी वर्षा हुई थी ॥ ३६ ॥ आयेहुए मुनियोंने उसके देहकी कान्ति देखकर और भावस्वभाव जानकर उसका 'औत्तम' नामसे नामकरण किया ॥ ॥ ३७ ॥ मुनियोंने कहा इस महात्माने उत्तम वंशमें, उत्तम कालमें, और उत्तम अवयव (अंग) सम्पन्न होकर जन्मग्रहण किया है, इस कारण यह उत्तम नामसे विख्यात होगा ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे मुने भागुरे ! पक्षान्तरमें "उत्तमके पुत्र थे" इसी कारण वह औत्तम नामसे अभिहित होकर मनु हुए थे । अब मुझसे

उनका प्रभाव सुनो ॥ ३९ ॥ उत्तमनृपतिका आख्यान और औत्तम मनुका जन्मवृत्तान्त जो सुनते हैं, वह कभी विद्वेषको प्राप्त नहीं होते ॥ ४० ॥ जो इसको सुनते हैं वा पढ़ते हैं, उनको कभी इष्ट, पुत्र, स्त्री और बंधु वर्गका वियोग सहना नहीं पड़ता ॥ ४१ ॥ उनके मन्वन्तरकी कथा विस्तारसहित वर्णन करता हूं सुनो । हे ब्रह्मन् उस समय जो इन्द्र जो देवता, और जो ऋषि थे, वह भी कहता हूं ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

मार्कण्डेय बोले—हेमुने ! औत्तम प्रजापतिके तीसरे मन्वन्तरके इन्द्र, देवता और ऋषियोंका विषय कहता हूं, सुनो ॥ १ ॥ प्रथमगण स्वधामा नामक देवताओंके नामानुरूप अपनी ज्योतिसे प्रकाशमान है और देवताओंका दूसरा गण सत्य नामसे विख्यात है ॥ २ ॥ हे मुनिसत्तम ! देवताओंका तीसरा गण " शिव "

उत्तमाख्यानमखिलंजन्मचैवौत्तमस्ययः ॥ नित्यंशृणोतिविद्वेषंसकदाचिन्नगच्छति ॥ ४० ॥ इष्टैर्दारैस्तथापुत्रैर्बन्धुभिर्वाकदाचन ॥ वियोगोनास्यभविता शृण्वतःपठतोऽपिवा ॥ ४१ ॥ तस्यमन्वन्तरंब्रह्मन्वदतोममविस्तरात् ॥ श्रूयतांतत्रयश्चेन्द्रोयेचदेवास्तथर्षयः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरेएकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ मन्वन्तरेतृतीयेऽस्मिन्नौत्तमस्यप्रजापतेः ॥ देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निबोधगदतोमम ॥ १ ॥ स्वधामानस्तथादेवायथानामानुकारिणः ॥ सत्याख्यश्चद्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानांतथागणः ॥२॥ तृतीयेतुगणेदेवाःशिवाख्यामुनिसत्तम ॥ शिवाःस्वरूपतस्तेतुश्रुताःपापप्रणाशनाः ॥ ३ ॥ प्रतर्दनाख्यश्चगणोदेवानांमुनिसत्तम ॥ चतुर्थस्तत्रकथितऔत्तमस्यान्तरेमनोः ॥ ४ ॥ वशवर्तिनःपंचमेऽपिदेवास्तत्रगणेद्विज ॥ यथाख्यातस्वरूपास्तुसर्वएवमहामुने ॥ ५॥ एतेदेवगणाःपंचस्मृतायज्ञभुजस्तथा ॥ मन्वन्तरेमनुश्रेष्ठेसर्वेद्वादशकागणाः ॥६॥ तेषामिन्द्रोमहाभागस्त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ॥ शतंक्रतूनामाहृत्यसुशान्तिर्नामनामतः ॥ ७ ॥ यस्योपसर्गनाशायनामाक्षरविभूषिता ॥ अद्यापिमानवैर्गाथागीयतेतुमहीतले ॥ ८ ॥ सुशान्तिर्देवराटकान्तःसुशान्तिंसंप्रयच्छति ॥ सहितःशिवसत्याद्यैस्तथैववशवर्तिभिः ॥ ९ ॥

नामसे विख्यात है । इस नामका स्मरण करतेही वह पाप नाश करके " शिव " नामकी यथार्थता सम्पादन करता है ॥ ३ ॥ हे मुनिवर ! औत्तममन्वन्तरमें देवताओंका चौथागण प्रतर्दन नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥ हे महामुने ! पाँचवें गणमें वशवर्त्ती नामक देवता हैं वह सब नामानुरूप कार्यकारी हैं । हे द्विजोत्तम ! इस मन्वन्तर में यज्ञभुक् देवताओंके पाँच प्रकार गण और प्रत्येक गणमें बारह बारह देवता हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ उन देवताओंके सुशान्तिनामधारी महाभाग इन्द्र सौ अश्वमेध यज्ञ करके त्रैलोक्यके गुरु होते हैं ॥ ७ ॥ उन देवराज सुशान्तिकी नामाक्षरविभूषित यह गाथा पृथ्वीतलमें मनुष्यगण अबतक गाते हैं ॥ ८ ॥ वह कान्तिमान् देवराज

सुशान्ति शिव सत्यादि देवताओंके सहित सुशान्ति प्रदान करते हैं, वशवर्तीनामक देवगण भी इसी प्रकार करते हैं ॥ ९ ॥ इन मनुके अज, परशुचि, और दिव्य नामक देवतोंकी समान विख्यात महाबल पराक्रमी तीन पुत्र थे ॥ १० ॥ जितने दिनों उन उत्तम-तेजा मनुका मन्वन्तर था, तबतक उनकी वंशोत्पन्न सन्तान सन्ततिने नरेश्वर होकर पृथ्वीका पालन किया था ॥ ११ ॥युगकथन कालमें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, यह चार युग कहे गये हैं, कुछ अधिक (इकहत्तर) उक्त चारों युगमें मन्वन्तर काल निर्दिष्ट है ॥ १२ ॥ अपने तेजोबलमें महातपोनामक महात्माके सात पुत्र औत्तम मन्वन्तरमें सप्तऋषि हुए थे ॥ १३ ॥ मैं ने यह तीसरे मन्वन्तरका वर्णन किया, अब तामसमनुका चौथा मन्वन्तर कहता हूं ॥ १४ ॥ विभिन्नयोनि-उत्पन्न जिन मनुके यशद्वारा जगत् प्रका

अजःपरशुचिर्दिव्योमहाबलपराक्रमः ॥ पुत्रास्तस्यमनोरासन्विख्यातास्त्रिदशोपमाः ॥ १० ॥ तत्सूतिसम्भवैर्भूमिःपालिताभून्नरेश्वरैः ॥ यावन्मन्वन्तरंतस्यमनोरुत्तमतेजसः ॥११॥ चतुर्युगानांसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ॥ कृतत्रेतादिसंज्ञानियान्युक्तानिपुरामया ॥१२॥ स्वतेजसाहितपसोवरिष्ठस्यमहात्मनः॥तनयाश्चान्तरेतस्मिन्सप्तसप्तर्षयोभवन् ॥१३॥ तृतीयमेतत्कथितंतवमन्वन्तरंमया ॥ तामसस्यचतुर्थंतुमनोरन्तरमुच्यते ॥१४॥ वियोनिजन्मनोयस्ययशसाद्योतितंजगत् ॥ जन्मतस्यमनोर्ब्रह्मञ्छ्रूयतांगदतोमम ॥ १५ ॥ अतीन्द्रियमशेषाणांमनूनांचरितंतथा ॥ तथाजन्मापिविज्ञेयंप्रभावश्चमहात्मनाम् ॥ १६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऔत्तममन्वन्तरंनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ राजाभूद्भुविविख्यातःस्वराष्ट्रोनामवीर्यवान् ॥ अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञःसंग्रामेष्वपराजितः॥१॥तस्यायुःसुमहद्दत्तंसूर्येणसुमहाद्युतेः ॥ (पुराभगवताविप्रमंत्रिणाराधितेनवै ॥) पत्नीनांचशतंतस्यधन्यानामभवद्विज ॥ २ ॥ तस्यदीर्घायुषःपत्न्योनातिदीर्घायुषोमुने ॥ कालेनजग्मुर्निधनंभृत्यमन्त्रिजनास्तथा ॥ ३ ॥ सभार्याभिस्तथामुक्तोभृत्यैश्चसहजन्मभिः ॥ उद्विग्नचेताःसंप्राप वीर्यहानिमहर्निशम् ॥ ४ ॥

शित हुआ था उन मनुके जन्मका वृत्तान्त कहता हूं, सुनो ॥ १५ ॥इन सब महात्मा अनेक मनुगणोंका चरित्र,उनके जन्मका वृत्तान्त,और उनका प्रभाव भलीभाँतिसे जानना चाहिये ॥ १६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरंनाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥ मार्कण्डेयजी बोले-अनेक यज्ञकारी ज्ञानसंपन्नसंग्राममें अपराजित वीर्यवान् स्वराष्ट्रनामक जगद्विख्यात एक राजा थे॥ १ ॥हे द्विज! उनके मंत्रियोंद्वारा आराधित होकर महाद्युतिमान् भगवान् सूर्य ने उनको दीर्घआयु प्रदान की थी,उन राजाके सुन्दरी धन्या नामक सौ पत्नी थीं ॥ २ ॥ किन्तु हे मुने! उन दीर्घायु राजाकी पत्नियें अतिदीर्घायु नहीं थीं, अतएव वह यथासमयमें मृत्युको प्राप्त हुई थीं और भृत्य तथा मंत्रीगणभी कालके वश होकर मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ३ ॥ वयस्यगण (स्नेही) भृत्यगण, और समस्त भार्याओंके वियोगमें

उद्विग्नचित्त होकर राजा रात दिन वीर्यहीन होनेलगे ॥ ४ ॥ विमर्दनामक समीपवर्त्ती अन्य राजाने, वीर्यहीन और विश्वासी भृत्योंके द्वारा छोड़े हुए इस दुःखित राजाको राज्यसे च्युत किया ॥ ५ ॥ वह महाभाग राजा स्वराष्ट्र राज्यसे च्युत होनेके कारण दुःखित चित्तसे वनमें जाय वितस्तानदीके तटपर स्थित होकर तपस्या करने लगे ॥ ६ ॥ वह ग्रीष्मके समय पंचाग्निमें पंचतपा, वर्षाके समय खुलेस्थानमें बैठकर और शीतकालमें जलशायी होकर निराहार और संयत भावसे व्रत करने लगे ॥ ७ ॥ तदनन्तर तपस्यानुरक्त राजाकी तपस्या के समय एकदिन वर्षाकालमें मेघोंके चारोंओर निरन्तर जल वरसानेसे महाजलसमूह उपस्थित हुआ था ॥ ८ ॥ तब चारोंदिशा अंधकारसे आच्छादित होगई, यहीं नहीं, बरन् उसकाल, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम वा उत्तर कुछ नहीं जाना जाता था॥ ९॥ अनन्तर वह राजा अति प्लावनकालमें नदीके तटसे प्रेरित होकर अत्यन्त वेगशाली जलधारासे खिंचकर भी प्रार्थित नदीके तटको प्राप्त नहीं हुए ॥ १० ॥ फिर

तंवीर्यहीनंनिभृतैर्भृत्यैस्त्यक्तंसुदुःखितम् ॥ अनन्तरोविमर्दाख्योराज्याच्च्यावितवांस्तदा ॥ ५ ॥ राज्याच्च्युतःसोऽपिवनंगत्वानिर्विण्णमानसः ॥ तपस्तेपेमहाभागोवितस्तापुलिनेस्थितः ॥ ६ ॥ ग्रीष्मेपंचतपाभूत्वावर्षास्वभ्रावकाशकः ॥ जलशायीचशिशिरेनिराहारोयतव्रतः ॥ ७ ॥ ततस्तपस्यतस्तस्यप्रावृट्कालेमहान्प्लवः ॥ बभूवानुदिनंमेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥ ८ ॥ नदिग्विज्ञायतेपूर्वादाक्षिणावानपाश्चिमा ॥ नोत्तरातमसासर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥ ९ ॥ ततोऽतिपूरेणनृपःसनद्याप्रेरितस्तटम् ॥ प्रार्थयन्नापिनावापाह्रियमाणोऽतिवेगिना ॥ १० ॥ अथदूरेजलौघेनाह्रियमाणोमहीपतिः ॥ आससादजलेरौहींसपुच्छेजगृहेचताम् ॥ ११ ॥ तेनप्लवेनसययावूह्यमानोमहीतले ॥ इतश्चेतश्चान्धकारेआससादतटंततः ॥ १२ ॥ विस्तारिपङ्कमत्यर्थंदुस्तरंसनृपस्तरन् ॥ तथैवकृष्यमाणोऽन्यद्रम्यंवनमवापसः ॥ १३ ॥ तत्रान्धकारेसारौहीचकर्षवसुधाधिपम् ॥ पुच्छेलग्नंमहाभागंकृशंधमनिसन्ततम् ॥ १४ ॥ तस्याश्चस्पर्शसंभूतामवापमुदमुत्तमाम् ॥ सोऽन्धकारेभ्रमन्भूपोमदनाकृष्टमानसः ॥ १५ ॥ विज्ञायसानुरागंतंपृष्ठस्पर्शनतत्परम् ॥ नरेन्द्रंतंवृषस्यंतंसामृगीतमुवाचह ॥ १६ ॥ किंपृष्ठंवेपथुमताकरेणस्पृशसेमम ॥ अन्यथैवास्यकार्यस्यसञ्ज्ञातानृपतेगतिः ॥ १७ ॥

महीपति जलके प्रवाहसे हरे जाकर एक रौही (मृगी विशेष) को प्राप्त हुए और उसकी पुच्छ पकड़ी ॥ ११ ॥ तदनन्तर उस जलसमूहमें खिंचे हुए राजा महीतलमें पहुँचे । अंधकारमें इधर उधर ढूँढकर किनारेपर पहुँचे ॥ १२ ॥ मृगीके द्वारा आकृष्यमाण वह राजा बहुत विस्तारवाली दुस्तर कीचडको तरकर एक मनोहर वनमें पहुँचे ॥ १३ ॥ अंधकारमें वह मृगी पुच्छमें लगे नाड़ियोंसे व्याप्त देहवाले महाभाग वसुधाधिपतिको खैंचने लगी ॥ १४ ॥ राजा स्वराष्ट्र अंधकारमें भ्रमण करते करते उसके स्पर्शसे कामासक्तचित्त हो अत्यन्त आनन्दकोप्राप्त हुए ॥ १५ ॥ जब राजाने उस वनमें उसकी पीठका स्पर्श किया, तब मृगीने उनको अनुरागी जानकर कहा ॥ १६ ॥ हे भूपाल ! काँपतेहुए हाथोंसे मेरी पीठका स्पर्श क्यों करते हो? इस स्पर्शका भाव अन्य प्रकार विदित होता है॥ १७॥

हे नरेश्वर ! अयोग्यके प्रति आपकी अभिलाषा नहीं हुई है मैं आपकी अगम्या नहीं हूं अर्थात् गमन करनेको योग्यही हूं किन्तु आपके समागममें यह लोल विघ्न करते हैं ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–उन राजाने उस मृगीका इस प्रकार वचन सुन कौतूहलयुक्त होकर मृगीसे कहा ॥ १९॥ तुम कौन हो ? मृगी होकर किस प्रकार मनुष्यकी समान बात कहती हो ? और तुम्हारे संग समागममेंजो विघ्न उत्पन्न करते हैं,वह लोल कौन हैं?सो कहो॥ २०॥ मृगीने कहा–हे भूपते ! मैं दृढधन्वाकी कन्या हूं, मैंही सैकडों रानियोंमें श्रेष्ठ थी मेरा नाम उत्पलावती है मैं आपकी प्रियतमा महिषी हूं॥ २१ ॥ राजा बोले–तुमने ऐसा क्या कार्य किया है जिससे ऐसी योनि प्राप्त हुई है ? मेरी वह पत्नी पतिव्रता और धर्मपरायण होकर किसप्रकार ऐसी दशाको प्राप्त हुई ? ॥ २२ ॥ मृगी बोली–मैंने पिताके घर बाल्य अव

नास्थानेवामनोयातंनागम्याहंतवेश्वर ॥ किंतुत्वत्सङ्गमेविघ्नमेषलालेःकरोतिमे ॥१८॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यामृग्याश्चजगतीपतिः ॥ जातकौतूहलोरौहीमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ कात्वंब्रूहिमृगीवाक्यंकथंमानुषवद्वदेत् ॥ कश्चैवलोलोयोविघ्नंत्वत्सङ्गेकुरुतेमम ॥ २०॥ मृग्युवाच ॥ ॥ अहन्तेदयिताभूपप्रागासमुत्पलावती ॥ भार्य्याशताग्रमहिषीदुहिताहढधन्वनः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ ॥ किन्तुयावत्कृतंकर्मयेनेमांयोनिमागता ॥ पतिव्रता धर्मपरासाचेत्थंकथमीदृशी ॥ २२ ॥ मृग्युवाच ॥ ॥ अहंपितृगृहेबालासखीभिःसहितावनम् ॥ रन्तुंगतादद्दर्शैकंमृगंमृग्यासमागतम् ॥ २३ ॥ ततःसमीपवर्तिन्यामयासाताडितामृगी ॥ मयात्रस्तागतान्यत्रक्रुद्धःप्राहततोमृगः ॥२४॥ मूढेकिमेवंमत्तासिधिक्तेदौःशील्यमीदृशम् ॥ आधानकालोयेनायंत्वयामेविफलीकृतः ॥२५॥ वाचंश्रुत्वाततस्तस्यमानुषस्येवभाषतः ॥ भीतातमब्रुवंकोऽसीत्येतांयोनिमुपागतः ॥२६॥ ततःसप्राहपुत्रोऽहमृषेर्निर्वृतिचक्षुषः ॥ सुतपानाममृग्यान्तुसाभिलाषोमृगोऽभवम् ॥ २७ ॥ इमांचानुगतःप्रेम्णावांच्छितश्चानयावने ॥ त्वयावियोजितादुष्टेतस्माच्छापंददामिते ॥ २८ ॥

स्थामें सखियोंके संग क्रीड़ा करनेके लिये वनमें जाकर मृगीके सहित संगत एक मृगको देखा था ॥ २३ ॥ अनन्तर मैंने निकट जाकर मृगीको ताड़न (प्रहार) किया, तब मृगी डरकर अन्यत्र चली गई, इसकारण मृगने क्रोधित होकर कहा ॥ २४ ॥ हे मूढे ! किसलिये ऐसी मत्त हुई, तेरी ऐसी दुःशीलताको धिक्कार है, क्योंकि मेरे इस गर्भाधान कालको तैंने विफल किया ॥ २५ ॥ मनुष्यके समान वचन बोलनेवाले उस मृगका वचन सुननेपर मैंने डरकर उससे पूछा कि, आप किस प्रकार इस मृगयोनिको प्राप्त हुए हैं ? ॥ २६ ॥ तब उसने कहा मैं निर्वृत्तिचक्षु मुनिका पुत्र हूं, मेरा नाम सुतपा है, मैंने मृगीमें अभिलाषाकरके मृगरूप धारण किया है ॥ २७ ॥ इस वनमें इस मृगीके अभिलाषा करनेसे प्रीतिके वश होकर इसका अनुगमन किया था। हे दुष्टे ! तैंने उस मृगीसे मेरा वियोग कराया

इस कारण तुझको शाप दूंगा ॥ २८॥ मैंने कहा हे मुनिवर! अज्ञानके वश होकर मैंने आपका अपराध किया है, मेरे प्रति प्रसन्न होओ, मुझको शाप मतदो ॥ २९॥ हे महीपते! इसप्रकार कहनेपर उन मुनिने भी मुझसे कहा, मैं यदि तुझमें आत्मप्रदान करसकूं तो तुझको शाप नहीं दूंगा ॥ ३० ॥ मैंने कहा मैं मृगरूपधारिणी वा मृगी नहीं हूं, आपको वनमें अन्य मृगी मिलेगी, मेरे प्रति यह अभिलाषा निवृत्त कीजिये ॥ ३१ ॥ यह बात सुन उन्होंने कोपसे लाल नेत्र कर होठ कँपाते हुए कहा तैने " मैं मृगी नहीं हूं " यह बात कही, इस कारण तू मृगीही होगी ॥ ३२ ॥ तब मैंने अत्यन्त व्यथित हो, उन स्वीयरूपधारी अति क्रुद्ध मुनिको प्रणाम करके वारम्वार कहा, मैं बाला हूं अत एव वचन बोलना नहीं जानती इसीसे ऐसा कहा है, मेरे प्रति प्रसन्न होओ।

मयाचोक्तंतवाज्ञानादपराधःकृतोमुने ॥ प्रसादंकुरुशापंमेनभवान्दातुमर्हति॥२९॥ इत्युक्तःप्राहमांसोऽपिमुनिरित्थंमहीपते॥नप्रयच्छामिशापंतेयद्यात्मानंददासिते॥३०॥मयाचोक्तंमृगीनाहंमृगरूपधरावने ॥ लप्स्यसेऽन्यांमृगींतावन्मयिभावोनिवर्त्यताम् ॥३१॥ इत्युक्तःकोपरक्ताक्षः सप्राहस्फुरिताधरः ॥ नाहंमृगीत्वयेत्युक्तंमृगीमूढेभविष्यसि ॥ ३२ ॥ ततोभृशंप्रव्यथिताप्रणम्यमुनिमब्रुवम् ॥ स्वरूपस्थमतिक्रुद्धंप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥३३॥ बालानभिज्ञावाक्यानांततःप्रोक्तमिदंमया ॥ पितर्यसतिनारीभिर्व्रियतेहिपतिःस्वयम् ॥ ३४ ॥ सतितातेकथंचाहंवृणोमिमुनिसत्तम ॥ सापराधाथवापादौप्रसीदेषानमाम्यहम् ॥ ३५ ॥ प्रसीदेतिप्रसीदेतिप्रणतायांमहामते ॥ इत्थंलालप्यमानायाः सप्राहमुनिपुङ्गवः ॥३६॥ नभवत्यन्यथाप्रोक्तंममवाक्यंकदाचन ॥ मृगीभविष्यसिमृतावनेऽस्मिन्नेवजन्मनि ॥ ३७ ॥ मृगत्वेचमहावाहुस्तवगर्भमुपैष्यति ॥ लोलोनामसुनेःपुत्रःसिद्धवीर्यस्यभाविनि ॥ ३८ ॥ जातिस्मराभवित्रीत्वंतस्मिन्गर्भमुपागते ॥ स्मृतिंप्राप्यतथावाचंमानुषीमीरयिष्यसि ॥ ३९ ॥

पिताके न होनेमें स्त्री पतिको स्वयं वरती है ॥ ३३॥३४ ॥ किन्तु हे मुनिसत्तम! पिताके वर्तमान रहते मैं किस प्रकार स्वयं वरूं अथवा हे प्रभो! मैंने अपराध किया है, आपके चरणोंकी वन्दना करके नमस्कार करती हूं, आप प्रसन्न हूजिये ॥३५॥हे महामते! इस प्रणतके प्रति प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ। मुझको इस भाँति वारंवार कहता देखकर वह मुनिवर बोले ॥ ३६ ॥ कभी मेरा कहाहुआ वचन मिथ्या नहीं होगा तुम मृत्युके पीछे दूसरे जन्ममें इसी वनमें मृगी होगी ॥३७॥ हे भामिनी! जब तुम मृगत्वको प्राप्त होगी तब सिद्धवीर्य किसी मुनिका पुत्र महाबाहुलोल तुम्हारे गर्भसे जन्म ग्रहण करेगा ॥ ३८ ॥ जब तुम उस लोलको गर्भमें

प्राप्त करोगी, तब तुम जातिस्मरा होगी और पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण करनेमें समर्थ होनेपर मनुष्यके समान वचन कहसकोगी ॥ ३९ ॥ उस महाबाहुके जन्म ग्रहण करनेपर तुम शापसे छूट और पतिके द्वारा अर्चित होकर पापकर्मकारी मनुष्य जो लोक प्राप्त नहीं करसकते, तुम उसी लोकको प्राप्त करोगी ॥ ४० ॥ तदनन्तर वह महावीर्यवान् लोलही पिताके शत्रुओंको मार और समस्त वसुन्धराको जीतकर मनु होगा ॥ ४१ ॥ हे महाराज ! मैंने इस प्रकार शापको प्राप्त हो तिर्यक् योनि लाभ की है,तुम्हारे स्पर्शके कारण मेरे जठरमें उस गर्भ ने जन्म ग्रहण कियाहै ॥ ४२ ॥ इसी निमित्त मैंने कहा था कि "मेरे प्रति जो आपकी अभिलाषा हुई है, वह अयोग्यस्थानमें नहीं है, आप भी मुझको अगम्य नहीं हैं, किन्तु यह गर्भस्थित लोलही विघ्न करता है" ॥ ४३ ॥

तस्मिञ्जातेमृगत्वात्त्वंविमुक्तापतिनार्चिता ॥ लोकानवाप्स्यासिप्राप्यायेनदुष्कृतकर्मभिः ॥ ४० ॥ सोऽपिलोलोमहावीर्यःपितृशत्रून्निपात्यवै ॥ जित्वावसुन्धरांकृत्स्नांभविष्यतिततोमनुः ॥ ४१ ॥ एवंशापमहंलब्ध्वामृतातिर्य्यक्त्वमागता ॥ त्वत्संस्पर्शाच्चगर्भोऽसौसंभूतोजठरेमम ॥ ४२ ॥ अतोब्रवीमिनास्थानेतवयातंमनोमयि ॥ नचाप्यगम्यागर्भस्थोलोलोविघ्नंकरोत्यसौ ॥४३॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवमुक्तस्ततःसोऽपिराजाप्राप्यपरांमुदम् ॥ पुत्रोममारीञ्जित्वेतिपृथिव्यांभवितामनुः॥४४॥ततस्तंसुषुवेपुत्रंसामृगीलक्षणान्वितम्॥तस्मिञ्जातेचभूतानिसर्व्वाणिप्रययुर्मुदम्॥४५॥ विशेषतश्चराजासौपुत्रेजातेमहावने साविमुक्तामृगीशापात्प्रापलोकाननुत्तमान् ॥४६॥ ततस्तस्यर्षयःसर्वेसमेत्यमुनिसत्तम ॥ अवेक्ष्यभाविनीमृद्धिंनामचक्रुर्महात्मनः ॥४७॥ तामसींभजमानायांयोनिंमातर्य्यजायत ॥ तमसाचावृतेलोकेतामसोऽयंभविष्यति ॥४८॥ ततः सतामसस्तेनपित्रासंवर्द्धितोवने ॥ जातबुद्धिरुवाचेदंपितरंमुनिसत्तम ॥४९॥

मार्कण्डेयजी बोले तदनन्तर "यह पुत्र मेरे शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीमें मनु होगा" इस प्रकार वचन सुनकर वह राजा परमहर्षको प्राप्त हुए ॥४४॥ इसके उपरान्त उस मृगीने सुलक्षणयुक्त पुत्र प्रसव किया। बालकके जन्म ग्रहण करनेपर संपूर्ण प्राणी आनन्दित हुएथे ॥४५॥ इस महाबलवान् पुत्रके जन्म लेनेपर विशेषकर राजा आनन्दित हुए और वह मृगी भी शापसे छूटकर अति उत्तम लोकको प्राप्त हुई ॥ ४६ ॥ हे मुनिसत्तम ! इसके पीछे सब ऋषियोंने आय, उस महात्माकी भविष्यत् ऋद्धि देखकर नामकरण किया ॥ ४७ ॥ उन्होंने कहा । जगत्के तमः अर्थात् अन्धकारद्वारा आवृत होनेपर यह तामसी योनिको प्राप्त हुई माताके गर्भसे उत्पन्न हुआहै, इस करण यह बालक "तामस" नामसे विख्यात होगा ॥ ४८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वनमें पिताके द्वारा उस तामसने वर्द्धित होकर यथासमयमें

बुद्धिका उदय होनेपर पितासे कहा ॥ ४९ ॥ हे तात! आप कौन हैं? किस प्रकार मैं आपका पुत्र हुआ? तथा मेरी माता कौन है? और आप किस निमित्त यहां आये हैं? यह सब मुझसे सत्य कहो ॥ ५० ॥ उन महाबाहु जगतीपति पिताने, पुत्रके प्रति स्वीयराज्यसे भ्रष्ट होना इत्यादि संपूर्ण विषय यथावत् वर्णन किया ॥ ॥ ५१ ॥ उन तामसने पिताके यह समस्त वचन सुन, भास्करदेवकी आराधना कर निवर्त्तन मंत्रके सहित नानाप्रकारके सब दिव्य अस्त्र मंत्र लाभ किये ॥ ५२॥ उन्होंने अस्त्रप्रयोगमें निपुण हो उन शत्रुओंको पराजय कर, पिताके समीप लाय उनकी आज्ञानुसार उनको छोड़दिया इस प्रकार उन्होंने अपने धर्मकी रक्षा की ॥ ५३ ॥ इसके पीछे उनके पिता भी पुत्रका मुख देख सुखपूर्वक देह छोड तप और यज्ञकी प्रभावसे अर्जित स्वर्गादि लोकोंमें चलेगये ॥ ५४ ॥ वह तामस

कस्त्वंतातकथंवाहंपुत्रोमाताचकामम ॥ किमर्थमागतश्चत्वमेतत्सत्यंब्रवीहिमे ॥५०॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःपितायथावृत्तंस्वराज्यच्यावनादिकम् ॥ तस्याचष्टेमहाबाहुःपुत्रस्यजगतीपतिः ॥५१॥ श्रुत्वातत्सकलंसोऽपिसमाराध्यचभास्करम् ॥ अवापदिव्यान्यस्त्राणिससंहाराण्यशेषतः ॥५२॥ कृतास्त्रस्ता नरीञ्जित्वापितुरानीयचान्तिकम् ॥ अनुज्ञातान्मुमोचाथसचस्वंधर्ममास्थितः ॥ ५३ ॥ पितापितस्यस्वाँल्लोकांस्तपोयज्ञसमार्जितान् ॥ विसृष्टदेहःसंप्राप्तोदृ ष्ट्वापुत्रमुखंसुखम् ॥५४॥जित्वासमस्तांपृथिवींतामसाख्यःसपार्थिवः॥ तामसाख्योमनुरभूत्तस्यमन्वन्तरंशृणु॥५५॥येदेवास्तत्पतिर्यश्चदेवेन्द्रोयेतथर्षयः॥येपु त्राश्चमनोस्तस्यपृथिवीपरिपालकाः ॥ ५६ ॥ सत्यास्तथान्येसुधियःसुरूपाहरयस्तथा ॥ एतेदेवगणास्तत्रसप्तविंशतिकामुने ॥ ५७ ॥ महाबलोमहावीर्य्यः शतयज्ञोपलक्षितः॥ शिखिरिन्द्रस्तथातेषांदेवानामभवद्विभुः ॥५८॥ ज्योतिर्धर्मापृथुःकाव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा ॥ पीवरश्चतथाब्रह्मन्सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ॥ ॥ ५९ ॥ नरःक्षान्तिःशान्तदान्तजानुजङ्घादयस्तथा ॥ पुत्रास्तुतामसस्यासन्राजानःसुमहाबलाः ॥ ६० ॥

नृपति संपूर्ण पृथ्वीको जीतकर तामस नामक मनु हुए थे, उनका मन्वन्तर सुनो ॥ ५५॥ उस मन्वन्तरमें जो जो देवता, देवताओंके अधिपति जो इन्द्र, जोजो ऋषि, और उन मनुके जिन जिन पुत्रोंने पृथ्वीका पालन किया था, सो सुनो ॥ ५६ ॥ हे मुने! इस मन्वन्तरमें सत्य गण, सुधीगण, सुरूपगण और हरिगण, यह चार प्रकारके देवता हैं इनके प्रत्येक गणमें सत्ताईस देवता हैं ॥ ५७ ॥ इस मन्वन्तरमें महाबल, महावीर्य, शिखी नामक इन्द्र शत यज्ञ करके उन सब देवताओंके प्रभु हुए थे ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मन्! ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर, यह सात जन सप्तर्षि थे ॥ ५९ ॥ नर, क्षान्ति, शान्त, दान्त, जानु, जंघा

इत्यादि तामस मनुके महाबल पराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥६०॥ हे विप्र! इस प्रकार तामस मन्वंतरका वृत्तान्त है, सो मैंने आपसे वर्णन किया। जो मनुष्य इसको पढेंगे अथवा सुनेंगे, उनको अज्ञानरूपी अंधकार बाधा नहीं देगा ॥६१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां तामसमन्वन्तरे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥ मार्कण्डेयजी बोले हे ब्रह्मन्! अब रैवतनामक विख्यात पांचवें मनुकी उत्पत्तिका वृत्तान्त तुमसे विस्तारसहित वर्णन करताहूं, सुनो ॥ १ ॥ ऋतवाक् नामक विख्यात महाभाग ऋषि पहिले तो अपुत्र थे, फिर रेवतीनक्षत्रके शेषमें उन ऋषिके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ हे मुने! ऋषिने उस पुत्रकी विधिके अनुसार जातकर्मादि क्रिया और उपनयन आदि समस्त क्रिया संपन्न की। किन्तु वह पुत्र शीलवान् नहींहुआ अर्थात् असच्चरित्र हुआ था॥३॥हे मुनिवर! जबसे उक्त बालकका जन्म हुआ

इत्येतत्तामसंविप्रमन्वन्तरमुदाहृतम्॥ यःपठेच्छृणुयाद्वापितमसासनबाध्यते ॥ ६१ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेतामसमन्वन्तरेएकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पंचमोपिमनुर्ब्रह्मन्रैवतोनामविश्रुतः ॥ तस्योत्पत्तिंविस्तरशःशृणुष्वकथयामिते ॥ १ ॥ ऋषिरासीन्महाभागऋतवागितिविश्रुतः ॥ तस्यापुत्रस्यपुत्रोऽभूद्रेवत्यन्तेमहात्मनः ॥ २ ॥ सतस्यविधिवच्चक्रेजातकर्मादिकाःक्रियाः ॥ तथोपनयनादींश्चसचाशीलोऽभवन्मुने ॥ ३ ॥ यतःप्रभृतिजातोऽसौततःप्रभृतिसोप्यृषिः ॥ दीर्घरोगपरामर्शमवापमुनिपुङ्गवः ॥ ४ ॥ मातातस्यपरामार्तिंकुष्ठरोगादिपीडिता ॥ जगामसपिताचास्यचिन्तयामासदुःखितः ॥ ५ ॥ किमेतदितिसोऽप्यस्यपुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मतिः ॥ जग्राहभार्यामन्यस्यमुनिपुत्रस्यसंमुखीम् ॥ ६ ॥ ततोविषण्णमनसाऋतवागिदमुक्तवान् ॥ अपुत्रतामनुष्याणांश्रेयसेनकुपुत्रता ॥ ७ ॥ कपुत्रोहृदयायासंसर्वदाकुरुतेपितुः ॥ मातुश्चस्वर्गसंस्थांश्चस्वपितॄन्पातयत्यधः ॥ ८ ॥ सुहृदांनोपकारायपितॄणांचनतृप्तये ॥ पित्रोर्दुःखायधिग्जन्मतस्यदुष्कृतकर्मणः ॥ ९ ॥

तबसेही वह ऋषि दीर्घकालव्यापी रोगद्वारा ग्रसित हुए थे॥४॥ उसकी माताभी कुष्ठ (कोड) रोगसे पीड़ित होकर अत्यन्त क्लेश भोगने लगी । तब उसके पिता दुःखित होकर चिन्ता करनेलगे ॥ ५ ॥ कि "क्यों ऐसा हुआ ?" अनन्तर उस अत्यन्त दुर्मति पुत्रने एकसमय अन्य एक मुनिपुत्रके सन्मुख हो उसकी भार्याको हरण किया ॥ ६ ॥ इससे ऋतवाक्ऋषि दुःखितचित्त होकर कहनेलगे कि, "मनुष्यकी कुपुत्रतासे अपुत्रता श्रेष्ठ है" ॥ ७ ॥ क्योंकि कुपुत्र मातापिताके हृदयमें सदाही कष्टप्रदान करताहै और स्वर्ग में वास करनेवाले अपने पितरोंकोभी नीचे गिराताहै ॥ ८ ॥ इसके द्वारा सुहृद्गणोंकाभी उपकार नहीं होता पितृपुरुषोंकोभी तृप्ति

नहीं होती । मातापिताके दुःखका हेतु दुष्कर्मकारी कुपुत्रके जन्मको धिक्कार है ॥ ९ ॥ जिसकी संतान सर्व जनादृत (अर्थात् जिसका सब कोई आदर करै) परों पकारी, शान्तप्रकृति और सत्कर्ममें अनुरक्त हैं, वही धन्यहैं ॥ १० ॥ हमारा परलोकपराङ्मुख, कुपुत्रावलंबी और असन्तुष्ट यह मन्द जन्म केवल नरककेही लिये है सद्गतिके लिये नहीं ॥ ११ ॥ कुपुत्र, सुहृद्गणोंकी दीनता, अपकारी शत्रुओंका आनन्द और अकालमें पितामाताकी जरा (बुढापा) निश्चयही संपा दन करता है ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन ऋषिने अत्यन्त दुष्टचरित्र पुत्रके कुव्यवहारसे इसप्रकार मनमें दग्ध हो सब वृत्तान्त कहकर गर्गऋषिसे इस भांति पूछा ॥ १३ ॥ ऋतवाक्‌ने कहा "पूर्वमें मैंने सद्व्रतोंमें रत होकर यथाविधि वेद पढेहैं, और वेद पढनेके पीछे विधिपूर्वक स्त्रीग्रहण की है ॥ १४ ॥ हे महामुने ! श्रौत, स्मार्त और वषट्कार क्रियास्वरूप जो सब कार्य भार्याके सहित करने चाहिये, स्त्रीग्रहण करनेतकसे आज पर्यन्त उन सब व्रतके किसी अनु

धन्यास्तेतनयायेषांसर्वलोकाभिसंमताः ॥ परोपकारिणःशान्ताःसाधुकर्मण्यनुव्रताः ॥ १० ॥ अनिर्वृतंतथामन्दंपरलोकपराङ्मुखम् ॥ नरकायनसद्गत्यै कुपुत्रालम्बिजन्मनः ॥ ११ ॥ करोतिसुहृदां दैन्यमहितानांतथामुदम् ॥ अकालेचजरां पित्रोः कुसुतः कुरुतेध्रुवम् ॥१२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंस त्यन्तदुष्टस्यपुत्रस्यचरितैर्मुनिः॥ दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तंगर्गमपृच्छत ॥ १३ ॥ ऋतवागुवाच ॥ सुव्रतेनपुरावेदागृहीताविधिवन्मया ॥ समाप्यवेदान्विधिव त्कृतोदारपरिग्रहः ॥ १४ ॥ सदारेणक्रियाःकार्याःश्रौताःस्मार्त्तावषट्क्रियाः ॥ नमेन्यूनाःकृताःकाश्चिद्यावदद्यमहामुने ॥१५॥ गर्भाधानविधानेननकाममनु रुध्यता ॥ पुत्रार्थंजनितश्चायंपुन्नाम्नोबिभ्यतामुने ॥ १६ ॥ सोयंकिमात्मदोषेणममदोषेणवामुने ॥ अस्मद्दुःखावहोजातोदौःशील्याद्बन्धुशोकदः ॥ १७ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ रेवत्यन्तेमुनिश्रेष्ठजातोऽयंतनयस्तव ॥ तेनदुःखायतेदुष्टेकालेयस्मादजायत ॥१८॥ नतेऽपचारोनैवास्यमातुर्नायंकुलस्यते ॥ तस्यदौःशील्य हेतुत्वंरेवत्यन्तमुपागतम् ॥ १९ ॥ ऋतवागुवाच ॥ ॥ यस्मान्ममैकपुत्रस्यरेवत्यन्तसमुद्भवम् ॥ दौःशील्यमेतत्सातस्मात्पततामाशुरेवती ॥ २० ॥

ष्ठानमें त्रुटि नहीं की है ॥ १५॥ हे मुने ! मैंने पुन्नाम नरकके भयसे भीत होकर रक्षा पानेके लिये गर्भाधान विधानानुसारकर इस पुत्रको उत्पन्न किया है, कामानुरुद्ध होकर पुत्र उत्पन्न नहीं किया॥१६॥ हे मुने ! तो भी यह बालक जो हमको दुःखदेनेवाला और दुःस्वभावयुक्त बन्धुगणोंको शोकप्रद होकर उत्पन्न हुआ है, यह क्या अपने आत्मदोषसे अथवा मेरे दोषसे? ऐसा है" ॥ १७ ॥ गर्गजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारे पुत्रने रेवतीके अन्तमें जन्म ग्रहण किया है, यह दुष्ट कालमें जन्मा है, इसी कारण तुमको दुःख देता है ॥ १८ ॥ यह तुम्हारे वा तुम्हारी स्त्रीके, अथवा तुम्हारे वंशके स्वधर्मके व्यतिक्रमका फल नहीं है रेवतीका अन्तभागही इसके दुःस्वभावका कारण है ॥१९॥ ऋतवाक्‌ने कहा—जब कि, रेवतीके अन्तमें जन्म होनेके कारण मेरे एक मात्र पुत्रका यह दुःस्वभाव हुआ है, इसी निमित्त वह

रेवती शीघ्र पतित हो ॥ २० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--जब उन ऋतवाक्ने यह शापदिया तब सब मनुष्योंके सामनेही रेवतीनक्षत्रको पतित हुआ देखकर सबकाही चित्त आश्चर्ययुक्त हुआ ॥ २१ ॥ उस रेवती नक्षत्रने कुमुदपर्वतमें गिरकर उसकी चारों दिशाके वन, कन्दरा और झरने, इन सबको सहसा प्रकाशित किया ॥ २२ ॥ संपूर्ण पृथ्वीमें अत्यन्त मनोहर कुमुद पर्वत भी उसके गिरनेके कारण " रैवतक " नामसे विख्यात हुआ ॥ २३ ॥ उस नक्षत्रकी कान्तिसे पङ्कजयुक्त सरोवर हुआ और उस सरोवरसे अत्यन्त स्वरूपवान् एक कन्याने जन्म ग्रहण किया ॥ २४ ॥ हेभागुरे ! प्रमुचमुनिने उस कन्याको रेवतीकी कान्तिसे उत्पन्न हुआ देखकर उसका नाम 'रेवती' रक्खा ॥ २५ ॥ वह महाभाग प्रमुच रैवतकपर्वतमें अपने आश्रमके समीप उत्पन्नहुई कन्याका प्रतिपालन करने लगे ॥ २६ ॥

मार्कण्डेयउवाच॥तेनैवंव्याहृतेशापेरेवत्यृक्षंपपातह॥पश्यतःसर्वलोकस्यविस्मयाविष्टचेतसः ॥२१॥ रेवत्यृक्षंचपतितंकुमुदाद्रौसमन्ततः॥भासयामाससहसा वनकन्दरनिर्झरान् ॥२२॥ कुमुदाद्रिश्चतत्पातात्ख्यातोरैवतकोऽभवत् ॥ अतीवरम्यःसर्वस्यांपृथिव्यांपृथिवीधरः ॥२३॥ तस्यर्क्षस्यतुयाकान्तिर्जातापङ्कजिनीसरः ॥ततोजज्ञेतदाकन्यारूपेणातीवशोभना ॥२४॥ रेवतीकान्तिसम्भूतांतांदृष्ट्वाप्रमुचोमुनिः ॥ तस्यानामचकारेत्थंरेवतीनामभागुरे ॥२५॥ पोषयामास चैवैतांस्वाश्रमाभ्याशसम्भवाम् ॥ प्रमुचःसमहाभागस्तस्मिन्नेवमहाचले ॥ २६ ॥ तांतुयौवनिनींदृष्ट्वाकन्यकांरूपशालिनीम् ॥ समुनिश्चिन्तयामासको ऽस्याभर्ताभवेदिति ॥२७॥ एवंचिन्तयतस्तस्ययया‌ैकालोमहान्मुने ॥ नचाससादसदृशंवरंतस्यामहामुनिः ॥२८॥ ततस्तस्यावरंप्रष्टुमग्निंसप्रमुचोमुनिः ॥ विवेशवह्निशालांवैपृष्टस्तंप्राहहव्यभुक् ॥ २९ ॥ महाबलोमहावीर्यःप्रियवाग्धर्मवत्सलः ॥ दुर्गमोनामभविताभर्त्ताह्यस्यामहीपतिः ॥ ३० ॥

फिर वह मुनि उस रूपशालिनी कन्याको यौवनसंपन्न देखकर " कौन इसका भर्त्ताहोगा " यह चिन्ता करने लगे ॥ २७ ॥ हे मुने ! इसप्रकार चिन्ता करते करते उनको बहुत दिन बीत गये, किन्तु उन महामुनिको उनकी समान वर नहीं मिला ॥ २८ ॥ अनन्तर प्रमुचमुनि अग्निसे उसके वरविषयको पूछनेके लिये वह्निशालामें गये वहां मुनिके पूछनेपर हुताशनने मुनिसे कहा ॥ २९ ॥ कि, महाबल महावीर्य, प्रियवादी, धर्मवत्सल, दुर्गमनामक पृथ्वीपति इसके भर्त्ता होंगे ॥ ३० ॥

१ यह रेवती देवी पतित हुई थी ।

मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! अनन्तर स्वायम्भुवमनुके ज्येष्ठपुत्र, प्रियव्रतके वंशमें जन्में विक्रमशीलराजाकी कालिन्दीनामक महिषीके गर्भसे उत्पन्न,बुद्धिमान् महाबलपराक्रमशाली वह नराधिपति दुर्गम मृगया खेलतेहुए मुनिके उस आश्रमपदमें उपस्थित हुएथे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ वह भूमिपति आश्रममें प्रवेशपूर्वक ऋषिका दर्शन न पाया उस कृशाङ्गी कन्याको प्रिया कहकर पूछने लगे ॥ ३३ ॥ हे सुन्दरी ! वह भगवान् मुनिश्रेष्ठ इस आश्रमसे कहा गये हैं ? सो तुम कहो मैं उनको प्रणाम करनेकी इच्छा करताहूं ॥ ३४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—वह अग्निशालामें गयेहुए विप्र राजाका कहा यह वचन और "प्रिया" यह संबोधन सुनकर शीघ्र निकले ॥ ३५ ॥ उन मुनिने निकलतेही प्रथम नरेन्द्रचिह्नसहित विनयसे नम्र हुए महात्मा राजा दुर्गमको देखा ॥ ३६ ॥ उन्होंने उनको देखनेके पीछे गौतम

मार्कण्डेयउवाच ॥ अनन्तरश्चमृगयाप्रसङ्गेनागतोमुने ॥ तस्याश्रमपदंधीमान्दुर्गमःसनराधिपः ॥३१॥ प्रियव्रतान्वयभवोमहाबलपराक्रमः ॥ पुत्रोविक्रमशीलस्यकालिन्दीजठरोद्भवः॥३२॥सप्रविश्याश्रमपदंतांतन्वींजगतीपतिः॥ अपश्यमानस्तमृषिंप्रियेत्यामन्त्र्यपृष्टवान्॥३३॥राजोवाच ॥ ॥ क्वगतोभगवानस्माद्आश्रमान्मुनिपुङ्गवः ॥ तंप्रणेतुमिहेच्छामितत्त्वंप्रब्रूहिशोभने ॥ ३४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ अग्निशालांगतोविप्रस्तच्छ्रुत्वातस्यभाषितम् ॥ प्रियेत्यामन्त्रणंचैवनिश्चक्रामत्वरान्वितः ॥३५॥ सददर्शमहात्मानंराजानंदुर्गमंमुनिः ॥ नरेन्द्रचिह्नसहितंप्रश्रयावनतंपुरः ॥३६॥ तस्मिन्दृष्टेततःशिष्यमुवाचसतुगोतमम् ॥ गौतमानीयतांशीघ्रमर्घोऽस्यजगतीपतेः ॥ ३७ ॥ एकस्तावदयंभूपश्चिरकालादुपागतः ॥ जामाताचविशेषेणयोग्योऽर्घस्यमतोमम ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ततःसचिन्तयामासराजाजामातृकारणम् ॥ विवेदचनतन्मौनीजगृहेऽर्घंचतन्नृपः ॥ ३९ ॥ तमासनगतंविप्रोगृहीतार्घंमहामुनिः ॥ स्वागतंप्राहराजेन्द्रमपितेकुशलंगृहे ॥ ४० ॥

नामक शिष्यसे कह "हेगौतम ! इन भूपालके लिये शीघ्र अर्घ्य लाओ ॥ ३७ ॥ एक तो यह राजा बहुत दिनोंके पीछे आश्रममें आये हैं, इस परभी फिर यह जामाता हैं अत एव मेरे मतसे यह यथार्थ ही अर्घ्यके योग्य पात्र हैं " ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजीबोले।—तदनन्तर राजा, ऋषिके जामाता कहनेके कारणकी चिन्ता करने लगे, किन्तु कुछ नहीं समझ सके, तब नृपतिने मौनावलम्बनपूर्वक वह अर्घ्य ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ उन महामुनि विप्रने आसनपर बैठेहुए अर्घ्यग्रहणकारी राजेन्द्रसे पूछा हे नरेश्वर ! आप कुशलसे तो आये हैं ? हे महाबाहो ! आपके गृह कोशागार (खजाना) सैन्यगण, मित्रगण, एवं भृत्यगण और आमात्यगणकी कुशलता है ? आप

सबके अवलम्बनस्थानके आपकीभी कुशलता है ? ॥ ४० ॥ ४१ ॥ आपकी पत्नी यहांकुशलपूर्वक अवस्थान करती है इसीसे मैंने उसके विषयमें नहीं पूछा। इसके अतिरिक्त आपके पुरकी अन्य स्त्रियें कुशलिनी तो हैं ॥ ४२ ॥ राजा बोले—हे सत्यपराण ! आपके प्रसादसे मेरी किसी प्रकार अकुशल नहीं है; किन्तु हे मुने ! इस स्थानमें मेरी भार्या कौन है? यह जाननेके लिये मुझको कौतूहल उत्पन्न हुआ है॥ ४३ ॥ ऋषिने कहा हे राजन् ! रेवती नामक महाभागा त्रैलोक्यसुन्दरी वरारोहा आपकी भार्या है, उसको क्या आप नहीं जानते हैं ? ॥ ४४ ॥ राजाने कहा हे विभो ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा ॥ ॥ ४५ ॥ विपाटा और नन्दिनी इन प्रत्येकको भार्या जानता हूं, हे द्विज ! वह हमारेहीघर वास करतीं है किंतु हे भगवन् ! इस रेवतीनामक भार्याको मैं नहीं जानता, यह

कोशेबलेऽथमित्रेषुभृत्यामात्येनरेश्वर ॥ तथात्मनिमहाबाहोयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ४१ ॥ पत्नीचतेकुशलिनीयतएवानुतिष्ठति ॥ पृच्छा म्यस्यास्ततोनाहंकुशलिन्योऽपरास्तव ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ ॥ त्वत्प्रसादादकुशलंनकचिन्ममसुव्रत ॥ जातकौतूहलश्चास्मिममभार्य्यात्रका मुने ॥ ४३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ रेवतीसुमहाभागात्रैलोक्यस्यापिसुन्दरी ॥ तवभार्य्यावरारोहातांत्वंराजन्नवेत्सिकिम् ॥ ४४ ॥ राजोवाच ॥ ॥ सुभद्रांशान्ततनयांकावेरीतनयांविभाम ॥ सुराष्ट्रजांसुजातांचकदम्बांचवरूथजाम् ॥ ४५ ॥ विपाठांनन्दिनींचैववेद्मिभार्यांगृहेद्विज ॥ तिष्ठन्तिसेनभगवन्रे वतींवेद्मिकान्वियम् ॥ ४६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ प्रियेतिसाम्प्रतंयेयंत्वयोक्तावरवर्णिनी ॥ किंविस्मृतंतेभूपालश्लाघ्येयंगृहिणीतव ॥ ४७ ॥ राजोवाच ॥ ॥ सत्यमुक्तंमयाकिन्तुभावोदुष्टोनमेमुने ॥ नात्रकोपंभवान्कर्तुमर्हत्यस्मासुयाचितः ॥ ४८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ यत्त्वंब्रवीषिभूपालनभा वस्तवदूषितः ॥ व्याजहारभवानेतद्वह्निनानृपचोदितः ॥ ४९ ॥ मयापृष्टोहुतवहःकोऽस्याभर्त्तेतिपार्थिव ॥ भवितातेनचाप्युक्तोभवानेवास्यवैवरः॥ ५० ॥

कौन है ? ॥ ४६ ॥ ऋषि बोले—हे भूपाल ! अभी जिस वरवर्णिनीको "प्रिया" कहकर आपने संबोधन कियाहै, वह वरवर्णिनीही आपकी श्लाघनीय गृह णी है आप क्या भूलगये ? ॥ ४७ ॥ राजाने कहा हे मुने ! सत्यही मैंने यह कहाहै किन्तु मेरे इस वचनमें मेरा दुष्टभाव नहीं है, आप इसके कारण मेरेप्रति कोप न करें यही प्रार्थना है ॥ ४८ ॥ ऋषि बोले—हे भूपाल ! आपने कहा कि, "मेरा भाव दूषित नहीं हैं" यह सत्यहै, किन्तु हे नृपते ! यह आपने अग्निकी प्रेरणासे ही कहाहै ॥ ४९ ॥ हे पृथ्वीपते ! मैंने अग्निसे पूछा था "कौन इसका पति होगा" हे भूपाल ! "आपही अब इसके पति होंगे" अग्निने यही कहा था॥ ५० ॥

अतएव हे नराधिपते ! जिसको आपने प्रिया कहकर संबोधन किया है, मैं आपको वहीकन्या देताहूं, ग्रहण कीजिये, आप विचार क्यों करते हैं ॥ ५१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर वह राजा ऋषिके इस प्रकार कहनेपर मौन होगये । तब ऋषि उस कन्याके विवाहकी विधि संपादन करनेमें उद्यत हुए ॥ ५२ ॥ हे महामुने ! पिताको विवाह करनेमें उद्यत देखकर विनयसे (मस्तक झुकाये हुए) कन्याने संक्षेपसे कहा ॥ ५३ ॥ हे तात ! यदि मुझमें आपकी प्रीति हो, तो मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये आप प्रसन्न होकर रेवतीनक्षत्रमें मेरा विवाहकार्य संपन्न कीजिये ॥ ५४ ॥ ऋषि बोले हे भद्रे ! रेवतीनक्षत्र चन्द्रयोगी होकर स्थित नहीं हैं, इसके अतिरिक्त विवाहमें अन्य सब श्रेष्ठ नक्षत्र वर्त्तमान हैं ॥ ५५ ॥ कन्या बोली—हे तात ! वह रेवतीनक्षत्रवर्जित काल मेरे सम्बन्धमें त्रिकल बोध होता है, मेरी समान कन्याका

तद्गृह्यतांमयादत्तातुभ्यंकन्यानराधिप ॥ प्रियेत्यामन्त्रिताचेयंविचारंकुरुषेकथम् ॥ ५१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोऽसावभवन्मौनी तेनोक्तःपृथिवीपतिः ॥ ऋषिस्तथोद्यतःकर्तुंतस्यावैवाहिकंविधिम् ॥ ५२ ॥ तमुद्यतंसापितरंविवाहायमहामुने ॥ उवाचकन्यायत्किंचित्प्रश्रयावनतानना ॥ ५३ ॥ यदिमेप्रीतिमांस्तातप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ रेवत्यृक्षेविवाहंमेतत्करोतुप्रसादितः ॥ ५४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ रेवत्यृक्षंनवैभद्रेचन्द्रयोगिव्यवस्थितम् ॥ अन्यानिसन्तिऋक्षाणिसुभ्रुवैवाहिकानिते ॥ ५५ ॥ कन्योवाच ॥ ॥ ताततेनविनाकालोविफलःप्रतिभातिमे ॥ विवाहोविफलेकालेमद्विधायाः कथंभवेत् ॥ ५६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ऋतवागितिविख्यातस्तपस्वीरेवतींप्रति ॥ चकारकोपंक्रुद्धेनतेनर्क्षंविनिपातितम् ॥ ५७ ॥ मयाचास्मैप्रतिज्ञाताभार्येतिमदिरेक्षणा ॥ नचेच्छसिविवाहंत्वंसंकटंनः समागतम् ॥५८॥ कन्योवाच॥ ऋतवाक्समुनिस्ताताकिमेवंतप्तवांस्तपः ॥ नत्वयाममतातेनब्रह्मबन्धोःसुतास्मिकिम् ॥ ५९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ब्रह्मबन्धोःसुतानत्वंबालेनैवतपस्विनः ॥ सुतात्वंममयोदेवान्कर्त्तुमन्यान्समुत्सहे ॥ ६० ॥

विवाह विकलकालमें किसप्रकार होगा ? ॥ ५६ ॥ ऋषिने कहा—पूर्वमें ऋतवाक्नामक विख्यात तपस्वीने रेवतीनक्षत्रके प्रति कुपित होकर उक्त नक्षत्रको आकाशसे गिरादिया है ॥ ५७ ॥ मैंने इसके पहिले राजासे प्रतिज्ञा करी है कि, इस मदिरेक्षणाको भार्यारूपमें तुम्हें प्रदान करूंगा, किन्तु तुम इससमय विवाह करनेमें सम्मत नहीं होतीहो, इस कारण मुझको संकट उपस्थित हुआ है ॥ ५८ ॥ कन्या बोली हे तात ! उन ऋतवाक् मुनिने ऐसी क्या तपस्या की है कि, जो मेरे पिता आपके द्वारा वैसी तपस्या साधित नहीं हुई, तो मैं क्या ब्रह्मबन्धुकी कन्याहूं ? ॥ ५९ ॥ ऋषिने कहा—हे बाले ! तुम ब्राह्मणाधमकी कन्या नहीं हो और सामान्य तपस्वीकी

कन्याभी नहींहो, जो ऋषि अन्य देवताओंके उत्पन्न करनेमें समर्थ है, तुम उसी मुझ ऋषिकी कन्या हो ॥ ६० ॥ कन्या बोली ।—यदि मेरे पिता ऐसे तपस्वी हैं, तो रेवती नक्षत्रको आकाशमें स्थितकर उस नक्षत्रमें मेरा विवाहकार्य सम्पादन क्यों नहींकरते ? ॥ ६१ ॥ ऋषिने कहा हे भद्रे ! ऐसाही हो, तुम्हारा मंगल हो, अब प्रीति मती होओ, मैं तुम्हारे निमित्त रेवतीनक्षत्रको चन्द्रमार्गमें स्थित करूंगा ॥ ६२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम ! इसके उपरान्त उन महामुनि प्रमुचने तप स्याके प्रभावसे रेवतीनक्षत्रको पूर्वके समान चन्द्रसंयुक्त किया ॥ ६३ ॥ फिर यथाविहित मंत्रोंके द्वारा दुहिताका विवाहकार्य संपन्न करके अत्यन्त प्रसन्न चित्त हो जामातासे कहने लगे ॥ ६४ ॥ ऋषिने कहा—हे भूपाल ! मैं विवाहका यौतुक स्वरूप तुमको क्या दूं ? सो कहो । तुम्हारी मांगी हुई दुर्लभ वस्तुभी मैं अप्रति

कन्योवाच ॥ तपस्वीयदिमेतातस्तत्किमृक्षमिदंदिवि ॥ समारोप्यविवाहोमेतदृक्षेक्रियतेनतु ॥ ६१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवंभवतुभद्रन्तेभद्रेप्रीतिमतीभव ॥ आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यृक्षंकृतेतव ॥ ६२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तपःप्रभावेणरेवत्यृक्षंमहामुनिः ॥ यथापूर्वन्तथाचक्रेसोमयोगिद्विजोत्तम ॥६३॥ विवाहंचैवदुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम् ॥ निष्पाद्यप्रीतिमान्भूयोजामातरमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ औद्वाहिकंतेभूपालकथ्यतांकिंददाम्यहम् ॥ दुर्लभ्यमपिदास्यामिममाप्रतिहतंतपः ॥६५॥ राजोवाच ॥ ॥ मनोःस्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नः सन्ततौमुने ॥ मन्वन्तराधिपंपुत्रंत्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम् ॥ ६६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ भविष्यत्येषतेकामोमनुस्त्वत्तनयोमहीम् ॥ सकलांभोक्ष्यतेभूपधर्मविच्चभविष्यति ६७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तामादायततोभूपः स्वमेवनगरंययौ ॥ तस्मादजायतसुतोरेवत्यांरैवतोमनुः ॥६८॥ समेतः सकलैर्धर्मैर्मानवैरपराजितः ॥ विज्ञाताखिलशास्त्रार्थो वेदविद्यार्थशास्त्रवित् ॥६९॥ तस्यमन्वन्तरेदेवान्मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान् ॥ कथ्यमानान्मयाब्रह्मन्निबोधसुसमाहितः ॥ ७० ॥ सुमेधसस्तत्रदेवास्तथाभूतनयाद्विज ॥ वैकुण्ठश्चामिताभाश्चच तुर्दशचतुर्दश ॥ ७१ ॥

हत तपके प्रभावसे तुम्हें दूंगा ॥ ६५ ॥ राजा बोले हे मुने ! मैंने स्वायम्भुव मनुके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, आपके प्रसादसे मन्वन्तराधिपति पुत्र प्राप्त करूं यही मेरी प्रार्थना है ॥ ६६ ॥ ऋषिने कहा—हे भूप ! तुम्हारी कामना पूर्ण होगी तुम्हारा पुत्र मनु होकर संपूर्ण पृथ्वीका भोग करेगा और धर्मज्ञ होगा ॥ ६७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले ! इसके पीछे वह राजा भार्या रेवतीके सहित अपनी राजधानीमें चले गये । अनन्तर रेवतीके गर्भसे रैवतमनुने जन्म ग्रहण किया ॥ ॥ ६८ ॥ यह धर्मोंके जाननेवाले मनुष्योंसे अपराजित, संपूर्ण शास्त्रार्थमें पारगामी, और वेदविद्या और अर्थशास्त्रके ज्ञाता हुए थे ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! उनके मन्वन्तरके देवता, मुनि, इन्द्र और भूपालगणका विषय कहताहूं, सावधान होकर सुनो ॥ ७० ॥ हे द्विज ! देवगण, सुमेधा, भूपति, वैकुण्ठ और अमिताभ, यह

चार गण मुक्त हैं प्रत्येक गणमें चौदह चौदह देवता हैं॥ ७१ ॥ उन चार गणमुक्त देवताओं के अधिपति शतयज्ञकारी विभु नामक इन्द्र थे ॥ ७२ ॥ हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्ववाहु, वेदवाहु, सुधामा महामुनि पर्जन्य ॥ ७३ ॥ और वेदवेदांगपारगामी महाभाग वसिष्ठ रैवत मन्वन्तरमें यह सप्तर्षि थे ॥ ७४ ॥ बलबन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य और सत्यक इत्यादि रैवतमनुके पुत्र थे ॥ ७५ ॥ रैवत मनुपर्यन्त जिन समस्त मनुगणोंका विषय मैंने तुमसे कहा, स्वारोचिष मनुके अतिरिक्त यह सब ही स्वायंभुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुए थे ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य इस उत्तम आख्यानको नित्य सुनतेहैं वा पढ़तेहैं, वह संपूर्ण पापों से छूटकर अभिलषितलोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ७७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रैवतमन्वन्तरे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे

तेषां देवगणानांतुचतुर्णामपिचेश्वरः ॥ नाम्नाविभुरभूदिन्द्रःशतयज्ञोपलक्षकः ॥ ७२ ॥ हिरण्यलोमावेदश्रीरूर्ध्ववाहुस्तथापरः ॥ वेदवाहुःसुधामाचपर्जन्यश्चमहामुनिः ॥ ७३ ॥ वसिष्ठश्चमहाभागोवेदवेदांगपारगः ॥ एतेसप्तर्षयश्चासन्रैवतस्यान्तरेमनोः ॥ ७४ ॥ बलबन्धुर्महावीर्यःसुयष्टव्यस्तथापरः ॥ सत्यकाद्यास्तथैवासन्रैवतस्यमनोःसुताः ॥ ७५ ॥ रैवतान्तास्तुमनवः कथितायेमयातव ॥ स्वायम्भुवाश्रयाह्येतेस्वारोचिषमृतेमनुम् ॥ ७६ ॥ (यएषां शृणुयान्नित्यंपठेदाख्यानमुत्तमम् ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्योलोकंप्राप्नोत्यभीप्सितम् ॥७७॥)इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरैवतमन्वन्तरेद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्येतत्कथितंतुभ्यंपंचमंमन्वन्तरंमया ॥ चाक्षुषस्यमनोःषष्ठंश्रूयतामिदमन्तरम् ॥ १ ॥ अन्यजन्मनिजातोऽसौचक्षुषःपरमेष्ठिनः ॥ चाक्षुषत्वमतस्तस्यजन्मन्यस्मिन्नपिद्विज ॥२॥ (अनमित्रस्यराजर्षेर्भद्राभार्यामहात्मनः ॥ जज्ञेसुतंसुविद्वांसंशुचिंजातिस्मरंविभुम् ॥३॥) जातंमातानिजोत्सङ्गेस्थितमुल्लाप्यतंपुनः ॥ परिष्वजतिहार्देनपुनरुल्लापयत्यथ॥४॥जातिस्मरःसजातोवैमातुरुत्सङ्गमास्थितः॥ जहासतंतदामातासंक्रुद्धावाक्यमब्रवीत् ॥५॥

द्विजोत्तम ! यह पांचः मन्वन्तरका विषय तुमसे वर्णन किया अब चाक्षुष मनुके छठे मन्वन्तरका वृत्तान्त कहताहूं, सुनो ॥ १ ॥ हे द्विज ! अन्य जन्ममें यह परमेष्ठी ब्रह्माजीके चक्षुसे उत्पन्न हुए थे, इसीकारण इस जन्ममेंभी उनका नाम चाक्षुष हुआ ॥ २ ॥ (महात्मा राजर्षि अनमित्रकी भद्रा नामक भार्यांने विद्वान्, शुचि, जातिस्मर, और विभु गुणयुक्त एक पुत्र उत्पन्न किया) ॥ ३ ॥ अपनी गोदीमें बैठेहुए उस नवीन उत्पन्न पुत्रका आदर करके जननीने फिर आनन्दमें भरकर आलिंगन किया । तदनन्तर फिर आदर करनेलगी ॥ ४ ॥ इससे माताकी गोदीमें स्थित उस जातिस्मरपुत्रने हास्य किया तब माता अत्यन्त क्रोधित

होकर उससे कहने लगी ॥ ५॥ हे वत्स ! मैं भीत हुई हूं, तुम्हारे वदनमें हँसी कैसीहै ? इस बालकपनमें ज्ञानोत्पन्न करके क्या कोई शुभ देखतेहो? ॥ ६ ॥ (माताके यह वचन सुनकर पुत्र हँसकर कहनेलगा) पुत्र बोला—सन्मुख मार्जारी जो मुझको भक्षणकरनेकी इच्छा करती है, यह क्या तुम नहीं देखती हो ? और यह जातहारिणी जो गुप्तभावसे विद्यमान है, इसकोभी क्या नहीं जान सकती ॥ ७ ॥ जब तुमने पुत्र प्रीतिद्वारा स्नेहवती होकर मुझको देखते देखते पुलकायमान और स्नेहसे प्रगट आँसुओंके द्वारा नेत्रोंको पूर्णकर वारम्वार आदरपूर्वक मुझको आलिंगन किया, तब मुझकोहँसी आगई, अब उसका कारण कहताहूं, सुनो ॥ ८ ॥ ९ ॥ मार्जारी और दूसरी छिपी हुई जातहारिणी अपने अर्थमें आसक्त होकर मुझको स्वार्थमें तत्पर होकर देखती हैं ॥ १० ॥ यह दोनों जिस प्रकार स्वार्थके लिये मेरे प्रति नम्रहृदयवाली

भीतास्मिकिमिदंवत्सहासोयद्वदनेतव ॥ अकालबोधःसञ्जातःकच्चित्पश्यसिशोभनम् ॥ ६ ॥ (तन्मातुर्वचनंश्रुत्वाप्रहस्येदमथाब्रवीत्) पुत्रउवाच ॥ मामत्तुमिच्छतिपुरोमार्जारींकिंनपश्यसि ॥ अन्तर्द्धानगताचेयंद्वितीयाजातहारिणी ॥ ७ ॥ पुत्रप्रीत्याचभवतीसहार्दामामवेक्षती ॥ उल्लाप्योल्लाप्यबहुशः परिष्वजतिमांयतः ॥८॥ उद्भूतपुलकास्नेहसम्भवास्राविलेक्षणा ॥ ततोममागतोहासःशृणुचाप्यत्रकारणम् ॥९॥ स्वार्थेप्रसक्तामार्जारीप्रसक्तंमामवेक्षते॥तथान्तर्द्धानगाचैवद्वितीयाजातहारिणी ॥ १० ॥ स्वार्थायस्निग्धहृदयेयथैवैतेममोपरि ॥ प्रवृत्तेस्वार्थमास्थायतथैवप्रतिभासिमे ॥११॥ किन्तुमदुपभोगायमार्जारीजातहारिणी ॥ त्वन्तुक्रमेणोपभोग्यंमत्तःफलमभीप्ससि ॥१२॥ नमांजानासिकोप्येषनचैवोपकृतंमया ॥ सङ्गतंनातिकालीनंपंचसप्तदिनात्मकम् ॥ १३ ॥ तथापिस्निह्यसेसास्रापरिष्वजसिचाप्यति ॥ ताततिवत्सभद्रेतिनिर्व्यलीकंब्रवीषिमाम् ॥ १४ ॥ मातोवाच ॥ नत्वाहमुपकारार्थंवत्सप्रीत्यापरिष्वजे ॥ नचेदेतद्भवत्प्रीत्यैपरित्यक्तास्म्यहंत्वया ॥ १५ ॥

हुई है, तुमभी उसी प्रकार स्वार्थके निमित्त मेरे प्रति स्नेहवती हुईहो, मुझको यही बोध होता है ॥ ११ ॥ यह मार्जारी और जातहारिणी मुझको भोजन करनेके लिये हरणकरेंगी, किन्तु तुम मुझसे क्रमशः अभिलाषित उपभोग्य काल प्राप्त करनेकी कामना करतीहो ॥ १२ ॥ मुझको जानती नहींहो, मैं कौन हूं ! मैंने तुम्हारा कोई उपकारभी नहीं किया है, बहुत दिनोंका मिलनभी नहीं है, केवल पांच सात दिन माता पुत्ररूपमें मिलन हुआ है ॥ १३ ॥ किन्तु तो भी नेत्रोंमें आँसू भरकर मुझसे स्नेह करतीहो, आलिंगन करतीहो और अकपट हृदयसे मुझको " हे तात ! हे वत्स !! हे भद्र !!! इस प्रकार कहतीहो॥ १४ ॥ माता बोली—हे वत्स ! उपकारकी आशासे मैं

तुमको आलिंगन नहीं करतीहूं, इस आलिङ्गन और खिलाने आदिके द्वारा यदि तुम्हारी प्रीतिका संचार नहीं होता, अर्थात् तुम प्रसन्न नहीं होते, तो मुझको तुम परित्याग करो ॥ १५ ॥ तुमसे मेरा जो स्वार्थ सिद्ध होगा, मैंनेभी उसको परित्याग किया । इस प्रकार कहकर प्रसूति जड़वत् बाह्येन्द्रियसम्पन्न और विशुद्ध अन्तःकरण उस पुत्रको परित्याग करके सूतिकागृह (सोवर) से निकली । तदनन्तर जातहारिणीने उस माताके त्यागेहुए पुत्रको हरण किया ॥ १६ ॥ १७ ॥ जातहारिणीने इस बालकको हरण करके विक्रान्त नामक महीपालकी पत्नीकी शय्यामें स्थापनपूर्वक उसका नवप्रसूत पुत्र हरण किया ॥ १८ ॥ उस जात हारिणीने उस राजपुत्रको भी अन्यके घर रख, उसके पुत्रको हरण कर अन्तमें तीसरेको भक्षण किया ॥ १९ ॥ अत्यन्त निर्दयी वह जातहारिणी प्रतिदिन इस प्रकार नवप्रसूत बालक हरणपूर्वक प्रथम दोका परिवर्त्तन करके तीसरेको भक्षण करती थी ॥ २० ॥ इसके पीछे उन महीपति विक्रान्तने, क्षत्रियोंके जो जो

स्वार्थोमयापरित्यक्तोयस्त्वत्तोमेभविष्यति ॥ इत्युक्त्वासातमुत्सृज्यनिष्क्रान्तासूतिकागृहात् ॥ १६ ॥ जडाङ्गबाह्यकरणंशुद्धान्तःकरणात्मकम् ॥ जहारतंपरित्यक्तंसातदाजातहारिणी ॥ १७॥ साहित्वातंतदाबालंविक्रान्तस्यमहीभृतः ॥ प्रसूतपत्नीशयनेन्यस्यतस्याददेसुतम् ॥ १८ ॥ तमप्यन्यगृहे नीत्वगृहीत्वातस्यचात्मजम् ॥ तृतीयंभक्षयामाससाक्रमाज्जातहारिणी ॥ ॥ १९ ॥ हृत्वाहृत्वातृतीयंतुभक्षयत्यतिनिर्घृणा ॥ करोत्यनुदिनं सातुपरिवर्ततथान्ययोः ॥२०॥ विक्रान्तोऽपिततस्तस्यसुतस्यैवमहीपतिः ॥ कारयामाससंस्काराञ्राजन्यस्यभवन्तिये ॥२१॥ आनन्देतिचनामास्यपिताच क्रेविधानतः ॥ मुदापरमयायुक्तोविक्रान्तःसनराधिपः ॥२२॥ कृतोपनयनंतंतुगुरुराहकुमारकम् ॥ जनन्याःप्रागुपस्थानंक्रियतांचाभिवादनम् ॥२३॥ सगुरो स्तद्वचःश्रुत्वाविहस्यैवमथाब्रवीत् ॥आनंदउवाच॥ वंद्यामेकतमामाताजननीपालनीनुकिम् ॥२४॥ गुरुरुवाच ॥ नन्वियंतेमहाभागजनित्रीजारुजात्मजा ॥ विक्रा न्तस्याग्रमहिषीहैमिनीनामनामतः ॥२५॥ आनन्दउवाच ॥ ॥ इयंजनित्रीचैत्रस्यविशालग्रामवासिनः ॥ विप्राग्र्यबोधपुत्रस्ययोस्यांजातोन्यतोगमम् ॥२६॥

संस्कार हैं, उस परिवर्त्तित पुत्रके भी वह वह सब संस्कार किये ॥ २१ ॥ विक्रान्तनरपति अत्यन्त आनन्दित हुएथे, इस कारण विधानानुसार "आनन्द" इस नामसे पुत्रका नामकरण किया ॥ २२ ॥ गुरुजीने उस यज्ञोपवीत किये कुमारसे जननीके समीप जाकर प्रथम प्रणाम करनेको कहा ॥ २३ ॥ आनन्द गुरुजीका वचन सुनकर हँसताहुआ कहने लगा । आनन्द बोला—मैं किस माताकीवन्दना करूं ? जननीको अथवा पालनेवालीको प्रणाम करूं ? ॥ २४ ॥ गुरुजी बोले हे महाभाग ! यह जारुथात्मजा हैमिनी नामक विक्रान्तराजाकी प्रधान महिषी क्या तुम्हारी जननी नहीं हैं ? ॥ २५ ॥ आनन्दने कहा । यह बोध नामक विप्रश्रेष्ठके पुत्र विशालग्रामनिवासी चैत्रकी माता हैं, इनके गर्भसे वह चैत्रही उत्पन्न हुआथा, मैंने अन्यत्र जन्म ग्रहण किया है ॥ २६ ॥

गुरुजीबोले--हे आनन्द ! तुम कहांसे आये हो ? तुमने जिस चैत्रकी बात कही, वह चैत्र कौन हैं ? तुमने कहां जन्म लियाथा ? और यहां कैसे आये ? तथा यहां जो उत्पन्न हुआथा, वह कहां गया ? तुम क्या कहते हो ? यह तो महा संकट देखाजाता है ॥ २७ ॥ आनन्दने कहा--हे द्विज ! मैंने अवनीपति अनमित्र नामक क्षत्रियके घर उनकी पत्नी गिरिभद्राके गर्भसे जन्म ग्रहण कियाहै और मुझको जातहारिणी हरण करके इस स्थानमें रखगई है ॥ २८ ॥ और उस हैमिनीके पुत्रको हरण करके पुनर्वार द्विजश्रेष्ठ बोधके घर लेजाकर ॥ ॥ २९ ॥ उस द्विजोत्तम बोधकी सन्तानको भक्षण कर गईथी । हैमिनीसुत वह बालक विशाल ग्राममें द्विजके संस्कारसे संस्कृत हुआ है ॥ ३० ॥ और आपके द्वारा मैं यहां संस्कृत हुआहूं । हे महाभाग ! आप मेरे गुरु हैं । आपकी आज्ञा मुझको

॥ गुरुरुवाच ॥ ॥ कुतस्त्वंकथयानन्दचैत्रःकोवात्वयोच्यते ॥ संकटंमहदाभातिक्जातोऽत्रब्रवीषिकिम् ॥ २७॥ आनन्दउवाच ॥ ॥ जातोऽहमनमित्रस्य क्षत्रियस्यगृहेद्विज ॥ तत्पत्न्यांगिरिभद्रायामाददेजातहारिणी ॥२८॥ तयात्रमुक्तोहैमिन्यागृहीत्वाचसुतंचसा॥बोधस्यद्विजमुख्यस्यगृहेनीतवतीपुनः॥२९॥ भक्षयामासचसुतंतस्यबोधद्विजन्मनः ॥ सतत्राद्विजसंस्कारैःसंस्कृतोहैमिनीसुतः ॥३०॥ वयमत्रमहाभागसंकृतागुरुणात्वया ॥ मयातववचःकार्य्यमुपैमिकत मांगुरो ॥ ३१ ॥ गुरुरुवाच ॥ ॥ अतीवगहनंवत्ससंकटंमहदागतम् ॥ नवेद्मिकिंचिन्मोहेनभ्रमन्तीवबहिबुद्धयः ॥ ३२ ॥ ॥ आनन्दउवाच ॥ ॥ मोह स्यावसरःकोऽत्रजगत्येवंव्यवस्थिते ॥ कःकस्यपुत्रोविप्रर्षेकोवाकस्यनबान्धवः ॥३३॥ आरभ्यजन्मनोनृणांसम्बन्धित्वमुपैतियः ॥ अन्यसंबंधिनोविप्रमृत्यु नासन्निवर्तिताः ॥ ३४ ॥ अत्रापिजातस्यसतःसम्बन्धोयोऽस्यबान्धवैः ॥ सोऽप्यस्तमन्तेदेहस्यप्रयात्येषोऽखिलक्रमः ॥ ३५ ॥ अतोब्रवीमिसंसारेवसतः कोनबान्धवः ॥ कोवापिसततंबन्धुःकिंवोविभ्राम्यतेमतिः ॥ ३६ ॥

सम्यक्प्रकार पालनीय है हे गुरो ! मैं किस जननीको प्रणाम करूं ? ॥ ३१ ॥ गुरुजीबोले–हे वत्स ! अत्यन्त विषम महासंकट उपस्थित हुआहै कुछभी नहीं समझ सक्ता मानों मोहके कारण बुद्धि भ्रमण करती है ॥ ३२ ॥ आनन्दने कहा–हे विप्रर्षे ! इस प्रकार व्यवस्थावाले इस जगत्में मोहका विराम क्या है ? अतएव कौन किसका पुत्र है ? और जब प्राणी जन्मसे लेकर प्राणियोंके संग विविध सम्बंधको प्राप्त होते हैं तब कोई किसीका बांधव नहीं है । संबंधयुक्त मनुष्यगण जिस भांति मृत्युके द्वारा लोटते रहतेहैं ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस संसारमें बांधवगणोंके सहित उत्पन्नहुए मनुष्योंका जो अखिल क्रम (सर्वानुगामी) संबंध है वहभी इसी प्रकार देहके विनाशके पीछे विनाशको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ इसी कारण कहताहूं संसारमें वास करनेवालोंका

कोई बंधु नहीं है और नित्य बंधुही कौनहै ? अतएव किस निमित्त अपनी बुद्धि भ्रान्त होतीहै ॥ ३६ ॥ मैं इसी जन्ममें दो पिता और दो माताको प्राप्त हुआ हूं, अन्य देहधारणमें जो ऐसा संबंध होगा तो फिर आश्चर्यही क्या है ? ॥ ३७॥अब मैं तपस्या करूंगा । आप विशालग्रामसे इन भूपतिके पुत्र उस चैत्रको इस स्थानमें लेआइये॥ ३८॥ मार्कण्डेयजी बोले तदनन्तर राजाने भार्या और बंधुगणोंकेसहित विस्मित हो, उस पुत्रसे मोह छोड उसको वन जानेकी अनुमति दी ॥ ३९ ॥ और जिस ब्राह्मणने चैत्रको पालाथा, उस ब्राह्मणको सन्मानित कर अपने पुत्रको लाय, राजाने उसको राज्यमें अभिषिक्त किया॥ ४०॥ इधर वह आनन्द मोक्षविरोधी सब कर्मोंको क्षय करनेकी इच्छासे बाल्य अवस्थासेही महावनमें तपस्या करने लगा ॥ ४१ ॥ जब आनन्द इस प्रकार तपस्या करनेमें प्रवृत्त

पितृद्वयंमयाप्राप्तमस्मिन्नेवहिजन्मनि ॥ मातृद्वयंचकिंचित्रंयदन्यद्देहसम्भवे ॥ ३७ ॥ सोऽहंतपःकरिष्यामित्वयायोह्यस्यभूपतेः ॥ विशालग्रामतः पुत्रश्चैत्रआनीयतामिह ॥ ३८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसविस्मितोराजासभार्य्यःसहबन्धुभिः ॥ तस्मान्निवर्त्यममतामनुमेनेवनायतम् ॥ ३९ ॥ चैत्रमानीयतनयंराज्ययोग्यंचकारसः ॥ संमान्यब्राह्मणंयेनपुत्रबुद्ध्यासपालितः ॥ ४० ॥ सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपेबालएवमहावने ॥ कर्मणांक्षपणार्थायविमुक्तेः परिपन्थिनाम् ॥४१॥ तपस्यन्तंततस्तंचप्राहदेवःप्रजापतिः ॥ किमर्थंतप्यसेवत्सतपस्तीव्रंवदस्वतत् ॥४२॥ आनन्दउवाच ॥ आत्मनःशुद्धिकामोऽहंकरोमिभगवंस्तपः ॥ बन्धायममकर्माणियानितत्क्षपणोन्मुखः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ क्षीणाधिकारोभवतिमुक्तियोग्योनकर्मवान् ॥ सत्वाधिकारवान्मुक्तिमवाप्स्यतिततोभवान् ॥ ४४ ॥ भवतामनुनाभाव्यंषष्ठेनव्रजतत्कुरु ॥ अलंतेतपसातस्मिन्कृतेमुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तोब्रह्मणासोऽपितथेत्युक्त्वामहामतिः ॥ तत्कर्माभिमुखोयस्तुतपसोविरराम ह ॥ ४६ ॥ चाक्षुषेत्याहतंब्रह्मातपसोविनिवर्तयन् ॥ पूर्वनाम्नाबभूवाथप्रख्यातश्चाक्षुषोमनुः ॥ ४७ ॥

हुआ, तब देव प्रजापतिने उससे कहा--हे वत्स ! किस निमित्त ऐसी तीव्र तपस्याकरते हो ? सो कहो ॥ ४२ ॥ आनन्दने कहा--हे भगवन् ! जो सब कर्म मेरे संसारबंधनका हेतुस्वरूप हैं, उनके नाश करनेकी इच्छासे मैं आत्मशुद्धिके लिये तपस्या करताहूं ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले--क्षीणाधिकार मनुष्यगण मुक्तिके योग्य होते हैं, वह कर्मवान् नहीं होते तो तुम सत्त्वाधिकारी (प्राणियोंके ऊपर आधिपत्य शाली) होकर किसप्रकार मुक्तिको प्राप्त होंगे ? ॥ ४४ ॥ तुम छठे मनु होंगे अब जाओ—वैसाही कार्य करो, तो मुक्त होंगे, अब तुम्हें तपस्या करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--ब्रह्माजीके इस प्रकार कहने पर वह महामति "यही हो" इसप्रकार कह उस कर्मके अभिमुख हो तपस्यासे विरत हुए ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजीने उनको तपस्यासे निवृत्त करके "चाक्षुष" इस पहिले नामसे

अभिहित किया, अनन्तर वह 'चाक्षुषमनु' नामसे विख्यात हुए ॥ ४७ ॥ इसके पीछे उन्होंने उग्र नामक राजाकी कन्या विदर्भासे विवाह करके उसके गर्भसे अनेक विक्रमशाली पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४८ ॥ हे द्विज ! उन मन्वन्तराधिपतिके मन्वन्तरमें जो जो देवता, जो जो ऋषि, जो इन्द्र और इनकी जो जो सन्तान हुई, वह सुनो ॥ ४९ ॥ हे विप्र ! इस मन्वन्तरमें देवताओंका प्रथमगण आर्यनामक है, उसगणमें विख्यात कर्म और यज्ञमें हव्यभोजी आठ देवता थे ॥ ५० ॥ विख्यात बलवीर्य और प्रभामण्डलमध्यस्थ होनेसे दुर्दर्श अपर देवता थे देवताओंका प्रसूत नामक दूसरा गण है, इसमेंभी आप देवता हैं ॥ ५१ ॥ हे द्विज ! तीसरे मन्याख्य देवतागणमें आठ और चौथे यूथग नामक गणमें आठ देवता थे॥ ५२॥ पंचमगणमें देवता अमृताशी नामसे विख्यात हैं । हे द्विज ! उस मन्वन्तरमें अन्य

उपयेमेविदर्भांससुतामुग्रस्यभूभृतः ॥ तस्यांचोत्पादयामासपुत्रान्प्रख्यातविक्रमान् ॥ ४८ ॥ तस्यमन्वन्तरेशस्यये्ऽन्तरेत्रिदशाद्विज ॥ येचर्षयस्तथैवेन्द्रोये सुताश्चास्यताञ्छृणु ॥४९॥ आप्यानामसुरास्तत्रतेषामेकोऽष्टकोगणः ॥ प्रख्यातकर्मणांविप्रयज्ञेहव्यभुजामयम् ॥५०॥ प्रख्यातबलवीर्य्याणांप्रभामण्डल दुर्द्दशाम् ॥ द्वितीयश्चप्रभूताख्योदेवानामष्टकोगणः ॥५१॥ तथैवाष्टकएवान्योभव्याख्योदेवतागणः ॥ चतुर्थश्चगणस्तत्रयूथगाख्यस्तथाष्टकः॥५२॥ लेखसंज्ञास्तथैवान्येतत्रमन्वन्तरेद्विज ॥ पंचमेचगणेदेवास्तत्संज्ञाह्यमृताशिनः ॥ ५३ ॥ शतंक्रतूनामाहृत्ययस्तेषामधिपोभवत् ॥ मनोजवस्तथैवेन्द्रःसंख्यातो यज्ञभागभुक् ॥५४॥ सुमेधाविरजाश्चैवहविष्मानुन्नतोमधुः॥अतिनामासहिष्णुश्चसप्तासान्निति चर्षयः॥५५॥उरूपुरुशतद्युम्नप्रमुखाःसुमहाबलाः॥चाक्षुषस्यमनोःपुत्राःपृथिवीपतयोभवन् ॥ ५६ ॥ एतत्तेकथितंषष्ठंमयामन्वन्तरंद्विज ॥चाक्षुषस्यतथाजन्मचरितंचमहात्मनः ॥ ५७ ॥ साम्प्रतंवर्त्ततेयोऽयंनाम्नावैवस्वतोमनुः ॥ सप्तमोयेन्तरेतस्यदेवाद्यास्ताञ्छृणुष्वमे ॥ ५८ ॥ (यइदंकीर्तयेद्धीमांश्चाक्षुषस्यांतरंभुवि ॥ शृणुतेचलभेत्पुत्रानारोग्यसुखसंपदम्) ॥ ५९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेषष्ठमन्वन्तरंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

देवगण लेखसंज्ञक हैं । इस पंचम गणमें भी अमृतभोजी देवता पूर्वके समान अष्टसंज्ञक हैं ॥ ५३ ॥ शत यज्ञ करके, यज्ञभागभुक् " मनोजव " नामक इन्द्र उनके अधिपति हुएथे ॥ ५४ ॥ सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अति और सहिष्णु, यह सप्तर्षि थे चाक्षुष मनुके उरू, पूरु, शतद्युम्न, इत्यादि महाबलवान् पुत्र गण पृथ्वीपति हुएथे ॥ ५५॥ ५६॥ हे द्विज ! मैंने इस छठे मन्वन्तरका विषय और महात्मा चाक्षुष मनुका जन्म एवं चारित्र तुमसे कहा ॥ ५७ ॥ अब वैवस्वतनामक जो सप्तम मनु वर्त्तमान है, उनके मन्वन्तरके देवता इत्यादिका विषय मुझसे सुनो ॥ ५८ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य पृथ्वीमें इस चाक्षुषमन्वन्तरका कीर्त्तन करेंगे अथवा इसको सुनेंगे, वह पुत्र आरोग्यता और सुखसंपदाको प्राप्त होंगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां षष्ठमन्वन्तरं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे महाभाग! विश्वकर्माकी संज्ञा नामक कन्या मार्त्तण्डदेवकी पत्नी थी। उसके गर्भद्वारा भास्करके औरससे ॥ १ ॥ विख्यात यश अत्यन्त ज्ञानसंपन्न मनुने जन्मग्रहण कियाथा। यह विवस्वानके पुत्र हुए, इस कारण इन मनुका वैवस्वत नाम विख्यात हुआथा ॥ २ ॥ सूर्यको देखतेही संज्ञा दोनों नेत्र मूँद लेतीथी इस निमित्त सूर्यदेवने एक दिन क्रोध करके उससे यह निष्ठुरवचन कहा ॥ ३ ॥ हे मूढे! जब कि तू सदा मुझको देखकर नेत्र संयम करती है, अर्थात् बंद करतीहै तो इसी प्रकार तू प्रजासंयमपरायण यमको उत्पन्न करेगी ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले! तबसे वह संज्ञादेवी भयाकुल होकर सूर्यके प्रति चंचलदृष्टि करने लगी। तब रविने चंचलनेत्रवाली देखकर फिर कहा ॥ ५ ॥ अब तुम मुझको देखकर जब दृष्टि चंचल करतीहो तब तुम इसी प्रकार

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ मार्त्तण्डस्यरवेर्भार्यातनयाविश्वकर्मणः ॥ संज्ञानाममहाभागतस्यांभानुरजीजनत् ॥ १ ॥ मनुंप्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् ॥ विवस्वतःसुतोयस्मात्तस्माद्वैवस्वतस्तुसः ॥ २ ॥ संज्ञाचरविणादृष्टानिमीलयतिलोचने ॥ यतस्ततःसरोषोऽर्कःसंज्ञांनिष्ठुरमब्रवीत् ॥ ३ ॥ मयिदृष्टेसदायस्मात्कुरुषेनेत्रसंयमम् ॥ तस्माज्जनिष्यसेमूढेप्रजासंयमनंयमम् ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततः साचपलांदृष्टिंदेवीचक्रेभयाकुला ॥ विलोलितदृशंदृष्ट्वापुनराहचतांरविः ॥ ५ ॥ यस्माद्विलोलितादृष्टिर्मयिदृष्टेत्वयाधुना ॥ तस्माद्विलोलांतनयांनदींत्वंप्रसविष्यसि ॥६॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततस्तस्यांतुसंजज्ञेभर्तृशापेनतेनवै ॥ यमश्चयमुनाचेयंप्रख्यातासुमहानदी ॥७॥ सापिसंज्ञारवेस्तेजःसेहेदुःखेनभाविनी ॥ असहन्तीचसातेजश्चिन्तयामासवैतदा ॥ ८ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिक्वगतायाश्चनिर्वृतिः ॥ भवेन्ममकथंभर्ताकोपमर्कश्चनैष्यति ॥ ९ ॥ इतिसंचिन्त्यबहुधाप्रजापतिसुतातदा ॥ बहुमेनेमहाभागापितृसंश्रयमेवसा ॥ १० ॥ ततःपितृगृहेगन्तुंकृतबुद्धिर्यशस्विनी ॥ छायामयीमात्मतनुंनिर्ममेदयितांरवेः॥ ११ ॥

विलोला नदीरूपिणी कन्या प्रसव करोगी ॥ ६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले तदनन्तर इसप्रकार पतिके शाप देनेपर उसके गर्भसे यमने जन्म ग्रहण किया और यमुना नामक विख्यात महानदी भी उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ उस संज्ञानामक कामिनीने उतने समयपर्यंत दुःखके सहित रविका तेज सहन कियाथा किन्तु अब वह तेज नहीं सहनकरसकनेके कारण चिन्ता करने लगी ॥ ८ ॥ "क्या करूं कहां जाऊं ? कहां जानेसे निवृत्ति हो ? और किस किस प्रकारसे मेरे भर्ता कोपके वशीभूत न हो ?" ॥ ९ ॥ तब प्रजापतिकी कन्या उस महाभाग संज्ञाने इसप्रकार अनेक भाँति चिन्ताकरके पिताके गृहकाही आश्रय लेना अच्छा समझा॥ १० ॥फिर उस यशस्विनीने पिताके घर जानेका निश्चय कर अपने देहसे रविकी प्रियतमा स्वीय छायामयशरीर निर्माण किया ॥ ११ ॥

और फिर उस छायासे कहा, इन सूर्यके घर जिसप्रकार मैं रहतीहूं तुमभी वैसेही भावसे रहना तथा पुत्र और स्वामी रविके प्रति मेरीही समान आचरण करना ॥ १२ ॥ भानुके पूँछनेपरभी मेरे इस जानेकी बात मत कहना, वरन् "वह संज्ञामैंही हूं" सदा यही बात कहना ॥ १३ ॥ छायासंज्ञा बोली हे देवी ! जबतक वह मेरे केशग्रहण नहीं करेंगे और शाप नहीं देंगे तबतक मैं तुम्हारे वचनानुसार कार्य करूंगी किन्तु शाप और केशाकर्षण होनेपर संपूर्ण वृत्तान्त कहदूंगी॥ १४॥छाया संज्ञाके इस प्रकार कहनेपर संज्ञादेवी पिताके घर चली गई और वहां तपस्याद्वारा विधूतपाप अर्थात् पापरहित विश्वकर्माको देखा ॥ १५ ॥ उन विश्वकर्माने इसका बहुत मान करके पूजन किया, तब आनन्दित होकर संज्ञा कुछकाल पिताके घर रही ॥ १६ ॥ फिर थोडेकालके उपरान्त अपनी कन्या उस सुन्दरीसे उसके पिता

तांचोवाचत्वयावेश्मन्यत्रभानोर्यथामया ॥ तथासम्यगपत्येषुवर्तितव्यंयथारवौ ॥ १२ ॥ पृष्टयापिनवाच्यंतेतथैतद्गमनंमम ॥ सैवास्मिनामसंज्ञेति वाच्यमेतत्सदावचः ॥ १३ ॥ छायासंज्ञोवाच ॥ ॥ आकेशग्रहणाद्देविआशापाच्चवचस्तव ॥ करिष्येकथयिष्यामिवृत्तंतुशापकर्षणात् ॥ १४ ॥ इत्यु क्तासातदादेवीजगामभवनंपितुः ॥ ददर्शतत्रत्वष्टारंतपसाधूतकल्मषम् ॥१५॥ बहुमानाच्चतेनापिपूजिताविश्वकर्मणा ॥ तस्थौपितृगृहेसातुकंचित्कालमनि न्दिता ॥ १६ ॥ ततस्तांप्राहचार्वङ्गींपितानातिचिरोषिताम् ॥ स्तुत्वाचतनयांप्रेमबहुमानपुरःसरम् ॥ १७ ॥ त्वांतुमेपश्यतोवत्सेदिनानिसुबहून्यपि ॥ मुहूर्त्तार्द्धसमानिस्युःकिन्तुधर्मोविलुप्यते ॥ १८ ॥ बान्धवेषुचिरंवासोनारीणांनयशस्करः ॥ मनोरथोबान्धवानांनार्य्याभर्तृगृहेस्थितिः ॥ १९ ॥ सात्वं त्रैलोक्यनाथेनभर्तासूर्य्येणसङ्गता ॥ पितृगेहेचिरंकालंवस्तुंनार्हसिपुत्रिके ॥ २० ॥ सात्वंभर्तृगृहंगच्छतुष्टोऽहंपूजितासिमे ॥ पुनरागमनंकार्यंदर्श नायशुभेमम ॥ २१ ॥

विश्वकर्माने अत्यन्त स्नेहभाव और अत्यन्त मानके सहित मीठे वचनोंद्वारा कहा ॥ १७ ॥ हे वत्से ! तुमको देखते देखते मेरे बहुत दिन बीतने परभी वह आधे मुहूर्तकी समान जान पड़ते हैं, किन्तु इससे धर्म लुप्त होता है ॥ १८ ॥ बांधवगणोंमें सदा वास करना स्त्रियोंके पक्षमें यशकारी कार्य नहीं है, स्त्रियोंका भर्त्ताके घरही वास करना बांधवोंको अभिमत है ॥ १९ ॥ हे पुत्रिके ! त्रैलोक्यनाथ सूर्य तुम्हारे भर्त्ता हैं, तुम उनके संग विवाहसूत्रमें मिलित हुई हो । पिताके घर सदा वास करना तुमको उचित नहीं है॥ २०॥ अतएव हे शुभे ! अब तुम पतिके घर जाओ, मै संतुष्ट हुआहूं, और मेरेद्वारा तुमभी सन्मानित हुईहो, मेरे देखनेके निमित्त

फिर आजाना ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! पिता विश्वकर्माके इस प्रकार कहने पर वह संज्ञा "वहीहो" ऐसा कह और पिताकी भली भांति पूजा करके उत्तरकुरुदेशमें चली गई ॥ २२ ॥ सूर्यके तेजसे डरीहुई वह संज्ञा सूर्यके तापमें अनिच्छुक हो, वहां वड़वा (घोड़ी) का रूप धारण करके तपस्या करने लगी ॥ २३ ॥ इस ओर "यही संज्ञा है" ऐसा मनमें समझ दिनपति सूर्यने दूसरी पत्नीमें दो पुत्र और एक मनोहर कन्या उत्पन्न करी ॥ २४ ॥ किन्तु छायासंज्ञा अपनी संतानके प्रति जिसप्रकार स्नेहवती थी, प्रकृत संज्ञाकी कन्या और दोनों पुत्रोंके प्रति वैसी नहींथी ॥ २५ ॥ नित्यही लालनादि उपभोगके समय दोनों संतानमें भिन्न भाव दिखाती । मनुने तो उसको क्षमा कियाथा, किन्तु यमने उसके इस विषमभावकी क्षमा नहीं की ॥ २६ ॥ उन्होंने कोपके वशीभूत हो प्रहार करनेके लिये चरण उठा लिया,

मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तासातदापित्रातथेत्युक्त्वाचसामुने ॥ संपूजयित्वापितरंजगामाथोत्तरान्कुरून् ॥ २२ ॥ सूर्यतापमनिच्छन्तीतेजसस्तस्यबिभ्यती ॥ तपश्चचारतत्रापिवडवारूपधारिणी ॥२३॥ संज्ञेयमितिमन्वानोद्वितीयायामहस्पतिः ॥ जनयामासतनयौकन्यांचैकांमनोरमाम् ॥२४॥ छायासंज्ञात्वपत्येषुयथास्वेष्वतिवत्सला ॥ तथानसंज्ञाकन्यायांपुत्रयोश्चान्ववर्त्तत ॥ २५ ॥ लालनाद्युपभोगेषुविक्षेपमनुवासरम् ॥ मनुस्तत्क्षान्तवानस्यायमस्तस्यानचक्षमे ॥ २६ ॥ ताडनायचवैकोपात्पादस्तेनसमुद्यतः ॥ तस्याःपुनःक्षांतिमतानतुदेहेनिपातितः ॥२७॥ ततःशशापतंकोपाच्छायासंज्ञायमंद्विज ॥ किंचित्प्रस्फुरमाणोष्ठीविचलत्पाणिपल्लवा ॥२८॥ पितुःपत्नीममर्य्यादंयन्मांतर्जयसेपदा ॥ भुवितस्मादयंपादस्तवाद्यैवपतिष्यति ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्ययमःशापंमात्रादत्तंभयातुरः ॥ अभ्येत्यपितरंप्राहप्रणिपातपुरःसरम् ॥३०॥ यमउवाच ॥ ॥ तातैतन्महदाश्चर्य्यंनदृष्टमितिकेनचित् ॥ मातावात्सल्यमुत्सृज्यशापंपुत्रेप्रयच्छति ॥ ३१ ॥ यथामनुर्ममाचष्टेनेयंमातातथामम ॥ विगुणेष्वपिपुत्रेषुनमाताविगुणाभवेत् ॥ ३२ ॥

किन्तु फिर उसी समय क्षमा करके उक्त चरण छायासंज्ञाके देहमें निपतित नहीं किया ॥ २७ ॥ हे द्विज ! तदनन्तर उस छायासंज्ञाने, क्रोधित हो अपना हाथ उठाय होठ कंपाय यमको यह शाप दिया ॥ २८ ॥ कि, मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूं । मेरी मर्यादा तोड चरण उद्यत करके मुझको घुडकता है, इस कारण अभी तेरा यह चरण पृथ्वीमें गिरै ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—यम माताका दिया इसप्रकार शाप सुन, भयातुर हो, पिताके समीप जाकर प्रणामपूर्वक कहने लगे ॥ ३० ॥ यमने कहा—हे तात ! माता स्नेह त्यागकर पुत्रको शाप दे, यह अत्यन्त आश्चर्य है और कभी किसीने यह बात नहीं देखी है ॥ ३१ ॥ मनुने मुझसे जिस

प्रकार कहा है, यह माता वैसी नहीं है, पुत्र असद्गुणयुक्त होनेपर भी माता कभी उसके प्रति विपरीत नहीं होती ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--भगवान् तिमिरारि (सूर्य) ने यमका वचन सुन छायासंज्ञाको सादर बुलाकर पूछा " संज्ञा कहां गई है " ॥ ३३ ॥ उसने कहा--हे विभावसो ! मैं विश्वकर्माकी कन्या, तुम्हारी पत्नी संज्ञाहूं । मेरेही गर्भसे आपकी इस सन्तानने जन्म ग्रहण किया है ॥ ३४ ॥ विवस्वान् सूर्यके जब इस प्रकार बहुत वार पूँछने पर भी उसने उसका यथार्थ उत्तर नहीं दिया । तब भास्वान् सूर्य क्रोधित होकर उसको शाप देनेमें उद्यत हुए ॥ ३५ ॥ तब जो जो बात हुईथी, वह सब उसने विवस्वानसे कहदी भगवान् मार्त्तण्डदेव यह सब बात जानकर विश्वकर्मा के घर गये ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त विश्वकर्माने अपने घर आयेहुए त्रैलोक्यपूजित द्युतिमान् सूर्यकी परम भक्ति

मार्कण्डेयउवाच॥यमस्यैतद्वचःश्रुत्वाभगवांस्तिमिरापहः ॥ छायासंज्ञांसमाहूयपप्रच्छक्वगतेतिसा ॥३३॥ साचाहतनयात्वष्टुरहंसंज्ञाविभावसो ॥ पत्नीतवत्वयापत्यान्येतानिजनितानिमे ॥ ३४ ॥ इत्थंविवस्वतःसातुबहुशःपृच्छतोयदा ॥ नाचचक्षेततःक्रुद्धोभास्वांस्तांशप्तुमुद्यतः ॥ ३५ ॥ ततःसाकथयामासयथावृत्तंविवस्वतः ॥ विदितार्थश्चभगवाञ्जगामत्वष्टुरालयम् ॥ ३६ ॥ ततःसपूजयामासतदात्रैलोक्यपूजितम् ॥ भास्वन्तंपरयाभक्त्यानिजगेहमुपागतम् ॥ ३७ ॥ संज्ञांपृष्टस्तदातस्मैकथयामासविश्वकृत् ॥ आगतैवेहमेवेश्मभवतःप्रेषितेतिवै ॥ ३८ ॥ दिवाकरःसमाधिस्थोवडवारूपधारिणीम् ॥ तपश्चरन्तींददृशेउत्तरेषुकुरुष्वथ ॥३९॥ सौम्यमूर्तिःशुभाकारोममभर्त्ताभवेदिति ॥ अभिसन्धिश्चतपसोबुबुधेऽस्यादिवाकरः ॥ ४० ॥ शातनंतेजसोमेऽद्यक्रियतामितिभास्करः ॥ तंचाहविश्वकर्माणंसंज्ञायाःपितरंद्विज ॥ ४१ ॥ संवत्सरभ्रमेस्तस्यविश्वकर्मारवेस्ततः ॥ तेजसःशातनंचक्रेस्तूयमानश्चदैवतैः ॥ ४२ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवैवस्वतमन्वन्तरेचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तंतुष्टुवुर्देवास्तथादेवर्षयोरविम् ॥ वाग्भिरीड्यमशेषस्यत्रैलोक्यस्यसमागताः ॥ १ ॥

सहित पूजा करी ॥ ३७ ॥ अनन्तर जब विश्वकर्मासे सूर्यने संज्ञाका वृत्तान्त पूछा, तब उन्हों ने कहा संज्ञा मेरे घर आई तो थी किन्तु मैंने उसको आपकेही घर भेजदिया ॥ ३८ ॥ तब दिवाकरने ध्यानमें स्थित होकर देखा कि, संज्ञा उत्तरकुरुवर्ष में घोडीका रूप धारणकिये तपस्या कररही है ॥ ॥ ३९ ॥ और दिवाकरने यहभी देखा कि, "मेरे भर्ता सुन्दराकृति और सौम्यमूर्तिहों" यह उसके तपस्याकरनेकी अभिलाषा है ॥ ४० ॥ हे द्विज ! भगवान् भास्करने फिर संज्ञाके पिता विश्वकर्मा से कहा मेरा तेज क्षीण कीजिये ॥ ४१ ॥ तब विश्वकर्मा ने देवताओं के स्तुति करनेपर संवत्सरभ्रमणकारी उन रविका तेज क्षय कियाथा ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वैवस्वतमन्वन्तरे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर देवता और देवर्षिगण समागत होकर सब

त्रैलोक्यके पूज्य रविकी वाक्यद्वारा स्तुति करनेलगे ॥ १ ॥ देवताबोले—हे देव ! तुम ऋक्स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है । तुम सामस्वरूप हो, तुमको नमस्कार है तुम्हीं यजुःस्वरूप और सामके द्युतिमान हो तुमको नमस्कार है ॥ २ ॥ तुम्हीं ज्ञानके एकमात्र आधारस्वरूप हो तमोनाशक हो शुद्धज्योतिःस्वरूप हो विशुद्ध और अमलात्मा हो, तुमको नमस्कार है ॥ ३ ॥ तुम शंख चक्र शार्ङ्ग और पद्मधारण करनेवाले हो तुम्हें नमस्कार है ॥ तुम्हीं वरिष्ठ वरेण्य, पर और परमा त्माहो तुम्हीं संपूर्ण जगद्व्यापिस्वरूप और आत्ममूर्तिहो तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥ तुम्हीं ज्ञानचेता मनुष्योंकी निष्ठाहो, सर्वभूतोंके कारणस्वरूप हो ॥ ५ ॥ तुम्हीं सूर्य स्वरूप प्रकाशात्मरूपी भास्कर और दिनकर हो तुमको नमस्कारहै ॥ ६ ॥ तुम्हीं रात्रिके कारणस्वरूप हो एवं तुम्हीं संध्या और तुम्हीं ज्योत्स्नाकारी हो, तुमको

देवाऊचुः ॥ ॥ नमस्तेऋक्स्वरूपायसामरूपायतेनमः ॥ यजुःस्वरूपरूपायसाम्नांधामवतेनमः ॥ २ ॥ ज्ञानैकधामभूतायनिर्धूततमसेनमः ॥ शुद्धज्योतिःस्वरूपायविशुद्धायामलात्मने ॥ ३ ॥ (चक्रिणेशंखिनेधाम्नेशार्ङ्गिणेपद्मिनेनमः ॥) वरिष्ठायवरेण्यायपरस्मैपरमात्मने ॥ नमोऽखिलजगद्व्या पिस्वरूपायात्ममूर्त्तये ॥ ४ ॥ सर्वकारणभूतायनिष्ठायैज्ञानचेतताम् ॥ ५ ॥ नमःसूर्य्यस्वरूपायप्रकाशात्मस्वरूपिणे ॥ भास्करायनमस्तुभ्यंतथादिनकृ तेनमः ॥ ६ ॥ शर्वरीहेतवेचैवसन्ध्याज्योत्स्नाकृतेनमः ॥ त्वंसर्वमेतद्भगवञ्जगदुद्भ्रमतात्वया ॥ ७ ॥ भ्रमत्याविद्धमखिलंब्रह्माण्डंसचराचरम् ॥ त्वदंशुभिरिदंस्पृष्टंसर्वंसंजायतेशुचिः ॥ ८ ॥ क्रियतेत्वत्करैःस्पर्शाज्जलादीनांपवित्रता ॥ होमदानादिकोधर्मोनोपकारायजायते ॥ ९ ॥ तावद्यावन्नसं योगिजगदेतत्त्वदंशुभिः ॥ ऋचस्तेसकलाह्येतायजूंष्येतानिचान्यतः ॥ १० ॥ सकलानिचसामानिनिपतन्तित्वदङ्गतः ॥ ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथत्वमेवचयजुर्मयः ॥ ११ ॥ यतःसाममयश्चैवततोनाथत्रयीमयः ॥ त्वमेवब्रह्मणोरूपंपरंचापरमेवच ॥ १२ ॥

नमस्कार है तुम्हीं भगवान्हो, तुम्हारे द्वाराही जगत् जाग्रतहो भ्रमित होता है ॥ ७ ॥ तुम्हारे द्वाराही यह चराचरयुक्त अखिल ब्रह्माण्ड विद्रुत होकर भ्रमण करता है । यह स्पर्शयोग्य संपूर्ण द्रव्य तुम्हारी किरणोंके स्पर्शसेही पवित्र होते हैं ॥ ८ ॥ तुम्हारे किरणोंद्वाराही जलादिकी पवित्रता साधित होती है । तबतक होमदानादि धर्म उपका रके निमित्त नहीं होता ॥ ९ ॥ हे देव ! यह जगत् जबतक तुम्हारे किरणोंके संयोगको प्राप्त नहीं होता, तुम्हारे अंगसे जो किरणो निकलते हैं, वह समस्तही ऋक् यजुः और साम हैं । हे जगन्नाथ ! तुम्हीं ऋक्मय, तुम्हीं यजुर्मय ॥ १० ॥ ११ ॥ और तुम्हीं साममयहो, अत एव हे प्रभो ! तुम्हीं त्रयीमयहो । तुम्हीं ब्रह्मरूपी, तथा

तुम्हीं प्रधान और अप्रधानहो ॥ १२ ॥ तुम्हीं मूर्तिधारी और मूर्तिहीन हो, स्थूल और सूक्ष्मरूपसे तुम्हीं स्थित हो हे देव ! तुम्हीं निमेषकाष्ठादिस्वरूप क्षयात्मक कालरूपी हो, तुम प्रसन्न होओ, अपनी इच्छासे रूप और तेजक्षय करो ॥ १३ ॥ यह मनोहर स्तोत्र मनुष्योंको श्रद्धासे सुनना चाहिये और गुरुकोभी समाधिमें स्थितहो अपने शिष्यके निमित्त देना चाहिये ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर, देवता और देवर्षियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोराशि अव्यय सूर्यने अपना तेज मुक्त किया ॥ १५ ॥ उन रविके ऋक् मय तेजसे पृथ्वी, यजुर्मय तेजसे आकाश और साममय तेजसे स्वर्ग हुआ ॥ १६ ॥ त्वष्टाने जो सूर्यके तेजका पंचदश भाग छीलदिया था, महात्मा त्वष्टाने उस तेजसेही महादेवका शूल ॥ १७ ॥ विष्णुका चक्र, और वसुगण, शंकर और पावककी दारुणशक्ति निर्माण की और उसीके

मूर्त्तामूर्त्तस्तथासूक्ष्मःस्थूलरूपस्तथास्थितः॥निमेषकाष्ठादिमयःकालरूपःक्षयात्मकः॥प्रसीदस्वेच्छयारूपंस्वतेजःशमनंकुरु॥१३॥(इदंस्तोत्रवरंरम्यंश्रोतव्यंश्रद्धयानरैः॥शिष्योभूत्वासमाधिस्थोदत्त्वादेयंगुरोरपि॥१४॥)मार्कण्डेयउवाच॥॥एवंसंस्तूयमानस्तुदेवैर्देवर्षिभिस्तथा॥मुमोचस्वंतदातेजस्तेजसांराशिरव्ययः॥१५॥ यत्तस्यऋङ्मयंतेजोभवितातेनमेदिनी॥ यजुर्मयेनापिदिवंस्वर्गः साममयंरवेः ॥१६॥ शातितास्तेजसोभागायेत्वष्ट्रादशपंचच ॥ त्वष्ट्रैवतेनशर्वस्यकृतंशूलंमहात्मना॥१७॥ चक्रंविष्णोर्वसूनांचशंकवोथसुदारुणाः॥ पावकस्यतथाशक्तिःशिबिकाधनदस्यच ॥१८॥ अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणियानिवै ॥ यक्षविद्याधराणाञ्चतानिचक्रेसविश्वकृत् ॥ १९ ॥ ततश्चषोडशंभागंबिभर्तिभगवान्विभुः ॥ तत्तेजःपंचदशधाशातितंविश्वकर्मणा ॥ २० ॥ ततोऽश्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् ॥ ददृशेतत्रसंज्ञांचवडवारूपधारिणीम् ॥ २१ ॥ साचदृष्ट्वातमायान्तंपरपुंसोविशङ्कया ॥ जगामसंमुखंतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥ २२ ॥

द्वारा कुबेरकी पालकी ॥ १८ ॥ और अन्यान्य देवगणोंके एवं यक्ष विद्याधरोंके जो सब उग्र अस्त्र हैं, वह समस्तही विश्वकर्माने निर्माण किये थे ॥ १९ ॥ अनन्तर भगवान् विभु सूर्यने अपने तेजका षोडशभागमात्र धारण किया। विश्वकर्माने उसकोभी फिर पन्द्रहवार छीला ॥ २० ॥ इसके पीछे भानुने अश्वरूप धारण कर, उत्तरकुरुवर्षमें जाय बडवारूपधारिणी संज्ञाको देखा ॥ २१ ॥ वह संज्ञा उनको आताहुआ देख, पराये पुरुषकी आशंकासे; पीठकी रक्षामें तत्पर हो उनके सन्मुख गई ॥ २२ ॥

तदनन्तर उसीस्थानमें उन दोनोंकी नासिका मिलनेपर घोड़ीके मुखसे नासत्य और दस्र नामक दो पुत्र बाहर निकले ॥ २३ ॥ और उस वीर्यके शेष भागसे चर्म (ढाल) वर्म (कवच) और खड्गधारी बाणतूणयुक्त अश्वारूढ़ रेवन्त नामक एकपुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ तदनन्तर सूर्यने उसको (अश्विनीको) अपना अतुलरूप दिखाया तब बड़वारूपधारिणी संज्ञाने, उनका यथार्थ स्वरूप देख, प्रसन्न हो अपना स्वरूप धारण किया ॥ २५ ॥ तब जलशोषक भास्कर स्वरूपधारिणी संज्ञानाम्नी इस प्रीतिमती भार्याको अपने घर ले आये ॥ २६ ॥ तदनन्तर इसका ज्येष्ठ पुत्रही वैवस्वत नामक मनु हुआ था, दूसरे पुत्र यम शापके कारण धर्मदृष्टि हुए ॥ २७ ॥ " तुम्हारे चरणसे मांसके सहित समस्त कृमि पृथ्वीतलमें गिरेंगे " इस शापका प्रतीकार उनके पिताने स्वयं किया था

ततश्चनासिकायोगंतयोस्तत्रसमेतयोः ॥ नासत्यदस्रौतनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥ २३ ॥ रेतसोऽन्तेचरेवन्तःखड्गीचर्म्मीतनुत्रधृक् ॥ अश्वारूढसमुद्भूतो बाणतूणसमन्वितः ॥२४॥ ततःस्वरूपमतुलंदर्शयामासभानुमान् ॥ तस्यैषाचसमालोक्यस्वरूपंमुदमाददे ॥ २५ ॥ स्वरूपधारिणींचेमामानिनायनिजाश्र मम् ॥ संज्ञांभार्य्यांप्रीतिमतींभास्करोवारितस्करः ॥ २६॥ ततःपूर्वसुतोयोऽस्याःसोऽभूद्वैवस्वतोमनुः ॥ द्वितीयश्चयमःशापाद्धर्मदृष्टिरभूत्सुतः ॥२७॥ कृम योमांससमादायपादतोऽस्यमहीतले॥ पतिष्यन्तीतिशापान्तंतस्यचक्रेपितास्वयम् ॥२८॥ धर्मदृष्टिर्यतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ॥ ततोनियोगंतंयाम्येचकारति मिरापहः ॥ २९ ॥ यमुनाचनदीजज्ञेकलिन्दान्तरवाहिनी ॥ अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ॥ ३० ॥ गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोऽपिनियोजितः ॥ छायासंज्ञासुतानांचनियोगःश्रूयतांमम ॥ ३१ ॥ पूर्वजस्यमनोस्तुल्यश्छायासंज्ञासुतोऽग्रजः ॥ ततःसावर्णिकींसंज्ञामवापतनयोरवेः ॥३२॥ भविष्यतिमनुः सोऽपिबलिरिन्द्रोयदातदा ॥ शनैश्चरोग्रहाणांचमध्येपित्रानियोजितः ॥३३॥ तयोस्तृतीयाकन्यातुतपतीनामसाकुरुम् ॥ नृपात्संवरणात्पुत्रमवापमनुजेश्वरम् ॥ ३४ ॥ तस्यवैवस्वतस्याहंमनोःसप्तममन्तरम् ॥ कथयामिसुतान्भूपानृषीन्देवान्सुराधिपम् ॥३५॥

॥ २८ ॥ यमको धर्मदृष्टि और शत्रुमित्रमें समदृष्टि देखकर तिमिरारि सूर्यने उनको यमत्वमें नियुक्त किया ॥ २९ ॥ यमुना नामक कन्या नदी रूपसे कलिन्द देशके मध्यमें बहने लगी और दोनों अश्विनीकुमार महात्मा पिताके द्वारा नियुक्त होकर स्वर्गके वैद्य हुए ॥ ३० ॥ और रेवन्त गुह्यकाधिपति त्वमें नियुक्त हुए अब छायासंज्ञाके पुत्रोंका नियोग मुझसे सुनो ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त पूर्वज वैवस्वतमनुके तुल्य छायासंज्ञाके गर्भसे उत्पन्न रविके ज्येष्ठ पुत्र सावर्णिक नामको प्राप्त हुए थे ॥ ३२ ॥ जिस समय बलि इन्द्र होंगे तब यहभी मनु होंगे, शनैश्चरभी पिताके द्वारा ग्रहोंमें नियुक्त हुए ॥ ३३ ॥ सबसे छोटी एक कन्या थी; जिसका नाम तपती है, उसने संवरण नामक राजासे कुरुनामक एक पुत्र प्राप्त कियाथा ॥ ३४ ॥ अब मैं उन सातवें मनु वैवस्वतके

अनन्तर समस्त ऋषि, देवगण, इन्द्र और उनके भूपाल पुत्रोंका विषय कहताहूं ॥ ३५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वैवस्वतोत्पत्तिर्नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥ मार्कण्डेयजी बोले—आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, मरुत्, भृगु और अंगिरा, इस मन्वन्तरमें यह आठ देवता हैं ॥ १ ॥ तिनमें आदित्य, वसु और रुद्रगण कश्यपजीकी सन्तान हैं और साध्य,वसु एवं विश्वगण, यह तीनगण धर्मके पुत्र हैं ॥ २ ॥ भृगुगण देवता भृगुके पुत्र हैं, और अङ्गिरागण अंगिराके पुत्र हैं। हे द्विज ! इस सर्गको सम्प्रति मारीचसर्ग जानना चाहिये ॥ ३ ॥ इस मन्वन्तरमें महात्मा ऊर्जस्वी इन्द्र होकर यज्ञ भागभुक् (यज्ञभाग भोगनेवाले) हुएथे, पूर्वमें इन्द्र हुएथे, तथा पीछे जो इन्द्र होंगे और अब जो इन्द्रत्वमें वर्त्तमानहैं॥४॥ यह सब देवेन्द्रही समलक्षण कहकर विख्यात है। सबही सहस्राक्ष, वज्रधारी और पुरन्दर हैं ॥५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवैवस्वतमन्वन्तरेवैवस्वतोत्पत्तिर्नामपंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ आदित्यावसवोरुद्राः साध्याविश्वेमरुद्गणाः ॥ भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौयत्रदेवगणाःस्मृताः ॥१॥ आदित्यावसवोरुद्राविज्ञेयाःकश्यपात्मजाः ॥ साध्याश्चवसवोविश्वेधर्मपुत्रगणास्त्रयः ॥ ॥ २ ॥ भृगोस्तुभृगवोदेवाःपुत्राह्यङ्गिरसःसुताः ॥ एषसर्गश्चमारीचोविज्ञेयःसाम्प्रताधिपः ॥३॥ ऊर्जस्वीनामचैवेन्द्रोमहात्मायज्ञभागभुक् ॥ अतीतानागता येचवर्तन्तेसाम्प्रतंचये ॥४॥सर्वेतेत्रिदशेन्द्रास्तुविज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥ सहस्राक्षाःकुलिशिनःसर्वएवपुरन्दराः ॥५॥ मघवन्तोवृषाःसर्वेशृङ्गिणोगजगामिनः ॥ तेशतक्रतवःसर्वेभूताभिभवतेजसः ॥ ६ ॥ धर्माद्यैःकारणैःशुद्धैराधिपत्यगुणान्विताः ॥ भूतभव्यभवन्नाथाःशृणुचैतत्त्रयंद्विज ॥७॥ भूर्लोकोऽयंस्मृताभूमिरन्तरिक्षंदिवःस्मृतम् ॥ दिव्याख्यश्चतथास्वर्गस्त्रैलोक्यमितिगद्यते ॥ ८ ॥ अत्रिश्चैववसिष्ठश्चकश्यपश्चमहानृषिः ॥ गौतमश्चभरद्वाजोविश्वामित्रोऽथकौशिकः ॥९॥ तथैवपुत्रोभगवानृचीकस्यमहात्मनः ॥ जमदग्निस्तुसप्तैतेमनुयोऽत्रतथान्तरे ॥१०॥ इक्ष्वाकुर्नाभगश्चैवधृष्टःशर्यातिरेवच ॥ नरिष्यन्तश्चविख्यातोनाभागोदिष्टएवच ॥११॥ करूषश्चपृषध्रश्चवसुमाँल्लोकविश्रुतः ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैतेनवपुत्राःप्रकीर्तिताः ॥ १२ ॥

सबही मघवा, वृष शृंगधारी और गजगामी हैं और वह सबही शतयज्ञकारी एवं भूतपराभवकारी तेजयुक्त हैं ॥ ६ ॥ हे द्विज ! वह सबही शुद्ध धर्मादिके कारण होनेसे आधिपत्यगुणयुक्त एवं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानके अधिपति हैं। अब त्रैलोक्यका विभाग सुनो ॥ ७ ॥ इस भूमिको "भूर्लोक" अन्तारिक्षको "दिव" और स्वर्गको " दिव्य" कहते हैं इन्हीं तीनोंको त्रैलोक्य कहाहै ॥ ८ ॥ अत्रि, वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिक नन्दन विश्वामित्र ॥ ९ ॥ और महात्मा भगवान् ऋचीकनन्दन जमदग्नि, यही सातमुनि इस मन्वन्तरमें सप्तर्षि हैं॥ १० ॥ इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥ ११ ॥ करुष और पृषध्र,

यह नौ वैवस्वतमनुके दीप्तिमान् और जगत् विख्यात् पुत्र थे ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने इस वैस्वतमन्वन्तरका तुमसे वर्णन किया । हे मुनिश्रेष्ठ ! इसका श्रवण और पाठ करनेपर मनुष्य शीघ्रही सब पापोंसे छूटकर पुण्य भोगकरतेहैं ॥ १३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वैवस्वतमन्वन्तरे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥
क्रौष्टुकिने कहा ।—स्वायम्भुवादि सात मनुका विषय और उनके मन्वन्तरमें, जो जो देवता, जो जो राजा और जो जो ऋषि थे, वह तो आपने मुझसे कहा ॥ १ ॥ हे महामुने ! इस कल्पमें और जो सात मनु होंगे उनका विषय और उस समय जो देवादि होंगे उनका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—छाया संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न पूर्वजात वैवस्वतमनुके तुल्य जिन सावर्णिका विषय तुमसे कहा है, वही आठवें मनु होंगे ॥ ३ ॥ इस मन्वन्तरमें राम, व्यास, गालव,

वैवस्वतमिदंब्रह्मन्कथितंतेमयान्तरम् ॥ अस्मिञ्छ्रुतेनरःसद्यःपठितेचैवसत्तम ॥ मुच्यतेपातकैःसर्वैःपुण्यंचमहदश्नुते ॥ १३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवैवस्वतमन्वन्तरेषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ स्वायम्भुवाद्याःकथिताःसप्तैतेमनवोमम ॥ तदन्तरेषुयेदेवाराजानोमुनयस्तथा ॥ १ ॥ अस्मिन्कल्पेसप्तयेऽन्येभविष्यन्तिमहामुने ॥ मनवस्तान्समाचक्ष्वतथादेवादयश्चये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथितस्तव सावर्णिश्छायासंज्ञासुतश्चयः ॥ पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसमनुर्भविताष्टमः ॥ ३ ॥ रामोव्यासोगालवश्चदीप्तिमान्कृपएवच ॥ ऋष्यशृङ्गस्तथाद्रोणस्तत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥ ४ ॥ सुतापाश्चामिताभाश्चमुख्याश्चैवात्रिधासुराः ॥ विंशकःकथिताश्चेषांत्रयाणांत्रिगुणोगणः ॥ ५ ॥ तपस्तपश्चशक्रश्चद्युतिज्योंतिःप्रभाकरः ॥ प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतुः ॥ ६ ॥ इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविंशकोगणः ॥ प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्योविंशकोगणः ॥ ॥ ७ ॥ सुराणाममितानांतुतृतीयमपिमेशृणु ॥ दमोदान्तऋतः सोमोवित्ताद्याश्चैवविंशतिः ॥ ८ ॥

दीप्तिमान्, कृप, ऋष्यशृंग, और द्रौणि (अश्वत्थामा) यह सात जन सप्तर्षि होंगे ॥ ४ ॥ इस मन्वन्तरमें सुतपा, अमिताभ, और मुख्य; यह तीन प्रकारके देवगण हैं, इन देवताओंके प्रत्येक वीस गण हैं. सुतरां वह सब त्रिगुणित विंशक अर्थात् साठहैं ॥ ५ ॥ तिनमें तपस्तपः, शक्र, द्युतिः, ज्योतिः, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेजः, रश्मि और वक्रतु ॥ ६ ॥ इत्यादि समस्त देवतासुतापा देवताओंके वीस गणोंके अन्तर्गत हैं । प्रभु, विभु, और विभासादि देवता, अमिताभ देवताओंके विंशक गणहैं ॥ ७ ॥ इसके पीछे तीसरे गणका विषय सुनो । दम, दान्त, रित सोम और विन्त इत्यादि देवतागण मुख्य नामक तीसरे विंशक गणके अन्तर्गतहैं ॥ ८ ॥

यह सब मन्वन्तराधिपति और सब मरीचि–तनय प्रजापति कश्यपजीकी सन्तानहैं ॥ ९ ॥ यह सावर्णि मन्वन्तरमें देवता होंगे और हे मुने ! विरोचनके पुत्र बलि उस समयमें इनके इन्द्र होंगे॥ १०॥जो दैत्यराज अब भी प्रतिज्ञा पाशसे बँधकर पातालमें वास करते हैं। सावर्णिमनुके विरजा, अर्व्ववीर, निर्मोह,सत्यवाक्, कृति और विष्णु इत्यादि नामधारी पुत्र उस समयमें राजा होंगे ॥ ११ ॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सावर्णिके मन्वन्तरे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–सूर्यका पुत्र सावर्णि (अर्थात् सूर्यकी छायासे उत्पन्न) कि, जिसको अष्टम मनु कहते हैं. उसकी उत्पत्ति मैं विस्तार सहित कहताहूं सुनो ॥

मुख्याह्येतेसमाख्यातादेवामन्वन्तराधिपाः ॥ मारीचस्यैवतेपुत्राः काश्यपस्यप्रजापतेः ॥ ९ ॥ भविष्याश्चभविष्यान्तिसावर्णस्तान्तरेमनोः ॥ तेषामिन्द्रोभविष्यस्तुवलिर्वैरोचनिर्मुं ने ॥ १० ॥ पावालआस्तेयोऽद्यापिदैत्यःसमयबन्धनः ॥ विरजाश्चार्ववीरश्चनिर्मोहःसत्यवाक्कृतिः ॥ विष्णवाद्याश्चैवतनयाःसावर्णस्यमनोर्नृपाः ॥ ११ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ॐ नमश्चण्डिकायै ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सावर्णिःसूर्यतनयोयोमनुःकथ्यतेष्टमः ॥ निशामयतदुत्पत्तिंविस्तराद्गदतोमम ॥ १ ॥ महामायानुभावेनयथा मन्वन्तराधिपः ॥ सबभूवमहाभागःसावर्णिस्तनयोरवेः ॥ २ ॥ स्वारोचिषेंतरेपूर्वंचैत्रवंशसमुद्भवः ॥ सुरथोनामराजाभूत्समस्तोक्षितिमंडले ॥ ३ ॥ तस्यपालयतःसम्यक्प्रजाःपुत्रानिवौरसान् ॥ बभूवुःशत्रवोभूपाःकोलाविध्वंसिनस्तदा ॥ ४ ॥ तस्यतैरभवद्युद्धमतिप्रबलदंडिनः ॥ न्यूनैरपिसतैर्युद्धेकोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ महामाया भगवतीके अनुग्रहसे वह महाभाग सूर्यका पुत्र सावर्णि जिस भाँति समस्त ऐश्वर्यसे युक्त होकर मन्वन्तरका अधिपति होगया, सो सुनो ॥ २ ॥ स्वारोचिष नामक दूसरे मनुके राज्याधिकारमें कथासे पूर्व चैत्रके वंशमें उत्पन्न सुरथ नाम सब पृथ्वीमण्डलका राजा हुआ ॥ ३ ॥ जब वह सुरथ नामक नरपति अपनी प्रजाको नीतिसहित और अपने पुत्रोंकी भाँति पालने लगा, तब उसकाल उसके कोलाविध्वंस नामक राजा वैरी होगये ॥ ४ ॥ और उनका, अत्यन्त प्रबल दंड देनेवाले सुरथके संग संग्राम हुआ । यद्यपि कोलाविध्वंसी राजा थोड़े थे किन्तु तोभी उन्होंने उसे युद्धसे परास्त किया, अर्थात् जीत लिया ॥ ५ ॥

अनन्तर प्रवल वैरियोंसे दवकर वह महाभाग राजा सुरथ अपने पुरमें आनकर अपने देशका राज्य करने लगा ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त उस पुरमें भी बलवान् और दुष्ट मन्त्रियोंने उस दुर्वल राजाका कोशागार (खजाना) और सेना समस्त हरण करी ॥ ७ ॥ तदनन्तर वह राजा अपना संपूर्ण राज्य हरण होजाने पर मृगयाके बहाने अकेला घोडेपर चढ गहन वनमें गया ॥ ८ ॥ वहां उसने पराई हिंसा न करनेवाले पशुओंसे पूर्ण और मुनि एवं उनके शिष्योंसे शोभित मेधा नामक महर्षिका आश्रम देखा ॥ ९ ॥ उस स्थानमें उन मुनिने उसका अत्यन्त सत्कार किया। तब वह राजा इधर उधर विचरण करता हुआ कुछ कालतव उन मुनिवरके आश्रममें रहा ॥ १० ॥ अनन्तर जब उसके मनको वहांभी ममताने घुमाया तब वह चिन्ता करने लगा कि, जिस पुरका मेरे पुरखोंने पालन

ततःस्वपुरमायातोनिजदेशाधिपोभवत् ॥ आक्रांतःसमहाभागस्तैस्तदाप्रवलारिभिः ॥ ६ ॥ अमात्यैर्वलिभिर्दुष्टैर्दुर्वलस्यदुरात्मभिः ॥ कोशोवलंचापहृतंतत्रापिस्वपुरेततः ॥ ७ ॥ ततोमृगयाव्याजेनहृतस्वाम्यःसभूपतिः ॥ एकाकीहयमारुह्यजगामगहनंवनम् ॥ ८ ॥ सतत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यःसुमेधसः ॥ प्रशांतश्वापदाकीर्णमुनिशिष्योपशोभितम् ॥ ९ ॥ तस्थौकंचित्सकालंचमुनिनातेनसत्कृतः ॥ इतश्चेतश्चविचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥१०॥ सोचिंतयत्तदातत्रममत्वाकृष्टमानसः ॥ मत्पूर्वैःपालितंपूर्वमयाहीनंपुरंहितत् ॥ मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतःपाल्यतेनवा ॥ ११ ॥ नजानेसुप्रधानोमेशूरोहस्तीसदामदः ॥ ममवैरिवशंयातःकान्भोगानुपलप्स्यते ॥ १२ ॥ येममानुगतानित्यंप्रसादधनभोजनैः ॥ अनुवृत्तिंध्रुवंतेद्यकुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ॥ १३ ॥ असम्यग्व्ययशीलैस्तैःकुर्वद्भिःसततंव्ययम् ॥ संचितःसोतिदुःखेनक्षयंकोशोगमिष्यति ॥ १४ ॥ एतच्चान्यच्चसततंचिंतयामासपार्थिवः ॥ तत्रविप्राश्रमाभ्याशेवैश्यमेकंददर्शसः ॥ १५ ॥

किया था, अब वह मुझ करके रहित होरहा है, वह मेरे दुराचारी सेवक उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते होंगे वा नहीं, यह मैं नहीं जानताहूं ॥ ११ ॥ सदा मदयुक्त मेरा वह प्रधान शूर हाथी शत्रुओंके वश होकर इस समय किसप्रकार भोगको प्राप्त होगा ? ॥ १२ ॥ और जो प्रतिदिन प्रसाद, धन और भोजनके देनेसे मेरे अनुगत अर्थात् आज्ञाकारी थे, वह अब निस्सन्देह अन्य राजाओंकी सेवा करते होंगे ॥ १३ ॥ और अन्याय रीतिसे व्यय करनेवाले निरन्तर व्यय करते हुए उन सेवकोंके द्वारा अतीवकष्टसे संचित किया खजाना नष्ट होजायगा ॥ १४ ॥ सुरथ राजा इस भाँति और अन्यान्य नाना प्रकारकी चिन्ता करने लगे। अनन्तर राजाने

उन मुनिके आश्रमके निकट एक वैश्यको देखकर ॥ १५ ॥ पूछा तुम कौन हो ? और तुम्हारे यहा आनेका कारण क्या है?और शोकयुक्तके समान तुम उदास क्यों दीखतेहो ? ॥ १६ ॥ राजाके इस प्रकार प्रणययुक्त वचन सुनकर वैश्यने अत्यन्त नम्रभावसे राजाको उत्तर दिया ॥ १७ ॥ वैश्य बोला—मैं धनवान् पुरुषोंके कुलमें उत्पन्न हुआ समाधि नामक वैश्य हूं, असज्जन स्त्रीपुत्रोंने धनके लालचसे॥ १८ ॥ मेरा सब धन हरण करके मुझे घरसे निकाल दिया है और पुत्र स्त्री तथा धनहीन मुझको मेरे मित्र और भाई बंधुओंनेभी त्याग दिया, इस करण मैं दुःखी होकर इस वनमें आया हूं, ॥ १९ ॥ और यहां वनमें बैठाहुआ अपने पुत्रों बान्धवों तथा स्त्रियोंके कुशलाकुशलकी वार्त्ता नहीं जानता॥ २०॥ किन्तु उनके घरमें कुशल है, या कोई पीडाहै और मेरे पुत्रोंका आचरण अब अच्छा है वा बुरा है?॥ २१ ॥ राजाने कहा—जिन

सपृष्टस्तेनकस्त्वंभोहेतुश्चागमनेत्रकः ॥ सशोकइवकस्मात्त्वंदुर्मनाइवलक्ष्यसे ॥ १६ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यभूपतेःप्रणयोदितम् ॥ प्रत्युवाचसतंवैश्यः प्रश्रयावनतोनृपम् ॥ १७ ॥ वैश्यउवाच ॥ ॥ समाधिर्नामवैश्योहमुत्पन्नोधनिनांकुले ॥ पुत्रदारैर्निरस्तश्चधनलोभादसाधुभिः ॥ १८ ॥ विहीनःस्वजनैर्दारैःपुत्रैरादायिमेधनम् ॥ वनमभ्यागतोदुःखीनिरस्तश्चाप्तबंधुभिः ॥ १९ ॥ सोहंनवेद्मिपुत्राणांकुशलाकुशलात्मिकाम् ॥ प्रवृत्तिंस्वजनानांचदाराणांचात्रसंस्थितः ॥ २० ॥ किंनुतेषांगृहेक्षेममक्षेमंकिंनुसांप्रतम् ॥ कथंतेकिंनुसद्वृत्तादुर्वृत्ताःकिंनुमेसुताः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ ॥ यैर्निरस्तोभवाल्लुँब्धैःपुत्रदारादिभिर्धनैः ॥ तेषुकिंभवतःस्नेहमनुबध्नातिमानसम् ॥२२॥ ॥ वैश्यउवाच ॥एवमेतद्यथाप्राहभवानस्मद्गतंवचः ॥ किंकरोमिनवध्नातिममनिष्ठुरतांमनः॥२३॥ यैःसंत्यज्यपितृस्नेहंधनलुब्धैर्निराकृतः ॥ पतिस्वजनहार्दंचहार्दितेष्वेवमेमनः ॥ २४ ॥ किमेतन्नाभिजानामिजानन्नपिमहामते ॥ यत्प्रेमप्रवणंचित्तंविगुणेष्वपिबंधुषु ॥ २५ ॥ तेषांकृतेमेनिःश्वासोदौर्मनस्यंचजायते ॥ करोमिकिंयन्नमनस्तेष्वप्रीतिषुनिष्ठुरम् ॥ २६ ॥

लालची पुत्र स्त्री इत्यादिने तुमको धनके लालचसे निकाल दिया, उनके प्रति अब तुम्हारा चित्त किसलिये स्नेह करता है? ॥ २२ ॥ वैश्यने कहा--आपने मेरे संबंधमें जो कहा सो सत्य है, किन्तु मैं क्या करूं ? मेरा मन किसी प्रकारभी निष्ठुर नहीं होता ॥ २३ ॥ जिन पुत्रोंने धनके लालचसे पितृस्नेह छोडकर मुझे दूर किया, जिन पत्नियोंने पतिप्रेम और बंधुगणोंने बंधुके स्नेहको त्यागकर मुझको घरसे निकाल दिया, उन्हीं असज्जन पुत्र, स्त्री और बंधुवर्गमें मेरा मन फँस रहा है, हे महामते ! प्रतिकूल बांधवोमें मेरा चित्त क्यों इतना प्रेमपरायण होता है, यह मैं जानकर भी नहीं समझ सकता ॥ २४ ॥ २५ ॥ उन्हींके निमित्त मेरा दीर्घ निःश्वास और

चित्त खिन्न होता है, किन्तु क्या करूं उन निर्मोहियोंमें मेरा मन कठोर नहीं होता ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे मुनिसत्तम ! इसके उपरान्त राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य दोनों एकत्र मिलित होकर उन मेधा मुनिकेनिकट उपस्थित हुए ॥ २७ ॥ तब राजा और वैश्य मुनिका यथोचित सन्मान कर पूजानुक्रमसे अधिकारानुसार बैठ उनके संग अनेक प्रकारकी बात चीत करने लगे ॥ २८ ॥ राजाने कहा–हे भगवन् ! जो विषय न समुझसकने से मेरा मन दुःखी रहता है, उसी विषयको आपसे पूछनेकी इच्छा करताहूं, वह आप मुझको समझा दीजिये ॥ २९ ॥ मैं पूछताहूं कि, यह भ्रम है, तथापि अज्ञके समान मेरी राज्य और संपूर्ण राज्याङ्गके ऊपर ऐसी ममता है हे मुनिश्रेष्ठ ! यह किस प्रकार है ? ॥ ३० ॥ और इस वैश्यको इसके पुत्रोंने अपमानित किया है स्त्री, भृत्य और बांधवोंने परित्याग किया है, तोभी यह वैश्य उन सब दुष्ट पुत्रादिमें अनुरक्त है ॥ ३१ ॥ इसप्रकार मैं और यह वैश्य दोनों

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततस्तौसहितौविप्रतंमुनिंसमुपस्थितौ ॥ समाधिर्नामवैश्योसौसचपार्थिवसत्तमः ॥ २७ ॥ कृत्वातुतौयथान्यायंयथार्हंतेनसंविदम् ॥ उपविष्टौकथाःकाश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥२८॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वामहंप्रष्टुमिच्छाम्येकंवदस्वतत् ॥ दुःखाययन्मेमनसः स्वचित्तायत्ततांविना ॥ २९ ॥ ममत्वंगतराज्यस्यराज्यांगेष्वखिलेष्वपि ॥ जानतोपियथाज्ञस्यकिमेतन्मुनिसत्तम ॥ ३० ॥ अयंचनिकृतःपुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥ स्वजनेनचसंत्यक्तस्तेषुहार्दीतथाप्यति ॥ ३१ ॥ एवमेषतथाहंचद्वावप्यत्यंतदुःखितौ ॥ दृष्टदोषेपिविषयेममत्वाकृष्टमानसौ ॥ ३२ ॥ तत्किमेतन्महाभागयन्मोहोज्ञानिनोरपि ॥ ममास्यचभवत्येषाविवेकांधस्यमूढता ॥३३॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ज्ञानमस्तिसमस्तस्यजंतोर्विषयगोचरे ॥ विषयाश्चमहाभागयांतिचैवंपृथक्पृथक् ॥ ३४ ॥ दिवांधाःप्राणिनःकेचिद्रात्रावंधास्तथापरे ॥ केचिद्दिवातथारात्रौप्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥ ३५ ॥ ज्ञानिनोमनुजाःसत्यंकिंतुतेनहिकेवलम् ॥ यतोहिज्ञानिनःसर्वेपशुपक्षिमृगादयः ॥ ३६ ॥

ही इस भाँति दृश्यमान दोषपूर्ण विषयमें ममतायुक्तचित्त होकर अत्यन्त दुःख पाते हैं ॥ ३२ ॥ हे महाभाग ! हम दोनों ज्ञानी होकर भी जो इस प्रकार विवेकान्धकी समान मोहको प्राप्त होते हैं, इसका कारण क्या है ?॥ ३३ ॥ ऋषि बोले–समस्त जन्तुओंको विषयके दृष्टिगोचर होने पर ज्ञानहै । किन्तु हे महाभाग ! विषय इस पृथक् पृथक् प्रकारसे ज्ञानको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ देखो कोई कोई प्राणी दिनमें नहीं देख सकता कोई कोई रात्रिमें नहीं देख सकता, और कोई कोई दिन रात्रिमें समानदृष्टिवालेहैं अर्थात् उन्हें दिन और रात्रिमें एकसा दीखताहै ॥ ३५ ॥ आप जिस प्रकार ज्ञानकी बात कहतेहैं यद्यपि मनुष्योंको ऐसा ज्ञानहै यह सत्यहै, किन्तु केवल जो मनुष्यमात्रही इस प्रकार ज्ञानके अधिकारी हैं, ऐसा नहीं है, क्योंकि पशु, पक्षी और मृगादि भी इसी प्रकार ज्ञानवान् हैं ॥ ३६ ॥

विषयगोचर ज्ञान जिस प्रकार पशु पक्षी इत्यादिका है, मनुष्योंका भी उसी प्रकार है और मनुष्योंका जो विषय गोचर ज्ञान है, पशु पक्षियोंका भी वही है, अतएव इसप्रकार ज्ञान मनुष्य और इतर प्राणियोंका समान है ।।३७।। इसप्रकार ज्ञान होनेपरभी परस्परमें विषयकी कितनी विभिन्नताहै, देखो यद्यपि यह पक्षी भूंखसे पीडित हैं किन्तु तोभी अपने बच्चोंकी चोंचमें मोहसे धान्यादिका कण देतेहैं ॥३८॥और हे मनुजश्रेष्ठ ! मनुष्य अपने पुत्रोंके प्रति अभिलाषी होकर उनका भरण पोषण करतेहैं मनुष्य केवल प्रत्युपकारके लोभसे ऐसा करतेहैं,यह क्या नहीं देखतेहो ? ॥ ३९ ॥ इसप्रकार उपकार आदिकी आशा न होनेपरभी महामायाके संसारस्थितिकारी प्रभावसे संपूर्ण प्राणी वासनारूप भँवरवाले मोहरूपी गढेमें गिरते हैं ॥ ४० ॥ अतएव इस विषयमें आश्चर्य करना उचित नहीं है "महामाया

ज्ञानंनतन्मनुष्याणांयत्तेषांमृगपक्षिणाम् ॥ मनुष्याणांचयत्तेषांतुल्यमन्यत्तथोभयोः ॥३७॥ ज्ञानेपिसतिपश्यैतान्पतंगाञ्छावचंचुषु ॥ कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपिक्षुधा ॥ ३८ ॥ मानुषामनुजव्याघ्रसाभिलाषाःसुतान्प्रति ॥ लोभात्प्रत्युपकारायनन्वेतान्किंनपश्यसि ॥ ३९ ॥ तथापिममतावर्त्तेमोहगर्त्तेनिपातिताः ॥ महामायाप्रभावेणसंसारस्थितिकारिणा ॥ ४० ॥ तन्नात्रविस्मयःकार्योयोगनिद्राजगत्पतेः ॥ महामायाहरेश्चैषातयासंमोह्यतेजगत् ॥ ४१ ॥ ज्ञानिनामपिचेतांसिदेवीभगवतीहिसा ॥ बलादाकृष्यमोहायमहामायाप्रयच्छति ॥ ४२ ॥ तयाविसृज्यतेविश्वंजगदेतच्चराचरम् ॥ सैषाप्रसन्नावरदानृणांभवतिमुक्तये ॥ ४३ ॥ साविद्यापरमामुक्तेर्हेतुभूतासनातनी ॥ संसारबंधहेतुश्चसैवसर्वेश्वरेश्वरी ॥ ४४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्काहिसादेवीमहामायेतियांभवान् ॥ ब्रवीतिकथमुत्पन्नाकर्मचास्याश्चकिंद्विज ॥ ४५ ॥ यत्प्रभावाचसादेवीयत्स्वरूपायदुद्भवा ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामित्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ ४६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ नित्यैवसाजगन्मूर्त्तिस्तयासर्वमिदंततम् ॥ तथापितत्समुत्पत्तिर्बहुधाश्रूयतांमम ॥ ४७ ॥

जगत्पति हरिकी योगनिद्रास्वरूप है वही इस जगत्को मोहित करती हैं॥४१॥ वह भगवती महामायाही ज्ञानियाके चित्तको बलपूर्वक खैंचकर मोहमें डालतीहै ॥४२॥ उसी देवीने इस चराचर जगत्को उत्पन्न किया है वही प्रसन्न होकर मनुष्योंको मुक्तिप्रद वर देती हैं ॥४३॥ वही मुक्तिकी उत्कृष्ट हेतुस्वरूप सनातनी ब्रह्मज्ञानस्वरूपा विद्या हैं, वही संसार बन्धन अर्थात् जन्म और मृत्यु इत्यादिका हेतु हैं वही ईश्वरकी भी ईश्वरी हैं" ॥४४॥ राजा बोला हे भगवन् !आपने जिसको महामाया कहा है वह देवी कौन हैं ? हे द्विज ! उनकी उत्पत्तिका वृत्तान्त किसप्रकार है और उनके कर्म किस प्रकार हैं ॥ ४५ ॥ इसके अतिरिक्त उन देवीका स्वभाव और स्वरूप और वह जिससे उत्पन्न हैं, हे ब्रह्मज्ञश्रेष्ठ ! वह मैं सब विषय आपसे सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ ४६ ॥ ऋषि बोले—वह जगन्मूर्त्ति नित्य अर्थात् उत्पत्ति वि

नाशरहित हैं वह संपूर्ण विश्वमें व्याप्त होरही हैं, किन्तु तो भी उनके बहुत प्रकार उत्पन्न होनेकी कथा कहताहूं, सुनो ॥ ४७ ॥ देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये वह जब आविर्भूत होती हैं, तब नित्य होनेपरभी लोकमें "उत्पन्न हुई कही जाती हैं" ॥ ४८ ॥ और कल्पके अन्तमें जब जगत् जलमय होगया, तब भगवान् विष्णुने अनन्त शय्याका आश्रय कर योगनिद्रा अवलम्बन की ॥ ४९ ॥ उसी समय दो अत्यन्तभयंकर असुर कि, जिनका नाम मधु और कैटभ विख्यात था विष्णुके कानके मलसे उत्पन्न होकर ब्रह्माजीका संहार करनेके लिये उद्यत हुए ॥ ५० ॥ विष्णुके नाभिकमलमें स्थित अति दीप्तिमान् प्रजापति ब्रह्मा उन दोनों भयंकर असुरोंको देख और विष्णुको सोताहुआ देख ॥ ५१ ॥ विष्णुके जगानेको एकाग्र हृदयसे भगवान्‌के नेत्रोंमें प्राप्त हुई, विष्णुकी निद्रास्वरूप

देवानांकार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवतिसायदा ॥ उत्पन्नेतितदालोकेसानित्याप्यभिधीयते ॥ ४८ ॥ योगनिद्रांयदाविष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥ आस्तीर्यशेषमभजत्कल्पांतेभगवान्प्रभुः ॥ ४९ ॥ तदाद्वावसुरौघोरौविख्यातौमधुकैटभौ ॥ विष्णुकर्णमलोद्भूतौहंतुंब्रह्माणमुद्यतौ ॥ ५० ॥ सनाभिकमलेविष्णोःस्थितोब्रह्माप्रजापतिः ॥ दृष्ट्वातावसुरौचोग्रौप्रसुप्तंचजनार्दनम् ॥ ५१ ॥ तुष्टावयोगनिद्रांतामेकाग्रहृदयस्थितः ॥ प्रबोधनार्थायहरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ विश्वेश्वरींजगद्धात्रींस्थितिसंहारकारिणीम् ॥ स्तौमिनिद्रांभगवतींविष्णोरतुलतेजसः ॥५३॥ त्वंस्वाहात्वंस्वधात्वंहिवषट्कारःस्वरात्मिका ॥ सुधात्वमक्षरेनित्येत्रिधामात्रात्मिकास्थिता ॥ ५४ ॥ अर्धमात्रास्थितानित्यायानुच्चार्याविशेषतः ॥ त्वमेवसंध्यासावित्रित्वंदेविजननीपरा ॥ ५५ ॥ त्वयैतद्धार्यतेविश्वंत्वयैतत्सृज्यतेजगत् ॥ त्वयैतत्पाल्यतेदेवित्वमत्स्यंतेचसर्वदा ॥ ५६ ॥

विश्वेश्वरी, जगत्की रचनेवाली स्थिति, संहार करनेवाली और विष्णुके तेजकी अतुल मूर्ति ऐसी निद्राभगवतीकी स्तुति करने लगे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मस्वरूपे ! हे नित्ये ! तुम देवताओंके हवि देनेके मंत्र स्वाहास्वरूप हो, तुम्ही पितरोंके श्राद्धादिमें स्वधारूप हो, तुमही वषट्कार इन्द्रके हविर्दान मंत्रकी स्वरस्वरूप हो, हे देवि ! तुमही सुधास्वरूप हो और तुमही अक्षरोंमें ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत रूप तीन मात्रास्वरूप हो ॥ ॥ ५४ ॥ जिस अर्द्ध मात्राका उच्चारण विशेष रूपसे नहीं होता तुमही उस अर्द्धमात्रा रूपमें स्थित हो हे देवि ! तुमही वह प्रसिद्ध गायत्रीस्वरूप हो। हे देवि ! तुमही वह सर्वोत्कृष्ट जगज्जननी प्रकृति स्वरूप हो ॥५५॥ हे देवि ! तुमही इस जगत्को उत्पन्न करतीहो, तुमही इसको धारण करतीहो, तुमही इसको पालन करतीहो और

प्रलयकालमें तुमही इस जगत्को सदा ग्रास करतीहो ॥ ५६॥ तुमही सर्गकालमें सृष्टिरूप, पालनमें स्थिति रूप और हे जगन्मयि ! इस जगत्के विनाशकालमें तुमही संहाररूपहो ॥ ५७ ॥ हे देवि ! तुमही महाविद्या, तुमही महा मेधा, तुमही महामाया और तुमही महास्मृति हो हे देवि ! तुमही महामोहा, महादेवी और महासुरी हो ॥ ५८॥ हे देवि ! तुमही सत्, रज, तमोगुणस्वरूपमें समस्त चराचरकी प्रकृति हो । तुमही कालरात्रि अर्थात् भयंकर यमस्वरूप हो । तुमही महारात्रि अर्थात् वस्तुमात्रकी आवरक तमोमय प्रलयस्वरूप हो । तुमही भयंकर मोहरात्रि अर्थात् जगत्की मोहजनक संसारस्वरूप हो ॥ ५९ ॥ हे देवि ! तुमही श्री अर्थात् लक्ष्मीबीज हो, तुमही ईश्वरी, तुमही लज्जा, तुमही बुद्धि और तुमहीं दिव्यज्ञानकी एक मात्रलक्ष्य हो ॥तुमही लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षान्तिस्वरूप हो ॥ ६० ॥ तुमही खड्गिनी (खड्गधारिणी) शूलिनी, (शूलधारिणी) तथा भयंकर स्वरूपा हो । तुमही गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी और चापिनी अर्थात् धनुष धारिणी

विसृष्टौसृष्टिरूपात्वंस्थितिरूपाचपालने ॥ तथासंहृतिरूपांतेजगतोस्यजगन्मये ॥ ५७ ॥ महाविद्यामहामायामहामेधामहास्मृतिः ॥ महामोहाभगवती महादेवीमहेश्वरी ॥ ५८ ॥ प्रकृतिस्त्वंचसर्वस्यगुणत्रयविभाविनी ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्चदारुणा ॥ ५९ ॥ त्वंश्रीस्त्वमीश्वरीत्वंह्रीस्त्वंबुद्धिर्बोधलक्षणा ॥ लज्जापुष्टिस्तथातुष्टिस्त्वंशान्तिःक्षांतिरेवच ॥ ६० ॥ खड्गिनीशूलिनीघोरागदिनीचक्रिणीतथा ॥ शंखिनीचापिनीबाणाभुशुंडीपरिघायुधा ॥ ६१ ॥ सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुंदरी ॥ परापराणांपरमात्वमेवपरमेश्वरी ॥ ६२ ॥ यच्चकिंचित्क्वचिद्वस्तुसदसद्वाऽखिलात्मके ॥ तस्यसर्वस्ययाशक्तिःसात्वंकिंस्तूयसेमया ॥ ६३ ॥ ययात्वयाजगत्स्रष्टाजगत्पात्यत्तियोजगत् ॥ सोपिनिद्रावशंनीतःकस्त्वांस्तोतुमिहेश्वरः ॥ ६४॥ विष्णुःशरीरग्रहणमहमीशानएवच ॥ कारितास्तेयतोऽतस्त्वांकस्तोतुंशक्तिमान्भवेत् ॥ ६५ ॥ सात्वमित्थंप्रभावैःस्वैरुदारैर्देविसंस्तुता ॥ मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौमधुकैटभौ ॥ ६६ ॥

हो । हे देवि ! बाण भुशुंडी और परिघभी तुम्हारे अस्त्र हैं ॥ ६१ ॥ हे देवि ! तुमही सौम्या और सौम्यतरा हो, अधिक क्या जगत्में जितने सुन्दर पदार्थ हैं तुम उन सबकी अपेक्षा सुन्दरी हो । हे देवि ! तुम श्रेष्ठ, श्रेष्ठसेभी श्रेष्ठतर और तुमही श्रेष्ठतरोंकी भी ईश्वरी हो ॥ ६२ ॥ हे अखिलात्मिके ! जो कुछ सत् और असत् वस्तुहै, उनकी जो शक्ति है,तुमही वह शक्तिस्वरूप हो,अत एव तुम्हारी किस प्रकारसे स्तुति करूं? ॥ ६३॥ हे देवि ! जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर्त्ता उन भगवान् विष्णुको ही जब तुमने निद्राभिभूत कर रक्खा है, तब और कौन तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ होगा? ॥ ६४ ॥ हे देवि ! विष्णु, ईशान और मुझको जब तुमनेही शरीर ग्रहण कराया है, तब दूसरा कौन पुरुष तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ होगा?॥६५॥ हे देवि ! वह तुम इस प्रकार स्वकीय उदार प्रभाववर्णनद्वारा संतुष्ट होकर इन दुर

धर्ष मधु और कैटभ नामक दोनों असुरोंको मोहित करो ॥ ६६ ॥ और जगतके स्वामी विष्णुभगवान्‌को शीघ्र जगाओ तथा इन महाअसुरोंको मारनेके लिये ज्ञान प्रदान करो॥६७॥ ऋषि बोले जब ब्रह्माजीने उन दोनों असुरोंके विनाशार्थ विष्णुको जगानेके लिये इस प्रकारसे उन तमोगुणमयी निद्रारूपा देवीकी स्तुति करी ॥६८॥ तब अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके देखते हुए भगवान् विष्णुके नेत्र, मुख, नासिका बाहु, हृदय और वक्षःस्थलसे निकल कर देवी स्थित हुई ॥ ६९ ॥ अनन्तर निद्रारूपा देवीके छोड़देने पर भगवान् विष्णुने एकार्णवास्थित अनन्तशय्यासे उठकर देखा ॥ ७० ॥ कि, वह दुरातमा अत्यन्त वीर्य पराक्रमशालि क्रोधसे लाल लाल नेत्र किये मधु और कैटभ नामक दोनों असुर ब्रह्माजीके विनाशमें उद्यत हुए हैं ॥७१॥ उठनेके पीछे भगवान् विभु हरिने उन दोनों असुराके संग पांचहजार वर्षतक बाहु

प्रबोधंचजगत्स्वामीनीयतामच्युतोलघु ॥ बोधश्चक्रियतामस्यहंतुमेतौमहासुरौ ॥ ६७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ एवंस्तुतातदादेवीतामसीतत्रवेधसा ॥ विष्णोः प्रबोधनार्थायनिहंतुंमधुकैटभौ ॥ ६८ ॥ नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ निर्गम्यदर्शनेतस्थौब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥६९॥ उत्तस्थौचजगन्नाथस्त यामुक्तोजनार्दनः ॥ एकार्णवेहिशयनात्ततःसददृशेचतौ ॥ ७० ॥ मधुकैटभौदुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥ क्रोधरक्तेक्षणौहंतुंब्रह्माणंजनितोद्यमौ ॥ ७१ ॥ समुत्थायततस्ताभ्यांयुयुधेभगवान्हरिः ॥ पंचवर्षसहस्राणिबाहुप्रहरणोविभुः ॥ ७२ ॥ तावप्यतिबलोन्मत्तौमहामायाविमोहितौ ॥ उक्तवंतौवरोस्मत्तोवि्र यतामितिकेशवम् ॥ ७३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवेतामद्यमेतुष्टौममवध्यावुभावपि ॥ किमन्येनवरेणात्रएतावद्धिवृतंमया ॥ ७४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ वंचिताभ्यामितितदासर्वमापोमयञ्जगत् ॥ विलोक्यताभ्यांगदितोभगवान्कमलेक्षणः ॥ ७५ ॥ प्रीतौस्वस्तवयुद्धेनश्लाघ्यस्त्वंमृत्युरावयोः ॥ आवांजहि नयत्रोर्वीसलिलेनपरिप्लुता ॥ ७६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ तथेत्युक्त्वाभगवताशंखचक्रगदाभृता ॥ कृत्वाचक्रेणवैच्छिन्नेजघनेशिरसीतयोः ॥ ७७ ॥

युद्ध किया ॥ ७२ ॥ फिर उन अति बलोन्मत्त दोनों असुरोंने महा मायाके द्वारा मोहित होकर केशवसे कहा "तुम हमसे वर ग्रहण करो" ॥७३॥ भगवान् बोले–तुम यदि मेरे ऊपर संतुष्ट हुए हो, तो दोनों मेरे वध्य होओ अर्थात् मेरे हाथसे मारे जाओ, मेरा यही वरहै, दूसरे वरसे कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ७४ ॥ ऋषि बोले–जब भगवानने इसप्रकार दोनोंको छला, तब उन दोनों असुरोंने संपूर्ण जगत्‌को जलमय देखकर भगवान् पुण्डरीकाक्षसे कहा ॥७५॥ हे केशव ! तुम्हारे संग युद्धमें हम प्रसन्न हुए हैं, अतएव तुम्हारे हाथसे हमारी मृत्यु श्लाघनीयहैं किन्तु जो स्थान जलमें डुबाहुआ न हो हमको उसी स्थानमें वधकरो ॥ ७६ ॥ ऋषि बोले–"यही हो" यह कहकर भगवान्‌ने शंख, चक्र, गदा, धारणपूर्वक अपनी जंघापर रख चक्रसे उन दोनों असुरोंका मस्तक काटडाला ॥ ७७ ॥

स्वयं ब्रह्माजीके स्तवन करनेपर यह महामाया देवी इस प्रकारसे उत्पन्न हुईथी अब तुमसे इन देवीके प्रभावका वर्णन करताहूं सुनो ॥ ७८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मधुकैटभवधोनाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ऋषि बोले—पूर्वकालमें जब पुरन्दर (इन्द्र) देवताओंके अधिपति और महिष नामक असुर असुरोंका स्वामी था, उस समय एकसौवर्षपर्यन्त देवता और असुरोंका परस्पर युद्ध हुआ ॥ १ ॥ उस युद्धमें महावीर्यवान् असुरोंने देवतोंकी सेनाको पराजित किया और सब देवतोंको जीतकर फिर महिषासुर आप इन्द्र बन बैठा ॥ २ ॥ इसके पीछे पराजित देवता पद्मयोनि प्रजापति ब्रह्माजीको आयकरके जहां महादेव और विष्णुथे, उस स्थानमें गये ॥ ३ ॥ देवताओंने शिवजी और भगवान्के सन्मुख जो कुछ वृत्तान्त हुआथा और जैसी कुछ महिषासुरने

एवमेषासमुत्पन्नाब्रह्मणासंस्तुतास्वयम् ॥ प्रभावमस्यादेव्यास्तुभूयःशृणुवदामिते ॥ ७८ ॥ इति श्रीमा०सावर्णिकेमन्वंतरेदेवीमाहात्म्येमधुकैटभवधोनामअष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ देवासुरमभूद्युद्धंपूर्णमब्दशतंपुरा ॥ महिषेसुराणामधिपेदेवानांचपुरंदरे ॥ १ ॥ तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यंपराजितम् ॥ जित्वाचसकलान्देवानिंद्रोभून्महिषासुरः ॥ २ ॥ ततःपराजितादेवाःपद्मयोनिंप्रजापतिम् ॥ पुरस्कृत्यगतास्तत्रयत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ॥ ३ ॥ यथावृत्तंतयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ॥ त्रिदशाःकथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ४ ॥ सूर्येंद्राग्न्यनिलेंदूनांयमस्यवरुणस्यच ॥ अन्येषांचाधिकारान्सस्वयमेधितिष्ठति ॥ ५ ॥ स्वर्गान्निराकृताःसर्वेतेनदेवगणाभुवि ॥ विचरंतियथामर्त्यामहिषेणदुरात्मना ॥ ६ ॥ एतद्वःकथितंसर्वममरारिविचेष्टितम् ॥ शरणंवःप्रपन्नाःस्मोवधस्तस्यविचिंत्यताम् ॥ ७ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इत्थंनिशम्यदेवानांवचांसिमधुसूदनः ॥ चकारकोपंशंभुश्चभ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ८ ॥

चेष्टा की थी, तथा जिस भांति देवता पराजित हुए थे, वह सब विस्तारसहित कह सुनाया ॥ ४ ॥ कि, वह महिषासुर स्वयंही सूर्य, इन्द्र, अग्नि, पवन, चन्द्रमा, यम, वरुण और अन्यान्य देवताओंके अधिकारमें अधिष्ठान करता है ॥ ५ ॥ उस दुरात्मा महिषके द्वारा स्वर्गसे निकाले जाकर देवता मर्त्यलोकके मनुष्योंकी समान पृथ्वीमें विचरण करते हैं ॥ ६ ॥ आपके निकट उन असुरोंका सब पराक्रम कहा गया। हम आपकी शरणमें आयेहैं. अब आप असुरके मारनेका उपाय विचारिये ॥ ७ ॥ ऋषि बोले—देवताओंके इसप्रकार वचन सुनकर विष्णु और महादेवजी अत्यन्त क्रोधित हुए और क्रोधसे उनका मुख तथा भृकुटी कुटिल होगई ॥ ८ ॥

इसके उपरान्त अत्यन्त कोपमें पूर्ण विष्णु, महादेव और ब्रह्माजीकेमुखसे एक बडा तेज निकला ॥ ९ ॥ और इन्द्रादि अन्यान्य देवताओंके शरीरसेभी इसीप्रकार तेज निकला । फिर वह निकलाहुआ संपूर्ण तेज एकत्र मिलित हुआ ॥ १० ॥ अनन्तर उन देवताओंने उस अधिक तेजके पुंजको कि, जिसकी ज्वाला समस्त दिशाओंमें फैलगई थी, पर्वतके समान जलतेहुए देखा ॥ ११ ॥ इसके पीछे देवताओंको देहसे उत्पन्न हुआ और इकट्ठा हुआ तथा अपनी कान्ति से तीनों लोकको प्रकाशित करनेवाला वह तेज एक स्त्रीरूप होगया ॥ १२ ॥ महादेवजीके मुखसे जो तेज निकलाथा उसके द्वारा उस स्त्रीका मुख बना । यमके तेजसे केश और विष्णुके तेजसे दोनों उसकी बाहु बनी ॥ १३ ॥ चन्द्रमाके तेजसे दोनों स्तन, इन्द्रके तेजसे मध्यप्रदेश, वरुणके तेजसे जंघा और

ततोतिकोपपूर्णस्यचक्रिणोवदनात्ततः ॥ निश्चक्राममहत्तेजोब्रह्मणःशंकरस्यच ॥ ९ ॥ अन्येषांचैवदेवानांशक्रादीनांशरीरतः ॥ निर्गतंसुमहत्तेजस्तच्चैक्यंसमगच्छत ॥ १० ॥ अतीवतेजसःकूटंज्वलंतमिवपर्वतम् ॥ ददृशुस्तेसुरास्तत्रज्वालाव्याप्तदिगंतरम् ॥ ११ ॥अतुलंतत्रतत्तेजःसर्वदेवशरीरजम् ॥ एकस्थंतदभून्नारीव्याप्तलोकत्रयंत्विषा ॥ १२ ॥ यदभूच्छांभवंतेजस्तेनाजायततन्मुखम् ॥ याम्येनचाभवन्केशाबाहवोविष्णुतेजसा ॥ १३॥ सौम्येनस्तनयोर्युग्मंमध्यमैंद्रेणचाभवत् ॥ वारुणेनचजंघोरूनितंबस्तेजसाभुवः ॥ १४ ॥ ब्रह्मणस्तेजसापादौतदंगुल्योर्कतेजसा ॥ वसूनांचकरांगुल्यःकौबेरेणचनासिका ॥ १५ ॥ तस्यास्तुदंताःसंभूताःप्राजापत्येनतेजसा ॥ नयनत्रितयंजज्ञेतथापावकतेजसा ॥ १६ ॥ भ्रुवौचसंध्ययोस्तेजःश्रवणावनिलस्यच ॥ अन्येषांचैवदेवानांसंभवस्तेजसांशिवा ॥ १७ ॥ततःसमस्तदेवानांतेजोराशिसमुद्भवाम् ॥तांविलोक्यमुदंप्रापुरमरमहिषार्दिताः॥१८॥ततोदेवाददुस्तस्यैस्वानिस्वान्यायुधानिच ॥ ऊचुर्जयजयेत्युच्चैर्जयंतीतेजयैषिणः ॥ १९ ॥

ऊरू, पृथ्वीके तेजसे नितम्ब ॥ १४ ॥ ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पैरोंकी अंगुली और वसुगणोंके तेजसे उसके हाथोंकी अंगुली बनी । कुबेरके तेजसे नाशिका ॥ १५ ॥ प्रजापतिके तेजसे उसके दांत, पावकके तेजसे तीनों नेत्र ॥ १६ ॥ दोनों संध्याओंके तेजसे भृकुटि और वायुके तेजसे उसके दोनों कान बने और अन्यान्य विश्वकर्मादि देवताओंके तेजसे भी वह मंगलमयी देवी उत्पन्न हुई ॥ १७ ॥ तदनन्तर सब देवता ओंके तेजसमूहसे उत्पन्न हुई उन देवीजीको देखकर महिषासुरके द्वारा पीडित हुए देवता अतिशय हर्षको प्राप्तहुए ॥ १८ ॥ तब देवताओंने उनके निमित्त अपने २

आयुध दिये और वह जयकी इच्छा करनेवाले जयन्तीके प्रति जय २ शब्द उच्चारण करने लग ॥ १९॥ अनन्तर महादेवजीने अपने शूलसे शूल उत्पन्न करके उनको दिया। नारायणने अपने चक्रसे चक्र उत्पन्न करके उनको दिया ॥ २०॥ वरुणने उनको शंख दया, हुताशनने शक्ति दी, और वायुने उनको धनुष और बाणोंसे पूर्णतर कर दिया॥ २१॥ अमरेश्वर सहस्राक्ष इन्द्रने अपने वज्रसे वज्र उत्पन्न करके उनको दिया और ऐरावत हाथीसे घंटा खोलकर दिया ॥ २२ ॥ यमने कालदण्डसे दंड उत्पन्न करके उनको दिया, वरुणने उनको पाश दिया, दक्षप्रजापतिने उनको अक्षमाला दी, ब्रह्माजीने उनको कमण्डलू दिया ॥ २३ ॥ दिवाकर सूर्यने उन महादेवीके संपूर्णरोम रोम कूपमें अपनी किरणों प्रदान की।कालने उनको निर्मल खड्ग और चर्म (ढाल) प्रदान किया ॥ २४॥क्षीरोद समुद्रने उनको निर्मल मोतियोंका

शूलंशूलाद्विनिष्कृष्यददौतस्यैपिनाकभृत् ॥ चक्रंचदत्तवान्कृष्णःसमुत्पाद्यस्वचक्रतः ॥ २० ॥ शंखंचवरुणःशक्तिंददौतस्यैहुताशनः ॥ मारुतोदत्तवांश्चापंवाणपूर्णेतथेषुधी ॥ २१ ॥ वज्रमिन्द्रःसमुत्पाद्यकुलिशादमराधिपः ॥ ददौतस्यैसहस्राक्षोघंटामैरावताद्गजात् ॥ २२ ॥ कालदंडाद्यमोदंडंपाशंचांबुपतिर्ददौ ॥ प्रजापतिश्चाक्षमालांददौब्रह्माकमंडलुम् ॥२३॥ समस्तरोमकूपेषुनिजरश्मीन्दिवाकरः ॥ कालश्चदत्तवान्खड्गंतस्यैचर्मचनिर्मलम् ॥ २४ ॥ क्षीरोदश्चामलंहारमजरेचतथांवरे ॥ चूडामणिंतथादिव्यंकुंडलेकटकानिच ॥ २५ ॥ अर्द्धचंद्रंतथाशुभ्रंकेयूरान्सर्वबाहुषु ॥ नूपुरौविमलौतद्वद्ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ अंगुलीयकरत्नानिसमस्तास्वंगुलीषुच ॥ २६ ॥ विश्वकर्माददौतस्यैपरशुंचातिनिर्मलम् ॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाभेद्यंचदंशनम् ॥ २७ ॥ अम्लानपंकजांमालांशिरस्युरसिचापराम् ॥ अददाज्जलधिस्तस्यैपंकजंचातिशोभनम् ॥ २८॥ हिमवान्वाहनंसिंहंरत्नानिविविधानिच॥ ददावशून्यंसुरयापानपात्रंधनाधिपः ॥ २९ ॥

हार दो उज्वल वस्त्र, सुन्दर चूडामणि, दिव्य कुण्डल और कंगन दिये॥ २५ ॥ इसके अतिरिक्त अर्द्धचंद्र (स्वेतवैना) सब भुजाओंमें बाजूबंद अत्यन्त सुन्दर पाजेब और. एक अनुपम कंठका आभूषण तथा संपूर्ण अंगुलियोंमें सुन्दर अँगूठियां दीं ॥ २६ ॥ अत्यन्त निर्मल परशु अनेक प्रकारके अस्त्र और जो किसीसे न कटसके ऐसा कवच विश्वकर्माजीने उनको दिया ॥ २७॥ और समुद्रने नवीन खिले हुए कमलपुष्पोंकी माला कंठके लिये, और शिर पर धारण करनेके लिये और दूसरी शोभायमान माला दी ॥ २८ ॥ हिमालयने उनको वाहन सिंह और अनेक रत्न दिये। कुबेरने उनको सुरापूर्ण पानपात्र दिया ॥ २९ ॥

जो इस पृथ्वीको धारण कर रहे हैं, उन सर्व नागेश अनन्तने उन देवीको महामणिसे विभूषित नागहार दिया ॥ ३० ॥ अन्यान्य देवताओंने भी उनको अनेक प्रकारके अलंकार और शस्त्र दिये । इस भाँति उनके द्वारा सन्मानित होकर देवी अट्टहासके सहित वारम्वार गर्जना करने लगी ॥ ३१ ॥ उनके उस घोर गर्जनसे संपूर्ण आकाश मण्डल भरगया और फिर आकाशसे एक असंभव और बड़ा भारी प्रतिशब्द हुआ ॥ ३२ ॥ उससे संपूर्ण लोक क्षुब्ध हुए अर्थात् डिगमिगागये सब समुद्र काँपगये पृथ्वी हिलनेलगी और संपूर्ण पर्वतभी चलायमान होगये ॥ ३३ ॥ तब देवता उनसिंहवाहिनी भगवतीके सामने प्रसन्नतासे जय जय शब्द कर उठे । मुनि गण भक्तिनम्रशरीर होकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ संपूर्ण त्रैलोक्यको इस प्रकार संचलित हुआ देखकर असुरगण सब सेनाको सजाय हाथोंमें अस्त्र

शेषश्चसर्वनागेशोमहामणिविभूषितम् ॥ नागहारंददौतस्यैधत्तेयःपृथिवीमिमाम् ॥ ३० ॥ अन्यैरपिसुरैर्देवीभूषणैरायुधैस्तथा ॥ संमानिताननादोच्चैःसाट्टहासंमुहुर्मुहुः ॥ ३१ ॥ तस्यानादेनघोरेणकृत्स्नमापूरितंनभः ॥ अमायतातिमहताप्रातदवशब्दोमहानभूत् ॥ ३२ ॥ चुक्षुभुःसकलालोकाः समुद्राश्च चकंपिरे ॥ चचालवसुधाचेलुः सकलाश्चमहीधराः ॥ ३३ ॥ जयेतिदेवाश्चमुदातामूचुःसिंहवाहिनीम् ॥ तुष्टुवुर्मुनयश्चैनांभक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ॥ ३४ ॥ दृष्ट्वासमस्तंसंक्षुब्धंत्रैलोक्यममरारयः ॥ सन्नद्धाखिलसैन्यास्तेसमुत्तस्थुरुदायुधाः ॥ ३५ ॥ आःकिमेतदितिक्रोधादाभाष्यमहिषासुरः ॥ अभ्यधावततंशब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ॥ ३६ ॥ सददर्शततोदेवींव्याप्तलोकत्रयांत्विषा ॥ पादाक्रांत्यानतभुवंकिरीटोल्लिखितांबराम् ॥ ३७ ॥ क्षोभिताशेषपातालांधनुर्ज्यानिःस्वनताम् ॥ दिशोभुजसहस्रेणसमंताद्व्याप्यसंस्थिताम् ॥ ३८ ॥ ततःप्रववृतेयुद्धंतयादेव्यासुरद्विषाम् ॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगंतरम् ॥ ३९ ॥ महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्योमहासुरः ॥ युयुधेचामरश्चान्यैश्चतुरंगबलान्वितः ॥ ४० ॥

शस्त्र लेकर उठ खडे हुए ॥ ३५ ॥ " आः ! यह क्या होता है! " क्रोधसे इस प्रकार कह संपूर्ण असुरोंको साथ लिये महिषासुर उस शब्दकी ओर दौड़ा ॥ ॥ ३६ ॥ दौड़कर उस महिषासुरने देखा कि,वह देवी अपनी प्रभासे तीनों लोकको व्याप्त करके स्थित हैं । और जो अपने चरणके आक्रमणसे पृथ्वीको दबारही हैं, मुकुटसे आकाशको छूरही हैं ॥ ३७ ॥ धनुषके प्रत्यंचाकी टंकारसे संपूर्ण पाताल कंपायमान होरहा है, और देवी हजार भुजाओंसे समस्त दिशाओंको आच्छादन करके स्थिति करतीहैं ॥ ३८ ॥ इसके पीछे उन देवीके संग असुरोंका युद्ध आरंभ हुआ,उस युद्ध में छूटेहुए बहुत प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे आकाश प्रकाशित होगये ॥ ३९ ॥ महिषासुरका चिक्षुर नामक सेनापती महासुर युद्ध करनेलगा । चतुरंगिनी सेनासे युक्त चामर नामक असुर अनुगामी सेनाके सहित मिलकर युद्ध करनेलगा ॥ ४० ॥

छे अयुत अर्थात् साठहजार रथ लेकर उदग्र नामक महाअसुर युद्ध करने लगा। महाहनुनामक असुर हजार अयुत अर्थात् एक करोड रथ लेजाकर लढनेलगा ॥४१॥ असुलोम नामक महा असुर पांच करोड रथ सेनासे साथ लेकर युद्ध करनेलगा। बाष्कलनामक महाअसुर साठ हजार रथ लेकर युद्ध करनेलगा ॥ ४२ ॥ और अनेक हजार हाथी घोडों से युक्त होकर परिवारित नामक महाअसुर उस युद्धक्षेत्रमें करोड रथों के सहित मिलित होकर युद्ध करनेलगा ॥ ४३ ॥ बिडाल नामक महाअसुर पांच लाख रथोंको लेकरः उस रणस्थलमें युद्ध करनेलगा ॥ ४४ ॥ और इतनेही रथोंको लेकर महासेनाके साथ कालनामक दैत्य युद्ध करने लगा ॥ ४५ ॥ और अन्यान्य अनेक महासुर उस रणस्थलमें अयुत अयुत रथ हाथी और घोडों से वेष्टित होकर उन देवीके संग युद्ध करनेलगे ॥ ४६ ॥ करोड

रथानामयुतैःषड्भिरुदग्राख्योमहासुरः ॥ अयुध्यतायुतानांचसहस्रेणमहाहनुः ॥ ४१ ॥ पंचाशद्भिश्चनियुतैरसिलोमामहासुरः ॥ अयुतानांशतैःषड्भिर्बा ष्कलोयुयुधेरणे ॥ ४२ ॥ गजवाजिसहस्रौघैरनेकरुग्रदर्शनः ॥ वृतोरथानांकोट्याचयुद्धेतस्मिन्नयुध्यत ॥ ४३ ॥ बिडालाख्योमहादैत्यःपंचाशद्भि रथायुतैः ॥ युयुधेसंयुगेतत्ररथानांपरिवारितः ॥ ४४ ॥ वृतःकालोरथानांचरणेपंचाशतायुतैः ॥ युयुधेसंयुगेतत्रतावद्भिःपरिवारितः ॥ ४५ ॥ अन्येचतत्रा युतशोरथनागहयैर्वृताः ॥ युयुधुःसंयुगेदेव्यासहतत्रमहासुराः ॥ ४६ ॥ कोटिकोटिसहस्रैस्तुरथानांदंतिनांतथा॥हयानांचवृतोयुद्धेतत्राभून्माहिषासुरः॥ ४७॥ तोमरैर्भिंदिपालैश्चशक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ युयुधुःसंयुगेदेव्याखड्गैःपरशुपट्टिशैः ॥ ४८॥ केचिच्चचिक्षिपुःशक्तीःकेचित्पाशांस्तथापरे॥ देवींखड्गप्रहारैस्तुते तांहंतुंप्रचक्रमुः ॥४९॥ सापिदेवीततस्तानिशस्त्राण्यस्त्राणिचंडिका ॥ लीलयैवप्रचिच्छेदनिजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥ ५० ॥ अनायस्ताननादेवीस्तूय मानासुरर्षिभिः ॥ मुमोचासुरदेहेषुशस्त्राण्यस्त्राणिचेश्वरी ॥ ५१॥ सोपिक्रुद्धोधुतसटोदेव्यावाहनकेसरी ॥ चचारासुरसैन्येषुवनेष्विवहुताशनः ॥ ५२ ॥

करोड़ हजार रथ हार्थी आरै घोडोंसे वेष्टित होकर माहिषासुर उस युद्धमें गया ॥ ४७ ॥ तब असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मुसल, खड्ग फरसा और पट्टिश द्वारा देवीके संग युद्ध करने लगे ॥ ४८ ॥ किसीने शक्ति चलाई, किसीने पाश और कोई खड्ग प्रहारसे उन देवीको हनन करनेमें उद्यत हुआ ॥ ४९ ॥ फिर उन देवीने अपने अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करके उनके अस्त्रशस्त्र लीलापूर्वकही काटडाले ॥ ५० ॥ उसकाल प्रसन्नवदना देवीका देवता और ऋषिगण स्तव करने लगे । अनन्तर देवी असुरोंके देहमें अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगी ॥ ५१ ॥ देवीका वह वाहन केसरी भी केसर कंपित करके वनमें

अग्निके समान उस असुरसैन्यमें विचरण करने लगा ॥ ५२ ॥ युद्ध करते करते देवीने जो निःश्वास छोडे; उसके द्वारा शत सहस्रगण तत्काल उत्पन्न होकर असुरोंसे युद्ध करने लगे ॥ ५३ ॥ देवीके प्रभावसे वर्द्धित होकर वह गण फरशा भिन्दिपाल, असि और पट्टिशके द्वारा असुरोंको हनन करने लगे ॥ ५४ ॥ किसी किसी गणने उस युद्धमहोत्सवमें शंखनाद किया कोई कोई ढोल और कोई कोई मृदंग बजाने लगा ॥ ५५ ॥ अनन्तर देवीने त्रिशूल, गदा, शक्ति, वृष्टि और खड्गादि द्वारा शत शत महा असुरोंका विनाश किया ॥ ५६ ॥ किसीको घंटेके शब्दसे मोहित करके मार डाला और अन्य असुरोंको पाशद्वारा बांधकर पृथ्वीमें खेंचा ॥ ५७ ॥ किसी कीसीको अपने खड्गकी तीक्ष्ण धारसे दोखंड कर दिया और किसी किसीको गदाके प्रहारसे ऐसा मारा कि, वह पृथ्वीमें लोट गया ॥ ५८ ॥

निश्वासान्मुमुचेयांश्चयुध्यमानारणेंबिका ॥ तएवसद्यःसंभूतागणाःशतसहस्रशः ॥ ५३ ॥ युयुधुस्तेपरशुभिर्भिंदिपालासिपट्टिशैः ॥ नाशयंतोसुरगणान्देवीशक्त्युपबृंहिताः ॥ ५४ ॥ अवादयंतपटहान्गणाःशंखांस्तथापरे ॥ मृदंगांश्चतथैवान्येतस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥ ५५ ॥ ततोदेवीत्रिशूलेनगदयाशरवृष्टिभिः ॥ खड्गादिभिश्चशतशोनिजघानमहासुरान् ॥ ५६ ॥ पातयामासचैवान्यान्घंटास्वनविमोहितान् ॥ असुरान्भुविपाशेनबद्धाचान्यानकर्षयत् ॥ ५७ ॥ केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णैःखड्गपातैस्तथापरे ॥ विपोथितानिपातेनगदयाभुविशेरते ॥ ५८ ॥ वेमुश्चकेचिद्रुधिरंमुसलेनभृशंहताः ॥ केचिन्निपतिताभूमौभिन्नाः शूलेनवक्षसि ॥ ५९ ॥ निरंतरशरौघेणकृत्ताः केचिद्रणाजिरे ॥ शैलानुकारिणःप्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ॥ ६० ॥ केषांचिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ शिरांसिपेतुरन्येषामन्येमध्येविदारिताः ॥ ६१ ॥ विच्छिन्नजंघास्त्वपरेपेतुरुर्व्यांमहासुराः ॥ एकबाह्वक्षिचरणाःकेचिद्देव्याद्विधाकृताः ॥ ६२ ॥

कोई कोई मुसलके द्वारा ताडित होकर अतिशय रुधिरको वमन करने लगा और कितनेही छातीमें त्रिशूलद्वारा विदारित होकर पृथ्वीमें गिरपडे ॥ ५९ ॥ कोई कोई युद्धभूमिमें देवीके बाणसमूहसे निरन्तर अर्थात् मध्यदेशहीन हुए। असुरोंकी सेनाके साथवाले देवशत्रुगण इस प्रकार प्राणत्याग करनेलगे ॥ ६० ॥ किसी किसी असुरकी भुजाऐं कट गई, किसी किसीकी ग्रीवा छिन्न होगई, अन्यान्य अनेक असुरोंके मस्तक कटगये, कोई कोई बीचमेंसे कटगया ॥ ६१ ॥ किसी महाअसुरकी जंघा कट कर पृथ्वीमें गिरपडी। देवीने किसी किसीकी एक एक बाहु, अक्षि (आंख) और चरण विनष्ट करडाला किसीका मध्यदेश दोटुकडे कर दिया ॥ ६२ ॥

कोई२ मस्तक कटनेसे पृथ्वीमें गिरकर फिर उठे कोई कबन्ध उत्कृष्ट अस्त्र ग्रहण करके देवीके संग युद्ध करनेलगे॥६३॥कितनेही कबंध बाजेकी लयके अनुसार नाचने लगे और उस युद्धमें कितनेही बड़े बड़े असुर कि, जिनके मस्तक कटगयेथे और कबंध रहगयेथे, वह हाथोंमें खड्ग,शक्ति और दोनों ओर धारवाली तलवार लेकर ॥६४॥ देवीसे 'ठहरो ठहरो' इस प्रकार कहने लगे। जिस स्थानमें यह लोमहर्षण महा संग्राम हुआ, वह स्थान उन गिरे हुए रथ, हाथी, घोडे और असुरोंके द्वारा अगम्य होगया अर्थात् ऐसा होगया कि, जिसमें कोई जा न सके ॥ ६५ ॥६६॥ और वहां शीघ्रही उस रणके मध्यमें असुरोंकी सेनाके हाथी,असुर और घोडे इनके रुधिरसमूहसे बडी नदियां वहने लगी ॥ ६७ ॥ अग्नि जिस प्रकार तृण काष्ठके समूहको क्षण भरमें भस्म करती है, ऐसेही अम्बिका देवीने उन असुरोंके महा-

छिन्नेपिचान्येशिरसिपतिताः पुनरुत्थिताः ॥ कबंधायुयुधुर्देव्यागृहीतपरमायुधाः ॥ ६३ ॥ ननृतुश्चापरेतत्रयुद्धेतूर्यलयाश्रिताः ॥ कबंधाश्छिन्नशिरसःखड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ॥ ६४ ॥ तिष्ठतिष्ठेतिभाषंतोदेवीमन्येमहासुराः ॥ रुधिरौघविलुप्तांगाःसंग्रमोलोमहर्षणे ॥ ६५ ॥ पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्चवसुंधरा ॥ अगम्यासाऽभवत्तत्रयत्राभूत्समहारणः ॥ ६६ ॥ शोणितौघामहानद्यःसद्यस्तत्रविसुस्रुवुः ॥ मध्येचासुरसैन्यस्यवारणासुरवाजिनाम् ॥ ६७ ॥ क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणांतथांविका ॥ निन्येक्षयंयथावह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६८॥ सचसिंहोमहानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ॥ शरीरेभ्योमरारीणामसूनिवविचिन्वति ॥ ६९ ॥ देव्यागणैश्चतैस्तत्रकृतंयुद्धंमहासुरैः ॥ यथैनांतुष्टुवुर्देवाःपुष्पवृष्टिमुचोदिवि ॥ ७० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येएकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ निहन्यमानंतत्सैन्यमवलोक्यमहासुरः ॥ सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौयोद्धुमथांबिकाम् ॥ १ ॥ सदेवींशरवर्षेणववर्षसमरेऽसुरः ॥ यथामेरुगिरेःशृंगंतोयवर्षेणतोयदः ॥ २ ॥

सैन्यको क्षण मात्रमें क्षय किया ॥ ६८ ॥ देवीका वाहन सिंहभी बडा नाद करता हुआ अपने सटाके बालोंको कंपाताहुआ अत्यन्त क्रोधसे सब असुरोंके प्राण हरण करने लगा ॥ ६९ ॥ और असुरोंके शरीरोंमेंसे मानों प्राणोंहीको ढूँढने लगा। और देवीके सब गणोंनेभी उन महा असुरोंके संग ऐसा संग्राम किया कि, जिससे स्वर्गवासी देवता अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥७०॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये एकोनाशीतितमोऽध्यायः॥७९॥ उस सब सेनाको निहत हुआ देखकर सेनापति महासुर चिक्षुर युद्ध करनेके लिये क्रोधसे अम्बिकाके निकट आया ॥ १ ॥ जलधर जिस प्रकार सुमेरु

१ "नागानामयुतं तुरंगनियुतं सांगं रथानां शतम् । पत्तीनां दशकोटयो निपतिता एकः कबन्धो रणे ।" अर्थात् अयुत (१००००) हाथी, नियुत (१०००००) घोडे, डेढसौ रथ और दश करोड पैदलोंके निहत होनेपर युद्धमें एक कबन्ध उठता है ।

पर्वतके शृंगमें जलकी वर्षा करते हैं, वह असुर भी इसी प्रकार देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २ ॥ फिर देवीने लीलापूर्वकही उसके बाणोंको छेदन करके, रथके घोडे और सारथीको बाणोंसे मार डाला ॥ ३ ॥ देवीने उसी समय फिर उसका धनुष और अत्यन्त ऊंची ध्वजा काटकर उस टूटेहुए धनुष वाले चिक्षुरका शरीर मारे बाणोंके वींध डाला ॥ ४ ॥ फिर जब उसका धनुष कट गया, रथ टूट गया, तथा घोडे और सारथी मरगये । तब वह असुर अपनी ढाल तलवार लेकर देवीकी ओर धावमान हुआ ॥ ५ ॥ और अत्यन्त वेगसे अपनी पैनीधारवाली तलवारके द्वारा सिंहके मस्तकमें आघात करके देवीकेभी बांये हाथमें आघात किया ॥ ६ ॥ हे नृपनन्दन ! उस असुरकी वह तलवार देवीके हाथका स्पर्श होतेही टूट गई । फिर क्रोधसहित लाल लाल नेत्र किये उस महाअसुरने शूल ग्रहण करके ॥ ७ ॥ उसने उसे भद्रकालीपर फेंका । तब देवीने उस त्रिशूलको तेजसे जाज्वल्यमान और आकाशसे गिरतेहुए दूसरे सूर्य

तस्यच्छित्त्वाततोदेवीलीलयैवशरोत्करान् ॥ जघानतुरगान्बाणैर्यंतारंचैववाजिनाम् ॥ ३ ॥ चिच्छेदचधनुःसद्योध्वजंचातिसमुच्छ्रितम् ॥ विव्याधचैनं गात्रेषुच्छिन्नधन्वानमाशुगः ॥ ४ ॥ सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ अभ्यधावततां देवींखड्गचर्मधरोसुरः ॥ ५ ॥ सिंहमाहत्यखड्गेनतीक्ष्णधारे णमूर्धनि ॥ आजघानभुजेसव्येदेवीमप्यतिवेगवान् ॥ ६ ॥ तस्याःखड्गोभुजंप्राप्यपफालनृपनंदन ॥ ततोजग्राहशूलंसकोपादरुणलोचनः ॥ ७ ॥ चिक्षे पचततस्तत्तुभद्रकाल्यांमहासुरः॥जाज्वल्यमानंतेजोभीरविबिंबमिवांबरात्॥८॥दृष्ट्वातदापतच्छूलंदेवीशूलममुंचत॥तेनतच्छतधानीतंशूलंसचमहासुरः ॥९॥ हतेतस्मिन्महावीर्येमहिषस्यचमूपतौ ॥ आजगामगजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥ १० ॥ सोपिशक्तिंमुमोचाथदेव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् ॥ हुंकाराभिहतांभूमौ पातयामासनिष्प्रभाम् ॥११॥ भग्नांशक्तिंनिपतितांदृष्ट्वाक्रोधसमन्वितः ॥ चिक्षेपचामरःशूलंबाणैस्तदपिसाच्छिनत् ॥१२॥ ततः सिंहःसमुत्पत्यगजकुंभां तरेस्थितः ॥ बाहुयुद्धेनयुयुधेतेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥ १३ ॥

मण्डलकी ॥ ८ ॥ समान देखकर अपना शूल चलाया । उस देवीके चलाये शूलने असुरके चलायेहुए शूलके शतखंड करके महाअसुर चिक्षुरके भी शत खंड करडाले ॥ ९ ॥ महिषासुरका सेनापति वह महावीर्यवान् चिक्षुर नामक असुर जब मारा गया, तब देवताओंका शत्रु चामर नामक असुर हाथीपर चढकर युद्धार्थ देवीके सन्मुख आया ॥ १० ॥ फिर उस महाअसुरने देवीको लक्ष्य करके शक्ति छोडी, किन्तु वह शक्ति देवीके हुंकार शब्दसे अभिहित और प्रभाहीन होकर पृथ्वीमें गिरगई ॥ ११ ॥ अपनी शक्तिको टूटकर गिरताहुआ देखकर चामर असुरने क्रोधपूर्वक शूल चलाया पर देवीने अपने बाणोंसे उस शूलकोभी छेदन किया ॥ १२ ॥ अनन्तर देवीका वाहन सिंह उछलकर गजके मस्तकपर चढगया और हाथीकी पीठपर बैठेहुए

उस देवशत्रु असुरसे बाहुयुद्ध करने लगा ॥ १३ ॥ सिंह और चामरासुर दोनों युद्ध करते करते उस हाथीकी पीठसे नीचे गिरे और परस्पर अत्यन्त क्रोधित होकर दारुण प्रहारोंके द्वारा युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ अनन्तर कुछ कालोपरान्तही सिंहने आकाशमें उछल और फिर वहाँसे पृथ्वीमें गिरकर अपने पंजोंके प्रहारद्वारा चामर असुरके मस्तकको देहसे पृथक् करदिया ॥ १५ ॥ देवीने उदग्रनामक असुरको पत्थर और वृक्षोंकी वृष्टि करके मारडाला। दांत और घूसोंके प्रहारसे कराल नामक असुरको विनाश किया ॥ १६ ॥ क्रोधमें भरीहुई देवीने गदापातद्वारा उद्धत नामक असुरको चूर्ण करडाला । फिर बाष्कल नामक असुरको भिंदिपालसे तथा ताम्र और अन्धक नामक दोनों असुरोंको बाणों से विनाश किया ॥ १७ ॥ त्रिनेत्रा परमेश्वरी देवीने त्रिशूलसे उग्रास्य, उग्रवीर्य और महाहनुनामक तीन असुरोंको संहार

युध्यमानौततस्तौतुतस्मान्नागान्महींगतौ ॥ युयुधातेतिसंरब्धौप्रहारैरतिदारुणैः ॥ १४ ॥ ततोवेगात्खमुत्पत्यनिपत्यचमृगारिणा ॥ करप्रहारेणशिरश्चाम रस्यपृथक्कृतम् ॥ १५ ॥ उदग्रश्चरणेदेव्याशिलावृक्षादिभिर्हतः ॥ दंतमुष्टितलैश्चैवकरालश्चनिपातितः ॥ १६ ॥ देवीक्रुद्धागदापातैश्चूर्णयामासचो द्धतम् ॥ वाष्कलंभिन्दिपालेनबाणैस्ताम्रंतथांधकम् ॥ १७ ॥ उग्रास्यमुग्रवीर्यंचतथैवचमहाहनुम् ॥ त्रिनेत्राचत्रिशूलेनजघानपरमेश्वरी ॥ १८ ॥ बिडालस्यासिनाकायात्पातयामासवैशिरः ॥ दुर्धरंदुर्मुखंचोभौशरैर्निन्येयमक्षयम् ॥ कालंचकालदंडेनकालरात्रिरपातयत् ॥ १९ ॥ "उग्रदर्शनमत्युग्रैः खड्गपातैरताडयत् ॥ असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सारणोत्सवे ॥ गणैःसिंहेनदेव्याचजयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः" ॥ २० ॥ एवंसंक्षीयमाणेतुस्वसैन्येमहिषासुरः ॥ माहिषेणस्वरूपेणत्रासयामासतान्गणान् ॥ २१ ॥ कांश्चित्तुंडप्रहारेणखुरक्षेपैस्तथापरान् ॥ लांगूलताडितांश्चान्याञ्छृंगाभ्यांचविदारितान् ॥ २२ ॥ वेगेनकांश्चिदपरान्नादेनभ्रमणेनच ॥ निश्वासपवनेनान्यान्पातयामासभूतले ॥ २३ ॥

किया ॥ १८ ॥ असिद्वारा बिडालनामक असुरका मस्तक देहसे काटकर गिरा दिया। दुर्द्धर और दुर्मुख नामक दोनों असुरोंको बाणोंके द्वारा यमालयमें भेज दिया। और कालरात्रिने काल असुरको कालदण्डसे नष्टकर गिरादिया ॥ १९ ॥ और उग्रदर्शनको बडे उग्रखड्गपातसे ताडनकिया, और असिलोमाको असिद्वारा युद्धस्थलमें नष्ट करदिया, और गणोंने तथा सिंहने जयपूर्वक सिंहनाद किया ॥ २० ॥ इसप्रकारसे अपनी सेनाको क्षय होताहुआ देख महिषासुर अपना महिषरूप धारणकर देवीके उन गणोंको भय दिखाने लगा ॥ २१ ॥ किसीको मुखके प्रहारद्वारा किसीको खुरके प्रहारद्वारा किसीको पूंछके प्रहारद्वारा और किसी किसीको सींगोंसे विदारण करनेलगा ॥ २२ ॥ किसीको वेगद्वारा, किसीको गर्जनाद्वारा किसीको भ्रमणद्वारा और

किसी किसीको श्वासकी पवनसे मारकर भूमिमें गिरादिया ॥ २३ ॥ इसप्रकार प्रमथ सैन्य अर्थात् देवीके गणोंको गिराकर वह असुर महादेवीके सिंहको मारनेकी इच्छासे दौड़ा, तब अम्बिका कुपित हुई ॥ २४ ॥ महावीर्यवान् महिषासुरभी अत्यन्त क्रोधित हो खुरोंसे पृथ्वीको खोदताहुआ दोनों सींगोंसे संपूर्ण ऊंचे पर्वतोंको फेंककर गर्जना करनेलगा ॥ २५ ॥ और उसके वेगसहित भ्रमण करनेपर खुदीहुई भूमि मृदुल होगई तथा पूंछसे ताडितसमुद्र चारोंओर फैलने लगा ॥ २६ ॥ कंपायमान सींगोंसे फाडेहुए मेघोंके टुकडे टुकडे होगये और इसके श्वासकी पवनद्वारा सैंकडों पर्वत आकाशसे गिरपडे ॥ २७ ॥ इसप्रकार कोपमें भरेहुए असुरको निकट आता देखकर चण्डिकादेवीने भी कुपितहो उसी समय उसके मारनेकी इच्छा करी ॥ २८ ॥ फिर देवीने पाश फेंककर उस

निपात्यप्रमथानीकमभ्यधावतसोसुरः ॥ सिंहंहंतुंमहादेव्याः कोपंचक्रेततोंविका ॥ २४ ॥ सोपिकोपान्महावीर्यःक्षुरक्षुण्णमहीतलः ॥ शृंगाभ्यांपर्वतानुच्चैश्चिक्षेपचननादच ॥२५॥ वेगभ्रमणविक्षुण्णमहीतस्यव्यशीर्यत ॥ लांगूलेनाहतश्चाब्धिःप्लावयामाससर्वतः॥२६॥ धुतशृंगविभिन्नाश्चखंडंखंडंययुर्घनाः ॥ श्वासानिलास्ताःशतशोनिपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ २७ ॥ इतिक्रोधसमाध्मातमापतंतंमहासुरम् ॥ दृष्ट्वासाचंडिकाकोपंतद्वधायतदाकरोत् ॥ २८ ॥ साक्षिप्वातस्यवैपाशंतंबबंधमहासुरम् ॥ तत्याजमाहिषंरूपंसोपिबद्धोमहामृधे ॥ २९ ॥ ततः सिंहोभवत्सद्यो यावत्तस्यांविकाशिरः ॥ छिनत्तितावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत॥ ३० ॥ ततएवाशुपुरुषंदेवीचिच्छेदसायकैः ॥ तंखड्गचर्मणासार्धंततःसोभून्महागजः ॥ ३१ ॥ करेणचमहासिंहंतंचकर्षजगर्जच ॥ कर्षतस्तुकरंदेवीखड्गेननिरकृंतत ॥ ३२ ॥ ततोमहासुरोभूयोमाहिषंवपुराश्रितः ॥ तथैवक्षोभयामासत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३३ ॥ ततः क्रुद्धाजगन्माताचंडिकापानमुत्तमम् ॥ पपौपुनःपुनश्चैवजहासारुणलोचना ॥ ३४ ॥

महा असुरको बांधलिया और उस महिषासुरनेभी उस युद्धक्षेत्रमें अपना महिषरूप त्याग ॥ २९ ॥ तत्काल सिंहरूप धारण किया अनन्तर ज्योंही अम्बिका देवी उसका मस्तक काटनेमें उद्यतहुई, तब वह खड्ग हाथमें लिये पुरुषरूपमें दिखाई देनेलगा ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त देवीने बाणोंसे ढाल और तलवारके सहित उस पुरुषको छेदन करडाला, तब वह अत्यन्त बड़े हाथीका रूप धारण करके सूंडसे देवीके वाहन महासिंहको खैंचताहुआ गर्जनेलगा । तब देवीने खड्गसे उस सिंहको खैंचतेहुए हाथीकी सूंड काटडाली ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अनन्तर महा असुर पुनर्वार महिषरूप धारणकरके पूर्वोक्त प्रकारसे सचराचर त्रैलोक्यको फिर क्षोभित (दुःखित) करनेलगा ॥ ३३ ॥ इसके पीछे जगतकी माता चण्डिका कुपित होकर उत्तम मधु पीने लगी और लाल लाल

नेत्र किये वारंवार हँसने लगी ॥ ३४ ॥ तब वह बल, वीर्य, मतवाला असुरभी गर्जताहुआ दोनों सींगोंके द्वारा चण्डिकादेवीके ऊपर पर्वत फेंकने लगा ॥ ३५ ॥ देवी चण्डिका अपने बाणोंके द्वारा उसके चलाये सब पर्वतोंको चूर्ण करके उस असुरसे कहने लगी । किन्तु उस समय मद्य पीनेके कारण चण्डिकाका वदन रक्तवर्ण होगया और समस्त अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण नहीं हुआ ॥ ३६ ॥ देवी बोली—रे मूढ ! जबतक मैं मधुपान करतीहूं, तबतक तू 'गर्जले गर्जले' मेरेसे तुझको शीघ्र विनाश करनेपर देवतागण इसी स्थानमें गर्जना करेंगे ॥ ३७ ॥ ऋषि बोले—देवी इस प्रकार कह फिर उछलकर उस महा असुरके ऊपर चढगई और उसको अपने पैरोंसे दबाकर उसके कंठमें त्रिशूलसे छेदन करने लगी ॥ ३८ ॥ अनन्तर वह असुरभी देवीके पैरोंसे दबनेके कारण देवीके पराक्रमके सन्मुख अस्त होग

ननर्दचासुरःसोपिबलवीर्यमदोद्धतः ॥ विषाणाभ्यांचचिक्षेपचंडिकांप्रतिभूधरान् ॥ ३५ ॥ साचतान्प्रहितांस्तेनचूर्णयंतीशरोत्करैः ॥ उवाचतंमदोद्धतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥ ३६ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ गर्जगर्जक्षणंमूढमधुयावत्पिबाम्यहम् ॥ मयात्वयिहतेत्रैवगर्जिष्यंत्याशुदेवताः ॥३७॥ ऋषिरुवाच ॥ एवमुक्त्वासमुत्पत्यसारूढातंमहासुरम् ॥ पादेनाक्रम्यकंठेचशूलेनैनमताडयत् ॥ ३८॥ ततःसोपिपदाक्रांतस्तयानिजमुखात्ततः ॥ अर्द्धनिष्क्रांतएवासीद्देव्यावीर्येणसंवृतः ॥ ३९ ॥ अर्द्धनिष्क्रांतएवासौयुध्यमानोमहासुरः ॥ तयामहासिनादेव्याशिरश्छित्वानिपातितः ॥ ४० ॥ एवंसमहिषोनामससैन्यःससुहृद्गणः ॥ त्रैलोक्यंमोहयित्वातुतयादेव्याविनाशितः ॥ ४१ ॥ त्रैलोक्यस्थैस्तदाभूतैर्महिषेविनिपातिते ॥ जयेत्युक्तं ततः सर्वैः सदेवासुरमानवैः ॥ ४२ ॥ ततोहाहाकृतंसर्वंदैत्यसैन्यंननाशयत् ॥ प्रहर्षंचपरंजग्मुः सकलादेवतागणाः ॥ ४३ ॥ तुष्टुवुस्तांसुरादेवींसहादिव्यैर्महर्षिभिः ॥ जगुर्गंधर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधोनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ ततःसुरगणाःसर्वेदेव्याइंद्रपुरोगमाः ॥ स्तुतिमारेभिरेकर्त्तुंनिहतेमहिषासुरे ॥ १ ॥

या और उसके मुखकी कान्ति आधी रहगई ॥ ३९ ॥ तदनन्तर आधीकांतिवाले लडतेहुए उस महा असुरका देवीने उसे महाअसिकेद्वारा मस्तक काटकर विनाश किया ॥ ४० ॥ इस प्रकारसे वह महिषासुर अपनी सेना और सुहृद्गणोंके सहित त्रिलोकीको मोहितकर अन्तमें देवीके हाथसे निहत हुआ ॥ ४१ ॥ उससमय महिषासुरके मरनेपर त्रिलोकीके देवता मनुष्य और पातालवासी बलि आदि असुरोंने देवीका जयजयकार किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर देवीने हाहाकार करतीहुई दैत्योंकी सब सेनाको नाश करदिया जिससे कि, सब देवतागण अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ देवता और दिव्यमहर्षिगण देवीकी स्तुति करने लगे । गन्धर्वपतिगण गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधोनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ऋषिबोले—उस समय इन्द्रको

आदिले सब देवता महिषासुरके मरनेसे प्रसन्न हो देवीकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ जब भगवती देवीने देवताओंके वैरी अत्यन्त वीर्यवान् उस दुष्ट महिषासुरका वध किया, तब इन्द्र इत्यादि देवताओंके समूह कि, जिनके शोभायमान शरीर अतिप्रसन्नताके कारण पुलकित होगयेथे, अपने मस्तक, कंठ और कंधोंको झुकाकर नमस्कारपूर्वक नानाप्रकारके वचनोंसे दुर्गाका स्तवन करने लगे ॥ २ ॥ देवता बोले—जिन्होंने अपने प्रभावसे इस चराचर जगत्को विस्तारित किया है, संपूर्ण देवताओंके शक्तिसमूहसे मिलित होकर जो मूर्त्तिरूपमें परिणत हुई है और जो संपूर्ण देवता तथा महर्षियोंकी पूजनीय हैं हम भक्तिसहित उन अम्बिकादेवीको प्रणाम करते हैं वह हमारा मंगल करे ॥ ३ ॥ भगवान् अनन्तदेव, ब्रह्मा और महादेव जिनके प्रभाव और बलका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होते; वह चण्डिका देवी संपूर्ण जगत्का पालन करनेके निमित्त तथा अमंगल और भय विनाशके निमित्त इच्छा करें॥ ४ ॥ जो पुण्यवान् मनुष्योंके घरमें सम्पदस्वरूप

शक्रादयःसुरगणानिहतेतिवीर्येंतस्मिन्दुरात्मनिसुरारिबलेचदेव्या ॥ तांतुष्टुवुःप्रणतिनम्रशिरोधरांसावाग्भिःप्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ २ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ देव्यायययाततमिदंजगदात्मशक्त्यानिःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ॥ तामंबिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यांभक्त्यानताःस्मविदधातुशुभानिसानः ॥ ३ ॥ यस्याःप्रभावमतुलंभगवाननंतोब्रह्माहरश्चनहिवक्तुमलंबलंच ॥ साचंडिकाखिलजगत्परिपालनायनाशायचाशुभभयस्यमतिंकरोतु ॥ ४ ॥ या श्रीःस्वयंसुकृतिनांभवनेष्वलक्ष्मीःपापात्मनांकृतधियांहृदयेषुबुद्धिः ॥ श्रद्धासतांकुलजनप्रभवस्यलज्जातांत्वानताःस्मपरिपालयदेविविश्वम् ॥ ५ ॥ किंवर्णयामतवरूपमचिंत्यमेतत्किंचातिवीर्यमसुरक्षयकारिभूरि ॥ किंचाहवेषुचरितानितवाद्भुतानिसर्वेषुदेव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ६ ॥ हेतुःसमस्तजगतांत्रिगुणापिदोषैर्नज्ञायसेहरिहरादिभिरप्यपारा ॥ सर्वाश्रयाखिलमिदंजगदंशभूतमव्याकृताहिपरमाप्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ७ ॥

है; जो पापियोंके घरमें अलक्ष्मीस्वरूप हैं; जो समस्त पढ़नेसे निर्मलअन्तःकरणवालेके हृदयमें बुद्धिस्वरूप हैं जो श्रेष्ठ आचरणवालोंकी श्रद्धास्वरूप और जो सत्कुलोत्पन्न मनुष्योंकी लज्जास्वरूप हैं, हम उन्हीं तुमको नमस्कार करते हैं, हे देवि ! तुम विश्वका पालन करो ॥ ५ ॥ तुम्हारे इस प्रकार अचिन्त्यरूपका वर्णन करनेमें हम कैसे समर्थ हों । हे देवि ! तुम्हारा असुरक्षयकारी अपरिमित वीर्य तथा असुर और देवताओंके प्रति युद्धक्षेत्रमें वह सब अति अद्भुत व्यवहार हम किस भाँतिसे वर्णन करें ॥ ६ ॥ हे देवि ! तुम विकाररहित आद्याप्रकृति हो अथ च सत्व, रज और तमोगुणात्मिका होनेपरभी जगत्का हेतु हो, राग द्वेषादि युक्त विष्णु, महादेव आदिभी तुम्हारा प्रकृत तत्त्व नहीं जानते, हे देवि ! तुम अपार और सब पदार्थोंकी आश्रयस्वरूप हो, यह जगत् तुम्हाराही अंशभूत है ॥ ७ ॥

हे देवि ! संपूर्ण यज्ञोंमेंही तुम्हारा नाम उच्चारण करनेसे समस्त देवता तृप्तिलाभ करते हैं, क्योंकि तुम्हीं देवता और ऋषियोंको तृप्तिकारक स्वाहा और स्वधास्वरूप कहकर उच्चारित होती हो ॥ ८ ॥ हे देवि ! तुम्हारी बृहत् उपासनाका विषय अचिन्त्य है और जितेन्द्रिय तत्त्वसार तथा दोषहीन मोक्षार्थी मुनिगण तुमको मुक्तिका कारण कहकर सेवन करते हैं, हे देवि ! अतएव तुम्हीं भगवती सर्वोत्कृष्ट मोक्षविद्या हो ॥ ९ ॥ हे देवि ! तुम शब्दमय तीनों वेदस्वरूप हो और प्रणवयुक्त मनोहर पद पाठशाली ऋक्, यजु और सामवेदका आश्रयस्वरूप हो, तुम्हीं देवी, सर्वैश्वर्य युक्त हो, तुम्हीं संसारकी जीवन रक्षाके निमित्त कृषिस्वरूप हो, हे देवि ! तुम्हीं संपूर्ण जगत्की विषम पीडाका [illegible] करने वाली हो ॥ १० ॥ हे देवि ! तुम्हीं बुद्धिस्वरूप हो, क्योंकि तुम दुर्गम भवसागरमें

यस्याःसमस्तसुरताः समुदीरणेनतृप्तिंप्रयांतिसकलेषुमखेषुदेवी ॥ स्वाहासिवैपितृगणस्यचतृप्तिहेतुरुच्चार्यसेत्वमतएवजनैःस्वधाच ॥ ८ ॥ यामुक्तिहेतुरविंचित्यमहाव्रतात्वमभ्यस्यसेसुनियतेंद्रियतत्त्वसारैः ॥ मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासिसाभगवतीपरमाहिदेवि ॥ ९ ॥ शब्दात्मिकासुविमलर्ग्यजुषांनिधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतांचसाम्नाम् ॥ देवीत्रयीभगवतीभवभावनायवार्त्तासिसर्वजगतांपरमार्त्तिहंत्री ॥ १० ॥ मेधासिदेविविदिताखिलशास्त्रसारादुर्गासिदुर्गभवसागरनौरसंगा ॥ श्रीःकैटभारिहृदयैककृताधिवासागौरीत्वमेवशशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ ११ ॥ ईषत्सहासममलंपरिपूर्णचंद्रबिंबानुकारिकनकोत्तमकांतिकांतम् ॥ अत्यद्भुतंप्रहृतमात्तरुषातथापिवक्रंविलोक्यसहसामहिषासुरेण ॥ १२ ॥ दृष्ट्वातुदेविकुपितभ्रुकुटीकरालमुद्यच्छशांकसदृशच्छवियन्नसद्यः ॥ प्राणान्मुमोचमहिषस्तदतीवचित्रंकैर्जीव्यतेहिकुपितांतकदर्शनेन ॥ १३ ॥ देविप्रसीदपरमाभवतीभवायसद्योविनाशयसिकोपवतीकुलानि ॥ विज्ञातमेतदधुनैवयदस्तमेतन्नीतंबलंसुविपुलंमहिषासुरस्य ॥ १४ ॥

अद्वितीय नौकास्वरूप हो, तुम्हीं कैटभ शत्रुके मारनेवाले विष्णुभगवान्के हृदयमें वास करनेवाली लक्ष्मी हो और तुम्हीं शिवजीसे अपने वामभागमें प्रतिष्ठा कीगई गौरी हो ॥ ११ ॥ तथापि तुम्हारा मंद मंद मुसकुराताहुआ निर्मल, पूर्णचन्द्रमाके समान सुवर्णकान्ति और मनोहर मुख देखकरभी जो महिषासुरने क्रोधित होकर अस्त्रप्रहार किया था, यही अत्यन्त आश्चर्य है, तात्पर्य यह है कि, तुम्हारा मुख संसारको मोहितकरनेवाला है, सो वह मोहित नहीं हुआ, सुतरां वह बडाही दुष्ट था ॥ १२ ॥ हे देवि ! क्रोधसे युक्त और भ्रुकुटियोंसे भीषण तथा उदय होतेहुए पूर्णिमाके चन्द्रकी सदृश, ऐसे तुम्हारे मुखको देखकर जो सद्यही महिषासुरने प्राण नहीं छोडे यह बडाही अचंभा है, क्योंकि कुपित यमराजको देखकर कौन जीवित रहसकता है ? ॥ १३ ॥ हे देवि ! तुम प्रसन्न होओ, तुम परमा अर्थात् लक्ष्मी हो

और संसारका मंगल करनेके लियेही उत्पन्न होती हो. हे देवि ! तुम क्रोध करनेपर संपूर्ण कुलोंको नाश करदेती हो, यह अभी जानागया क्योंकि महिषासुरकी अत्यन्त बड़ी सेना और उसको तुमने विनाश किया ॥ १४ ॥ हे देवि ! तुम प्रसन्न होकर जिनको अभ्युदय (कल्याण) प्रदान करती हो, वही देशमें पूजित होते हैं, उनकोही धन और यश मिलता है, उनकाही धर्म नहीं घटता, वही धन्य और उनकेही पुत्र, स्त्री तथा सेवक उद्वेगहीन होते हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! तुम्हारेही प्रसादसे पुण्यशाली मनुष्य प्रतिदिन अत्यन्त आदरके सहित धर्मजनक कार्य करते हैं और मृत्युके पीछे तुम्हारेही अनुग्रहसे स्वर्गमें जाते हैं. अतएव हे देवि ! तुम्हीं तीनों लोकमें फलप्रदान करतीहो ॥ १६ ॥ हे देवि ! तुम दुर्गत मनुष्योंके स्मरण करनेसे उनका भय हरण करती हो और जो स्वस्थचित्त मनुष्य तुमको स्मरण करतेहैं,तुम

तेसंमताजनपदेषुधनानितेषांतेषांयशांसिनचसीदतिबंधुवर्गः ॥ धन्यास्तएवनिभृतात्मजभृत्यदारायेषांसदाभ्युदयदाभवतीप्रसन्ना ॥ १५ ॥ धर्म्याणिदेविसकलानिसदैवकर्माण्यत्यादृतःप्रतिदिनंसुकृतीकरोति ॥ स्वर्गंप्रयातिचततोभवतीप्रसादाल्लोकत्रयेपिफलदाननुदेवितेन ॥ १६ ॥ दुर्गेस्मृताहरसिभीतिमशेषजंतोःस्वस्थैःस्मृतामातिमतीवशुभांददासि ॥ दारिद्र्यदुःखभयहारिणिकात्वदन्यासर्वोपकारकरणायसदार्द्रचित्ता॥ १७ ॥एभिर्हतैर्जगदुपैतिसुखंतथैतेकुर्वंतुनामनरकायचिरायपापम्॥संग्राममृत्युमधिगम्यदिवंप्रयांतुमत्वेतिनूनमहितान्विनिहंसिदेवि॥ १८॥ दृष्ट्वैवकिंनभवतीप्रकरोतिभस्मसर्वासुरानरिषुयत्प्रहिणोषिशस्त्रम् ॥ लोकान्प्रयांतुरिपवोपिहिशस्त्रपूताइत्थंमतिर्भवतितेष्वहितेषुसाध्वी ॥ १९ ॥ खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैःशूलाग्रकांतिनिवहेनदृशोसुराणाम् ॥ यन्नागताविलयमंशुमदिंदुखंडयोग्याननंतवविलोकयतांतदेतत् ॥ २० ॥

उनको अत्यन्त मंगलजनक बुद्धि प्रदान करतीहो.हे दरिद्र दुःखभय हरनेवाली ! तुम्हारे अतिरिक्त और किसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा आर्द्र अर्थात् दयासे कृपालु रहता है ? ॥ १७ ॥ "इन सब असुरोंके मरनेसे जगत् सुखलाभ करे और फिर वह नरकके लिये बहुत कालतक पाप करे तोभी इस समय रणक्षेत्रमें मरकर वह स्वर्ग में जाँय" हे देवि ! तुम यही विचारकर निश्चय शत्रुओं के विनाश करतीहो ॥ १८ ॥ केवल देखनेमात्रसेही क्या तुम शत्रुओंके भस्म नहीं करसकतीहो ? किन्तु "शत्रुगण शास्त्रसे पवित्रहोकर स्वर्ग में जाँय" तुमने यही विचारकर शत्रुओंके ऊपर शस्त्र चलाया है मरेहुए असुरोंकाभी उपकार करनेकेलिये जो तुम्हारी ऐसी मति है, वह अति साध्वी अर्थात् श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ १९ ॥ हे देवि ! खड्गकी उग्र प्रभासमूहके निकलनेसे और त्रिशूलके अग्रभागकी कान्तिसमूहसे उन सब असुरोंकी

दृष्टि जो विनाशको प्राप्त नहीं हुई, इसका कारण अन्य कुछ नहीं है, केवल तुम्हारे किरणों से शोभायमान चन्द्रखंडकी सदृश मुखको देखनेसे उनके नेत्र अत्यन्त शीतल होगयेथे ॥२०॥ हे देवि ! तुम्हारा स्वभाव दुष्ट पुरुषोंके दुराचारको नष्ट करनेवाला है एवं तुम्हारा रूप तुलनारहित और अचिन्त्य है। हे देवि ! तुम्हारा वीर्य देवताओंका पराक्रम हरनेवाले असुरोंका नाशक है, इसप्रकार शत्रुओं के ऊपरभी तुम्हारी कृपा स्पष्ट प्रगट है ॥२१॥ हे देवि ! किसके संग तुम्हारे इस पराक्रमकी तुलना होसकती है ? तुम्हारा रूप शत्रुओंको भयकारी और अत्यन्त मनोहरहै। ऐसा रूप स्वर्ग, मर्त्य वा पातालमें और किसकाहै ! हे वरदेदेवि ? तीनों भुवनके मध्य तुम्हारेही चित्तमें एकत्र दया और समरमें निष्ठुरता देखीजाती है और कहीं नहीं ॥२२॥ हे देवि ! तुमने शत्रुको मारकर त्रिभुवनकी रक्षा की तथा रणक्षेत्रमें उन

दुर्वृत्तवृत्तशमनंतवदेविशीलंरूपंतथैतदविचिंत्यमतुल्यमन्यैः ॥ वीर्यंचहंतृहृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपिप्रकटितैहृदयात्वयेत्थम् ॥ २१ ॥ केनोपमाभवतुते स्यपराक्रमस्यरूपंचशत्रुभयकार्यतिहारिकुत्र ॥ चित्तेकृपासमरनिष्ठुरताचदृष्टात्वय्येवदेविवरदेभुवनत्रयेपि ॥ २२ ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलंरिपुनाशनेनत्रातं त्वयासमरमूर्द्धनितेपिहत्वा ॥ नीतादिवंरिपुगणाभयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवंनमस्ते ॥ २३ ॥ शूलेनपाहिनोदेविपाहिखड्गेनचांबिके ॥ घंटास्वनेननःपाहिचापज्यानिःस्वनेनच ॥ २४ ॥ प्राच्यांरक्षप्रतीच्यांचचंडिकेरक्षदक्षिणे ॥ भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यांतथेश्वरि ॥ २५ ॥ सौम्यानियानिरूपाणित्रैलोक्येविचरंतिते ॥ यानिचात्यंतघोराणितैरक्षास्मांस्तथाभुवम् ॥ २६ ॥ खड्गशूलगदादीनियानि चास्त्राणितेंबिके ॥ करपल्लवसंगीनितैरस्मात्रक्षसर्वतः ॥ २७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ एवंस्तुतासुरैर्दिव्यैःकुसुमैर्नंदनोद्भवैः ॥ अर्चिताजगतांधात्रीतथागंधानुलेपनैः ॥ २८ ॥

शत्रुओंको मारकर स्वर्ग प्रदान किया और मदोद्धत असुरों से उत्पन्नहुआ हमाराभी भय दूर हुआ अतएव हे देवि ! तुमको नमस्कार है ॥२३॥ हे देवि ! हमारी शूल द्वारा रक्षा करो हेअम्बिके ! हमारी खड्गद्वारा रक्षा करो। हे देवि ! घंटा और धनुषके प्रत्यंचाकी टंकारसे हमारी रक्षा करो ॥२४॥ हे चण्डिके ! हे ईश्वरी ! अपना शूल घुमाकर हमारी पूर्वमें, पश्चिममें, दक्षिणमें और उत्तरमें रक्षा करो ॥२५॥ तुम्हारे जितने सौम्यरूप और जितने अत्यन्तभयंकर रूप त्रिभुवनमें विचरण करते हैं; तुम उन सब रूपोंसे हमारी और पृथ्वीकी रक्षा करो ॥२६॥ हे अम्बिके ! तुम्हारे करपल्लवमें खड्ग, शूल, गदादि जो अस्त्र रहते हैं, उन सब अस्त्रोंसे चारों ओर हमारी रक्षा करो ॥२७॥ ऋषि बोले-देवताओं ने इस प्रकार उनकी स्तुति करी और नन्दनवनमें उत्पन्नहुए पुष्प, दिव्यगंधानुलेपन और दिव्यधूपद्वारा भक्तिसहित उन जगज्जननीका पूजनकिया ॥२८॥

उसकाल वरदेनेकी इच्छासे उनका मुखमण्डल अत्यन्तही सुन्दर होगया, तब वह सम्पूर्ण प्रणत देवताओंसे कहने लगी ॥ २९ ॥ देवी बोली—हे त्रिदशगण! तुम मुझसे अपना अभिलाषित वर मांगो, मैं तुम्हारे इस स्तवसे संमानित हुई हूं, मैं तुमको अत्यन्त प्रीतिके सहित वह वर दूंगी ॥ ३० ॥ जो इस महिषासुरवधके उपरान्त कर्तव्य है सो हम नहीं जानती हैं जो कुछ तुमको दुस्साध्य हो वह हमसे कहो यह देवीके वचन सुनकर देवता कहने लगे ॥ ३१ ॥ देवता बोले—हे भगवती! जब तुमने हमारे इस प्रबल शत्रु महिषासुरका वध किया तो आपने हमारा समस्त कार्यही संपादन किया है, अब कुछ अवशिष्ट नहीं है ॥ ३२ ॥ और यदि तुम हमको वर देनाही चाहती हो, तो यह वर दो कि, हम जब तुमको स्मरण करें, तभी तुम हमारी परम आपदा नष्ट करो ॥ ३३ ॥ हे अमलानने! जो मनुष्य हमारे किये इस

भक्त्यासमस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूपैःसुधूपिता ॥ प्राहप्रसादसुमुखासमस्तान्प्रणतान्सुरान् ॥२९॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ व्रियतांत्रिदशाःसर्वैयदस्मत्तोभिवांछितम् ॥ ददाम्यहमतिप्रीत्यास्तवैरेभिःसुपूजिता ॥ ३० ॥ कर्त्तव्यमपरंयच्चदुष्करंतन्नविद्महे ॥ इत्याकर्ण्यवचोदेव्याःप्रत्यूचुस्तेदिवौकसः ॥ ३१ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥ भगवत्याकृतंसर्वंनकिंचिदवशिष्यते ॥ यदयंनिहतःशत्रुरस्माकंमहिषासुरः ॥ ३२ ॥ यदिचापिवरोदेयस्त्वयास्माकंमहेश्वरि ॥ संस्मृतासंस्मृतात्वंनोहिसीथाःपरमापदः ॥३३॥ यश्चमर्त्यस्तवैरेभिस्त्वांस्तोष्यत्यमलानने ॥ तस्यवित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसंपदाम् ॥ वृद्धयेस्मत्प्रपन्नात्वंभवेथाःसर्वदांबिके ॥३४॥ ऋषिरुवाच ॥ इतिप्रसादितादेवैर्जगतोर्थेतथात्मनः ॥ तथेत्युक्त्वाभद्रकालीबभूवांतर्हितानृप ॥ ३५ ॥ इत्येतत्कथितंभूपसंभूतासायथापुरा ॥ देवीदेवशरीरेभ्योजगत्त्रयहितैषिणी ॥ ३६ ॥ पुनश्चगौरीदेहात्सासमुद्भूतायथाभवत् ॥ वधायदुष्टदैत्यानांतथाशुंभनिशुंभयोः ॥ ३७ ॥ रक्षणायचलोकानांदेवानामुपकारिणी ॥ तच्छृणुष्वमयाख्यातंयथावत्कथयामिते ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवमिहात्म्येए काशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ॥ छ ॥

स्तवद्वारा तुम्हारी स्तुति करैं, उनको तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होकर ज्ञानकी अधिकता और ऐश्वर्यके सहित धन, दारा इत्यादि सम्पत्तिकी वृद्धि करना। क्योंकि हे अम्बिके! तुम सब वस्तुके देनेमें समर्थ हो ॥ ३४ ॥ ऋषि बोले—हे नृप! देवताओंसे जगत्के लिये और अपने अर्थ प्रसन्न की हुई भद्र काली यह कहकर कि "ऐसाही होगा" अन्तर्धान होगई ॥ ३५ ॥ हे भूपते! देवताओंके शरीरसे तीनों जगत्का हित करनेके लिये जिस प्रकार देवी पूर्व कालमें उत्पन्न हुई थी, वह तुमसे कहा ॥ ३६ ॥ अब पार्वतीके देहसे जिस प्रकार उत्पन्न होकर शुंभ, निशुंभ और अन्यान्य दुष्ट दैत्योंका नाश ॥ ३७ ॥ लोकोंकी रक्षा और देवताओंका उपकार किया वह तुमसे यथावत् कहताहूं सुनो ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

ऋषि बोले–पूर्वकालमें शुंभ और निशुंभ नामक दो असुरोंने अपने घमंडके बलका आश्रय पाकर शचीपति इन्द्रके त्रैलोक्यका राज्य और संपूर्ण यज्ञ भाग हरण किया॥ १॥ वह शुंभ और निशुंभ सूर्य, चन्द्र, कुबेर और वरुणके अधिकारका कार्य स्वयं करने लगे और वही पवनका अधिकार तथा अग्निका कार्य करने लगे और अन्य सबकाभी अधिकार उन्होंने अपने ही हाथमें लिया॥ २॥ अनन्तर उन दोनों महाअसुरोंके द्वारा हृताधिकार तिरस्कारकिये राज्यहीन, पराजित ॥ ३ ॥ और निकालेहुये देवता उन अपराजिता देवीको स्मरण करनेलगे ॥ ४ ॥ "विपद् कालमें मुझको स्मरण करनेसे मैं तत्काल तुम्हारी परमआपदा नष्ट करूंगी" पूर्वमें हमको इस प्रकार देवीने वर दिया है. इस समय घोर विपद उपस्थित है, अतएव सम्यक् रीतिसे उनकी ही शरण लेनी चाहिये ॥ ५ ॥ देवता इस प्रकार बुद्धि स्थिरकर पर्वतोंमें शिरोमणि हिमालय पर्वतमें जाय उन विष्णुमायाकी स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ देवता बोले–देवीको

ऋषिरुवाच ॥ पुराशुंभनिशुंभाभ्यामसुराभ्यांशचीपतेः ॥ त्रैलोक्यंयज्ञभागाश्चहृतामदबलाश्रयात् ॥ १ ॥ तावेवसूर्यतांतद्वदधिकारंतथैंदवम् ॥ कौबेरमथयाम्यंचचक्रातेवरुणस्यच ॥ २ ॥ तावेवपवनर्द्धिंचचक्रतुर्वह्निकर्मच ॥ अन्येषांचाधिकारान्सःस्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ततोदेवाविनिर्धूताभ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥३॥ हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यांसर्वेनिराकृताः ॥ महासुराभ्यांतां देवींसंस्मरंत्यपराजिताम् ॥ ४ ॥ तयास्माकंवरादत्तोयथापत्सुस्मृताखिलाः ॥ भवतांनाशयिष्यामितत्क्षणात्परमापदः॥५॥इतिकृत्वामतिंदेवाहिमवंतंनगेश्वरम्॥जग्मुस्तत्रततोदेवींविष्णुमायांप्रतुष्टुवुः ॥६॥ ॥ देवाऊचुः॥ ॥ नमोदेव्यैमहादेव्यैशिवायैसततंनमः॥नमःप्रकृत्यैभद्रायैनियताःप्रणताःस्मताम्॥७॥ रौद्रायैनमोनित्यायैगौर्यैधात्र्यैनमोनमः॥ नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः॥८॥ ज्योत्स्नायैचंद्ररूपिण्यैसुखायैसततंनमः ॥ कल्याण्यैप्रणतामृध्यैसिद्ध्यैकूर्म्यैनमोनमः ॥९ ॥ नैर्ऋत्यैभूभृतांलक्ष्म्यैशर्वाण्यैतेनमोनमः॥ दुर्गायैदुर्गपारायैसारायैसर्वकारिणि ॥ ख्यात्यैतथैवकृष्णायैधूम्रायैसततंनमः ॥१०॥ अतिसौम्यातिरौद्रायैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥ ११॥

नमस्कार है, महा देवीको नमस्कार है, शिवाको सर्वदा नमस्कार है, प्रकृतीको नमस्कार है, भद्राको नमस्कार है, हम प्रणत होकर उन देवीको नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ रौद्राको नमस्कार है, नित्या, गौरी और धात्रीको वारम्वार नमस्कार है। जगत्की प्रतिष्ठा और कृत्याको नमस्कार है ॥ ८ ॥ उन प्रकाशरूप, चन्द्ररूप और परमानन्दरूप देवीको सदा नमस्कार करते हैं। कल्याणी और बुद्धिरूपा देवीको नमस्कार है, सिद्धिरूपा देवीको वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ नैर्ऋतिस्वरूपा देवीको नमस्कार है । राजाओंके घरमें लक्ष्मीरूपा देवीको नमस्कार है। शर्व्वाणीस्वरूप तुमको नमस्कार है । नमस्कार है। दुर्गा दुर्गपारा, सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रास्वरूप देवीको हम सदा नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥ जो अत्यन्त सौम्य और अत्यन्त रौद्र है, उन

देवीको हम अति विनयसहित वारम्वार नमस्कार करते हैं। जगत्की प्रतिष्ठा रूप देवीको नमस्कार है, कृतिस्वरूप अर्थात् कार्यरूपिणी देवीको नमस्कार है ॥ ॥ ११ ॥ जो देवी संपूर्ण प्राणियोंमें विष्णुमाया नामसे कहीजाती है, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें चेतना नामसे कही जाती हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें बुद्धिरूपसे स्थित है, उनको नमस्कार । नमस्कार। नमस्कार ॥ १४ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें निद्रारूपसे अवस्थित हैं; उनको नमस्कार । नमस्कार। नमस्कार ॥ १५ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षुधारूपसे अवस्थान करती हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १६ ॥ जो देवी संपूर्ण भूतमें छायारूपसे स्थिति करती हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १७ ॥

यादेवीसर्वभूतेषुविष्णुमायेतिशब्दिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १२ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुचेतनेत्यभिधीयते ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यै नमस्तस्यैनमोनमः ॥ १३ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुबुद्धिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १४ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुनिद्रारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १५ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुक्षुधारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १६ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुच्छायारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १७ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुशक्तिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १८ ॥ यादेवीसर्वभुतेषुतृष्णारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १९ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुक्षांतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २० ॥ यादेवीसर्वभूतेषुजातिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यै नमोनमः ॥ २१ ॥ यादेवीसर्वभुतेषुलज्जारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २२ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुशांतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २३ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुश्रद्धारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २४ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १८ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तृष्णारूपसे वास करतीहैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १९ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षान्तिरूपसे स्थित हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २० ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें जातिरूपसे विराजित हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २१ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लज्जारूपसे निवास करती है; उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार । ॥ २२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें

श्रद्धारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २४ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें कान्तिरूपसे अधिष्ठान करती हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २५ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लक्ष्मीरूपसे वास करती हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २६ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें धृतिरूपसे स्थित हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २७ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार ॥ नमस्कार ॥ २८ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें स्मृतिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २९ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें दयारूपसे अवस्थान करती हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमरकार ॥ ३० ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें नीतिरूपसे अधिष्ठित है, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ ३१ ॥ जो देवी सब

यादेवीसर्वभूतेषुकांतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२५॥ यादेवीसर्वभूतेषुलक्ष्मीरूपेणसंस्थिता॥नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २६ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुधृतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२७॥ यादेवीसर्वभूतेषुवृत्तिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २८ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुस्मृतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २९ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुदयारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥३०॥ यादेवीसर्वभूतेषुनीतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ॥ ३१ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुतुष्टिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ३२ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुपुष्टिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ३३ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुमातृरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ३४ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुभ्रांतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्रीभूतानामखिलेषुया ॥ भूतेषुसततंव्याप्त्यैतस्यैदेव्यैनमोनमः ॥ ३६ ॥ चितिरूपेणयाकृत्स्नमेतद्व्याप्यस्थिताजगत् ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ३७ ॥

प्राणियोंमें तुष्टिरूपसे अवस्थान करती हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ ३२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें पुष्टिरूपसे वास करतीहैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ ३३ ॥ जो देवी सब प्राणियों में मातृरूपसे स्थितहै, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३४ ॥ जो देवी सब प्राणियों में भ्रान्तिरूपसे अवस्थित, हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ ३५ ॥ जो देवी संपूर्ण इन्द्रियोंकी और सब प्राणियों की अधिष्ठात्री है तथा, जो सब प्राणियों में व्याप्तिरूपसे विद्यमानहै। उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ ३६ ॥ जो चैतन्यरूपसे समस्त जगतमें व्याप्त होकर अवस्थिति करतीहैं, उन देवीको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ ३७ ॥

पूर्वकालमें हमने अभीष्टलाभ करके जिनकी स्तुती की है, देवराज इन्द्रने जिनकी बहुतदिनों सेवा करीहै और जो मंगलके समूहका कारण हैं, प्रचण्डदैत्योंसे पीडित होकर हम इससमय जिन ईश्वरीको नमस्कार करते हैं, भक्तिनम्र शरीर होकर हमारे स्मरण करनेपर जो तत्काल हमारी संपूर्ण विपद नष्ट करती है, वह ईश्वरी देवी हमारा सबप्रकार मंगल करैं और संपूर्ण विपत्तियोंका नाश करै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ऋषि बोले—हे नृपनन्दन ! देवतालोग इसप्रकार स्तुति कर तेथे इसी समय पार्वतीदेवी गंगाजलमें स्नान करनेके लिये जानेको उनके सन्मुख आईं ॥ ४० ॥ वह सुन्दर भ्रुकुटिसे शोभित पार्वती देवताओंसे बोली "तुमलोग किसकी स्तुति करतेहो ? उसीसमयमें उन पार्वतीके शरीकोशसे शिवा देवीने उत्पन्न होकर कहा ॥ ४१ ॥ "समरमें निशुंभके द्वारा हारेहुए और फिर शुंभके

स्तुतासुरैःपूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथासुरेन्द्रेणादिनेशसेविता ॥ करोतुसानःशुभहेतुरीश्वरीशुभानिभद्राण्यभिहंतुचापदः ॥ ३८ ॥ यासांप्रतंचोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशाचसुरैर्नमस्यते ॥ याचस्मृतातत्क्षणमेवहंतिनः सर्वापदोभक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ३९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवंस्तवाभियुक्तानांदेवानांतत्रपार्वती ॥ स्नातुमभ्याययौतोयेजाह्नव्यानृपनंदन ॥ ४० ॥ साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिःस्तूयतेत्रका ॥ शरीरकोशतश्चास्याःसमुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥ ४१ ॥ स्तोत्रंममैतत्क्रियतेशुंभदैत्यनिराकृतैः ॥ देवैःसमस्तैःसमरेनिशुंभेनपराजितैः ॥ ४२ ॥ शरीरकोशाद्यत्तस्याःपार्वत्यानिःसृतांबिका ॥ कौशिकीतिसमस्तेषुततोलोकेषुगीयते ॥ ४३ ॥ तस्यांविनिर्गतायांतुकृष्णाभूत्सापिपार्वती ॥ कालिकेतिसमाख्याताहिमाचलकृताश्रया ॥ ४४ ॥ ततोंबिकांपरंरूपंबिभ्राणांसुमनोहरम् ॥ददर्शचंडोमुंडश्चभृत्यौशुंभनिशुंभयोः ॥ ४५ ॥ ताभ्यांशुंभायचाख्याताअतीवसुमनोहरा ॥ काप्यास्तेस्त्रीमहाराजभासयंतीहिमाचलम् ॥ ४६ ॥ नैवतादृक्क्वचिद्रूपंदृष्टंकेनचिदुत्तमम् ॥ज्ञायतांकाप्यसौदेवीगृह्यतांचासुरेश्वर ॥ ४७ ॥

द्वारा निकालेहुए देवता एकत्र मिलित होकर मेरीही स्तुति करते हैं" ॥ ४२ ॥ अम्बिका उन पार्वतीके शरीरकोशसे उत्पन्न हुई, इस कारण समस्त भुवनमें वह "कौशिकी" नामसे कहीगई है ॥ ४३ ॥ उन कौशिकीदेवीके शरीरसे निकल जानेपर पार्वतीदेवीने कृष्णवर्ण धारण किया, तबसे वह कालिकाके नामसे विख्यात होकर हिमाचल में वास करने लगी ॥ ४४ ॥ फिर अम्बिकाने परममनोहर रूप धारण किया । अनन्तर शुंभ और निशुंभ असुरके भृत्य चण्ड और मुण्डनामक दो असुरोंने उनका वह मनोहर रूप देखा ॥ ४५ ॥ तब चण्ड और मुण्डने शुम्भासुरके समीप जाकर कहा—हेमहाराज ! अत्यन्त मनोहर कोई स्त्री हिमालय पर्वतको शोभित करतीहुई वास करती है ॥ ४६ ॥ हे असुरेश्वर ! ऐसा उत्तम रूप कहीं किसीने नहीं देखा, अतएव यह नारी कौन है ? ऐसा जानकर आप इस स्त्री

को ग्रहण कीजिये ॥ ४७ ॥ वह सुन्दर अंगवाली नारी स्त्रियोंमें रत्नरूपहै । हे दैत्येन्द्र ! वह नारी अपने देहकी कान्तिसे संपूर्णदिशाओंको प्रकाशितकरके वासकर रहीहै, उसका आपको देखना उचितहै ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! त्रैलोक्यमें श्रेष्ठ मणि और श्रेष्ठ हाथी घोड़े इत्यादि जो सब रत्न हैं, वह इस समय समस्तही आपके घरमें शोभा पाते हैं ॥ ४९ ॥ हाथियेंमें रत्न ऐरावत, मनोहर पारिजात वृक्ष और उच्चैःश्रवा घोडा इन्द्रके यहांसे लाया गया ॥ ५० ॥ विधाताका रत्नस्वरूप जो अद्भुत हंस युक्त विमान है, वह भी लाया जाकर आपके आँगनमें रक्खाहुआ है ॥ ५१ ॥ यह महापद्म नामक निधिभी कुबेरके निकटसे लाई गई है, किञ्जल्किनी नामक विना मुरझाये कमलोंकी माला समुद्रने आपको अर्पण की है ॥ ५२ ॥ वरुणका कांचनस्रावि नामक छत्र और यह जो श्रेष्ठ रथ पहिले प्रजापतिके निकट था. वहभी

स्त्रीरत्नमतिचार्वंगीद्योतयंतीदिशस्त्विषा ॥ सातुतिष्ठतिदैत्येन्द्रतांभवान्द्रष्टुमर्हति ॥ ४८ ॥ यानिरत्नानिमणयोगजाश्वादीनिवैप्रभो ॥ त्रैलोक्येतुसमस्तानि सांप्रतंतानितेगृहे ॥ ४९ ॥ ऐरावतःसमानीतोगजरत्नंपुरंदरात् ॥ पारिजाततरुश्चायंतथैवोच्चैःश्रवाहयः ॥ ५० ॥ विमानंहंससंयुक्तमेतत्तिष्ठतितेंगणे ॥ रत्नभूतमिहानीतंयदासीद्वेधसोद्भुतम् ॥ ५१ ॥ निधिरेषमहापद्मःसमानीतोधनेश्वरात् ॥ किंजल्किनींददौचाब्धिर्मालामम्लानपंकजाम् ॥ ५२ ॥ छत्रं तेवारुणंगेहेकांचनस्रावितिष्ठति ॥ तथायंस्यंदनवरोयःपुरासीत्प्रजापतेः ॥ ५३ ॥ मृत्योरुत्क्रांतिदानामशक्तिरीशत्वयाहृता ॥ पाशःसलिलराजस्य भ्रातुस्तवपरिग्रहे ॥५४॥ निशुंभस्याब्धिजाताश्चसमस्तारत्नजातयः ॥ वह्निश्चापिददौतुभ्यमग्निःशौचेचवाससी ॥५५ ॥ एवंदैत्येंद्ररत्नानिसमस्तान्याहृतानिते ॥ स्त्रीरत्नमेषाकल्याणीत्वयाकस्मान्नगृह्यते ॥५६॥ ऋषिरुवाच ॥ निशम्येतिवचःशुंभःसतदाचण्डमुण्डयोः ॥ प्रेषयामाससुग्रीवंदूतंदेव्यामहासुरः ॥ ॥५७ ॥ शुंभउवाच ॥ इतिचेतिचवक्तव्यासागत्वावचनान्मम ॥ यथाचाभ्येतिसंप्रीत्यातथाकार्यंत्वयालघु ॥ ५८ ॥

आपके घरमें विद्यमान है ॥ ५३ ॥ यमकी मरणप्रदा जो शक्ति थी, हे ईश ! वहभी आपने हरण की है । और आपके भ्राता निशुंभके यहां वरुणका पाश ॥ ५४ ॥ और समुद्रमें उत्पन्नहुए संपूर्ण रत्न हैं, अग्निने उनको वह्निद्वारा पवित्र करके वस्त्र और उत्तरीय प्रदान किया है ॥ ५५ ॥ हे दैत्येन्द्र ! इस प्रकार यह संपूर्ण रत्न आपने हरण किये हैं, अब इस स्त्रीरत्न कल्याणीको आप किसलिये ग्रहण नहीं करते हैं ! ॥ ५६ ॥ ऋषि बोले—चण्ड और मुण्डके इस प्रकार वचन सुनकर महासुर शुंभने सुग्रीवनामक दूतको देवीके निकट भेजा ॥ ॥ ५७ ॥ शुंभने कहा "तुम जाकर मेरे वचनानुसार उससे इस प्रकार कहना

और जिस भाँति वह अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र यहां आजाय, तुम वैसाही कार्य करना " ॥ ५८ ॥ अत्यन्त शोभायमान पर्वतप्रदेशमें जहां पार्वती स्थित थीं, वह दूत उस स्थानमें जाकर मधुर वचनोंके द्वारा उनसे कहने लगा ॥ ५९ ॥ दूत बोला । हे देवि ! दैत्येश्वर शुंभ त्रैलोक्यके परमेश्वर हैं, उन्होंनेही तुम्हारे निकट मुझको दूत बनाकर भेजा है, इसीकारण मैं इस स्थानमें आयाहूं ॥ ६० ॥ समस्त देवताओंमें उनकी आज्ञा अटल है, उन्होंने सब देवताओंको जीतलिया है, अब उन्होंने मुझसे जो कहा है, वह सुनो ॥ ६१ ॥ उन्होंने कहा है, यह संपूर्ण त्रैलोक्य मेरा है, समस्त देवताभी मेरे वशीभूत और अनुगत हैं, मैंही पृथक् पृथक् समस्त यज्ञभाग भोजन करताहूं ॥ ६२ ॥ और त्रिलोकीमें जितने सुन्दर रत्न हैं, सो सब मेरे वशमें हैं और संपूर्ण गजरत्न तथा इन्द्रका वाहन ऐरावत है,

सतत्रगत्वायत्रास्तेशैलोद्देशेतिशोभने ॥ तांचदेवींततःप्राहश्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥ ५९ ॥ दूतउवाच ॥ ॥ देविदैत्येश्वरःशुंभस्त्रैलोक्येपरमेश्वरः ॥ दूतोहंप्रेषितस्तेनत्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६० ॥ अव्याहताज्ञःसर्वासुयःसदादेवयोनिषु ॥ निर्जिताखिलदैत्यारिःसयदाहशृणुष्वतत् ॥ ६१ ॥ ममत्रैलोक्यमखिलंममदेवावशानुगाः ॥ यज्ञभागानहंसर्वानुपाश्नामिपृथक्पृथक् ॥ ६२ ॥ त्रैलोक्येवररत्नानिममवश्यान्यशेषतः ॥ तथैवगजरत्नंचहृत्वादेवेंद्रवाहनम् ॥ ॥ ६३ ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नंममामरैः ॥ उच्चैःश्रवससंज्ञंतत्प्रणिपत्यसमर्पितम् ॥ ६४ ॥ यानिचान्यानिदेवेषुगन्धर्वेषूरगेषुच ॥ रत्नभूतानिभूतानितानिमय्येवशोभने ॥ ६५ ॥ स्त्रीरत्नभूतांत्वांदेविलोकेमन्यामहेवयम् ॥ सात्वमस्मानुपागच्छयतोरत्नभुजोवयम् ॥ ६६ ॥ मांवाममानुजंवापिनिशुंभमुरुविक्रमम् ॥ भजत्वंचंचलापांगिरत्नभूतासिवैयतः ॥६७॥ परमैश्वर्यमतुलंप्राप्स्यसेमत्परिग्रहात् ॥ एतद्बुद्ध्यासमालोच्यमत्परिग्रहतांव्रज ॥ ६८ ॥

सोभी मैंने हरकर लेलियाहै ॥ ६३ ॥ और समुद्रके मथनेसे निकलाहुआ जो उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न है, उसकोभी देवताओंने प्रणामपूर्वक मेरे अर्पण किया है ॥ ॥ ६४ ॥ अन्यान्य जो सब रत्न देवता, गंधर्व अथवा सर्पोंके थे, हे शोभने ! इससमय वह सब मेरेही हैं ॥ ६५ ॥ हे देवि ! तुमको हम लोकमें स्त्री रत्न समझते हैं अतएव तुम रत्नस्वरूप हो, तुम हमारे घर चलो, क्योंकि इस समय हमी रत्नोंके भोगनेवाले हैं ॥ ६६ ॥ हे चंचलकटाक्षवाली ! मुझे वा मेरे बड़े पराक्रमी छोटे भाई निशुंभको भजो. क्योंकि तुम रत्नस्वरूप हो ॥ ६७ ॥ मेरी भजना करनेसे तुम अतुलनीय परमैश्वर्यको प्राप्त होगी यह सब बात बुद्धि

पूर्वक विचार कर मेरी भजना करो ॥ ६८ ॥ ऋषि बोले- दूतके इसप्रकार कहनेपर जो इस जगत्को धारण कर रही हैं वह भगवती भद्रा दुर्गादेवी गंभीर और गूढ भावसे कुछेक हँसकर कहने लगी ॥६९॥ देवी बोली–हे दूत ! तुमने सत्य कहा, इस तुम्हारे कहनेमें कुछभी मिथ्या नहीं है, शुम्भ त्रैलोक्य के अधिपति और निशुंभभी उनकेही समान हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७० ॥ किन्तु मैंने जो पूर्वमें एक प्रतिज्ञा की है, उसको इस स्थलमें कैसे मिथ्या करूं ? मैंने अल्पबुद्धिके वश होकर जो प्रतिज्ञा करी है, वह सुनो ॥ ७१ ॥ "जो पुरुष मुझको युद्धमें जीतलेगा, जो मेरे अभिमानको तोडेगा और जो पुरुष संसारमें मेरे समान बली होगा, वही मेरा स्वामी होगा" ॥ ७२ ॥ अब महा असुर शुंभ वा निशुंभ आवें, उनमें जो समर्थ हो, वह मुझको जीतकर शीघ्र विवाह करले, विलम्बका क्या

ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्तासातदादेवीगंभीरांतःस्मिताजगौ ॥ दुर्गाभगवतीभद्राययेदंधार्यतेजगत् ॥ ६९ ॥ सत्यमुक्तंत्वयानात्रमिथ्याकिंचित्त्वयोदितम् ॥ त्रैलोक्याधिपतिःशुंभोनिशुंभश्चापितादृशः ॥ ७० ॥ किंत्वत्रयत्प्रतिज्ञातंमिथ्यातत्क्रियतेकथम् ॥ श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञायाकृतापुरा ॥७१॥ योमांजयति संग्रामेयोमेदर्पंव्यपोहति ॥ योमेप्रतिबलोलोकेसमेभर्त्ताभविष्यति ॥७२॥ तदागच्छतुशुंभोत्रनिशुंभोवामहासुरः ॥ मांजित्वाकिंचिरेणात्रपाणिंगृह्णातुमेलघु॥ ॥७३॥ दूतउवाच ॥ ॥ अवलिप्तासिमैवंत्वंदेविब्रूहिममाग्रतः ॥ त्रैलोक्येकःपुमांस्तिष्ठेदग्रेशुंभनिशुंभयोः ॥७४॥ अन्येषामपिदैत्यानांसर्वेदेवानवैयुधि ॥ तिष्ठन्तिसंमुखादेविकिंपुनःस्त्रीत्वमेकिका ॥ ७५ ॥ इंद्राद्याःसकलादेवास्तस्थुर्येषांनसंयुगे ॥ शुंभादीनांकथंतेषांस्त्रीप्रयास्यसिसंमुखम् ॥ ७६ ॥ सात्वं गच्छमयैवोक्तापार्श्वंशुंभनिशुंभयोः ॥ केशाकर्षणनिर्धूतगौरवामागमिष्यसि ॥ ७७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ एवमेतद्बलीशुंभोनिशुंभश्चातिवीर्यवान् ॥ किंकरोमिप्रतिज्ञामेयदनालोचितापुरा ॥ ७८ ॥

प्रयोजन है ? ॥ ७३ ॥ दूत बोला–हे देवि ! तुम अत्यन्त गर्वित हुई हो। मेरे निकट ऐसी बात मत कहो, तीनों लोकमें शुंभ और निशुंभके आगे कौन पुरुष ठहर सकता है ॥ ७४ ॥ शुंभ अथवा निशुंभकी बात तो दूर रहै, उनके अनुचर अन्यान्य दैत्योंके सन्मुख देवता मिलित होकरभी स्थिर नहीं रह सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर किस प्रकार स्थिर रहोगी ? ॥ ७५ ॥ इन्द्रादि देवतागण जिन शुंभादिके सन्मुख खडे नहीं रह सकते, तो तू स्त्री होकर उनसे किस प्रकार युद्ध करने जाओगी ! ॥ ७६ ॥ अतएव तुम मेरे वचनानुसार शुंभ निशुंभके समीप चलो और नहीं तो मैं तुम्हारे केश पकडकर ले चलूंगा कि, जिससे तुम्हारा समस्त गौरव नष्ट हो जायगा ॥ ७७ ॥ देवी बोली–हे दूत ! शुंभ ऐसेही बली और निशुंभभी निसन्देह अत्यन्त वीर्यवान् हैं, किन्तु क्या करूं? अल्पबुद्धिसे पहिले इस

प्रतिज्ञाके विषयमें मैंने विचार नहीं किया॥ ७८॥सो तुम जावो और मैंने जो कहा है वह सब आदरपूर्वक असुरेन्द्र शुंभसे कहो। फिर वह जो उचित समझेंगे, सो करेंगे ॥ ७९॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥८२॥ ऋषि बोले –देवीके इसप्रकार वचन सुन उस दूतने अत्यन्त क्रोधमें भर दैत्येश्वरके निकट जाकर सब वृत्तान्त विस्तारसहित कहा ॥ १॥ दूतके यह वचन सुनकर असुरराज शुंभने क्रोधपूर्वक दैत्याधिपति धूम्रलोचनसे कहा॥ २॥ हे धूम्रलोचन ! तुम अपनी सेनासहित वहां जाय, उस दुष्ट स्त्रीके केश खैंचकर विह्वल करतेहुए शीघ्र उसको लेआवो॥ ३॥यदि उसकी रक्षा करनेके लिये कोई अपर उद्यत हो, वह देवता यक्ष वा गन्धर्व हो क्यों न हो, हनन उसको करो ॥४॥ऋषि बोले । शुंभकी इसप्रकार आज्ञा पाय वह धूम्रलोचननामक असुर साठहजार असुरोंके सहि

सत्वंगच्छमयैवोक्तंयदेतत्सर्वमादृतः ॥ तदाचक्ष्वासुरेंद्रायसचयुक्तंकरोतुतत् ॥ ७९ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदेवीमाहात्म्येद्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ॥ ८२ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्यवचोदेव्याःसदूतोमर्षपूरितः ॥ समाचष्टेसमागम्यदैत्यराजायविस्तरात् ॥ १ ॥ तस्यदूतस्यतद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट्ततः ॥ सक्रोधःप्राहदैत्यानामधिपंधूम्रलोचनम् ॥ २ ॥ हेधूम्रलोचनाशुत्वंस्वसैन्यपरिवारितः ॥ तामानयबलाद्दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ३ ॥ तत्परित्राणदःकश्चिद्यदिवोत्तिष्ठतेपरः ॥ संहतव्योमरोवापियक्षोगंधर्वएववा ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ तेनाज्ञप्तस्ततःशीघ्रंस दैत्योधूम्रलोचनः ॥ वृतःषष्ट्यासहस्राणामसुराणांद्रुतंययौ ॥ ५ ॥ सदृष्ट्वातांततोदेवींतुहिनाचलसंस्थिताम् ॥ जगादोच्चैःप्रयाहीतिमूलंशुंभनिशुंभयोः ॥६॥ नचेत्प्रीत्याद्यभवतीमद्भर्तारमुपैष्यसि ॥ ततोबलान्नयाम्येपकेशाकर्षणविह्वलाम्॥ ७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ दैत्येश्वरेणप्रहितोबलवान्बलसंवृतः ॥ बलान्नयसिमामेवंततःकिंतेकरोम्यहम् ॥ ८॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्तःसोभ्यधावत्तामसुरोधूम्रलोचनः ॥ हुंकारेणैवतंभस्मसाचकारांबिकाततः ॥ ॥ ९ ॥ अथक्रुद्धंमहासैन्यमसुराणांतथांबिका ॥ ववर्षसायकैस्तीक्ष्णैस्तथाशक्तिपरश्वधैः ॥ १० ॥

त शीघ्र गया ॥ ५॥ फिर धूम्रलोचनने हिमाचलमें बैठीहुई देवीको देखकर उच्चस्वरसे कहा –हे देवि ! शुंभ और निशुंभके निकट चलो ॥ ६ ॥ यदि तुम इस समय प्रीतिसहित मेरे स्वामी शुंभके निकट नहीं चलोगी तो मैं तुम्हारे केश खेंच विह्वल करताहुआ बलपूर्वक लेजाऊंगा ॥ ७ ॥ देवी बोली । दैत्येश्वर शुंभने तुमको भेजा है,तुम स्वयं बलवान् और सेनासे युक्त हो, तुम यदि मुझको बलपूर्वक लेजाओगे, तो मैं तुम्हारा क्या करूंगी ॥८॥ ऋषि बोले । देवीके इसप्रकार कहतेही वह धूम्रलोचननामक असुर उनके ऊपरको दौडा। तब अम्बिकादेवीने हुंकारद्वारा उस असुरको भस्म करदिया ॥ ९ ॥ अनन्तर उस असुरकी सेना क्रोधित

होकर अम्बिकाके ऊपर तीक्ष्ण शर, शक्ति और फरशेकी वृष्टि करने लगी॥ १०॥तब देवीका वाहन सिंह क्रोधसे केसर कंपित करके भयंकर गर्जना करताहुआ असुरों की सेनाके ऊपर गिरा ॥११॥ और किसीको पंजोंके प्रहारसे, किसीको मुखद्वारा किसीको आक्रमणद्वारा और किसी किसी महा असुरको होठसे पकड पकड कर मारनेलगा ॥१२॥ सिंहने किसी किसी महा असुरका हृदय नखद्वारा फाड डाला और किसी किसी असुरका मस्तक हथेलीके प्रहारद्वारा देहसे पृथक् कर दिया ॥ १३ ॥ कितनेही असुरोंकी बाहु और मस्तक काट डाले और केसर कंपित करके अन्यान्य असुरोंके हृदयसे रक्त पी लिया ॥१४॥ क्षणकालमेंही उस देवीके वाहन महात्मा केसरीने अत्यन्त कुपित होकर असुरोंकी उस महासैन्यको विनाश कर डाला ॥ १५ ॥ धूम्रलोचन असुरको देवीने विनाश किया और संपूर्ण सेनाका

ततोधुतसटः कोपात्कृत्वानादंसुभैरवम् ॥ पपातासुरसेनायांसिंहोदेव्यास्तुवाहनः ॥ ११ ॥ कांश्चित्करप्रहारेणदैत्यानास्येनचापरान् ॥ आक्रम्यचरणेनान्यान्निजघानमहासुरान् ॥ १२ ॥ केषांचित्पाटयामासनखैःकोष्ठानिकेसरी ॥ तथातलप्रहारेणशिरांसिकृतवान्पृथक् ॥ १३ ॥ विच्छिन्नबाहुशिरसःकृतास्तेनतथापरे ॥ पपौचरुधिरंकोष्ठादन्येषांधुतकेसरः ॥ १४ ॥ क्षणेनतद्बलंसर्वंक्षयंनीतंमहात्मना ॥ तेनकेसरिणादेव्यावाहनेनातिकोपिना ॥ १५ ॥ श्रुत्वातमसुरंदेव्यानिहतंधूम्रलोचनम् ॥ बलंचक्षयितंकृत्स्नंदेवीकेसरिणाततः ॥ १६ ॥ चुकोपदैत्याधिपतिःशुंभःप्रस्फुरिताधरः ॥ आज्ञापयामासचतौचण्डमुण्डौमहासुरौ ॥ १७ ॥ हेचण्डहेमुण्डबलैर्बहुभिःपरिवारितौ ॥ गच्छतंतत्रगत्वाचसासमानीयतांलघु ॥ १८ ॥ केशेष्वाकृष्यबद्ध्वावायदिवःसंशयोयुधि ॥ तदाशेषायुधैःसर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ १९ ॥ तस्यांहतायांदुष्टायांसिंहेचविनिपातिते ॥ शीघ्रमागम्यतांबद्ध्वागृहीत्वातामथांबिकाम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदेवीमाहात्म्येधूम्रलोचनवधोनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ ॥ छ ॥

देवीके वाहन सिंहने संहार कर डाला यह सुनकर ॥१६॥ दैत्याधिपति शुंभ अत्यन्त कुपित हुआ। क्रोधसे उसके होठ फडकने लगे, तब शुंभने चण्ड और मुण्डको आज्ञा दी॥१७॥ हे चण्ड! हे मुण्ड! तुम बहुतसी सेनासे युक्त होकर उस स्थानमें जाओ और जाकर उस स्त्रीको शीघ्रले आओ॥१८॥उसको केश पकडकर अथवा बांध कर लेआओ।और यदि इस प्रकार लानेमें तुम असमर्थ हो तो संपूर्ण अस्त्रोंसे युक्त असुरोंके द्वारा उसको मार डालना ॥१९॥ उस दुष्टा और सिंहके मरिजानेपर उस अम्बिकाको उसी दशामें बांधकर और लेकर शीघ्र आओ ॥ २० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां धूम्रलोचनवधस्त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

ऋषि बोले—अनन्तर शुंभकी इसप्रकार आज्ञा पातेही चंड मुंड इत्यादि दैत्य चतुरंगिनिसेनासहित अस्त्र ग्रहण करके गये उन्होंने जाकर देखा कि, बडे सुवर्णमय हिमाचलके शिखरमें सिंहके ऊपर स्थित हुई देवी मंदमंद मुसकुरा रहीहैं ॥ १ ॥ २ ॥ वह असुर और उनके समीपवर्ती अन्यान्य असुरगण देवीको इसप्रकार देखनेपर धनुष खैंच और तलवार ग्रहणकर उनको पकडनेके लिये उद्योग करने लगे ॥ ३ ॥ तब अंबिकाने उन सब शत्रुओंपर अत्यन्त क्रोध किया। उस क्रोध करनेके कारण देवीका मुख श्यामवर्ण होगया ॥ ४ ॥ अनन्तर भ्रुकुटीके चढानेसे उनके ललाटसे शीघ्र एक भयंकर मुखवाली खड्ग और पाशको धारण किये; करालवदन काली प्रगट हुई ॥ ५ ॥ वह विचित्र खट्वाङ्गको लिये; मुण्डोंकी मालासे शोभायमान, बाघम्बर पहिरे अत्यन्त भयानक सूखे मांसवाली

॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ आज्ञप्तास्तेततोदैत्याश्चंडमुंडपुरोगमाः ॥ चतुरंगबलोपेताययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ १ ॥ ददृशुस्तततोदेवीमीषद्धासांव्यवस्थिताम् ॥ सिंहस्योपरिशैलेंद्रशृंगेमहतिकांचने ॥ २ ॥ तेदृष्ट्वातांसमादातुमुद्यमंचक्रुरुद्यताः ॥ आकृष्टचापासिधरास्तथान्येतत्समीपगाः ॥ ३ ॥ ततःकोपंचकारोच्चैरंबिकातानरीन्प्रति ॥ कोपेनचास्यावदनंमषीवर्णमभूत्तदा ॥४॥ भृकुटीकुटिलात्तस्याललाटफलकाद्द्रुतम् ॥ कालीकरालवदनाविनिष्क्रांतासिपाशिनी ॥ ५ ॥ विचित्रखट्वांगधरानरमालाविभूषणा ॥ द्वीपिचर्मपरीधानाशुष्कमांसातिभैरवा ॥ ६ ॥ अतिविस्तारवदनाजिह्वाललनभीषणा ॥ निमग्नारक्तनयनानादापूरितादिङ्मुखा ॥ ७ ॥ सावेगेनाभिपतिताघातयंतीमहासुरान् ॥ सैन्येतत्रसुरारीणामभक्षयततद्बलम् ॥ ८ ॥ पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहयोधघंटासमन्वितान् ॥ समादायैकहस्तेनमुखेचिक्षेपवारणान् ॥ ९ ॥ तथैवयोधंतुरगैरथंसारथिनासह ॥ निःक्षिप्यवक्त्रेदशनैश्चर्वयंत्यतिभैरवम् ॥ १० ॥ एकंजग्राहकेशेषुग्रीवायामथचापरम् ॥ पादेनाक्रम्यचैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥ ११ ॥ तैर्मुक्तानिचशस्त्राणिमहास्त्राणितथासुरैः ॥ मुखेनजग्राहरुषादशनैर्मथितान्यपि ॥१२॥

मुखको खोलेहुए, जिह्वाको लहलहाती भयंकर रूप, भीतरको घुसेहुए लाल लाल नेत्रवाली और अपने घोर शब्दसे दिशाओंके मुखोंको पूरित करतीहुई उत्पन्नहुई ॥ ६ ॥ ७ ॥ फिर वह भयंकरी देवी दैत्योंकी सैन्यसमूहके ऊपर वेगसहित गिरकर संपूर्ण महाअसुरोंको विनाश करते करते असुरोंकी सेनाको भक्षण करनेलगी ॥ ८ ॥ और पार्श्वरक्षक, अंकुशवाले योद्धा तथा घंटा इनके सहितही हाथियोंको एकही हाथसे पकड़ पकड़ कर मुखमें फेंकने लगीं ॥ ९ ॥ एवं अश्व रथ और सारथीके सहित योद्धाओंको ग्रहणपूर्वक मुखमें डालकर अत्यन्त भयंकररूपसे चर्वण करने लगी ॥ १० ॥ किसीके केश पकडी किसी किसी असुरकी ग्रीवा पकडी और किसी किसी असुरकी छातीको चरणसे दबाकर मसल डाला ॥ ११ ॥ उन सब असुरोंके चलाये शस्त्र और महाअस्त्रों

को देवी क्रोधपूर्वक मुखमें ग्रहणकर दांतोंसे चावने लगीं ॥ १२ ॥ बलवान् और अत्यन्त बडे शरीरवाले असुरोंकी उस समस्त सेनाको इस प्रकार मसलती हुई देवीने किसीको भक्षण करलिया और किसी किसीको मार भगाया ॥ १३ ॥ कोई कोई असुर खड्गके आघातसे नष्ट हुये, और कोई कोई खट्वांगसे ताडित तथा कोई कोई असुर दांतोंके अग्रभागसे चींथे जाकर विनाशको प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ असुरोंके उस बडी भारी सेनाको क्षणकालमें नष्ट हुआ देखकर चण्डासुर अत्यन्त भीषण उन काली देवीकी ओर वेगसहित दौडा ॥ १५ ॥ और मुण्डासुरने उन भीमाक्षी देवीके प्रति भयंकर बाणोंकी वर्षा और हजार हजार चक्र चलाकर उनको आच्छन्न कर दिया ॥ १६ ॥ वह समस्त चक्रभी उन देवीके मुखमें प्रविष्ट होने लगे और प्रवेशकालमें वह सब चक्र मेघमें प्रवेश करतेहुए अनेक सूर्यमण्डल के समान शोभा पाने लगे ॥ १७ ॥ अनन्तर घोरनादिनी कालीदेवी अत्यन्त क्रोधसे भयंकर हास्य करने लगीं । हँसनेके समय कराल मुखमें दुर्दर्श दांतोंकी प्र

बलिनांतद्बलंसर्वमसुराणांदुरात्मनाम् ॥ ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥१३॥ असिनानिहताःकेचित्केचित्खट्वांगताडिताः ॥ जग्मुर्विनाशमसुरादंताग्राभिहतारणे ॥१४॥ क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणांनिपातितम् ॥ दृष्ट्वाचंडोभिदुद्रावतांकालीमतिभीषणाम् ॥१५॥ शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षींतांमहासुरः ॥ छादयामासचक्रैश्चमुंडःक्षिप्तैःसहस्रशः ॥ १६ ॥ तानिचक्राण्यनेकानिविशमानानितन्मुखम् ॥ बभुर्यथार्कबिंबानिसुबहूनिघनोदरम् ॥ १७ ॥ ततोजहासातिरुषाभीमंभैरवनादिनी ॥ कालीकरालवक्त्रांतर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ १८ ॥ उत्थायचमहासिंहंदेवीचंडमधावत ॥ गृहीत्वाचास्यकेशेषुशिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥ १९ ॥ छिन्नेशिरसिदैत्येंद्रश्चक्रेनादंसुभैरवम् ॥ तेननादेनमहतात्रासितंभुवनत्रयम् ॥ २० ॥ अथमुंडोभ्यधावत्तांदृष्ट्वाचंडंनिपातितम् ॥ तमप्यपातयद्भूमौखड्गांगाभिहतंरुषा ॥ २१ ॥ हतशेषंततःसैन्यंदृष्ट्वाचंडंनिपातितम् ॥ मुंडंचसुमहावीर्यंदिशोभेजेभयातुरम् ॥ २२ ॥ शिरश्चंडस्यकालीसागृहीत्वामौंडमेवच ॥ प्राहप्रचंडाट्टहासमिश्रमभ्येत्यचंडिकाम् ॥२३॥ मयातवात्रोपहृतौचंडमुंडौमहापशू ॥ युद्धयज्ञेस्वयंशुंभंनिशुंभंचहनिष्यसि ॥२४॥

भासे वह उज्ज्वल हुई ॥ १८ ॥ तब देवी महासिंहके ऊपर खडी होकर चण्डासुरके ऊपर दौडी और केश खेंचकर अपनी असिसे उसका मस्तक काट डाला ॥ १९ ॥ उस दैत्येन्द्रने शिर कटनेके समय अत्यन्त भयंकर गर्जना करी, उस महत्‌गर्जनासे तीनों भुवन त्रसित होगये ॥ २० ॥ चण्डको गिरता देखकर मुण्ड देवीकी ओर दौडा, तब देवीने उसकोभी खड्गांगसे काटकर धराशायी किया ॥ २१ ॥ अनन्तर मरनेसे बचीहुई सेना महावीर्यवान् चण्ड और मुण्डको मराहुआ देखकर भयातुर होकर चारों ओर दिशाओंमें भागने लगी ॥ २२ ॥ इसके पीछे चण्ड और मुण्डासुरका मस्तक ग्रहणकर काली चंडिकाके निकट उपस्थित होकर प्रचण्ड अट्टहासके सहित कहने लगी ॥ २३ ॥ "मैंने महापशु चण्ड मुण्ड नामक दो असुरोंका हनन करके तुमको उपहार प्रदान किया.किन्तु तुम युद्धयज्ञमें स्वयंही

शुंभ और निशुंभको हनन करना ॥ २४ ॥ ऋषि बोले—उन चण्ड और मुण्ड नामक दोनों महाअसुरोंको उस अवस्थामें लायाहुआ देखकर कल्याणी चण्डिका देवी कालीसे अत्यन्त मधुर वचनोंके द्वारा कहने लगी ॥ २५ ॥ देवी बोली—तुम चण्ड और मुण्डको ग्रहण करके आई हो. इस कारण हे देवि ! लोकमें तुम " चामुण्डाके नामसे विख्यात होगी " ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चण्डमुण्डवधश्चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ऋषि बोले—चण्ड और मुण्डके नाशको प्राप्त होनेपर तथा समस्त सेनाके मारे जानेपर असुरोंके स्वामी ॥ १ ॥ प्रतापवान् शुंभने अत्यन्त क्रोधके वशीभूत होकर असुरोंकी समस्त सेनाको युद्ध करनेकी आज्ञा दी॥२॥ कि, अभी अपनी सब प्रकारकी सेनाको संग लेकर छियासी (८६) उदायुध नामक दैत्य और

ऋषिरुवाच ॥ तावानीतौततोदृष्ट्वाचंडमुंडौमहासुरौ ॥ उवाचकालींकल्याणीललितंचंडिकावचः ॥ २५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यस्माच्चंडंचमुंडंचगृहीत्वात्वमुपागता ॥ चामुंडेतिततोलोकेख्यातादेवीभविष्यसि ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेचंडमुंडवधोनामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चंडेचनिहतेदैत्येमुंडेचविनिपातिते ॥ बहुलेषुचसैन्येषुक्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ १ ॥ ततःकोपपराधीनचेताः शुंभःप्रतापवान् ॥ उद्योगंसर्वसैन्यानांदैत्यानामादिदेश ॥ २ ॥ अद्यसर्वबलैर्दैत्याःषडशीतिरुदायुधाः ॥ कंबूनांचतुराशीतिर्निर्यांतुस्वबलैर्वृताः ॥ ३ ॥ कोटिवीर्याणिपंचाशदसुराणांकुलानिवै ॥ शतंकुलानिधूम्राणांनिर्गच्छंतुममाज्ञया ॥ ४ ॥ कालकादौर्हृदामौर्याःकालकेयास्तथासुराः ॥ युद्धायसज्जानिर्यांतुआज्ञयात्वरितामम ॥ ५ ॥ इत्याज्ञाप्यासुरपतिःशुंभोभैरवशासनः ॥ निर्जगाममहासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ ६ ॥ आयांतंचंडिकादृष्ट्वातत्सैन्यमतिभीषणम् ॥ ज्यास्वनैःपूरयामासधरणीगगनांतरम् ॥ ॥ ७ ॥ सचसिंहोमहानादमतीवकृतवान्नृप ॥ घंटास्वनेनतन्नादमंबिकाचाप्यबृंहयत् ॥ ८ ॥

कम्बु नामक चौरासी (८४) दैत्य जाय॥३॥ कोटिवीर्य नामक असुरोंकी पचास कुल और धूम्रवंशजात एकसौ कुलोत्पन्न असुरगण मेरी आज्ञासे निर्गतहों ॥ ४ ॥ कालक, दौहृत, मुरवंशोत्पन्न और कालकेय असुरगण शीघ्र मेरी आज्ञासे सज्जित होकर युद्धमें जाय ॥५॥ असुरपति भैरवशासन शुंभ इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों महासेनाको साथ लेकर युद्धके लिये निकला॥६॥अत्यन्त भयंकर उस सेनाके समूहको आताहुआ देखकर चण्डिकाने धनुषके प्रत्यंचाकी टंकारसे पृथ्वी और आकाशको परिपूर्ण करदिया ॥७॥ हे नृप ! अनन्तर देवीके वाहन सिंहने अत्यन्त महानाद किया तब अम्बिकाने भी अपने घंटेके शब्दसे उस सिंहनादको दूना करदिया॥८॥

धनुषके प्रत्यंचाकी टंकार तथा सिंह और घंटेके नादसे दिशाओंके मुख भरगये। फिर कालीने अपने मुखको चौडा कर अत्यन्त भयंकर नादसे जय जय शब्दकिया॥ ९॥ उस शब्दको सुनकर दैत्योंकी सेनाने क्रोधपूर्वक चण्डिकादेवी काली देवी और सिंहको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १० ॥ हे भूप! इसी अवसरमें असुरोंका विनाश करनेके लिये और देवताओंका कल्याण करनेके निमित्त अत्यन्त वीर्य और बलसे युक्त ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, शिव, स्वामि कार्तिक, विष्णु तथा इन्द्रके शरीरसे पृथक् पृथक् शक्तियां निकल कर और उन्हीं देवताओंके समान रूपधारणपूर्वक चण्डिकाके पास आई॥ १२॥ जिस देवताका जैसा रूप, जैसा भूषण और जैसा वाहन था, उस देवताके शरीरसे निकलीहुई शक्तिभी उसीप्रकार रूप, उसी प्रकार भूषण और उसी प्रकार वाहनसे मण्डित होकर असुरोंसे युद्ध करनेसे लिये आई॥ १३॥ हंसयुक्त विमानके ऊपर हा

धनुर्ज्यासिंहघंटानांनादापूरितदिङ्मुखा ॥ निनादैर्भीषणैःकालीजिग्येविस्तारितानना ॥ ९ ॥ तन्निनादमुपश्रुत्यदैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ॥ देवीसिंहस्त थाकालीशरैवैःपरिवारिताः ॥ १० ॥ एतस्मिन्नंतरेभूपविनाशायसुरद्विषाम् ॥ भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥ ११ ॥ ब्रह्मेशगुहविष्णूनांतथें द्रस्यचशक्तयः ॥ शरीरेभ्योविनिष्क्रम्यतद्रूपैश्चंडिकांययुः ॥ १२॥ यस्यदेवस्ययद्रूपंयथाभूषणवाहनम् ॥ तद्वदेवहितच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥ १३ ॥ हंसयुक्तविमानस्थासाक्षसूत्रकमंडलुः ॥ आयाताब्रह्मणःशक्तिर्ब्रह्माणीसाभिधीयते ॥ १४ ॥ माहेश्वरीवृषारूढात्रिशूलवरधारिणी ॥ महाहिवलया प्राप्ताचन्द्रलेखाविभूषणा ॥ १५ ॥ कौमारीशक्तिहस्ताचमयूरवरवाहना ॥ योद्धुमभ्याययौदैत्यानंबिकागुहरूपिणी ॥ १६ ॥ तथैववैष्णवीशक्तिर्गरुडो परिसंस्थिता ॥ शंखचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥ १७ ॥ यज्ञवाराहमतुलंरूपंयाबिभ्रतीहरेः ॥ शक्तिःसाप्याययौतत्रवाराहींबिभ्रतीतनुम् ॥१८॥ नारसिंहीनृसिंहस्यबिभ्रतीसदृशंवपुः ॥ प्राप्तातत्रसटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥ १९ ॥

थमें अक्षमाला और कमण्डलु लेकर जो ब्रह्माजीकी शक्ति आई वह ब्रह्माणीके नामसे विख्यातहै ॥ १४ ॥ और बैलपर चढीहुई त्रिशूल तथा वरको धारण किये, चन्द्र रेखासे शोभायमान और बड़े बड़े सर्पों के कंकण पहिरे शिवकी शक्ति माहेश्वरी आई ॥ १५॥ शक्ति हाथमें लिये गुहरूपिणी कौमारी शक्ति सुंदर मोरके वाहनपर चढकर युद्ध करनेके लिये आई ॥ १६ ॥ गरुडके ऊपर स्थितहुई वैष्णवी शक्ति शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग और खड्ग धारण करके आई ॥१७॥ यज्ञवराहरूपधारी भगवान् विष्णुकी जो शक्तिहै, वहभी वरारूप धारण करके आई ॥१८॥ नारसिंही शक्ति नृसिंहरूप धारणकरके आई और उनके सटाकेशोंके हिलनेसे नक्षत्रोंकी पांक्ति

इधर उधर हिलने लगी ॥ १९ ॥ गजराजके ऊपर चढीहुई हजारनेत्रवाली ऐन्द्री शक्ति हाथमें वज्र लियेहुए आई, उसकी आकृति इन्द्रकेही अनुरूप थी ॥ २० ॥ अनन्तर उन सब देवताओंकी शक्तियोंके समेत महादेवजीने चण्डिकासे कहा—"इन सब असुरोंको मेरी प्रसन्नताके लिये शीघ्र हनन करो" ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त देवीके शरीरसे अत्यन्त उग्र अत्यन्त भयंकर सौ शिवाओंके समान नाद:करनेवाली चण्डिकाशक्ति निकली ॥ २२ ॥ उन अपराजिता चण्डिका देवीने धूम्रवर्ण जटाशाली महेश्वरसे कहा—हे भगवन् ! तुम शुंभ और निशुंभके निकट दूत होकर जाओ ॥ २३ ॥ और जाकर अत्यन्त गर्वित शुंभ निशुंभ तथा युद्धके निमित्त उपस्थित दानवोंसे कहो कि ॥ २४ ॥ " हे दानवो ! इन्द्र त्रैलोक्यलाभ करे, देवता पुनर्वार हवि भोजन करें, और तुम

वज्रहस्तातथैवैंद्रीगजराजोपरिस्थिता ॥ सहस्रनयनाप्रातायथाशक्रस्तथैवसा ॥ २० ॥ ततःपरिवृतस्ताभिरीशानोदेवशक्तिभिः ॥ हन्यंतामसुराः शीघ्रंममप्रीत्याहचंडिकाम् ॥ २१ ॥ ततोदेवीशरीरात्तुविनिष्क्रांतातिभीषणा ॥ चंडिकाशक्तिरत्युग्राशिवाशतनिनादिनी ॥ २२ ॥ साचाहधूम्रजटिलमीशानमपराजिता ॥ दूतत्वंगच्छभगवन्पार्श्वंशुंभनिशुंभयोः ॥ २३ ॥ ब्रूहिशुम्भंनिशुम्भंचदानवावतिगर्वितौ ॥ येचान्येदानवास्तत्रयुद्धायसमुपस्थिताः ॥ २४ ॥ त्रैलोक्यमिंद्रोलभतांदेवाःसंतुहविर्भुजः ॥ यूयंप्रयातपातालंयदिजीवितुमिच्छथ ॥ २५ ॥ बलावलेपादथचेद्भवंतोयुद्धकांक्षिणः ॥ तदागच्छततृप्यंतुमच्छिवाः पिशितेनवः ॥ २६ ॥ यतोनियुक्तोदूत्येनतयादेव्याशिवःस्वयम् ॥ शिवदूतीतिलोकेस्मिंस्ततः साख्यातिमागता ॥ २७ ॥ तेपिश्रुत्वावचोदेव्याः शर्वाख्यातं महासुराः ॥ अमर्षापूरिताजग्मुर्यत्रकात्यायनीस्थिता ॥ २८ ॥ ततःप्रथममेवाग्रेशरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ॥ ववर्षुरुद्धतामर्षास्तांदेवीममरारयः ॥ २९ ॥ साचतत्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ॥ चिच्छेदलीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ ३० ॥ तस्याग्रतस्तथाकाली शूलपातविदारितान् ॥ खट्वांगपोथितांश्चारीन्कुर्वतीव्यचरत्तदा ॥ ३१ ॥

यदि जीवित रहनेकी इच्छा करतेहो तो पातालमें चलेजाओ" ॥ २५ ॥ अथवा बलके गर्वसे गर्वित होकर यदि तुम युद्धकी इच्छा रखते हो तो आओ,मेरी यह शिवागण तुम्हारे रुधिरसे तृप्तिलाभ करें ॥ २६ ॥ उन देवीने स्वयं शिवको दूतकार्यमें नियुक्त किया.इस कारण वह इस लोकमें शिवदूतीके नामसे विख्यात हुई ॥ २७ ॥ महेश्वरके मुखसे देवीके इसप्रकार वचन सुनकर वह महाअसुर क्रोधपूर्वक जहां कात्यायनी स्थित थी वहां गये ॥ २८ ॥ तदनन्तर वह अत्यन्त क्रोधित असुर प्रथम उन देवीके आगे शर, शक्ति और ऋष्टि इत्यादिकी वर्षा करने लगे ॥ २९ ॥ उन सब असुरोंके चलायेहुए बाण, शूल, चक्र और फरशे इत्यादि सबको चण्डिकादेवीने धनुष खैंच कर छोडेहुए बडे बडे बाणोंसे लीलापूर्वकही काटडाला ॥ ३० ॥ उसी समयमें उन चण्डिकादेवीके सन्मुख काली किसी किसी असुरको शूलसे चीरती और किसीको

खड्गांगसे कुचलतीहुई विचरण करने लगी॥ ३१ ॥शत्रुगण जिस जिस ओरके दौडने लगे उसी उसी ओरमें ब्रह्माणी शक्ति उनके ऊपर कमण्डलका जल वर्षाकर उनको हतवीर्य और हततेज करने लगी ॥ ३२ ॥ माहेश्वरी शक्ति त्रिशूलद्वारा और वैष्णवी शक्ति चक्रद्वारा दैत्योंको हनन करने लगीं। अत्यन्त क्रोधित कौमारी शक्तिने, शक्तिद्वारा अनेक दैत्योंको हनन किया॥ ३३॥और ऐन्द्रीके वज्रप्रहारसे विदारित सैकडों दैत्य दानव रुधिरके वमन करते करते पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३४ ॥ वराहमूर्त्ति शक्तिके मुखप्रहारसे विध्वस्त चक्रप्रहारसे विदारित, और दंष्ट्राके अग्रभागसे छातीके कटजानेपर दैत्यगण गिरने लगे ॥ ३५॥ गर्जन द्वारा दिशा और आकाशको पूर्ण करके नारसिंही शक्ति नखविदारित असुरोंको भक्षण करते करते युद्धक्षेत्रमें विचरण करने लगी ॥ ३६ ॥

कमंडलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः ॥ ब्रह्माणीचाकरोच्छत्रून्येनयेनस्मधावति ॥ ३२ ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेनतथाचक्रेणवैष्णवी ॥ दैत्याञ्जघानकौमारी तथाशक्त्यातिकोपना ॥ ३३ ॥ ऐंद्रीकुलिशपातेनशतशोदैत्यदानवाः ॥ पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यांरुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ ३४ ॥ तुंडप्रहारविध्वस्तादंष्ट्राग्र क्षतवक्षसः ॥ वाराहमूर्त्यान्यपतंश्चक्रेणचविदारिताः ॥ ३५ ॥ नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयंतीमहासुरान् ॥ नारसिंहीचचाराजौनादापूर्णदिगंतरा ॥ ३६ ॥ चंडाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ॥ पतुःपृथिव्यांपतितांस्तांश्चखादाथसातदा ॥ ३७ ॥ इतिमातृगणंक्रुद्धंमर्दयंतंमहासुरान् ॥ दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥ ३८ ॥ पलायनपरान्दृष्ट्वादैत्यान्मातृगणार्दितान् ॥ योद्धुमभ्याययौक्रुद्धोरक्तबीजोमहासुरः ॥ ३९ ॥ रक्तबिंदुर्यदाभूमौपतत्यस्यशरीरतः ॥ समुत्पततिमेदिन्यास्तत्प्रमाणोमहासुरः ॥ ४० ॥ युयुधेसगदापाणिरिंद्रशक्त्यामहासुरः ॥ ततश्चैंद्रीस्ववज्रेणरक्तबीजमताडयत् ॥ ४१ ॥ कुलिशेनाहतस्याशुबहुसुस्रावशोणितम् ॥ समुत्तस्थुस्ततोयोधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ४२ ॥

शिवदूतीके प्रचंड अट्टहासद्वारा अभिहतहोकर असुरगण पृथ्वीमें गिरने लगे। तब देवी शिवदूतीभी उन गिरेहुए असुरोंको भक्षण करनेलगी ॥ ३७॥ इसप्रकार अनेक उपाय क्रोधसहित मर्दन करती हैं यह देखकर संपूर्ण असुरोंकी सेना भागने लगी॥ ३८॥ मातृगणोंके द्वारा पीडित होकर दैत्यगण भागते हैं. यह देखकर रक्तबीज नामक महाअसुर क्रोधपूर्वक युद्ध करनेके लिये आया ॥ ३९ ॥ इस रक्तबीज महाअसुरके शरीरसे एक बूँद रक्त जब भूमिमें गिरता तब उसी समय भूमिसे उसके अनुरूप एक असुर उत्पन्न हो जाता ॥ ४० ॥ वही महाअसुर रक्तबीज गदा हाथमें ले इन्द्रकी शक्तिके संग युद्ध करने लगा। तब ऐन्द्रीने अपने वज्रसे रक्तबीजको ताडित किया ॥४१॥ फिर वज्रपीडित रक्तबीजके शरीरसे जैसेही रुधिरसे उसीके अनुरूप और समान पराक्रमशाली अनेक योद्धा उत्पन्न होगये ॥४२॥

रुधिर टपका वैसेही उस टपकेहुए उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरीं उतनेही पुरुष उत्पन्न हुए वह पुरुष बल, वीर्य और पराक्रममें रक्तबीजकेही सदृश थे ॥ ४३ ॥ वह रक्तकी बूँदोंसे उत्पन्नहुए पुरुषभी मातृगणोंके संग उस रणक्षेत्रमें अत्यन्त उग्र शस्त्र चलाकर अतिभयंकर युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥ पुनर्वार जब ऐन्द्रीने वज्रपातसे इस असुरका मस्तक काटा, तब उस क्षतस्थानसे रक्तप्रवाह बहने लगा, और उससे हजार हजार असुर उत्पन्न हुए ॥ ४५ ॥ वैष्णवी शक्तिने युद्धस्थलमें उसको चक्रसे काटा और ऐन्द्रीने गदासे इस असुरेश्वरको ताडन किया ॥ ४६ ॥ वैष्णवीके चक्रसे कटेहुए उस असुरके रुधिर बहनेसे उत्पन्नहुए उसीके सदृश हजारों बडे बडे असुरोंसे जगत व्याप्त होगया ॥ ४७ ॥ कौमारी शक्तिद्वारा वाराही

यावंतःपतितास्तस्यशरीराद्रक्तबिंदवः ॥ तावंतःपुरुषाजातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥ ४३ ॥ तेचापियुयुधुस्तत्रपुरुषारक्तसम्भवाः ॥ समंमातृभिरत्युग्रंशस्त्रपातातिभीषणम् ॥ ४४ ॥ पुनश्चवज्रपातेनक्षतमस्यशिरोयदा ॥ ववाहरक्तंपुरुषास्ततोजाताःसहस्रशः ॥ ४५ ॥ वैष्णवीसमरेचैनंचक्रेणाभिजघानह ॥ गदयाताडयामासऐंद्रीतमसुरेश्वरम् ॥ ४६ ॥ वैष्णवीचक्रभिन्नस्यरुधिरस्रावसम्भवैः ॥ सहस्रशोजगद्व्याप्तंतत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ ४७ ॥ शक्त्याजघानकौमारीवाराहीचतथासिना ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेनरक्तबीजंमहासुरम् ॥ ४८ ॥ सचापिगदयादैत्यः सर्वाएवाहनत्पृथक् ॥ मातॄःकोपसमाविष्टो रक्तबीजोमहासुरः ॥ ४९ ॥ तस्याहतस्यबहुधाशक्तिशूलादिभिर्भुवि ॥ पपातयोवैरक्तौघस्तेनासञ्छतशोसुराः ॥ ५० ॥ तैश्चासुरासृक्संभूतैरसुरैःसकलंजगत् ॥ व्याप्तमासीत्ततोदेवाभयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ ५१ ॥ तान्विषण्णान्सुरान्दृष्ट्वाचंडिकाप्राहसत्त्वरा ॥ उवाचकालींचामुंडेविस्तीर्णंवदनंकुरु ॥ ५२ ॥

असिद्वारा और माहेश्वरी त्रिशूलद्वारा उस महाअसुर रक्तबीजको मारने लगीं ॥ ४८ ॥ और वह महा असुर रक्तबीज भी क्रोध युक्त होकर गदाद्वारा समस्त मातृगणोंको पृथक् पृथक् मारने लगा ॥ ४९ ॥ शक्ति, शूलआदि नानाप्रकारके अस्त्रोंसे आहत उस रक्तबीजके शरीरसे जो रक्त भूमिमें गिरा उससे सैकडों असुर उत्पन्नहुए ॥ ५० ॥ उस असुरके रक्तसे उत्पन्नहुए असुरोंने संपूर्ण जगत्को व्याप्त करदिया । तब देवता अत्यन्त भीत हुए ॥ ५१ ॥ अनन्तर देवताओंको इसप्रकार डराहुआ देखकर चंडिकाने शीघ्रतासहित कालीसे कहा हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फैलाओ ॥ ५२ ॥

और मेरे शस्त्रघातसे उत्पन्नहुई रक्तकी बूँदोंको तथा रक्तकी बूँदोंसे उत्पन्नहुए महा असुरोंको तुम इस मुखमें वेग सहित ग्रहण करो ॥ ५३ ॥ और उससे उत्पन्नहुए महाअसुरोंको भक्षण करतीहुई रणमें विचरती रहो, ऐसा करनेसे जब इस दैत्यका रुधिर क्षीण हो जायगा, तब यह विनाशको प्राप्त होगा ॥ ५४ ॥ जब तुम उसको भक्षण करना आरंभ करोगी, फिर वह उत्पन्न नहीं हो सकेगा। ऋषि बोले—कालीसे यह बात कहकर चण्डिकादेवीने त्रिशूलसे उस असुरको घायल किया और काली उस घायल रक्तबीजका शोणित मुखमें ग्रहण करने लगी ॥ ५५ ॥ तब उस रक्तबीज असुरने रणक्षेत्रमें गदासे देवीको आघात किया, किन्तु उस गदाके प्रहारसे देवीको अल्प मात्र वेदनाभी उत्पन्न नहीं करासका ॥ ५६॥ इधर उस घायलहुए असुरके शरीरसे जो रुधिर गिरा, चामुण्डाने वह सब शोणित

मच्छस्त्रपातसम्भूतान्रक्तविंदून्महासुरान् ॥ रक्तबीजात्प्रतीच्छत्वंवक्त्रेणानेनवेगिना ॥ ५३ ॥ भक्षयंतीचररणेतदुत्पन्नान्महासुरान् ॥ एवमेषक्षयंदैत्यः क्षीणरक्तोगमिष्यति ॥ भक्ष्यमाणास्त्वयाचोग्रानैवोत्पत्स्यंतिचापरे ॥ ५४ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वातांततोदेवीशूलेनाभिजघानतम् ॥ मुखेनकालीजगृहेरक्तबीजस्यशोणितम् ॥ ५५ ॥ ततोसावाजघानाथगदयातत्रचंडिकाम् ॥ नचास्यावेदनांचक्रेगदापातोल्पिकामपि ॥ ५६ ॥ तस्याहतस्यदेहात्तुबहुसुस्रावशोणितम् ॥ यतस्ततःस्ववक्त्रेणचामुंडासंप्रतीच्छति ॥ ५७ ॥ मुखेसमुद्गतायेस्यारक्तपातान्महासुराः ॥ तांचखादाथचामुण्डापपौतस्यचशोणितम् ॥ ५८ ॥ देवीशूलेनचक्रेणबाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥ जघानरक्तबीजंतंचामुण्डापीतशोणितम् ॥ ५९ ॥ सपपातमहीपृष्ठेशस्त्रसंहतितोहतः ॥ नीरक्तश्चमहीपालरक्तबीजोमहासुरः ॥ ६० ॥ ततस्तेहर्षमतुलमवापुस्त्रिदशानृप ॥ तेषांमातृगणोमत्तोननर्त्तासृङ्मदोद्धतः ॥ ६१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदेवीमाहात्म्येरक्तबीजवधोनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

मुखमें ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ चामुण्डादेवीके मुखमें रक्त गिरनेसे जो महाअसुर उत्पन्न हुए, वह उन सब असुरोंको रुधिरके सहित भक्षण करने लगीं ॥ ५८ ॥ जब चामुण्डाने इस प्रकार रक्तबीजका शोणित पान किया तब चण्डिकादेवीने उसको शूल, चक्र, बाण असि और ऋष्टिसे हनन किया ॥५९॥ अनन्तर हे महीपाल ! वह महाअसुर रक्तबीज शस्त्रोंके समूहसे मारा हुआ नीरक्त अर्थात् रुधिरहीन होकर पृथ्वीतलमें गिरपडा ॥ ६० ॥ हे नृप ! तदनन्तर देवताओंने अतुलहर्ष प्राप्त किया और मातृगण असुरोंका रक्त पीनेसे मदोद्धतहोकर नृत्य करने लगीं॥६१॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये भाषाटीकायां पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

राजाने कहा—हे भगवन् ! आपने रक्तबीजवधविषयक अद्भुत देवीचरित्रका माहात्म्य मुझसे वर्णन किया ॥ १ ॥ अब रक्तबीजके मारे जानेपर अत्यन्त क्रोधित शुंभ और निशुंभने जो कार्य किया, उसके सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ २ ॥ ऋषि बोले—समरमें रक्तबीजके मारेजानेपर और अन्यान्य सेनाके निहत होनेपर शुंभ और निशुंभ दोनों असुर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए ॥ ३ ॥ अनन्तर उस सब सेनाको निहत होता देखकर अत्यन्त क्रोधसे असुरोंकी मुख्य सेनाको साथलेकर निशुंभासुर देवीके सन्मुख दौडा ॥ ४ ॥ और उस दैत्यके आगे तथा पीछे और दोनों ओर बड़े बड़े असुर अपने २ होठोंको चबाते हुए क्रोधपूर्वक देवीको विनाश करनेके

राजोवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यातंभगवन्भवताम्म ॥ देव्याश्चरितमाहात्म्यंरक्तबीजवधाश्रितम् ॥ १ ॥ भूयश्चेच्छाम्यहंश्रोतुंरक्तबीजेनिपातिते ॥ चकारशुम्भोयत्कर्मनिशुम्भश्चातिकोपनः ॥ २ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चकारकोपमतुलंरक्तबीजेनिपातिते ॥ शुम्भासुरोनिशुम्भश्चहतेष्वन्ये षुचाहवे ॥ ३ ॥ हन्यमानंमहासैन्यंविलोक्यामर्षमुद्वहन् ॥ अभ्यधावन्निशुम्भोथमुख्ययासुरसेनया ॥ ४ ॥ तस्याग्रतस्तथापृष्ठेपार्श्वयोश्चमहासुराः ॥ संदष्टौष्ठपुटाःक्रुद्धाहंतुंदेवीमुपाययुः ॥ ५ ॥ आजगाममहावीर्यःशुंभोपिस्वबलैर्वृतः ॥ निहंतुंचंडिकांकोपात्कृत्वायुद्धंतुमातृभिः ॥ ६ ॥ ततो युद्धमतीवासीद्देव्याःशुंभनिशुंभयोः ॥ शरवर्षमतीवोग्रंमेघयोरिववर्षतोः ॥ ७ ॥ चिच्छेदास्तांश्छरांस्ताभ्यांचंडिकास्वशरोत्करैः ॥ ताडयामासचां गेषुशस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥ ८ ॥ निशुंभोनिशितंखड्गंचर्मचादायसुप्रभम् ॥ अताडयन्मूर्ध्निसिंहंदेव्यावाहनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ ताडितेवाहनेदेवीक्षुरप्रेणासि मुत्तमम् ॥ निशुंभस्याशुचिच्छेदचर्मचाप्यष्टचंद्रकम् ॥ १० ॥

निमित्त आये ॥ ५ ॥ फिर अपनी सेनाको साथ लिये महावीर्यवान् शुंभासुरभी मातृगणों के संग युद्ध करके देवीको मारनेके अर्थ क्रोधित होकर आया ॥ ६ ॥ तब देवीके संग जलवर्षणकारी दो मेघोंकी समान अत्यन्त प्रचंड शरवर्षण करी शुंभ और निशुंभका भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ७ ॥ चण्डिका उन दोनों असुरोंके चलाये शरसमूहको अपने शरसमूहद्वारा शीघ्र काटकर शस्त्रोंसे दोनों असुरेश्वरोंके अंगोंमें ताडना करने लगीं ॥ ८ ॥ पैनी तलवार और चमकतीहुई ढाल लेकर निशुंभने देवीके उत्तम वाहन सिंहके मस्तकमें मारी ॥ ९ ॥ वाहनको ताडित देखकर देवीनें क्षुरप्र नामक अस्त्रसे निशुंभकी उत्तम

तलवार काटकर अष्टचन्द्रक ढालभी काटडाली ॥ १० ॥ तलवार और ढालके कटजानेपर निशुंभासुरने शक्ति छोडी किन्तु देवीने उस सामने आतीहुई शक्तिकेभी चक्रद्वारा दो खंड करदिये ॥ ११ ॥ अनन्तर कोपमें भरे हुए असुर दानवनें शूल ग्रहण करके चलाया और देवीने आतेहुए उस शूलकोभी मुष्टिपातसे चूर्ण कर डाला ॥ १२ ॥ तब उस असुरने गदा घुमाकर चलाई, किन्तु उस गदाकोभी देवीने त्रिशूलसे तोडकर भस्म करदिया ॥ १३ ॥ फिर फरसा हाथमें लेकर आयेहुए उस दैत्यश्रेष्ठ निशुंभको देवीने बाणोंसे घायल करके पृथ्वीमें गिरादिया ॥ १४ ॥ भयंकर विक्रम भ्राता निशुंभको भूमिमें गिरताहुआ देखकर शुंभासुर अत्यन्त क्रोध से देवीके मारनेको गया ॥ १५ ॥ और बड़े बडे आयुध लेकर तथा अत्यन्त लम्बी लम्बी अतुल पराक्रमवाली आठ भुजाओंसे युक्त वह रथमें बैठकर और समस्त

छिन्नेचर्मणिखङ्गेचशक्तिंचिक्षेपसोसुरः ॥ तामप्यस्यद्विधाचक्रेचक्रेणाभिमुखागताम् ॥ ११ ॥ कोपाध्मातोनिशुम्भोथशूलंजग्राहदानवः ॥ आयांतंमुष्टिपातेनदेवीतच्चाप्यचूर्णयत् ॥ १२ ॥ अथादायगदांसोपिचिक्षेपचण्डिकांप्रति ॥ सापिदेव्यात्रिशूलेनभिन्नाभस्मत्वमागता ॥ १३ ॥ ततःपरशुहस्तंतमायांतंदैत्यपुंगवम् ॥ आहत्यदेवीबाणौघैरपातयतभूतले ॥ १४ ॥ तस्मिन्निपतितेभूमौनिशुम्भेभीमविक्रमे ॥ भ्रातर्यतीवसंक्रुद्धःप्रययौहंतुमंबिकाम् ॥ १५ ॥ सरथस्थस्तदात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ॥ भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषंबभौनभः ॥ १६ ॥ समयांतंतमालोक्यदेवीशंखमवादयत् ॥ ज्याशब्दंचापिधनुषश्चकारातीवदुःसहम् ॥ १७ ॥ पूरयामासककुभोनिजघंटास्वनेनच ॥ समस्तदैत्यसैन्यानांतेजोवधविधायिना ॥ १८ ॥ ततः सिंहोमहानादैस्त्याजितेभमहामदैः ॥ पूरयामासगगनंगांतथैवदिशोदश ॥ १९ ॥ ततःकालीसमुत्पत्यगगनंक्ष्मामताडयत् ॥ कराभ्यांतन्निनादेनप्राक्स्वनास्तेतिरोहिताः ॥ २० ॥ अट्टाट्टहासमशिवंशिवदूतीचकारह ॥ तैःशब्दैरसुरास्त्रेसुःशुम्भःकोपंपरंययौ ॥ २१ ॥

आकाश मण्डलमें व्याप्त होकर दीखने लगा ॥ १६ ॥ उसको आताहुआ देखकर देवीने शंख बजाया और अत्यन्त दुःसह धनुष्यकी प्रत्यंचाका शब्द किया ॥ १७ ॥ तथा समस्त दैत्योंकी सेनाका तेज विनाश करनेवाले अपने घंटेके शब्दसे संपूर्ण दिशाओंको पूरित करदिया ॥ १८ ॥ फिर हाथियोंके महामदको दूर करनेवाले महानादसे सिंहनेभी आकाश, पृथ्वी और दशों दिशाओंको पूरित करदिया ॥ १९ ॥ अनन्तर कालीने आकाशमें उछलकर फिर दोनों हाथोंसे पृथ्वीमें आघात किया, उस आघातके शब्दसे पहला संपूर्ण शब्द मन्द होगया ॥ २० ॥ शिवदूतीने भी शत्रुओंका अमंगलकारी अत्यन्त उच्च हास्य किया, उस शब्दसे असुरगण त्रसित

(दुःखी) हुए और फिर शुंभ अतिशय क्रोधित हुआ॥२१॥जब अम्बिकाने शुंभसे "दुरात्मन् ! ठहर, ठहर" इसप्रकार कहा, तब आकाशमें स्थितहुए देवता जय जय शब्द करनेलगे ॥ २२ ॥ शुंभासुरने आनकर उग्रदीप्ति अतिभयंकर जो शक्ति छोड़ी उस अग्निकी समान आतीहुई शक्तिको देवीने महोल्कानाम्नी शक्तिसे काट कर दूर फेंकदी ॥ २३ ॥ अनन्तर शुम्भके सिंहनादसे तीनोंलोक व्याप्त होगये. तब हे अवनीपाल ! आकाशसे उत्पन्नहुए विद्युत्के घोर शब्दने उस शुंभके नादको जीत लिया॥ २४ ॥शुंभके चलाये शतसहस्र बाण देवीने अपने उग्र बाणोंसे काटडाले और शुंभनेभी देवीके चलाये सैकडों हजारों बाणोंको अपने उग्र बाणोंसे काट डाले ॥२५॥इसके पीछे उन चण्डिका देवीने क्रोधित होकर शूलद्वारा घायल किया और शूलाहत शुंभासुर मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिरगया ॥ २६ ॥ अनन्तर निशुंभासुर

दुरात्मंस्तिष्ठतिष्ठेतिव्याजहारांबिकायदा ॥ तदाजयेत्यभिहितंदेवैराकाशसंस्थितैः ॥ २२ ॥ शुम्भेनागत्ययाशक्तिर्मुक्ताज्वालातिभीषणा ॥ आयांतीवह्निकूटाभासानिरस्तामहोल्कया ॥ २३ ॥ सिंहनादेनशुम्भस्यव्याप्तंलोकत्रयांतरम् ॥ निर्घातनिःस्वनोघोरोजितवानवनीपते ॥ २४ ॥ शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवीशुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ॥ चिच्छेदस्वशरैरुग्रैः शतशोथसहस्रशः ॥ २५ ॥ ततःसाचंडिकाक्रुद्धाशूलेनाभिजघानतम् ॥ सतदाभिहतोभूमौमूर्छितोनिपपातह ॥ २६ ॥ ततोनिशुंभः संप्राप्यचेतनामात्तकार्मुकः ॥ आजघानशरैर्देवींकालींकेसरिणंतथा ॥ २७ ॥ पुनश्चकृत्वाबाहूनामयुतंदनुजेश्वरः ॥ चक्रायुतेनदितिजश्छादयामासचंडिकाम् ॥ २८॥ ततोभगवतीक्रुद्धादुर्गादुर्गार्तिनाशिनी ॥ चिच्छेदतानिचक्राणिस्वशरैः सायकांश्चतान् ॥२९॥ ततोनिशुंभोवेगेनगदामादायचंडिकाम् ॥ अभ्यधावतवैहंतुंदैत्यसेनासमावृतः ॥ ३० ॥ तस्यापततएवाशुगदांचिच्छेदचंडिका ॥ खड्गेनशितधारेणसच शूलंसमाददे ॥ ३१ ॥ शूलहस्तंतमायांतंनिशुंभममरार्दनम् ॥ हृदिविव्याधशूलेनवेगाविद्धेनचंडिका ॥ ३२ ॥ भिन्नस्यतस्यशूलेनहृदयान्निःसृतोपरः ॥ महाबलोमहावीर्यस्तिष्ठेतिपुरुषोवदन्॥ ३३ ॥

चेतना प्राप्तकर धनुषधारणपूर्वक बाणोंसे देवी काली और सिंहको घायल करने लगा ॥२७॥ फिर दनुजपति निशुंभदैत्यने दशहजार बाहु धारण करके चक्र और आयुधोंके द्वारा चण्डिका देवीको आच्छादित कर दिया॥२८॥तब संकटनाशिनी भगवती दुर्गाने क्रोधित होकर उन समस्त चक्र और बाणोंको अपने बाणोंसे काट डाला॥२९॥तदनन्तर दैत्योंकी सेना साथ लिये निशुंभ उन देवीको हनन करनेके लिये गदा ग्रहण करके अत्यन्त वेगसे दौडा॥ ३० ॥ तब आतीहुई निशुंभासुरकी उस गदाको देवी चण्डिकाने तीक्ष्णधारवाले खड्गसे काटडाली फिर निशुंभने शूल ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ अनन्तर शूल ग्रहण करके सन्मुख आतेहुए निशुंभासुरको देवीने अत्यन्त वेगसे अपना त्रिशूल चलाकर हृदयमें विद्ध किया ॥३२॥ फिर शूलद्वारा भिन्न उस असुरके हृदयसे अन्य एक पुरुष महाबल और महावीर्यवान् देवीसे

"ठहर" यह बात कहताहुआ निकला ॥ ३३ ॥ तब देवीने नादपूर्वक हँसकर उस बाहर निकलेहुए असुरका मस्तक खड्गसे काटडाला और वह भूमिमें गिरगया ॥ ३४ ॥ अनन्तर तीक्ष्ण दांतोंके द्वारा गर्दन चावकर सिंह असुरोंको भक्षण करने लगा तथा शिवदूती और काली अन्यान्य असुरोंको भक्षण करने लगीं ॥ ॥ ३५ ॥ कोई कोई महाअसुर कौमारी शक्तिकी शक्तिसे कटकर मरगये । ब्रह्माणीके मंत्रपूत जलका स्पर्श करनेसे अपरापर अनेक असुर नष्ट होगये ॥ ॥ ३६ ॥ अपर अनेक असुर माहेश्वरीके त्रिशूलाघातसे भिन्न होकर गिरपड़े और कोई कोई असुर वाराहीके मुखके प्रहारसे चूर्ण होकर भूमिमें गिरगये ॥ ॥ ३७ ॥ अन्यान्य दानवोंको वैष्णवीने चक्रसे खंड २ कर डाला और ऐन्द्रीके हाथसे छुटेहुए वज्रद्वारा आहत होकर अपर असुरोंमें ॥ ३८ ॥ कोई नष्ट हुए,

तस्यनिष्क्रामतोदेवीप्रहस्यस्वनवत्ततः ॥ शिरश्चिच्छेदखड्गेनततोसावपतद्भुवि ॥ ३४ ॥ ततःसिंहश्चखादोग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ॥ असुरांस्तांस्तथाकाली शिवदूतीतथापरान् ॥ ३५ ॥ कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाःकेचिन्नेशुर्महासुराः ॥ ब्रह्माणीमंत्रपूतेनतोयेनान्येनिराकृताः ॥ ३६ ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेनभिन्नाः पेतुस्तथापरे ॥ वाराहीतुंडघातेनकेचिच्चूर्णीकृताभुवि ॥ ३७ ॥ खंडखंडंचचक्रेणवैष्णव्यादानवाः कृताः ॥ वज्रेणचैंद्रीहस्ताग्रविमुक्तेनतथापरे ॥ ॥ ३८ ॥ केचिद्विनेशुरसुराःकेचिन्नष्टामहाहवात् ॥ भक्षिताश्चापरेकालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये निशुंभवधो नामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ निशुम्भंनिहतंदृष्ट्वाभ्रातरंप्राणसंमितम् ॥ हन्यमानंबलंचैवशुम्भःक्रुद्धोब्रवीद्वचः ॥ १ ॥ बलावलेपाद्दुष्टेत्वंमादुर्गेगर्वमावह ॥ अन्यासांबलमाश्रित्ययुध्यसेयातिमानिनी ॥ २ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ एकैवाहंजगत्यत्रद्वितीयाकाममापरा ॥ पश्यैतादुष्टमय्येवविशंत्योमद्विभूतयः ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ ततः समस्तास्तादेव्योब्रह्माणीप्रमुखालयम् ॥ तस्यादेव्यास्तनौजग्मुरेकैवासी त्तदांबिका ॥ ४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ अहंविभूत्यावहुभिरिहरूपैर्यदास्थिता ॥ तत्संहृतंमयैकैवतिष्ठाम्याजौस्थिरोभव ॥ ५ ॥

कोई कोई महायुद्धसे भागगये । तथा जो असुर बचेथे, उनको काली शिवदूती और सिंहने भक्षण कर लिया ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्येभाषाटीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ऋषि बोले–प्राणतुल्य भ्राता निशुंभ और सेनाको मराहुआ देखकर शुंभने क्रोधित होकर कहा ॥ १ ॥ हे दुष्टे दुर्गे ! तू बलके अभिमानसे गर्व मतकरै, तू औरोंके बलके आश्रयसे अत्यन्त मानवती होकर युद्ध करती है ॥ २ ॥ देवीबोली –रे दुष्ट ! इस जगत्में एक मैंही विद्यमान हूं, मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन है ? देख यह सब मेरी विभूति मुझमेंही प्रवेश करती हैं ॥ ३ ॥ ऋषि बोले –अनन्तर ब्रह्माणी इत्यादि समस्त शक्तियें देवीके शरीरमें विलीन होगईं तब अम्बिका अकेलीही विद्यमान रहगई ॥ ४ ॥ फिर देवीने कहा–रे शुंभ ! मैं अपनी विभूतिके द्वारा इस स्थानमें बहुतरूपसे स्थित थी अब उन सब

रूपोंका संहार करके युद्धक्षेत्रमें अकेलीही रहगई हूं तू स्थिर हो ॥ ५ ॥ ऋषि बोले —अनन्तर देखतेहुए देवता और असुरोंके सन्मुख देवी और शुम्भासुर, इन दोनोंका दारुण युद्ध उपस्थित हुआ ॥ ६ ॥ फिर उन देवी और शुंभासुरकी शरवृष्टि शाणित शस्त्र और दारुण अस्त्रोंके परस्पर प्रहारद्वारा संपूर्ण लोकोंको भय उत्पन्नकरनेवाला युद्ध आरंभ हुआ ॥ ७ ॥ अम्बिकाने जो शत शत दिव्यास्त्र छोड़े उन समस्त दिव्य अस्त्रोंको उस दैत्येन्द्र शुंभासुरने, उन अस्त्रोंको काटनेवाले अस्त्रों के द्वारा काटडाला ॥ ८ ॥ और शुंभासुरने जो दिव्यास्त्र छोडे उन सब दिव्य अस्त्रोंको परमेश्वरी चण्डिकानेभी लीलापूर्वकही उग्र हुंकारोच्चारणादिद्वारा तोडडाला ॥ ९ ॥ फिर उस महाअसुरने सैकड़ों बाण वर्षाकर देवीको ढकदिया । तब देवीनेभी कुपित होकर बाणों से उसका धनुष काटडाला ॥ १० ॥ धनुषके कटजाने

ऋषिरुवाच ॥ ॥ ततःप्रववृतेयुद्धंदेव्याः शुम्भस्यचोभयोः ॥ पश्यतांसर्वदेवानामसुराणांचदारुणम् ॥ ६ ॥ शरवर्षैःशितैः शस्त्रैस्तथाचास्त्रैः सुदारुणैः ॥ तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयंकरम् ॥ ७ ॥ दिव्यान्यस्त्राणिशतशोमुमुचेयान्यथांबिका ॥ बभंजतानिदैत्येंद्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ ८ ॥ मुक्तानितेनचास्त्राणिदिव्यानिपरमेश्वरी ॥ बभंजलीलयैवोग्रहुंकारोच्चारणादिभिः ॥ ९ ॥ ततःशरशतैर्देवीमाच्छादयतसोसुरः ॥ साचतत्कुपितादेवीधनुश्चिच्छेदचेषुभिः ॥ १० ॥ छिन्नेधनुषिदैत्येंद्रस्तथाशक्तिमथाददे ॥ चिच्छेददेवीचक्रेणतामप्यस्यकरेस्थिताम् ॥ ११ ॥ ततःखड्गमुपादायशतचन्द्रंचभानुमत् ॥ अभ्यधावततांहंतुंदैत्यानामधिपेश्वरः ॥ १२ ॥ तस्यापततएवाशुखड्गंचिच्छेदचंडिका ॥ धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्मचार्ककरामलम् ॥ १३ ॥ अश्वांश्चपातयामासरथंसारथिनासह ॥ हताश्वः सतदादैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः ॥ जग्राहमुद्गरंघोरमंबिकानिधनोद्यतः ॥ १४ ॥ चिच्छेदापततस्तस्यमुद्गरंनिशितैः शरैः ॥ तथापिसोभ्यधावत्तांमुष्टिमुद्यम्यवेगवान् ॥ १५ ॥

पर दैत्यपतिने शक्तिग्रहण की, किन्तु देवीने शुंभके हाथमें स्थित उस शक्तिकोभी चक्रसे काटडाला ॥ ११ ॥ तब दैत्याधिपति शुंभ खड्ग और दीप्तियुक्त शतचन्द्र विशिष्ट ढाल ग्रहणकरके देवीके ऊपर दौडा ॥ १२ ॥ तब आतेहुए शुंभके खड्ग और सूर्यकी किरणसदृश निर्मल चर्म (ढाल) को चण्डिकाने धनुषसे छोड़ेहुए पैने बाणों से काटडाला ॥ १३ ॥ जब उस दैत्यपतिके रथके घोडे मरगये, धनुष टूटगया और सारथी निहत होगया, तब वह घोर मुद्गर ग्रहणकरके अम्बिकाके मारनेको उद्यत हुआ ॥ १४ ॥ तब देवीने सन्मुख आतेहुए असुरका मुद्गर पैने बाणोंसे काटडाला, किन्तु तोभी

वह महाअसुर घूँसा तानकर अत्यन्त वेगसे देवीकी ओर दौडा ॥ १५ ॥ दैत्यश्रेष्ठने वह घूँसा देवीके हृदयमें मारा। तब देवीनेभी थप्पड द्वारा उसकी छातीमें प्रहार किया ॥ १६ ॥ थप्पडके प्रहारसे पीडित होकर दैत्यराज महीतलमें गिरगया और तत्कालही फिर उठा ॥ १७ ॥ अनन्तर देवीको ग्रहणपूर्वक उछल कर शुंभ आकाशमें स्थितहुआ और देवीभी आकाशमें निरालम्ब होकर उसके संग नियुद्ध[1] करने लगीं ॥ १८ ॥ फिर आकाशमें शुंभ और चण्डिकादेवी प्रथम सिद्ध और मुनियोंको आश्चर्य करानेवाला युद्ध करने लगी ॥ १९ ॥ उस असुरके संग बहुत कालतक नियुद्ध करके उसे ऊपरको उछालकर घुमाया और फिर पृथ्वीमें पटक दिया ॥ २० ॥ तब वह दुष्टात्मा असुर पृथ्वीमें गिरकर अत्यन्त वेगसे घूँसा उठाय चण्डिकाको मारनेकी इच्छासे दौडा ॥ २१ ॥ उस सर्व दैत्येश्वर

समुष्टिंपातयामासहृदयेदैत्यपुंगवः ॥ देव्यास्तंचापिसादेवीतलेनोरस्यताडयत् ॥ १६ ॥ तलप्रहाराभिहतोनिपपातमहीतले ॥ सदैत्यराजः सहसापुनरेवतथोत्थितः ॥ १७ ॥ उत्पत्यचप्रगृह्योच्चैर्देवींगगनमास्थितः ॥ तत्रापिसानिराधारायुयुधेतेनचंडिका ॥ १८ ॥ नियुद्धंखेतदादैत्यश्चण्डिकाचपरस्परम् ॥ चक्रतुः प्रथमंसिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥ १९ ॥ ततोनियुद्धंसुचिरंकृत्वातेनांबिकासह ॥ उत्पात्यभ्रामयामासचिक्षेपधरणीतले ॥ २० ॥ सक्षिप्तोधरणींप्राप्यमुष्टिमुद्यम्यवेगितः ॥ अभ्यधावतदुष्टात्माचण्डिकानिधनेच्छया ॥ २१ ॥ तमायांतंततोदेवीसर्वदैत्यजनेश्वरम् ॥ जगत्यांपातयामासभित्त्वाशूलेनवक्षसि ॥ २२ ॥ सगतासुः पपातोर्व्यांदेवीशूलाग्रविक्षतः ॥ चालयन्सकलांपृथ्वींसाब्धिद्वीपांसपर्वताम् ॥ २३ ॥ ततः प्रसन्नमखिलंहते तस्मिन्दुरात्मनि ॥ जगत्स्वास्थ्यमतीवापनिर्मलंचाभवन्नभः ॥ २४ ॥ उत्पातमेघाः सोल्कायेप्रागासंस्तेशमंययुः ॥ सरितोमार्गवाहिन्यस्तथाशुंभेनिपातिते ॥ २५ ॥ ततोदेवगणाः सर्वेहर्षनिर्भरमानसाः ॥ बभूवुर्निहतेतस्मिन्गंधर्वाललितंजगुः ॥ २६ ॥

शुंभको आताहुआ देखकर देवीने अपने शूलसे उसका हृदय वेधकर उसको भूमिमें गिरादिया ॥ २२ ॥ देवीके शूलाग्रद्वारा शुंभासुरका हृदय घायल हुआ और जब वह प्राणरहित होकर भूमिमें गिरा, उस समय समुद्र द्वीप और पर्वतोंके सहित संपूर्ण पृथ्वी विचलित हुई ॥ २३ ॥ फिर उस दुरात्मा असुरके मारेजानेपर सब प्रसन्न हुए, जगत् अत्यन्त स्वस्थ हुआ और आकाशभी अत्यन्त निर्मल होगया ॥ २४ ॥ जो सब अनिष्टसूचक मेघ और उल्कागण शुंभके रहते विद्यमान थे, शुंभके मारेजानेपर वह अदृश्य हुए और नदियें अपने अपने मार्गोंमें बहने लगीं ॥ २५ ॥ औ उसके निहत होनेपर समस्त देवतागण

[1] शस्त्र हाथमें लिये विना केवल भुजासे युद्ध करनेको "नियुद्ध" कहते हैं।

अत्यन्त हर्षितचित्त हुए और गंधर्व मधुर मधुर गान करने लगे ॥ २६ ॥ कोई कोई बाजा बजानेलगे और अप्सरागण नृत्य करनेलगे, सुंदर शीतल वायु चलने लगी और दिवाकर (सूर्य) नेभी सुन्दर प्रभा धारण करी ॥ २७ ॥ बुझीहुई होमकी अग्नि जलने लगी और दिशाओंमें शांत शांत शब्द होनेलगे ॥ २८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये भाषाटीकायां शुम्भवधोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ऋषि बोले–जब देवीने उस महा असुरेन्द्रका संहार कर डाला, तब इन्द्र और अग्निको आगे करके समस्त देवता अपने इष्ट फलकी प्राप्ति होजानेके कारण अपने प्रसन्न मुखकमलोंसे दिशाओंको प्रकाशित करतेहुए उन कात्यायनी देवीका स्तव करनेलगे ॥ १ ॥ देवता बोले–हे शरणागतदुःखहरे देवि ! प्रसन्न होओ, हे अखिलजगज्जननि ! प्रसन्न होओ, हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न होओ, तुम विश्वकी रक्षा

अवादयंस्तथैवान्येननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ववुःपुण्यास्तथावाताः सुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥ २७ ॥ जज्वलुश्चाग्नयः शांताः शांतदिग्जनितस्वनाः ॥ २८ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमाहात्म्येशुम्भवधोनाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ देव्याहतेतत्रमहासुरेंद्रेसेंद्राः सुरावह्निपुरोगमास्ताम्॥ कात्यायनींतुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥ १ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ देविप्रपन्नार्तिहरेप्रसीदप्रसीदमातर्जगतोखिलस्य ॥ प्रसीदविश्वेश्वरिपाहिविश्वंत्वमीश्वरीदेविचराचरस्य ॥ २ ॥ आधारभूताजगतस्त्वमेकामहीस्वरूपेणयतः स्थितासि ॥ अपांस्वरूपस्थितयात्वयैतदाप्याय्यतेकृत्स्नमलंघ्यवीर्ये ॥ ३ ॥ त्वंवैष्णवीशक्तिरनंतवीर्याविश्वस्यबीजंपरमासिमाया ॥ संमोहितंदेविसमस्तमेतत्त्वंवैप्रसन्नाभुविमुक्तिहेतुः ॥ ४ ॥ विद्याःसमस्तास्तव देविभेदाःस्त्रियः समस्ताः सकलं जगच्च ॥ त्वयैकयापूरितमंबयैतत्कातेस्तुतिःस्तव्यपरापरोक्तिः ॥ ५ ॥ सर्वभूतायदादेवीभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ त्वंस्तुतास्तुतयेकावाभवंतिपरमोक्तयः ॥ ६ ॥

करो, हे देवि ! तुम्हीं चराचर विश्वकी ईश्वरी हो ॥ २ ॥ हे देवि ! तुम्हीं जगत्की अद्वितीय आधारस्वरूप हो, क्योंकि मही (भूमि) स्वरूपसे स्थिति करती हो, हे देवि ! तुम्हीं जलस्वरूपसे अवस्थान करतीहुई इस संपूर्ण विश्वको तृप्त करती हो हे देवि ! तुम्हारा वीर्य उल्लंघन करनेके अयोग्य है ॥ ३ ॥ हे देवि ! तुम्हीं अनन्त वीर्य वैष्णवी शक्ति हो, तुम्हीं संसारकी हेतुभूत परममाया हो, तुमनेही संपूर्ण विश्वको मोहितकर रक्खा है, हे देवि ! पृथ्वीमें तुम्हीं प्रसन्न होकर मुक्तिका कारण होती हो ॥ ४ ॥ हे देवि ! संपूर्ण विद्याही तुम्हारी मूर्त्तिविशेष और त्रिभुवनमें जितनी स्त्री हैं, सबहीं तुम्हारी मूर्त्तिविशेष हैं, हे जननि ! तुम एकही इस विश्वमें व्याप्त होरही हो अधिक और तुम्हारी क्या स्तुति करैं, तुम स्तुतिसे परे और स्तुतिकी परमउक्ति हो ॥ ५ ॥ तुम्हीं सर्वभूतस्वरूपमें प्रकाशमान हो तुम्हीं स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करतीहो इस

कारण तुम्हारी स्तुति करते हैं, किन्तु हे देवि ! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मस्वरूपकी स्तुति करनेमें कौनसी उक्ति श्रेष्ठ है, कोई भी नहीं, क्योंकि तुममें गुण नहीं है निर्गुणकी गुणकीर्त्तनरूप स्तुति किस प्रकारसे संभव होसकती है? ॥ ६ ॥ तुम बुद्धिरूपसे सबके हृदयमें वास करती हो, हे स्वर्गमुक्तिदेनेवाली ! हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे विश्वविनाशमें समर्थ ! तुम कला और काष्ठादिरूपसे जगत्का परिणामविधान करती हो अर्थात् क्षणमुहूर्त्तादि कालकरके मनुष्योंको अंतकी देनेवाली हो हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे सर्वमंगलमाङ्गल्ये ! हे शिवे ! हे सर्वार्थसाधिके ! हे शरणदेनेवाली ! हे तीन नेत्रवाली ! हे गौरि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ ९॥ हे सनातनि ! हे गुणाश्रये ! हे गुणमये ! हे नारायणि ! तुम सृष्टि, स्थिति और विनाशकी शक्तिस्व

सर्वस्यबुद्धिरूपेणजनस्यहृदिसंस्थिते ॥ स्वर्गापवर्गदेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥ ७ ॥ कलाकाष्ठादिरूपेणपरिणामप्रदायिनि ॥ विश्वस्योपरतौशक्तेनारायणिनमोस्तुते ॥ ८ ॥ सर्वमंगलमांगल्येशिवेसर्वार्थसाधिके ॥ शरण्येत्र्यंबकेगौरिनारायणिनमोस्तुते ॥ ९ ॥ सृष्टिस्थितिविनाशानांशक्तिभूतेसनातनि ॥ गुणाश्रयेगुणमयेनारायणिनमोस्तुते ॥ १० ॥ शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ॥ सर्वस्यार्तिहरेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥ ११ ॥ हंसयुक्तविमानस्थेब्रह्माणीरूपधारिणि ॥ कौशांभःक्षीरकेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥ १२ ॥ त्रिशूलचन्द्राहिधरेमहावृषभवाहिनि ॥ माहेश्वरीस्वरूपेणनारायणिनमोस्तुते ॥ १३ ॥ मयूरकुक्कुटवृतेमहाशक्तिधरेनघे ॥ कौमारीरूपसंस्थनेनारायणिनमोस्तुते ॥ १४ ॥

रूप हो, तुमको नमस्कार है ॥ १०॥ हे देवि ! हे नारायणि ! तुम शरणागत, दीन और आर्त मनुष्योंकी रक्षा करनेवाली हो और सबका दुःख हरतीहो, तुमको नमस्कार है॥ ११॥ हे देवि ! नारायणि ! तुमको ब्रह्माणीरूपसे हंसयुक्त विमानमें स्थित होकर युद्धक्षेत्रमें कुशाभिमंत्रित जल छिडकती हो तुमको नमस्कार है ॥ १२ ॥ हे देवि ! तुमने माहेश्वरीरूपसे बैलपर चढकर अर्द्धचन्द्र और नागभूषणसे विभूषित होकर त्रिशूल धारण कियाथा, तुमको नमस्कार है ॥ १३॥ हे अनघे ! हे नारायणि ! तुमने कौमारीरूप धारणपूर्वक मयूर और कुक्कुटसे युक्त होकर महाशक्ति धारण की थी, तुमको नमस्कार है ॥ १४ ॥

हे नारायणि ! तुमने वैष्णवीशक्तिरूपसे रणस्थलमें शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुरूप महाअस्त्रोंको धारण किया था तुमको नमस्कार है, तुम प्रसन्न होओ ॥ १५ ॥ हे शिवे ! हे नारायणि ! तुमनेही महावराहरूप धर दांतोंकेद्वारा जलमें डूबीहुई पृथ्वीको पातालसे उखाड़कर प्रचण्ड महाचक्र धारण किया था, तुमको नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे नारायणि ! तुमने भयंकर नृसिंहरूपसे दैत्यों के वध करनेमें उद्यत होकर तीनों लोककी रक्षा करी थीं तुमको नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे किरीट धारणकरनेवाली ! हे महावज्रवाली ! हे सहस्र नेत्रोंसे उज्ज्वल ! हे वृत्रासुरके प्राणहरनेवाली ! हे ऐन्द्री ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे नारायणि! तुमने शिवदूतीस्वरूपसे भयंकररूप धारणकरके उत्कट शब्दके द्वाराही दैत्योंकी बडीभारी सेनाको नाश किया था, तुमको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे नारा

शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ॥ प्रसीदवैष्णवीरूपेनारायणिनमोस्तुते ॥ १५ ॥ गृहीतोग्रमहाचक्रेदंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे ॥ वराहरूपिणिशिवेनारायणिनमोस्तुते ॥ १६ ॥ नृसिंहरूपेणोग्रेणहंतुंदैत्यान्कृतोद्यमे ॥ त्रैलोक्यत्राणसहितेनारायणिनमोस्तुते ॥ १७ ॥ किरीटिनिमहावज्रेसहस्रनयनोज्ज्वले ॥ वृत्रप्राणहरेचैंद्रिनारायणिनमोस्तुते ॥ १८ ॥ शिवदूतीस्वरूपेणहतदैत्येमहाबले ॥ घोररूपेमहारावेनारायणिनमोस्तुते ॥ १९ ॥ दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ॥ चामुंडेमुंडमथनेनारायणिनमोस्तुते ॥ २० ॥ लक्ष्मिलज्जेमहाविद्येश्रद्धेपुष्टेस्वधेध्रुवे ॥ महारात्रेमहामायेनारायणिनमोस्तुते ॥ ॥ २१ ॥ मेधसरस्वतिवरेभूतिबाभ्रवितामसि ॥ नियतेत्वंप्रसीदेशेनारायणिनमोस्तुते ॥ २२ ॥ सर्वतःपाणिपादांतेसर्वतोक्षिशिरोमुखे ॥ सर्वतःश्रवणघ्राणेनारायणिनमोस्तुते ॥२३॥ सर्वस्वरूपेसर्वेशेसर्वशक्तिसमन्विते ॥ भयेभ्यस्त्राहिनोदेविदुर्गेदेविनमोस्तुते ॥२४॥ एतत्तेवदनंसौम्यंलोचनत्रयभूषितम् ॥ पातुनःसर्वभीतिभ्यःकात्यायनिनमोस्तुते ॥ २५ ॥

यणि ! तुम दंष्ट्राकरालमुखसे चामुण्डारूप धारणकरके शिरोमाला द्वारा विभूषित हुईथीं एवं चण्ड और मुण्ड नामक दोनों असुरोंको विनाश कियाथा, तुमको नमस्कार है॥ २० ॥ हे नारायणि ! तुम्हीं लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि और महामोहस्वरूप और तुम्हीं ध्रुवा अर्थात् नित्या हो, तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ हेनारायणि ! तुम्हीं मेधा, सरस्वती, श्रेष्ठा, बाभ्रवी, भूति और तामसी हो तुमको नमस्कार है । हे नियते ! हे ईशे ! तुम प्रसन्न होओ ॥ २२ ॥ तुम सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, मुख, श्रवण, नासिकावाली हो अर्थात् यह समष्टि शिर आदि तुम्हारेही स्वरूपहैं हेनारायणि ! तुमको नमस्कारहै ॥ २३ ॥ हे देवि ! तुम सर्वस्वरूप ईश्वरी सर्वशक्तिसमन्वित हो, अतएव हमारी भयसे रक्षा करो. हे दुर्गे ! हे देवि ! तुमको नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे कात्यायनि ! तुम्हारा यह तीन नेत्रोंसे विभूषित

सौम्य मुख सब प्राणियोंसे हमारी रक्षा करै, हे देवि ! तुमको नमस्कार है॥२५॥ हे भद्रकालि ! तुम्हारा यह ज्वालाओंसे कराल अतिउग्र और संपूर्ण असुरोंको नाश करनेवाला त्रिशूल हमारी भयसे रक्षा करै, तुमको नमस्कार है ॥ २६ ॥ शब्दद्वारा संपूर्ण जगत्को पूर्ण करके जो घंटा दैत्योंके तेजका नाश करता है, तुम्हारा वह घंटा पुत्रके समान हमारी संपूर्ण पापोंसे रक्षा करै ॥ २७ ॥ हे चण्डिके ! हम तुमको नमस्कार करते हैं, असुरोंके रक्त और वसा (चरबी) रूप पंकद्वारा चर्चित और किरणोंसे उज्ज्वल यह तुम्हारे हाथका शोभायमान खड्ग हमारा मंगल करै ॥२८॥हे देवि ! संतुष्ट होनेपर संपूर्ण रोग विनाश करती हो और रुष्ट होनेपर सब अभिलाषित और प्रियवस्तु हरण करती हो । हे देवि ! तुम्हारे आश्रित मनुष्योंको विपद नहीं रहती और जो तुमको आश्रय करते हैं,वह सबके आश्र

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ॥ त्रिशूलंपातुनोभीतेर्भद्रकालिनमोस्तुते ॥ २६ ॥ हिनस्तिदैत्यतेजांसिस्वनेनापूर्ययाजगत् ॥ साघंटापातु नोदेविपापेभ्योनः सुतानिव ॥ २७ ॥ असुरासृग्वसापंकचर्चितस्तेकरोज्ज्वलः ॥ शुभायखड्गोभवतुचंडिकेत्वांनतावयम् ॥ २८ ॥ रोगानशेषानप हंसितुष्टादुदासिकामान्सकलानभीष्टान् ॥ त्वामाश्रितानांनविपन्नराणांत्वामाश्रिताह्याश्रयतांप्रयांति ॥ २९ ॥ एतत्कृतंयत्कदनंत्वयाद्यधर्मद्विषांदेवि महासुराणाम् ॥ रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्त्तिंकृत्वांबिकेतत्प्रकरोतिकान्या ॥ ३० ॥ विद्यासुशास्त्रेषुविवेकदीपेष्वाद्येषुवाक्येषुचकात्वदन्या ॥ ममत्वगर्त्तेति महांधकारेविभ्रामयस्येतदतीवविश्वम् ॥ ३१ ॥ रक्षांसियत्रोग्रविषाश्चनागायत्रारयोदस्युबलानियत्र ॥ दावानलोयत्रतथाब्धिमध्येतत्रस्थितात्वंप रिपासिविश्वम् ॥ ३२ ॥ विश्वेश्वरीत्वंपरिपासिविश्वंविश्वात्मिकाधारयसीतिविश्वम् ॥ विश्वेशवंद्याभवतीभवंतिविश्वाश्रयायेत्वयिभक्तिनम्राः ॥ ३३ ॥

यस्वरूप होते हैं ॥ २९॥ और हे देवि ! अनेक प्रकारकी मूर्त्ति धारण करके जो आज तुमने धर्मके शत्रु ऐसे बड़े बड़े असुरोंका वध किया है, सो क्या कोई अन्य स्त्री करसकती है?॥३०॥और चतुर्दश विद्याओंके तथा षट् शास्त्रोंके और ज्ञानरूपी दीपक ऐसे आद्यवाक्य कहिये वेदोंके वर्त्तमान रहनेपरभी घोर अंधकारवाले इस ममतारूपी गढेमें इस जगत्को तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा कौन अधिक घुमासकता है ॥ ३१ ॥ हे देवि ! जिस स्थानमें राक्षस हैं, जिस स्था नमें क्रूर सर्प हैं, जिस स्थानमें शत्रु हैं, जिस स्थानमें चोरोंके झुंड हैं. और जिस स्थानमें दावानल है, तुम उसी उसी स्थान और समुद्रमें स्थितहोकर विश्वकी रक्षा करती हो॥३२॥ हे देवि ! तुम विश्वेश्वरी हो.क्योंकि इस विश्वकी रक्षा करती हो. तुम्ही विश्वात्मिका हो. कारण कि, विश्वको धारण कररही हो और विश्वेश्वरादि अर्थात

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिकी भी वन्दनीया हो. क्योंकि जो ब्रह्मादि देवता विश्वका आश्रय हैं, वहभी तुम्हारे प्रति भक्तिनम्र होते हैं और जो मनुष्य तुम्हारे प्रति भक्तिनम्र होते हैं, वह विश्वका आश्रय होते हैं ॥ ३३ ॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ और जिसप्रकार असुरोंका वधकरके इस समय रक्षा करी है, इसी प्रकार शत्रुभयसे हमारी सदा रक्षा करो । और संपूर्ण जगत्के पापोंका तथा उत्पातोंके होनेसे उठेहुए जो जो महामारी आदि उपद्रव हैं, उनको शीघ्र शान्तकरो ॥ ३४ ॥ हे संसारकी आपत्तिको दूर करनेवाली देवि ! प्रणत मनुष्योंके ऊपर प्रसन्न होओ, हे त्रैलोक्यवासियोंकी पूजनीय. तुम समस्त मनुष्योंको वर देनेवाली होओ ॥ ३५ ॥ देवीने कहा—हे सुरगण ! मैं वरदा अर्थात् वर देनेवाली हूं, तुम तीनों जगत्के उपकार करनेवाली जिस वरकी मनमें इच्छा करते हो,

देविप्रसीदपरिपालयनोरिभीतेर्नित्यंयथासुरवधादधुनैवसद्यः ॥ पापानिसर्वजगतांप्रशमंनयाशुउत्पातपाकजनितांश्चमहोपसर्गान् ॥ ३४ ॥ प्रणतानां प्रसीदत्वंदेविविश्वार्त्तिहारिणि ॥ त्रैलोक्यवासिनामीड्येलोकानांवरदाभव ॥३५॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ वरदाहंसुरगणाःवरंयंमनसेच्छथ ॥ तंवृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥ ३६ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ सर्वबाधाप्रशमनंत्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ॥ एवमेतत्त्वयाकार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ३७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ वैवस्वतेंतरेप्राप्तेअष्टाविंशतिमेयुगे ॥ शुंभोनिशुंभश्चैवान्यावुत्पत्स्येतेमहासुरौ ॥ ३८ ॥ नंदगोपकुलेजातायशोदागर्भसंभवा ॥ ततस्तौनाशयिष्यामिविंध्याचलनिवासिनी ॥ ३९ ॥ पुनरप्यतिरौद्रेणरूपेणपृथिवीतले ॥ अवतीर्यहनिष्यामिवैप्रचित्तांस्तुदानवान् ॥ ४० ॥ भक्षयंत्याश्चतानुग्रान्वैप्राचित्तान्सुदानवान् ॥ रक्तादंताभविष्यंतिदाडिमीकुसुमोपमाः ॥ ४१ ॥ ततोमां देवताःस्वर्गेमर्त्यलोकेचमानवाः ॥ स्तुवंतो व्याहरिष्यंतिसततंरक्तदन्तिकाम् ॥ ४२ ॥

वह माँगो मैं उसको दूंगी ॥ ३६ ॥ देवता बोले —हे अखिलेश्वरि ! त्रैलोक्यके सर्व प्रकार विघ्नोंकी शान्ति करो और इसी भाँति हमारे शत्रुओंको विनाश करती रहो, यही हमारा वर है ॥ ३७ ॥ देवीने कहा--वैवस्वत मन्वन्तरमें जब अट्ठाईसवां युग आवेगा, तब शुंभ और निशुंभ नामक अन्य दो महाअसुर जन्म ग्रहण करेंगे ॥ ३८ ॥ तब मैं नन्दगोपके घर यशोदाके गर्भसे जन्मग्रहणपूर्वक विन्ध्याचलवासिनी होकर उनकोभी विनाश करूंगी ॥ ३९ ॥ फिर पृथ्वीतलमें अत्यन्त भयंकररूपसे अवतीर्ण होकर मैं वैप्रचित्त नामक दानवोंको हनन करूंगी ॥ ४० ॥ उन वैप्रचित्त नामक उग्र असुरोंके भक्षण कालमें मेरे दांत दाडिमी कुसुमकी समान रक्तवर्ण हो जाँयगे ॥ ४१ ॥ अनन्तर स्वर्गमें देवता और मर्त्यमें मनुष्यगण स्तव करनेके समय सदा मुझको "रक्तदन्तिका" कहकर कीर्त्तन करेंगे ॥ ४२ ॥

और फिर जब सौवर्ष पर्यन्त वर्षा नहीं होगी, तब जलके अभावमें मुनिगण मेरी स्तुति करेंगे, उस काल में मनुष्ययोनिके विनाही उत्पन्न हूंगी ॥ ४३ ॥ तब मैं सौ नेत्रों के द्वारा मुनियोंको देखूंगी, इसलिये मुनिगण मुझको "शताक्षी" कहेंगे ॥ ४४ ॥ इसके पीछे जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक हे देवताओ ! स्वकीय देहसे उत्पन्न प्राणधारक शाकद्वारा संपूर्ण लोकोंका पोषण करूंगी ॥ ४५ ॥ इसकारण मैं पृथ्वीमें "शाकम्भरी" नामसे विख्यात हूंगी और उस अनावृष्टिकाल मेंही दुर्गम नामक महाअसुरको वध करूंगी ॥ फिर जब मैं मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये हिमाचलमें भयंकररूप धारण करके राक्षसोंको मारूंगी ॥ ४६ ॥

भूयश्चशतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनंभसि ॥ मुनिभिःसंस्तुताभूमौसंभविष्याम्ययोनिजा ॥ ४३ ॥ ततःशतेननेत्राणांनिरीक्षिष्यामियन्मुनीन् ॥ कीर्त्तयिष्यंतिमनुजाः शताक्षीमितिमांततः ॥ ४४ ॥ ततोहमखिलंलोकमात्मदेहसमुद्भवैः ॥ भरिष्यामिसुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ ४५ ॥ शाकंभरीतिविख्यातिंतदायास्याम्यहंभुवि ॥ तत्रैवचवधिष्यामिदुर्गमाख्यंमहासुरम् ॥ (दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥ पुनश्चाहंयदाभीमंरूपंकृत्वाहिमाचले) ॥ ४६ ॥ रक्षांसिभक्षयिष्यामिमुनीनांत्राणकारणात् ॥ ४७ ॥ तदामांमुनयःसर्वेस्तोष्यंत्यानम्रमूर्तयः ॥ भीमादेवीतिविख्यातंतन्मेनामभविष्यति ॥ ४८ ॥ यदारुणाख्यस्त्रैलोक्येमहाबाधांकरिष्यति ॥ तदाहंभ्रामरंरूपंकृत्वासंख्येयषट्पदम् ॥ ४९ ॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थायवधिष्यामिमहासुरम् ॥ भ्रामरीतिचमांलोकास्तदास्तोष्यंतिसर्वतः ॥ ५० ॥ इत्थंयदायदाबाधादानवोत्थाभविष्यति ॥ तदातदावतीर्याहंकरिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥५१॥ ॥ इतिश्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमाहात्म्ये नारायणीस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एभिःस्तवैश्चमांनित्यंस्तोष्यतेयःसमाहितः ॥ तस्याहंसकलांबाधांनाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ १ ॥

॥ ४७ ॥ उस काल समस्त मुनिगण नम्रमूर्ति होकर मेरी स्तुति करेंगे और मेरा "भीमादेवी" यह नाम विख्यात होगा ॥ ४८ ॥ और जिस समयमें अरुण नामक महाअसुर त्रैलोक्यको महाबाधा करेगा, उसकालमें असंख्य षट्पदसमन्वित भ्रमरोंकारूप धारण करके ॥ ४९ ॥ त्रैलोक्यका हित करनेके लिये उस असुरको वध करूंगी, इसकारण मनुष्य मेरा (भ्रामरी) के नामसे स्तव करेंगे॥ ५० ॥ इसप्रकार जब जब दानवोंकी करीहुई बाधा उपस्थित होगी,तब तब मैं अवतार लेकर शत्रुओं का विनाश करूंगी॥ ५१ ॥ इति श्रीमा०पु० देवीमाहात्म्ये भाषाटीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८ ॥ देवी बोली—इन सब स्तवों से सावधान होकर जो मनुष्य मेरी नित्य

स्तुति करेगा, मैं उसकी संपूर्ण बाधा नष्ट करूंगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ १ ॥ मधुकैटभ महिषासुर और शुंभ निशुंभवधरूप मेरा उत्तम माहात्म्य एकाग्र चित्तसे भक्ति सहित जो अष्टमी, चतुर्दशी अथवा नवमी तिथिमें कहेंगे वा सुनेंगे ॥ २ ॥ ३ ॥ उनका कुछ पाप वा पापसे उत्पन्न हुई कोई आपत्ति नहीं रहेगी और दारिद्र्य तथा प्रिय जनोंका वियोग नहीं होगा ॥ ४ ॥ शत्रुसे, चोरोंसे, अथवा राजासे किसी स्थलमें भय नहीं होगा और शस्त्र,अनल तथा जलसेभी कभी भय नहीं होगा॥५॥ इस कारण मेरा माहात्म्य सावधान होकर पढे और सुने। मेरा यह माहात्म्यही सर्वोत्तम स्वस्त्ययन है ॥ ६ ॥ यह मेरा माहात्म्य महामारीसे उत्पन्नहुए समस्त

मधुकैटभनाशंचमहिषासुरघातनम् ॥ कीर्त्तयिष्यंतियेतद्वद्वधंशुम्भनिशुम्भयोः ॥ २ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचैकचेतसः ॥ स्तोष्यंतिचैवये भक्त्याममममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥ नतेषांदुष्कृतंकिंचिदुष्कृतोत्थानचापदः ॥ नभविष्यतिदारिद्र्यंनचैवेष्टवियोजनम् ॥ ४ ॥ शत्रुतोनभयंतेषां दस्युतोवानराजतः ॥ नशस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्संभविष्यति ॥ ५ ॥ तस्मान्ममैतन्माहात्म्यंपठितव्यंसमाहितैः ॥ श्रोतव्यंचसदाभक्त्यापरंस्वस्त्य यनंमहत् ॥ ६ ॥ उपसर्गानशेषांस्तुमहामारीसमुद्भवान् ॥ तथात्रिविधमुत्पातंमाहात्म्यंशमयेन्मम ॥ ७ ॥ यत्रैतत्पठ्यतेसम्यक्नित्यमायतनेमम ॥ सदानतद्विमोक्ष्यामिसांनिध्यंतत्रमेस्थितम् ॥ ८ ॥ बलिप्रदानेपूजायामग्निकार्येमहोत्सवे ॥ सर्वंममैतच्चरितमुच्चार्यंश्राव्यमेवच ॥ ९ ॥ जानताजान तावापिबलिंपूजांतथाकृताम् ॥ प्रतीच्छिष्याम्यहंप्रीत्यावह्निहोमंतथाकृतम् ॥ १० ॥ शरत्कालेमहापूजाक्रियतेयाचवार्षिकी ॥ तस्यांममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वाभक्तिसमन्वितः ॥ ११ ॥ सर्वबाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसमन्वितः ॥ मनुष्योमत्प्रसादेनभविष्यतिनसंशयः ॥ १२ ॥

उपद्रवोंको और तीन प्रकारके उत्पातको शमन करता है ॥ ७ ॥ जिस घरमें मेरा यह माहात्म्य सम्यक् प्रकार पढा जाता है, मैं उस घरको परित्याग नहीं करती और उसीके समीप स्थित रहती हूं ॥ ८ ॥ बलि देनेके समय, पूजाके समय, तथा होमकार्य इत्यादि महोत्सवमें मेरा यह संपूर्ण चरित्र उच्चारण और श्रवण करना चाहिये ॥ ९ ॥ मनुष्यगण जानकर वा विना जाने जो कुछ बलि पूजा करते हैं वा अग्निमें होम करते हैं, उस सबको मैं प्रसन्नतासहित ग्रहण करती हूं ॥ १० ॥ शरत्कालमें जो वार्षिकी महापूजा करीजाती है, उस पूजाके समय मेरा यह माहात्म्य भक्तियुक्त होकर श्रवण करने पर ॥ ११ ॥ मनुष्य मेरे प्रसादसे संपूर्ण विपदसे छूट जाते

हैं, और धन, धान्य तथा पुत्रयुक्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ मेरा यह माहात्म्य, इस शुभ उत्पत्तिकी कथा और युद्धमें पराक्रम सुननेसे मनुष्य निर्भय होता है ॥ १३ ॥ उसके शत्रु नष्ट होते हैं और कल्याण होता है । मेरे माहात्म्य सुननेवाले पुरुषका कुल आनन्दयुक्त होता है ॥ १४ ॥ सब शान्ति कर्मोंमें, दुःस्वप्न देखनेमें और भयंकर ग्रहपीडाके समय मेरा माहात्म्य सुने ॥ १५ ॥ इसके सुननेसे उपद्रव और दारुण ग्रहपीडा शान्त होती है और मनुष्यको दीखे हुए दुःस्वप्न सुस्वप्नकी समान श्रेष्ठफल प्रदान करते हैं ॥ १६ ॥ यह मेरा माहात्म्य पूतना, डाकिनी, शाकिनी, बालग्रहोंसे ग्रसितहुए बालकोंकी शान्ति करनेवाला है, और यदि मनुष्योंमें परस्पर फूट होजाय, तो उत्तमरीतिसे मित्रता करानेवाला है ॥ १७ ॥ और संपूर्ण दुराचारी जनोंके परमबलकी हानि करनेवाला है, इसके

श्रुत्वाममैतन्माहात्म्यंतथोत्पत्तीःपृथक्शुभाः ॥ पराक्रमांश्चयुद्धेषुजायतेनिर्भयः पुमान् ॥ १३ ॥ रिपवः संक्षयंयांतिकल्याणंचोपपद्यते ॥ नन्दतेचकुलंपुंसांमाहात्म्यंममशृण्वताम् ॥१४॥ शांतिकर्मणिसर्वत्रतथादुःस्वप्नदर्शने ॥ ग्रहपीडासुचोग्रासुमाहात्म्यंशृणुयान्मम ॥ १५ ॥ उपसर्गाः शमंयांतिग्रहपीडाश्चदारुणाः ॥ दुःस्वप्नंचनृभिर्दृष्टंसुस्वप्नमुपजायते ॥ १६ ॥ बालग्रहाभिभूतानांबालानांशांतिकारकम् ॥ संघातभेदचनृणांमैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १७ ॥ दुर्वृत्तानामशेषाणांबलहानिकरंपरम् ॥ रक्षोभूतपिशाचानांपठनादेवनाशनम् ॥ १८ ॥ सर्वंममैतन्माहात्म्यंममसंनिधिकारकम् ॥ १९ ॥ पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्चगन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ विप्राणांभोजनैर्होमैः प्रेक्षणीयैरहर्निशम् ॥ २० ॥ अन्यैश्चविविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेणया ॥ प्रीतिर्मेक्रियतेसास्मिन्सकृदुच्चारितश्रुते ॥ २१ ॥ श्रुतंहरतिपापानितथारोग्यंप्रयच्छति ॥ रक्षांकरोतिभूतेभ्योजन्मनांकीर्त्तनंमम ॥ २२ ॥ युद्धेषुचरितंयन्मेदुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ तस्मिञ्छ्रुतेवैरिकृतंभयंपुंसांनजायते ॥ २३ ॥ युष्माभिःस्तुतयोयाश्चयाश्चब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ ब्रह्मणाचकृतायास्ताः प्रयच्छंतिशुभांगतिम् ॥ २४ ॥

पाठकरनेसेही राक्षस, भूत और पिशाचोंका नाश होजाता है ॥ १८ ॥ यह मेरा संपूर्ण माहात्म्य पाठकको मेरे समीप करनेवाला है । यह आदि, मध्य, अवसानमें सर्वथा मेरी सब प्रकार प्रसन्नता करता है ॥ १९ ॥ उत्कृष्ट पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, गंध, दीप, ब्राह्मणभोजन, होम, प्रोक्षणीय ॥ २० ॥ और अन्यान्य विविध भोग द्वारा एक वर्षतक रातदिन पूजा करनेसे मैं जितनी प्रसन्न होती हूं, इस माहात्म्यको केवल एक वार सुननेसेही उतनी प्रसन्न होजाती हूं ॥ २१ ॥ मेरा माहात्म्य सुना जानेसे सब पापोंको हरता है और आरोग्यता प्रदान करता है, मेरे जन्मका कीर्त्तन करनेपर भूतोंसे रक्षा होती है ॥ २२ ॥ तथा युद्धोंमें जो दुष्ट दैत्योंके नाशका चरित्र है, उसके श्रवण करनेपर पुरुषको शत्रुसे कियाहुआ भय नहीं होता है ॥ २३ ॥ तुमने जो स्तुति की है, तथा ब्रह्मर्षियोंने जो स्तुतियां करीं हैं और ब्रह्मा

जीने जो स्तव किया है, उन सब स्तुतियोंके पढ़नेपर वह शुभमती देती हैं ॥ २४ ॥ चोरोंसे घिरनेपर, मित्ररहित स्थानमें शत्रुओंसे घिरनेपर वनमें वा प्रान्तरमें दावाग्निसे पीडितहोनेपर ॥ २५ ॥ सिंह वा व्याघ्रके पीछे दौडनेपर वनमें वनके हाथियोंसे घिरनेपर अग्निमें गिरनेपर क्रुद्ध राजाके द्वारा वधकी आज्ञा दीजानेपर बंधनमें प्राप्त होनेपर ॥ २६ ॥ महासमुद्रमें छोटी डोंगीपर बैठनेके कारण वायुद्वारा आघूर्णित होनेपर, अत्यन्त भयंकर संग्राममें शस्त्र समूहके गिरनेपर ॥ ॥ २७ ॥ अधिक क्या ! सब प्रकारकी विपत्तियोंमें ही यंत्रणासे ग्रसित होनेपर मनुष्य यदि मेरा चारित्र स्मरण करे तो संपूर्ण संकटसे छूट जाता है ॥ ॥ २८ ॥ मेरे चरित्रको जो मनुष्य स्मरण करता है, उसको देखकर मेरे प्रभावसे सिंहादि हिंसक जन्तु, चोर और शत्रुगण दूर भागजाते हैं ॥ २९ ॥ ऋषि

अरण्येप्रांतरेवापिदावाग्निपरिवारितः ॥ दस्युभिर्वावृतः शून्येगृहीतोवापिशत्रुभिः ॥ २५ ॥ सिंहव्याघ्रानुयातोवावनेवावनहस्तिभिः ॥ राज्ञाक्रुद्धेनचाज्ञप्तोवध्योबन्धगतोपिवा ॥ २६ ॥ आघूर्णितोवावातेनास्थितः पोतेमहार्णवे ॥ पतत्सुचापिशस्त्रेषुसंग्रामेभृशदारुणे ॥ २७ ॥ सर्वाबाधासुघोरासुवेदनाभ्यर्दितोपिवा ॥ स्मरन्ममैतच्चरितंनरोमुच्येतसंकटात् ॥ २८ ॥ ममप्रभावात्सिंहाद्यादस्यवोवैरिणस्तथा ॥ दूरादेवपलायंतेस्मरतश्चरितंमम ॥ २९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्त्वासाभगवतीचण्डिकाचण्डविक्रमा ॥ पश्यतामेवदेवानांतत्रैवांतरधीयत ॥ ३० ॥ तेपिदेव्यानिरातंकाः स्वाधिकारान्यथापुरा ॥ यज्ञभागभुजः सर्वेचक्रुर्विनिहतारयः ॥ ३१ ॥ दैत्याश्चदेव्यानिहतेशुम्भेदेवरिपौयुधि ॥ जगद्विध्वंसकेतस्मिन्महोग्रेतुलविक्रमे ॥ निशुंभेचमहावीर्येशेषाः पातालमाययुः ॥ ३२ ॥ एवंभगवतीदेवीसानित्यापिपुनःपुनः ॥ सम्भूयकुरुतेभूपजगतः परिपालनम् ॥ ३३ ॥ तयैतन्मोह्यतेविश्वंसैवविश्वंप्रसूयते ॥ सायाचिताचविज्ञानंतुष्टाऋद्धिंप्रयच्छति ॥ ३४ ॥

बोले—इस प्रकार कहकर उग्र पराक्रमवाली चण्डिका देखतेहुए देवताओंके सामनेसे उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई ॥ ३० ॥ तब वह शत्रुरहित देवताभी निर्भय यज्ञभाग भोजन करतेहुए अपने अपने विषयका अधिकार करने लगे ॥ ३१ ॥ जगत्के विध्वंस करनेवाले अतुल विक्रम देवशत्रु शुंभ और महावीर्यवान् निशुंभ जब युद्धक्षेत्रमें देवीके हाथसे मारेगये, तब बचेहुए दैत्योंने पातालमें गमन किया ॥ ३२ ॥ हे भूप ! वह देवी भगवती नित्या होनेपर भी इसप्रकार वारंवार उत्पन्न होकर जगत्का पालन करती है ॥ ३३ ॥ वही भगवती इस विश्वको मोहित करती है, वही इस विश्वको प्रसव (उत्पन्न) करती

हैं और उनके निकट प्रार्थना करनेसे वह संतुष्ट होकर तत्त्वज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करती हैं ॥ ३४ ॥ हे मनुजेश्वर ! यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड उनसेही व्याप्त होरहा है और प्रलयकालमें महामारीस्वरूपा महाकालीसे व्याप्त होता है ॥ ३५ ॥ और वही, जब काल आता है, तो महामारीरूप होजाती है, तथा संसारोत्पत्ति के समय वही सृष्टिरूप होजाती है और रक्षाकालमें वही सनातनी देवी प्राणियोंकी रक्षा करती हैं ॥ ३६ ॥ मंगलके समयमें वही मनुष्योंके घरमें अनेक प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करती हैं और उसीके अभावमें विनाशके निमित्त लक्ष्मी अन्तर्धान होजाती हैं ॥ ३७ ॥ उसकी स्तुति करने और गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादिद्वारा पूजा करनेसे वह धन, पुत्र और धर्मम शुभमति प्रदान करती हैं ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां फलश्रुतिर्नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

व्याप्तंतयैतत्सकलंब्रह्माण्डंमनुजेश्वर ॥ महाकाल्यामहाकालेमहामारीस्वरूपया ॥ ३५ ॥ सैवकालेमहामारीसैवसृष्टिर्भवत्यजा ॥ स्थितिंकरोतिभूतानांसैवकालेसनातनी ॥ ३६ ॥ भवकालेनृणांसैवलक्ष्मीवृद्धिप्रदागृहे ॥ सैवाभावेतथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ३७ ॥ स्तुतासंपूजितापुष्पैर्गंधधूपादिभिस्तथा ॥ ददातिवित्तंपुत्रांश्चमतिंधर्मेगतिंशुभाम् ॥ ३८ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेदेवीमाहात्म्येशुंभनिशुंभवधोनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ एतत्तेकथितंभूपदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ एवंप्रभावासादेवीययेदंधार्यतेजगत् ॥ १ ॥ विद्यातथैवक्रियतेभगवद्विष्णुमायया ॥ तथात्वमेषवैश्यश्चतथैवान्योविवेकिनः ॥ मोह्यंतेमोहिताश्चैवमोहमेष्यंतिचापरे ॥ २ ॥ तामुपैहिमहाराजशरणंपरमेश्वरीम् ॥ आराधितासैवनृणांभोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतितस्यवचः श्रुत्वासुरथः सनराधिपः ॥ प्रणिपत्यमहाभागंतमृषिंसंशितव्रतम् ॥ ४ ॥ निर्विण्णोतिममत्वेन राज्यापहरणेनच ॥ जगामसद्यस्तपसे सचवैश्योमहामुने ॥ ५ ॥

ऋषि बोले—राजन् ! आपके निकट मैंने यह उत्तम देवीमाहात्म्य कहा । जो इस जगतको धारण कररही हैं, उनका प्रभाव इस प्रकार है वही भगवती विष्णु मायाही तत्त्वज्ञान देती हैं वही तुमको इस वैश्यको और अन्यान्य विवेकी पुरुषोंकोभी मोहित करती हैं और किया है तथा उनके द्वाराही भविष्य प्राणी मोहित होंगे ॥ १ ॥ २ ॥ हे महाराज ! उन भगवती परमेश्वरीकीही शरणमें आओ । उनकी आराधना करनेसेही वह मनुष्यको भोग, स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करती हैं ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे महामुने ! अतिशय ममता और राज्य हरण होजानेसे अत्यन्त दुःखित वह नराधिप सुरथ ऋषिके यह वचन सुन कठोर व्रत सम्पन्न उन

महाभाग ऋषिको प्रणामकर तत्काल तपस्याकेलिये चलेगये और वह वैश्यभी इसी प्रकार तपस्याके लिये चलागया ॥ ४ ॥ ५ ॥ वह राजा और वैश्य नदीके किनारे स्थित हो भगवतीके दर्शनार्थ उत्कृष्ट देवीसूक्तका जप करतेहुए तपस्यामें रत हुए॥ ६ ॥वैश्य और राजाने उस पुलिनमें देवीकी मिट्टीकेद्वारा मूर्ति बनाय, पुष्प, धूप, होम और तर्पण इत्यादिसे उसकी पूजाकरी ॥ ७॥ उन्होंने कभी निराहार और नियमिताहारपूर्वक उसमें चित्त लगाय तथा सावधानहो अपने अपने देहसे रक्त टपकाकर बलि दी॥ ८ ॥इसप्रकार संयतचित्त हो तीन वर्ष आराधना करनेपर जगद्धात्रीचण्डिकाने संतुष्ट होकर उनसे प्रत्यक्ष कहा॥ ९॥देवी बोली–हेराजन् ! तुम जो प्रार्थना करतेहो,और हे कुलनन्दन वैश्य ! तुमभी जो प्रार्थना करतेहो,तुम मेरे निकटसे उन सबको प्राप्तहोंगे, मैं संतुष्ट होकर वह प्रदान करती हूं॥ १०॥मार्कण्डेयजी बोले–

संदर्शनार्थमंबाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ सचवैश्यस्तपस्तपेदेवासूक्तंपरंजपन् ॥ ६ ॥ तौतस्मिन्पुलिनेदेव्याः कृत्वामूर्तिंमहीमयीम् ॥ अर्हणांचक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥ ७ ॥ निराहारौयतात्मानौतन्मनस्कौसमाहितौ ॥ ददतुस्तौबलिंचैवनिजगात्रासृगुक्षितम् ॥ ८ ॥ एवंसमाराधयतेस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ परितुष्टाजगद्धात्रीप्रत्यक्षंप्राहचंडिका ॥ ९ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ यत्प्रार्थ्यतेत्वयाभूपत्वयाचकुलनन्दन ॥ मत्तस्तत्प्राप्यतांसर्वंपरितुष्टाददामितत् ॥ १० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोवव्रेनृपोराज्यमविभ्रंश्यग्रजन्मनि ॥ अत्रैवचनिजंराज्यंहतशत्रुबलंबलात् ॥ ११ ॥ सोपिवैश्यस्ततोज्ञानंवव्रेनिर्विण्णमानसः ॥ ममेत्यहमितिप्राज्ञः संगविच्युतिकारकम् ॥ १२ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ स्वल्पैरहोभिर्नृपतेस्वंराज्यंप्राप्स्यतेभवान् ॥ हत्वारिपूनस्खलितंतवतत्रभविष्यति ॥ १३ ॥ मृतश्चभूयः संप्राप्यजन्मदेवाद्विवस्वतः ॥ सावर्णिकोनाममनुर्भवान्भुविभविष्यति ॥ १४ ॥ वैश्यवर्यत्वयास्मत्तोवरोयश्चाभिवांछितः ॥ तंप्रयच्छामिसंसिद्धचैतवज्ञानंभविष्यति ॥ १५ ॥

अनन्तर राजाने दूसरे जन्ममें अखंडित राज्य और इस जन्ममें बलप्रकाशपूर्वक शत्रुओंको वधकरके जिससे अपना राज्य प्राप्त करसकूं यह वर माँगा॥ ११ ॥और दुःखितचित्त उस बुद्धिमान् वैश्यनेभी “यह मेरा” और “यह मैं” इस प्रकारके मोहके संगका नाशक ज्ञान माँगा ॥ १२ ॥ देवी बोली–हेनृपते ! तुम थोडेही दिनोंमें शत्रुकुल निर्मूल न करके अपने राज्यको प्राप्त होंगे और इसके पीछे फिर तुमको राज्यसे भ्रष्टहोना नहीं पडेगा ॥ १३ ॥ फिर मृत्युके उपरान्त तुम सूर्य देवसे उत्पत्ति लाभ करके पृथ्वीमें सावर्णिनामसे विख्यात मनु होंगे ॥ १४ ॥ हे वैश्यश्रेष्ठ ! तुमनेभी मुझसे जिस वरकी प्रार्थना करी तुम्हारी सिद्धिके लिये वह तुमको देतीहूं, तुमको

ज्ञान होगा ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–देवी उनको इसप्रकार यथाभिलाषित वर देकर तत्काल अन्तर्धान होगईं-अन्तर्धान होनेके पहिले उन्होंनेभी उनका भक्ति पूर्वक स्तव कियाथा ॥ १६ ॥ इसप्रकार क्षत्रिय श्रेष्ठ सुरथ देवीके निकटसे वरपाय सूर्यदेवसे उत्पत्ति लाभकर पृथ्वीमें सावर्णिनामक मनु होंगे ॥ १७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्यंनाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे मुनिसत्तम ! यह सावर्णिक मन्वन्तर तुमसे कहागया और इसीके प्रसंगमें देवीमाहात्म्य, महिषासुर–विनाश॥ १ ॥महायुद्धमें मातृगणोंकी और देवीकी उत्पत्ति चामुण्डा देवीकी उत्पत्ति ॥ २ ॥ शिवदूतीका माहात्म्य,

मार्कण्डेयउवाच ॥ इतिदत्त्वातयोर्देवीयथाभिलषितंवरम् ॥ बभूवांतर्हितासद्योभक्त्याताभ्यामभिष्टुता ॥ १६ ॥ एवंदेव्यावरंलब्ध्वासुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ सूर्याज्जन्मसमासाद्यसावर्णिर्भवितामनुः ॥ १७ ॥ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेसूर्यसावर्णिकेमन्वंतरेदेवीमाहात्म्येनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ संपूर्णंदेवीमाहात्म्यम् ॥ छ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ सावर्णिकमिदंसम्यक्प्रोक्तंमन्वन्तरंतव ॥ तथैवदेवीमाहात्म्यंमहिषासुरघातनम् ॥१॥ उत्पत्तयश्चयोदेव्यामातृणाञ्चमहाहवे ॥ तथैवसंभवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभवः ॥ २ ॥ शिवदूत्याश्चमाहात्म्यंवधः शुंभनिशुंभयोः ॥ रक्तबीजवधश्चैवसर्वमेतत्तवोदितम् ॥ ३ ॥ श्रूयतांमुनिशार्दूलसावर्णिकमथापरम् ॥ दक्षपुत्रश्चसावर्णिर्भावीयोनवमोमनुः ॥ ४ ॥ कथयामिमनोस्तस्ययेदेवामुनयोनृपाः ॥ पारामरीचिभर्गाश्चसुधर्माणस्तथासुराः ॥ ५ ॥ एतेत्रिधाभविष्यन्तिसर्वेद्वादशकागणाः ॥ तेषामिंद्रोभविष्यस्तुसहस्राक्षोमहाबलः ॥ ६ ॥ साम्प्रतंकार्तिकेयोयोवह्निपुत्रःषडाननः ॥ अद्भुतोनामशक्रोऽसौभावीतस्यान्तरेमनोः ॥७॥ मेधातिथिर्वसुःसत्योज्योतिष्मान्द्युतिमांस्तथा ॥ सप्तर्षयोऽन्यःसबलस्तथान्योहव्यवाहनः ॥ ८ ॥

शुंभ–निशुंभवध और रक्तबीजवध, इस सबकाभी सम्यक् प्रकार तुमसे वर्णन किया ॥ ३ ॥ हे मुनिशार्दूल ! अब होनेवाले नवम मनु दक्ष–पुत्र सावर्णके मन्वन्तरका वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ४॥ उस मनुके मन्वन्तरमें जो जो देवता, जो जो ऋषि और जो जो राजाहोंगे,वह कहताहूं । पाराशर मरीचि, भर्ग और सुधर्मा देवताओंके ॥ ५ ॥ यह तीन गण और प्रत्येक गणमें द्वादश–संख्यक देवता हैं । इस समय जो वह्नि–पुत्र षडानन कार्त्तिकेय वर्त्तमान हैं, वही इस भावीमन्वन्तरमें अद्भुत नामक महाबलशाली सहस्राक्ष इन्द्र होंगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल और हव्यवाहन यह उस समय सप्तर्षि होंगे ॥८॥

धृष्टकेतु, बर्हकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवाः, अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न और बृहद्भय ॥९॥ यह कई दक्षपुत्र सावर्णमनुके पुत्र राजा होंगे! हे द्विज ! इसके पीछे दशवें मनुके अन्यमन्वन्तरको सुनो॥१०॥ इस मन्वन्तरमें बुद्धिमान् ब्रह्माजार्क पुत्र दशवें मनु होंगे तथाउनके मन्वन्तर सुखासीन और निरुद्धादि नामक तीन प्रकारके देवता होंगे॥११॥ भावी मनुके मन्वन्तरमें भविष्य देवता शतसंख्यक अर्थात् सौ हैं, क्योंकि इस मन्वन्तरमें प्राणियोंकी संख्या शत है, इस कारण देवताओंकी संख्याभी शत होगी ॥१२॥ इन्द्रके संपूर्ण गुणोंसे युक्त शान्तिही उस समय इन्द्र होंगे और जो सप्तर्षि होंगे, उनका विषय कहता हूं, सुनो॥ १३ ॥ आपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्र

धृष्टकेतुर्बर्हकेतुः खङ्गहस्तोनिरामयः ॥ पृथुश्रवास्तथार्चिष्मान्भूरिद्युम्नोबृहद्भयः ॥९॥ एतेनृपसुतास्तस्यदत्तपुत्रस्यवैनृप ॥ मनोस्तुदशमस्यान्यच्छृणु मन्वरंद्विज ॥१०॥ मन्वन्तरेचदशमेब्रह्मपुत्रस्यधीमतः ॥ सुखासीनानिरुद्धाश्चद्विप्रकाराःसुराःस्मृताः ॥११॥ शतसंख्याहितेदेवाभविष्याभाविनोमनोः ॥ यत्पुत्राणांशतंभावितद्देवानांतदाशतम् ॥ १२ ॥ शान्तिरिन्द्रस्तथाभावीसर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ॥ सप्तर्षीस्तान्निबोधत्वंयेभविष्यन्तिवैतदा ॥ १३ ॥ आपोमूर्ति हविष्मांश्चसुकृतीसत्यएवच ॥ नाभागोऽप्रतिमश्चैववासिष्ठश्चैवसप्तमः ॥ १४ ॥ सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्चभूरिषेणश्चवीर्य्यवान् ॥ शतानीकोऽथवृषभोह्यनमित्रो जयद्रथः ॥ १५ ॥ भूरिद्युम्नःसुपर्वाचतस्यैतेतनयामनोः ॥ भविष्याधर्मपुत्रस्यसावर्णस्यान्तरंशृणु ॥१६॥ विहंगमाः कामगाश्चनिर्माणरतयस्तथा ॥ त्रिःप्रकाराभविष्यन्तिएकैकस्त्रिंशकोगणः ॥१७॥ मासर्तुदिवसायेतुनिर्माणपतयस्तुते॥ विहङ्गमारात्रयोऽथमौहूर्त्ताःकामगागणाः ॥१८॥ इन्द्रोवृषाख्योभविताते षांप्रख्यातविक्रमः॥हविष्मांश्चवरिष्ठश्चऋष्टिरन्यस्तथारुणिः॥१९॥निश्चरश्चानघश्चैवविष्टिश्चान्योमहामुनिः ॥ सप्तर्षयोऽन्तरेतस्मिन्नग्नितेजाश्चसप्तमः॥२०॥

तिम, और सप्तम वसिष्ठ, यह सप्तर्षि हैं ॥ १४ ॥ सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ ॥ १५ ॥ भूरिद्युम्न और सुपर्वा यह कई दशम मनुके पुत्र हैं, भावी मनु धर्मपुत्र सावर्णका मन्वन्तर सुनो ॥ १६ ॥ विहंगम, कामग और निर्माणपति,—देवताओंके यह तीन प्रकारके गण हैं और प्रत्येक गणमें तीस देवता रहेंगे ॥ १७॥ जो मास, ऋतु और दिवस है, वही निर्माण पति हैं; रात्रि विहङ्गम देवता और समस्त मुहूर्तजात विषय कामग देवताओंके गण हैं ॥ १८ ॥ प्रसिद्धपराक्रम वृषाख्य उनके इन्द्र होंगे । इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणतनय ऋषि ॥ १९ ॥ निश्चर, अनघ, महामुनि विष्टि और

सप्तम अग्नि देव, यही सप्तर्षि हैं ॥ २० ॥ सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक; पुरूद्वह, हेमधन्वा और दृढायु, यह उस मनुके पुत्र और भावी नरपति होंगे ॥ २१ ॥ रुद्र पुत्र सावर्णमनुके बारहवें मन्वन्तरमें जो देवता और मुनि होंगे, अब उनका विषय सुनो ॥ २२ ॥ सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित और सुवर्ण, उस मन्वन्तरमें यह पांच प्रकारके देवगण हैं और प्रत्येक गणमें दश देवता रहेंगे ॥ २३ ॥ संपूर्ण इन्द्रके गुणोंसे युक्त महाबलवान् ऋतधामाको उनका इन्द्र जानना चाहिये । अब मुझसे सप्तर्षियोंका विषय सुनो ॥ २४ ॥ द्युति, तपस्वी, सुतपाः, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति और सप्तम तपोधृति, यही सप्तर्षि हैं ॥ २५ ॥ देववान्, उपदेव देवश्रेष्ठ; विदूरथ, मित्रवान् और मित्रविन्द यही उस भावी मनुके पुत्र और राजा होंगे ॥ २६ ॥ रौच्य नामक तेरहवें मनुकी पर्य्यायप्राप्तिमें सप्तर्षि और उसके जो

सर्वत्रगः सुशर्माचदेवानीकःपुरूद्वहः ॥ हेमधन्वादृढायुश्चभाविनस्तत्सुतानृपाः ॥ २१ ॥ द्वादशेरुद्रपुत्रस्यप्राप्तेमन्वन्तरेमनोः ॥ सावर्णाख्याश्चये देवामुनयश्चशृणुष्वतान् ॥ २२ ॥ सुधर्माणः सुमनसोहरितोरोहितस्तथा ॥ सुवर्णाश्चसुरास्तत्रपञ्चैतेदशकागणाः ॥ २३ ॥ तेषामिन्द्रस्तुविज्ञेयऋतधामामहाबलः ॥ सर्वैरिन्द्रगुणैर्युक्ताः सप्तर्षीनपिमेशृणु ॥ २४ ॥ द्युतिस्तपस्वीसुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः ॥ तपोरतिस्तथैवान्यः सप्तमस्तुतपोधृतिः ॥ २५ ॥ देववानुपदेवश्चदेवश्रेष्ठोविदूरथः ॥ मित्रवान्मित्रविन्दश्चभाविनस्तत्सुतानृपाः ॥ २६ ॥ त्रयोदशस्यपर्य्यायेरौच्याख्यस्य मनोः सुरान् ॥ सप्तर्षींश्चनृपांश्चैवगदतोमेनिशामय ॥ २७ ॥ सुधर्माणः सुरास्तत्रसुकर्माणस्तथापरे ॥ सुशर्माणः सुराह्येतेसमस्तामुनिसत्तम ॥ २८ ॥ महाबलोमहावीर्य्यस्तेषामिन्द्रोदिवस्पतिः ॥ भविष्यानथसप्तर्षीन्गदतो[illegible]ामय ॥ २९ ॥ धृतिमानव्ययश्चैवतत्त्वदर्शीनिरुत्सुकः ॥ निर्मोहः सुतपाश्चान्योनिष्प्रकम्पश्चसप्तमः ॥ ३० ॥ चित्रसेनोविचित्रश्चनियतिर्निर्भयोदृढः ॥ सुनेत्रः क्षत्रबुद्धिश्चसुव्रतश्चैवतत्सुताः ॥ ३१ ॥ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेरौच्यमन्वन्तरएकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ रुचिःप्रजापतिःपूर्वंनिर्ममोनिरहंकृतः ॥ यत्रास्तामितशायीचचचारपृथिवीमिमाम् ॥ १ ॥

पुत्र राजा होंगे, उनका विषय कहताहूं, सुनो ॥ २७ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस मन्वन्तरमें सुधर्मा, सुकर्मा, और सुशर्मा, यह सब देवता हैं ॥ २८ ॥ महाबल महावीर्य दिवस्पति उनके इन्द्र होंगे । अब भविष्यत् सप्तर्षियोंका विषय कहताहूं, सुनो ॥ २९ ॥ धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और सप्तम निष्प्रकम्प यही सात जन सप्तर्षि हैं ॥ ३० ॥ चित्रसेन, विचित्र, नियति, निर्भय, दृढ, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि, और सुव्रत, यही रौच्यमनुके पुत्र होंगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रौच्यमन्वन्तरैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—पूर्वकालमें प्रजापति रुचि ममतारहित, अहंकाररहित और पर्यटनमें

जहां सूर्यास्त होय वहां शयनकरनेवाला होकर इस पृथ्वीमें विचरण करतेथे ॥ १ ॥ उनकेपितर उनको अग्निहीन, गृहहीन, एकाहार, आश्रमहीन, और संगत्यागी मुनिव्रतचारी देखकर इस प्रकार कहने लगे ॥ २ ॥ पितरोंने कहा हेवत्स ! तुमने दारपरिग्रह (विवाह) रूप पवित्रकार्य क्यों नहीं किया वह स्वर्ग और मुक्तिका कारण होनेसे विवाहकेविना समस्तही बंधन है ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण देवता, पितर, पूज्य ऋषि और अतिथि गणोंका सत्कार करके गृही पुरुष स्वर्गादि लोक भोग करते हैं ॥ ४ ॥ "स्वाहा" उच्चारण करके देवताओंकी "स्वधा" उच्चारण करके पितरोंकी और अन्नदानद्वारा अतिथीकी सेवारूप तीन ऋण निवटाकर पुरुष गृही होताहै, किन्तु तुम दिन दिन (गृही न होकर) देवऋण, पितृऋण, मनुष्य और संपूर्ण प्राणियोंके निकट बंधनको प्राप्तहोतेहो ॥ ५ ॥ ६ ॥ विना पुत्र उत्पन्नकिये तथा देवता और

अनग्निमनिकेतन्तमेकाहारमनाश्रमम् ॥ विमुक्तसङ्गंतंदृष्ट्वाप्रोचुस्ततपितरोमुनिम् ॥ २ ॥ ॥ पितरऊचुः ॥ ॥ वत्सकस्मात्त्वयापुण्यो नकृतोदारसंग्रहः ॥ स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशंविना ॥ ३ ॥ गृहीसमस्तदेवानांपितृणाञ्चतथार्हणाम् ॥ ऋषीणामतिथीनाञ्चकुर्वँल्लो कानुपाश्नुते ॥ ४ ॥ स्वाहोच्चारणतोदेवान्स्वधोच्चारणतः पितॄन् ॥ विभजत्यन्नदानेनभूताद्यानतिथीनपि ॥ ५ ॥ सत्वंदैवादृणाद्बन्धंबन्ध मस्मदृणादपि ॥ अवाप्नोषिमनुष्यर्षिभूतेभ्यश्चदिनेदिने ॥ ६ ॥ अनुत्पाद्यसुतान्देवानसन्तर्प्यपितॄंस्तथा ॥ भूतादींश्चकथंमौढ्यात्सुगतिंगन्तुमिच्छसि ॥ ॥ ७ ॥ क्लेशमेवैहिकंपुत्रमन्यामोऽत्रभवेत्तव ॥ मृतस्यनरकंतद्वत्क्लेशमेवान्यजन्मनि ॥ ८ ॥ रुचिरुवाच ॥ परिग्रहोऽतिदुःखायपापायाधोगतेस्तथा ॥ भवत्यतोमयापूर्वंनकृतोदारसंग्रहः ॥ ९ ॥ आत्मनः संयमोयोऽयंक्रियतेक्षनियन्त्रणात् ॥ समुक्तिहेतुर्नभवत्यसावपिपरिग्रहात् ॥ १० ॥ प्रक्षाल्यते ऽनुदिवसंयदात्मानिष्परिग्रहैः ॥ ममत्वपङ्कदिग्धोऽपिचित्ताम्भोभिर्वरंहितत् ॥ ११ ॥ अनेकभवसंभूतकर्मपङ्काङ्कितोबुधैः ॥ आत्मासद्वासनातोयैःप्रक्षा ल्योनियतेन्द्रियैः ॥ १२ ॥

पितरोंका विना तर्पण किये और विना कर्मकिये मूर्खतासे किसप्रकार श्रेष्ठगति प्राप्तकरनेकी इच्छा करते हो ? ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! तुमको जो जो क्लेश होगा, उस प्रत्येकको हम जानते हैं, मृतपुरुषके नरक भोगनेकी समान तुमको अन्य जन्ममें अनेक प्रकारका क्लेश होगा ॥ ८ ॥ रुचिने कहा—दारपरिग्रह अर्थात् विवाह करना अत्यन्त दुःखप्रद और पापका कारणस्वरूप है, उससेही अधोगति होती है इसीलिये पूर्वमें मैंने विवाह नहीं किया ॥ ९ ॥ इन्द्रियदमनहेतु जो आत्मसंयम किया जाता है, वही मुक्तिका कारण है, विवाह करना कभी मुक्तिका कारण नहीं हो सकता ॥ १० ॥ परिग्रहहीन पुरुष ममतारूपी कीचड़में लिप्त आत्माको प्रतिदिन जो चित्तरूप जलसे धोतेहैं, वही उत्तम हैं ॥ ११ ॥ अनेक जन्मजनित कर्मरूपी कीचड़में लिप्त आत्माको सद्वासनारूपी जलसे धोनाही

संयतेन्द्रिय बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है ॥ १२ ॥ पितरों ने कहा यद्यपि संयतेन्द्रिय पुरुषोंको आत्माका प्रक्षालन करना कर्त्तव्य है, किन्तु हे पुत्र ! तुमने जिस मार्गका अवलम्बन किया है यह क्या मोक्ष प्राप्त होनेका मार्ग है ? ॥ १३ ॥ जिसप्रकार कामनारहित दानसे अशुभ नष्ट होता है इसीप्रकार शुभाशुभ फलभी उसका उपभोग करनेसे पूर्वजन्मार्जित कर्म क्षय होता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार करुणात्मक कर्मकारियोंको संसारबंधन नहीं होता, क्योंकि अनभिसंधि तो उस कर्म बंधनका हेतु नहीं है ॥ १५ ॥ हे वत्स ! सुख दुःखात्मक भोगद्वारा मनुष्योंके पूर्वजन्मकृत पुण्यापुण्यात्मक कर्म रात दिन क्षयको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य आत्माको इसप्रकार प्रक्षालन करैं और बंधनसे रक्षा करैं, किन्तु अविवेकरूप पापपंकद्वारा आत्माको लिप्त न करै ॥ १७ ॥

॥ पितरऊचुः ॥ ॥ युक्तंप्रक्षालनंकर्तुमात्मनोनियतेन्द्रियैः ॥ किन्तुलेपायमार्गोऽयंयत्रत्वंपुत्रवर्तसे ॥ १३ ॥ पंचर्णदीनैरशुभंनुद्यतेऽनभिसन्धितैः ॥ फलैस्तथोपभोगैश्चपूर्वकर्मशुभाशुभैः ॥ १४ ॥ एवंनवन्धोभवतिकुर्वतःकारणात्मकः ॥ नचवन्धायतत्कर्मभवत्यनभिसन्धितम् ॥ १५ ॥ पूर्वकर्मकृतं भोगैःक्षीयतेऽहर्निशंतथा ॥ सुखदुःखात्मकैर्वत्सपुण्यापुण्यात्मकैर्नृणाम् ॥ १६ ॥ एवंप्रक्षाल्यतेप्राज्ञैरात्मावन्धाच्चरक्ष्यते ॥ नत्वेवमविवेकेनपापपङ्केन लिप्यते ॥ १७ ॥ ॥ रुचिरुवाच ॥ ॥ अविद्यापठ्यतेवेदैःकर्ममार्गःपितामहाः ॥ तत्कथंकर्मणोमार्गेभवन्तोयोजयन्तिमाम् ॥ १८ ॥ ॥ पितर ऊचुः ॥ ॥ अविद्यासत्यमेवैतत्कर्मनैतन्मृषावचः ॥ किन्तुविद्यापरिप्राप्तौहेतुःकर्मनसंशयः ॥ १९ ॥ विहिताकरणात्पुंभिरसद्भिःक्रियतेतुयः ॥ संयमो मुक्तयेनासौप्रत्युताऽधोगतिप्रदः ॥ २० ॥ प्रक्षालयामीतिभवान्वत्सात्मानन्तुमन्यते ॥ विहिताकरणोद्भूतैःपापैस्त्वन्तुविलिप्यसे ॥ २१ ॥ अविद्याप्युपका रायविषवज्जायतेनृणाम् ॥ अनुष्ठिताभ्युपायेनबन्धायान्यायतोहिसा ॥ २२ ॥

रुचिने कहा हे पितामहगण ! वेदमें कर्म मार्गको अविद्या कहकर पढा है, तो फिर किस निमित्त आप मुझको कममागम प्रवृत्त करते हैं ? ॥ १८ ॥ पितर बोले– यह कर्ममार्ग जो अविद्या है सो सत्य है और कर्मद्वाराही यह वचन मिथ्या होता है. क्योंकि कर्म जो विद्याप्राप्तिका हेतु है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ समस्त कर्त्तव्य कार्य बिना किये असत् पुरुष मुक्तिके निमित्त जो संयम करते हैं, वह अन्तकालमें अधोगति प्रधान करते हैं ॥ २० ॥ हे वत्स ! तुम मनमें यह समझते हो कि, मैं "आत्माको प्रक्षालन करताहूं" किन्तु विहितकर्मसम्पादन न करनेसे उसके पापमें दग्ध होते हो ॥ २१ ॥ अपकारक विष जिसप्रकार मनुष्यका उप

कार साधन करता है,इसी प्रकार यह अविद्याभी मनुष्यका उपकार करनेवाली है। यह अन्यरूप होनेपरभी अनुष्ठित कार्य कल्याणकारी उपायके सहित हमारे पक्षमें मंगलदायक है ॥ २२ ॥ हे वत्स! इस कारण तुम विधिवत् दारपरिग्रह अर्थात् विवाह करो, जिससे लौकिकधर्म सम्यक् प्रकार प्राप्त न होनेके कारण तुम्हारा जन्म विफल न हो ॥ २३ ॥ रुचिने कहा—हे पितृगण! अब मैं वृद्ध होगया हूं अतएव कौन मुझको स्त्री देगा? विशेष कर दरिद्रके पक्षमें भार्याग्रहण अत्यन्त दुष्कर (कठिन) है ॥ २४ ॥ पितर बोले—हे वत्स! यदि तुम हमारे वचनका अनुमोदन नहीं करोगे अर्थात् स्वीकार नहीं करोगे तो हमारा पतन और तुम्हारीभी अधोगति होगी ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुनिसत्तम! यह कहकर उनके पितर देखते देखते वायुसे

तस्माद्वत्सकुरुष्वत्वंविधिवद्दारसंग्रहम् ॥ माजन्मविफलंतेऽस्तुअसम्प्राप्यतुलौकिकम् ॥ २३ ॥ ॥ रुचिरुवाच ॥ ॥ वृद्धोऽहंसाम्प्रतंकोमेपितरः सम्प्रदास्यति ॥ भार्य्यांतथादरिद्रस्यदुष्करोदारसंग्रहः ॥ २४ ॥ ॥ पितरऊचुः ॥ ॥ अस्माकंपतनंवत्सभवतश्चाप्यधोगतिः ॥ नूनंभाविभवित्री चनाभिनन्दसिनोवचः ॥ २५ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वापितरस्तस्यपश्यतोमुनिसत्तम ॥ बभूवुःसहसाऽदृश्यादीपावाताहताइव ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरुच्युपाख्यानेद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सतेनपितृवाक्येनभृशमुद्विग्नमानसः ॥ कन्याभिलाषी विप्रर्षिःपरिबभ्राममेदिनीम् ॥ १ ॥ कन्यामलभमानोऽसौपितृवाक्याग्निदीपितः ॥ चिन्तामवापमहतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥ २ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामि कथंमेदारसंग्रहः ॥ क्षिप्रंभवेत्पितृणांयोममाभ्युदयकारकः ॥ ३ ॥ इतिचिन्तयतस्तस्यमतिर्जातामहात्मनः ॥ तपसाराधयाम्येनंब्रह्माणंकमलोद्भवम् ॥४॥ ततोवर्षशतंदिव्यंतपस्तेपेसवेधसम् ॥ दिदृक्षुःसुचिरंकालंपरंनियममास्थितः ॥ ५ ॥

बुझेहुए दीपककी समान सहसा अन्तर्धान होगये ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रुच्युपाख्यानंनाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—वह विप्रर्षि रुचि इसप्रकार पितरोंका वचन सुन अत्यन्त उद्विग्नमन हो और कन्याकी अभिलाषाकरके पृथ्वीमें भ्रमण करनेलगे ॥ १ ॥ पितरोंकी वचनरूपी अग्निमें दीप्तिमान् होकर वह कन्या प्राप्त न करसकनेके कारण अत्यन्त उद्विग्नमनसे बडी चिन्तामें प्राप्त हुए ॥ २ ॥ "क्या करूं? कहां जाऊं! किसप्रकारसे मेरे पितरोंका अभ्युदय करनेवाला मेरा दारपरिग्रह (विवाह) कार्य शीघ्र संपन्न हो!" ॥ ३ ॥ इसप्रकार चिन्ता करते करते उन महात्माको यह बुद्धि उत्पन्नहुई कि "मैं तपस्याद्वारा भगवान् कमलयोनि ब्रह्माजीकी आराधना करूं" ॥ ४ ॥ तब उन्होंने विधाताकी

आराधनाके कारण यथावत् नियममें स्थित होकर दिव्य शतवर्षतक तपस्या की थी ॥ ५ ॥ तब लोकपितामह ब्रह्माजीने उनको अपनी मूर्तिका दर्शन देकर कहा "मैं प्रसन्न हुआहूं, अब तुम अपना अभीष्ट विषय वर्णन करो" ॥ ६ ॥ तब रुचिने जगत्के गतिस्वरूप भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम करके पितरोंके वचनानुसार जो करनेकी इच्छा करी है, वह कहा । तब ब्रह्माजीने विप्रर्षि रुचिका अभीष्ट विषय सुनकर उनसे कहा ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे विप्र ! तुम प्रजापति होंगे तुम्हारे द्वारा प्रजा उत्पन्न होगी, प्रजासृष्टि और सन्तान उत्पादन पूर्वक समस्त क्रिया ॥ ८ ॥ करके जब तुम अधिकाररहित होगे, तब सिद्धिलाभमें समर्थ होगे, इसकारणही तुमसे पितृगण विवाह करनेको कहते हैं ॥ ९ ॥ "यह अवश्य कर्तव्य है" इस प्रकार विचार कर तुम पितरोंकी पूजा करो । वह

ततःस्वंदर्शयामासब्रह्मालोकपितामहः ॥ उवाचतंप्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥ ६ ॥ ततोऽसौप्रणिपत्याहब्रह्माणंजगतोगतिम् ॥ पितॄणांवचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥ ब्रह्माचाहरुचिंविप्रंश्रुत्वातस्याभिवाञ्छितम् ॥७॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ प्रजापतिस्त्वंभवितास्रष्टव्याभवताप्रजाः ॥ सृष्ट्वाप्रजाःसुतान्विप्र समुत्पाद्यक्रियास्तथा ॥ ८ ॥ कृत्वाकृताधिकारस्त्वंततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ सत्वंयथोक्तंपितृभिः कुरुदारपरिग्रहम् ॥९॥ कामंचेममभिध्यायक्रियतांपितृपूजनम् ॥ तएवतुष्टाःपितरः प्रदास्यन्तितवेप्सितान् ॥ पत्नींसुतांश्चसन्तुष्टाः किंनदद्युः पितामहाः ॥१०॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वाब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ नद्याविविक्तेपुलिनेचकारापितृतर्पणम् ॥ ११ ॥ तुष्टावचपितॄन्विप्रः स्तवैरेभिस्तथाहृतः ॥ एकाग्रःप्रयतोभूत्वाभक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ ॥ १२ ॥ ॥ रुचिरुवाच ॥ ॥ नमस्येऽहंपितॄञ्छ्राद्धेयेवसन्त्यधिदेवताः ॥ देवैरपिहितर्प्यन्तेयेचश्राद्धेस्वधोत्तरैः ॥ १३ ॥ नमस्येऽहंपितॄन्स्वर्गेयेतर्प्यन्ते महर्षिभिः ॥ श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्याभुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४॥ नमस्येऽहंपितॄन्स्वर्गेसिद्धाः सन्तर्पयन्तियान् ॥ श्राद्धेषुदिव्यैःसकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥१५॥

पितृगण सन्तुष्ट होनेपर तुमको अभीष्ट पत्नी और पुत्र प्रदान करेंगे, क्योंकि पितर सन्तुष्ट होनेपर क्या नहीं देते हैं? ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अव्यक्तजन्मा ऋषि ब्रह्माका इस प्रकार वचन सुनकर उन्होंने नदीके निर्जन पुलिनमें पितरोंका तर्पण किया ॥ ११ ॥ हे विप्र ! उन्होंने आदरसहित, एकाग्रचित्त, प्रयत और भक्तिसे नम्रग्रीव हो इस स्तोत्रसे पितरोंको संतुष्ट किया ॥ १२ ॥ रुचिने कहा—श्राद्धमें जो अधिदेवता रूपसे वास करते हैं, देवताभी श्राद्धमें स्वाहा उच्चारण करके जिनको तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १३॥ स्वर्गमें भुक्ति मुक्तिकी अभिलाषा करनेवाले मनोमय श्राद्धद्वारा महर्षिगण भक्तिपूर्वक जिनको तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ १४ ॥ स्वर्गमें सिद्धगण श्राद्धके समय अति उत्तम दिव्य सब उपहारोंसे जिनको तृप्त करतेहैं, उन पितरोंको

नमस्कार करताहूं ॥ १५ ॥ अत्युत्कृष्ट अत्यन्त समृद्धिके अभिलाषी गुह्यकगण तन्मयभावसे भक्तिसहित जिनकी अर्चना करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ १६ ॥ मर्त्यलोकमें मनुष्य श्राद्धमें जिन अभीष्ट लोकोंके देनेवाले पितरोंकी श्रद्धासहित अर्चना करते हैं उनको नमस्कार करताहूं ॥ १७ ॥ जो प्राजापत्य पद प्रदान करनेवाले पितरगण वांछित विषय प्राप्त होनेके निमित्त ब्राह्मणोंके द्वारा पृथ्वीमें पूजित होते हैं, उनको नमस्कार करताहूं ॥ १८ ॥ यताहारी और तपके द्वारा नष्ट होगये हैं पाप जिनके, ऐसे अरण्यवासी गण वन्यश्राद्धद्वारा जिनको तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ १९ ॥ संयतात्मा नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्राह्मण समाधिद्वारा जिनको तृप्त करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २० ॥ राजन्य गण अर्थात् क्षत्रिय लोग जिन तीनों लोकमें फल

नमस्येऽहंपितॄन्भक्त्यायेऽर्च्यन्तेगुह्यकैरपि ॥ तन्मयत्वेनवाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकींपराम् ॥ १६ ॥ नमस्येऽहंपितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्तेभुवियेसदा ॥ श्राद्धेषुश्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥ १७ ॥ नमस्येऽहंपितॄन्विप्रैरर्च्यन्तेभुवियेसदा ॥ वाञ्छिताभीष्टलाभायप्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८॥ नमस्येऽहंपितॄन्येवैतर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ॥ वन्यैःश्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः ॥ १९ ॥ नमस्येऽहंपितॄन्विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः ॥ येसंयतात्मभिर्नित्यसंतर्प्यन्तेसमाधिभिः ॥२०॥ नमस्येऽहंपितॄञ्छ्राद्धैराजन्यास्तर्पयन्तियान्॥ कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान्॥२१॥ नमस्येऽहंपितॄन्वैश्यैरर्च्यंतेभुवियेसदा ॥ स्वकर्माभिरतैर्नित्यंपुष्पधूपान्नवारिभिः ॥ २२ ॥ नमस्येहंपितॄञ्छ्राद्धैर्येशूद्रैरपिभक्तितः ॥ सन्तर्प्यन्तेजगत्यत्रनाम्नाख्याताःसुकालिनः ॥ २३ ॥ नमस्येऽहंपितॄञ्छ्राद्धैःपातालेयेमहासुरैः ॥ सन्तर्प्यन्तेस्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैःसदा ॥ २४ ॥ नमस्येऽहंपितॄञ्छ्राद्धैरर्च्यन्तेयेरसातले ॥ भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैःकामानभीप्सुभिः ॥ २५ ॥

प्रद पितरोंको श्रद्धापूत अशेष कव्य (श्रद्धान्न) द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करताहूं ॥ २१ ॥ अपने कर्ममें आसक्त वैश्यगण पृथ्वीमें जिनको पुष्प, धूप अन्न और जलद्वारा संतुष्ट करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २२ ॥ इस जगत्में शूद्रगण जिन सुकालीन नामक विख्यात पितरोंको भक्तिसहित श्राद्धद्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २३ ॥ पातालमें दम्भ मदत्यागी महासुरगण जिन स्वधाहार पितरोंको सदा श्राद्धद्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २४ ॥ रसातलमें कामाभिलाषी नागकुल जिनको अशेष भोग और श्राद्धद्वारा सर्वदा यथाविधि संतुष्ट करते हैं,

उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २५ ॥ मंत्र, भोग और सम्पत्‌संयुक्त सर्पगण पातालमें सदा जिन पितरोंको श्राद्धद्वारा विधिवत् सन्तर्पित करते हैं, उन पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ २६ ॥ जो देवलोक और अंतरिक्षमें प्रत्यक्ष भावसे वास करते हैं और पृथ्वीतलमें जो देवताओं के द्वारा पूजित होतेहैं,उन पितरोंको प्रणाम करताहूं,वह मेरी दीहुई पूजा ग्रहण करें ॥ २७ ॥ जो मूर्तिमान् परमात्माभूत और विमानमें वास करते हैं और योगीश्वरगण विमल मनसे क्लेशविमोचक ज्ञानद्वारा जिनकी यज्ञमें आराधना करतेहैं उन पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ २८ ॥ जो स्वर्गमें मूर्तिमान् काम्यफलप्राप्ति विषयमें स्वधाभोजी हैं, जो सब प्रार्थी गणोंको इष्ट प्रदानमें समर्थ हैं और जो कामनावर्जित कार्य में विमुक्तिप्रदान करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २९ ॥ जो प्रार्थीगणोंको प्रार्थनाकीहुई वस्तु देतेहैं और जो सुरत्व, इन्द्रत्व, वा

नमस्येऽहंपितॄञ्छ्राद्धैःसर्पैःसन्तर्पितान्सदा ॥ तत्रैवविधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥ २६ ॥ पितॄन्नमस्येनिवसन्तिसाक्षाद्येदेवलोकेचतथान्तरिक्षे ॥ महीतलेयेचसुरादिपूज्यास्तेमेप्रतीच्छन्तुमयोपनीतम् ॥ २७ ॥ पितॄन्नमस्येपरमात्मभूता येवैविमानेनिवसन्तिमूर्त्ताः ॥ यजन्तियानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८॥ पितॄन्नमस्येदिवियेचमूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ॥ प्रदानशक्ताःसकलेप्सितानां विमुक्तिदायेऽनभिसंहितेषु ॥ ॥२९॥ तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरःसमस्ता इच्छावतांयेप्रदिशन्तिकामान् ॥ सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकंवा सुतान्पशून्स्वानिबलंगृहाणि ॥ ३० ॥ सोमस्ययेरश्मिषुयेऽर्कबिम्बे शुक्लेविमानेचसदावसन्ति ॥ तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिनापुष्टिमितोव्रजन्तु ॥३१॥ येषांहुतेऽग्नौहविषाचतृप्तिर्येभुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः ॥ येपिण्डदानेनमुदंप्रयान्ति तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ॥ ३२ ॥ येखड्गिमांसेनसुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ॥ कालेनशाकेनमहर्षिवर्यैःसंप्रीणितास्तेमुदमत्रयान्तु॥३३॥कव्यान्यशेषाणिचयान्यभीष्टान्यतीवतेषाममरार्चितानाम्॥तेषांतुसान्निध्यमिहास्तुपुष्पगन्धान्नभोज्येषुमयाकृतेषु॥३४॥

इससेभी अधिक हैं अथवा पुत्र, पशु, अर्थ, बल, गृह इत्यादि कामानुरूप दान करतेहैं, मेरी इस पूजासे वह तृप्तहों ॥ ३० ॥ जो सदा चन्द्रमाकी किरणोंमें सूर्य बिम्बमें और शुक्र विमानमें वास करते हैं, वह पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों और वह अन्न, जल तथा गन्धादि द्वारा पुष्टिको प्राप्त हों ॥ ३१ ॥ अग्निमें घृतकी आहुति देनेसे जो तृप्त होते हैं, जो ब्राह्मणके शरीरमें स्थित होकर भोजन करते हैं और पिण्डदान करनेसे जो संतुष्ट होते हैं, वही पितृगण इस अन्न, जलद्वारा इस विषयमें तृप्तहों ॥ ३२ ॥ देवता गैंडेके मांस और अभीष्ट दिव्य मनोहर काले तिलोंसे जिनको प्रसन्न करते हैं और महर्षिगण वर्षके पीछे कालशाकद्वारा जिनको तृप्त करते हैं, वह पितृगण इस विषयमें संतुष्ट हों ॥ ३३ ॥ देवताओंसे अर्चित उन पितृगणोंके जो समस्त अभीष्ट कव्य हैं, मैंने वही पुष्प, गन्ध, अन्न, भोज्य संग्रह

किया है, वह इनके समीप उपस्थित हों ॥ ३४ ॥ जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं, पृथ्वीमें जो प्रतिमास तीनों अष्टकोंमें पूजित होते हैं; और जो वर्षके अन्तमें उत्स
वके दिन पूजे जाते हैं, वह पितृगण मेरी इस पूजासे तृप्त हों ॥ ३५ ॥ जो पितृगण (कुमुद और चन्द्रमा) की सदृश शुक्लवर्ण प्रभायुक्त होकर देवताओंके
पूज्य होते हैं, जो नवीन उदयहुए सूर्यके समान रक्तवर्णयुक्त होकर क्षत्रियोंके पूज्य होते हैं, जो कनककी सदृश सुन्दर कान्तियुक्त होकर वैश्योंके पूज्य और
जो (नीलीकी समान) रूपसे शूद्रोंके पूज्य होते हैं ॥ ३६ ॥ वह सम्पूर्ण पितृगण मेरे पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न और जलादिनिवेदन तथा अग्निहोम द्वारा मुझसे
तृप्त हों, मैं सदा उन पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ ३७ ॥ जो अतितृप्तिहेतु देवताओंके आगे आहुत होमेहुए समस्त शुभ कव्य अन्न आहार करते हैं और जो

दिनेदिनेयेप्रतिगृह्णतेऽर्चां मासांतपूज्याभुवियेऽष्टकासु ॥ येवत्सरांतेऽभ्युदयेचपूज्याः प्रयान्तुतेमेपितरोऽत्रतृप्तिम् ॥ ३५ ॥ पूज्याद्विजानांकुमुदेन्दुभासोये
क्षत्रियाणांचनवार्कवर्णाः ॥ तथाविशांयेकनकावदाता नीलीनिभाःशूद्रजनस्ययेच ॥३६ ॥ तेऽस्मिन्समस्ताममपुष्पगंधधूपान्नतोयादिनिवेदनेन ॥ तथाग्नि
होमेनचयांतुतृप्तिं सदापितृभ्यःप्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥ ३७ ॥ येदेवपूर्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्तिकव्यानिशुभाहुतानि ॥ तृप्ताश्चयेभूतिसृजोभवंति तृप्यन्तुते
स्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥ ३८ ॥ रक्षांसिभूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवंप्रजानाम् ॥ आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यंतुतेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मिते
भ्यः ॥ ३९ ॥ अग्निष्वात्तावर्हिषदआज्यपाःसोमपास्तथा ॥ व्रजंतुतृप्तिंश्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पितामया ॥ ४० ॥ अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचींरक्षन्तुमेदि
शम् ॥ तथावर्हिषदःपान्तुयाम्यांयेपितरःस्मृताः ॥ ४१ ॥ प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपिसोमपाः ॥ रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥ ४२ ॥

तृप्त होकर अणिमादि अष्टैश्वर्यकी सृष्टि करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त हों मैं उनको प्रणाम करताहूं ॥ ३८ ॥ जो राक्षस, भूत और उग्र असुरोंके घातक तथा
प्रजाके असंगलका नाश करते हैं, जो देवताओंके आदि पुरुष हैं और जो अमरेश इन्द्रके पूज्य हैं, वह पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों, मैं उनको प्रणाम करताहूं ॥ ३९ ॥
अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, आज्यपा और सोमपा पितृगण मेरे द्वारा तर्पित होकर इस श्राद्धमें तृप्तिलाभ करें ॥ ४० ॥ अग्निष्वात्ता पितर मेरी पूर्वदिशामें और बर्हिषद पितर
दक्षिण दिशामें रक्षा करें ॥ ४१ ॥ आज्यपा पितर पश्चिमदिशामें और सोमपा पितृगण इसी प्रकार उत्तर दिशामें राक्षस, भूत, पिशाच और असुरोत्पन्न दोषसे रक्षाकरें ॥ ४२ ॥

१ शाकाष्टका, मांसाष्टका और पूपाष्टका ।

जिन पितरोंके विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति यह नव संख्याकगण हैं, उनके अधिपति यम मेरी सब दिशाओंमें रक्षा करें। कल्याण कल्यता कर्त्ता कल्य, कल्यतराश्रय ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ कल्यता हेतु और अनघ, जिन पितृपुरुषोंके यह छै प्रकारके गण हैं, जिन पितृपुरुषोंके वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद ॥ ४५॥ विश्वपाता और धाता यह सप्तविध गण हैं, महान्, महात्मा, महित महिमावान् और महाबल नामक॥ ४६॥ जो पितरोंके पापनाशक यह पांच प्रकारके गण हैं और सुखद, धनद, धर्मद और भूतिदाता गण है ॥ ४७ ॥ पितरोंके यह जो चार गण कहेगये हैं, सब समेत वह एकत्रिंशत् अर्थात् एकतीस पितृगण हैं, जो संपूर्ण जगत्को व्याप्त कररहे हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त होकर मुझको संतुष्ट करैं और मेरा सदा हित करें ॥ ४८ ॥

सर्वतश्चाधिपस्तेषांयमोरक्षांकरोतुमे॥विश्वोविश्वभुगाराध्योधर्म्मोधन्यःशुभाननः॥४३॥भूतिदोभूतिकृद्भूतिःपितृणांयेगणानव॥कल्याणःकल्यतांकर्त्ताकल्यः कल्यतराश्रयः ॥४४॥ कल्यताहेतुरनघःषडिमेतेगणाः स्मृताः॥वरोवरेण्योवरदःपुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा॥४५॥विश्वपातातथाधातासप्तैवैतेतथागणाः॥महान्महात्मामहितोमहिमावान्महाबलः ॥४६॥ गणाः पञ्चतथैवैतेपितृणांपापनाशनाः ॥ सुखदोधनदश्चान्योधर्मदोऽन्यश्चभूतिदः ॥ ४७ ॥ पितृणांकथ्यतेचैतत्तथागणचतुष्टयम् ॥ एकत्रिंशत्पितृगणायैर्व्याप्तमखिलंजगत् ॥ तेमेऽनुतृप्तास्तुष्यंतुयच्छन्तुचसदाहितम् ॥ ४८ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरौच्यमन्वतरे रुच्युपाख्यानेपितृस्तवनंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ एवंतुस्तुवतस्तस्यतेजसोराशिरुच्छ्रितः ॥ प्रादुर्बभूवसहसागगनव्याप्तिकारकः ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वासुमहत्तेजःसमासाद्यस्थितंजगत् ॥ जानुभ्यामवनिंगत्वारुचिःस्तोत्रमिदंजगौ ॥ २ ॥ ॥ रुचिरुवाच ॥ अमूर्तानांचमूर्त्तानांपितृणांदीप्ततेजसाम् ॥ नमस्यामिसदातेषांध्यानिनांदिव्यचक्षुषाम् ॥ ३ ॥ इन्द्रादीनां चनेतारोदक्षमारीचयोस्तथा ॥ सप्तर्षीणांतथान्येषां तान्नमस्यामिकामदान् ॥ ४ ॥ मन्वादीनांमुनीन्द्राणांसूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ तान्नमस्याम्यहंसर्वान्पितरश्चार्णवेषुये ॥ ५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रुचिकृतपितृस्तवनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥ मार्कण्डेयजी बोले--जब रुचिने इस प्रकार स्तवन किया, तब सहसा उनके निकट उच्छ्रित (उच्च शिखायुक्त) और गगनव्यापक तेज प्रादुर्भूत हुआ॥ १॥ समस्त जगत्को आच्छादन करके अवस्थित उस तेजको देखकर रुचि जानुद्वारा पृथ्वी स्पर्शपूर्वक यह स्तोत्र कीर्त्तन करनेलगे ॥ २ ॥ रुचिने कहा—उन ध्यानरत, दिव्यचक्षु, दीप्ततेजा, अर्चित और मूर्त्तिहीन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ ॥ ३ ॥ दक्ष, मरीचि, सप्तर्षि गण तथा इन्द्रादि अन्यान्य सबके नेता, उन कामदाता पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ ४ ॥ मनु इत्यादि मुनींद्रगणोंके तथा सूर्य

एवं चन्द्रमाके नेता और कामदाता तथा समुद्र और जलमें स्थित उन समस्त पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ ५ ॥ जो नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथ्वीके नेता तथा कामदाता हैं, उन पितरोंको कृताञ्जलि हो अर्थात् हाथ जोडकर नमस्कार करताहूं ॥ ६ ॥ जो देवर्षियोंके उत्पन्न करनेवाले, सर्वलोकनमस्कृत अक्षयत्व अर्थात् अक्षय फलके दाता हैं, उन पितरोंको सदा हाथ जोडकर प्रणाम करताहूं ॥ ७ ॥ जो प्रजापतियोंमें कश्यप, एवं सोम, वरुण और योगेश्वररूपी है, सदा हाथ जोडकर मैं उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ ८ ॥ जो सप्तलोकके मध्य सप्तगणोंमें स्थित हैं उनको नमस्कार करताहूं और योगचक्षु स्वयम्भू ब्रह्माके स्वरूप उन पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ ९ ॥ जो सोमके आधार, योगमूर्तिधारी सोमरूपी और जगत्‌के पिता हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ॥ १० ॥ जिन अशेष पितरोंसे अग्नि सोम यह विश्व उत्पन्न है, उन अग्निरूपी और अन्यान्य पितरोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ११ ॥ जो तेजःस्थित होकर

नक्षत्राणांग्रहाणांचवाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ॥ द्यावापृथिव्योश्चतथानमस्यामिकृतांजलिः ॥६॥ देवर्षीणांग्रहाणांचसर्वलोकनमस्कृतान् ॥ अक्षय्यस्यसदादातॄन्नमस्येऽहंकृतांजलिः ॥ ७ ॥ प्रजापतेःकश्यपायसोमायवरुणायच ॥ योगेश्वरेभ्यश्चसदानमस्यामिकृतांजलिः ॥ ८ ॥ नमोगणेभ्यः सप्तभ्यस्तथालोकेपुसप्तसु ॥ स्वयंभुवेनमस्यामिब्रह्मणेयोगचक्षुषे ॥९॥ सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्तिधरांस्तथा ॥ नमस्यामितथासोमंपितरंजगतामहम् ॥ १० ॥ अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामिपितॄनहम् ॥ अग्नीषोममयंविश्वंयतएतदशेषतः ॥ ११ ॥ येतुतेजसियेचैतेसोमसूर्याग्निमूर्तयः ॥ जगत्स्वरूपिणश्चैवतथाब्रह्मस्वरूपिणः ॥ १२ ॥ तेभ्योऽखिलेभ्योयोगिभ्यःपितृभ्योयतमानसः ॥ नमोनमोनमस्तेमेप्रसीदंतुस्वधाभुजः ॥ १३ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ एवंस्तुतास्ततस्तेनतेजसामुनिसत्तम ॥ निश्चक्रमुस्तेपि ततोभासयन्तोदिशोदश ॥ १४ ॥ निवेदितंचयत्तेनपुष्पगन्धानुलेपनम् ॥ तद्भूषितानथसतान्ददृशेपुरतःस्थितान् ॥ १५ ॥ प्रणिपत्यपुनर्भक्त्यापुनरेवकृतांजलिः ॥ नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यमित्याहपृथगादृतः ॥ १६ ॥ ततःप्रसन्नाःपितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् ॥ वरंवृणीष्वेतिसतानुवाचानतकंधरः ॥ १७ ॥

सोम सूर्याग्निमूर्ति अवलम्बन करनेसे जगत्स्वरूपी और ब्रह्मस्वरूपी हैं उन संपूर्ण योगी पितरोंको मैं संयतमन होकर वारम्वार नमस्कार करताहूं, वह स्वधाभोजी पितृगण मेरेप्रति प्रसन्न हों ॥ १२ ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुनिसत्तम ! रुचिके इस प्रकार स्तुति करनेपर पितृगण तेजद्वारा दशों दिशाओंको प्रकाशमान करतेहुए निकले ॥ १४ ॥ अनन्तर उन्होंने जो पुष्पगन्धानुलेपन कव्य निवेदन किया था. विप्रवर रुचिने उनको उसके द्वारा विभूषित होकर सन्मुख आते देखा ॥ १५॥ और फिरभी हाथ जोड कर भक्तिसहित प्रणामपूर्वक पृथक् पृथक् प्रत्येकसे, "तुमको नमस्कार तुमको नमस्कार" इसप्रकार आदरसे कहनेलगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर पितरोंने प्रसन्न होकर उन मुनिश्रेष्ठसे कहा—वर मांगो। तब विप्रवर रुचि गर्दन झुकाकर उनसे बोले ॥ १७ ॥

रुचिने कहा—इससमय ब्रह्माजीने मुझको सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है । इसकारण अब मैं धन्या दिव्य (सुंदरी) और संतान उत्पन्न करनेमें समर्थ पत्नीके प्राप्त करनेकी अभिलाषा करताहूं ॥ १८ ॥ पितर बोले—तुमको अभी इस स्थानमें मनोहर पत्नी प्राप्तहोगी, उसके गर्भसे तुम्हारे श्रेष्ठ मनु पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १९ ॥ हे रुचे ! मन्वन्तराधिप बुद्धिमान् तुम्हारा पुत्र तुम्हारे नामानुसारही विख्यात होगा । अर्थात् तीनों जगत्में रौच्यनामसे प्रसिद्ध होगा ॥ २० ॥ उस रौच्यकेभी महाबल पराक्रमी महात्मा पृथ्वीपालक बहुत पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे ॥ २१ ॥ तुमभी प्रजापति हो चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्नकरके जब धर्मज्ञ और क्षीणाधिकार होंगे, तब तुमको सिद्धि प्राप्त होगी ॥ २२ ॥ जो नर इस स्तोत्रके द्वारा भक्तिसहित हमारी स्तुति करेंगे,हम उनके प्रति संतुष्ट होकर

॥ रुचिरुवाच ॥ ॥ साम्प्रतंसर्गकर्तृत्वमादिष्टंब्रह्मणामम ॥ सोऽहंपुत्रीमभीप्सामिधन्यांदिव्यांप्रजावतीम् ॥ १८ ॥ ॥ पितरऊचः ॥ ॥ अत्रैवसद्यःपत्नीतेभवत्वतिमनोरमा ॥ तस्यांचपुत्रोभविताभवतोमनुरुत्तमः ॥ १९ ॥ मन्वन्तराधिपोधीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः ॥ रुचेरौच्यइतिख्यातिंयोयास्यतिजगत्त्रये ॥ २० ॥ तस्यापिबहवःपुत्रामहाबलपराक्रमाः ॥ भविष्यन्तिमहात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ॥ २१ ॥ त्वंचप्रजापतिर्भूत्वाप्रजाःसृष्ट्वाचतुर्विधाः ॥ क्षीणाधिकारोधर्मज्ञततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ २२ ॥ स्तोत्रेणानेनचनरोयोऽस्मांस्तोष्यतिभक्तितः ॥ तस्यतुष्टावयंभोगानात्मज्ञानंतथोत्तमम् ॥ २३ ॥ शरीरारोग्यमर्थंचपुत्रपौत्रादिकन्तथा ॥ प्रदास्यामोनसंदेहोयच्चान्यदभिवांछितम् ॥ २४ ॥ तस्मात्पुण्यफलंलोकेवांछद्भिः सततंनरैः ॥ पितॄणांचाक्षयांतृप्तिस्तव्याःस्तोत्रेणमानवैः ॥ २५ ॥ वांछद्भिः सततंस्तव्याःस्तोत्रेणानेनवैयतः ॥ श्राद्धेचयइमंभक्त्याअस्मत्प्रीतिकरंस्तवम् ॥ २६ ॥ पठिष्यंतिद्विजाग्र्याणांभुंजतांपुरतःस्थितः ॥ स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्यासन्निधानेपरेकृते ॥ २७ ॥ अस्माकमक्षयंश्राद्धंतद्भविष्यत्यसंशयम् ॥ यद्यप्यश्रोत्रियंश्राद्धंयद्यप्युपहतंभवेत् ॥ २८ ॥ अन्यायोपात्तवित्तेनयदिवाकृतमन्यथा ॥ अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथाकृतम् ॥ २९ ॥

भोग और उत्तम आत्मज्ञान प्रदान करेंगे ॥ २३ ॥ शरीरकी आरोग्यता धन और पुत्रपौत्रादिकके चाहनेवाले तथा और भी वांछित अभिलाषके चाहनेवाले इस स्तोत्रके द्वारा सदा हमारी स्तुति करै, तो हम निःसंदेह उनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करेंगे ॥ २४ ॥ इसकारण लोकमें पुण्यफलकी इच्छा करनेवालोंको इस स्तोत्रसे पितरोंकी अक्षयतृप्ति करनी चाहिये ॥ २५ ॥ हमारी प्रीतिकी इच्छा वालोंको यह निरन्तर पढनाचाहिये श्राद्धकालमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणोंके सन्मुख स्थित होकर जो हमारे प्रीतिकर ॥ २६ ॥ इस स्तोत्रको भक्तिसहित पढेगा और स्तोत्रश्रवणसे उत्पन्नहुई प्रीतिद्वारा समीपमें ॥ २७ ॥ स्थितिको इष्ट समझेगा, उसके द्वारा निःसन्देह हमारा अक्षयश्राद्ध सम्पन्न होगा । यद्यपि श्राद्ध श्रोत्रियहीन वा दूषित हो ॥ २८ ॥ अथवा यदि अन्यान्यसे उत्पन्न किये धनसे संपादित वा अन्यथा

किया जाय, या अकालमें अदेशमें अविहितरूपसे श्रद्धासेहीन दूषित उपहारकेद्वारा किया जाय अथवा श्रद्धाहीन दंभी पुरुषोंकेद्वारा किया जाय ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ किन्तु तो भी इस स्तोत्रपाठके कारण वह श्राद्ध हमारी तृप्ति करनेवाला होगा जिस श्राद्धमें हमारा सुखकर यह स्तोत्र पढा जाता है ॥ ३१ ॥ उस श्राद्धसे हमको बारह वर्षतक तृप्ति प्राप्त होती है, यह स्तोत्र हेमन्तकालमें हमको द्वादश वार्षिकी तृप्तिप्रदान करता है ॥ ३२ ॥ यह शुभ स्तोत्र शीतकालमें हमको चौवीस वर्ष पर्यन्त तृप्तिप्रदान करता है। वसन्तके समय श्राद्धकालमें इस स्तोत्रका पाठ करनेसे सोलह वर्षतक तृप्तिप्रदान करता है ॥ ३३ ॥ और ग्रीष्मकालमें भी इस स्तोत्रका पाठ करनेसे सोलह वर्षपर्यन्त तृप्तिकारक होता है किसी कारणसे श्राद्धके विकृत होनेपर इस स्तोत्रपाठद्वारा वह सम्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ हे रुचे !

अकालेऽप्यथवाऽदेशेविधिहीनमथापिवा ॥ अश्रद्धयावापुरुषैर्दम्भमाश्रित्यवाकृतम् ॥ ३० ॥ अस्माकंतृप्तयेश्राद्धंतथाप्येतदुदीरणात् ॥ यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धेस्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ॥ ३१ ॥ अस्माकंजायतेतृप्तिस्तत्रद्वादशवार्षिकी ॥ हेमंतेद्वादशाब्दानितृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥ ३२ ॥ शिशिरेद्विगुणाब्दां श्चतृप्तिंस्तोत्रमिदंशुभम् ॥ वसंतेषोडशसमास्तृप्तयेश्राद्धकर्मणि ॥ ३३ ॥ ग्रीष्मेचषोडशैवैतत्पठितंतृप्तिकारकम् ॥ विकलेऽपिकृतेश्राद्धेस्तोत्रेणानेनसा धिते ॥ ३४ ॥ वर्षासुतृप्तिरस्माकमक्षयाजायतेरुचे ॥ शरत्कालेऽपिपठितंश्राद्धकालेप्रयच्छति ॥ ३५ ॥ अस्माकमेतत्पुरुषस्तृप्तिंपंचदशाब्दिकीम् ॥ यस्मिन्गृहेचलिखितमेतत्तिष्ठतिनित्यदा ॥ ३६ ॥ सन्निधानंकृतेश्राद्धेतत्रास्माकंभविष्यति ॥ तस्मादेतत्त्वयाश्राद्धेविप्राणांभुंजतपुरः ॥ ३७ ॥ श्रवणी यंमहाभागअस्माकंपुष्टिहेतुकम् ॥ इत्युक्त्वापितरस्तस्यस्वर्गतामुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरौच्येमन्वन्तरेपितृवरांप्रदानंनामचतुर्न वतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ ॥ छ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौमनोरमा ॥ प्रम्लोचानामतन्वङ्गीतत्समीपेवराप्सराः ॥ १ ॥

वर्षाकालमें श्राद्धकेसमय इसस्तोत्रका पाठकरनेसे हमारी अक्षय तृप्ति होती है। पुरुष यदि शरत्कालमें इस स्तोत्रका पाठकरके श्राद्धीय द्रव्य प्रदान करे ॥ ३५ ॥ तो पंचदश (१५) वर्ष पर्यन्त हमारी तृप्ति होती है, जिस घरमें यह स्तोत्र लिखाहुआ सदा रक्खा रहता है ॥ ३६ ॥ उस घरमें श्राद्ध करनेसे हमारा सन्नि धान होता है, अर्थात् श्राद्धके समय हम उस घरमें उपस्थित होते हैं; इस कारण तुम श्राद्धमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणोंके सन्मुख खडे होकर ॥ ३७ ॥ हे महाभाग ! हमारी पुष्टिका हेतु यह स्तोत्र सुनाओ । हे मुनिसत्तम ! पितर गण रुचिसे इस प्रकार कहकर स्वर्गमें चलेगये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां पितृवरप्रदानं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसके उपरान्त उस नदीमेंसे प्रम्लोचानामक क्षीणाङ्गी

मनोहर उत्तम अप्सरा रमणी निकलकर उन रुचिके समीप उपस्थित हुई ॥ १ ॥ फिर श्रेष्ठ अप्सरा प्रम्लोचा नामक सुन्दरीने विनयसे नम्र हो महात्मा रुचिके निकट मधुर वचनोंकेद्वारा कहा ॥ २ ॥ हे तापसश्रेष्ठ ! वरुणपुत्र महात्मा पुष्करके द्वारा उत्पन्नहुई अत्यन्तरूपवती मेरी एक कन्या है ॥ ३ ॥ मै उस वरवर्णिनीको देतीहूं, आप उसको भार्याके लिये ग्रहण कीजिये । उसके गर्भसे तुम्हारा पुत्र मनु जन्म ग्रहण करेगा ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—जब रुचिने "यही हो" इस प्रकार कहा, तब उस प्रम्लोचाने जलसे सुन्दर कान्तियुक्त मालिनीनामक कन्याको निकाला ॥ ५ ॥ मुनिवर रुचिने उस नदीके पुलिनमें महामुनियोंको बुलाकर

साचोवाचमहात्मानंरुचिंसुमधुराक्षरम् ॥ प्रश्रयावनतासुभ्रूःप्रम्लोचावैवराप्सराः ॥ २ ॥ अतीवरूपिणीकन्यामत्सुतातपतांवर ॥ जातावरुणपुत्रेणपुष्करेणमहात्मना ॥ ३ ॥ तांगृहाणमयादत्तांभार्य्यार्थेवरवर्णिनीम् ॥ मनुर्महामतिस्तस्यांसमुत्पत्स्यतितेसुतः ॥ ४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तथेतितेनसाऽप्युक्तातस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ॥ उज्जहारततःकन्यांमालिनींनामनामतः ॥५ ॥ नद्याश्चपुलिनेतस्मिन्सरुचिर्मुनिसत्तमः ॥ जग्राहपाणिंविधिवत्समानाय्यमहामुनीन् ॥ ६ ॥ तस्यांतस्यसुतोजज्ञेमहावीर्य्योमहामतिः ॥ रौच्योऽभवत्पितुर्नाम्नाख्यातोऽत्रवसुधातले ॥ ७ ॥ तस्यमन्वन्तरेदेवास्तथासप्तर्षयश्चये ॥ तनयाश्चनृपाश्चैवतेसम्यक्कथितास्तव ॥ ८ ॥ धर्मवृद्धिस्तथारोग्यंधनधान्यसुतोद्भवः ॥ नृणांभवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वंतरेश्रुते ॥ ९ ॥ पितृस्तवंतथाश्रुत्वापितॄणांचतथागणान् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतितत्प्रसादान्महामुने ॥१०॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमालिनीपरिणयोनामपंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ इतिरौच्यमन्वन्तरंसमाप्तम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःपरंतुभौत्यस्यसमुत्पत्तिंनिशामय ॥ देवानृषींस्तथापुत्रांस्तथैववसुधाधिपान् ॥ १ ॥

विधिवत् पाणिग्रहण किया ॥ ६ ॥ उसके गर्भसे महात्मा रुचिके एक महावीर्य महामति पुत्र उत्पन्नहुआ । वह पुत्र पितृनामानुसार रौच्यनामसे वसुधातलमें विख्यात हुआ ॥ ७ ॥ उनके मन्वन्तरमें देवता सप्तर्षि और उनके समस्त नृपति पुत्रोंका विषय तुमसे सम्यक् प्रकार कहागया है ॥ ८ ॥ इस मन्वन्तरकी कथा सुननेसे मनुष्यकी धर्मवृद्धि, आरोग्य, धन, धान्य और पुत्रोत्पत्ति होती है॥९॥ हे महामुने ! पितरोंकी स्तुति और पितरोंके गण श्रवण करनेपर उनके प्रसादसे संपूर्ण कामना सिद्ध होती हैं॥१०॥इति श्रीमा०पुराणे भाषाटीकायां मालिनीपरिणयोनाम पंचनवतितमोऽध्यायः॥९५॥मार्कण्डेयजी बोले—इसके उपरान्त भौत्य मनुकी उत्पत्ति

तथा उस मन्वन्तरके देवता, ऋषि और उनके वसुधाधिपति पुत्रोंका विषय सुनो॥ १॥ मुनिश्रेष्ठअंगिराके भूतिनामक एक शिष्य थे, वह अत्यन्त कोपनस्वभाव और अल्प अर्थ अर्थात् थोडे अपराधपरही तीक्ष्ण शाप देते तथा निरपराध पुरुषके प्रतिभी वह कटुवचन प्रयोग करते ॥ २ ॥ उन कोपनस्वभाव अमिततेजा ऋषिके भयसे उनके आश्रममें वायु अत्यन्त निष्ठुरभावसे नहीं वहता सूर्य अत्यन्त तेज ताप प्रदान नहीं करते, और पर्जन्यदेव (इन्द्र) भी अधिक जलवर्षाकर कीचड नहीं करते ॥ ३ ॥ और परिपूर्ण चन्द्रमाभी अपनी किरणोंसे अत्यन्त शीतलता नहीं करते और उन कोपनस्वभाव मुनिके भयसे शीतलता विशेष नहीं करतेथे ॥ ४ ॥ उनकी आज्ञानुसार ऋतुगण पर्याय त्यागकर उनके आश्रमस्थ वृक्षोंमें सर्वकालके फल, पुष्प उत्पन्न करती ॥ ५ ॥ आश्रमसमीपगामी जल महात्मा भूतिके भयसे उनकी इच्छानुसार मूहूर्तमात्रके बीच उनके कमण्डलुमें आजाता ॥ ६ ॥ हे विप्र! वह अत्यन्त कोपनस्वभाव मुनि क्लेश नहीं सहसकतेथे, किन्तु तो भी उन

बभूवाङ्गिरसः शिष्योभूतिर्नाम्नातिकोपनः ॥ चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थेमुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥ २ ॥ तस्याश्रमेमातरिश्वानववावतिनिष्ठुरम् ॥ नातितापंर विश्वकेपर्जन्योनातिकर्दमम् ॥ ३ ॥ नातिशीतंचशीतांशुःपरिपूर्णोऽपिरश्मिभिः ॥ चकारभीत्यावैतस्यकोपनस्यातितेजसः ॥ ४ ॥ ऋतवश्चक्रमंत्यक्त्वा वृक्षेष्वाश्रमजन्मसु ॥ तस्यपुष्पफलंचक्रुराज्ञयासार्वकालिकम् ॥५॥ ऊहुरापश्चछन्देनतस्याश्रमसमीपगाः ॥ कमण्डलुगताश्चैवतस्यभीतामहात्मनः॥६॥ नातिक्लेशसहोविप्रःसोऽभवत्कोपनोभृशम् ॥ अपुत्रश्चमहाभागःसतपस्यकरोन्मनः ॥ ७ ॥ पुत्रकामोयताहारःशीतवातानलाहतः ॥ तपस्यामिविचिन्त्येति तपस्येवमनोदधे ॥८॥ तस्येन्दुर्नातिशीतायनातितापायभास्करः ॥ अभवन्मातरिश्वाचववौनातिमहामुने ॥९॥ आपीड्यमानोद्वन्द्वैश्चसभूतिर्मुनिसत्तमः ॥ अनवाप्याभिलाषंतंतपसःसन्यवर्त्तत ॥ १० ॥ तस्यभ्रातासुवर्चाऽभूद्यज्ञेतेनाभिमन्त्रितः ॥ यियासुःशान्तिनामानंशिष्यमाहमहामतिम् ॥ ११ ॥

महाभागने अपुत्र होनेके कारण मनमें तपस्या करनेकी इच्छाकरी ॥ ७ ॥ उन पुत्रकी कामना करनेवाले ऋषिने "संयताहार और शीत वायु अग्निका कष्ट सह कर तपस्याकरूंगा" इस प्रकार चिन्ता करके तपस्यामें ही मन लगाया ॥८॥ हे महामुने! तपस्याकालके समयभी उनके पक्षमें चन्द्र अत्यन्त शीतका कारण और सूर्य अत्यन्त तापका कारण न हुए अर्थात् चन्द्रमा अधिक शीतलता और सूर्य अधिक उष्णता नहीं करतेथे तथा वायुभी अत्यन्त प्रबलभावसे नहीं वह ताथा ॥ ९ ॥ वह मुनिसत्तम भूति जब द्वन्द्वभाव शीत उष्णसे पीडित होकर भी अपनी अभिलाषाको प्राप्त नहीं हुए, तब तप करना छोड दिया ॥ १० ॥ सुवर्चा नामक उनके एक भाई थे, उन्हों ने इनको यज्ञमें निमन्त्रण दिया। तब यह वहां जानेकी इच्छाकर महामति, शान्तिनाम अपने शिष्यसे बोले ॥ ११ ॥

हे मुनिसत्तम ! यह अक्षरकी समान शान्त गुरुके कार्यमें विनीत सदा कामको उद्यत और शुभाचार तथा परमोदार थे ॥ १२ ॥ भूतिने कहा—हे शान्ते ! भ्राता सुवर्चाके बुलानेसे मैं उनके यज्ञमें जाताहूं, अब तुमको यहां रहकर जो करना चाहिये, सो सुनो ॥ १३ ॥ तुम मेरे आश्रममें नित्य अग्नि जगाये रखना और जिससे अग्नि न बुझे, यत्नपूर्वक वही करना ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, गुरुजीकी इस प्रकार आज्ञा पाय शिष्य शान्तिने "ऐसाही होगा" यह कहा । तब भूति कनिष्ठ भ्राताके बुलानेपर भ्राताके उस यज्ञमें गये ॥ १५ ॥ वह शान्ति जब महात्मा गुरुकी अग्निपोष के लिये वनसे समिध, पुष्प, फलादि लाने लगे ॥ १६ ॥ और गुरुकी भक्तिके वशीभूत होकर अन्यान्य कार्य संपादन करनेलगे, उसी समयमें उन भूतिकी यत्न

प्रशान्तमक्षप्रातिमंविनीतंगुरुकर्मणि ॥ सदोद्युक्तंशुभाचारमुदारंमुनिसत्तमम् ॥१२॥ ॥भूतिरुवाच॥ ॥अहंयज्ञंगमिष्यामिभ्रातुःशान्तेसुवर्चसः ॥ तेनाहूतस्त्व याचेहयत्कर्त्तव्यंशृणुष्वतत् ॥ १३ ॥ अतिजागरणंवह्नेस्त्वयाकार्य्यममाश्रमे ॥ तथातथाप्रयत्नेनयथाग्निर्नशमंव्रजेत् ॥ १४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्याज्ञाप्यतथेत्युक्तोगुरुःशिष्येणशान्तिना ॥ जगामयज्ञंतंभ्रातुराहूतःसयवीयसः ॥१५॥ सचशान्तिर्वनाद्यावत्समित्पुष्पफलादिकम् ॥ उपानयतिभूत्यर्थंगु रोस्तस्यमहात्मनः ॥१६॥ अन्यच्चकुरुतेकर्मगुरुभक्तिवशानुगः ॥ प्रशान्तस्तावदनलोयोऽसौभूतिपरिग्रहः ॥१७॥ तंदृष्ट्वासौऽनलंशान्तंशान्तिरत्यन्तदुःखि तः ॥ भीतश्चभूतेर्बहुधाचिन्तामापमहामतिः ॥१८॥ किंकरोमिकथंवात्रभविताऽऽगमनंगुरोः ॥ मयाद्यप्रतिपत्तव्यंकिंकृतेसुकृतंभवेत् ॥ १९ ॥ प्रशान्ताग्निमि मंधिष्ण्यंयदिपश्यतिमेगुरुः ॥ ततोमांविषमेह्यद्यव्यसनेसन्नियोक्ष्यति ॥ २० ॥ यद्यन्यमग्निमत्राहमग्निस्थानेकरोमितत् ॥ सर्वप्रत्यक्षदृग्भस्मसोऽवश्यंमांकरि ष्यति ॥२१॥ सोऽहंपापोगुरोस्तस्यनिमित्तंकोपशापयोः ॥ तथात्मानंनशोचामियथापापंकृतंगुरोः ॥२२॥ दृष्ट्वाप्रशान्तमनलंनूनंशप्स्यतिमांगुरुः ॥ यथा वापावकःक्रुद्धस्तथावीर्य्योहिसद्द्विजः ॥ २३ ॥

पूर्वक रक्खीहुई अग्नि शान्तहोगई ॥ १७॥ वह महामति शान्ति उस अनलको शान्त हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और भूतिके भयसे भीत होकर अनेक भाँतिकी चिन्ता करने लगे ॥ १८ ॥ क्या करूं ? इस स्थानमें किसप्रकारसे गुरुका आगमन होगा अब मुझको क्या करना उचित है क्या करनेसे भला हो ॥ ॥१९ ॥ यदि मेरे गुरु इस अग्निको गृहमें शान्त अर्थात् बुझाहुआ देखेंगे, तो उसीसमय निःसन्देह मुझको विषम दुःखमें नियोजित करेंगे ॥ २० ॥ यदि मैं इस अग्निके स्थानमें अन्यअग्नि स्थापन करूं, तो वह सर्व प्रत्यक्षदर्शी मुनि मुझको अवश्यही भस्म करदेंगे ॥ २१ ॥ यह पापात्मा मैं उन गुरुके कोप और शापका हेतुभूत वैसा शोक नहीं करता जिसप्रकार गुरुके निकट किये पापका शोकहै ॥ २२ ॥ गुरु अग्निको शान्त देखकर निश्चयही मुझको शाप देंगे अथवा पाव

कही क्रोधित होंगे अर्थात् उनके भयसे अग्निभी मुझको शाप देसकते हैं क्योंकि मेरे गुरुका वीर्यही ऐसा है॥ २३ ॥ देवताभी जिनके प्रभावसे भीतहोकर शासनाधीन हुएहैं, वह मुझको अपराधी देखकर किस युक्तिद्वारा अवमानित नहीं करेंगे? ॥ २४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन गुरुके भयसे सदा भीत वह बुद्धिमान् शान्ति इस प्रकार अनेक भाँतिकी चिन्ता करके जातवेदाः अग्निकी शरणागत हुए ॥ २५ ॥ तदनन्तर वह शान्ति संयत मनसे एकाग्रचित्त हो पृथ्वीमें घुटने टेक और हाथ जोडकर सप्तशिखायुक्त अग्निका स्तोत्रपाठ करने लगे ॥ २६ ॥ शान्तिने कहा—जो संपूर्ण प्राणियोंके साधन हैं, जो महात्मा हैं, जो एक दो पंच रूपी हैं, और जो राजसूययज्ञमें षण्मूर्तिधारी हैं, उनको नमस्कार है ॥ २७ ॥ जो समस्त देवताओंको वृत्ति प्रदान करते हैं, जो सुवर्चाः हैं और जो सब जगत्की स्थिति प्रदान

यस्यप्रभावाद्बिभ्यन्तोदेवास्तिष्ठन्तिशासने ॥ कृतागसंसमांयुक्त्याकयानोधर्षयिष्यति ॥ २४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ बहुधैवंविचिन्त्यासौ भीतस्तस्यसदागुरोः ॥ ययौमतिमतांश्रेष्ठःशरणंजातवेदसम् ॥ २५ ॥ सचकारतदास्तोत्रंसप्तर्चेर्यतमानसः ॥ सचैकचित्तोमेदिन्यांन्यस्तजानुः कृताञ्जलिः ॥ २६ ॥ शान्तिरुवाच ॥ ॥ ओंनमःसर्वभूतानांसाधनायमहात्मने ॥ एकद्विपञ्चधिष्ण्यायराजसूयेषडात्मने ॥ २७ ॥ नमःसमस्तदेवानां वृत्तिदायसुवर्चसे ॥ शुक्ररूपायजगतामशेषाणांस्थितिप्रदः ॥ २८ ॥ त्वंमुखंसर्वदेवानांत्वयात्तंभगवन्हविः ॥ प्रीणयस्यखिलान्देवांस्त्वत्प्राणाःसर्वदेवताः ॥२९॥ हुतंहविस्त्वय्यनलमेधत्वमुपगच्छति ॥ ततश्चजलरूपेणपरिणाममुपैतियत् ॥३०॥ तेनाखिलौषधीजन्मभवत्यनिलसारथे ॥ औषधीभिरशेषाभिःसुखंजीवन्तिजन्तवः ॥३१॥ वितन्वतेनरायज्ञांस्त्वत्सृष्टास्वोषधीषुच ॥ यज्ञैर्देवास्तथादैत्यास्तद्वद्रक्षांसिपावक ॥३२॥ आप्याय्यन्ते चतेयज्ञास्त्वदाधाराहुताशन ॥ अतःसर्वस्ययोनिस्त्वंवह्नेसर्वमयस्तथा ॥ ३३ ॥ देवतादानवायक्षादैत्यागन्धर्वराक्षसाः ॥ मानुषाःपशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः ॥ ३४ ॥

करते हैं, उन शुक्ररूपी तुमको नमस्कार है ॥ २८ ॥ तुम्ही सब देवताओंके मुखस्वरूपहो, भगवान् तुम्हारे द्वाराही घृतपानकरके सब देवताओंको संतुष्ट करते हैं, तुम्हीं सब देवताओंके प्राणस्वरूप हो ॥ २९ ॥ तुममेंही हविः हुत होकर अमल मेध्यत्वको प्राप्त होती है और पीछे वह जलरूपमें परिणत होती है ॥ ३० ॥ हे अनिलसारथे ! उससेही समस्त औषधी उत्पन्न होती हैं और उन सब औषधियोंसेही जीवगण सुखपूर्वक जीवित रहते हैं ॥ ३१ ॥ हे पावक ! मनुष्यगण तुम्हारी उत्पन्न की हुई औषधियोंके द्वारा जो यज्ञ करते हैं और उन यज्ञोंके द्वारा ही देवता, दैत्य और राक्षसगण ॥ ३२ ॥ आप्यायित अर्थात् तृप्त होते हैं। हे हुताशन ! तुम्ही उन सब यज्ञोंके आधारस्वरूप हो, अतएव हे वह्ने ! तुम्हीं सबके उत्पन्नकर्त्ता और सर्वमय हो ॥ ३३ ॥ हे पावक ! देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गंधर्व,

राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी और सरीसृप गण ॥ ३४ ॥ तुम्हारे द्वाराही तृप्त होते हैं, संवर्द्धित होते हैं और तुमसेही उत्पन्न होकर अन्त समय तुममेंही विलीन होतेहैं ॥ ३५ ॥ हे देव ! तुम्ही जल उत्पन्न करतेहो और फिर तुम्ही उसको पानकरते हो.तथा तुम्हारे द्वाराही वह पाचित होकर प्राणियोंका पुष्टिकारक होता है ॥ ३६ ॥ हे भगवान् अग्ने ! तुम्ही देवताओंमें तेजरूपसे सिद्धोंमें कान्तिरूपसे नागोंमें विषरूपसे और पक्षियोंमें वायुरूपसे वर्त्तमान हो ॥ ३७ ॥ हे देव ! तुम्हीं मनुष्योंमें क्रोध रूपसे, पक्षी और मृगादिमें मोहरूपसे, वृक्षोंमें स्थितिरूपसे, पृथ्वीमें काठिन्य अर्थात् कठिनता रूपसे ॥ ३८ ॥ और जलमें द्रवत्वरूपसे स्थिति करते हो तुम्हींने वायुमें वेगरूपसे और आकाशमें व्यापित्वरूपसे आत्माको अवस्थित किया है ॥ ३९ ॥ हे अग्ने ! तुम्हीं पालन करते करते सब जीवोंके अन्तरमें विचरण

आप्याय्यन्तेत्वयासर्वेसंवर्ध्यन्तेचपावक॥त्वत्तएवोद्भवंयान्तित्वय्यन्तेचतथालयम्॥३५॥अपःसृजसिदेवत्वंत्वमत्सिपुनरेवताः॥पच्यमानास्त्वयाताश्चप्राणिनां पुष्टिकारणम् ॥ ३६ ॥ देवेषुतेजोरूपेणकान्त्यासिद्धेष्ववस्थितः ॥ विषरूपेण नागेषुवायुरूपः पतत्रिषु ॥ ३७ ॥ मनुजेषुभवान्क्रोधोमोहःपक्षिमृगादिषु ॥ अवष्टम्भोऽसितरुषुकाठिन्यंत्वंमहींप्रति ॥ ३८ ॥ जलेद्रवस्त्वंभगवाञ्जवरूपीतथाऽनिले ॥ व्यापित्वेनतथैवाग्नेनभसित्वंव्यवस्थितः ॥ ३९ ॥ त्वमग्नेसर्व भूतानामन्तश्चरसिपालयन् ॥ त्वामेकमाहुःकवयस्त्वामाहुस्त्रिविधंपुनः॥४०॥त्वामष्टधाकल्पयित्वायज्ञवाहमकल्पयन् ॥ त्वयासृष्टमिदंविश्वंवदन्तिपरमर्षयः ॥ ४१ ॥ त्वामृतेहिजगत्सर्वंसद्योनश्येद्धुताशन ॥ तुभ्यंकृत्वाद्विजःपूजांस्वकर्मविहितांगतिम् ॥ ४२ ॥ प्रयातिहव्यकव्याद्यैःस्वधास्वाहाभ्युदीरणात् ॥ परिणामात्मवीर्य्याणिप्राणिनाममरार्चित ॥ ४३ ॥ दहन्तिसर्वभूतानिततोनिष्क्रम्यहेतयः ॥ जातवेदस्त्वयैवेदंविश्वंसृष्टंमहाद्युते ॥ ४४ ॥ तवैववैदिकंकर्मसर्व भूतात्मकंजगत् ॥नमस्तेऽनलपिङ्गाक्षनमस्तेऽस्तुहुताशन ॥ ४५ ॥

करते हो, कविगण तुमको एक कहकर निर्देश करते हैं, किन्तु फिर वही तुमको त्रिविध कहते हैं ॥ ४० ॥ कविगण तुमको अष्टधा कल्पित करके आद्य यज्ञको कल्पना करते हैं, तुम्हारे द्वाराही जगत् उत्पन्न हुआ है, यह परमर्षिगण कहते हैं ॥ ४१ ॥ हे हुताशन ! तुम्हारे नष्ट होनेपर संपूर्ण जगत् तत्काल विनाशको प्राप्त होता है ॥ ब्राह्मणगण तुम्हारी हव्य कव्यादिके द्वारा पूजा करके स्वधा स्वाहा उच्चारणके कारण स्वकर्मविहित गतिको प्राप्त होते हैं । हे अमरार्चित अर्थात् देवताओंसे पूजित ! प्राणियोंकी परिणामात्मा वीर्यस्वरूप ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ समस्त अग्निशिखातुमसेही निक लकर भूतगणोंको दग्ध करती है । हे महाद्युते जातवेदः ! यह विश्व तुम्हारीही सृष्टि है ॥ ४४ ॥ हे अनल ! वैदिक कर्म और सर्वभूतात्मक जगत् तुम्हारेही

आधीन है। हे पिंगाक्ष अनल ! तुमको नमस्कार करताहूं, हे हुताशन ! तुमको प्रणाम करताहूं ॥ ४५ ॥ हे आद्य ! हे पावक ! तुमको प्रणाम करताहूं तुम्हीं भुक्त (भोजनकिये) और पीतद्रव्य (पियेहुए) को पचानेके कारण विश्वपावन हो। हे विश्वपावन ! तुम सर्व भूतके पवित्र करनेवाले हो ॥ ४६ ॥ तुम्हीं सस्यके पाककर्त्ता अर्थात् पकानेवाले और जगत्को पुष्टिकारक हो तुम्हीं मेघ तुम्हीं वायु, तुम्हीं सस्योत्पादनके हेतु बीजस्वरूप ॥ ४७ ॥ और तुम्हीं सब भूतों का पोषण करनेके लिये भूत भविष्यत् तथा वर्त्तमानरूपी हो। तुम्हीं समस्त भूतों में ज्योतिस्वरूप और आदित्य सूर्य हो ॥ ४८ ॥ तुम्हीं दिन, तुम्हीं रात्रि, और तुम्हीं दोनों संध्या हो। हे वह्ने ! तुम्हीं हिरण्यरेता और हिरण्य (सुवर्ण) को उत्पन्न करनेवाले हो॥ ४९ ॥ तुम्हीं हिरण्यगर्भ और हिरण्यकी समान कान्तियुक्त हो। तुम्हीं

पावकाद्यनमस्तेऽस्तुनमस्तेहव्यवाहन ॥ त्वमेवसर्वभूतानांपावनाद्विश्वपावनः ॥ त्वमेवभुक्तपीतानांपाचनाद्विश्वपाचकः ॥ ४६ ॥ सस्यानांपाककर्त्तात्वंपोष्टात्वंजगतस्तथा ॥ त्वमेवमेघस्त्वंवायुस्त्वंबीजंसस्यहेतुकम् ॥ ४७ ॥ पोषायसर्वभूतानांभूतभव्यभवोह्यसि ॥ त्वंज्योतिःसर्वभूतेषुत्वमादित्योविभावसुः ॥ ॥ ४८ ॥ त्वमहस्त्वंतथारात्रिरुभेसन्ध्येतथाभवान् ॥ हिरण्यरेतास्त्वंवह्नेहिरण्योद्भवकारणम् ॥ ४९ ॥ हिरण्यगर्भश्चभवान्हिरण्यसदृशप्रभः ॥ त्वंमुहूर्त्तक्षणश्चत्वंत्वंत्रुटिस्त्वंतथालवः ॥ ५० ॥ कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासिजगत्प्रभो ॥ त्वमेतदखिलंकालः परिणामात्मकोभवान् ॥ ५१ ॥ याजिह्वाभवतः कालीकालनिष्ठाकरीप्रभो ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५२ ॥ करालीनामयाजिह्वामहाप्रलयकारणम् ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५३ ॥ मनोजवाचयाजिह्वालघिमागुणलक्षणा ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५४ ॥ करोतिकामंभूतेभ्योयातेजिह्वासुलोहिता ॥ तयानः पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५५ ॥ सधूम्रवर्णायाजिह्वाप्राणिनांरोगदायिका ॥ तयानः पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५६ ॥

मुहूर्त्त, तुम्हीं क्षण, तुम्हीं त्रुटि और तुम्हीं लव हो॥ ५० ॥ हे जगत्प्रभो ! तुम्हीं कला काष्ठा निमेषादि रूपमें परिणामात्मक अनन्तकाल हो ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! आपकी जो कालनिष्ठाकरी काली जीभ है, उसके द्वारा हे देव ! पाप भय और ऐहिकमहाभयसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५२ ॥ महाप्रलयके कारण कराली नामक जो आपकी जीभ है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५३ ॥ लघिमागुणयुक्त मनोजवा नामक जो आपकी जीभ है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५४ ॥ जो तुम्हारी सुलोहिता नामक जीभ प्राणियोंकी कामना पूर्ण करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५५ ॥ सधूम्रवर्ण नामक जो आपकी जीभ प्राणियोंके रोग दग्ध करती है, उसके द्वारा

ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५६॥ आपकी स्फुलिङ्गिनी नामक जिस जीभसे जो पुद्गल अर्थात् आत्मा और देह उत्पन्न होता है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५७ ॥ आपकी विश्वा नामक जो जीभ प्राणियोंको मंगल प्रदान करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥५८॥ हे हुताशन ! आपके नेत्र पिंगल वर्ण ग्रीवा लोहितवर्ण और आप स्वयं कृष्ण वर्ण हैं। आप मेरी सब प्रकार के दोषोंसे रक्षा कीजिये और मेरा इस संसारसे उद्धार कीजिये ॥ ६९॥ हे वह्ने ! आप सप्तार्चिः हव्यवाहन, कृशानु, अग्नि, पावक, शुक्र, इत्यादि आठ नामोंसे कथित होते हो आप प्रसन्न हूजिये ॥६०॥ हे अग्ने ! आप संपूर्ण भूतोंसे आगे उत्पन्न हुए हैं। हे विभावसो ! हे अव्यय हव्यवाह ! मैं आपकी स्तुति करताहूं आप स्तुतिको

स्फुलिङ्गिनीचयाजिह्वायतःसकलपुद्गलाः ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५७ ॥ यातेविश्वसृजाजिह्वाप्राणिनांशर्मदायिनी ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५८ ॥ पिङ्गाक्षलोहितग्रीवकृष्णवर्त्महुताशन ॥ त्राहिमांसर्वदोषेभ्यःसंसारादुद्धरेहमाम् ॥ ५९ ॥ प्रसीदवह्नेसप्तार्चिः कृशानो हव्यवाहन ॥ अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिरुदीरितः ॥ ६० ॥ अग्नेऽग्रेसर्वभूतानांसमुत्पत्तिर्विभावसो ॥ प्रसीदहव्यवाहाख्यअभिष्टुतमयाव्यय ॥ ६१ ॥ त्वमक्षयोवह्निरचिन्त्यरूपः समृद्धिमन्दुष्प्रसहोऽतितीव्रः ॥ तवाव्ययंभीममशेषलोकसंवर्धकंहन्त्यथवातिवीर्यम् ॥६२॥ त्वमुत्तमंतत्त्वमशेषसत्त्वहृत्पुंडरीकस्थमनन्तमीड्यम् ॥ त्वयाततंविश्वमिदंचराचरंहुताशनैकोवहुधात्वमत्र ॥ ६३ ॥ त्वमक्षयःसगिरिवनावसुन्धरानभःससोमार्कमहर्दिवाखिलम्॥ महोदधेर्जठरगतश्चवाडवोभवान्विभुःपिबातिपयांसिपावक ॥ ६४ ॥

प्राप्त होकर मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥६१॥ हे वह्ने ! आपका क्षय नहीं है, आपका रूप अचिन्त्य अर्थात् चिन्ताकाभी अविषय है, आप समृद्धिसंपन्न, आश्रय और अत्यन्त तीव्र हैं, मूर्तिमान होनेपर आप ऐसे बलशाली होते हैं कि, अव्यय और भीमरूप संपूर्ण जगत्कोभी नाश करते हैं ॥ ६२ ॥ हे हुताशन ! आप उत्तम सत्व और संपूर्ण प्राणियोंके हृदयकमलस्वरूप हो, और आप सबके पूजनीय अनन्त ब्रह्मस्वरूप हो। आपनेही ब्रह्म स्वरूपसे इस चराचर विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, अत एव आप एक होकरभी बहुत प्रकारसे इस संसारमें अवस्थान करतेहो ॥६३॥ हे अनल ! आप अक्षय हैं आपही पर्वतवनयुक्त पृथ्वीस्वरूप हैं. आपही चन्द्रसूर्ययुक्त समस्त आकाशस्वरूप हैं आपही दिन रात इत्यादि निखिल कालस्वरूप हैं आपही महासमुद्रके भीतर वडवाग्नि हैं और आपही

परम विभूतिके द्वारा सर्व किरणमें अवस्थित हैं ॥ ६४ ॥ हे हुताशन ! आप हुत हविः भोजन करते हैं, इस कारण नियमपरायण महर्षिगण महायज्ञमें आपकी सदा पूजा करते हैं और आपभी उनके द्वारा स्तुतिको प्राप्तहोकर जगत्के मंगलार्थ सोमरस और वषट्कारसहित हविः पान करतेहैं ॥ ६५॥ समस्त वेदाङ्गमें आपही गाये जातेहैं और यज्ञपरायण आपकेलिये द्विजश्रेष्ठगण सदावेदाङ्ग अध्ययन करते हैं ॥ ६६ ॥ आपही यजनपरायण ब्रह्मा आपही विष्णु और आपही भूतनाथ महादेव हैं। देवराजेन्द्र, अर्यमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य और चन्द्रमाभी आपही हैं। देवता और असुर सभी हव्यद्वारा आपको संतुष्ट करके वांछित फलको प्राप्त होते हैं ॥ ६७ ॥ अत्यन्त उपघातसे दूषित संपूर्ण वस्तु आपकी शिखाके स्पर्शसे पवित्र होती हैं, विविध स्नानमें भस्मद्वारा स्नानही श्रेष्ठ है, इस कारण मुनि

हुताशनस्त्वमितिसदाभिपूज्यसेमहाक्रतौनियमपरैर्म्महर्षिभिः ॥ अभिष्टुतःपिबसिचसोममध्वरेवषट्कृतान्यपिचहवींषिभूतये ॥ ६५ ॥ त्वंविप्रैःसततमिहे ज्यसेफलार्थंवेदाङ्गेष्वथसकलेषुगीयसेत्वम् ॥ त्वद्धेतोर्यजनपरायणाद्विजेन्द्रावेदाङ्गान्याधिगमयान्तिसर्वकाले ॥ ६६ ॥ त्वंब्रह्मायजनपरस्तथैवविष्णुर्भूतेशः सुरपतिरर्य्यमाजलेशः ॥ सूर्य्येन्दूसकलसुरासुराश्चहव्यैःसन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ॥ ६७ ॥ अर्चिर्भिःपरममहोपघातदुष्टंसंस्पृष्टंतवशुचिजायते समस्तम् ॥स्नानानांपरममतीवभस्मनासत्सन्ध्यायांमुनिभिरतीवसेव्यसेतत् ॥ ६८ ॥ तत्कृत्वात्रिदिवमवाप्नुवन्तिलोकाःसद्भक्त्यासुखनियताःसमूहगी तम् ॥ ६९ ॥ प्रसीदवह्नेशुचिनामधेयप्रसीदवायोविमलातिदीप्ते ॥ प्रसीदमेपावक वैद्युताभ प्रसीदहव्याशनपाहिमांत्वम् ॥ ७० ॥ यत्तेवह्नेशिवंरूपंयेच तेसप्तहेतयः ॥ तैःपाहिनःस्तुतोदेवपितापुत्रमिवात्मजम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभौत्यमन्वंतरेग्निस्तोत्रंनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

गण सन्ध्याकालमें वही स्नान करते हैं ॥ ६८ ॥ ऐसा करनेसे लोक स्वर्गको प्राप्त होते हैं और सद्भक्तिकर अनेक सुखको प्राप्त करते हैं ॥ ६९ ॥ हे वह्ने ! इस निमित्त ही आप शुचिनाम्धारी हैं आप उसी रूपसे मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये आपही विमल और अतिप्रबल वायुस्वरूप हैं आप उसीरूपसे प्रसन्न हूजिये। हे पावक ! आप वैद्युताग्नि इत्यादि नामोंसे कीर्त्तित होते हैं आप उसी रूपसे मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये । हे हव्याशन ! आप प्रसन्न हूजिये और मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७० ॥ हे वह्ने ! आपका जो मंगलमयरूप और जो सप्तहेति (ज्वाला) हैं, हे देव ! मेरे द्वारा स्तुतिको प्राप्त होकर उन सबसे, पिता जिस प्रकार पुत्रकी रक्षा करता है; वैसेही मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भौत्यमन्वन्तरे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! शान्तिके इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् हव्यवाहन ज्वालामालासे युक्त होकर वहां उनके सन्मुख प्रगट हुए ॥ १ ॥ हे द्विज ! देव विभावसुने इस स्तोत्रके द्वारा प्रसन्न होकर उन प्रणत शान्तिसे मेघके समान गंभीर वचनद्वारा कहा ॥ २ ॥ अग्नि बोले—हे विप्र ! तुमने जो भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करी है, इससे मैं संतुष्ट हुआहूं । मैं तुमको वर देताहूं तुम अपने अभिलाषित विषयकी प्रार्थना करो ॥ ३ ॥ शान्तिने कहा—हे भगवन् ! आपको मूर्त्तिमान दर्शन करकेही मैं कृतकृत्य हुआहूं । तोभी मैं भक्ति—नम्र होकर जो कहताहूं, वह सुनिये ॥ ४ ॥ हे देव ! मेरे आचार्य अपने आश्रमसे भ्राताके यज्ञमें गये हैं । वह आश्रममें आनकर अग्निकुण्डको अग्नियुक्त देखें ॥ ५ ॥ हे विभावसो ! मेरे अपराधके कारण जिस अग्निकुण्डको आपने त्यागदियाहै वह द्विज उसको

॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंस्तुतस्ततस्तेनभगवान्हव्यवाहनः ॥ ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदग्रतोमुने ॥ १ ॥ देवोविभावसुःप्रीतस्तोत्रेणानेनवै द्विज ॥ तंशान्तिमाहप्रणतंमेघगम्भीरवागथ ॥ २ ॥ ॥ अग्निरुवाच ॥ ॥ परितुष्टोऽस्मितेविप्रभक्त्यायातेस्तुतिःकृता ॥ वरंददामिभवतेप्रार्थ्यतांयत्तवे प्सितम् ॥ ३ ॥ ॥ शान्तिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कृतकृत्योऽस्मियत्त्वांपश्यामिरूपिणम् ॥ तथापिभक्तिनम्रस्यभवताश्रूयतांमम ॥ ४ ॥ भ्रातृयज्ञंगतोदेवममा चार्य्योनिजाश्रमात् ॥ आगतश्चाश्रमंधिष्ण्यंत्वत्सनाथंसपश्यतु ॥ ५ ॥ ममापराधात्सन्त्यक्तंधिष्ण्यंयत्तेविभावसो ॥ तत्त्वयाधिष्ठितंसोऽद्यपूर्ववत्पश्यतुद्वि जः ॥ ६ ॥ तथान्यदपिमेदेवप्रसादंकुरुषेयदि ॥ पुत्रोविशिष्टोभवतुतदपुत्रस्यमेगुरोः ॥ ७ ॥ तथाचमैत्रींतनयेसकरिष्यातिमेगुरुः ॥ तथासमस्तसत्त्वेषुभवत्व स्यमनोमृदु ॥ ८ ॥ यश्चत्वांस्तोष्यतेऽनेनप्रीतिंयातोऽसिमेऽव्यय ॥ स्तोत्रेणतस्यवरदोभवेथामत्प्रसादितः ॥ ९ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एतच्छ्रुत्वाव चस्तस्यतमाहद्विजसत्तमम् ॥ स्तोत्रेणाराधितस्तेनगुरुभक्त्याचपावकः ॥ १० ॥ ॥ अग्निरुवाच ॥ ॥ गुरोरर्थेयतोब्रह्मन्याचितंतेवरद्वयम् ॥ नात्मार्थेतेनमे प्रीतिस्त्वय्यतीवमहामुने ॥ ११ ॥

इससमय आपके द्वारा पूर्ववत् अधिष्ठित देखें ॥ ६ ॥ हे देव ! आप यदि प्रसन्न हुए हैं, तो मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि, मेरे अपुत्र गुरुके विशिष्ट (गुणशाली) पुत्र हो ॥ ७ ॥ मेरे गुरु जिसप्रकार उस अपने पुत्रसे स्नेहकरैं, उनका मन उसीप्रकार सब प्राणियोंके प्रति मृदु अर्थात् स्नेहशाली हो ॥ ८ ॥ हे अव्यय ! मुझपर प्रसन्न हुआ देखकर जो आपकी स्तुति करै, मेरे प्रति प्रसन्नहोकर आप उसके संबंधमें इस स्तोत्रद्वारा वरदायक हों ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—पावक गुरुभक्तिद्वारा और इस स्तोत्रद्वारा आराधित हो उस द्विजश्रेष्ठ शान्तिका वचन सुनकर उससे कहनेलगे ॥ १० अग्नि बोले—हे ब्रह्मन् ! तुमने जो गुरुके लिये दो वर माँगे और अपने लिये कुछ

भी नहीं माँगा. हे महामुने ! इससे मैं तुम्हारे प्रति औरभी अधिक प्रसन्न हुआहूं ॥ ११ ॥ तुमने गुरुके लिये जो प्रार्थना करी है, वह समस्तही पूर्ण होगी समस्त प्राणियोंमें उनकी मित्रता होगी और उनके पुत्र भी होगा॥१२॥ तुम्हारे गुरु महाप्राज्ञ हैं, उनके महाबल, महावीर्य भौत्य नामक मन्वन्तराधिपति पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १३ ॥ और जो पुरुष सावधान होकर इस स्तोत्रद्वारा मेरी स्तुति करेगा, उसकी समस्त कामना पूर्ण होंगी और पुण्यसंचय होगा ॥ १४ ॥ यज्ञमें, पर्वकालमें, तीर्थयज्ञमें और होम कर्ममें धर्मार्थ मेरा,यह पुष्टिकारक स्तोत्र पाठ करनेसे ॥१५॥तथा इसको एकवार श्रवण मात्र करनेसे दिन और रात्रिका किया समस्त पाप निः सन्देह नष्ट होगा। हे द्विज ! यह स्तव मेरा अत्यन्त सन्तोषजनक है ॥ १६ ॥ होमकालके बीतजानेपर वा अनधिकारी मनुष्यकें होमादि करनेपर जो दोष होता

भविष्यत्येतदखिलंगुरोर्यत्प्रार्थितंत्वया॥ मैत्रीसमस्तभूतेषुपुत्रश्चास्यभविष्यति ॥ १२ ॥ मन्वन्तराधिपःपुत्रोभौत्योनामभविष्यति ॥ महाबलोमहावीर्योमहाप्राज्ञोगुरुस्तव ॥ १३ ॥ अनेनयश्चस्तोत्रेणस्तोष्यतेमांसमाहितः ॥ तस्याभिलषितंसर्वंपुण्यंचास्यभविष्यति ॥ १४ ॥ यज्ञेषुपर्वकालेषुतीर्थेज्याहोमकर्मसु ॥ धर्मायपठतामेतन्ममपुष्टिकरंपरम् ॥ १५ ॥ अहोरात्रकृतंपापंश्रुतमेतत्सकृद्द्विज ॥ नाशयिष्यत्यसन्दिग्धंममतुष्टिकरंपरम् ॥ १६ ॥ अहोमकालदोषादीनयोग्यैरपितत्कृतैः ॥ येदोषास्तानिदंसद्यःशमयिष्यतिसंश्रुतम् ॥ १७ ॥ पौर्णमास्याममावास्यांपर्वस्वन्येषुचस्तवः ॥ ममैषसंश्रुतोमर्त्यैर्भवितापापनाशनः ॥ १८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवानग्निःपश्यतस्तस्यवैमुने ॥ बभूवादर्शनःसद्योदीपस्थोनिर्वृतोयथा ॥ १९॥ सच शान्तिर्गतेवह्नौपरितुष्टेनचेतसा ॥ हर्षरोमाञ्चिततनुःप्रविवेशाश्रमंगुरोः ॥२०॥ जाज्वल्यमानंतत्रासौगुरुधिष्ण्येहुताशनम् ॥ ददर्शपूर्ववत्प्रापततःसपरमांमुदम् ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेसोऽपिगुरुस्तस्यमहात्मनः ॥ भ्रातुर्यवीयसोयज्ञादाजगामस्वमाश्रमम् ॥ २२ ॥ तस्याग्रतश्चशिष्योऽसौचक्रेपादाभिवन्दनम् ॥ गृहीतासनपूजश्चतमाहसतदागुरुः ॥ २३ ॥

है, इस स्तवके सुननेसे वह तत्काल प्रशमित होता है ॥ १७ ॥ मेरा यह श्रेष्ठ स्तव पूर्णिमा, अमावस्या अथवा अन्य पर्वकालमें सुननेसे मनुष्योंका पाप नष्ट होगा ॥ १८॥ मार्कण्डेयजी बोले हे मुने ! दीपककी अग्नि जिस प्रकार सहसा निवृत्त होजाती है, उसी प्रकार भगवान् अग्नि यह कहकर देखते देखते उनके सन्मुखसे अन्तर्धान होगये ॥ १९ ॥ अग्निके अन्तर्धान होनेपर वह शान्ति संतुष्टचित्त और हर्षसे पुलकिततनु होकर गुरुके आश्रममें गये ॥ २० ॥ अनन्तर वह शान्ति गुरुके अग्निकुण्डमें अग्निको पूर्ववत् जाज्वल्यमान देखकर अत्यन्त मुदित हुए ॥२१ ॥इसी अवसरमें वह महात्मा शान्तिके गुरुभी कनिष्ठ भ्राताके यज्ञसे अपने आश्रममें लौटकर आये॥२२॥तब आगे जाकर उस शिष्यने उनके चरणोंको वंदना करी । तदनन्तर गुरुने पूजा और आसन ग्रहण करके शा

न्तिसे कहा ॥ २३ ॥ हे वत्स ! तुम्हारे प्रति और अन्यान्य प्राणियों के प्रति मेरा स्नेह उत्पन्न होताहै, ऐसा क्यों हुआ, सो मैं नहीं जानता । हे वत्स ! तुम यदि जानतेहो तो शीघ्र मुझसे कहो ॥ २४ ॥ हे महामुने ! तब शान्तिनामक उस विप्रने अग्निनाशादि वह समस्त घटना आचार्य से यथावत् कहसुनाई ॥ २५ ॥ हे महामुने ! उन गुरुने यह समस्त सुनकर स्नेहार्द्र नेत्रों से शिष्यको आलिंगन करके उसको साङ्गोपाङ्ग संपूर्णवेद प्रदान किये ॥ २६ ॥ तदनन्तर उन भूतिके पुत्र भौत्यनामक मनुने जन्म ग्रहण कियाथा उन विख्यातकर्मा भविष्य मनुके मन्वन्तरमें जो देवता, ऋषि, भूपति और जो इन्द्र होंगे उनका विषय मैं विस्तार सहित वर्णन करताहूं सुनो ॥२७ ॥ २८ ॥ चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र; भ्राजिर और धारा वृक यह पांच प्रकारके देवगण होंगे ॥२९॥ उस समय संपूर्ण इन्द्रके गुणों से युक्त

वत्सातिहार्दंत्वयिमेतथान्येषुचजन्तुषु ॥ नवेद्मिकिमिदंत्वञ्चेद्वेत्स्येतत्कथयाशुमे ॥ २४ ॥ ततःसशान्तिस्तत्सर्वमाचार्य्यायमहामुने ॥ अग्निनाशादिकंविप्रःसमाचष्टेयथातथम् ॥ २५ ॥ तच्छ्रुत्वासपरिष्वज्यस्नेहार्द्रनयनोगुरुः ॥ शिष्यायप्रददौवेदान्साङ्गोपाङ्गान्महामुने ॥ २६ ॥ भौत्योनाममनुस्तस्यपुत्रोभूतेरजायत ॥ तस्यमन्वन्तरेदेवानृषीन्भूपांश्चमेशृणु ॥ २७ ॥ भविष्यस्यभविष्यांस्तुगदतोममविस्तरात् ॥ देवेन्द्रोयश्चभवितातस्यविख्यातकर्मणः ॥ २८ ॥ चाक्षुषाश्चकनिष्ठाश्चपवित्राभ्राजिरास्तथा ॥ धारावृकाश्चेत्येतेवैपञ्चदेवगणाःस्मृताः ॥ २९ ॥ शुचिरिन्द्रस्तदातेषांत्रिदशानांभविष्यति ॥ महाबलोमहावीर्य्यःसर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ॥ ३० ॥ आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चशुचिर्मुक्तोऽथमाधवः ॥ शुक्रोऽजितश्चसप्तैतेतदासप्तर्षयःस्मृताः ॥ ॥३१॥ गुरुर्गभीरोब्रध्नश्चभरतोऽनुग्रहस्तथा ॥ श्रीमानीचप्रतीरश्चविष्णुःसंक्रन्दनस्तथा ॥३२॥ तेजस्वीसुबलश्चैवभौत्यस्यैतेमनोःसुताः॥ चतुर्दशंमयैतत्तेमन्वन्तरमुदाहृतम् ॥३३॥ श्रुत्वामन्वन्तराणीत्थंक्रमेणमुनिसत्तम ॥ पुण्यमाप्नोतिमनुजस्तथाऽक्षीणांचसन्ततिम् ॥ ३४ ॥ श्रुत्वामन्वन्तरंपूर्वंधर्ममाप्नोतिमानवः ॥ स्वारोचिषस्यश्रवणात्सर्वकामानवाप्नुते ॥ ३५ ॥

महाबल महावीर्य "शुचि" उन देवताओं के इन्द्र होंगे ॥३०॥आग्निध्र, अग्निबाहु शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित, यह सात जनही उस समय सप्तर्षि होंगे ॥३१॥ गुरु, गंभीर, बध्न, भरत, अनुग्रह, श्रीमाणि, प्रतीर, विष्णु, संक्रमण॥ ३२॥ और तेजस्वी सुबल, यही भौत्यमनुके पुत्र होंगे। यह मैंने तुम्हारे निकट चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन किया ॥ ३३ ॥ हे मुनिसत्तम ! क्रमानुसार यह संपूर्ण मन्वन्तर श्रवण करनेसे मनुष्यगण पुण्यसंचयमें समर्थ होते हैं और उनका वंश कभी क्षीण नहीं होता॥ ३४ ॥मनुष्यगण प्रथम मन्वन्तर(स्वायम्भुव)श्रवण करके धर्मको प्राप्त होते हैं,दूसरा स्वारोचिष मन्वन्तर सुननेसे उनकी संपूर्ण कामना सिद्ध होतीहैं॥ ३५॥

तीसरे औत्तममन्वन्तरके सुननेसे धन और चौथे तामसमन्वन्तरके सुननेसे ज्ञानलाभ होता है । पांचवे रैवतमन्वन्तरके सुननेसे बुद्धि और स्वरूपवती स्त्री प्राप्त होती है ॥ ३६ ॥ छठे चाक्षुषमन्वन्तरके सुननेसे पुरुष आरोग्यता लाभ करते हैं, सातवें वैवस्वत मन्वन्तरके सुननेसे बल और आठवें सूर्य सावर्णिक मन्वन्तरके सुननेसे गुणवान् पुत्र पौत्र लाभ करते हैं ॥ ३७ ॥ मनुष्यगण नवम ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर श्रवण करनेसे माहात्म्य दशवां धर्मसावर्णिक सुननेसे मंगल और ग्यारहवाँ रुद्रसावर्णिकमन्वन्तर सुननेसे सुमति और जय प्राप्त होती है ॥ ३८ ॥ हे नरोत्तम ! बारहवां दक्षसावर्णिकमन्वन्तर सुननेसे मनुष्य ज्ञातिमें श्रेष्ठ और गुणयुक्त होता है. तेरहवां रौच्यमन्वन्तर सुननेसे शत्रुबलध्वंस करनेमें समर्थ होता है ॥ ३९ ॥ चौदहवां भौत्यमन्वन्तर सुननेसे देवप्रसाद लाभ होता है और अग्निहोत्र फल तथा गुणयुक्त पुत्र प्राप्त होसकता है ॥ ४० ॥ हे मुनिसत्तम ! जो मनुष्य स्वायम्भुवमन्वन्तरसे क्रमानुसार सब मन्वन्तर सुनते हैं, उनकी उत्तम फल

औत्तमेधनमाप्नोतिज्ञानमाप्नोतितामसे ॥ रैवतेचश्रुतेबुद्धिंसुरूपांविन्दतेस्त्रियम् ॥३६॥ आरोग्यंचाक्षुषेपुंसांश्रुतेवैवस्वतेबलम् ॥ गुणवत्पुत्रपौत्रांस्तुसूर्यसावर्णिकेश्रुते ॥ ३७ ॥ माहात्म्यंब्रह्मसावर्णेधर्मसावर्णिकेशुभाम् ॥ मतिमाप्नोतिमनुजोरुद्रसावर्णिकेजयम् ॥३८॥ ज्ञातिश्रेष्ठोगुणैर्युक्तोदक्षसावर्णिकेश्रुते ॥ निशातयत्यरिबलंरौच्यंश्रुत्वानरोत्तम ॥३९ ॥ देवप्रसादमाप्नोतिभौत्येमन्वन्तरेश्रुते ॥ तथाग्निहोत्रंपुत्रांश्चगुणयुक्तानवाप्नुते ॥४०॥ सर्वाण्यनुक्रमाद्यश्चशृणोतिमुनिसत्तम ॥ मन्वन्तराणितस्यापिश्रूयतांफलमुत्तमम् ॥४१॥ तत्रदेवानृषीनिन्द्रान्मनूंस्तत्तनयान्नृपान्॥श्रुत्वावंशांश्चसर्वेभ्यःपापेभ्योविप्रमुच्यते ॥४२॥ देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्येयेतन्मन्वन्तराधिपाः ॥ तेप्रीयन्तेतथाप्रीताःप्रयच्छन्तिशुभांमतिम् ॥ ४३ ॥ ततःशुभांमतिंप्राप्यकृत्वाकर्मतथाशुभम् ॥ शुभांगतिमवाप्नोतियावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ४४ ॥ सर्वेस्युर्ऋतवःक्षेम्याःसर्वेसौम्यास्तथाग्रहाः ॥ भवन्त्यसंशयंश्रुत्वाक्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेचतुर्दशमन्वन्तरवर्णनसमाप्तिर्नामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कथितासम्यक्त्वयामन्वन्तरस्थितिः ॥ क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तोमयाचैवावधारिता ॥ १ ॥

प्राप्तिका विषय सुनो ॥ ४१ ॥ हे विप्र ! उन उन मन्वन्तरके देवता समस्त ऋषि, मनुके नृपति पुत्रगण और उनके वंशका वृत्तान्त सुननेपर मनुष्य संपूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ ४२॥ और देवता, ऋषि, इन्द्र, नृपगण तथा अपर जो उस मन्वन्तरके अधिपति हैं, वह सबही प्रसन्न होते हैं और वह प्रसन्न होनेपर सुमति देते हैं ॥ ४३ ॥ तदनन्तर सुमतिको प्राप्त होकर शुभकर्म करनेसे जबतक चौदह इन्द्ररहेंगे, तबतक मनुष्य शुभमतिको प्राप्त होंगे ॥४४॥क्रमानुसार मन्वन्तरोंकी स्थिति सुननेसे समस्त ऋतु क्षेमकारी होतीहैं और समस्तग्रह सौम्य होते हैं,इसमें सन्देह नहीं॥४५॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुर्दशमन्वन्तरवर्णनसमाप्तिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ कौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने मन्वन्तरोंकी स्थितिका विषय सम्यक्प्रकारसे कहा है और मैंने भी क्रमशः वह विषय आपके निकटसे

विस्तारसहित सुना है ॥ १ ॥ हे द्विजसत्तम ! ब्रह्माजीसे आरंभ करके मैं राजाओंका संपूर्ण वंश सुननेकी इच्छा करताहूं। हे भगवन् ! वह मुझसे भलीभाँति वर्णन कीजिये॥२॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे वत्स ! तुम जगत्मूल प्रजापति ब्रह्माजीसे आरंभ करके संपूर्ण राजाओंके जन्मका वृत्तान्त और चरित्र सुनो ॥३॥ अनेक यज्ञकारी रणविजयी, धर्मज्ञ शतशत राजाओंकेद्वारा यह वंश अलंकृत है ॥ ४ ॥ इन महात्मा राजाओंकी उत्पत्तिका विषय और सब चरित्र सुनकर पुरुष समस्त पापोंसे छूटजाते हैं॥५॥ जिस वंशमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ और अन्याय शतशत धर्मज्ञ, यज्ञकारी शूर और परमज्ञानी भूपालगणोंने जन्म ग्रहण करके सम्यक् प्रकारसे पृथ्वीका पालन कियाथा, उस वंशका विषय सुननेपर पुरुष संपूर्ण पापसमूहसे छूट जाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ वटवृक्षसे अंकुर उत्पन्न होकर

ब्रह्माद्यमखिलंवंशंभूभुजांद्विजसत्तम ॥ श्रोतुंममेच्छतःसम्यग्भगवन्प्रब्रवीहिमे ॥ २ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ शृणुवत्सनृपाणांत्वमशेषाणां समुद्भवम् ॥ चरितंचजगन्मूलमादौकृत्वाप्रजापतिम् ॥ ३ ॥ अयंहिवंशोभूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः ॥ संग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञैःशतसंख्यैरलंकृतः ॥ ४ ॥ श्रुत्वाचैषांनरेन्द्राणांचरितानिमहात्मनाम् ॥ उत्पत्तयश्चपुरुषःसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५ ॥ मनुर्यत्रतथेक्ष्वाकुरनरण्योभगीरथः ॥ अन्येचशतशोभूपाः सम्यक्पालितभूमयः ॥ ६ ॥ धर्मज्ञायज्विनःशूराःपरमार्थार्थवेदिनः ॥ श्रुतेतस्मिन्पुमान्वंशेपापौघाद्विप्रमुच्यते ॥ ७ ॥ तदयंश्रूयतांवंशोयतोवंशाः सहस्रशः ॥ भिद्यन्तेमनुजेन्द्राणामवरोहायथावटात् ॥ ८ ॥ ब्रह्माप्रजापतिःपूर्वंसिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः ॥ अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ॥ ९ ॥ वामाङ्गुष्ठाच्चतत्पत्नींजगत्सूतिकरोविभुः ॥ ससर्जभगवान्ब्रह्माजगतांकारणंपरम् ॥ १० ॥ अदितिस्तस्यदक्षस्यकन्याजायतशोभना ॥ तस्यांचकश्यपोदेवं मार्तण्डंसमजीजनत् ॥ ११ ॥ ब्रह्मास्वरूपंजगतामशेषाणांवरप्रदम् ॥ आदिमध्यान्तभूतंचसर्गस्थित्यंतकर्मसु ॥ १२ ॥

जिस प्रकार वह स्वतन्त्र वटवृक्षरूपमें परिणत होता है, उसी प्रकार इस वंशसे मनुजेन्द्रगणोंके सहस्र सहस्र वंश उत्पन्न हुए हैं, सो सुनो ॥ ८ ॥ हे द्विजसत्तम ! पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माजीने विविध प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छा करके दहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न कियाथा ॥ ९ ॥ जगत्प्रसवकारा प्रभु भगवान् ब्रह्माजीने जगत्की सृष्टिके लिये बायें अँगूठेसे उस दक्षकी पत्नीको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ उस दक्षकी अदिति नामक सुंदरी कन्या उत्पन्न हुईथी। उसके गर्भ और कश्यपके औरससे मार्तण्डदेवका जन्म हुआ ॥११॥ हे द्विज! जो ब्रह्मस्वरूप अशेष जगत्को वर देनेवाले हैं, सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर्म में जो

आदि, मध्य, अन्तस्वरूप हैं ॥ १२ ॥ जिनसे यह संपूर्ण जगत् उत्पन्नहुआ है, जिनमें यह संपूर्ण जगत् अवस्थितहै, देवासुर और मनुष्ययुक्त यह जगत् जिनका स्वरूप है ॥ १३ ॥ जो सर्वभूतस्वरूप है, जो सर्वात्मा हैं और जो सनातन परमात्मा हैं, उन्हीं भास्वान् सूर्य ने पूर्वमें अदितिके द्वारा आराधित होकर उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया ॥ १४ ॥ क्रौष्टुकिने कहा हे भगवन् ! विवस्वान् सूर्यका जो स्वरूपहै और जिस कारणसे वह आदिदेव कश्यपके पुत्रहुए यह सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ १५ ॥ तथा वह जिस प्रकार कश्यप और देवीआदितिके द्वारा आराधित हुएथे और आराधित होकर उन भास्करदेवने जो कहाथा ॥ १६ ॥ और गृहीतजन्मा दिवाकरका प्रभाव इससे पाहिले आपने जिसप्रकार कहा है हे मुनिसत्तम ! वहभी सब भलीभाँति विस्तार

यतोऽखिलमिदंयस्मिन्नशेषंचस्थितंद्विज ॥ यत्स्वरूपंजगच्चेदंसदेवासुरमानुषम् ॥ १३ ॥ यःसर्वभूतःसर्वात्मापरमात्मासनातनः ॥ अदित्याम भवद्भास्वान्पूर्वमाराधितस्तया ॥ १४ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामियत्स्वरूपंविवस्वतः ॥ यत्कारणंचादिदेवः सोऽ भवत्कश्यपात्मजः ॥ १५ ॥ यथाचाराधितोदेव्यासोऽदित्याकश्यपेनच ॥आराधितेनचोक्तंयत्तेनदेवेनभास्वता ॥१६॥ प्रभावंचावतीर्णस्ययथावन्मुनिसत्तम ॥ भवताकथितंसम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥१७॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ विस्पष्टापरमाविद्याज्योतिर्भाशाश्वतीस्फुटा ॥ कैवल्यंज्ञानमाविर्भूःप्राकाम्यं संविदेवच ॥ १८ ॥ बोधश्चावगतिश्चैवस्मृतिर्विज्ञानमेवच ॥ इत्येतानीहरूपाणितस्यारूपस्यभास्वतः ॥१९॥ श्रूयतांचमहाभागविस्तराद्वदतोमम ॥ य त्पृष्टवानसिरवेराविर्भावोयथाभवत् ॥२०॥ निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोकेसर्वतस्तमसावृते ॥ बृहदण्डमभूदेकमक्षरंकारणंपरम् ॥२१॥ तद्भिभेदतदन्तःस्थोभगवा न्प्रपितामहः ॥ पद्मयोनिःस्वयंब्रह्मायःस्रष्टाजगतांप्रभुः ॥२२॥ तन्मुखादोमितिमहानभूच्छब्दोमहामुने ॥ ततोभूस्तुभुवस्तस्मात्ततश्चस्वरनन्तरम् ॥२३॥

सहित सुननेकी अभिलाषा है ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–विस्पष्टा, परमा, विद्या, ज्योतिः, शाश्वती और प्रकाशिता, दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, संवित् ॥ १८ ॥ बोध, अवगति, स्मृति और विज्ञान, यह समस्तही सूर्यमूर्त्तिका स्वरूप है ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! आपने जो पूछा कि, "रविका किसप्रकार आविर्भाव हुआथा ?" वह मैं विस्तारपूर्वक कहताहूं, सुनो ॥ २० ॥ सृष्टिके पहिले जब कुछ भी नहीं था, तब इस जगत्के प्रभाहीन, और प्रकाश हीन होकर भलीभाँति अंधकारसे ढकजानेपर परम कारण, क्षयरहित एक बड़ा अंडा उत्पन्न हुआ था ॥ २१ ॥ उसके मध्यमें भगवान् प्रपिता मह, पद्मयोनि स्थित थे. जो जगत्के उत्पन्नकर्त्ता हैं, उन्हीं प्रभु ब्रह्माजीने स्वयं इस अंडेको भेदन किया ॥ २२ ॥ हे महामुने ! ब्रह्माजीके मुखसे उस समय

" ॐ " यह महाशब्द हुआ था। इस ओंकारसे प्रथम 'भूः' फिर 'भुवः' और इसके पीछे 'स्वः' उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ यह तीन प्रकारकी व्याहृतिही भगवान् सूर्यका स्वरूप है। इस 'ॐ' स्वरूपसेही रविका परम सूक्ष्मरूप हुआ है ॥२४॥ फिर उससे स्थूलरूप 'महः' इसके पीछे स्थूलतररूप 'जन' फिर उसकी अपेक्षाभी स्थूल रूप 'तपः' और तदनन्तर उसकी अपेक्षाभी स्थूलरूप 'सत्य' उत्पन्न हुआ। सूर्यका यह समस्त रूप मूर्त्त अर्थात् स्थूल है ओंकारसे विवस्वानके स्थूल सूक्ष्म भेदसे यह सातरूप उत्पन्न हुए हैं॥२५॥ भगवान् भास्करके यह समस्त रूप होनेपर भी कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित होते हैं, क्योंकि उनके स्वभाव और भावका अस्तित्वभी संशयको प्राप्त होता है॥२६॥ हे विप्र! इस विश्वके आदि और अन्तमें जो रूपविहीन परमसूक्ष्म परमात्मा स्थित हैं, मैंने जो ॐकार कहा, सो ॐकार वही है। हेविप्र! वह परब्रह्महीं मार्त्तण्डदेवका शरीर हैं ॥२७॥ इति श्रीमा०पु० भाषाटीकायां वंशानुकीर्तननामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥९८॥

एताव्याहृतयस्तिस्रः स्वरूपंताद्विवस्वतः ॥ ओमित्यस्मात्स्वरूपात्तुसूक्ष्मरूपंरवेःपरम् ॥२४॥ ततोमहरितिस्थूलंजनंस्थूलतरंततः॥ततस्तपस्ततः सत्यमितिमूर्तानिसप्तधा ॥२५॥ स्थितानितस्यरूपाणिभवन्तिनभवन्तिच॥स्वभावभावयोर्भावंयतोगच्छन्तिसंशयम्॥२६॥आद्यन्तंयत्परंसूक्ष्ममरूपंपरमंस्थितम्॥ ओमित्युक्तंमयाविप्रतत्परंब्रह्मतद्वपुः॥२७॥इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुकीर्त्तनंनामाष्टनवतितमोध्यायः ॥९८॥ ॥मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तस्मादण्डाद्विभिन्नात्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ऋचोबभूवुःप्रथमंप्रथमाद्वदनान्मुने ॥१॥ जपापुष्पनिभाःसद्यस्तेजोरूपाह्यसंहताः ॥ पृथक्पृथग्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्ततः ॥ २ ॥ यजूंषिदक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानिकानिचित् ॥ यादृग्वर्णंतथावर्णान्यसंहतिधराणिच ॥३॥ पश्चिमंयद्विभोर्वक्त्रंब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ आविर्भूतानिसामानितत्तच्छन्दांसितान्यथ ॥ ४ ॥ अथर्वणामशेषंचभृङ्गाञ्जनचयप्रभम् ॥ यावद्घोरस्वरूपंतदाभिचारिकशान्तिकम् ॥ ५॥ उत्तराप्रकटीभूतंवदनात्तस्यवेधसः ॥ सुखसत्त्वतमःप्रायंसौम्यासौम्यस्वरूपवत् ॥ ६ ॥ ऋचोरजोगुणाःसत्त्वंयजुषांचगुणामुने ॥ तमोगुणानिसामानितमःसत्त्वमथर्वसु ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हेमुने! जब वह अण्डा विभिन्न हुआ अर्थात् फटा और उसमेंसे अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी निकले, तब उनके पहिले मुखसे ऋग्वेद उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ वह जपापुष्पके समान, तेजोरूपा अन्त संहत और परस्पर विभिन्न रजोरूपधारी था ॥ २ ॥ उनके दक्षिण मुखसे कंचनके समान वर्णयुक्त असंहति धारण करनेवाला समस्त यजुः अनिरुद्धभावसे बहिर्गत हुआ अर्थात् निकला ॥ ३ ॥ अनन्तर परमेष्ठी ब्रह्माजीकी पश्चिम दिशामें जो मुख है, उससे समस्त साम आविर्भूत हुआ। वह समस्त साम छन्दःसंयुक्त था ॥ ४ ॥ उन ब्रह्माजीके उत्तर मुखसे इसी प्रकार मारण उच्चाटनादि आभिचारिक और शान्तिकारक, घोररूप भौंरे और अंजनके समूहके समान कृष्णवर्ण प्रभायुक्त सुख, सत्व और तमो बहुल सौम्य और असौम्यरूपी अशेष अथर्व प्रगट हुआ था॥५॥६॥ हेमुने! समस्त ऋक् रजोगुण युक्त

समस्त यजुः सत्वगुणयुक्त; समस्त साम तमोगुणयुक्त, और समस्त अथर्व सत्व तथा तमोगुणात्मक है ॥ ७ ॥ इन सबनेही अप्रतिम तेजद्वारा उज्ज्वल होकर पूर्ववत् पृथक् पृथक् भावसे अवस्थान किया ॥ ८ ॥ तदनंतर प्रथमका वह जो तेज है, जिसको 'ॐ' कहा गया है, उसके स्वभावसे उत्पन्नहुआ जो तेज है उसको वह आवृत करके अवस्थित हुआ ॥ ९ ॥ हे महामुने ! इसी प्रकार उसने साममय तेज और यजुर्मय तेजको भी आवृत किया, इस भाँतिसे समस्त तेजही उस ओंकाररूप परमतेजको आश्रय करके एकताको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! अनन्तर ऋक् इत्यादि तीनों वेदमें शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक यह त्रिविध अथर्व वेद लीन हुआ ॥ ॥ ११ ॥ हे विप्रर्षे ! फिर अंधकारका नाश होनेसे यह विश्व तत्काल निर्मल हुआ, इससे उसका ऊर्द्ध, अध और तिर्यक् (पार्श्व) देश प्रकाशित हुआ ॥ १२ ॥

एतानिज्वलमानानितेजसाऽप्रतिमेनवै ॥ पृथक्पृथगवस्थानंभाञ्जिपूर्वमिवाभवन् ॥८॥ ततस्तदाद्यंयत्तेजओमित्युक्ताभिशब्दयते ॥ तस्यस्वभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्यसंस्थितम् ॥९॥ यथायजुर्मयंतेजस्तद्वत्साम्नांमहामुने ॥ एकत्वमुपयातानिपरेतेजसिसंश्रये ॥१०॥ शान्तिकंपौष्टिकंचैवतथाचैवाभिचारिकम् ॥ ऋगादिषु लयंब्रह्मंस्त्रितयंत्रिष्वथागमत् ॥११॥ ततोविश्वमिदंसद्यस्तमोनाशात्सुनिर्मलम् ॥ विभावनीयंविप्रर्षेतिर्य्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥१२॥ ततस्तन्मण्डलीभूतंछान्दसं तेजउत्तमम् ॥ परेणतेजसाब्रह्मन्नेकत्वमुपगम्यतत् ॥१३॥ आदित्यसंज्ञामगमदादावेवयतोऽभवत् ॥ विश्वस्यास्यमहाभागकारणञ्चाव्ययात्मकम् ॥ १४ ॥ प्रातर्म्मध्यन्दिनेचैवतथाचैवापराह्णिके ॥ त्रयीतपतिसाकालेऋग्यजुःसामसंज्ञिता ॥१५॥ ऋचस्तपंतिपूर्वाह्णेमध्याह्नेचयजूंषिवै ॥ सामानिचापराह्णेवैतपन्तिमुनिसत्तम ॥१६॥ शान्तिकमृक्षुपूर्वाह्णेयजुःष्ववचपौष्टिकम् ॥ विन्यस्तंसाम्निसायाह्नेह्याभिचारिकमन्ततः ॥१७॥ मध्यन्दिनेऽपराह्णेचसमेचैवाभिचारिकम् ॥ अपराह्णेपितॄणान्तुसाम्नाकार्य्याणितानिवै ॥ १८ ॥ विसृष्टौऋङ्मयोब्रह्मास्थितौविष्णुर्यजुर्मयः ॥ रुद्रःसाममयोऽन्तेचतस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥ १९ ॥

हे ब्रह्मन् ! इसके उपरान्त वह छान्दस (वैदिक) उत्तम तेज मण्डलीभूत होकर फिर श्रेष्ठ तेज ओंकारके सहित एकताको प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ इसप्रकार यह तेज आदिमें (प्रथममें) उत्पन्न हुआ। इसकारण आदित्यसंज्ञाको प्राप्तहुआ । हे महाभाग ! यह इस विश्वका अव्ययात्मक कारणहै ॥ १४ ॥ ऋक्, यजु और सामनाम्नी त्रयीही प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और अपराह्णकालमें तपती है ॥ १५ ॥ हे मुनिसत्तम ! तिनमें प्रातःसमय ऋक् मध्याह्नमें यजुः और अपराह्णमें साम तपताहै ॥ १६ ॥ पूर्वाह्णके समय ऋक्में शान्तिकर्म मध्याह्नके समय यजुःमें पौष्टिक और सायाह्नके समय साममंत्रमें समस्त अभिचारिक कार्य विन्यस्तहैं ॥ १७ ॥ मध्याह्न और अपराह्ण दोनों कालमें आभिचारिक कार्य करै और केवल अपराह्णमें ही सामद्वारा पितरोंका कार्य करना चाहिये ॥ १८ ॥ सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋङ्मय,

स्थितिकालमें विष्णु यजुर्मय और संहारकालमें रुद्र साममय कहगयेहैं, इसीकारण अपराह्नको अशुचि कहा है ॥ १९ ॥ अतएव उल्लिखित प्रकारसे वेदात्मा वेदसंस्थित और वेद विद्यामय भगवान् भास्वान् परमपुरुष कहेगयेहैं ॥ २० ॥ सृष्टि स्थिति प्रलयकारी यह शाश्वत आदित्य सत्व रज और तमोगुणको आश्रयकरके ब्रह्मा, विष्णु और शिवनामको प्राप्त होतेहैं ॥ २१ ॥ सर्वदा देवताओं के द्वारा पूज्य वेदमूर्ति निराकार और संपूर्ण प्राणियों के मूर्ति रूपमें मूर्तिमान् ज्योतिस्वरूपमें आदिपुरुष वह भगवान् आदित्य विश्वके आश्रयस्वरूप अवेद्यधर्मा, वेदान्तगम्य और श्रेष्ठसेभी श्रेष्ठतर हैं ॥ २२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मार्तण्डमाहात्म्यंनाम नवनवतितमोऽध्यायः॥९९॥ मार्कण्डेयजी बोले –तदनन्तर आदित्यके तेजद्वारा ऊर्द्ध और अधः संतापित

तदेवंभगवान्भास्वान्वेदात्मावेदसंस्थितः ॥ वेदविद्यात्मकश्चैवपरःपुरुषउच्यते ॥ २० ॥ सर्गस्थित्यन्तहेतुश्चरजःसत्वादिकान्गुणान् ॥ आश्रित्यब्रह्मविष्ण्वादिसंज्ञामभ्येतिशाश्वतः ॥ २१ ॥ देवैःसदेड्यःसतुवेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्तिः ॥ विश्वाश्रयंज्योतिरवेद्यधर्मावेदान्तगम्यःपरमःपरेशः ॥ ॥ २२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्त्तण्डमाहात्म्येनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तेस्यसन्ताप्यमानेतुतेजसोर्द्ध्वमधस्तथा ॥ सिसृक्षुश्चिन्तयामासपद्मयोनिः पितामहः ॥१॥ सृष्टिःकृतापिमेनाशंप्रयास्यत्यभितेजसा ॥ भास्वतःसृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥ २ ॥ अप्राणाःप्राणिनःसर्वआपःशुष्यन्तितेजसा ॥ नचाम्भसाविनासृष्टिर्विश्वस्यास्यभविष्यति ॥३॥ इतिसञ्चिन्त्यभगवान्स्तोत्रंभगवतोरवेः॥चकारतन्मयोभूत्वाब्रह्मालोकपितामहः॥४॥ ॥ब्रह्मोवाच॥ ॥नमस्येयन्मयंसर्वमेतत्सर्वमयश्चयः॥विश्वमूर्तिःपरंज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्तियोगिनः॥ ५ ॥

होनेपर सृष्टिकी कामना करनेवाले पद्मयोनि पितामह चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ कि, मेरे सृष्टि करनेपरभी सृष्टि स्थिति संहारकारी महात्मा भास्करके तीव्र तेजसे वह समस्तही नष्टहोगी ॥ २ ॥ उनके तेजसे समस्त प्राणी प्राणहीन और जल शुष्क होता है, फिर जलके विना इस विश्वकी सृष्टिभी नहीं होगी ॥ ३ ॥ लोक पितामह ब्रह्मा इस प्रकार चिन्ता करके तन्मय हो भगवान् रविकी स्तुति करनेलगे ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले–जो संपूर्ण विश्वके आत्मस्वरूप हैं और जो इस विश्वरूपमें ही वर्त्तमान हैं, विश्वही जिनकी मूर्त्ति है और योगीगण जिस अनिन्द्रियगाह्य परम ज्योतिका ध्यान करते हैं मैं उनको नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

जो अचिन्त्यशक्ति ऋग्वेदमय, जो यजुर्वेदके निधान (आधार) जो सामवेदकी उत्पत्तिके कारण, जो स्थूलताप्रयुक्त त्रयीमय, जो अर्द्धमात्रास्वरूप एवं जो परमब्रह्मस्व रूप और गुणातीत हैं ॥ ६ ॥ पहिले उन्हीं सर्व कारणरूपी परमपूज्य, परमवेद्य अवह्निरूप परमज्योति, देवात्मताहेतु स्थूलरूप और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर आदि पुरुष भगवान् भास्वान्को नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥ हे देव ! तुम्हारी शक्तिही आद्या है क्योंकि मैं उसीके द्वारा प्रेरित होकर जल, मही, पवन और अग्निरूपा देवतादि विषया और प्रणवादि अशेष सृष्टि करताहूं। इसी प्रकार स्थिति औ प्रलयभी अपनी इच्छासे नहीं करता, तुम्हारी शक्तिके द्वारा प्रेरित होकर ही कर ताहूं ॥८॥ हे भगवन् ! तुम्हीं वह्निरूपी हो। जब तुम पृथ्वीका जल सोखते हो तब मैं जगत्की सृष्टि और प्रथम पाक संपन्न करता हू। तुम्हीं सर्वव्यापक गगनस्व

यदृङ्मयोयोयजुषांनिधानंसाम्नांचयोयोनिरचिन्त्यशक्तिः ॥ त्रयीमयःस्थूलतयार्धमात्रापरस्वरूपोगुणपारयोग्यः ॥ ६ ॥ त्वांसर्वहेतुंपरमंचवेद्यमाद्यंपरं ज्योतिरवेद्यरूपम् ॥ स्थूलञ्चदेवात्मतयानमस्येभास्वन्तमाद्यंपरमंपरेभ्यः ॥ ७ ॥ सृष्टिंकरोमियदहंतवशक्तिराद्यातत्प्रेरितोजलमहीपवनाग्निरूपाम् ॥ तद्देवतादिविषयांप्रणवाद्यशेषांनात्मेच्छयास्थितिलयावपितद्वदेव ॥८॥ वह्निस्त्वमेवजलशोषणतःपृथिव्याःसृष्टिंकरोषिजगतांचतथाद्यपाकम्॥ व्यापीत्वमेव भगवन्गगनस्वरूपंत्वंपञ्चधाजगदिदंपरिपासिविश्वम् ॥ ९ ॥ यज्ञैर्यजन्तिपरमात्मविदोभवन्तंविष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयंविवस्वन् ॥ ध्यायन्तिचापियतयोनिय तात्मचित्ताःसर्वेश्वरंपरममात्मविमुक्तिकामाः ॥१०॥ नमस्तेदेवरूपाययज्ञरूपायतेनमः ॥ परब्रह्मस्वरूपायचिन्त्यमानाययोगिभिः ॥११॥ उपसंहरतेजोय त्तेजसःसंहतिस्तव ॥ सृष्टेर्विघातायविभोसृष्टौचाहंसमुद्यतः ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्येवंसंस्तुतोभास्वान्ब्रह्मणासर्गकर्तृणा ॥ उपसंहृतवांस्तेजः परंस्वल्पमधारयत् ॥ १३ ॥

रूप हो, तुम्ही पंचरूप इस विश्वकी रक्षा करते हो ॥ ९॥ हे विवस्वन् ! परमात्मविद्गण अखिल यज्ञमय विष्णुरूपमें तुम्हारी यज्ञद्वारा अर्चना करते हैं, आत्ममोक्षा भिलाषी जितेन्द्रिय यतिगण परम सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ध्यान करते हैं ॥१०॥ तुम्हीं देवरूप हो; तुमको प्रणाम करताहूं, तुम्हीं यज्ञरूप और तुम्हीं योगीजनोंके चिन्तनीय परब्रह्मस्वरूप हो, तुमको प्रणाम करताहूं ॥ ११ ॥ हे विभो ! तुम तेज निवृत्त करो, मैं सृष्टि करनेमें उद्यत हुआहूं, तुम्हारा यह तेजसमूह सृष्टिमें विघ्नकारी होता है ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–भगवान् भास्वान्ने सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीके द्वारा इसप्रकार स्तुतिको प्राप्तहोकर परमतेज निवृत्त किया और

केवल स्वल्पतेज धारण किया ॥ १३ ॥ तब महाभाग पद्मयोनि ब्रह्माजीने पूर्व कल्पान्तके समान उस कल्पमें भी जगत्‌की सृष्टि करी ॥ १४ ॥ हे महामुने ! ब्रह्माजीने पूर्वके समान देव, असुर, नर, पशु, वृक्ष, लता इत्यादि और सब नरक सृजन किये ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामादित्यस्तवोनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ मार्कण्डेयजी बोले–ब्रह्माजीने जगत्‌को उत्पन्न करके पूर्ववत् वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और समस्त द्वीपोंका विभाग किया ॥ १ ॥ भगवान् कमलयोनि (ब्रह्मा) जीने देवता, दैत्य और उरगगणोंका रूप तथा स्थान देवताओंसे आरंभ करके पूर्ववत् निर्दिष्ट किया ॥ २ ॥ मरीचि नामसे विख्यात ब्रह्माजीके जो पुत्र थे, उनके कश्यप नामसे विख्यात एक पुत्र हुए, वह काश्यप नामसेभी प्रसिद्ध हुए थे ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! दक्षकी तेरह कन्या उनकी

चकारचततःसृष्टिंजगतःपद्मसम्भवः ॥ तथातेषुमहाभागःपूर्वकल्पान्तरेषुवै ॥ १४ ॥ देवासुरादीन्मर्त्यांश्चपश्वादीन्वृक्षवीरुधः ॥ ससर्जपूर्ववद्ब्रह्मानरकांश्चमहामुने ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेआदित्यस्तवोनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सृष्ट्वाजगदिदंब्रह्माप्रविभागमथाकरोत् ॥ वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानांपूर्ववद्यथा ॥ १ ॥ देवदैत्योरगादीनांरूपस्थानानिपूर्ववत् ॥ वेदेभ्यएवभगवानकरोत्कमलोद्भवः ॥ २ ॥ ब्रह्मणस्तनयोयोऽभून्मरीचिरितिविश्रुतः ॥ कश्यपस्तस्यपुत्रोऽभूत्काश्यपोनामनामतः ॥ ३ ॥ दक्षस्यतनयाब्रह्मंस्तस्यभार्यास्त्रयोदश ॥ बहवस्तत्सुताश्चासन्देवदैत्योरगादयः ॥४॥ अदितिर्जनयामासदेवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥ दैत्यान्दितिर्दनुश्चोग्रान्दानवानुरुविक्रमान् ॥५॥ गरुडारुणौचविनतायक्षरक्षांसिवैखसा ॥ कद्रुःसुषावनागांश्चगन्धर्वान्सुषुवेमुनिः ॥६॥ क्रोधायाजज्ञिरेकुल्यारिष्टायाश्चाप्सरोगणाः ॥ ऐरावतादीन्मातङ्गानिराचसुषुवेद्विज ॥७॥ ताम्राचसुषुवेश्येनीप्रमुखाःकन्यकाद्विज ॥ यासांप्रसूताःखगमाःश्येनभासशुकादयः ॥ ८ ॥ इलायाःपादपाजाताःप्रधायायादसांगणाः ॥ अदित्यांयासमुत्पन्नाकश्यपस्येतिसन्ततिः ॥ ९ ॥

भार्या हुई थीं उनके गर्भ से उनके देवता दैत्य और उरगादि अनेक पुत्र हुएथे ॥ ४ ॥ अदितिने त्रिभुवनेश्वर देवताओंको उत्पन्न कियाथा, दितिने दैत्योंको और दनुने महाविक्रम उग्र दानवोंको ॥ ५ ॥ विनताने गरुड और अरुणको खसाने यक्ष और राक्षसोंको, कद्रूने नागोंको और मुनिने गंधर्वोंको उत्पन्न कियाथा ॥ ६ ॥ हे द्विज ! क्रोधाने कुल्यागणको, रिष्टाने अप्सराओंको और ईराने ऐरावतादि हाथियोंको उत्पन्न कियाथा ॥७॥ ताम्राने श्येनी इत्यादि कन्याओंको उत्पन्न कियाथा। उक्त कन्याओंनेही श्येन, भास और शुकादि खेचरगणको उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥ इलासे पादपगण और प्रधासे पतंगगण उत्पन्न हुएथे । हे मुने ! अदितिके गर्भसे

कश्यपकी जो सब सन्तति (सन्तान) उत्पन्न हुईथी ॥ ९ ॥ उनके पुत्र दौहित्र (धेवते) पौत्र दौहित्रिकादि और उनकी सन्तानसे जगत् व्याप्त होगया ॥ १० ॥ हे मुने ! कश्यपजीके पुत्रों में देवतागणही प्रधान हैं, उनके सात्विक, राजस और तामस यह त्रिविधगण हैं ॥ ११ ॥ ब्रह्मज्ञश्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको त्रिभुवनेश्वर और यज्ञभुक् कियाथा ॥ १२ ॥ किन्तु विमाताके दैत्य, दानव और राक्षसगण मिलित होकर शत्रुताचरण करतेहुए देवताओंको बाधा देनेलगे इस कारण देवताओंके संग उनका दिव्य सहस्रवर्षपर्यन्त दारुण युद्ध हुआ । हे विप्र ! इस युद्धमें देवता पराजित हुए अर्थात् हारगये और बलशाली दैत्य दानव विजयी हुए ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे मुनिसत्तम ! इसके उपरान्त दैत्य दानवोंके द्वारा त्रिभुवनको हरण एवं पुत्रोंको पराजित और यज्ञभागसे वंचित हुआ देख, अदिति

तस्याश्चपुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रिकादिभिः ॥ व्याप्तमेतज्जगत्सूत्यातेषांतासाञ्चवैमुने ॥ १० ॥ तेषांकश्यपपुत्राणांप्रधानादेवतागणाः॥सात्विकाराजसास्त्वेते तामसाश्चमुनेगणाः ॥ ११ ॥ देवान्यज्ञभुजश्चक्रेतथात्रिभुवनेश्वरान् ॥ ब्रह्माब्रह्मविदांश्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ १२ ॥ तानबाधन्तसहिताः सपत्नादैत्यदानवाः ॥ राक्षसाश्चतथायुद्धंतेषामासीत्सुदारुणम् ॥ १३ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तुपराजीयन्तदेवताः ॥ जयिनश्चाभवन्विप्रबलिनोदैत्यदानवाः ॥ ॥ १४ ॥ ततोनिराकृतान्पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा ॥ हृतत्रिभुवनान्दृष्ट्वाह्यदितिर्मुनिसत्तम ॥ १५ ॥ आच्छिन्नयज्ञभागांश्चशुचासंपीडिताभृशम् ॥ आराधनायसवितुः परंयत्नंप्रचक्रमे ॥ १६ ॥ एकाग्रानियताहारापरंनियममास्थिता ॥ तुष्टावतेजसांराशिंगगनस्थंदिवाकरम् ॥ १७ ॥ अदितिरुवाच ॥ नमस्तुभ्यंपरांसूक्ष्मांसौवर्णींबिभ्रतेतनुम् ॥ धामधामवतामीशधाम्नामाधारशाश्वत ॥ १८ ॥ जगतामुपकारायतयापस्तवगोपते ॥ आददानस्ययद्रूपंतीव्रंतस्मैनमाम्यहम् ॥ १९ ॥ ग्रहीतुमष्टमासेनकालेनेन्दुमयंरसम् ॥ बिभ्रतस्तवयद्रूपमतितीव्रंनतास्मितत् ॥ २० ॥

शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो सवितृदेव (सूर्यदेव) की आराधना करनेके लिये परम यत्नवती हुई ॥ १५ ॥ १६ ॥ वह एकाग्रचित्त नियताहार और श्रेष्ठ नियमपरायण हो गगनमें स्थित तेजोराशिस्वरूप दिवाकरकी स्तुति करनेलगी ॥ १७ ॥ अदितिने कहा—हे शाश्वत ! तुम सुन्दर सूक्ष्म सौवर्णतनुधारी हो तुम्हीं ज्योतिःस्वरूप हो, ज्योतिष्कगणों में तुम्हीं प्रधान और, ज्योतिके आधार हो तुमको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे गोपते ! जगत्का उपकार करनेकेलिये जल ग्रहण करनेके समय तुम्हारी जो वह मूर्त्ति तीव्र होतीहै, उसको मैं प्रणाम करतीहूं ॥ १९ ॥ तुम आठमासकाल इन्दुमय रसग्रहण करनेके लिये जो अत्यन्त तीव्रमूर्त्ति ग्रहण करते

हो मैं उस मूर्त्तिको प्रणाम करतीहूं ॥ २० ॥ हे भगवन् ! वह समस्त रस वषणार्थ परित्याग करनेके समय तुम जो तृप्तिकारिणी मेघरूप मूर्ति ग्रहण करते हो तुम्हारी उस मेघमूर्तिको प्रणाम करतीहूं ॥ २१ ॥ जलवर्षणद्वारा उत्पन्नहुई अशेष ओषधियोंको पकानेके लिये तुम अन्य जिसप्रकारकी मूर्ति धारण करते हो, तुम्हारी उस भास्कर मूर्तिको प्रणाम करतीहूं ॥२२॥ हे देव तरणे ! हेमन्तकालमें शस्यपोषणके लिये तुम्हारा जो हिमवर्षणादिद्वारा शीतलरूप होताहै तुम्हारी उस मूर्तिको प्रणाम करतीहूं ॥ २३ ॥ हे रवे ! वसंत ऋतुमें तुम्हारी जो मूर्त्ति अत्यन्त तीव्र नहीं है और अत्यन्त शीतलभी नहीं है, तथा सौम्य है हे देव ! तुम्हारी उस मूर्तिको नमस्कार करतीहूं ॥ २४ ॥ तुम्हारा जो रूप अशेष देवता और पितरोंको परम तृप्त करनेवाला तथा शस्यको पकानेवालाहै, तुम्हारे उस रूपको नमस्कार

तेमवमुञ्चतःसर्वंरसंवैवर्षणाययत् ॥ रूपमाप्यायकंभास्वंस्तस्मैमेघात्मनेनमः ॥ २१ ॥ वार्युत्सर्गविनिष्पन्नमशेषञ्चौषधीगणम् ॥ पाकायतवयद्रूपं भास्करंतंनमाम्यहम् ॥ २२ ॥ यच्चरूपंतवातीतांहिमोत्सर्गादिशीतलम् ॥ तत्कालसस्यपोषायतरणेतस्यतेनमः ॥ २३ ॥ नातितीव्रंचयद्रूपंनाति शीतंचयत्तव ॥ वसन्तर्त्तौरवेसौम्यंतस्मैदेवनमोनमः ॥ २४ ॥ आप्यायनमशेषाणांदेवानांचतथापरम् ॥ पितॄणांचनमस्तस्मैसस्यानांपाकहेतवे ॥ २५ ॥ यद्रूपंजीवनायैकंवीरुधाममृतात्मकम् ॥ पीयतेदेवपितृभिस्तस्मैसोमात्मनेनमः ॥ २६ ॥ आप्यायदाहरूपाभ्यांरूपंविश्वमयन्तव ॥ समेतमग्नीषोमाभ्यांनमस्तस्मैगुणात्मने ॥ २७ ॥ यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येनतपतेतव ॥ विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञंनमस्तस्मैविभावसो ॥ २८ ॥ यत्तुतस्मात्परंरूपमोमित्युक्त्वाभिशब्दितम् ॥ अस्थूलानन्तममलंनमस्तस्मैसदात्मने ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंसानियतादेवीचक्रेस्तोत्रमहर्निशम् ॥ निराहाराविवस्वन्तमारिराधयिषुर्मुने ॥ ३० ॥

करतीहूं ॥२५॥ तुम्हारा जो अमृतमय रूप समस्त गुल्मलताके जीवनका कारणहै और अमृतमय होनेसेही जिसको देवता और पितर पान करते हैं, उस सोम स्वरूप तुमको नमस्कार है ॥ २६ ॥ अग्नि और सोम, यह दो अर्करूप मिलित होनेसे तुम्हारा जो विश्वमयरूप हुआ है उन गुणात्माको नमस्कार करती हूं ॥ २७ ॥ हे विभावसो ! ऋक्, यजु, और साम इन तीन वेदके मिलित होनेसे तुम्हारा जो त्रयी नामक रूप विश्वमें तपता है, तुम्हारे उस रूपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ उसकी अपेक्षाभी तुम्हारा जो श्रेष्ठ सूक्ष्म, अनन्त और विमलरूप ओंकार कहा गया है, तुम्होर उस नित्यरूपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! वह देवी अदिति इस प्रकार नियमयुक्त और निराहार हो विवस्वान् सूर्यका आराधन करनेकी इच्छासे दिनरात इस भाँति स्तुति करने लगी ॥ ३० ॥

हे द्विजोत्तम ! अनन्तर बहुतकालपीछे भगवान् तपन आकाशमेंही इस दाक्षायणीके प्रत्यक्ष गोचर हुए ॥ ३१ ॥ जो दीप्तिशालिनी अंशुमाला द्वारा आकाशविवरमें दुर्दर्श थे, उन्हीं तेजोराशिरूप रविको अदितिने धरातलमें स्थिति करते देखा । उनको इस प्रकार देखकर वह देवी अत्यन्त भयको प्राप्त हुई और कहने लगी हे गोपते ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ, मैं तुमको नहीं देखसक्ती ॥ ३२ ॥ पाहिले निराहार होकर आकाशस्थित दुर्दर्श सूर्यको जिसप्रकार ताप प्रदान करतेहुए देखाथा, उसके पीछे अब इस भूतलमें भी उसी प्रकार तेजः समूहकी मूर्ति देखतीहूं । हे दिवाकर ! मुझपर प्रसन्न हूजिये जिससे मैं तुम्हारा प्रकृतरूप देखूं । हे विभो ! तुम भक्तोंपर कृपा करते हो मैं तुम्हारी भक्त हूं; मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तुम ब्रह्माके रूपसे इस विश्वको उत्पन्न करते हो, तुम्हीं स्थितिकरनेमें प्रवृत्त होकर पालन करते हो और प्रलयके समय अखिलतत्त्व तुममें ही लयको प्राप्त

ततःकालेनमहताभगवांस्तपनोऽम्बरे ॥ प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम ॥ ३१ ॥ साददर्शमहाकूटंतेजसोऽम्बरसंश्रितम् ॥ जगादमेप्रसीदेतिनत्वांपश्यामिगोपते ॥ ३२ ॥ यथादृष्टवतीपूर्वमम्बरस्थंसुदुर्दृशम् ॥ निराहाराविवस्वन्तंतपन्तंतदनन्तरम् ॥ ३३ ॥ संघातंतेजसांतद्वद्दिहपश्यामिभूतले ॥ प्रसादंकुरुपश्येयंयद्रूपन्तेदिवाकर ॥ भक्तानुकम्पकविभोभक्ताहंपाहिमेसुतान् ॥ ३४ ॥ त्वंधाताविसृजसिविश्वमेतत्त्वंपासिस्थितिकरणायसंप्रवृत्तः ॥ त्वय्यन्तेलयमखिलंप्रयातितत्त्वंत्वत्तोऽन्यानहिगतिरस्तिसर्वलोके ॥३५॥ त्वंब्रह्माहरिरजसंज्ञितस्त्वमिन्द्रोवित्तेशःपितृपतिरप्पतिःसमीरः ॥ सोमोऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धिः किंस्तव्यंतवसकलात्मरूपधाम्नः ॥ ३६ ॥ यज्ञेशत्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ताः स्तुन्वन्तोविविधपदैर्द्विजायजन्ति ॥ ध्यायन्तोविनियतचेतसोभवन्तंयोगस्थाःपरमपदंप्रयान्तिमर्त्याः ॥ ३७ ॥ तपसिपचसिविश्वंपासिभस्मीकरोषिप्रकटयसिमयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः ॥ सृजसिकमलजन्मापालयस्यच्युताख्यःक्षपयसिचयुगांतेरुद्ररूपस्त्वमेकः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदिवाकरस्तुतिर्नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

होताहै अतएव सर्व लोकमें तुम्हारे अतिरिक्त अन्य गति नहीं है ॥ ३५ ॥ तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं हरि, तुम्हीं अजसंज्ञित महादेव, तुम्हीं इन्द्र, धनेश्वर कुबेर पितृपति (यम), अम्बुपति (वरुण) और समीर हो तुम्हीं सोम अग्नि, गगन, महीधर और समुद्र हो । तुम्हीं संपूर्ण तेजःपदार्थोंकी आत्मास्वरूप हो और तुम्हारी क्या स्तुति करूं ? ॥ ३६ ॥ हे यज्ञेश ! आत्मकर्मानुरक्त द्विजगण प्रतिदिन विविध पद (छन्दबद्धवाक्यादि) द्वारा स्तव करके तुम्हारी पूजा करते हैं । संयतचित्त योगीजन तुम्हारा ध्यान करते करते योगमूर्तिद्वारा परमपदको प्राप्त होतेहैं ॥ ३७ ॥ तुम्हीं विश्वमें ताप देतेहो, तुम्हीं विश्वको पक्व रक्षित, भस्म, किरणोंसे प्रकाशित करते हो तथा जलगर्भवाली किरणसमूहोंसे आह्लादित और फिर उत्पन्न करतेहो, देवता और मनुष्य तुमकोही प्रणाम करते हैं और पापकर्मकारी स्थिर भावना करनेपरभी तुमको प्राप्त नहीं होते ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां दिवाकर स्तुतिर्नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले —इसके उपरान्त प्रभु विभावसु उस अपने तेजोमण्डलके मध्यसे तपेहुए तांबेके समान कलेवर होकर प्रकट हुए ॥ १ ॥ हे मुने ! उनका दर्शन करतेही देवी अदितिने उनको प्रणाम किया तव भास्वान् सूर्य ने उनसे कहा तुम्हारी जैसी इच्छा हो वही मुझसे अभीष्ट वर माँगो॥ २॥ उन देवी अदितिने जानुद्वारा पृथ्वीको स्पर्शकर मस्तकद्वारा प्रणामपूर्वक वर देनेके लिये उपस्थित विवस्वान्से कहा हे देव ! प्रसन्न हूजिये । अधिक बलवान् दैत्य और दानवोंने मेरे पुत्रोंका त्रिभुवन और यज्ञभाग हरण कर लिया है॥ ३ ॥ ४ ॥ हे गोपते ! इसी निमित्त मुझपर प्रसन्न हूजिये और आप अंशरूपमें उनके भ्राता होकर शत्रुओंका विनाश कीजिये ॥ ५॥ हे प्रभो दिवाकर ! जिस प्रकार मेरे पुत्र फिर यज्ञभागभोजनमें अधिकारी और त्रैलोक्यके अधिपति हों ॥ ६ ॥ हे रवे ! मेरे प्रति प्रसन्न होकर मेरे पुत्रोंपर उसी

मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःस्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतोविभावसुः ॥ अदृश्यततदादित्यस्तप्तताम्रोपमप्रभः ॥ १ ॥ अथतांप्रणतांदेवींतस्यसंदर्शनान्मुने ॥ प्राहभास्वान्वृणुष्वेष्टवरंमत्तोयमिच्छसि ॥ २ ॥ प्रणताशिरसासाचजानुपीडितमेदिनी ॥ प्रत्युवाचविवस्वन्तंवरदंसमुपस्थितम् ॥३॥ देवप्रसीदपुत्राणांहृतंत्रिभुवनंमम ॥ यज्ञभागाश्चदैत्यैश्चदानवैश्चबलाधिकैः ॥ ४ ॥ तन्निमित्तंप्रसादंत्वंकुरुष्वममगोपते ॥ अंशेनतेषांभ्रातृत्वंगत्वानाशयतद्रिपून् ॥ ५ ॥ यथामेतनयाभूयोयज्ञभागभुजः प्रभो ॥ भवेयुरधिपाश्चैवत्रैलोक्यस्यदिवाकर ॥ ६ ॥ तथानुकम्पांपुत्राणांसुप्रसन्नोरवेमम ॥ कुरुप्रपन्नार्तिहरस्थितिकर्त्तात्वमुच्यसे ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तामाहभगवान्भास्करोवारितस्करः ॥ प्रणतामदितिंविप्रप्रसादसुमुखोविभुः ॥ ८ ॥ सहस्रांशेनतेगर्भेसम्भूयाहमशेषतः ॥ त्वत्पुत्रशत्रूनदिते नाशयाम्याशुनिर्वृतः ॥९॥ इत्युक्त्वाभगवान्भास्वानन्तर्द्धानमुपागमत्॥निवृत्तासापितपसःसंतृप्ताखिलवाञ्छिता ॥ १० ॥ ततोरश्मिसहस्रात्तुसौसुम्नाख्योरवेःकरः ॥ विप्रावतारंसंचक्रेदेवमातुरथोदरे ॥ ११ ॥

प्रकार कृपा प्रकाश कीजिये ! हे दुःखियोंके भयहारिन् ! तुमको लोकस्थिति (पालन) कर्ता कहते हैं ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे विप्र ! तदनन्तर वारि सुखानेवाले भगवान् भास्करने प्रसन्नमुख होकर उन प्रणत अदितिसे कहा ॥८ ॥ हे अदिते ! मैं सहस्रांशमें तुम्हारे गर्भसे जन्म ग्रहण कर तुम्हारे पुत्रोंके समस्त शत्रुओंको समूल विनाश करूंगा । तुम्हारे पुत्र शीघ्रही सुखी होंगे ॥ ९ ॥ यह कहकर भगवान् भास्वान् वहांसे अन्तर्धान होगये और वह अदितिभी वांछित वर को प्राप्त कर तपस्यासे निवृत्त होगई ॥ १० ॥ हे विप्र ! इसके उपरान्त रविकी सौषुम्न नामक किरण सहस्रांशुसे देवमाता अदितिके गर्भसे अवतीर्ण हुई ॥ ११ ॥

हे द्विज ! वह अदिति सावधान होकर कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रतानुष्ठानपूर्वक पवित्रतासे दिव्यगर्भ धारण करने लगी ॥ १२ ॥ तब कश्यपजीने उससे कुछेक कोपयुक्त वचनद्वारा कहा, तू नित्य उपवासी होकर क्या इस गर्भस्थ अण्डाको मारित अर्थात् नष्ट करेगी !॥ १३ ॥ अदितिने उनसे कहा—हे क्रुद्धस्वभाव ! यह जो गर्भाण्ड देखतेहो, इसको मारती नहीं हूं, यह शत्रुओंके विनाशका कारण होगा ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-- यह कहकर सुरमाता अदितिने पतिके वचनद्वारा क्रोधित होकर तेजसे जाज्वल्यमान उस गर्भको परित्याग किया ॥ १५ ॥ कश्यप उदय कालीन भास्करके समान प्रभाशाली वह गर्भ देखकर प्रणामपूर्वक आदरसहित आद्यऋक् मंत्रसमूहद्वारा स्तव करने लगे ॥ १६ ॥ तब उनके द्वारा स्तुतिको प्राप्तहो वह भास्कर तेजद्वारा दिशाओंके मुख व्याप्त करते हुए पद्मपत्रके समान वर्णयुक्त हो गर्भाण्डसे बाहर निकले ॥ १७ ॥ अनन्तर सजल

कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिसाचचक्रेसमाहिता ॥ शुचिःसंधारयामासदिव्यंगर्भमितिद्विज ॥ १२ ॥ ततस्तांकश्यपःप्राहकिञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् ॥ किम्मारयसि गर्भाण्डमितिनित्योपवासिनी ॥ १३ ॥ साचतंप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्येतिकोपना ॥ नमारितंविपक्षाणांमृत्यवेतद्भविष्यति ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्त्वातंतदागर्भमुत्ससर्ज्जसुरारणिः ॥ जाज्वल्यमानंतेजोभिःपत्युर्वचनकोपिता ॥ १५ ॥ तंदृष्ट्वाकश्यपोगर्भमुद्यद्भास्करवर्च्चसम् ॥ तुष्टावप्र णतोभूत्वाऋग्भिराद्याभिरादरात् ॥ १६ ॥ संस्तूयमानःसतदागर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् ॥ पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसाव्याप्तदिङ्मुखः ॥ १७ ॥ अथान्तरिक्षादाभा ष्यकश्यपंमुनिसत्तमम् ॥ सतोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी ॥ १८ ॥ मारितंतेयतःप्रोक्तमेतदण्डंत्वयामुने ॥ तस्मान्मुनेसुतस्तेऽयंमार्त्तण्डाख्योभविष्यति ॥ १९ ॥ सूर्याधिकारंचविभुर्जगत्येषकरिष्यति ॥ हनिष्यत्यसुरांश्चायंयज्ञभागहरानरीन् ॥ २० ॥ देवानिशम्येतिवचोगगनात्समुपागमन् ॥ प्रहर्षमतुलंयाता दानवाश्चहृतौजसः ॥ २१ ॥ ततोयुद्धायदैतेयानाजुहावशतक्रतुः ॥ सहदेवैर्मुदायुक्तोदानवाश्चसमभ्ययुः ॥ २२ ॥ तेषांयुद्धमभूद्धोरंदेवानामसुरैःसह ॥ शस्त्रा स्त्रदीप्तिसंदीप्तंसमस्तभुवनान्तरम् ॥ २३ ॥

जलदके समान गंभीर अशरीरिणी वाणी अन्तरिक्षसे मुनिवर कश्यपको संबोधन देकर कहने लगी ॥ १८ ॥ हे मुने ! तुमने इस अण्डको " मारित " कहाथा, इस कारण तुम्हारे पुत्रका नाम " मार्त्तण्ड " होगा ॥ १९ ॥ यह विभु जगतमें सूर्यका कार्य करेंगे, और यज्ञभागहारी देवशत्रु असुरोंको यही विनाश करेंगे ॥ २० ॥ देवतागण उक्त वचन श्रवणपूर्वक अतुल हर्षको प्राप्त हो आकाशसे आये और दानव गण तेजहीन होगये ॥ २१ ॥ तदनन्तर देवताओंके सहित शतक्रतु (इन्द्र) ने युद्धके लिये दैत्योंको बुलाया, तब दानवगण प्रसन्नचित्त होकर आये ॥ २२ ॥ तिस काल असुरोंके सहित देवताओंका घोर युद्ध होने लगा और संपूर्ण भुवनान्तर देवता

और असुरोंके अस्त्रशस्त्रोंकी दीप्तिसे सम्यक् प्रकारसे दीप्तिमान होगया ॥ २३ ॥ उस युद्धमें महा असुरगण भगवान् मार्त्तण्डके देखनेसे तथा उनके तेजद्वारा दग्ध होकर भस्म होगये ॥ २४ ॥ तब संपूर्ण देवताओंने अतुलहर्षको प्राप्त हो समस्त तेजके आकरस्वरूप मार्त्तण्डदेवकी और अदितिकी स्तुति करी ॥ २५ ॥ देवता पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञभागको प्राप्तहुए और भगवान् मार्त्तण्डभी इस स्वीय अधिकारानुरूप सूर्यका कार्य करने लगे ॥ २६ ॥ वह कदम्ब पुष्पवत् नीचे और ऊपरमें किरणोंके द्वारा दीप्तिशाली होकर गोलाकार अग्निपिण्डके समान दिखाई देनेलगे और अधिक स्फुरनासे रहित शरीर धारण किया ॥ २७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मार्तण्डोत्पत्तिर्नामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर प्रजापति विश्वकर्माने प्रणत होकर भगवान्

तस्मिन्युद्धेभगवतामार्त्तण्डेननिरीक्षिताः ॥ तेजसादह्यमानास्तेभस्मीभूतामहासुराः ॥ २४ ॥ ततःप्रहर्षमतुलंप्राप्ताःसर्वेदिवौकसः ॥ तुष्टुवुस्ते जसांयोनिमार्त्तण्डमदितिंतथा ॥ २५ ॥ स्वाधिकारांस्तथाप्राप्तायज्ञभागांश्वपूर्ववत् ॥ भगवानपिमार्तण्डःस्वाधिकारमथाकरोत् ॥ २६ ॥ कदम्बपुष्प वद्भास्वानधश्चोर्ध्वचरश्मिभिः ॥ वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदग्धेनातिस्फुरद्वपुः॥२७॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमार्त्तण्डोत्पत्तिर्नामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ अथतस्मैददौकन्यांसंज्ञांनामविवस्वते ॥ प्रसाद्यप्रणतोभूत्वाविश्वकर्माप्रजापतिः ॥ १ ॥ वैवस्वतस्तुसम्भूतोमनुस्तस्यांवि वस्वतः॥पूर्वमेवतथाख्यातंतत्स्वरूपंविशेषतः॥२॥(कौष्टुकिरुवाच॥भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामिमार्त्तण्डस्यमहात्मनः ॥ चरितंहंतियत्पापंकलौसंशृण्वतांनृणाम्॥ ॥ १ ॥) ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ त्रीण्यपत्यान्यसौतस्यांजनयामासगोपतिः ॥ द्वौपुत्रौसुमहाभागौकन्याञ्चयमुनांमुने ॥ ३ ॥ मनुर्वैवस्वतोज्येष्ठःश्राद्ध देवःप्रजापतिः ॥ ततोयमोयमीचैवयमलौसंबभूवतुः ॥ ४ ॥ यत्तेजोऽभ्यधिकंतस्यमार्तण्डस्यविवस्वतः ॥ तेनातितापयामासत्रींल्लोकान्सचराचरान् ॥५॥

विवस्वान्‌को प्रसन्न करके संज्ञानाम्नी अपनी कन्या दी ॥ १ ॥ उस संज्ञाके गर्भसे विवस्वान्‌के 'वैवस्वत' मनु नामक जिस पुत्रका जन्म हुआ, उसका वृतान्त पहिलेही विशेष करके कहा है कौष्टुकिने कहा, मैं मार्तण्डमहात्माका चारित्र फिर भी सुनने की इच्छा करताहूं जो चारित्र सुननेवालोंके कलिसम्बन्धी पापोंका विनाश करता है ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने! गोपति सूर्यने संज्ञाके गर्भसे दो महाभाग पुत्र और यमुना नामक एक कन्या यह तीन संतान उत्पन्न करी ॥ ३ ॥ तिनमें श्राद्धदेव प्रजापति वैवस्वत मनु ज्येष्ठ हैं। तदनन्तर यम और यमी नामक यमज सन्तानकी उत्पत्ति हुई ॥ ४ ॥ तिसकाल विवस्वान् मार्त्तण्डका जो अधिक तेजथा, उसके द्वारा वह सचराचर

तीनों लोकोंको तापित करतेथे॥५॥ संज्ञा विवस्वान्का वह गोलाकाररूप देख और उनका महत्तेज सहनेमें असमर्थ हो अपनी छायाकी ओर देखकर कहने लगी ॥ ६ ॥ संज्ञा बोली हे शुभे ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं अपने पिताके घर जातीहूं, तुम मेरी आज्ञा पालन करतीहुई निर्विकारचित्तसे इस स्थानमें रहना ॥ ७ ॥ मेरे इन दोनों बालक और इस वरवर्णिनी कन्याके प्रति सस्नेह व्यवहार करना और यह वृत्तान्त भगवान्के निकट कभी प्रकाश नहीं करना ॥ ८ ॥ छायाने कहा—हे देवि ! जबतक वह मेरे केश ग्रहण न करेंगे और जबतक मुझको शाप नहीं देंगे, तबतक मैं भगवान्के निकट अपनी बात नहीं कहूंगी, तुम अपने अभिलषित स्थानमें जाओ ॥ ९ ॥ छायाके इस प्रकार कहनेपर शुभदर्शन संज्ञाने पिताके घर जाकर कुछ

गोलाकारन्तुतद्दृष्ट्वासंज्ञारूपंविवस्वतः ॥ असहन्तीमहत्तेजःस्वांछायांप्रेक्ष्यसाऽब्रवीत् ॥ ६ ॥ ॥ संज्ञोवाच ॥ ॥ अहंयास्यामिभद्रंतेस्वमेवभवनंपितुः ॥ निर्विकारंत्वयाप्यत्रस्थेयंमच्छासनाच्छुभे ॥७॥ इमौचबालकौमह्यंकन्याचवरवर्णिनी ॥ संभाव्यौनैवचाख्येयमिदंभगवतेत्वया ॥ ८॥ ॥ छायोवाच ॥ ॥ आकेशग्रहणाद्देविआशापान्नैवकर्हिचित्॥आख्यास्यामिमतंतुभ्यंगम्यतांयत्रवाञ्छितम् ॥९॥ इत्युक्ताछाययासंज्ञाजगामपितृमन्दिरम् ॥ तत्रावसत्पितुर्गेहेकञ्चित्कालंशुभेक्षणा ॥१०॥ भर्तुःसमीपंयाहीतिपित्रोक्तासापुनः पुनः ॥ अगच्छद्वडवाभूत्वाकुरून्विप्रोत्तरांस्ततः ॥ ११ ॥ तत्रतेपेतपःसाध्वीनिराहारामहामुने ॥ पितुःसमीपंयातायाःसंज्ञायावाक्यतत्परा ॥१२॥ तद्रूपधारिणीछायाभास्करंसमुपस्थिता ॥ तस्यांचभगवान्सूर्य्यःसंज्ञेयमितिचिन्तयन् ॥ १३॥ तथैवजनयामासद्वौसुतौकन्यकांतथा ॥ पूर्वजस्यमनोस्तुल्यः सावर्णिस्तेनसोऽभवत् ॥१४॥ यस्तयोःप्रथमंजातः पुत्रयोर्द्विजसत्तम ॥ द्वितीयोयोऽभवच्चान्यःसग्रहोऽभूच्छनैश्चरः ॥ १५ ॥कन्याभूत्तपतीयातांवव्रेसंवरणोनृपः॥ संज्ञातुपार्थिवीतेषामात्मजानांयथाऽकरोत् ॥ १६ ॥

काल वहां वास किया ॥ १० ॥ हे विप्र ! अनन्तर "भर्त्ताके घर जाओ" यह वचन पिताविश्वकर्माके वारंवार कहनेपर संज्ञा बड़वा (घोड़ी) का रूप धारणकर उत्तर कुरुदेशमें चली गई ॥११ ॥ हे महामुने ! साध्वी संज्ञा वहां अनाहार हो तपस्या करने लगी। जब संज्ञा पिताके घर चलीगई, तब छाया उसीके वचनानुसार ॥ ॥ १२ ॥ उसीका रूप धारणकर भगवान् ! भास्करकी भजना करने लगी। भगवान् सूर्यनेभी उसको अपनी पत्नी संज्ञा विचारकर ॥ १३ ॥ उसके गर्भसेभी दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की। हेद्विजसत्तम! इन दो पुत्रोंमें जो ज्येष्ठ पुत्र थे, वह संज्ञाके पुत्र पूर्वोत्पन्न वैवस्वतमनुके समान सावर्णि नामक मनु हुए और दूसरे पुत्र शनैश्चर नामक ग्रह हुए ॥ १४ ॥ १५ ॥ और तपती नामक जो कन्याउत्पन्न हुई, पीछे संवरण नामक नरपतिने उससेही विवाह किया छायासंज्ञा सावर्णि

मनु इत्यादि अपने पुत्रोंके प्रति जैसा स्नेह व्यवहार करती ॥ १६ ॥ संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुए वैवस्वतमनु इत्यादिके प्रति वैसा व्यवहार नहीं करती । छाया संज्ञाका इस प्रकार असमान व्यवहार देखकरभी वैवस्वतमनुने उसको सहलिया, किन्तु यमने न सहा ॥ १७ ॥ और इससे अत्यन्त दुःखित होकर पितृपत्नीकर्तृक वारंवार याचित होकरभी उसको न सहसके । हे मुने ! यमने कोपाविल और भावीअर्थ—बलके कारण अर्थात् होनेवाली बातके वशीभूत हो ॥ १८ ॥ छायासंज्ञाको घुडककर चरण उठाया, इससे छाया संज्ञाने अत्यन्त क्रोधित हो यमको यह कहकर शापदिया ॥ १९ ॥ संज्ञाने कहा "मैं तुम्हारे पूजनीय पिताकी भार्याहूं मुझको पददिखाकर घुडका अतएव तुम छिन्नपद होंगे अर्थात् तुम्हारा यह चरण कटकर गिरजायगा, इसमें सन्देह नहीं" ॥ २० ॥ धर्मात्मा यमने इस शापसे अत्यन्त पीड़ितमन हो

स्नेहान्नपूर्वजातानांतथाकृतवतीसती ॥ मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्यायमश्चास्यानचक्षमे ॥ १७ ॥ बहुशोयाच्यमानस्तुपितुःपत्न्यासदुःखितः ॥ सवैकोपाच्चबाल्याच्चभाविनोऽर्थस्यवैबलात् ॥ १८ ॥ पदासन्तर्जयामासछायासंज्ञांयमोमुने ॥ ततः शशापचयमंसंज्ञासामर्षिणीभृशम् ॥ १९ ॥ ॥ छायोवाच ॥ ॥ पदातर्जयसेयस्मात्पितृभार्य्यांगरीयसीम् ॥ तस्मात्तवैवचरणः पतिष्यतिनसंशयः ॥ २० ॥ यमस्तुतेनशापेनभृशंपीडितमानसः ॥ मनुनासहधर्मात्मासर्वंपित्रेन्यवेदयत् ॥ २१ ॥ ॥ यमउवाच ॥ ॥ स्नेहेनतुल्यमस्मासुमातादेवनवर्त्तते ॥ विसृज्यज्यायसोऽप्यस्मान्कनीयांसौबुभूर्षति ॥ २२ ॥ तस्यांमयोद्यतःपादोनतुदेहेनिपातितः ॥ बाल्याद्वायदिवामोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ २३ ॥ शप्तोऽहंतातकोपेनजनन्यातनयोयतः ॥ ततोनमन्येजननीमिमांवैतपतांवर ॥ २४ ॥ विगुणेष्वपिपुत्रेषुनमाताविगुणापितः ॥ पादस्तेपततांपुत्रकथमेतत्प्रवक्ष्यति ॥ २५ ॥ तवप्रसादाच्चरणोनपतेद्भगवन्यथा ॥ मातृशापादयंमेऽद्यतथाचिन्तयगोपते ॥ २६ ॥

मनुके सहित पिताके समीप जाकर संपूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २१ ॥ यमने कहा—हे देव ! माता हमारे प्रति तुल्यस्नेह न करके हमारे ज्येष्ठ होनेपरभी हमारा अनादर करतीहुई दोनों कनिष्ठके भरण पोषणमें इच्छा करती है ॥ २२ ॥ इसकारण मैंने बाल्यस्वभाव अथवा मोहवशसे उसकी ओर चरण उठाया था, किन्तु आघात नहीं किया, आप मेरे उस अपराधको क्षमा कीजिये ॥ २३ ॥ हे तापदातृ ! श्रेष्ठ पितः यदि पुत्र दुराचारी भी हो, तोभी माता उसके प्रति कभी बुरा व्यवहार नहीं करती, अतएव पुत्रको "तुम्हारा चरण गिरजाय" ऐसा शाप कैसे देगी । जब जननी होकर पुत्रके प्रति कोपके कारण इसप्रकार शाप दिया, तब यह माता नहीं जान पडती ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! मातृशापके कारण जिससे मेरा पैर न गिरे हे गोपते ! अनुग्रह पूर्वक उसी उपायकी चिन्ता कीजिये ॥ २६ ॥

सूर्यने कहा—हे पुत्र ! तुम धर्मज्ञ और सत्यवादी होकरभी जब क्रोधके वशीभूत हुए, तब निःसन्देह ऐसा होनेकी संभावना है ॥ २७ ॥ अन्यान्य समस्त शापही प्रतिहत होसकते हैं, किन्तु मातृशाप मोचन करनेका कोई उपाय नहीं है ॥ २८ अतएव मैं तुम्हारी माताका वचन मिथ्या करनेमें समर्थ नहीं हूं किन्तु पुत्रस्नेहके वश होकर कुछेक अनुग्रह विधान करूंगा॥ २९ ॥ "क्रिमि तुम्हारे पैरका मांस ग्रहण करके महीतलमें लेजाँयगे" ऐसा होनेसे तुम्हारी माताका वचन सत्य होगा और तुमभी रक्षित होंगे ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—फिर आदित्यने छायासे कहा " तुम्हारे समस्त पुत्रही तुल्य

॥ रविरुवाच ॥ ॥ असंशयमिदंपुत्रभविष्यत्यत्रकारणम् ॥ येनत्वामाविशत्क्रोधोधर्मज्ञंसत्यवादिनम् ॥ २७ ॥ सर्वेषामेवशापानांप्रतिघातोहिविद्यते ॥ नतुमात्राभिशप्तानांक्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥ २८ ॥ नशक्यमेतन्मिथ्यातुकर्तुंमातुर्वचस्तव ॥ किञ्चित्तवविधास्यामिपुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥ २९ ॥ कृमयोमांसमादायप्रयास्यन्तिमहीतलम् ॥ कृतंतस्यावचःसत्यंत्वंचत्रातोभविष्यसि ॥ ३० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थंतनयेषुवै ॥ तुल्येष्वप्यधिकः स्नेहएकत्रक्रियतेत्वया ॥ ३१ ॥ नूनंनैषांत्वंजननीसंज्ञाकापित्वमागता ॥ विगुणेष्वप्यपत्येषुकथंमाताशपेत्सुतम् ॥ ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सातत्परिहरन्तीचनाचचक्षेविवस्वतः ॥ सचात्मानंसमाधाययुक्तस्तत्त्वमपश्यत ॥ ३३ ॥ तंशप्तुमुद्यतंदृष्ट्वाछायासंज्ञा दिवस्पतिम् ॥ भयेनकंपिताब्रह्मन्यथावृत्तंन्यवेदयत ॥ ३४ ॥ विवस्वांस्तुततःक्रुद्धःश्रुत्वाश्वशुरमभ्यगात् ॥ सचापितंयथान्यायमर्चयित्वादिवाकरम् ॥ निर्दग्धुकामंरोषेणसान्त्वयामाससुव्रतः ॥ ३५ ॥

स्नेहके पात्र हैं, किन्तु ऐसा न करके एकके प्रति स्नेह करती हो ॥ ३१ ॥ इस कारण बोध होता है तुम इनकी माता संज्ञा नहीं हो, अपर कोई संज्ञाके रूपमें अवस्थान करतीहो, नहीं तो पुत्रके दुराचारी होनेपर माता क्या कभी शाप देसकती है " ? ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—छाया संज्ञाने समस्त वृत्तान्त छिपा कर दिवाकरसे कुछभी नहीं कहा।किन्तु दिवस्पति समाधिके बलसे सब सत्य वृत्तान्तअवलोकन कर ॥ ३३ ॥ शापदेनेमें उद्यत हुए हे ब्रह्मन् ! यह देख छायासंज्ञाने भयसे काँपतेहुए सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों कहदिया ॥ ३४ ॥ विवस्वान् यह सब वृत्तान्त सुनकर क्रोधित चित्तहो श्वशुरके समीप गये ! जब सुव्रत विश्वकर्माने देखा कि,

इन्होंने रोषद्वारा समस्तही दग्ध करनेकी अभिलाषा करी है, तब इनकी यथाविधि पूजा करके समझाया ॥ ३५ ॥ विश्वकर्माने कहा—संज्ञा आपका यह अतिरिक्त तेजसे व्याप्त दुःसह रूप न सह सकनेके कारण वनमें तपस्या करती है ॥ ३६ ॥ आप अभी अपने रूपके कारण वनमें महातप करतीहुई, शुभकार्यमें तत्पर उस अपनी भार्याको देखिये ॥ ३७ ॥ हेदेव ! मुझको ब्रह्माजीका वचन स्मरण होता है उसमें यदि आपकी अनुमतिहो, तो हे दिवस्पते ! आपके इस रूपको कान्तरूपमें परिवर्त्तित करूं ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अपने उपस्थितरूपकी मण्डलाकारता होनेसे भगवान् रविने त्वष्टाको उस कार्यमें आज्ञादी ॥ ३९ ॥ विश्वकर्मानेभी आज्ञा पाय शाकद्वीपमें विवस्वानको भ्रमियंत्र (शान) में आरोपणपूर्वक शातन करने (निराकरणकरने) का उपक्रम किया ॥ ४० ॥ हे ब्रह्मन् ! संपूर्ण जगत्के नाभिस्वरूप

विश्वकर्मोवाच ॥ तवातितेजसाव्याप्तमिदंरूपंसुदुःसहम् ॥ असहन्तीततः संज्ञावनेचरतिवैतपः ॥ ३६ ॥ द्रक्ष्यतेतांभवानद्यस्वभार्याशुभचारिणीम् ॥ रूपाथभवतोऽरण्येचरन्तींसुमहत्तपः ॥ ३७ ॥ स्मृतंमेब्रह्मणोवाक्यंयदितेदेवरोचते ॥ रूपंनिवर्तयाम्येतत्तवकान्तंदिवस्पते ॥३८॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ यतोहिभास्वतोरूपंप्रागासीत्परिमण्डलम् ॥ ततस्तथेतितंप्राहत्वष्टारंभगवान्रविः ॥३९॥ विश्वकर्मात्वनुज्ञातःशाकद्वीपेविवस्वतः ॥ भ्रमिमारोप्यतत्तेजःशातनायोपचक्रमे ॥ ४० ॥ भ्रमताऽशेषजगतांनाभिभूतेनभास्वता ॥ समुद्राद्रिवनोपेतासारुरोहमहीनभः ॥४१॥ गगनञ्चाखिलंब्रह्मन्सचन्द्रग्रहतारकम् ॥ अधोगतंमहाभागबभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥ ४२ ॥ विक्षिप्तसलिलाःसर्वेबभूवुश्चतथाब्धितः ॥ व्यभिद्यन्तमहाशैलाःशीर्णसानुनिबन्धनाः ॥४३॥ ध्रुवाधाराण्यशेषाणिधिष्ण्यानिमुनिसत्तम ॥ त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धानिह्यधोजग्मुःसहस्रशः ॥ ४४ ॥ वेगभ्रमणसंजातवायुक्षिप्ताःसमन्ततः ॥ व्यशीर्य्यंतमहामेघाघोररावविराविणः ॥ ॥४५॥भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तंभूम्याकाशरसातलम् ॥ जगदाकुलमत्यर्थंतदासीन्मुनिसत्तम ॥४६॥ त्रैलोक्येसकलेविप्रभ्रममाणेसुरर्षयः ॥देवाश्चब्रह्मणासार्द्धंभास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥ ४७॥

आदित्यके घूमनेसे समुद्र—गिरि—वन—वेष्टित महीतल आकाशमें मिलगया ॥ ४१ ॥ और हे महाभाग ! चन्द्र, ग्रह तारकादिसंकुल संपूर्ण गगन नीचेगिरतासा आकुल होनेलगा ॥ ४२ ॥ समुद्रोंका जल उछलने लगा, महापर्वतसमूह शिखर बिखरनेसे विभिन्न होनेलगे ॥ ४३ ॥ और हे मुनिसत्तम ! ध्रुवाधार सब नक्षत्रकुल अपनी रशना बंधन स्खलित होनेसे नीचेको जानेलगे ॥ ४४ ॥ चारों दिशाओंमें महामेघोंके वेगसे भ्रमण करने पर उठीहुई वायुद्वारा परस्पर लगकर घोर गर्जनसहित विचरण करतेहुए विशीर्ण होनेलगे ॥ ४५ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार स्वर्ग, मर्त्य, पाताल संपूर्ण जगत्‌ही सूर्यके भ्रमणसे विभ्रान्त होकर अतिशय आकुल हो उठा ॥ ४६ ॥ हे विप्र ! त्रैलोक्यके इसप्रकार घूमनेपर सुरर्षि और देवता, ब्रह्माजीके सहित सूर्यकी स्तुति करने लगे ॥ ४७ ॥

उन्होंनेकहा, तुम देवताओंमें आदिदेव हो, यह स्वरूपसेही ज्ञात होता है। सृष्टि, स्थिति और प्रलयकालके भेदसे तुम त्रिधा विभक्त होकर स्थिति करते हो ॥ ४८ ॥ हे जगन्नाथ! हे ग्रीष्म--वर्षा--हिमाकर! तुम्हारा मंगल हो। हे देवदेव! हे दिवाकर! तुम लोकोंकी शान्तिविधान करो ॥ ४९ ॥ आयेहुए इन्द्रने सूर्य देवकी मूर्त्ति लिख "हे देव! हे जगद्व्यापिन्! हे अशेषजगत्पते! तुम्हारी जय हो" इसप्रकार कहकर स्तुति करी ॥ ५० ॥ इसके उपरान्त वसिष्ठ अत्रि इत्यादि सप्त ऋषियोंने स्वस्ति वाक्य उच्चारण कर विविध स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति करी ॥ ५१ ॥ प्रसन्नचित्त वालखिल्य गण लिखीहुई भास्करदेवकी वेदोक्त आद्य ऋक्के द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ५२ ॥ हे नाथ! तुम मुमुक्षु पुरुषोंके पक्षमें मोक्ष, ध्यानी पुरुषोंके एक मात्र ध्येय और कर्मकांडमें प्रवृत्त सब जीवोंकेभी तुम्हीं

आदिदेवोऽसिदेवानांज्ञातमेतत्स्वरूपतः ॥ स्वर्गस्थित्यन्तकालेषुत्रिधभेदेनतिष्ठसि ॥ ४८ ॥ स्वस्तितेऽस्तुजगन्नाथवर्मवर्षाहिमाकर ॥ जुषस्वशान्तिंलोकानां देवदेवदिवाकर ॥ ४९ ॥ इन्द्रश्चागत्यतंदेवंलिख्यमानंयथाऽस्तुवत् ॥ जयदेवजगद्व्यापिञ्जयाशेषजगत्पते ॥ ५० ॥ ऋषयश्चततःसप्तवसिष्ठात्रिपुरोगमाः ॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैःस्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥५१॥ वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्चतुष्टुवुः ॥ भास्वन्तमृग्भिराद्याभिर्लिख्यमानंमुदायुताः ॥ ५२ ॥ त्वंनाथमोक्षिणांमोक्षोध्येयस्त्वंध्यानिनांपरः ॥ त्वंगतिःसर्वभूतानांकर्मकाण्डेऽपिवर्त्तताम् ॥ ५३ ॥ शंप्रजाभ्योऽस्तुदेवेशशन्नोऽस्तुजगताम्पते ॥ शन्नोऽस्तुद्विपदेनित्यंशन्नश्चास्तुचतुष्पदे ॥ ५४ ॥ ततोविद्याधरगणायक्षराक्षसपन्नगाः ॥ कृताञ्जलिपुटाःसर्वेशिरोभिःप्रणतारविम् ॥ ५५ ॥ ऊचुरेवंविधावाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः ॥ सह्यंभवतुतेतेजोभूतानांभूतभावन ॥ ५६ ॥ ततोहाहाहुहूश्चैवनारदस्तुम्बुरुस्तथा ॥ उपगायितुमारब्धागान्धर्वकुशलारविम् ॥५७॥ षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः ॥ मूर्च्छनाभिश्चतानैश्चसंप्रयोगैःसुखप्रदम् ॥५८॥ विश्वाचीचघृताचीचउर्वश्यथतिलोत्तमा ॥ मेनकासहजन्याचरम्भाचाप्सरसांवरा ॥ ५९ ॥ ननृतुर्जगतामीशेलिख्यमानेविभावसौ ॥ ज्ञानभावविलासाढ्यान्कुर्वन्तोऽभिनयान्बहून् ॥ ६० ॥

गति हो ॥ ५३ ॥ हे देवेश! हे जगन्नाथ! सब प्रजाका, हमारा, एवं हमारे द्विपद और चतुष्पदोंका मंगलविधान करो ॥ ५४ ॥ तदनन्तर विद्याधर, यक्ष राक्षस और पन्नगगण कृताञ्जलिपुटसे रविको मस्तकद्वारा प्रणाम कर ॥ ५५ ॥ "हे भूतभावन! आपका तेज समस्त भूतके सहने योग्य हो" इस प्रकार मन और कानोंका सुखकर वचन कहनेलगे ॥ ५६ ॥ अनन्तर षड्ज, मध्यम और गांधार इन तीनों ग्राममें विशारद हाहा हूहू नारद तुम्बुरु इत्यादि संगीत विद्वानों ने मूर्च्छना और तालादिके सुप्रयोगानुसार रविके सन्मुख सुखदायक संगीत आरंभ किया ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ देव विभावसुके इसप्रकार लिख्यमान होने पर विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या और रम्भा इत्यादि श्रेष्ठ अप्सरायें ॥ ५९ ॥ हाव, भाव, विलासादि अनेक अभिनयसहित नृत्य

करने लगीं ॥ ६० ॥ वेणु, वीणा, दुर्दर, पणव, पुष्कर, मृदंग, पटव, आनक ॥ ६१ ॥ देवदुन्दुभी और शंख इत्यादि सैकडों हजारों बाजोंकी ध्वनि होने लगी । इस प्रकार गन्धर्वोंके संगीत स्वर्गकी अप्सराओंके नृत्य ॥ ६२ ॥ और तूर्य बाजोंके अनेक शब्दद्वारा उस काल संपूर्ण जगत् कोलाहलसे पूर्ण होगया । अनन्तर सब देवताओंने हाथ जोड भक्तिकर नम्रमूर्त्ति हो ॥ ६३ ॥ लिख्यमान सहस्रांशुको प्रणाम किया । देवता इत्यादिके समागमका उस समय कोलाहल उप स्थित होनेपर विश्वकर्माने धीरे धीरे तेज क्षीण किया ॥ ६४ ॥ शिशिर, वर्षा और ग्रीष्मकालके हेतुस्वरूप और हरि, हर तथा ब्रह्माजीकेद्वारा स्तुतिको प्राप्तहुएभानुदेवकी यह तनुपरिलिखन कथा सुननेसे जीवनकेअन्तमें दिवाकरलोककी प्राप्ति होती है ॥ ६५ ॥ इति श्रीमा०पु०भाषाटकायां भानुतनुलेखनंनाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

प्रावाद्यन्तततस्तत्रवेणुवीणादिझर्झराः ॥ पणवाःपुष्कराश्चैवमृदङ्गाःपटहानकाः ॥ ६१ ॥ देवदुन्दुभयःशङ्खाःशतशोऽथसहस्रशः ॥ गायद्भिश्चैवगां धर्वैनृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥ ६२ ॥ तूर्यवादित्रघोषैश्चसर्वंकोलाहलीकृतम् ॥ ततःकृताञ्जलिपुटाभक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥ ६३ ॥ लिख्यमानंसहस्रां शुंप्रणेमुःसर्वे देवताः ॥ ततःकोलाहलेतस्मिन्सर्वे देवसमागमे ॥ तेजसःशातनञ्चक्रेविश्वकर्माशनैःशनैः ॥ ६४ ॥ इतिहिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमला सनविष्णुसंस्तुतस्य ॥ तनुपरिलिखनंनिशम्यभानोर्व्रजतिदिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभानुतनुलेखनेत्र्यधिकशततमो ऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ लिख्यमानेततोभानौविश्वकर्माप्रजापतिः ॥ उद्भूतपुलकःस्तोत्रमिदंचक्रेविवस्वतः ॥ १ ॥ विवस्वतेप्रणत हितानुकम्पिनेमहात्मनेसमजवसप्तसप्तये ॥ सुतेजसेकमलकुलावबोधिनेनमस्तमःपटलपटावपाटिने ॥ २ ॥ पावनातिशयपुण्यकर्मणेनैककामविषयप्रदायिने ॥ भास्वरानलमयूखशायिनेसर्वलोकहितकारिणेनमः ॥ ३ ॥ अजायलोकत्रयकारणायभूतात्मनेगोपतयेवृषाय ॥ नमोमहाकारुणिकोत्तमायसूर्य्यायचक्षुः प्रभवालयाय ॥ ४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—प्रजापति विश्वकर्माने भानुतनु क्षीण करते करते पुलकित हो विवस्वानूकी लिखित मूर्त्तिका यह कहकर स्तव किया था ॥ १ ॥ प्रणत मनुष्योंका हितानुष्ठान और उनपर कृपाकारी सम वेगयुक्त, सप्ताश्वशाली, कमलकुलखिलानेवाले और तमोराशिविनाशक तेजस्वी महात्मा विवस्वानूको नम स्कार करताहूं ॥ २ ॥ अतिशय पावन, पुण्यकर्मा, अनेक काम्य विषयदायक भास्वर अग्निसदृश किरणशाली और सर्व लोकोंके हितकारी देवको नमस्कार करताहूं ॥ ३ ॥ स्वयं उत्पत्तिरहित किन्तु तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेके कारण स्वरूप भूतात्मा रश्मिपति, वृष (साक्षात् धर्मस्वरूप) महाकारुणिक श्रेष्ठ चाक्षुषविष

यके आलयस्वरूप सूर्यको प्रणाम करताहूं ॥ ४ ॥ ज्ञानियोंके अन्तरात्मारूपी जगदाधार जगत्के हितैषी स्वयंभू समस्त लोकके चक्षुस्वरूप सुरश्रेष्ठ अमिततेजा विवस्वान्को नमस्कार करताहूं ॥ ५ ॥ तुम जगत्के हितकी कामनासे देवताओंके सहित क्षणकाल उदयाचलके शिरकी माल्यस्वरूप हो, तेज किरणोंके द्वारा सहस्र वपुः ग्रहणपूर्वक अंधकारके समूहका विनाश करतेहुए जगत्में प्रकाशपाते हो ॥ ६ ॥ हे मिहिर! जगत्के तिमिररूप आसव पीनेकी मत्तताके कारण लोहितमूर्ति होकर तुम त्रिभुवनप्रकाशक किरणोंके द्वारा अतिशय दीप्तिपाते हो ॥ ७ ॥ हे भगवन्! तुम जगत्का हित करनेके लिये सदा समान अवयववाले अत्यन्त मनोरम कुछेक कंपायमान विस्तृत रथमें चढकर घोड़ोंके द्वारा विचरण करतेहो ॥ ८ ॥ हे अरिनिसूदन! तुम संजीवनी सुधाद्वारा देवता और पितरोंकी एकही समयमें

विवस्वतेज्ञानभृतेंतरात्मनेजगत्प्रतिष्ठायजगद्धितैषिणे ॥ स्वयम्भुवेलोकसमस्तचक्षुषेसुरोत्तमायामिततेजसेनमः ॥ ५ ॥ क्षणमुदयाचलमौलिमणिः सुरगणमहिताहितोजगतः ॥ त्वमुमयूखसहस्रवपुर्जगतिविभासितमांसिनुदन् ॥ ६॥ भवतिमिरासवपानमदाद्भवतिविलोहितविग्रहता ॥ मिहिरविभासियतः सुतरांत्रिभुवनभावनभानिकरैः ॥ ७ ॥ रथमधिरुह्यसमावयवंचारुविकम्पितमुरुरुचिरम् ॥ सततमखिन्नहयैर्भगवंश्चरसिजगद्धितायविततम् ॥८॥ अमृतमयेनरसेनसमंविबुधपितॄनपितर्पयसे ॥ अरिगणसूदनतेनतवप्रणतिमुपेत्यालिखामिवपुः ॥९॥ शुकसमवर्णहयप्रथितंतवपदपांसुपवित्रतमम् ॥ नतजनवत्सलमांप्रणतंत्रिभुवनपावनपाहिरवे ॥ १० ॥ इतिसकलजगत्प्रसूतिभूतंत्रिभुवनभावनधामहेतुमेकम् ॥ रविमखिलजगत्प्रदीपभूतंत्रिदशवरप्रणतोऽस्मिसर्वदा त्वाम् ॥ ११ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सूर्य्यस्तवनंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ एवंसूर्य्यस्तवंकुर्वन्विश्वकर्मादिवस्पतेः ॥ तेजसःषोडशंभागंमण्डलस्थमधारयत् ॥ १ ॥ शातितैस्तेजसोभागैर्दशभिःपञ्चभिस्तथा ॥ अतीवकान्तिमच्चारुभानोरासीतदावपुः ॥२॥

तृप्ति संपादन करते हो। इसी कारण जगत्के हितकी कामनासे मैंने तुमको प्रणाम करके तुम्हारा वपुः (देह) लिखा है ॥ ९ ॥ हे प्रणतजनवत्सल! हे त्रिभुवन पावन भास्कर! मैं तुम्हारीही तोतेके समान वर्णवाली अश्वसृष्टिके कारण विख्यात हुआहूं और तुम्हारेही चरणोंकी रजसे इस समय अत्यन्त पवित्र हुआहूं इस प्रणतजनकी रक्षा करो ॥ १० ॥ इस प्रकार संपूर्ण जगत्के कारणरूपी, त्रिभुवनको पवित्र करनेवाले, तेजस्वरूप, इस अखिल जगत्के प्रदीपतुल्य विश्वकर्मा (विश्वस्रष्टा) रविदेवको मैं सदा प्रणाम करताहूं ॥ ११ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सूर्यस्तवनंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--विश्वकर्मा ने इसप्रकार दिवस्पति सूर्यकी स्तुति करके उनके तेजका सोलहवां भाग मण्डलमें रक्खा ॥ १ ॥ तिसकाल तेजके पन्द्रह भाग

निकलजानेसे सूर्यका कलेवर अतीव सुन्दर और कान्तियुक्त हुआ था ॥ २ ॥ सूर्यके निकलेहुए तेजद्वारा शत्रुओंके विनाशार्थ विष्णुका चक्र, शिवका शूल, कुबेरकी पालकी ॥ ३ ॥ यमका दण्ड, कार्तिकेयकी शक्ति और अन्यान्य देवताओंके सब प्रदीप्त अस्त्र विश्वकर्माने निर्माण किये थे ॥ ४ ॥ इसप्रकार मार्त्तण्ड क्षीणतेज होकर शोभा पानेलगे और शत्रुओंके नाशके निमित्त उनका शरीर मनोहर होगया ॥ ५ ॥ और अत्यन्त तीव्रतारहित तेज द्वारा समस्त अंगोंसे युक्त शोभायमान शरीर धारण किया और फिर समाधिस्थ होकर अपनी भार्याको घोड़ीके रूपमें देखा ॥ ६ ॥ कि, वह उत्तरकुरुदेशमें सब भूतोंसे अधर्षित होकर अत्यन्त नियमसहित तप करतीहै तदनन्तर भानु उत्तरकुरुदेशमें जाकर अश्वरूप ग्रहणपूर्वक उसके निकट

शातितंचास्ययत्तेजस्तेनचक्रंविनिर्मितम् ॥ विष्णोःशूलंचशर्वस्यशिबिकाधनदस्यच ॥ ३ ॥ दंडःप्रेतपतेःशक्तिर्देवसेनापतेस्तथा ॥ अन्येषां चैवदेवानामायुधानिसविश्वकृत् ॥ ४ ॥ चकारतेजसाभानोर्भासुराण्यरिशान्तये ॥ इतिशाततितेजाःसशुशुभेनातितेजसा ॥ ५ ॥ वपुर्दधारमार्त्तण्डः सर्वावयवशोभनम् ॥ सददर्शसमाधिस्थःस्वांभार्य्यांवडवाकृतिम् ॥ ६ ॥ अधृष्यांसर्वभूतानांतपसानियमेनच ॥ उत्तरांश्चकुरून्गत्वाभूत्वाऽश्वो भानुरागमत् ॥ ७ ॥ साचदृष्ट्वातमायान्तंपरपुंसोविशङ्कया ॥ जगामसंमुखेतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥ ८ ॥ ततश्चनासिकायोगंतयोस्तत्रसमेतयोः ॥ वडवायांच तत्तेजोनासिकाभ्यांविवस्वतः ॥ ९ ॥ देवौतत्रसमुत्पन्नावश्विनौभिषजांवरौ ॥ नासत्यदस्रौतनयावश्ववक्त्राद्विनिर्गतौ ॥ १० ॥ मार्त्तण्डस्यसुतावेतावश्वरूपधर स्यहि ॥ रेतसोऽन्तेचरेवन्तःखड्गीधन्वीतनुत्रधृक् ॥ ११ ॥ अश्वारूढःसमुद्भूतोबाणतूणसमन्वितः ॥ ततःस्वरूपममलंदर्शयामासभानुमान् ॥ १२ ॥ तस्यशा न्तंसमालोक्यसारूपंमुदमाददे ॥ स्वरूपधारिणींचेमांसनिनायनिजालयम् ॥ १३ ॥

गये ॥ ७ ॥ तब वडवाकृति संज्ञा उनको आताहुआ देखकर पराये पुरुषकी शंकासे पीठकी रक्षाके लिये सावधान होकर उनके सन्मुख गई ॥ ८ ॥ तब समीपस्थ दोनोंकी नासिका संयुक्त होनेसे विवस्वान्‌का तेज नासिकायुगलद्वारा घोड़ीके गर्भमें प्रविष्ट होनेपर ॥ ९ ॥ उससे भिषक्‌श्रेष्ठ दो अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए और अश्वके मुखसे निकले हुए 'नासत्य' एवं 'दस्र' यह दोनों ॥ १० ॥ अश्वरूपधारी मार्त्तण्डकेही पुत्र हैं वीर्यके शेषभागसे वर्मयुक्त शरीर खड्गधारी धनुषधारी, घोडे पर चढे बाण और तरकस संयुक्त रेवन्त उत्पन्न हुए । अनन्तर अंशुमाली सूर्यने अपना निर्मलरूप दिखाया ॥ ११ ॥ १२ ॥ उनका यह शान्त स्वरूप देखनेसे परम प्रसन्न हो संज्ञानेभी अपना स्वरूप धारण करलिया । तब वारिशोषक भास्कर प्रीतिमती अपनी भार्याको अपने घर ले आये । जो संज्ञाके

ज्येष्ठ पुत्र थे, वह वैवस्वत मनु हुए॥ १३॥ १४॥ और दूसरे पुत्र यम शाप एवं अनुग्रहके कारण धर्मदृष्टि हुएथे। यम उस शापके हेतु अत्यन्त व्यथित होकर ॥ ॥ १५ ॥ धर्माचरणमें प्रवृत्त हुए थे, इस कारण वह धर्मराजके नामसे कीर्त्तित हुए हैं, कृमि तुम्हारे पैरसे मांसग्रहण करके पृथ्वीतलमें ॥ १६ ॥ पतित होंगे, उनके पिताने इसप्रकार शापान्त किया था। यम धर्मदृष्टि होकर शत्रुमित्रमें समान व्यवहार करते थे ॥ १७॥ इसकारण सूर्यने उनको याम्य अधिकारमें नियुक्त किया। हे विप्र ! भगवान् दिवाकरने परितुष्ट होकर उनको लोकपालत्व ॥ १८ ॥ और पितरोंका आधिपत्यभी प्रदान किया। पिताने यमुनाको कलिन्द

संज्ञांभार्य्यांप्रीतिमतींभास्करोवारितस्करः ॥ ततःपूर्वसुतोयोऽस्याःसोऽभूद्वैवस्वतोमनुः ॥ १४ ॥ द्वितीयश्चयमःशापाद्धर्मदृष्टिरनुग्रहात् ॥ यमस्तुतेनशापेनभृशंपीडितमानसः ॥ १५ ॥ धर्मोंभिरोचतेयस्माद्धर्मराजस्ततःस्मृतः ॥ कृमयोमांसमादायपादतस्तेमहीतलम् ॥ १६ ॥ पतिष्यन्तीतिशापान्तंतस्यचक्रेपितास्वयम् ॥ धर्मदृष्टिर्यतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ॥ १७ ॥ ततोनियोगेतंयाम्येचकारतिमिरापहः ॥ तस्मैददौपिताविप्रभगवाँल्लोकपालताम् ॥ ॥ १८ ॥ पितॄणामाधिपत्यञ्चपरितुष्टोदिवाकरः ॥ यमुनांचनदींचक्रेकलिंदान्तरवाहिनीम् ॥ १९ ॥ अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ॥ गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोविनियोजितः ॥ २० ॥ एवमप्याहचततेभगवाँल्लोकभावितः ॥ त्वमप्यशेषलोकस्यपूज्योवत्सभविष्यसि ॥ २१ ॥ अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषुच ॥ त्वांस्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्तेतेमहापदः ॥२२॥ क्षेमंबुद्धिंसुखंराज्यमारोग्यंकीर्तिमुन्नतिम् ॥ नराणांपरितुष्टस्त्वंपूजितःसंप्रदास्यसि॥ ॥ २३ ॥ छायासंज्ञासुतश्चापिसावर्णिःसुमहायशाः ॥ भाव्यःसोऽनागतेकालेमनुःसावर्णिकोऽष्टमः ॥ २४ ॥

देशवाहीनी नदी किया ॥ १९ ॥ और उन्हीं महात्मा पिताने दोनों अश्विनीकुमारोंको देवताओंका वैद्य किया। रैवन्त गुह्यकगणोंके आधिपत्यमें नियुक्त हुए ॥ २० ॥ और भूतभावन भगवान्‌ने उनसे यहभी कहा कि, हे वत्स ! तुम अशेषलोकोंके पूज्य होंगे ॥ २१ ॥ मनुष्यगण वन, दावानल, शत्रु और चोरोंके भयसे भीत होकर यदि तुमको स्मरण करेंगे, तो तुम उनको उन सब महाविपदसे छुडाओगे ॥ २२ ॥ और मनुष्योंके पूजा करनेपर उनके प्रति संतुष्टहोकर उनको मंगल, सुबुद्धि, सुख, राज्य, आरोग्य, कीर्ति और उन्नति प्रदान करोगे ॥ २३ ॥ छायासंज्ञाके महायशवान् सावर्णनामक पुत्र भावीकालमें सावर्णकनामसे आठवें मनु होंगे ॥ २४ ॥

इस समयभी वह मेरुपृष्ठपर घोर तपस्या करते हैं उनके भ्राता शनैश्वर आदित्यकी आज्ञासे ग्रह हुए हैं ॥ २५ ॥ हे द्विजोत्तम ! आदित्यकी युवती कन्या लोकपावनी यमुना नदियोंमें श्रेष्ठ हुई है ॥ २६ ॥ जो ज्येष्ठपुत्र वैवस्वत मनु हैं, इस समय जिनकी सृष्टि चलती है, उनके वंशका विस्तार पीछे वर्णन करूंगा ॥ २७॥ इन सूर्यपुत्र देवताओंके जन्मकी कथा और रविका माहात्म्य जो पुरुष सुनते हैं वा पढते हैं ॥ २८ ॥ वह उपस्थित विपदसे छूटकर महायशको प्राप्त होतेहैं और आदिदेव महात्मा मार्त्तण्डका माहात्म्य सुननेसे अहोरात्रके किये संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रवेर्माहात्म्यवर्णनं नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने भानुकी सन्ततिका होना और उन

मेरुपृष्ठेतपोघोरमद्यापिचरतिप्रभुः॥भ्राताशनैश्चरस्तस्यग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः ॥२५॥ यवीयसीतुयाकन्याऽऽदित्यस्याभूद्द्विजोत्तम॥अभवत्सासरिच्छ्रेष्ठातपती लोकपावनी॥२६॥यस्तुज्येष्ठोमहाभागःसर्गोयस्येहसाम्प्रतम्॥ विस्तरंतस्यवक्ष्यामिमनोर्वैवस्वतस्यह॥२७॥ इदंयोजन्मदेवानांशृणुयाद्वापठेतवा ॥ विवस्व तस्तनूजानांरवेर्माहात्म्यमेवच ॥२८॥ आपदंप्राप्यमुच्येतप्राप्नुयाच्चमहायशः ॥ अहोरात्रकृतंपापमेतच्छमयतेश्रुतम् ॥ माहात्म्यमादिदेवस्यमार्तण्डस्यम हात्मनः ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरवेर्माहात्म्यवर्णनंनामपंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कथितःसम्य ग्भानोःसन्ततिसंभवः ॥ माहात्म्यमादिदेवस्यस्वरूपञ्चातिविस्तरात् ॥ १ ॥ भूयोऽपिभास्वतःसम्यङ्माहात्म्यंमुनिसत्तम ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहंतन्मेप्रसन्नोवक्तुम र्हसि ॥ २ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ श्रूयतामादिदेवस्यमाहात्म्यंकथयामिते ॥ विवस्वतोयच्चकारपूर्वमाराधितोजनैः ॥३ ॥ दमस्यपुत्रोविख्यातोराजा भूद्राज्यवर्धनः ॥ ससम्यक्पालनंचक्रेपृथिव्याःपृथिवीपतिः ॥४॥ धर्मतःपाल्यमानंतुतेनराष्ट्रंमहात्मना ॥ ववृधेऽनुदिनंविप्रजनेनचधनेनच ॥५॥ हृष्टपुष्टम तीवासीत्तस्मिन्राजन्यशेषतः ॥ निर्भयःसकलश्चोर्व्यांपौरजानपदोजनः ॥६॥ नोपसर्गोनचव्याधिर्नचव्यालोद्भवंभयम्॥नचावृष्टिभयन्तत्रदमपुत्रेमहीपतौ ॥७॥

आदिदेवका माहात्म्य तथा स्वरूप विस्तारपूर्वक भलीभाँति वर्णन किया ॥ १ ॥ किन्तु हे मुनिसत्तम ! भास्करके सम्यक् माहात्म्यका वृत्तान्त फिर सुननेकी इच्छा करताहूं उसको आप प्रसन्नहोकर वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—आदिदेव विवस्वानने पूर्वकालमें जनोंके द्वारा आराधित होकर जो जो संपादन कियाथा, वह समस्तमाहात्म्यका विषय तुमसे कहताहूं ॥ ३ ॥ दमके पुत्र विख्यात राज्यवर्द्धन राजा होकर सम्यक्प्रकारसे पृथ्वीका पालन करते थे ॥ ४ ॥ हे विप्र ! उन महात्माके स्वधर्मपूर्वक प्रजापालन करनेपर उससमय राष्ट्र,धन, जनसे नित्य वृद्धिको प्राप्तहुआ था ॥ ५ ॥ और उनके राजा होनेपर अन्यान्य राजागण, समग्र पृथ्वी और पौरजनगण निर्भय होकर अत्यन्त हृष्ट पुष्ट हुए थे ॥ ६ ॥ दमपुत्र महीपति राज्यवर्द्धनके शासनकालमें कोई उपसर्ग, व्याधि, सर्पादि हिंसकजन्तुका वा भय

अवृष्टिका भय नहीं था ॥ ७ ॥ वह महामहायज्ञकार्य में अर्थीगणोंको दान करके अति धर्मके सहित विषयोंको भोगते थे ॥ ८ ॥ इसप्रकार राज्यकार्य और सम्यक् प्रकार प्रजापालन करके उन्होंने एकदिनके समान सातहजार वर्ष विताये थे॥ ९ ॥ विदूरथनामक दक्षिणदेशके अधिपतिकी मानिनी नामक कन्या उनकी पत्नी थी ॥ १० ॥ एकसमय सुभ्रू मानिनीने राजपुरुषों के सामने राजाके मस्तकमें तेल मलते मलते आंसू गिराया ॥ ११ ॥ क्रमानुसार वह आंसू राजाके गात्रमें गिरा, तव राज्यवर्द्धनने मानिनीको अश्रुपूर्णनेत्र देखकर इसका वृत्तान्त पूछा ॥ १२ ॥ किन्तु वह कुछभी उत्तर न देकर केवल आंसू गिरातीहुई निःशब्द भावसे रोनेलगी । यह देखकर राज्यवर्द्धनने फिर मानिनीसे पूछा यह क्या ? तुम क्यों रोतीहो ? ॥ १३ ॥ मनस्विनीने स्वामीके इसप्रकार

सईजे चमहायज्ञैर्ददौदानानिचार्थिनाम् ॥ सुधर्मस्याविरोधेनबुभुजेविषयानपि ॥ ८ ॥ तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक्पालयतःप्रजाः ॥ सप्तवर्षसहस्राणिजग्मुरेकमहर्यथा ॥ ९ ॥ विदूरथस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूभृतः ॥ तस्यपत्नीबभूवाथमानिनीनाममानिनी ॥१०॥ कदाचित्तस्यसासुभ्रूःशिरसोऽभ्यञ्जनादृता ॥ पश्यतोराजलोकस्यमुमोचाश्रूणिमानिनी ॥११॥ तदश्रुबिन्दवोगात्रेयदातस्यमहीपतेः ॥ तदावीक्ष्याश्रुवदनांतामपृच्छतमाननीम् ॥ १२ ॥ निःशब्दमश्रुमोक्षेणरुदन्तींतांविलोक्यवै ॥ किमेतदितिपप्रच्छमानिनींराज्यवर्धनः ॥ १३ ॥ पृष्टासातुततस्तेनभर्त्राप्राहमनस्विनी ॥ नकिंचिदितितांभूयःपप्रच्छसमहीपतिः ॥१४॥ बहुशःपृच्छतस्तस्यभूभृतःसासुमध्यमा ॥ (नकिंचिदितिहोवाचसाभूयोराज्यवर्धनम् ॥ किमेतदितिपप्रच्छमानिनींपार्थिवःपुनः ॥ बहुशःप्रेरितातेनसाभर्त्रातत्रभामिनी ॥) दर्शयामासपलितंकेशभारान्तरोद्भवम् ॥१५॥ एतत्पश्येतिभूपालकिमन्यन्मन्युकारणम् ॥ ममातिमन्दभागयायाजहासाथनृपस्ततः ॥ १६ ॥ सविहस्याहतांपत्नींशृण्वतांसर्वभूभृताम् ॥ पौराणांचमहीपालायेतत्रासन्समावृताः ॥ १७ ॥ शोकेनालंविशालाक्षिरोदितव्यंनतेशुभे ॥ जन्मर्द्धिपरिणामाद्याविकाराःसर्वजन्तुषु ॥ १८ ॥

पूछनेपर 'कुछ नहीं' केवल मात्र यह उत्तर दिया ॥ १४ ॥ राजाने उस सुमध्यमासे बहुतही पूछा परंतु फिर उसने राज्यवर्धनसे कुछ न कहा, राजाने उस मानिनीसे फिर पूछा कि, यह क्या है जब राजाने बहुतही पूछा तब भामिनीने राजाको केशोंकेमध्यमें एक श्वेतबाल दिखाया ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इसको देखो क्रोधका कारण नहीं है यह मुझ मन्दभागिनीका भाग्य है यह सुनकर राजाको बडी हँसी आई ॥ १६ ॥ वह हँसते हँसते आयेहुए राजगण और पौरगणों के सामने पत्नीसे कहने लगे ॥ १७ ॥ हे विशालाक्षि ! हे कल्याणि ! रोदन मत करो । समस्त जन्तुओं मेंही जन्म वृद्धि और परिणामादि विकार दिखाई देते हैं सुतरां इसके लिये शोक करना

निष्प्रयोजन है॥ १८॥ हे वरानने ! मैंने संपूर्ण वेद अध्ययन सहस्र सहस्रयज्ञ संपादन ब्राह्मणोंको अर्थादि दान पुत्रोत्पादन॥ १९॥ तुम्हारे संग मनुष्योंको अतिदुर्लभ समस्त भोगने योग्य विषय उपभोग सम्यक् प्रकार पृथ्वीका पालन न्यायपूर्वक युद्धानुष्ठान ॥ २० ॥ और प्रियमित्रों के सहित हास्य परिहास तथा वनविहार आदि अनेक कार्य कियेहैं. हे भद्रे ! ऐसा क्या कार्य नहीं किया है, जो तुम मेरा पलित (पका केश) देखकर भीत होती हो ! ॥२१॥ हे शुभे ! मेरे केश पलित हों अर्थात् पक जाँय, वलि प्रकटित हों और शरीर शिथिलताको प्राप्तहो इससे कुछ हानि नहीं है क्योंकि हे मानिनि ! मैं इस समय कृतकृत्य हुआहूं ॥ २२ ॥ हे भद्रे! मेरे मस्तकमें जो पकाहुआ केश देखा है, मैं वनाश्रमका आश्रय करके उसकी चिकित्सा करूंगा ॥ २३ ॥बालकपनमें बालक्रीडा, तथा कौमार और यौवनमें भी उसके

अधीताःसकलावेदाइष्टायज्ञाःसहस्रशः ॥ दत्तंद्विजानांपुत्राश्चसमुत्पन्नावरानने ॥१९॥ भुक्ताभोगास्त्वयासार्द्धं येमर्त्यैरंतदुर्लभाः ॥ सम्यक्चपालितापृथ्वी शौर्ययुद्धेष्वनुष्ठितम् ॥ २० ॥ मित्रैःसहेष्टैर्हसितंविहृतंचवनान्तरे ॥ किमन्यत्रकृतंभद्रेपलितेभ्योबिभेषियत् ॥ २१ ॥ भवन्तुकेशाःपलितावलयः सन्तुमेशुभे ॥ शैथिल्यमेतुमेकायःकृतकृत्योऽस्मिमानिनि ॥ २२ ॥ मूर्ध्नियद्दर्शितंभद्रेभवत्यापलितंमम ॥ चिकित्सामेवतस्याहंकरोमिवनसंश्रयात् ॥ ॥ २३ ॥ बाल्येबालक्रियापूर्वंतद्वत्कौमारकेचया ॥ यौवनेचापियायोग्यावार्द्धकेवनसंश्रया ॥ २४ ॥ एवंमत्पूर्वजैर्भद्रेकृतंतत्पूर्वजैश्चयत् ॥ अतोनतेश्रुपातस्यकिंचित्पश्यामिकारणम् ॥ २५ ॥ अलन्तेमन्युनाभद्रेनन्वभ्युदयकारिमे ॥ दर्शनंपलितस्यास्यमारोदीर्निष्प्रयोजनम् ॥ २६ ॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ ततःप्रणम्यतंभूपाःपौराश्चैवसमीपगाः ॥ साम्नाप्रोचुर्महीपालामहर्षेराज्यवर्धनम् ॥ २७॥ नरोदितव्यमनयातवपत्न्यानराधिप ॥ रोदितव्यमिहास्माभिरथवासर्वजन्तुभिः ॥ २८ ॥

योग्य कार्य (विद्याभ्यास विषयभोगादि) सपादन करके वृद्धावस्थामें वनकाही आश्रय करना उचित है ॥२४॥ हेभद्रे ! मेरे पूर्वपुरुषगण और उनकेभी पूर्वपूर्व पुरुषगण इसीप्रकार करते आये हैं,अतएव मैं तुम्हारे अश्रुपातका कोईभी कारण नहीं देखताहूं हे भद्रे ! शोक परित्याग करो॥ २५॥मेरा यह पलित केश दीखना भाग्योदयकारी है, अतएव निष्प्रयोजन रोदन मत करो ॥२६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे महर्षे! अनन्तर समीपस्थ भूपाल और पौरगण राजा राज्यवर्द्धनको प्रणाम करके विनय पूर्वक कहने लगे ॥ २७ ॥ हे नराधिप ! आपकी पत्नीका रोदन अनावश्यक है किन्तु हमारा अथवा संपूर्ण जन्तुओंकाही इस समय रोदन काल उपस्थित हुआहै॥ २८॥

हे नाथ ! आप हमारे प्रतिपालक हैं, हे नृप ! आपने जो वनवास आश्रय करनेकी बात कही इससे हमारे प्राण निकले जाते हैं ॥ २९ ॥ यदि आप वनमें जाँयगे, तो हमभी सब वहाँ चलेंगे । हे नाथ ! आपके वनवासी होनेपर पृथ्वीवासियोंकी निःसंदेह श्रौतस्मार्त्त अशेष क्रियाकी हानि होगी ॥ ३० ॥ इसमें यदि धर्मकी बाधा विचारते हो तो इस संकल्पको परित्याग कीजिये ॥ ३१ ॥ हे नराधिप ! आपने सातहजारवर्ष इस पृथ्वीका पालन किया है, उससे कैसे महापुण्यका उदय हुआ है, देखिये ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! आप वनमें वास करके जो तप करेंगे, वह इस पृथ्वीपालनके षोडशभागके समानभी नहीं होगा ॥ ३३ ॥ राजाने कहा—मैंने सातहजारवर्ष इस पृथ्वीका पालन किया है, अब मेरे वनवासकाही उपयुक्त समय उपस्थित है ॥ ३४ ॥

त्वंब्रवीषियथानाथवनवासाश्रितंवचः ॥ पतन्तितेननःप्राणालालितानांत्वयानृप ॥ २९ ॥ सर्वेयास्यामहेभूपयदियातिभवान्वनम् ॥ ततोऽशेषक्रियाहानिः सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥ ३० ॥ भविष्यतिनसन्देहस्त्वयिनाथवनाश्रये ॥ साचधर्मोपघाताययदितत्प्रविमुच्यताम् ॥ ३१ ॥ सप्तवर्षसहस्राणित्वयेयंपालिता मही ॥ तत्समुत्थंमहापुण्यमालोकयनराधिप ॥ ३२ ॥ वनेवसन्महाराजत्वंकरिष्यसियत्तपः ॥ तन्महीपालनस्यास्यकलांनार्हतिषोडशीम् ॥ ३३ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ सप्तवर्षसहस्राणिमयेयंपालितामही ॥ इदानींवनवासस्यममकालोयमागतः ॥ ३४ ॥ ममापत्यानिजातानिदृष्ट्वामेऽपत्यसन्ततीः ॥ स्वल्पैरहोभिर्मेह्यन्तकोनसहिष्यति ॥ ३५ ॥ यदेतत्पलितंमूर्ध्नितद्विजानीतनागराः ॥ दूतभूतमनार्य्यस्यमृत्योरत्युग्रकर्मणः ॥ ३६ ॥ सोऽहं राज्येसुतंकृत्वाभोगांस्त्यक्त्वावनाश्रयः ॥ तपस्तप्स्येसमायान्तिनयावद्यमसैनिकाः ॥ ३७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोयियासुःसवनंदैवज्ञानवनीपतिः ॥ पुत्रराज्याऽभिषेकायदिनलग्नान्यपृच्छत ॥ ३८ ॥ श्रुत्वाचतेतुनृपतेर्वचोव्याकुलचेतसः ॥ दिनंलग्नंचहोराश्चनविदुःशास्त्रदृष्टयः ॥ ३९ ॥ ऊचुश्चतंमहीपालं दैवज्ञावाष्पगद्गदम् ॥ ज्ञानानिनःप्रणष्टानिश्रुत्वैतत्तेवचोनृप ॥ ४० ॥

मेरे पुत्र उत्पन्न होगये हैं, अब उन सब पुत्रोंकी सन्तानको देखकर अन्तक (यम) अल्पकालके लिये भी सहन नहीं करेंगे अर्थात् शीघ्रही आयु शेष होगी ॥ ३५ ॥ हे नगरवासियो ! मेरे मस्तकमें जो पलित केश देखा है, इसीको उग्रकर्मा अनार्य मृत्युका दूत जानना चाहिये ॥ ३६ ॥ अतएव मैं पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करके भोगपरित्यागपूर्वक वनवासी हो यमसेनाके आगमनकालपर्यन्त तपस्या करूंगा ॥ ३७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर पृथ्वीपतिने, वन जानेमें स्थिर संकल्प हो ज्योतिषियोंसे पुत्रके राज्याभिषेकका दिन लग्न पूछा ॥ ३८ ॥ ज्योतिषीगण शास्त्रदर्शी होकरभी राजाका वचन सुननेसे व्याकुलचित्तताके कारण दिन लग्न होरा इत्यादिके देखनेमें असमर्थ होकर ॥ ३९ ॥ वाष्पगद्गद वाणीके द्वारा राजासे कहनेलगे हे नृप ! आपका वचन सुननेसे हमारा ज्ञान नष्ट होगयाहै ॥ ४० ॥

हे मुने ! फिर क्रमानुसार अन्यान्य नगर अधीन हुए राष्ट्र और उस राजधानीसे अनेकानेक वृद्ध द्विजश्रेष्ठ गण ॥ ४१ ॥ आय वनवासेच्छुक राजासे मस्तक कम्पायमान करतेहुए कहनेलगे ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! प्रसन्न हूजिये । अनुग्रहपूर्वक पूर्वकेसमान हमारा पालन कीजिये । हे भूपाल ! आपके वनगमन करनेसे समस्त मनुष्य अत्यन्त दुःखी होजायँगे ॥ ४३ ॥ अतएव हे राजन् ! जिससे संपूर्ण जगत् दुःखी न हो, आप वही कीजिये हे वीर ! हम और केवल थोडे काल जियेंगे इसके बीचमें तुम्हारे शून्य सिंहासनको देखनेकी अभिलाषा नहीं करते ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले । इसप्रकार उन सब तथा अन्यान्य ब्राह्मणगण पौरगण भूपालगण अमात्य

ततोऽन्यनगरेभ्यश्च भृत्यैराष्ट्रेभ्यएवच ॥ ततस्तस्माच्चनगरात्प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ॥४१॥ समुत्पत्यमहीपालंतंयियासुंमुनेवनम् ॥ प्रकम्पिशिरसोभूत्वाप्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥४२॥ प्रसीदपाहिनोराजन्पालिताःस्मयथापुरा ॥ सीदिष्यत्यखिलोलोकस्त्वयिभूपवनाश्रये ४३ ॥ त्वंकुरुष्वतथाराजन्यथानोसीदतेजगत् ॥ यावज्जीवामहेवीरस्वल्पकालमिमेवयम् ॥ नेच्छामश्चभवच्छून्यंद्रष्टुंसिंहासनंविभो ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्येवंतैस्तथान्यैश्चद्विजैःपौरपुरःसरैः ॥ भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्चराजाप्रोक्तःपुनःपुनः ॥४५॥ वनवासविनिर्बन्धंनोपसंहरतेयदा ॥ क्षमिष्यत्यन्तकोनेतिददौसचतदोत्तरम् ॥ ४६ ॥ ततोऽमात्याश्चभूपाश्चपौरवृद्धास्तथाद्विजाः ॥ समेत्यमन्त्रयामासुःकिमत्रक्रियतामिति ॥४७॥ तेषांमन्त्रयतांविप्रनिश्चयोऽयमजायत ॥ अनुरागवतांतत्रमहीपालेऽतिधार्मिके ॥ ४८ ॥ सम्यग्ध्यानपराभूत्वाप्रार्थयामःसमाहिताः ॥ तपसाराध्यभास्वन्तमायुरस्यमहीपतेः ॥ ४९ ॥ तत्रैकनिश्चयाःकार्य्येकेचिद्गेहेचभास्करम् ॥ सम्यगर्घोपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ॥ ५० ॥

और भृत्यगणके वारंवार अनुरोध करनेपरभी ॥ ४५ ॥ उन्होंने वनवासकी कामना परित्याग न करके 'यम कभी क्षमा न करेंगे' केवल यही उत्तर दिया ॥ ४६ ॥ तब ब्राह्मण, पौरवृद्ध, अमात्य और भृत्यगण मिलित होकर परामर्श करने लगे कि, "इससमय क्या कियाजाय ?" ॥ ४७ ॥ हे विप्र ! धार्मिकप्रवर राजाके प्रति अनुरागी उन सब ब्राह्मणादिकोंने परामर्शमें यही स्थिर किया कि ॥ ४८ ॥ हम सम्यक् प्रकार ध्यानमें रत होकर तपस्याके द्वारा भास्करकी आराधना करें और उनसे इन महीपतिकी आयु माँगें ॥ ४९ ॥ अनन्तर वह सब इस कार्यमें एक निश्चयहो कोई कोई घरमें अर्घ्योपचारादि उपहारद्वारा भास्करकी पूजा करने लगे ॥ ५० ॥

कोई मौनी होकर ऋक् मंत्रके जपद्वारा, कोई यजुर्वेदानुयायी और कोई सामानुयायी जपद्वारा रविका संतोष साधन करने लगे ॥ ५१॥ अपर कोई नदीके पुलि नमें निराहार तपस्याचरण करके परिश्रमसहित भास्करकी आराधना करने लगे ॥ ५२ ॥ कोई अग्निहोत्रमें तत्पर हुए दिनरात रविसूक्तका जप करने लगे ॥ और कोई भास्करकी ओर दृष्टि लगाकर खडे रहे॥५३॥ इस भाँति वह उस उस प्रसिद्ध विधिके अनुसार अनेक प्रकारसे सूर्यकी आराधनामें दृढसंकल्प रहे ॥ ॥ ५४ ॥ उनका इस प्रकार सूर्यकी आराधनामें अतिशय यत्न देख, सुदामा नामक गन्धर्वने वहाँ आनकर कहा ॥ ५५ ॥ हे ब्राह्मणो ! यदि भानुकी आराधना कर नाही आपका अभीष्ट है, तो जिससे वह प्रसन्न हों, उसी कार्यके करनेकी चेष्टा करो ॥ ५६ ॥ कामरूप महापर्वतमें सिद्धोंके द्वारा सेवित 'गुहविशाल' नामक

अपरेमौनिनोभूत्वाऋग्जापेनतथाऽपरे ॥ यजुषामथसाम्नांचतोषयाञ्चक्रिरेरविम् ॥५१॥ अपरेचनिराहारानदीपुलिनशायिनः ॥ तपांसिचक्रुरिच्छंतोभास्क राराधनंद्विजाः ॥ ५२ ॥ अग्निहोत्रपराश्चान्येरविसूक्तान्यहर्निशम् । जेपुस्तत्रापरेतस्थुर्भास्करेन्यस्तदृष्टयः ॥५३॥ इत्येवमतिनिर्बन्धंभास्कराराधनंप्रति ॥ बहुप्रकारंचक्रुस्तेतंतंविधिमुपाश्रिताः ॥ ५४ ॥ तथातुयततांतेषांभास्कराराधनंप्रति ॥ सुदामनामागन्धर्वउपगम्येदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ यद्याराधन मिष्टंवोभास्करस्यद्विजातयः ॥ तदेतत्क्रियतांयेनभानुःप्रीतिमुपैष्यति ॥५६॥ तस्माद्गुहविशालाख्यंवनंसिद्धनिषेवितम् ॥ कामरूपेमहाशैलेगम्यतांतत्रवैलघु ॥ ५७ ॥ तस्मिन्नाराधनंभानोःक्रियतांसुसमाहितैः ॥ सिद्धक्षेत्रंहितंतत्रसर्वकामानवाप्स्यथ ॥ ५८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतितेतद्वचःश्रुत्वा गत्वातत्काननंद्विजाः ॥ ददृशुर्भास्वतस्तत्रपुण्यमायतनंशुभम् ॥ ५९ ॥ तत्रतेनियताहारावर्णाविप्रादयोद्विज॥ धूपपुष्पोपहाराढ्यांपूजांचक्रुरतन्द्रिताः ॥ ॥ ६० ॥ पुष्पानुलेपनाद्यैश्चधूपगन्धादिकैस्तथा ॥ जपहोमान्नदानाद्यैःपूजनंतेसमाहिताः ॥ कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन्विवस्वन्तंद्विजातयः ॥ ६१ ॥

वनमें शीघ्र जाकर ॥ ५७॥ वहां सावधान चित्तसे भानुकी आराधना करो, इससे आपकी वांछित अभिलाषा सिद्ध होगी, क्योंकि इन सब कार्योंमें सिद्धक्षेत्रही अधिक फलदायकहै ॥५८॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम ! ब्राह्मणगण गन्धर्वके उक्त वचन सुनकर उस वनमें गये और वहां भगवान् भास्करका पवित्र मन्दिर देखा ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणादि सब वर्णोंनेही उस स्थानमें नियताहार अवलम्बनपूर्वक आलस्यरहित हो धूप और पुष्पादि उपहारद्वारा भास्करदेवकी पूजा करी ॥ ६० ॥ हे ब्रह्मन् ! अनुलेपन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, जप, होम और नैवेद्य इत्यादिके द्वारा सावधानचित्तसे पूजा करते करते ब्राह्मणगण सूर्य देवकी

स्तुति करने लगे ॥ ६१ ॥ ब्राह्मण बोले--देव, दानव, यक्ष और ज्योतिष्कग्रहोंमें अधिक तेजस्वी सूर्यदेवकी हम शरणागत हुये हैं ॥ ६२ ॥ जो देवेश्वर आकाशमें स्थित होकर संपूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हैं, जो किरणोंसे वसुधा और अन्तरिक्षको व्याप्त कर रहेहैं ॥ ६३ ॥ जो भास्कर, सविता, दिवा कर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्तदीधिति ॥६४॥ और योगीश्वर नामसे कथित हैं, जो चारोंयुगके अन्तमें दुर्निरीक्ष्य कालाग्निस्वरूप हैं जो अनन्त, रक्त, पीत, श्वेत, कृष्ण हैं ॥ ६५ ॥ जो ऋषियोंके अग्निहोत्रकालमें यज्ञदेवाधिष्ठाता हैं, जो अक्षर और परमगुह्य अति उत्तम मोक्षद्वारा ब्रह्मस्वरूप हैं जो एकवार जोडेहुए छन्दो रूप अश्वद्वारा आकाशगामी हैं जो उदयास्त गमनमें और सुमेरुकी प्रदक्षिणामें सदा नियुक्त हैं और ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो मिथ्या, सत्य, पुण्यतीर्थ और पृथक्

॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ ॥ देवदानवयक्षाणांग्रहाणांज्योतिषामपि ॥ तेजसाभ्यधिकंदेवंव्रजामशरणंरविम् ॥ ६२ ॥ दिविस्थितंचदेवेशंद्योतयन्तंसमन्ततः ॥ वसुधामन्तरिक्षंचव्याप्नुवन्तंमरीचिभिः ॥ ६३ ॥ आदित्यंभास्करंभानुंसवितारंदिवाकरम् ॥ पूषाणमर्यमाणंचस्वर्भानुंदीप्तदीधितिम् ॥६४॥ चतुर्युगान्त कालाग्निदुष्प्रेक्ष्यंप्रलयान्तगम् ॥ योगीश्वरमनन्तंचरक्तंपीतंसितासितम् ॥ ६५ ॥ ऋषीणामग्निहोत्रेषुयज्ञदेवेष्ववस्थितम् ॥ व्रजामशरणंदेवंतेजोराशिंतमच्यु तम् ॥ अक्षरंपरमंगुह्यंमोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥ ६६ ॥ छन्दोभिरश्वरूपैश्चसकृद्युक्तैर्विहङ्गमम् ॥ उदयास्तमनेयुक्तंसदामेरोःप्रदक्षिणे ॥ ६७ ॥ अनृतंचऋतंचै वपुण्यतीर्थंपृथग्विधम् ॥ विश्वस्थितिमचिन्त्यंचप्रपन्नाः स्मप्रभाकरम् ॥ ६८ ॥ योब्रह्मायोमहादेवोयोविष्णुर्यः प्रजापतिः ॥ वायुराकाशमापश्चपृथिवीगि रिसागराः ॥ ६९ ॥ ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्यावानस्पत्यंद्रुमौषधम् ॥ व्यक्ताव्यक्तेषुभूतेषुधर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥ ७० ॥ ब्राह्मीमाहेश्वरीचैववैष्णवीचैवतेतनुः ॥ त्रि धायस्यस्वरूपन्तुभानोर्भास्वान्प्रसीदतु ॥ ७१ ॥ यस्यसर्वमयस्येदमङ्गभूतंजगत्प्रभोः ॥ सनःप्रसीदतांभास्वाञ्जगतांयश्चजीवनम् ॥७२॥ यस्यैकमक्षरंरूपं प्रभामण्डलदुर्द्दशम् ॥ द्वितीयमैन्दवंसौम्यंसनोभास्वान्प्रसीदतु ॥ ७३ ॥

प्रकारसे विश्वस्थितिस्वरूप हैं, उन्हीं अदितिके गर्भसे उत्पन्न अनन्त अचिन्त्य आदिदेव प्रभाकरका हमने आश्रय लिया है ॥ ६८ ॥ जो ब्रह्मा हैं, जो महादेव हैं, जो विष्णु हैं, जो प्रजापति हैं, जो वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र ॥ ६९ ॥ ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रादि, वनस्पति, वृक्ष और ओषधीस्वरूप हैं जो व्यक्ता व्यक्त भूतगणोंके धर्माधर्मप्रवर्त्तक हैं ॥ ७० ॥ और ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा वैष्णवी तनुभेदसे जिनका स्वरूप त्रिधा विभिन्न हुआ है, वह भास्कर हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥ ७१ ॥ सब पदार्थही जिन अनादि जगत्प्रभुकी गोदीमें स्थित हैं और जो जगत्के जीवनस्वरूप हैं, वह भास्वान् हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥ ७२ ॥ जिनका अद्वितीय प्रकाशमान प्रभामण्डल दुर्निरीक्ष्य है दिवाकर और सौम्य सुधाकर यह दो रूप हैं, वह भास्करदेव हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥ ७३ ॥

जिनके उन प्रसिद्ध दो रूपोंसे यह अग्नीसोममय विश्व निर्मित हुआ है, वही भास्कर हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥ ७४ ॥ मार्कण्डे यजी बोले—हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार जब उन्हों ने अत्यन्त भक्तिसहित तीन महीनेतक स्तवपाठपूर्वक पूजा करी, तब भगवान् भास्कर सन्तुष्ट हुए ॥ ॥ ७५ ॥ और स्वयं दुर्निरीक्ष्य होकरभी उन्होंने मण्डलसे निकल अपने उदयकालीन मण्डलकी प्रभासे उनको दर्शन दिया ॥ ७६ ॥ तब उन मनुष्योंने उनका स्पष्टरूप देखनेसे पुलकित और भक्तिनम्र हो उन अनादि सविताको यह कहकर प्रणाम किया ॥ ७७ ॥ हे सहस्ररश्मे ! तुमको नमस्कार है तुम समस्त भूतके कारण और अखिल जगत्के पताकास्वरूप हो। हेअखिलयज्ञेश्वर! तुम्हीं पूज्य,तुम्हीं सब यज्ञोंके आधार और योगविद् पुरुषों के ध्यानका विषय हो,तुम हमारे प्रति प्रसन्नहोओ

ताभ्यांचतस्यरूपाभ्यामिदंविश्वंविनिर्मितम् ॥ अग्नीषोममयंभास्वान्सनोदेवःप्रसीदतु ॥ ७४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्थंस्तुत्यातदाभक्त्यासम्यक्पूजाविधानतः ॥ तुतोषभगवान्भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ॥ ७५॥ ततःसमण्डलादुद्यन्निजार्बिबसमप्रभः॥ अवतीर्यददौतेभ्योदुर्दृशोदर्शनंरविः ॥७६॥ ततस्तेस्पष्टरूपंतंसवितारमजंजनाः ॥ पुलकोत्कम्पिनोविप्राभक्तिनम्राः प्रणेमिरे॥ ७७॥ नमोनमस्तेस्तुसहस्ररश्मेसर्वस्यहेतुस्त्वमशेषकेतुः ॥ पातात्वमीड्योऽखिलयज्ञधामध्येयस्तथायोगविदांप्रसीद ॥ ७८ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेभानुस्तवोनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ ततःप्रसन्नोभगवान्भानुराहाखिलाञ्जनान् ॥ व्रियतांयदभिप्रेतंमत्तःप्राप्तुंद्विजादयः ॥ १ ॥ ॥मार्कंडेयउवाच ॥॥ ततस्तेप्रणिपत्योचुर्विप्रक्षत्रादयोजनाः ॥ ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्यपुरः स्थितम् ॥ २ ॥ ॥ प्रजाऊचुः ॥ ॥ भगवन्यदिनोभक्त्याप्रसन्नस्तिमिरापह ॥ ३ ॥ दशवर्षसहस्राणिततोनोजीवतांनृपः ॥ निरामयोजितारातिः सुकोशःस्थिरयौवनः ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तथेत्युक्त्वाजनान्भास्वानदृश्योऽभून्महामुने ॥ तेऽपिलब्धवराहृष्टाःसमाजग्मुर्जनेश्वरम् ॥ ५ ॥

॥७८॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भानुस्तवो नाम षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसके पीछे भगवान भानुने प्रसन्न होकर उन संपूर्ण जनों से कहा हे द्विजातिगण ! तुमने मुझसे जो प्राप्त करनेकी अभिलाषा की है, उसको मांगो ॥ १ ॥ तब द्विजाति प्रजागणोंने उष्णांशुको सन्मुख देख, भ्रमसहित प्रणाम कर उन वरदेनेवाले जगदीश्वरसे कहा ॥ २ ॥ प्रजाने कहा हे भगवन् ! हे तिमिरहारी ! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हुए हैं ॥ ३ ॥ तो हमारे राजा राज्यवर्द्धन निरामय रोगरहित विजितशत्रु पूर्णकोश और स्थिरयौवन होकर दशहजार वर्ष जीवित रहैं ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे महामुने !

भगवान् उस सब प्रजासे तथास्तु कहकर अन्तर्धान होगये । और वहभी वरलाभ करनेसे प्रसन्नचित्त हो राजाके समीप आये ॥ ५ ॥ हे द्विज ! सहस्रांशु सूर्य के समीप वरलाभ इत्यादि जो कुछ हुआ था ब्राह्मणों ने वह सब राजासे निवेदन किया ॥ ६ ॥ हे द्विज ! नरेन्द्रपत्नी मानिनी यह सुनकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुई तथा परमहर्षसे शरीर पुलकित होगया किन्तु राजा उनसे कुछ न कहकर बहुतकालतक चिन्ता करते रहे ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त मानिनीने प्रसन्न चित्तहो पतिसे कहा हे महीपाल ! सुवृद्ध आयुके द्वारा आप वृद्धिको प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥ हे द्विज ! आनन्दचित्त मानिनीके द्वारा इसप्रकार सत्कारको प्राप्त होकरभी राजाने चिन्ताकुल चित्तसे कोई उत्तर नहीं दिया ॥ ९ ॥ तब मानिनी फिर नीचेको मुख किये चिन्ताकुलभर्ता से कहने लगी । हे नृप ! आप ऐसे आनन्दके

यथावृत्तंचतेतस्मैनरेन्द्रायन्यवेदयन् ॥ वरंलब्ध्वासहस्रांशोःसकाशादखिलंद्विज ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वाजहर्षेतस्यसापत्नीमानिनीद्विज ॥ (प्रहर्षपरमंयाताहर्षोद्गततनूरुहा) ॥ सचराजाचिरंदध्यौनाहकिंचिच्चतंजनम् ॥ ७ ॥ ततः सामानिनीभूपंहर्षापूरितमानसा ॥ दिष्ट्याऽऽयुषामहीपालवर्द्धस्वेत्याहतंपतिम् ॥ ॥ ८ ॥ तथातयामुदाभर्त्तामानिन्याथसभाजितः ॥ नाहकिंचिन्महीपालश्चिन्ताजडमनाद्विज ॥ ९ ॥ सापुनःप्राहभर्त्तारंचिन्तयानमधोमुखम् ॥ कस्मान्न हर्षमभ्येोषिपरमाभ्युदयेनृप ॥ १० ॥ दशवर्षसहस्राणिनीरुजःस्थिरयौवनः ॥ भावीत्वमद्यप्रभृतिकिंतथापिनहृष्यसे ॥ ११ ॥ किन्तुतत्कारणंब्रूहियच्चिन्ताकृष्टमानसः ॥ परमाभ्युदयेऽपित्वंसंप्राप्तेपृथिवीपते ॥ १२ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ कथमभ्युदयोभद्रेकिंसभाजयसेचमाम् ॥ प्राप्तोदुःखसहस्राणांकिंसभाजनमिष्यते ॥ १३ ॥ दशवर्षसहस्राणिजीविष्याम्यहमेककः ॥ नत्वंतवविपत्तौमेकिन्नदुःखंभविष्यति ॥ १४ ॥ पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्चतथान्यानिष्टबान्धवान् ॥ पश्यतोमेमृतान्दुःखंकिमल्पंहिभविष्यति ॥ १५ ॥

समयमेंभी किस निमित्त हर्षको प्राप्त नहीं होते? ॥ १० ॥ आप रोगरहित और स्थिरयौवन होकर अबसे दशहजारवर्ष जीवित रहेंगे इसपरभी आप प्रसन्न क्यों नहीं होते ॥ ११ ॥ हे पृथ्वीपते ! ऐसे आनन्दकालके उपस्थित होनेपरभी किस निमित्त आप चिन्ताकुल होरहेहैं इसका कारण प्रकाश कीजिये ॥ १२ ॥ राजा बोले हे भद्रे ! मेरा क्या भाग्योदय हुआ तुम क्यों मेरा सत्कार करतीहो ? सहस्रों दुःखके प्राप्तहोनेमें क्या आनंद भोगूंगा ? ॥ १३ ॥ मैं अकेला दशहजार वर्ष जीवित रहूंगा किन्तु तुम नहीं रहोगी, सुतरां तुम्हारी विपत्तिमें क्या मुझको दुःख नहीं होगा ॥ १४ ॥ पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और अन्यान्य प्रियबान्धवोंकी मृत्यु

देखनेसे क्या मुझको अल्प दुःख होनेकी संभावनाहै॥ १५॥ हे भद्रे ! अत्यन्त भक्त भृत्यगण और मित्रों के मरनेपर मुझको सदा अपार दुःख अनुभव कर नापड़ेगा॥ १६॥ जिन्हों ने मेरे लियेही नसोंको सुखाकर तपस्या की है, उनकीभी मृत्यु होगी किन्तु मैं जीवित रहकर भोग सुख अनुभव करूंगा यह क्या मुझको धिक्कार नहीं है ? ॥ ॥ १७ ॥ हे वरारोहे ! यह जो दश हजार वर्षकी परमायु है सो मुझको आपदा उपस्थित हुई है, यह भाग्योदय नहीं है, तुम इस बातको विना विचारे क्यों मुझे हर्षित करतीहो ? ॥ १८ ॥ मानिनी बोली हे महाराज ! आपने जो कहा यह इसीप्रकार दुःखकर है, इसमें सन्देह नहीं मैंने तथा पौरवर्ग ने आपके प्रीति प्रीतिसे यह दोष नहीं देखा ॥ १९ ॥ हे नरनाथ ! ऐसा होनेपर अब क्या कर्त्तव्य हैं, सो विचारिये क्योंकि भगवान् रविने प्रसन्नहोकर जो कहाहै वह मिथ्या होनेवाला

भृत्येषुचातिभक्तेषुमित्रवर्गेतथामृते ॥ भद्रेदुःखमपारंमेभविष्यतितुसन्ततम् ॥१६॥ यैर्मदर्थंतपस्तप्तंकृशैर्धमनिसन्ततैः ॥ तेमरिष्यन्त्यहंभोगीजीविष्यामीति धिक्करम् ॥ १७ ॥ सेयमापद्वरारोहेप्राप्तानाभ्युदयोमम ॥ कथंवामन्यसेनत्वंयत्सभाजयसेऽद्यमाम् ॥ १८ ॥ ॥ मानिन्युवाच ॥ महाराजयथात्थत्वंतथै तन्नात्रसंशयः ॥ मयापौरैश्चदोषोऽयंप्रीत्यानालोकितस्तव ॥ १९ ॥ एवंगतेऽत्रकिंकार्य्यंनरनाथविचिन्त्यताम् ॥ नान्यथाभावियत्प्राहप्रसन्नोभगवान्रविः ॥ ॥२० ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ उपकारःकृतःपौरैःप्रीत्याभृत्यैश्चयोमम ॥ कथंभोक्ष्याम्यहंभोगान्गत्वातेषामनिष्कृतिम् ॥ २१ ॥ सोऽहमद्य प्रभृत्यद्रिंगत्वानियतमानसः ॥ (पौरलोकहितार्थंचतोषयिष्यामिभास्करम् ॥ यथापौराममकृतेबान्धवाश्चसमन्ततः ॥ आराधनायदेवेशंतथाहमपिसांप्रतम्)॥ तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यतः ॥ २२ ॥ दशवर्षसहस्राणियथाहंस्थिरयौवनः ॥ तस्यप्रसादाद्देवस्यजीविष्यामिनिरामयः ॥ २३ ॥ तथाय दिप्रजाःसर्वाभृत्यास्त्वंचसुताश्चमे ॥ पुत्राःपौत्राःप्रपौत्राश्चसुहृदश्चवरानने ॥ २४ ॥

नहीं है ॥ २० ॥ राजाबोले—पौर और भृत्यगणों ने प्रसन्नमन होकर मेरा जो उपकार किया है, मैं उससे विना निष्कृति लाभकिये किसप्रकार भोगोंका अनुभव करूं ॥ २१ ॥ सो मैं अब प्रभृति पर्वतपर जाय दुष्कर तपस्या कर पुरवासियों के हितके निमित्त दुष्कर तप करूंगा जैसे पुरवासी और बांधवोंने मेरे निमित्त आराधनाकी है वैसे मैं भी उनके निमित्त आराधना करूंगा सूर्यदेवके आराधनके निमित्त निराहार हो तप करूंगा ॥ २२ ॥ जिसप्रकार उनके प्रसादसे स्थिर, यौवन और निरामय (रोगरहित) होकर मैं दशहजार वर्ष पर्यंत जीवित रहूंगा ॥ २३ ॥ हे वरानने ! उसीप्रकार मेरी समस्त प्रजा, भृत्य, तुम, कन्या, पुत्र पौत्र, प्रपौत्र, और सुहृद्गणभी जीवित रहें ॥ भगवान् रवि यदि इस प्रकार अनुग्रह प्रकाश करेंगे तो मैं प्रसन्नचित्तसे राज्यमें राजा होकर समस्त

राज्यसुख भोग करूंगा ॥ २४ ॥ २५ ॥ और यदि सूर्य ऐसा अनुग्रह नहीं करेंगे तो हे मानिनी ! जबतक मेरा प्राण नष्ट न होगा तबतक उसी पर्वतमें निराहार होकर तपस्या करूंगा ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले ! मानिनीने नराधिपका वचन 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया और फिर पतिके संग पूर्वोक्त पर्वतमें चलीगई ॥ ॥ २७ ॥ हेद्विज ! राजा स्त्रीसहित पूर्वोल्लिखित मन्दिरमें जाय भास्करकी सेवामें तत्परहो भानुकी आराधना करनेलगे ॥ २८ ॥ नरपति निराहारके कारण जिसप्रकार दिन दिन कृश होतेथे, रानी मानिनीभी उसीप्रकार क्षीणशरीरमें शीत वायु गरमी इत्यादिका कष्ट सहकर उग्र तपस्यामें नियुक्त हुई ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तम ! इसप्रकार जब उन्होंने भानुकी आराधना और महत् तपस्या करके एकवर्ष से अधिक समय बिताया तब दिवाकरने प्रसन्न होकर ॥ ३० ॥ समस्त भृत्य, पौर और पुत्रादिके

जीवन्त्येतंप्रसादंचकरोतिभगवान्रविः ॥ ततोऽहंभविताराज्येभोक्ष्येभोगांस्तथामुदा ॥ २५ ॥ नचेदेवंकरोत्यर्कस्तदाद्रौतत्रमानिनि ॥ तपस्तप्स्येनिराहारो यावज्जीवितसंक्षयः ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्तासातदातेनतथेत्याहनराधिपम् ॥ जगामतेनचसमंसाऽपितंधरणीधरम् ॥ २७ ॥ सतदायतनंगत्वाभार्यायासहपार्थिवः ॥ भानोराराधनंचक्रेशुश्रूषानिरतोद्विज ॥ २८ ॥ निराहाराकृशासाचयथासौपृथिवीपतिः ॥ तेपेतपस्तथैवोग्रंशीतवातातपक्षमा ॥ २९ ॥ तस्य पूजयतोभानुंतप्यतश्चतपोमहत् ॥ साग्रेसंवत्सरेयातेततःप्रीतोदिवाकरः ॥ ३० ॥ समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणांचकृतेद्विज ॥ ददौयथाभिलषितंवरंद्विजवरोत्तम ॥ ३१ ॥ लब्ध्वावरंसनृपतिःसमभ्येत्यात्मनः पुरम् ॥ चकारमुदितोराज्यंप्रजाधर्मेणपालयन् ॥ ३२ ॥ ईजेयज्ञान्सचबहून्ददौदानान्यहर्निशम् ॥ मानिन्यासहितोभोगान्बुभुजेचसधर्मवित् ॥ ३३ ॥ दशवर्षसहस्राणिपुत्रपौत्रादिभिः सह ॥ भृत्यैः पौरैः प्रमुदितःसोऽभवत्स्थिरयौवनः ॥ ३४ ॥ तस्येतिचरितंदृष्ट्वाप्रमतिर्नामभार्गवः ॥ विस्मयाकृष्टहृदयोगाथामेतामगायत ॥ ३५ ॥ भानुभक्तेरहोशक्तिर्यद्राजाराज्यवर्द्धनः ॥ आयुषोवर्द्धनेजातःस्वजनस्यतथात्मनः ॥ ३६ ॥ इतितेकथितंविप्रयत्पृष्टोऽहंत्वयोदितः ॥ आदिदेवस्यमाहात्म्यमादित्यस्यविवस्वतः ॥ ३७ ॥ विप्रैतदखिलंश्रुत्वाभानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ पठंश्चमुच्यतेपापैःसप्तरात्रकृतैर्नरः ॥ ३८ ॥

लिये अभिलषित वर दिया ॥ ३१ ॥ अनन्तर राजा वर प्राप्तकरके अपने घर आये और हर्षितचित्तसे धर्मपूर्वक प्रजापालन करके राज्य करने लगे ॥ ३२ ॥ वह धर्मात्मा राजा अनेक भाँतिके यज्ञ दिन रात सत्पात्रमें दान और महिषी मानिनीके संग विविध भोगोंको भोगने लगे ॥ ३३ ॥ इसप्रकार उन्होंने पुत्र पौत्र भृत्य पौर इत्यादिके सहित प्रसन्नचित्तसे स्थिरयौवन होकर दश हजार वर्ष बिताये थे ॥ ३४ ॥ उससमय भृगुवंशोत्पन्न प्रमति नामक ऋषिने उनका यह चरित्र देखनेसे आश्चर्ययुक्त चित्तहो इसप्रकार गाथा गाई थी ॥ ३५ ॥ "भानुभक्तिकी क्या आश्चर्यप्रद शक्ति है ? जिसके बलसे राजा राज्यवर्द्धनने अपनी और आत्मीयजनोंकी आयु बढ़ाई है" ॥ ३६ ॥ हे विप्र ! तुमने आदिदेव विवस्वान् आदित्यके माहात्म्य विषयमें जो पूछा था वह तुमसे वर्णन किया ॥ ३७ ॥ मनुष्यगण भानुका यह

समस्त उत्तम माहात्म्य ब्राह्मणके मुखसे श्रवण और पाठ करनेके कारण सप्तरात्रके किये पापसे छूटजाते हैं ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य इन भानुका माहात्म्य बुद्धिमें धारण करके रखते हैं वह बुद्धिमानोंके महाकुलमें धनवान् अरोगी और महाप्राज्ञ होकर जन्म ग्रहणकरते हैं ॥ ३९ ॥ और बडी दक्षिणावाले यज्ञोंसे यजन करते हैं इस चरित्रको सुनकर अपने समान फल लाभ करते हैं हे मुनिसत्तम! मूर्खमनुष्यभी पापसे युक्त होकर यदि भास्करके इस जाप–समूह मेंसे जो कोई एक त्रिसंध्यामें जप करते हैं उनके पातक नष्ट होतेहैं ॥ ४० ॥ जिस देवमन्दिरमें रविका यह संपूर्ण माहात्म्य पढाजाता है भगवान् उसकी समीपताको नहीं छोडते ॥ ४१ ॥ अतएव हे ब्रह्मन्! तुमभी महत् पुण्यकी अभिलाषासे भानुका यह उत्तम महामाहात्म्य अन्तरमें धारण कर और जप कर॥ ४२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! जो पुरुष सुवर्णशृंग मढाकर अति सुन्दर पयस्विनी अर्थात् दूधवाली गाय दान करते हैं और जो पुरुष संयत होकर तीनदिन यह माहात्म्य सुनते हैं

अरोगीधनवानाढ्यः कुलेमहतिधीमताम् ॥ जायेतचमहाप्राज्ञोयश्चैतद्धारयेद्बुधः ॥ ३९ ॥ (यजतेचमहायज्ञैःसमाप्तवरदक्षिणैः ॥ श्रुत्वाचरितमेतद्धिसमानलभतेफलम् ॥) मन्त्राश्चयेऽत्राभिहिताभास्वतोमुनिसत्तम॥जपःप्रत्येकमेतेषांत्रिसंध्यंपातकापहः॥४०॥समस्तमेतन्माहात्म्यंयत्रचायतनेरवेः ॥ पठ्यतेतत्रभगवान्सान्निध्यंनविमुंचति ॥ ४१ ॥ तस्मादेतत्त्वयाब्रह्मन्भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ धार्य्यंमनसिजाप्यंचमहत्पुण्यमभीप्सता ॥ ४२ ॥ सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गींपयस्विनींगांप्रददातियोहि ॥ शृणोतिचैतत्त्र्यहमात्मवान्नरःसमंतयोःपुण्यफलंद्विजाग्र्य ॥४३॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभानोर्माहात्म्यंनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥ एवंप्रभावोभगवाननादिनिधनोरविः ॥ यस्यत्वंक्रौष्टुकेभक्त्यामाहात्म्यंपरि ृछसि ॥१॥ परमात्मासयोगिनांयुंजतांचेतसांलयम्॥ क्षेत्रज्ञःसांख्ययोगानांयज्ञेशोयज्विनामपि ॥ २ ॥ सूर्य्याधिकारंवहतोविष्णोरीशस्यवेधसः ॥ मनुस्तस्याभवत्पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ॥३॥ मन्वन्तराधिपोविप्रयस्यसप्तममन्तरम् ॥ इक्ष्वाकुर्नाभगोरिष्टोमहाबलपराक्रमः॥४॥नरिष्यन्तोऽथनाभागःपृषध्रोधृष्टएवच ॥ एतेपुत्रामनोस्तस्यपृथग्राज्यस्यपालकाः॥५॥

इन दोनोंका पुण्यफल समान जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे भाषाटीकायां भानोर्माहात्म्यंनाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे क्रौष्टुके ! तुमने भक्तिसहित मुझसे जिनका माहात्म्य पूछा था, वह अनादिनिधन भगवान् रवि इसप्रकार प्रभावशाली हैं ॥ १ ॥ वह संयतचित्त योगियोंके परमात्मा सांख्ययोगियोंके क्षेत्रज्ञ और याज्ञिकगणोंके यज्ञेश्वर हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर स्वरूप सूर्याधिकार वहनकारी उन मार्तण्डदेवके सर्वार्थ संशय शून्य मनुनामक पुत्र उत्पन्न हुआथा ॥ ३ ॥ जिस मनुका सप्तम मन्वन्तर इस समय वर्त्तमान है महाबलपराक्रमी इक्ष्वाकु, नाभाग, रिष्ट ॥ ४ ॥ नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र (पृषध्र) और धृष्ट नामक मनुके यह समस्त पुत्रगण पृथक् पृथक् राज्यके परिपालक ॥ ५ ॥

सभी विख्यातकीर्त्ति, एवं शास्त्रपारग और विशेष अस्त्राभिज्ञ थे। इसके पीछे कृतिश्रेष्ठ मनुने विशिष्टतर पुत्रकी कामनासे ॥ ६ ॥ मित्रा वरुणका यज्ञ किया था। हेमहामुने ! होताके अपचारसे उस यज्ञके अपहृत अर्थात् दूषित वा अंगहीन होनेपर ॥ ७ ॥ इलानाम्नी सुमध्यमा कन्याकी उत्पत्ति हुई थी। अनन्तर मनु यज्ञोत्पन्न उस कन्या को देखकर ॥ ८ ॥ मित्रावरुणकी स्तुति करनेलगे और बोले कि, आपके अनुग्रहसे मैं असाधारण पुत्र प्राप्त करूं ॥ ९ ॥ इसी अभिलाषासे यज्ञ करके यह कन्या पाई है, हे वरदगण! यदि आप प्रसन्न हुए हैं, तो आपके अनुग्रहसे मेरी यह कन्या ॥ १० ॥ अत्यन्त गुणवान् पुत्र होजाय। फिर दोनों देवताओंके 'तथास्तु' कहनेपर वह कन्या ॥ ११ ॥ इला तत्काल सुद्युम्ननामक पुत्र होगई। एक समय यही बुद्धिमान् मनुपुत्र वनमें मृगया (शिकार) के लिये जाकर ईश्वरके कोपसे ॥

विख्यातकीर्त्तयःसर्वेसर्वेशस्त्रास्त्रपारगाः ॥ विशिष्टतरमन्विच्छन्मनुःपुत्रंतथापुनः ॥ ६ ॥ मित्रावरुणयोरिष्टिंचकारकृतिनांवरः ॥ यत्रचापहुतेहोतुरपचारान्महामुने ॥७॥ इलानामसमुत्पन्नामनोःकन्यासुमध्यमा ॥ तांदृष्ट्वाकन्यकांतत्रसमुत्पन्नांततोमनुः ॥८॥ तुष्टावमित्रावरुणौवाक्यंचेदमुवाचह ॥ भवत्प्रसादात्तनयोविशिष्टोमेभवेदिति ॥९॥ कृतेमखेसमुत्पन्नातनयाममधीमतः ॥ यदिप्रसन्नौवरदौतदियंतनयामम ॥ १० ॥ प्रसादाद्भवतोःपुत्रोभवत्वतिगुणान्वितः ॥ तथेतिचाभ्यामुक्तेतुदेवाभ्यांसैवकन्यका ॥११॥ इलासमभवत्सद्यःसुद्युम्नइतिविश्रुतः ॥ पुनरीश्वरकोपेनमृगयामटतावने ॥१२॥ स्त्रीत्वमासादितंतेनमनुपुत्रेणधीमता ॥ पुरूरवसनामानंचक्रवर्तिनमूर्जितम् ॥ १३ ॥ जनयामासतनयंयत्रसोमसुतोबुधः ॥ जातेसुतेपुनःकृत्वासोऽश्वमेधंमहाक्रतुम् ॥१४॥ पुरुषत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नःपार्थिवोऽभवत् ॥ सुद्युम्नस्यत्रयःपुत्राउत्कलोविनयोगयः ॥१५॥ पुरुषत्वेमहावीर्य्यायज्विनःपृथुलौजसः ॥ पुरुषत्वेतुयेजातास्तस्यराज्ञस्त्रयः सुताः ॥१६॥ बुभुजुस्तेमहीमेतांधर्मेनियतचेतसः ॥ स्त्रीभूतस्यतुयोजातस्तस्यराज्ञःपुरूरवाः ॥१७॥ नसलेभेमहीभागंयतोबुधसुतोहिसः ॥ ततोवसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानंपुरोत्तमम् ॥ तस्मैदत्तंसराजाभूत्तत्रातीवमनोहरे ॥ १८ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुक्रमोनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

॥ १२ ॥ फिर यह मनुपुत्र स्त्री हुए थे। उसी समय सोमपुत्र बुधने उसके गर्भसे पुरूरवानामक तेजस्वी चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न किया, पुत्रोत्पत्तिके पीछे फिर अश्वमेध यज्ञ करनेसे ॥ १३ ॥ १४ ॥ वह सुद्युम्न पुरुषत्वको प्राप्त होकर राजा हुएथे सुद्युम्नके पुरुष होनेपर उनके उत्कल, विनय और गय नामक ॥ १५ ॥ महावीर याज्ञिक और विपुल तेजवाले तीन पुत्र हुए थे । उनके पुरुषकालमें जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ वही राज्य लाभ करके धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करते थे, राजाके स्त्री कालमें जो पुरूरवा उत्पन्नहुए थे ॥ १७ ॥ वह बुधके पुत्रहोनेसे पृथ्वीका भाग प्राप्त नहीं करसके किन्तु वसिष्ठजीकी आज्ञासे उनको प्रतिष्ठान नामक उत्तम पुर दियागया वह उसी मनोहर प्रदेशमें राजा हुए थे ॥ १८ ॥ इति श्रीमा०पु० भाषाटीकायां वंशानुक्रमोनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

मार्कण्डेयजीबोले—मनुपुत्र पृषध्र एकसमय मृगयाकी अभिलाषासे वनमें गयेथे । उन्होंने निर्जन वनमें इधर उधर भ्रमण करके भी ॥ १ ॥ कोई मृग नहीं पाया । किन्तु सूर्यकी किरणसे तप्त और भूख प्याससे पीडित होकर इधर उधर विचरण करते करते ॥ २॥ वहां किसी अग्निहोत्री ब्राह्मणकी खुलीहुई मनोहर होमधेनु लता के अन्तरमें छिपी देखी ॥ ३ ॥ उन्होंने उसको गवय (गौसदृशजीव) जान बाण मारा और वह धेनुभी बाणसे हृदय फटजानेके कारण पृथ्वीमें गिरगई ॥ ४ ॥ हे मुने ! अग्निहोत्री ऋषिका गौपालनमें नियुक्त ब्रह्मचारी और तपस्यानुरागी बाभ्रव्यनामक पुत्र तिस कालमें पिताकी होमधेनुको गिरता हुआ देख,

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ पृषध्राख्योमनोःपुत्रोमृगयामगमद्वनम् ॥ तत्रचंक्रममाणोऽसौविपिनेनिर्जनेवने ॥ १ ॥ नाससादमृगंकश्चिद्भानुदीधितिताpितः । क्षुत्तृट्तापपरीताङ्गइतश्चेतश्चचंक्रमन् ॥ २ ॥ सददर्शतदातत्रहोमधेनुंमनोहराम् ॥ लतान्तर्देहछिन्नार्धांब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥ सम न्यमानोगवयमिषुणातामताडयत् ॥ पपातसापितद्बाणविभिन्नहृदयाभुवि ॥ ४ ॥ ततोऽग्निहोत्रिणःपुत्रोब्रह्मचारीतपोरतिः ॥ ज्ञातवान्सापितुर्दृष्ट्वाहोमधेनुं निपातिताम् ॥ ५ ॥ गोपालःप्रेषितःपुत्रोबाभ्रव्योनामनामतः ॥ कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततोमुने ॥ ६ ॥ चुकोपविगलत्स्वेदजललोला विलेक्षणः ॥ तंक्रुद्धंप्रेक्ष्यसनृपःपृषध्रोमुनिदारकम् ॥ ७ ॥ प्रसीदेतिजगौकस्माच्छूद्रवत्कुरुषेरुषम् ॥ नक्षत्रियोनवावैश्यएवंक्रोधमुपैतिवै ॥ यथात्व शूद्रवज्जातोविशिष्टेब्रह्मणःकुले ॥ ८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतिनिर्भर्त्सितस्तेनसराज्ञामौलिनःसुतः ॥ शशापतंदुरात्मानंशूद्रएवभविष्यसि ॥ ९ ॥

क्रोधित हो अत्यन्त क्रोधसे नष्टज्ञान एवं पसीनेसे आर्द्र देह और अश्रुपूर्ण घूर्णित नेत्रोंसे राजाके शाप देनेमें उद्यत हुआ ॥ ५ ॥ ६ ॥ राजा पृषध्र मुनिबालकके अंगमें क्रोधसे पसीना निकलता हुआ देखकर कहने लगे ॥ ७ ॥ प्रसन्न हूजिये, क्यों शूद्रके समान ऐसा क्रोध करतेहो ? आप उत्तम ब्राह्मणके कुलमें जन्म ग्रहण करके जिसप्रकार शूद्र समान आचरण करते हैं, इस प्रकार किसी क्षत्रिय वा वैश्यकोभी कोपके वशीभूत नहीं देखा जाता ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—जब राजाने इस प्रकार "शूद्रवत्"कहकर तिरस्कार किया, तब अग्निहोत्री 'मौलि' ऋषिके उस पुत्रने दुर्मति राजाको

यह शाप दिया कि, "तुम शूद्रहीहोंगे॥ ९ ॥ और तुमने मेरे पिताकी होमधेनुका वध किया है, इस कारण तुम्हारी गुरुके मुखसे पढीहुई संपूर्ण ब्रह्मविद्या नष्ट होजायगी" ॥ १० ॥ हे विप्र ! राजाने इसप्रकार शापको प्राप्तहोकर शापव्यथित हृदयसे क्रोधपूर्वक प्रतिशाप देनेकी इच्छाकर हाथमें जल ग्रहण किया ॥ ११ ॥ तब द्विजोत्तम मुनिबालकभी राजाके विनाश करनेकी कामनासे अत्यन्त क्रोधित हुआ, इसी अवसरमें उसके पिता शीघ्रतासहित आय उसको निवारण करते हुए कहनेलगे ॥ ॥ १२ ॥ हे वत्स ! भावीकालका अहितकारी कोप परित्याग करो, परित्याग करो । ब्राह्मणोंकी शान्तिही इसलोक और परलोकमें मंगलकारी है ॥ १३ ॥ कोप तपस्याका नाशकर्ताहै और क्रोध होनेसे आयुक्षय होतीहै, ज्ञान लोप होता है, और अर्थहीनता अर्थात् दरिद्र होता है ॥ १४ ॥ क्रोधी पुरुष धर्म और अर्थ

प्रयास्यतिक्षयंब्रह्मन्यत्तेऽधीतंगुरोर्मुखात् ॥ होमधेनुर्ममगुरोर्यदियंहिंसितात्वया ॥ १० ॥ एवंशप्तोनृपःक्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः ॥ प्रतिशापपरोविप्रतोयंजग्राहपाणिना ॥ ११ ॥ सोऽपिराज्ञोविनाशायकोपंचक्रेद्विजोत्तमः ॥ तमभ्येत्यत्वरायुक्तोवारयामासवैपिता ॥ १२ ॥ वत्सालमलमत्यर्थंकोपेनातीववैरिणा ॥ ऐहिकामुष्मिकहितःशमएवद्विजन्मनाम् ॥१३॥ कोपस्तपोनाशयतिक्रुद्धोभ्रश्यत्यथायुषः ॥ क्रुद्धस्यगलतेज्ञानंक्रुद्धश्चार्थाच्चहीयते ॥ १४ ॥ नधर्मःक्रोधशीलस्यनार्थंचाप्नोतिरोषणः ॥ नालंसुखायकामाप्तिःकोपनाविष्टचेतसाम् ॥ १५ ॥ यदिराज्ञाहताधेनुरियंविज्ञानिनासता ॥ युक्तमत्रदयांकर्तुमात्मनोहितबोधिना ॥१६॥ अथवाऽजानताधेनुरियंव्यापादितामम ॥ तत्कथंशापयोग्योऽयंदुष्टंनास्यमनोयतः ॥१७॥ आत्मनोहितमन्विच्छन्बाधतेयोऽपरंनरः ॥ कर्तव्यामूढविज्ञानेदयातत्रदयालुभिः ॥१८॥ अज्ञानतःकृतेदण्डंपातयन्तिबुधायदि ॥ बुधेभ्यस्तमहंमन्येवरमज्ञानिनोनराः ॥ १९ ॥ नाद्यशापस्त्वयादेयःपार्थिवस्यास्यपुत्रक ॥ स्वकर्मणैवपतितागौरेषादुःखमृत्युना ॥ २० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ पृषध्रोऽपिमुनेःपुत्रंप्रणम्यानम्रकन्धरः ॥ प्रसीदेतिजगादोच्चैरज्ञानाद्धातितेतिच ॥ २१ ॥

संचय नहीं करसकता और कोपपरवशचित्त होनेपर कामप्राप्तिभी सुख संपादनमें समर्थ नहीं होती ॥ १५ ॥ यदि राजाने जानकरही इस धेनुकी हत्याकरी है तो इनके ऊपर, अपना हित चाहनेवाले पुरुषको दयाही करनी उचित है ॥ १६ ॥ और यदि अज्ञानसे उन्होंने मेरी धेनुको मारा है तो यह किसप्रकार शापके योग्य होसकतेहैं । क्योंकि इनका अन्तःकरण निर्दोष है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य अपने हितकी इच्छासे दूसरेको दुःख देतेहैं उन मूढबुद्धि मनुष्यों के ऊपरभी दयालु पुरुषोंको दयाही प्रकाश करनी चाहिये॥ १८॥और विनाजाने अपराधकरनेपर जो बुद्धिमान् पुरुष दण्ड देते हैं, उनकी अपेक्षा मैं अज्ञानी पुरुषोंको श्रेष्ठ समझता हूं ॥१९॥ अतएव हे पुत्र ! इस समय तुम राजाको शाप मत दो । गाय अपने कर्मके वशहोकरही इस दुःखकर मृत्युमुखमें गिरी है ॥ २० ॥ मार्कण्डेयजी बोले–फिर

पृषध्रभी मस्तक झुकाय मुनिपुत्रको प्रणामकर उच्चस्वरसे कहने लगे, प्रसन्न हूजिये, मैंने विना जाने धेनुकी हत्या करी है ॥ २१ ॥ हे मुने ! मैंने गवय विचार करही अवध्या गामी आपकी ईसे होमधेनुको नष्ट किया है, हे मुने ! आप मुझपर प्रसन्न हूजिये ॥ २२ ॥ ऋषिपुत्रने कहा हे महीपाल ! मैंने जन्मसे लेकर कभी मिथ्या नहीं बोला है, सुतरां हे महाभाग ! मेरा यह क्रोधभी कभी मिथ्या नहीं होगा ॥ २३ ॥ अतएव हे नृप ! इस शापकोभी अन्यथा नहीं करसकता । किन्तु आपको जो दूसरा शाप देनेमें उद्यत हुआ था, उससे निवृत्त होताहूं, अर्थात् वह आपको नहीं देता ॥ २४ ॥बालकके इस प्रकार कहनेपर उसके पिता उसको आश्रममें लेगये । इसके उपरान्त वह पृषध्रभी शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां पृषध्रोपाख्यानेनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

मयागवयबुद्ध्यागौरवध्याघातितामुने ॥ अज्ञानाद्धोमधेनुस्तेप्रसीदत्वंचनोमुने ॥ २२ ॥ ॥ ऋषिपुत्रउवाच ॥ ॥ आजन्मनोमहीपालनमयाव्याहृतं मृषा ॥ क्रोधश्चाद्यमहाभागनान्यथमेकदाचन ॥ २३ ॥ तन्नाहमेनंशक्नोमिशापंकर्तुंनृपान्यथा ॥ यस्तेसमुद्यतःशापोद्वितीयः सनिवर्तितः ॥ २४ ॥ इत्युक्तवन्तंतंबालमादायसपिताततः ॥ जगामस्वाश्रमंसोऽपिपृषध्रःशूद्रतामगात् ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुचरितेपृषध्रोपाख्यानेनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ कारुषाःक्षत्रियाःशूराःकरुषस्याभवन्सुताः ॥ तेतुसप्तशतंवीरास्तेभ्यश्चान्येसहस्रशः ॥ १ ॥ दिष्टपुत्रस्तुनाभागःस्थितःप्रथमयौवने ॥ ददर्शवैश्यतनयामतीवसुमनोहराम् ॥ २ ॥ तस्यांसंदृष्टमात्रायांमदनाक्षिप्तमानसः ॥ बभूवभूपतनयोनिःश्वासाक्षेपतत्परः ॥३॥ तस्याःसगत्वाजनकंववे्रतांवैश्यकन्यकाम् ॥ ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिंनृपात्मजम् ॥ ४ ॥ तंचाहसपितातस्याराजपुत्रंकृतांजलिः ॥ बिभ्यत्तस्यपितुर्विप्रप्रश्रयावनतंवचः ॥ ५ ॥ भवन्तोभूभुजोभृत्यावयंवःकरदायकाः ॥ कथंसम्बन्धमस्मैरस्माभिरभिवाञ्छसि ॥ ६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—महावीर कारुष क्षत्रियगण करुषके पुत्रहैं । वह संख्यामें सात सौ हैं और उन समस्त कारुषोंसेभी अन्य हजारों वीर उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ दिष्ट पुत्र नाभागने प्रथम यौवनके समयमें किसी दिन एक अति मनोहर वैश्यकी कन्याकोदेखा ॥ २ ॥ राजपुत्रने केवलमात्र उसको देखतेही अत्यन्त कामासक्त मन होकर दीर्घ श्वास छोडते छोडते ॥ ३ ॥ उसके पिताके समीप जाकर इस वैश्यकन्याकी प्रार्थना करी । कारण कि, कामसे उनकी पराधीनवृत्ति होगई थी ॥ ४ ॥ हे विप्र ! उसका पिताभी महाराज दिष्टके भयसे भीत हो, हाथ जोड़ कामासक्तचित्त राजनन्दनसे विनीतभावद्वारा कहने लगा ॥ ५ ॥ आप राजा और हम आपको कर

देनेवाले सेवक हैं, आप ऐसे असमान मनुष्यके साथ किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करनेकी अभिलाषा करते हो ॥ ६ ॥ राजपुत्रने कहा। मनुष्य देहमें काम क्रोधादि समानभावसेही विधाताने निर्मित किये हैं,किन्तु सदाही जो काम क्रोधादि मनुष्यदेहमें रहता है, ऐसा नहीं है, किसी किसी समयमें उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ और विभिन्नजातिके मनुष्योंमें भी काम क्रोधादि उपकारी होते हैं तो (दूसरे दूसरेसे जीते हैं) अर्थात् मनुष्यगण काम क्रोधादिका अवलम्बन नहीं करते, अन्यभाव अवलम्बन करते हैं ॥ ८ ॥ काम क्रोधादि तथा अन्य और भी किसीके अयोग्य होनेपर कालपाकर योग्य होते हैं और योग्य भी अयोग्य होते हैं अतएव योग्यता कालकेही आधीन है ॥ ९ ॥ आहारादि इष्टवस्तुद्वारा जो देहको तृप्त करते हैं वहभी नहीं रहता। केवल योग्यताका नियम बिगाडनेवाला कालभुक्त करके

॥ राजपुत्रउवाच ॥ ॥ साम्यंमानुषदेहस्यकाममोहादिभिःकृतम् ॥ तथापिकालेतैरेवयोज्यतेमानुषंवपुः ॥७ ॥ तथैवचोपकारायजायन्तेतस्यतान्यपि ॥ अन्यानिचान्येजीवन्तिभिन्नजातिमतांसताम् ॥ ८ ॥ तथान्यान्यप्ययोग्यानियोग्यतांयान्तिकालतः॥ योग्यान्ययोग्यतांयान्तिकालवश्याहियोग्यता ॥ ९ ॥ आप्याय्यतेयच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः ॥ कालंज्ञात्वातथाभुक्तंतदेवपरिशिष्यते ॥ १० ॥ इत्थंममैषाभिमतातनयादीयतांत्वया ॥ अन्यथामच्छरीरस्य विपत्तिरुपलक्ष्यते ॥ ११ ॥ ॥ वैश्यउवाच ॥ ॥ परतन्त्रावयंत्वंचपरतन्त्रोमहीभुजः ॥ पित्रातेनाभ्यनुज्ञातस्त्वंगृहाणददाम्यहम् ॥ १२ ॥ राजपुत्रउवाच ॥ प्रष्टव्याःसर्वकार्य्येषुगुरवोगुरुवर्तिभिः ॥ नत्वीदृशेष्वकार्य्येषुगुरूणांवाक्यगोचरः ॥१३॥ क्वमन्मथकथालापोगुरूणांश्रवणंक्व च ॥ विरुद्धमेतदन्यत्रप्रष्टव्यागुरवोनृभिः ॥ १४ ॥ ॥ वैश्यउवाच ॥ ॥ एवमेतत्स्मरालापस्तवायंपृच्छमागुरुम् ॥ अहंपृच्छामिनालापोममकामकथाश्रयः ॥ १५ ॥

उनको सुखी देता है ॥ १० ॥ इसीकारण तुम्हारी कन्यामें मेरी अभिलाषा हुई है, वह मुझको प्रदान करो नहीं तो मेरे शरीरका विनाश देखोगे ॥ ११ ॥ वैश्यने कहा मैं पराधीन हूं और आपभी महीपालके आधीन हैं, अतएव आप पिताकी आज्ञा लेकर ग्रहण कीजिये मैं कन्या दूंगा॥ १२॥राजपुत्रने कहा गुरुजनोंकी आज्ञामें रहनेवाले मनुष्योंको यद्यपि संपूर्ण विषयोंमेंही गुरुजनोंसे पूछना उचित है,किन्तु तोभी ऐसी बातका गुरुके निकट प्रकाशित न करनाही अच्छा है॥ १३ ॥ कहां कामकथाका प्रसंग और कहां गुरुजनोंका श्रवणगोचरत्व अर्थात् सुनना इन दोनोंमें बडा अन्तर है अतएव यह विरुद्ध है इसके अतिरिक्त और सब कार्योंमेंही गुरुजनोंसे पूछना आवश्यकहै ॥ १४ ॥ वैश्य बोला—आप सत्यही कहतेहैं कि, गुरुकी आज्ञा लेना आपके पक्षमें कामकथा होगी, अतएव मैं इस विषयको

पूछताहूं इसमें फिर कामकथाकी संभावना नहीं रहेगी ॥ १५॥ मार्कण्डेयजी बोले जब वैश्यने यह बात कही तब राजपुत्र निरुत्तर होगये । तब वैश्यनेभी राजपुत्रका अभीष्ट विषय राजासे ज्योंका त्यों कहा ॥ १६ ॥ तब राजाने ऋचीक इत्यादिक द्विजश्रेष्ठगण और पुत्रको उपस्थितकरके उपरोक्त समस्त विषय प्रकाशपूर्वक ॥ ॥१७॥ मुनियों से पूछा हे द्विजश्रेष्ठगण ! आप इस उपस्थित विषयमें मुझको क्या आज्ञा देते हैं ? ॥ १८ ॥ ऋषि बोले—हे राजकुमार ! आप यदि वैश्यकी कन्यामें अनुरागी हुएहैं सो इसमें अधिक अधर्म नहीं है किन्तु न्यायपूर्वक होना आवश्यक है ॥ १९ ॥ पहिले मूर्द्धाभिषिक्त (अभिषेकयोग्य राज्ञी) कन्याका पाणिग्रहण करके फिर इस कन्याको आप भार्या कीजिये ॥२०॥ यदि आप इसप्रकार इस कन्यासे भोग करेंगे तो आपको किसी दोषके होनेकी संभावना नहीं है नहीं तो बालिका

मार्कंडेयउवाच ॥ इत्युक्तःसोऽभवन्मौनीराजपुत्रःसचापितत् ॥ तत्पित्रेसर्वमाचष्टराजपुत्रस्ययन्मतम् ॥१६॥ ततस्तस्यपिताविप्रानृचीकादीन्द्विजोत्तमान् ॥ प्रवेश्यराजपुत्रंचयथाख्यानंन्यवेदयत् ॥१७॥ निवेद्यचततःप्राहमुनीनेवंव्यवस्थिते ॥ यत्कर्तव्यंतदादेष्टुमर्हन्तिद्विजसत्तमाः ॥ १८ ॥ ॥ ऋषयऊचुः॥ ॥ राजपुत्रानुरागस्तेयद्यस्यांवैश्यसन्ततौ ॥ तदस्तुधर्मएवैषकिन्तुन्यायक्रमेणसः ॥ १९ ॥ मूर्धाभिषिक्ततनयापाणिग्राहोत्सवःपुरा ॥ भवत्वनन्तरंचेयंतवभार्याभविष्यति ॥ २० ॥ एवंनदोषोभवतितथेमामुपभुञ्जतः ॥ अन्यथाऽभ्येतितेजातिरुत्कृष्टाबालकानयात् ॥ २१ ॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तस्तदपास्यैववचस्तेषांमहात्मनाम् ॥ विनिष्क्रम्यगृहीत्वातामुद्यतासिरथाब्रवीत् ॥ २२ ॥ राक्षसेनविवाहेनमयावैश्यसुताहृता ॥ यस्यसामर्थ्यमत्रास्तिसएतांमोचयत्विति ॥ २३ ॥ ततः सवैश्यस्तांदृष्ट्वागृहीतांतनयांद्रुतम् ॥ त्राहीतिपितरंतस्यप्रययौशरणंद्विज ॥ २४ ॥ ततस्तस्यपिताक्रुद्धआदिदेशबलंमहत् ॥ हन्यतांहन्यतांदुष्टोनाभागोधर्मदूषकः ॥ २५ ॥ ततस्तद्युयुधेसैन्यंतेनभूभृत्सुतेनवै ॥ कृतास्त्रेणतदास्त्रेणतत्प्राचुर्य्येणपातितम् ॥ २६ ॥

हरणके कारण आपको इस श्रेष्ठजातिमें नीचा होना पडेगा ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—जब उन समस्त महात्माओंने इसप्रकार अभिप्राय प्रकट किया तब उनके वचनोंको अस्वीकार करके राजपुत्र बाहर निकला और उस कन्याको ग्रहणपूर्वक खड्ग उद्यतकरके कहनेलगा ॥ २२ ॥ मैंने इस वैश्यकन्याको राक्षसविवाहद्वारा हरण किया, जिसमें सामर्थ्य हो, मुझसे इसको छुडाले ॥ २३ ॥ हे द्विज ! तब वैश्यने कन्याको राजपुत्रके द्वारा हरण होता देख शीघ्रपदसे राजाके समीप उपस्थित हो "रक्षा करो" यह कहकर आश्रय ग्रहण किया ॥२४॥ अनन्तर राजाने अत्यन्त क्रोधित हो " इस धर्मदूषक नाभागको शीघ्र वध करो " यह कहकर सेनाको आज्ञा दी ॥ २५ ॥ तब सेनाने राजाकी आज्ञासे राजपुत्रके संग युद्ध आरंभ किया, किन्तु राजपुत्रने अस्त्रोंके द्वारा उस सेनाके अधिकांशको

गिरादिया॥ २६ ॥ फिर राजपुत्रके द्वारा सेनाको निहत हुआ सुन भूपति स्वयंही अन्यान्यसेनाके सहित युद्धमें गये ॥ २७ ॥ अपने पुत्रके सहित भूपतिका युद्ध होनेपर अस्त्र शस्त्रादिद्वारा राजपुत्रकी अपेक्षा पिताकीही अधिकता हुई॥ २८ ॥ इसी अवसरमें आकाशसे सहसा परिव्राजकमुनि (नारद) आनकर राजादिष्टसे बोले—हे महीपाल ! युद्धसे निवृत्त हूजिये ॥ २९ ॥ हे नृप ! आपका पुत्र विधर्मी होगया है, अतएव वैश्यके संग आपका युद्ध धर्मसंगत नहीं है ॥ ३० ॥ ब्राह्मण प्रथम ब्राह्मणी स्त्रीका पाणिग्रहण करके फिर यदि समस्त वर्णकी स्त्री ग्रहणकरे, तोभी उसके ब्राह्मणत्वकी हानि नहीं होती ॥ ३१ ॥ इसीप्रकार क्षत्रियभी

सश्रुत्वानिहतंसैन्यंराजपुत्रेणभूपतिः ॥ स्वयमेवययौयोद्धुंस्वसैन्यपरिवारितः ॥ २७ ॥ ततोयुद्धमभूत्तस्यभूभुजःस्वसुतेनयत् ॥ राजपुत्रेणशस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयितः पिता ॥ २८ ॥ ततोऽन्तरिक्षादागत्यपरिव्राट्सहसामुनिः ॥ प्रत्युवाचमहीपालंविरमस्वेतिसंयुगात् ॥ २९ ॥ त्वत्पुत्रस्यमहाभागविधर्मोऽयंमहात्मनः ॥ तवापिवैश्येनसहनयुद्धंधर्मवन्नृप ॥ ३० ॥ ब्राह्मण्याब्राह्मणःपूर्वंकुर्वन्दारपरिग्रहम् ॥ ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णेषुनहानिमुपगच्छति ॥ ३१ ॥ तथैवक्षत्रियसुतांक्षत्रियःपूर्वमुद्वहन् ॥ इतरेचततोराजंश्च्यवतेनस्वधर्मतः ॥ ३२ ॥ पूर्वं वैश्यस्तथावैश्यांपश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् ॥ नहीयतेवैश्यकुलादयंन्यायःक्रमोदितः ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः सवर्णापाणिसंग्रहम् ॥ अकृत्वाऽन्यभवापाणेः पतन्तिनृपसंग्रहात् ॥ ३४ ॥ यस्यायस्याहिहीनायाः कुरुतेपाणिसंग्रहम् ॥ अकृत्वावर्णसंयोगंसोऽपितद्वर्णभाग्भवेत् ॥३५॥ सोऽयंवैश्यत्वमापन्नस्तवपुत्रःसुमन्दधीः ॥ नास्याधिकारोयुद्धायक्षत्रियेणत्वयासह ॥ ३६ ॥

प्रथम क्षत्रियकन्यासे विवाह करके फिर वैश्य और शूद्रकी कन्या ग्रहण करने पर भी अपने धर्मसे च्युत नहीं होता ॥ ३२॥ वैश्यभी इसी प्रकार पहिले वैश्यकन्यासे विवाह करके फिर शूद्रकन्यासे विवाह करने परभी वैश्यकुलसे पतित नहीं होता इस भाँति क्रमानुसार नीति चली आती है ॥ ३३ ॥ हे नृप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सवर्णा कन्याका पाणिग्रहण विनाकिये अन्य वर्णा कन्यासे विवाह करनेपर जिस जिस जातिकी हीनवर्ण कन्याका पाणिग्रहण करते हैं, वह पतित होकर उसीकी जातिको प्राप्त होते हैं और प्रथम सवर्णा कन्याका पाणिग्रहण न करनेसे वह दायाधिकारी नहीं हो सकते ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ आपका यह मन्दबुद्धि पुत्र

वैश्यत्वको प्राप्त हुआ है और आप क्षत्रिय हैं अतएव आपके संग यह युद्ध करनेका अधिकारी नहीं है ॥ ३६ ॥ हे नृपनन्दन ! इससे किसप्रकारका कारण उत्पन्न होगा सो मैं नहीं जानता। अब आप युद्धसे निवृत्त हूजिये ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नाभागाख्यानंनाम दशाधिक शततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर पुत्रके संग युद्ध करनेसे राजा निवृत्त हुए और उनका पुत्रभी उस कन्यासे विवाह करके वैश्यत्वको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ तब उसने वैश्यत्वको प्राप्त हो राजाके समीप जाकर पूछा हे भूपाल ! अब मुझको क्या करना चाहिये, सो आज्ञा कीजिये ॥ २ ॥ राजाने कहा—बाभ्रव्यादि जो समस्त तपस्वी धर्माधिकरणमें नियुक्त हैं वह जिस कर्मको धर्मानुयायी कहकर आज्ञा दें, उसीके अनुसार आचरण कर ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तब उन सभासद

वयमेतन्नजानीमःकारणंनृपनन्दन ॥ यथाभविष्यतीदंचनिवर्त्तरणकर्मतः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुचरितेनाभागाख्यानंनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ निवृत्तोसौततोभूपःसंग्रामात्स्वसुतेनवै ॥ उपयेमेचतांवैश्यतनयांसेऽपितत्सुतः ॥ ॥ १ ॥ ततःसवैश्यतांप्राप्तःसमुपेत्याहपार्थिवम् ॥ भूपालयन्मयाकार्य्यंतत्समादिश्यतांमम ॥ २ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ धर्माधिकरणेयुक्ताबाभ्रव्याद्यास्तपस्विनः ॥ यदस्य कर्मधर्मायतद्ब्रुवंतुतथाचर ॥ ३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तेमुनयस्तस्यपाशुपाल्यंतथाकृषिम् ॥ वाणिज्यंचपरंधर्ममाचचख्युःसभासदः ॥ ४ ॥ तथैवचक्रेससुतस्तस्यराज्ञोयथोदितम् ॥ तैर्धर्मवादिभिर्धर्मच्युतस्यनिजधर्मतः ॥ ५ ॥ तस्यपुत्रस्ततोजातोनाम्नाख्यातोभलन्दनः ॥ समात्राप्राहितोगच्छद्गोपालोभवपुत्रक ॥ ६ ॥ मात्रातथानियुक्तोऽथप्रणिपत्यस्वमातरम् ॥ राजर्षिमगमन्नीपंहिमवत्पर्वताश्रयम् ॥ ७ ॥ तंसमेत्यचजग्राहतस्यपादौयथाविधि ॥ प्रणिपत्याहचैवैनंराजर्षिसभलन्दनः ॥ ८ ॥ आदिष्टोभगवन्मात्रागोपालस्त्वंभवेतिवै ॥ मयाचपालनीयाक्ष्मातस्याःस्वीकरणंकथम् ॥ ९ ॥

मुनियोंने कहा पशुपालन, कृषि और वाणिज्यकर्मही तुम्हारा उत्तमधर्म है ॥ ४ ॥ राजपुत्रभी अपने धर्मसे च्युत होकर राजाकी आज्ञानुसार उन धर्मवादियोंके निर्दिष्ट धर्मका आचरण करनेलगे ॥ ५ ॥ उनके भलन्दननामक पुत्र हुआथा उसकी माताने उसको हे वत्स ! गोपाल होओ ॥ ६ ॥ यह कहकर गोपालनमें नियुक्त किया । तब वह माताकी आज्ञा पाय माताको प्रणाम पूर्वक हिमालयपर्वतवासी नीपनामक राजर्षिके निकट गये ॥ ७ ॥ भलन्दनराजर्षिके समीप उपस्थित हो यथाविधि चरणवन्दनापूर्वक प्रणाम करके कहने लगे ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! माताने मुझको "तुम गोपाल होओ" यह आज्ञा

दी है, सुतरा पृथ्वीपालन अवश्यही मेरा कर्त्तव्य है, किन्तु यह गोपालन किसप्रकार स्वीकार करूं? ॥ ९ ॥ क्योंकि पृथ्वीपालन मेरे स्वीकार करनेपरभी इस समय बलवान् ज्ञातिगणके द्वारा आक्रान्त हो रही है ॥ १० ॥ अतएव हे विभो! जिसमें आपके अनुग्रहसे मैं पृथ्वीलाभ करसकूं इस प्रणतजनको वही आज्ञा दीजिये, मैं उसीका अनुष्ठान करूंगा ॥ ११ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे ब्रह्मन्! तब राजर्षि नीपने महात्मा भलन्दनको संपूर्ण अस्त्रविद्या प्रदान करी॥ १२॥ हे द्विज! भलन्दन अस्त्रविद्यालाभ करके राजर्षिकी आज्ञाग्रहणपूर्वक पितृव्यपुत्र वसुरात् इत्यादिके निकट गये ॥ १३ ॥ और पितृपैतामहिक राज्यके अर्द्धांशकी प्रार्थना की। उन्होंने उत्तर दिया, "तुम वैश्यपुत्र हो, पृथ्वीपालन तुमको उचित नहीं है" ॥ १४ ॥ तब अस्त्रलाभ किये क्रोधित भलन्दनका अस्त्रवर्षी ज्ञाति वसुरात्

मयाहिगौःपालनीयासायदास्वीकृताभवेत् ॥ आक्रान्ताबलवद्भिःसादायादैःपृथिवीमम ॥ १० ॥ तांयथाप्राप्नुयांपृथ्वींत्वत्प्रसादादहंविभो ॥ तथादिशकरिष्यामितवाज्ञांप्रणतोऽस्मिते ॥ ११ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसनीपोराजर्षिस्तस्मैनिरवशेषतः ॥ भलन्दायददौब्रह्मन्नस्त्रग्राममंमहात्मने ॥१२॥ प्राप्तास्त्रविद्यःसययौपितृव्यतनयान्द्विज ॥ वसुरातादिकान्पुत्रानादिष्टःसमहात्मना ॥१३॥ अयाचतसराज्यार्धंपितृपैतामहोचितम् ॥ तेचोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वंकथंभोक्ष्यसिमेदिनीम् ॥१४॥ ततस्तैर्युद्धमभवद्भलन्दस्यात्मवंशजैः ॥ वसुरातादिभिःक्रुद्धैःकृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः ॥१५॥ सजित्वातानशेषांस्तुशस्त्रविक्षतसैनिकान् ॥ जहारपृथिवींतेषांधर्मयुद्धेनधर्मवित् ॥१६॥ सनिर्जितारिःसकलांपृथ्वींराज्यंतथापितुः ॥ निवेदयामासततस्तात्पिताजगृहेनच ॥ प्रत्युवाचसतंपुत्रंभार्य्यायाःपुरतस्तदा ॥१७॥ नाभागउवाच ॥ भलन्दराज्यमेतत्तेक्रियतांपूर्वजैःकृतम् ॥१८॥ अहंनकृतवान्राज्यंनासामर्थ्ययुतःपुरा ॥ वैश्यतांतुपुरस्कृत्यतथैवाज्ञाकरःपितुः ॥१९॥ कृत्वाऽप्रीतिंपितुरहंवैश्यकन्यापरिग्रहात् ॥ नपुण्यलोकभाग्राजायावदाभूतसंप्लवम् ॥ २० ॥

इत्यादिके संग युद्धारंभ हुआ॥ १५॥ तब धर्मात्मा भलन्दनने धर्मयुद्धमें ही सब सेनाको शस्त्रसे घायल करके पराजयपूर्वक पृथ्वी हरण करी ॥ १६ ॥ भलन्दनने इस प्रकार शत्रुओंको जीत समस्तपृथ्वी राज्य पिताके चरणोंमें समर्पण किया, किन्तु पिता उसको ग्रहण न करके पत्नीके सामनेही पुत्रसे कहने लगे ॥ १७ ॥ नाभागने कहा—हे वत्स भलन्दन! पूर्वपुरुषशासित यह राज्य तुम्हीं भोगो ॥ १८ ॥ मैं राज्यपालनमें असमर्थ हूं, ऐसा नहीं है पूर्वमें मैं पिताकी आज्ञामें रह करभी पिताकी असम्मतिसे ॥ १९ ॥ वैश्यकन्या ग्रहण करनेके कारण वैश्यत्वको प्राप्त हो राज्यभोगका अधिकारी नहीं होसका। अब मैं फिर

यदि पिताकी आज्ञा उलंघन करके पृथ्वीका पालन करूं तो मिथ्या आज्ञाके कारण राजाभी प्रलयकालपर्यन्त पुण्यलोकभागी नहीं होसकेंगे और शतकल्पमेंभी मुझको मुक्ति प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ और मेरे समान निराकांक्षी मानी मनुष्यको, दुर्बलके परवर्जित विषय भोगके समान तुम्हारे बाहुबलसे जीताहुआ राज्य भोगना भी उचित नहीं है ॥ २२ ॥ तुम स्वयं राज्यपालन करो अथवा ज्ञातिगणको फिर देसकते हो, मुझको पिताकीही आज्ञा पालन करनी उत्तम है, पृथ्वीपालन उचित नहीं है ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले — तब उनकी 'सुप्रभा' नामक भार्याने हँसकर कहा हे नृप ! यह समृद्धिशाली राज्य ग्रहण कीजिये ॥ २४ ॥ आप वैश्य नहीं हैं और मैंनेभी वैश्यकुलमें जन्म नहीं लिया है, आपभी क्षत्रिय हैं और मैं भी क्षत्रियके कुलमें

उल्लंघ्याज्ञांपुनस्तस्यपालयामिमहींयदि ॥ नास्तिमोक्षस्ततोनूनंममकल्पशतैरपि ॥ २१ ॥ नचापियुक्तंत्वद्बाहुनिर्जितंममानिनः ॥ राज्यंभोक्तुमनीहस्य दुर्बलस्येवकस्यचित् ॥ २२ ॥ राज्यंकुरुस्वयंपुत्रदायादेभ्योविमुंचवा ॥ ममाज्ञापालनंशस्तंपितुर्नक्षितिपालनम् ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततः प्रहस्यतद्भार्य्यासुप्रभानामभामिनी ॥ प्रत्युवाचपतिंभूपगृह्यतांराज्यमूर्जितम् ॥ २४ ॥ नत्वंवैश्योनचैवाहंजातावैश्यकुलेनृप ॥ क्षत्रियस्त्वंतथैवाहंक्षात्रियाणांकुलोद्भवा ॥ २५ ॥ पूर्वमासीन्महीपालःसुदेवइतिविश्रुतः ॥ तस्याभूच्चसखाराज्ञोधूम्राश्वस्यसुतोनलः ॥ २६ ॥ सतेनसख्यासहितोजगामाम्रवनंवनम् ॥ पत्नीभिःससमंरन्तुंमाधवेमासिपार्थिव ॥ २७ ॥ ततःपानान्यनेकानिभक्ष्याणिबुभुजेतदा ॥ भार्य्याभिःसहितस्ताभिस्तेनसख्यासमन्वितः ॥ २८ ॥ ततः पुष्करिणीतीरेददर्शातिमनोरमाम् ॥ पत्नींच्यवनपुत्रस्यप्रमतेःपार्थिवात्मजाम् ॥२९॥ सखातस्यनलोमत्तोजगृहेतांचदुर्मतिः ॥ पश्यतस्तस्यराज्ञश्चत्रातत्राते तिवादिनीम् ॥ ३० ॥ आक्रन्दितंनिशम्यैवसतस्याःप्रमतिःपतिः ॥ आजगामत्वरायुक्तःकिमेतदितिवैवदन् ॥ ३१ ॥ ततोददर्शराजानंसुदेवंतत्रसंस्थितम् ॥ गृहीतांचतथापत्नींनलेनसुदुरात्मना ॥ ३२ ॥

उत्पन्न हुई हूं ॥ २५ ॥ पूर्वकालमें सुदेवनामक एक विख्यात राजा थे और राजा धूम्राश्वके पुत्र नलनामक उनके सखा थे ॥ २६ ॥ हेपार्थिव ! एक दिन वैशाखमासमें राजा इन सखा और पत्नियोंके सहित आम्रवनमें वनविहारको गये थे ॥ २७ ॥ वहां सखा और भार्याओंके सहित अनेक प्रकारसे खाने पीनेकी वस्तु भोगने लगे ॥ २८ ॥ तदनन्तर पुष्करिणीके तटमें च्यवनपुत्र महर्षि प्रमतिकी मनोहरपत्नीको देखा तब राजाके सखा दुर्मति नलने उसको ग्रहण किया । यह प्रमतिपत्नी किसी एक राजाकी कन्या थी । फिर प्रमतिपत्नी राजाके सन्मुख "रक्षा करो, रक्षा करो" यह कहकर रोनेलगी ॥ २९ ॥ ३० ॥ उसके पति महर्षि प्रमति दूरसे रोनेका शब्द सुनकर "यह क्या है? यह क्या है ?" कहते कहते शीघ्र वहां आये ॥ ३१ ॥ वहां आनकर देखा कि, महाराज सुदेव बैठे हैं और दुरात्मा नल पत्नीको हरण कर

रहाहै ॥ ३२ ॥ तब प्रमतिने सुदेवसे कहा, इसको निवृत्त कीजिये आपही राजा हैं आपही शासनकर्त्ता हैं, अतएव तुम्हें इस दुष्टनलको शासन करना उचित है ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—प्रमतिके इसप्रकार आर्त्तवचन सुनकर राजा सुदेवने नलके गौरवकी रक्षा करनेको कहा 'मैं वैश्य हूं, आप रक्षाके लिये किसी क्षत्रियके निकट जाइये'॥ ३४ ॥ प्रमतिने सुदेवके वचनसे अत्यन्त क्रोधित हो,अपने तेजसे मानो दग्ध करते करतेही "मैं वैश्यहूं" इसप्रकार उक्तिकारी उस राजासे कहा॥ ३५ ॥ प्रमति बोले—तथास्तु।तुम सत्यही वैश्य हो,क्योंकि आर्त्तमनुष्योंकी रक्षाकेलियेही क्षत्रियसंज्ञाकी उत्पत्ति है,'आर्त्त' शब्दपर्यन्त न हो,इसी अभिप्रायसे क्षत्रियगण शस्त्रधारण करतेहैं,अतएव तुम कभी क्षत्रिय नहींहो तुम कुलाधम वैश्यहीहोगे ॥ ३६ ॥ इति श्रीमा०पु० भाषाटीकायां एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

ततःसुदेवंप्रमतिःप्राहायंशास्यतामिति ॥ त्वंचशास्ताभवद्राज्येदुष्टश्चायंनलोनृप ॥३३॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तस्यार्तस्यवचःश्रुत्वासुदेवोनलगौरवात् ॥ प्राहवैश्योऽस्मिगच्छान्यंक्षत्रियंत्राणकारणात् ॥ ३४ ॥ ततःसप्रमतिःक्रुद्धस्तेजसानिर्दहन्निव ॥ प्रत्युवाचाथराजानंवैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ॥ ३५ ॥ प्रमतिरुवाच ॥ ॥ एवमस्तुभवान्वैश्यःक्षत्रियःक्षतरक्षणात् ॥क्षत्रियैर्धार्य्यतेशस्त्रंनार्त्तशब्दोभवेदिति ॥ सत्वंनक्षत्रियोभावीवैश्यएवकुलाधमः ॥ ३६ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेनाभागचरितेएकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥ मार्कंडेयउवाच ॥ तस्मैदत्त्वाततःशापंनलंक्रुद्धोऽब्रवीद्द्विज ॥ प्रमतिर्भार्गवःकोपात्त्रैलोक्यंनिर्दहन्निव ॥ १ ॥ मदोन्मत्तोयतोभार्य्यांभवानत्रममाश्रमे ॥ बलाद्गृह्णातिभस्मत्वंतस्माद्व्रजतुमाचिरम् ॥ २ ॥ तेनोदाहृतमात्रेचवाक्ये तस्मिंस्तदानलः ॥ देहजेनाग्निनासद्योभस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वाप्रभावंतंतस्यसुदेवोविमदस्ततः ॥ प्रणामनम्रः प्राहेदंक्षम्यतांक्षम्यतामिति ॥ ४ ॥ यदुक्तवांस्त्वांभगवन्सुरापानमदाकुलम् ॥ तत्क्षम्यतांप्रसीदत्वंशापोऽयंविनिवर्त्यताम् ॥ ५ ॥ एवंप्रसादितस्तेनप्रमतिः प्राहभार्गवः ॥ गतकोपो नलेदग्धेनावनीतेनचेतसा ॥ ६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विज ! भार्गव प्रमतिने इसप्रकार सुदेवको शाप देकर क्रोधसे मानों त्रैलोक्यके दग्ध करनेमें उद्यत हो नलसे कहा ॥ १ ॥ तैंने मदोन्मत्त होकर जब मेरे आश्रममें मेरी भार्याको बलात्कार ग्रहण किया है,तो तू अभी भस्म हो ॥ २ ॥ उनके वचनकी समाप्ति होतेही नल स्वदेहज अग्निद्वारा तत्काल भस्म होगया ॥ ३ ॥ तब सुदेवे प्रमतिका इस प्रकार प्रभाव देख, मत्तता छोड़ प्रणाम करके विनीतभावसे कहने लगे—हे भगवन् ! क्षमा करो, क्षमा करो ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! सुरापानजनित मत्तताके कारण आपसे जो कुछ कहाहै,प्रसन्न होकर वह सब क्षमा कीजिये और यह शाप निवृत्त कीजिये ॥ ५ ॥ राजाके इस प्रकार प्रसन्न करनेपर और नलको दग्ध करने पर तब भार्गवप्रमतिका कोप शान्त हुआ—फिर वह अनासक्त चित्तसे कहने लगे यद्यपि मेरा वचन अन्यथा होनेवाला

नहीं है, किन्तु तोभी प्रसन्नचित्तसे आपके ऊपर अनुग्रह करताहूं ॥ ६ ॥ ७ ॥ अवश्यही कुछ दिन आपको वैश्यजातीय होना पडेगा, किन्तु इस जन्ममेंही आप फिर क्षत्रिय होजायँगे ॥ ८ ॥ जब कोई क्षत्रियकुमार बलपूर्वक आपकी कन्याको ग्रहण करेगा, हे वैश्य ! उसी समय आप फिर स्वयं क्षत्रिय होंगे ॥ ९ ॥ हे भूपाल ! इसप्रकार मेरे पिता सुदेव वैश्य हुएथे। हेमहाभाग ! अब मैं अपनाभी समस्त परिचय तुमसे कहतीहूं, सुनो ॥ १० ॥ पूर्वकालमें सुरथनामक राजर्षि गंधमादन पर्वतमें वनाश्रयपूर्वक नियताहार और संगरहित हो तपस्या करते थे॥ ११ ॥ एक समय पृथ्वीतलमें एक बाजके मुखसे छूटीहुई शारिका देखकर कृपासे उन महात्माको मूर्च्छा उपस्थित हुई ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! फिर मूर्च्छाके दूर होनेपर मैं उनके शरीरमेंसे उत्पन्न हुई । उन्होंनेभी मुझको देख कर

नान्यथाभावितद्वाक्यंयन्मयासमुदीरितम् ॥ तथापितेकरिष्यामिप्रसन्नोऽनुग्रहंपरम् ॥ ७ ॥ भवितावैश्यजातीयोभवान्नास्त्यत्रसंशयः ॥ भविताक्षत्रियोवैश्यस्तस्मिन्नेवाशुजन्मनि ॥ ८ ॥ ग्रहीष्यतिबलात्कन्यांयदातेक्षत्रसम्भवः ॥ तदात्वंक्षत्रियोवैश्यःस्वगृहीतोभविष्यसि ॥ ९ ॥ एवंसवैश्योभूपालसुदेवोऽस्मत्पिताभवत् ॥ अहंचयामहाभागतत्सर्वंश्रूयतांत्वया ॥ १० ॥ सुरतोनामराजर्षिःप्रागासीद्गन्धमादने ॥ तपस्वीनियताहारस्त्यक्तसङ्गोवनाश्रयः ॥ ११ ॥ ततःश्येनमुखभ्रष्टांदृष्ट्वैकांशारिकांभुवि ॥ कृपाऽभूज्जनितामूर्च्छातथातस्यमहात्मनः ॥ १२ ॥ ततोमूर्च्छावसानेऽहंतस्योत्पन्नाशरीरतः ॥ समांदृष्ट्वाचजग्राहस्निह्यमानेनचेतसा ॥ १३ ॥ यस्मात्कृपाभिभूतस्यममजातेयमात्मजा ॥ तस्मात्कृपावतीनाम्नाभविष्यत्याहसप्रभो ॥ १४ ॥ ततोऽहमाश्रमातस्यवर्धमानांदिवानिशम् ॥ सखीभिःसहतुल्याभिर्विचरामिवनानिच ॥ १५ ॥ ततोमुनेरगस्त्यस्यभ्रातागस्त्यइतिश्रुतः ॥ सचिन्वन्काननेवन्यंसखीभिकोपितोऽशपत् ॥ १६ ॥

स्नेहार्द्रचित्तसे ग्रहण कर लिया ॥ १३ ॥ और कहा "मेरे कृपाभिभूत होनेपर इस कन्याने जन्म ग्रहण किया है, अतएव इसका नाम "कृपावती" हुआ॥ १४ ॥ इसके पीछे मैं उनके आश्रममें रहकर दिन दिन बढने लगी और समान अवस्थावाली सखियोंके संग सदा वनोंमें विचरण करने लगी ॥ १५ ॥ एक दिन अगस्त्यके समान प्रभावशाली अगस्त्यमुनिके भ्राता वनमें पुष्पादि बीनते थे इसी समयमें मेरी सखियोंने उनको क्रोधित किया, तब उन्होंने क्रोधित चित्तसे मुझको यह कहकर शाप दिया कि, "तैंने मुझको वैश्य कहा है, इस कारण तू मेरे शापसे वैश्यकीही कन्या होगी" यह दारुण शाप सुनकर मैंने उनसे

कहा—हे द्विजसत्तम ! मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया है, अन्यके अपराधमें मुझको शाप क्यों देतेहो ? ॥ १६ ॥ १७ ॥ ऋषि बोले—केवल एक बूँद सुराके पड़नेसेही जिस प्रकार पंचगव्यपूर्ण घट दूषित होजाता है, ऐसेही निर्दोष मनुष्यभी दुष्टका संसर्ग होनेसे दुष्ट होजाता है ॥ १८ ॥ हे बालिके ! तैं ने प्रणामपूर्वक "मैं दुष्टा नहीं हूं" कहकर जो मुझे प्रसन्न किया है इस निमित्त मैं तुझपर अनुग्रह करताहूं सुन ॥ १९ ॥ तू वैश्ययोनिमें उत्पन्न होकर जब अपने पुत्रको राज्यलाभकेलिये नियुक्त करेगी, उसी समय तू जातिस्मरताको प्राप्त होगी ॥ २० ॥ और पतिके संग फिर क्षत्रियत्वको प्राप्तहोकर दिव्य भोगमें अधिकारिणी होगी । अतएव अब आश्रममें जा और भय परित्यागकर ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार उन महर्षि के द्वारा पूर्वकालमें मैं

यस्मान्मांवैश्यइत्याहभवतीतिनतेशपे ॥ वैश्याभविष्यसीत्युक्तेप्रसाद्योक्तोमयामुनिः ॥ नापराधंकृतवतीतिवाहंद्विजसत्तम ॥ अन्यासामपराधेनकिमर्थंशप्तवानासि ॥ १७ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ दुष्टतांदुष्टसंसर्गाददुष्टमपिगच्छति ॥ सुराबिंदुनिपातेनपञ्चगव्यघटोयथा ॥ १८ ॥ प्रणिपत्यह्यनिष्टोपियस्त्वयाहंप्रसादितः ॥ तस्मादनुग्रहंबालेशृणुष्वचकरोम्यहम् ॥ १९ ॥ वैश्ययोनौयदाजातात्वंपुत्रंवोधयिष्यसि॥ राज्यायजातिस्मरतांतदात्वंसमवाप्स्यसि॥२०॥ ततोभूयःक्षत्रजातिंप्राप्तात्वंपतिनासह ॥ दिव्यानवाप्स्यसेभोगान्गच्छभीतिरपैतुते ॥ २१ ॥ एवंशप्तास्मिराजेन्द्रतेनपूर्वमहर्षिणा ॥ पिताचमेपूर्वमेवंशप्तःप्रमतिनाऽभवत् ॥२२॥ एवंवैश्योनराजंस्त्वंनचवैश्यःपितामम ॥ नत्वंहिमय्यदुष्टायामदुष्टोदुष्यसेकथम् ॥२३॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेद्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतितस्यावचः श्रुत्वापुत्रस्यसचपार्थिवः ॥ पुनःप्रोवाचधर्मज्ञस्तांपत्नींतनयंतथा ॥१॥ यन्मयापितुरादेशात्त्यक्तंराज्यंनतत्पुनः ॥ ग्रहीष्यामिवृथोक्तेनकिमात्माक्लिश्यतेत्वया ॥ २ ॥ अहंतेसम्प्रदास्यामिकरंवैश्यव्रतेस्थितः ॥ भुङ्क्ष्वराज्यमशेषंत्वमिच्छयावापरित्यज ॥३॥

शापको प्राप्त हुई थी और प्रमतिने पूर्वकालमें मेरे पिताकोभी ऐसाही शाप दिया था॥ २२ ॥ सुतरां हेराजन् ! आप वा मेरे पिता कोई वैश्य नहीं हैं।इसी भाँति मेरे निर्दोष होनेपर मेरे संसर्ग से आप किसप्रकार दूषित हों गे, अतएव ऐसा कभी नहीं आप सदा अदुष्ट हैं॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ॥ ११२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—धर्मज्ञराजाने भार्या और पुत्रके यह वचन सुनकर फिर उनसे पृथक् पृथक् कहा ॥ १ ॥ पत्नीसे कहा मैंने पिताकी आज्ञानुसार जिस राज्यको एकबार त्यागदिया है, उसको अब फिर ग्रहण नहीं करूंगा तुम वाक्य व्ययकरके क्यों वृथा कष्ट पातीहो ? ॥ २ ॥ पुत्रसे कहा मैं वैश्यवृत्तिमेंही

रहकर तुमको कर दूंगा तुम यह संपूर्ण राज्य भोगो; अथवा इच्छा हो तो परित्यागभी कर सकते हो ॥ ३ ॥ राजपुत्र भलन्दन इसप्रकार पिताकी आज्ञा पाय धर्मानुसार राज्यपालन करनेलगे और यथासमयमें दारपरिग्रह अर्थात् विवाह किया ॥ ४ ॥ हे द्विज ! पृथ्वीके समस्त स्थानोंमेंही उनका रथचक्र (बेरोक टोक भ्रमा था) उनका मनभी कभी अधर्ममार्ग में अग्रेसर नहीं हुआ अतएव संपूर्ण भूपालही उनके वशीभूत हुए थे ॥ ५ ॥ वह यथाविधि यज्ञानुष्ठान और वसुंधराका सम्यक्प्रकार पालन करते थे क्रमानुसार सब पृथ्वीमेंही उनका शासन व्याप्त होनेसे वह पृथ्वीके अद्वितीय अधीश्वर हुए थे ॥ ६ ॥ वत्सप्री नामक उनके एक पुत्र हुआ था और उस महात्माने गुणोंसे पिताको विवर्द्धित किया था ॥ ७ ॥ विदूरथकन्या सौनन्दा नामक वत्सप्रीकी भार्या थी वह इन्द्रके शत्रु कुजृम्भ नामक

इत्युक्तःसतदापित्राराजपुत्रोभलन्दनः ॥ चकारराज्यंधर्मेणतद्वद्दारपरिग्रहम् ॥ ४ ॥ अव्याहतंतस्यचक्रंपृथिव्यामभवद्द्विज ॥ नचाधर्मेमनोभूपास्तस्य सर्वेऽभवन्वशे ॥ ५ ॥ तेनेष्टोविधिवद्यज्ञः सम्यक्शास्तिवसुन्धराम् ॥ सएवैकोऽभवद्धर्त्तापृथिव्यामरिशासनः ॥ ६ ॥ अजायतसुतस्तस्यवत्सप्रीतिस्तुनामतः ॥ पितातिशयितोयेनगुणौघेनमहात्मना ॥७॥ तस्यापिभार्य्यासौनन्दाविदूरथसुताऽभवत् ॥ पतिव्रतामहाभागासाप्राप्तातेनशौर्य्यतः ॥ हत्वापुरन्दररिपुं कुजृंभंदितिजेश्वरम् ॥ ८ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवंस्तेनसंप्राप्ताकुजृंभनिधनात्कथम् ॥ एतदाख्यानमाख्याहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ विदूरथोनामनृपःख्यातकीर्तिरभूद्भुवि ॥ तस्यपुत्रद्वयंजातंसुनीतिःसुमतिस्तथा ॥१०॥ एकदातुवनंयातोमृगयांसविदूरथः ॥ ददर्शगर्तंसुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम् ॥ ११ ॥ तंदृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदितिभैरवम् ॥ पातालविवरंमन्येनैतद्भूमेश्चिरन्तनम् ॥ १२ ॥ चिन्तयन्नितितत्रासौददर्शविजने वने ॥ ब्राह्मणंसुव्रतंनामतपस्विनमुपागतम् ॥ १३ ॥ सतंपप्रच्छचनृपःकिमेतदितिविस्मितः ॥ अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितांतर्गतोदरम् ॥ १४ ॥

दैत्यनाथको मारकर इस पतिव्रता महाभाग्यवतीको प्राप्त हुए थे ॥ ८ ॥ क्रौष्टुकिने कहा ! हे भगवन् ! वत्सप्रीने किस प्रकार कुजृम्भको मारकर सौनन्दाको प्राप्त किया था, आप प्रसन्नचित्तसे यह आख्यान वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–भूमण्डलमें विदूरथ नामक विख्यात् कीर्त्ति एक राजा थे, उनके सुनीति और सुमति नामक दोपुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १० ॥ किसी समय विदूरथने मृगयाकेलिये जाकर पृथ्वीका मुखस्वरूप निकला हुआ एक बड़ा गर्त्त (गढा) देखा ॥ ११ ॥ उन्होंने वह भयंकर गर्त्त देखकर पहिले विचारा "यह क्याहै ?" फिर सोचा "यह कभी पुरातन समयका भूमिविवर नहीं है मुझको बोध होताहै कि, यह पाताल विवर है" ॥ १२ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते थे, इसी अवसरमें उस विजन वनमें सुव्रत नामक एक ब्राह्मण तपस्वीको आताहुआ देखा ॥ १३ ॥ आश्चर्ययुक्त राजाने

उसको पृथ्वीका वह गंभीर विवर दिखाय "यह क्या है" इस प्रकार कहकर उसका वृत्तान्त पूछा ॥ १४ ॥ ऋषिने कहा हे महीपाल ! आप क्या इसको नहीं जानते? जब पृथ्वीका समस्त वृत्तान्तही राजाको जान रखना उचित है, तो मेरे मतसे आप यह सुननेके यथार्थ योग्यपात्र हैं ॥ १५ ॥ महावीर्यशाली उग्र एक दानव रसातलमें वास करता है। वह पृथ्वीको जृम्भित (जँभाईवाला) करता है; इस कारण सब उसको कुजृम्भ कहते हैं ॥ १६ ॥ हे नराधिप ! इस भूमण्डल और स्वर्ग राज्यके प्रतिक्षणीमेंही जो समस्त घटना होती हैं, वह सब इसीका कार्य है, आप क्या उसको जानते नहीं हैं? ॥ १७ ॥ पूर्वकालमें विश्वकर्माने सुनन्दनामक जो मूशल निर्माण किया था, यह दुरात्मा उसीको ग्रहण करके युद्धकालमें उसीके द्वारा शत्रुओंको हनन करता है ॥ १८ ॥ और उसके द्वाराही रसातलसे पृथ्वी भेदकर अन्यान्य

॥ ऋषिरुवाच ॥ किन्नवेत्सिमहीपालवागर्थस्त्वंहिमेमतः ॥ ज्ञेयंसर्वंनरेन्द्रेणवर्ततेयन्महीतले ॥ १५ ॥ दानवःसुमहावीर्य्योवसत्युग्रो रसातले ॥ सजृम्भयतियत्पृथ्वींकुजृम्भःप्रोच्यतेततः ॥ १६ ॥ क्रियतेतेनयत्किञ्चिद्रत्नभूतंमहीतले ॥ त्रिदिवेवानरपतेतंकथंवेत्तिनोभवान् ॥ १७ ॥ सुनन्दंनाममुशलंत्वष्टायन्निर्मितंपुरा ॥ तज्जहारसदुष्टात्मातेनहन्तिरणेरिपून् ॥ १८ ॥ पातालान्तर्गतस्तेनभिनत्ति वसुधामिमाम् ॥ ततोऽसुराणांसर्वेषांद्वाराणिकुरुतेऽसुरः ॥ १९ ॥ तेनभिन्नात्रवसुधासुनन्दमुशलेनतु ॥ भोक्ष्यतेवसुधामेतांतमजित्वाकथंभवान् ॥२०॥ यज्ञान्विध्वंसयत्युग्रोदेवानामुपरोधकः ॥ आप्याययतिदैतेयान्सवलीमुशलायुधः ॥ २१ ॥ यद्यरिंघातयस्येनंपातालान्तरगोचरम् ॥ ततःसमस्तवसुधापतिस्त्वंपरमेश्वरः ॥२२॥ मुशलन्तस्यवलिनःसौनन्दंप्रोच्यतेजनैः ॥ तथावलाबलञ्चैवतंवदन्तिविचक्षणाः ॥ २३ ॥ तत्तुनिर्वीर्य्यतांयातिसंस्पृष्टंयोषिता नृप ॥ तस्मिन्दिनेद्वितीयेऽह्निवीर्य्यवत्तदुदीर्य्यते ॥ २४ ॥ नसवेत्तिदुराचारःप्रभावंमुशलस्यतम् ॥ योषित्कराग्रसंस्पर्शेदोषंवीर्य्यविशातनम् ॥ २५ ॥

सब असुरोंके लिये द्वार बनाता है ॥ १९ ॥ उस सुनन्द मूशलके आघातसेही इसस्थानकी पृथ्वी भेदकर उसने यह विवर किया है आप उसको विना पराजय किये किसप्रकार भोग करते हैं ? उग्रकर्मा दैत्य मूशलायुधसे अधिक बलशाली होकर यज्ञकर्मका विनाश और देवताओंको व्यथित करताहुआ दैत्योंको तृप्त करता है ॥ २० ॥ २१ ॥ आप यदि पातालमें रहनेवाले इस शत्रुको पराजय करसकेंगे तो आप संपूर्ण पृथ्वीके अधीश्वर होकर परमेश्वर (सम्राट्) होनेमें समर्थ होंगे ॥ २२ ॥ जनगण इस मूशलको "सौनन्द" कहते हैं और विचक्षण पुरुषभी उसक बलाबल सम्बन्धमें इस प्रकार कहतेहैं ॥ २३ ॥ वह मूशल जिस दिन स्त्रीके हाथसे छुआजाय उसदिन वीर्यहीन होता है और उसके दूसरेही दिन फिर पूर्ववत् बलशाली होजाता है ॥ २४ ॥ किन्तु वह दुराचारी मुशलका यह प्रभाव और स्त्रीजातिके हस्ताग्रस्पर्श

सेभी उसके बलहानिरूप दोषकी बात नहीं जानता है ॥ २५॥ हे राजन् ! दुरात्मादानवका और मूशलका इसप्रकार बल आपसे कहागया । अब मेरे कहनेके अनुसार कार्य कीजिये ॥ २६ ॥ हे महीपते ! तुम्हारे पुरके निकटही उसने यह भूमिरन्ध्र किया है, फिर आप क्यों निश्चिन्त होरहे हैं ? ॥२७॥ जब ऋषि इसप्रकार कहकर चलेगये तब राजाभी अपने पुरमें आये और वहां मंत्रज्ञ मंत्रियोंसे मंत्रणा करनेलगे ॥ २८ ॥ मूशलका प्रभाव और वीर्यहानि इत्यादि जो जो सुन आये थे, वह सब मंत्रियोंके समीप प्रकाशित किया ॥२९॥ जब राजा मंत्रियोंके संग यह परामर्श कर रहे थे, उनकी कन्या मुदावतीभी उससमय पार्श्वमें बैठीहुई सब सुन रही थी ॥ ३० ॥ इस घटनाके कई दिन पीछेही सखियोंके संग मुदावती जब उपवनमें थी तब कुजृम्भदैत्यने उस अवस्थावाली कन्याको उस उपवनसे हरण

एवंतस्यबलंभूपदानवस्यदुरात्मनः ॥ मुशलस्यचतेप्रोक्तंयद्युक्तंतत्समाचर॥२६॥आसन्नमेतद्भवतःपुरस्यपृथिवीपते ॥ कृतंतेनमहारंध्रंनिश्चिन्तःकिंभवान्वृथा ॥२७॥ इत्युक्त्वातुगतेतस्मिन्पुरंगत्वामहीपतिः॥ मन्त्रयामासमन्त्रज्ञैःपुरमध्येतुमन्त्रिभिः ॥२८॥ यथाश्रुतमशेषन्तत्कथयामासमन्त्रिणाम् ॥ मुशलस्यप्रभावञ्चवीर्य्यशातनमेवच ॥ २९ ॥ तंमन्त्रंक्रियमाणन्तुमन्त्रिभिस्तेनभूभृता ॥ तत्पार्श्ववर्तिनीकन्याशुश्रावाथमुदावती ॥ ३० ॥ ततःकतिपयाहेतुतांकन्यांवयसान्विताम् ॥ जहारोपवनाद्दैत्यःकुजृम्भःससखीवृताम् ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वासमहीपालःक्रोधपर्य्याकुलेक्षणः ॥ पुत्रावुवाचत्वरितंगच्छतंवनकोविदौ ॥ ३२ ॥ निर्विन्ध्यायास्तटेगर्तस्तेनगत्वारसातलम् ॥ सहन्यतांयोऽपहर्तामुदावत्याःसुदुर्मतिः ॥ ३३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तौतत्सुतौप्राप्यतंगर्त्ततत्पदानुगौ ॥ युयुधातेकुजृम्भेणस्वसैन्येनातिकोपितौ ॥ ३४ ॥ ततःपरिघनिर्स्त्रिशशक्तिशूलपरश्वधैः ॥ बाणैश्चाविरतंयुद्धंतेषामासीत्सुदारुणम् ॥ ३५ ॥ ततोमायाबलवतातेनदैत्येनतावुभौ ॥ राजपुत्रौरणेबद्धौनिहताशेषसैनिकौ ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वासमहीपालःप्राहेदंसर्वसैनिकान् ॥ बद्धपुत्रःपरामार्तिमुपेतोमुनिसत्तम ॥ ३७ ॥

किया ॥ ३१ ॥ यह संवाद सुनतेही महीपालने क्रोधसे नेत्र लालकर वनप्रदेशके जाननेवाले दोनों पुत्रोंसे कहा, तुम वनप्रदेशके जाननेवाले हो अतएव तुम शीघ्र जावो ॥ ३२ ॥ निर्विन्ध्या नदीके तटमें जो गर्त्त है, उसके द्वारा रसातलमें जाकर मुदावतीके हरण करनेवाले उस दुर्मतिको मारो॥ ३३॥मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर दोनों राजपुत्र उस गर्त्तपर पहुँचे,उसमें उसके पैरोंके अनुसरणसे गमन करके अत्यन्तक्रोधपूर्वक अपनी सेनासहित कुजृम्भके संग युद्ध किया ॥ ३४ ॥ तिस समय परिघ निस्त्रिंश, (आयुध विशेष) शक्ति,शूल,फरशे और बाणोंके द्वारा उनका अविरत दारुण युद्ध होनेलगा ॥ ३५॥ किन्तु मायाके बलसे बली दैत्योंने युद्धस्थलमें दोनों राजपुत्रोंकी संपूर्ण सेना मारकर दोनोंको बाँधलिया ॥ ३६ ॥ हे मुनिसत्तम ! दोनों पुत्रोंके बंधनका सम्वाद जब महीपालने सुना, तब हृदयमें अत्यन्त दुःखित

होकर सेनासे कहा कि, ॥३७॥ जो उस दैत्यको मारकर मेरी कन्या और दोनों पुत्रोंको छुडासकेगा उसको अपनी वही बड़े नेत्रोंवाली मुदावती कन्या दूंगा॥३८॥ हे मुने ! राजाने पुत्र कन्याके छूटनेके विषयमें निराश होकर अपने नगरमें इस प्रकार ढंढोरा पिटवाया था ॥३९॥ बलवान् वीर्यशाली अस्त्रवित् भलन्दनपुत्र वत्सश्री यह घोषणा सुनकर आये और पिताके मित्र पार्थिवसत्तम विदूरथको प्रणाम करके विनयसे नम्र होकर कहा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ "मुझको आज्ञा दीजिये ! मैं अभी आपके तेजबलसे उस दैत्यको मारकर आपकी कन्या और पुत्रोंको छुडाताहूं" ॥ ४२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-राजाने मित्रपुत्र वत्सश्रीको सहर्ष आलिंगन करके कहा "हे वत्स! कार्यसिद्धिके लिये जाओ ॥४३॥ यदि यह कार्य करसको तो तुम्हारे द्वारा यथार्थ मित्रपुत्रका कार्य संपन्न हुआ समझूंगा और हे वत्स ! यदि इस

यस्तंनिहत्यदैतेयंमोचयिष्यतिमेसुताम् ॥ तस्याहंसंप्रदास्यामितामेवायतलोचनाम् ॥ ३८ ॥ इत्येवंघोषयांचक्रेसराजास्वपुरेतदा ॥ निराशःपुत्रतनयाव न्धमोक्षायवैमुने ॥ ३९ ॥ ततःशुश्राववत्सश्रीर्भलन्दनसुतोहितत् ॥ आघोष्यमाणंबलवान्कृतास्त्रःशौर्य्यसंयुतः ॥ ४० ॥ सचागम्याभिवाद्येनंप्राहपा र्थिवसत्तमम् ॥ विनयावनतोभूत्वापितुर्मित्रमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥ आज्ञापयाशुमाभेवतनयौमोचयामिते ॥ तवैवतेजसाहत्वातंदैत्यंतनयांचते ॥ ४२ ॥ मा र्कण्डेयउवाच ॥ सतंमुदापरिष्वज्यप्रियसख्युरथात्मजम् ॥ गम्यतामितिसंसिद्ध्यैवत्सेत्याहसपार्थिवः ॥४३॥ स्थानेस्थास्यतिमेवत्सोयद्येवंकुरुतेविधिम् ॥ वत्सैतत्क्रियतामाशुयद्युत्साहिमनस्तव ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसखड्गःसधनुर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ॥ जगामवीरःपातालंतेनगर्तेनस त्वरः ॥४५॥ ततोज्यास्वनमत्युग्रंसचक्रेपार्थिवात्मजः ॥ येनपातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥ ४६ ॥ ततोज्यास्वनमाकर्ण्यकुजृम्भोदानवेश्वरः॥ आ जगामातिकोपेनस्वसैन्यपरिवारितः ॥४७॥ ततोयुद्धमभूत्तस्यतेनपार्थिवसूनुना ॥ ससैन्यस्यससैन्येनबलिनोबलशालिना॥ ४८ ॥ दिनानित्रीणिसयदायोधि तस्तेनदानवः ॥ ततःकोपपरीतात्मामुसलायाभ्यधावत ॥ ४९ ॥ गन्धैर्माल्यैस्तथाधूपैःपूज्यमानःसतिष्ठति ॥ अन्तःपुरेमहाभागप्रजापतिविनिर्मितः ॥५०॥

कार्यमें तुम्हारा मन अत्यन्त उत्साहपूर्ण हो, तो इस कार्यको शीघ्र संपादन करो ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-इसके पीछे महावीर वत्सश्री खड्ग, धनुष, गोधा और अंगुलित्राण (चर्मका अंगुलीमें पहराजाता है) इत्यादि धारणकर उसी गर्त्तकेद्वारा शीघ्रपदसे पातालमें घुसे ॥ ४५ ॥ और वहां राजपुत्रने अपने उग्र धनुषके प्रत्यं चाकी टंकार करी कि, जिससे संपूर्ण पातालविवर परिपूर्ण होगया ॥ ४६ ॥ दानवपति कुजृम्भ इस धनुषकी प्रत्यंचाका शब्द सुननेसे अत्यन्त क्रोधित हो अपनी से नासहित आनकर उपस्थित हुआ ॥ ४७ ॥ तब बलशाली सेनासे युक्त राजपुत्र के संग सेनाकी अधिकाईसे बली कुजृम्भका युद्ध हुआ ॥४८॥ दानव तीन दिन तक उनके संग संग्राम करके क्रोधितचित्तसे मूशल लेनेको दौड़ा ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! प्रजापतिनिर्मित वह मूशल गंध, माल्य, धूप इत्यादिके द्वारा पूजित

होकर अन्तःपुरमें रक्खा रहता था ॥ ५० ॥ मुदावती पहिलेसेही मूशलका प्रभाव जानती थी, उसने मस्तक झुकाकर उसको स्पर्श कर दिया था ॥ ५१ ॥ और जब असुरने वह मूशल ग्रहण किया तबतक उस सुंदरीने पूजाके बहाने उसको वारंवार स्पर्शकिया था॥५२॥ इसके उपरान्त असुरपति रणस्थलमें उपस्थित हो उस मूशलके द्वारा युद्ध करनेलगा। किन्तु शत्रुओंमें मूशलपात व्यर्थ होनेलगा॥५३॥ हे मुने ! सौनन्द परम अस्त्र मूशलके वीर्यहीन होनेपर दैत्य अस्त्रशस्त्रद्वाराही संग्राममें शत्रुके संग युद्ध करनेलगा ॥ ५४ ॥ किन्तु दैत्यराज पुत्रके समान अस्त्रशस्त्रद्वारा युद्धमें पारदर्शी नहीं था और उसको जो मूशलका बल था, वहभी बुद्धिबलसे व्यर्थ

ततोविज्ञातमुशलप्रभावासामुदावती ॥ परस्पर्शमुशलश्रेष्ठमतिनम्रशिरोधरा ॥५१॥ पुनर्यावत्सगृह्णातिमुशलंतंमहासुरः ॥ तावत्सावन्दनव्याजात्परस्पर्शानेक शःशुभा ॥५२॥ ततःसगत्वायुयुधेमुशलेनासुरेश्वरः ॥ व्यर्थामुशलपातास्तेसंजग्मुस्तेषुशत्रुषु॥५३॥ परमास्त्रेतुनिर्वीर्येसौनन्देमुशलेमुने ॥ अस्त्रैःशस्त्रैश्चदैतेयः सोयुध्यतरणेऽरिणा॥५४॥शस्त्रास्त्रैर्नसमस्तस्यराजपुत्रस्यसोऽसुरः॥मुशलेनबलन्तस्यतच्चतन्व्यानिराकृतम् ॥५५॥ ततःपराजित्यसभूपसूनुरस्त्राणिशस्त्राणि चदानवस्य ॥ चकारसद्योविरथंततश्चसचर्मखङ्गःपुनरप्यधावत् ॥५६॥ तमापतन्तंरभसाऽभ्युदीर्णविस्पष्टकोपंत्रिदशेन्द्रशत्रुम्॥ शस्त्रेणवह्नेर्भुविराजपुत्रोज घानकालानलसप्रभेण ॥५७॥ सपावकास्त्रेणहृदिक्षतोभृशंतत्याजदेहंत्रिदशारिरात्मनः ॥ बभूवसद्यश्चमहोरगाणांरसातलान्तेषुमहानथोत्सवः ॥५८॥ ततो पतत्पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतोपरि ॥ जगुर्गन्धर्वपतयोदेववाद्यानिसस्वनुः ॥ ५९ ॥ सचापिराजपुत्रस्तंहत्वातौनृपतेःसुतौ ॥ मोचयामासतन्वङ्गींताञ्चकन्यांमु दावतीम् ॥ ६० ॥

किया गया था ॥ ५५ ॥ अतएव राजपुत्रने उसक संपूर्ण अस्त्र शस्त्र व्यर्थ करके उसको तत्काल रथविहीन किया। तब दैत्य फिर तलवार और ढाल ग्रहण करके दौडाहुआ आया ॥ ५६ ॥ इन्द्रशत्रु उस दैत्यके क्रोधयुक्त होकर वेगसहित आनेपर राजपुत्रने कालाग्नितुल्य चमकतेहुए आग्नेयास्त्रद्वारा उसको वध किया ॥ ॥ ५७ ॥ देवशत्रु कुजृम्भने उस आग्नेयास्त्रसे हृदयमें अत्यन्त घायल हो जैसेही प्राण परित्याग किया, उसीसमय पातालवासी उरगोंमें महाउत्सव उपस्थित हुआ ॥ ५८ ॥ तिसकाल राजपुत्रके ऊपर पुष्पवृष्टि होनेलगी, गंधर्वोंने संगीत आरंभ किया और समस्त देवबाजे बज उठे ॥ ५९ ॥ राजपुत्र वत्सप्रीनेभी दैत्यका

विनाश करके सुनीति और सुमति नामक दोनों राजपुत्र और राजकन्या क्षीणाङ्गी मुदावतीको छुडाया ॥ ६० ॥ कुजृम्भके मारेजानेपर शेषनामक नागराज अनन्तने उस मूशलको ग्रहण किया ॥ ६१ ॥ और हे द्विज ! तपोधन नागराज राजकन्या मुदावतीका अभिप्राय समझकर सहर्ष उसके प्रति संतुष्ट हुए ॥ ६२ ॥ स्त्रीके करतलस्पर्शका प्रभाव जानकर मुदावतीने जो वारम्वार मूशलको स्पर्श किया था ॥ ६३ ॥ इसकारण नागराजने सानन्द मुदावतीका सौनन्द मूशलके गुणसे 'सुनन्दा' यह नाम रक्खा ॥ ६४ ॥ राजपुत्रने दोनों भ्राताओंके सहित उस कन्याको शीघ्र पिताके समीप लाय प्रणामपूर्वक कहा ॥६५॥ हे तात ! आपकी आज्ञानुसार आपके यह दोनों पुत्र और मुदावतीको ले आयाहूं, अब मुझको अन्य जो करना होगा, उसकी आज्ञा दीजिये॥ ६६ ॥मार्कण्डेयजी बोले तब महीपालने प्रीतिपूर्ण हृदय हो उच्चस्वर

तच्चापिमुसलंतस्मिन्कुजृम्भेविनिपातिते ॥ जग्राहनागाधिपतिरनन्तःशेषसंज्ञितः ॥ ६१ ॥ तस्याश्वपरितुष्टोऽसौशेषःसर्वोरगेश्वरः ॥ मुदावत्यामुदाध्यातमनोवृत्तिस्तपोधनः ॥ ६२॥ सुनन्दमुशलस्पर्शंयच्चकारपुनःपुनः ॥ योषित्करतलस्पर्शप्रभावज्ञातिशोभना ॥ ६३ ॥ मुदावत्यास्ततोनाम नागराजस्तदाकरोत् ॥ सुनन्दामितिसानन्दंसौनन्दगुणजंद्विज ॥ ६४ ॥ सचापिराजपुत्रस्तांभ्रातृभ्यांसहितांपितुः ॥ समीपमानिनायाशुप्रणिपत्याहचैवतम् ॥६५॥ आनीतौतनयौताततथैवेयंमुदावती ॥ तवाज्ञयामयान्यद्यत्कर्तव्यंतत्समादिश ॥६६॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततः प्रहर्षसंपूर्णहृदयःस महीपतिः ॥ साधुसाध्वित्यथाहोच्चैर्वत्सवत्सेतिशोभनम्॥६७॥ सभाजितोऽस्मित्रिदशैर्वत्साहंकारणैस्त्रिभिः ॥ त्वंजामाताचयत्प्राप्तोयच्चारिर्विनिपातितः॥६८॥ आगतान्यक्षतान्यत्रयच्चापत्यानिमेपुनः ॥ तद्गृहाणाद्यशस्तेऽह्निपाणिमस्यामयोदितम् ॥ ६९ ॥ त्वंराजपुत्रचार्वङ्ग्याःकन्यायादुहितुर्मम ॥ मुदावत्यामुदायुक्तःसत्यवाक्यंकुरुष्वमाम् ॥७०॥ ॥ राजपुत्रउवाच ॥ ॥ तातस्याज्ञामयाकार्य्यायद्ब्रवीषिकरोमितत् ॥ त्वमेवताततजानीषेनैवात्राधिकृतावयम् ॥७१॥

और मधुर वचनोंसे "साधु वत्स ! साधु वत्स !" इसप्रकार कहकर॥ ६७॥ फिर कहा हे वत्स ! आज मैं तीन कारणों से देवताओंके द्वाराभी प्रशंसित हुआहूं । प्रथम तो तुमको जामातृ प्राप्त किया, दूसरे शत्रु मारागया ॥ ६८ ॥ और तीसरे मेरे पुत्र कन्या फिर अक्षत शरीर (स्वस्थशरीर) से यहां लौट आये हैं, अतएव हे राजपुत्र ! आज शुभदिनमें मेरी आज्ञानुसार सहर्ष शोभनाङ्गी लक्षणयुक्त मेरी इस दुहिता मुदावतीका पाणिग्रहण करो, तो मैं सत्यवादी हूंगा ॥ ६९ ॥ ७० ॥ राजपुत्रने कहा हे तात ! आपकी आज्ञा अवश्यही प्रतिपालन करने योग्य है, अतएव जो आज्ञा देते हो वही करूंगा हे तात ! आपभी जानते हैं कि, पूज्यपुरुषोंकी

आज्ञा पालनमें मैं कभी विमुख नहीं हुआ ॥ ७१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले —अनन्तर राजेन्द्र विदूरथने कन्या मुदावती और भलन्दनपुत्र वत्सप्रीका विवाहकार्य संपादन किया ॥ ७२ ॥ तदनन्तर नवयुवक वत्सप्रीभी मुदावतीके सहित रमणीयदेश और प्रासादशिखरमें विहार करने लगे ॥ ७३ ॥ कालक्रमसे वत्सप्रीके पिता भलन्दन वृद्धहोकर वनमें चलेगये, तब वत्सप्री राजा होकर ॥ ७४ ॥ यज्ञानुष्ठान और धर्मानुसार प्रजाका पालन करने लगे । प्रजा उन महात्माके द्वारा पुत्रके समान पालीजाकर ॥ ७५ ॥ उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होने लगी और उनके राज्यमें कहीं वर्णसंकरकी उत्पत्ति नहीं हुई उनके शासन कालमें चोर, हिंसक जन्तु, दुर्वृत्त कुचाली और अन्यान्य विघ्नोंसे कोई भय नहीं था॥ ७६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भलन्दनवत्सप्रीचरितं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११३॥

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तयोःसराजेन्द्रश्चक्रेवैवाहिकंक्रमम् ॥ मुदावत्याश्चदुहितुर्भलन्दनसुतस्यवै ॥ ७२ ॥ ततःसहतयारेमेवत्सप्रीर्नवयौवनः ॥ रमणीयेषुदेशेषुप्रासादशिखरेषुच ॥७३॥ कालेनगच्छतावृद्धःपितातस्यभलन्दनः ॥ वनंजगामवत्सप्रीःसवभूवमहीपतिः ॥ ७४ ॥ इयाजयज्ञान्सततंप्रजा धर्मेणपालयन् ॥ पुत्रवत्पाल्यमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना ॥७५ ॥ ववृधुर्विषयेतस्यनचाभूद्वर्णसङ्करः ॥ नदस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्चकस्यचित् ॥ नोपस र्गभयञ्चैवतस्मिञ्छासतिभूपतौ ॥ ७६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभलन्दनवत्सप्रीचरितंनामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्यतस्यांसुनन्दायांपुत्राद्वादशजज्ञिरे॥प्रांशुःप्रवीरःशूरश्चसुचक्रोविक्रमःक्रमः॥१॥ बलीबलाकश्चण्डश्चप्रचण्डश्चसुविक्रमः ॥सुनयश्चमहाभागाःसर्वेसंग्राम जित्तमाः॥ २ ॥ तेषांज्येष्ठोमहावीर्य्यःप्रांशुरासीन्नराधिपः ॥ इतरेभृत्यवत्तस्यबभूवुर्वशवर्त्तिनः ॥३॥ तस्ययज्ञेद्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः ॥ न्यूनवर्ण विसृष्टैश्चसत्यनाभावसुन्धरा ॥ ४ ॥ सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ योऽभूद्धनचयः कोशेतेननिष्पादितास्तुये ॥ ५ ॥ क्रतवः शतंसहस्रा स्तेतेषांसंख्यानविद्यते ॥ अयुताद्येनकोटीभिर्नचपद्मादिभिर्मुने॥६॥ प्रजातिस्तस्यपुत्रोऽभूद्यस्ययज्ञेशतक्रतुः॥ अवाप्यतृप्तिमतुलांयज्ञभागैः सुरैःसह॥७॥

मार्कण्डेयजी बोले—उस सुनन्दाके गर्भसे वत्सप्रीके बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे उनके नाम प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र,विक्रम, क्रम॥ १ ॥ बल,बलाक, चण्ड,प्रचण्ड, सुविक्रम और स्वरूप । यह सब महाभाग और संग्राम जीतनेवाले थे ॥ २ ॥ तिनमें ज्येष्ठ महावीर प्रांशु राजा हुए थे और अन्यान्य ग्यारह भ्राता भृत्यके समान उनके वशवर्त्ती रहते थे ॥ ३ ॥ उनके यज्ञकालमें ब्राह्मणोंने और दूसरी जातिने अनेकानेक द्रव्यका त्याग किया इसीकारण पृथ्वीने "वसुन्धरा" यह सार्थक नाम धारण किया था ॥ ४ ॥ औरस पुत्रके समान प्रजापालन करकेभी उनके राजकोशमें जो धन इकट्ठा होता, उसके द्वाराही जो समस्त असंख्य यज्ञकार्य सम्पा दित हुए थे हे मुने ! उनकी अयुत, करोड़,पद्म इत्यादि संख्याद्वाराभी गिनती नहीं होसकती ॥ ५ ॥ ६ ॥ प्रांशुके प्रजातिनामक पुत्र हुए थे उनके यज्ञमें बलिश्रेष्ठ

शतक्रतु इन्द्रने देवताओंके सहित यज्ञभागद्वारा तृप्तिलाभकरके महावीर्यशाली ॥ (९१) दानव बल और जम्भ नामक दोनों असुरराज तथा अन्यान्य महाव ली देवताओंके शत्रुओंको मारा था. हे मुने ! खनित्र इत्यादि प्रजातिके पांच पुत्र थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ तिनमें खनित्रही अपने विक्रमद्वारा विख्यात राजा हुए हैं, यह शान्त, सत्यवादी, शूर, सब प्राणियोंका हित करनेवाले ॥ १० ॥ स्वधर्मपरायण सदा वृद्धसेवी, बहुशास्त्रदर्शी, वाग्मी, विनयी, अस्त्रज्ञ, अहंकाररहित ॥ ११ ॥ और सर्वलोकप्रिय थे, वह सदाही यह बात कहते " सब प्राणी आनन्द भोगें, विजनस्थानमेंभी प्रीतिमान हो ॥ १२ ॥ सबजीवोंका मंगल हो और सभी भय रहित हों प्राणियोंकी पीडा नष्ट हो, किसीको मनोव्यथा उपस्थित न हो ॥ १३ ॥ और समस्तप्राणी सबके प्रति मैत्रीभाव प्रकाश करें,

दानवानांसुवीर्य्याणांजवाननवतीर्नव ॥ बलंचबलिनांश्रेष्ठोजम्भंचासुरसत्तमम् ॥ ८ ॥ अन्यांश्चसुमहावीर्य्यानाजवानामरद्विषः ॥ प्रजातेस्तनयाःपंचखनित्रप्रमुखामुने ॥ ९ ॥ तेषांखनित्रोराजाभूत्प्रख्यातोनिजविक्रमैः ॥ सशान्तःसत्यवाक्छूरः सर्वप्राणिहितेरतः ॥१०॥ स्वधर्माभिरतोनित्यंवृद्धसेवीबहुश्रुतः ॥ वाग्मीविनयसंपन्नः कृतास्त्रोऽप्यविकत्थनः ॥ ११ ॥ सर्वलोकप्रियोनित्यमुवाचैतदहर्निशम् ॥ नन्दन्तुसर्वभूतानिस्निह्यन्तुविजनेष्वपि ॥ १२ ॥ स्वस्त्यस्तुसर्वभूतेषुनिरातङ्कानिसन्तुच ॥ माव्याधिरस्तुभूतानामाधयोनभवन्तुच ॥ १३ ॥ मैत्रीमशेषभूतानिपुष्यन्तुसकलेजने ॥ शिवमस्तुद्विजातीनांप्रीतिरस्तुपरस्परम् ॥१४॥ समृद्धिःसर्ववर्णानांसिद्धिरस्तुचकर्मणाम् ॥ भोलोकाःसर्वभूतेषुशिवावोऽस्तुसदामतिः॥१५॥ यथात्मनियथापुत्रेहितमिच्छथसर्वदा ॥ तथासमस्तभूतेषुवर्त्तध्वंहितबुद्धयः॥१६॥एतद्वोहितमत्यन्तंकोवाकस्यापराध्यते ॥ यत्करोत्यहितंकिंचित्कस्यचिन्मूढमानसः॥१७॥ तंसमभ्येतितन्नूनंकर्तृगामिफलंयतः ॥ इतिमत्वासमस्तेषुभोलोकाहितबुद्धयः ॥ १८ ॥ सन्तुमालौकिकंपापंलोकाःप्राप्स्यथवैबुधाः ॥ योमेऽद्यास्निह्यतेतस्यशिवमस्तुसदाभुवि ॥ १९ ॥

ब्राह्मणोंका मंगल, परस्पर प्रीति ॥ १४ ॥ संपूर्ण वर्णोंकी समृद्धि और संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धि संघटित हो, हे जनगण ! तुम्हारी सब प्राणियोंमेंही सदा मंगलमय बुद्धि प्रवृत्त रहै ॥ १५ ॥ तुम जिस प्रकार अपनी और अपने पुत्रके हितकी कामना करतेहो, इसी प्रकार सब जीवोंके हितकी कामना करो ॥ १६ ॥ यही तुम्हारा अत्यन्त हितकारक है, कौन किसके निकट अपराधी होता है, जो कोई मन्दबुद्धि किसीका अहित करता है ॥ १७ ॥ तो उसीका अहित होता है, क्योंकि कर्मफल कर्त्ताकोही भोगना पडता है, हे मनुष्यगण ! तुम यह विचारकर समस्तप्राणियोंमें हितबुद्धि होओ अर्थात् सदैव सबप्राणियोंके हितकी चेष्टा करते रहो ॥ १८ ॥ हे बुधगण ! तुम लौकिक पापमें प्रवृत्त न होना। ऐसा करनेसे तुम पुण्यलोकोंको प्राप्त होगे। जो इस समय मुझसे स्नेह रखता है, पृथ्वीमें उसका सदा मंगल हो॥ १९॥

और जो मुझसे द्वेष करता है, वहभी सदा मंगल भोगे । समस्तगुण—संपन्न; पद्मपलाशलोचन राजाके पुत्र वह श्रीमान् खनित्र इस प्रकार थे । वह प्रीति पूर्वक भ्राताओंको पृथक् पृथक् राज्यमें नियुक्त कर ॥ २० ॥ २१ ॥ स्वयं समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वीको पालते भोगते रहे । शारिको पूर्वप्रदेशमें, उदावसुको दक्षिणदेशमें ॥ २२ ॥ पश्चिममें मुनि और उत्तरमें महारथी उस राजाके पृथक् गोत्रके पुरोहित ॥ २३ ॥ खनित्र और उनके भ्राताओंके मंत्रिवंशके क्रमसे प्राप्त पृथक् गोत्री जो मुनिगण पुरोहित थे उसीके अनुसार अत्रि—कुलोत्पन्न सुहोत्र नामक ब्राह्मण शौरिके ॥ २४ ॥ गौतम—वंशोत्पन्न कुशावर्त्त उदावसुके काश्यपगोत्रज

यश्चमांद्वेष्टिलोकेऽस्मिन्सोऽपिभद्राणिपश्यतु ॥ एवंस्वरूपःपुत्रोऽभूत्खनित्रस्तस्यभूपतेः ॥२०॥ समस्तगुणसम्पन्नःश्रीमानब्जदलेक्षणः।तिनतेभ्रातरःप्रीत्या पृथग्राज्येषुयोजिताः ॥२१॥ स्वयंचपृथिवीमेतांबुभुजेसागराम्बराम् ॥ प्राच्यांतेनकृतःशौरिर्दक्षिणस्यामुदावसुः॥२२॥ दिशिप्रतिच्यांसुनयउत्तरस्यांमहार थाः ॥ तेषांतस्यचभूपस्यपृथग्गोत्राःपुरोहिताः ॥ २३ ॥ बभूवुर्मुनयश्चैवमन्त्रिवंशक्रमागताः ॥ शौरेरत्रिकुलोद्भूतःसुहोत्रोनामवैद्विजः ॥२४॥ उदावसोः कुशावर्त्तोगौतमान्वयजोऽभवत् ॥ काश्यपःप्रमतिर्नामसुनयस्यपुरोहितः ॥२५॥ महारथस्यवासिष्ठःपुरोधाऽभून्महीभृतः ॥ बुभुजुस्तेस्वराज्यानिचत्वारो ऽपिनराधिपाः ॥ २६ ॥ खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः ॥ तेषुभ्रातृष्वशेषेषुखनित्रःसमहीपतिः ॥२७॥ प्रजासुचसमस्तासुपुत्रेष्विवसदाहितः ॥ एक दामन्त्रिणाशौरिःसप्रोक्तोविश्ववेदिना ॥२८॥ विविक्तेपृथिवीपालकिंचिद्वक्तव्यमस्तिनः ॥ यस्येयंपृथिवीकृत्स्नायस्यभूपावशानुगाः ॥२९॥ सराजातस्यपुत्रश्च तत्पौत्राश्चान्वयस्ततः ॥ इतरेभ्रातरस्तस्यप्राक्स्वल्पविषयाधिपाः ॥ ३० ॥ तत्पुत्राश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पकाः ॥ कालेनह्रासमासाद्यपुरुषा त्पुरुषान्तरम् ॥ ३१ ॥

प्रमति सुनयके ॥ २५ ॥ और वसिष्ठ महारथके पुरोहित थे। उक्त चारों भाई राजा होकर अपने अपने राज्यको भोगते थे ॥ २६ ॥ समस्त वसुधाधिपति खनित्र उनके अधी श्वर थे । महाराज खनित्र सब भाई ॥ २७ ॥ और समस्त प्रजाके प्रति पिता जिसप्रकार पुत्रसे व्यवहार करताहै, सदा उसीप्रकार हित व्यवहार करते थे एकदिन मन्त्री विश्ववदीने शौरिसे कहा ॥ २८ ॥ हे महीपाल! इस एकान्त समयमें मुझे कुछ कहना है । यह समस्त पृथ्वी और भूपालगण जिनके वशीभूतहैं ॥ २९ ॥ वह और उनके पुत्र पौत्र इत्यादि वंशधरही राजाहोते हैं और उनके अपरभाई प्रथम अल्प राज्यके अधिकारी होते हैं ॥ ३० ॥ क्रमानुसार उनके पुत्र उससेभी अल्प और फिर

उनके पौत्र उनकी अपेक्षाभी अल्प राज्यके अधिकारी होते हैं, समय पाकर पुरुषानुक्रमसे वह घटते घटते अन्तमें ॥ ३१ ॥ तिस वंशके मनुष्य खेतीसे जीविका निर्वाह करते हैं। हे पृथ्वीपाल! भ्रातृ-स्नेहमें बद्ध होकर भ्राता कभी भ्राता का उद्धार नहीं करता ॥ ३२ ॥ फिर उक्त दोनों भ्राताओंके दोनों पुत्रभी परस्पर परस्परको पराया विचारते हैं। हे पार्थिव! उनके पुत्र उत्पन्न होनेपर वह उत्पन्न हुआ पुत्र फिर और भी पराया विचारता है ॥ ३३ ॥ और किस कार्यके करनेसे अपना पुत्र सुखमें रहे, उस विषयमेंही वह अधिक मन लगाते हैं। और भी-जो किसी प्रकार संतोष मात्र राजाका अवलम्बनीय हो ॥ ३४ ॥ तो भूपालगण किस प्रयोजनके लिये मंत्रियोंको रखतेहैं; मेरे समान मंत्री रहनेपर आप समस्त राज्यही भोग सकेंगे ॥ ३५ ॥ और मैं यदि चेष्टा करूं तो क्यों आप वृथा संतोष

कृष्योपजीविनोभूपभवन्तीतितदन्वयाः ॥ नोद्धारंकुरुतेभ्राताभ्रातृस्नेहबलार्पणः ॥ ३२ ॥ स्नेहःकःपृथिवीपालपरयोर्भ्रातृपुत्रयोः ॥ तत्पुत्रयोःपरतरामतिर्भवतिपार्थिव ॥ ३३ ॥ तत्पुत्रःकेनकार्य्येणप्रीतियुक्तोभविष्यति ॥ अथवायेनतेनैवसंतोपंकुरुतेनृपः ॥ ३४ ॥ क्रियतेतत्किमर्थन्तुभूपैर्मंत्रिपरिग्रहः ॥ भुज्यतेसकलंराज्यंमयातेमंत्रिणासता ॥ ३५ ॥ तत्किमुधाधारयसेसंतोपंकुरुतेयदि ॥ कार्यनिष्पादकंराज्यंकरणंकर्तुरिष्यते ॥ ३६ ॥ राज्यलब्धुश्चतेकार्यंत्वंकर्त्ताकरणंवयम् ॥ सोऽस्माभिःकरणैराज्यंपितृपैतामहंकुरु ॥ फलप्रदाभविष्यामःपरलोकेनतेवयम् ॥३७॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ ज्येष्ठोभ्रातामहीपालोवयंतस्यानुजायतः॥ततःसभुंक्तेपृथिवींवयंचाल्पवसुंधराम् ॥३८॥ वयन्तुभ्रातरःपंचपृथ्वीचैकामहामते ॥ अतोऽस्याःपृथगैश्वर्य्यंकथंकृत्स्नंभविष्यति ॥ ॥ ३९ ॥ ॥ विश्ववेद्युवाच ॥ ॥ एवमेतद्भवत्वत्रयद्येकावसुधानृप ॥ तांत्वमेवाभिपद्यस्वज्येष्ठःशास्तुयथाभवान् ॥ ४० ॥

धारण कररहे हैं? राज्यकरनेवालेका कार्य करदेनाही मंत्रीका इष्ट है॥ ३६ ॥ किन्तु तिनमें राज्यलाभकार्यमें आप कर्त्ता और मैं कारण हूं। ❀ अतएव कारणके द्वारा अपना पितृ पैतामहिक राज्यशासन कीजिये। हम इसी लोकमें आपको फलदाता होंगे परलोकमें फलदाता नहीं होंगे ॥ ३७ ॥ राजाने कहा महीपालक राजा हमारे ज्येष्ठ हैं और हम उनके अनुज हैं, अतएव वह सब पृथ्वी भोगते हैं और हम अल्पमात्र पृथ्वीका भाग भोग करते हैं ॥ ३८ ॥ हे महामते! हम पांच भाई हैं, किन्तु पृथ्वी केवल एक है इस कारण इस पृथ्वीका समस्त ऐश्वर्य हम किसप्रकार पृथक् भावसे भोग करनेमें समर्थ होंगे? ॥ ३९ ॥ विश्ववेदी बोला हे नृप!

❀ जिसके द्वारा कार्य-संपन्नहो, उसीको कारण कहते हैं।

आपने जो कहा सो सत्य है, पृथ्वीको यदि एकही मान लिया जाय, तो आपही उसको ग्रहण कीजिये और सबमें प्रधान होकर आपही इस पृथ्वीका शासन कीजिये ॥४०॥ सर्वाधिपत्य लाभ करके सब भाइयोंमें आपही अखिलेश्वर हूजिये मेरे समान उनके नियुक्त मंत्री भी इसी प्रकार चेष्टा करते हैं ॥ ४१ ॥ राजाने कहा—ज्येष्ठ भ्राता हमारा पुत्रके समान स्नेह सहित पालन करते चले आते हैं फिर मैं किस प्रकार उन राजाके राज्यमें ममता (लोभ) करूं?॥४२॥विश्ववेदीबोला—आप राज्य अधिकारपूर्वक ज्येष्ठ होकर भाँति २ के सत्कारसे पूजाद्वारा उनकी अर्चना कीजिये । अथवा राज्यकी चाहना करनेवाले मनुष्यको बडे छोटे का विचार करना निष्प्रयोजन है ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे सत्तम ! अनन्तर राजाके यह बात स्वीकार करनेपर मंत्री विश्ववेदीने उनके अन्यान्य भ्राताओंको वशीभूत कर लिया ॥ ४४ ॥ और उनके पुरोहितोंको अपने शान्तिकर्म और खनित्रके आभिचारिक कार्यमें नियुक्त किया॥४५॥खनित्रके विश्वासीभृत्यों

सर्वाधिपत्यःसर्वेभ्योभवत्वमखिलेश्वरः ॥ यतन्तेचयथाहंतेतेषामपिहिमन्त्रिणः ॥४१॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ ज्येष्ठोराजायथाप्रीत्याभजतेऽस्मान्सुतानिव ॥ कथंतस्यकरिष्यामिममत्वंजगतीगतम् ॥ ४२ ॥ ॥ विश्ववेद्युवाच ॥ ॥ राज्येस्थितःपूजयेथाज्येष्ठंभूपार्हणैर्धनैः ॥ कनिष्ठज्येष्ठताकेयंराज्यंप्रार्थयतां नृणाम् ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तथेतिचप्रतिज्ञातेभूभुजातेनसत्तम ॥ विश्ववेदीततोमन्त्रीतद्भ्रातॄननयद्वशम् ॥ ४४ ॥ तेषांपुरोहितांश्चैवआत्मनः शांतिकादिषु ॥ नियोजयामासततःखनित्रस्याभिचारके ॥ ४५ ॥ बिभेदतस्यनिभृतान्सामदानादिभिस्तथा ॥ चक्रेचपरमोद्योगंनिजदंडप्रभावने ॥४६॥ आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनिकुर्वताम् ॥ पुरेऽधसांचतुर्णांचजज्ञेकृत्याचतुष्टयम् ॥ ॥ ४७ ॥ विकरालंमहावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् ॥ समुद्यतमहाशूलं प्रभूतमतिदारुणम् ॥ ४८ ॥ ततस्तदागतन्तत्रखनित्रोयत्रपार्थिवः ॥ निरस्तंचाप्यदुष्टस्यतस्यपुण्यचयेनतत् ॥ ४९ ॥ कृत्याचतुष्टयन्तेषुनिपपात दुरात्मसु ॥ पुरोहितेषुभूपानांतथावैविश्ववेदिनि ॥ ५० ॥ ततोनिहन्त्यानिर्दग्धाःकृत्ययातेपुरोहिताः ॥ विश्ववेदीतथामन्त्रीसशौरेर्दुष्टमन्त्रदः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेखनित्रचरित्रेचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

को सामदानादि द्वारा भेदयुक्त करके अपने दण्डके प्रभाव बढानेमें उद्योग करनेलगा ॥४६ ॥ जब चार पुरोहित नित्य अत्युग्र आभिचारिक कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए तब चार कृत्या उत्पन्न हुईं ॥ ४७ ॥ वह सब कराल देह, विकट वदन और देखनेमें अति भयंकर थीं उनके हाथमें महाशूल उद्यत, देह अतिविशाल और वह अत्यन्त दारुण थीं ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त वह चारों कृत्या राजा खनित्रके समीप उपस्थित हुईं । किन्तु निष्पाप राजाके पुण्यबलसे तेजहत होकर ॥ ४९ ॥ वह राजाओंके उन दुरात्मा चारों पुरोहित और विश्ववेदीके निकट लौटकर आईं ॥ ५० ॥ तब यह पुरोहित और शौरिको दुष्ट परामर्श देनेवाला मंत्री विश्ववेदी कृत्याओंके द्वारा निहत होकर भस्म होगया ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले-तिस काल समस्त लोकोंकोही यह एक महान् आश्चर्य उपस्थित हुआ था कि, पृथक् पृथक् पुरवासी होकर भी यह किस प्रकार एकही कालमें नाशको प्राप्त हुए! १॥ हे मुनिसत्तम! इसके उपरान्त महाराज खनित्र भ्राताके पुरोहित और भ्राताके मंत्री विश्ववेदीका दग्ध होकर मरना सुन ॥ २ ॥ इसका कारण न जान, 'यह क्या हुआ?' इस प्रकार चिन्ता करके अत्यन्त आश्चर्यमें हुए ॥ ३॥ फिर वसिष्ठजीके घर आनेपर जिस कारणसे भ्राताके मंत्री और पुरोहित नष्ट हुए थे राजाने वह उनसे पूछा ॥ ४ ॥ जब महामुनि वसिष्ठजीसे इस प्रकार पूछा गया, तब उन्होंने शौरिके मंत्री और शौरिकी परस्पर जो बातचीत हुईथी ॥ ५ ॥ उस, दुष्ट मंत्रीके द्वारा भ्राताओं में भेद—साधन करनेवाले जो सब कार्य अनुष्ठित हुए थे पुरोहितोंने जो किया था ॥ ६ ॥ और शत्रुपर भी दया करनेवाले वह पुरोहित

॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसमस्तलोकस्यविस्मयःसोऽभवन्महान् ॥ यदेककालंनेशुस्तेपृथक्पुरनिवासिनः ॥ १ ॥ ततःशुश्रावनिधनंयाता न्भ्रातृपुरोहितान् ॥ मन्त्रिणश्चतथाभ्रातुर्दग्धंतंविश्ववेदिनम् ॥ २ ॥ किमेतदितिसोऽतीवविस्मितोमुनिसत्तम ॥ खनित्रोऽभून्महाराजोनाजानात्तच्चका रणम् ॥ ३ ॥ ततोवसिष्ठंपप्रच्छसराजागृहमागतम् ॥ यत्कारणंविनेशुस्तेभ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः॥ ४ ॥ तेनपृष्टस्तदाप्राहयथावृत्तंमहामुनिः ॥ यच्छौरिमन्त्रि णाप्रोक्तंयच्चशौरिरुवाचतम् ॥ ५ ॥ यथाचानुष्ठितन्तेनभ्रातॄणांभेदकारिवै ॥ मन्त्रिणातेनदुष्टेनयच्चक्रुश्चपुरोहिताः ॥ ६ ॥ यन्निमित्तंविनेशुस्तेअपापस्यापका रिणः ॥ पुरोहितास्तस्यराज्ञःशत्रावपिदयावतः ॥ ७ ॥ सतच्छ्रुत्वाततोराजाहाहतोऽस्मीतिवैवदन् ॥ निनिन्दात्मानमत्यर्थंवसिष्ठस्याग्रतोद्विज ॥ ८ ॥ रा जोवाच ॥ ॥ धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् ॥ दैवदोषकृतंपापंसर्वलोकविगर्हितम् ॥ ९ ॥ मन्निमित्तंविनष्टंतत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ॥ मत्ता कोऽन्यःपापतरोभविष्यतिपुमान्भुवि ॥१०॥ नाभविष्यंयदिपुमानहमत्रमहीतले ॥ ततस्तेनविनंश्येयुर्ममभ्रातृपुरोहिताः ॥ ११ ॥ धिग्राज्यंधिक्चमेजन्मभू भुजांमहतांकुले॥कारणत्वंगतोयोऽहंविनाशस्यद्विजन्मनाम् ॥१२॥ कुर्वन्तःस्वामिनांतेऽथभ्रातॄणांममयाजकाः॥नाशंययुर्नदुष्टास्तेदुष्टोऽहंनाशकारणे॥१३॥

जिस कारण निरपराधीका अपकार करनेमें उद्यत होकर नष्ट हुए थे, वह सब यथावत् कहा ॥ ७ ॥ हे द्विज! राजा यह सब वार्त्ता सुन "हा हतोस्मि" इस प्रकार कह, वसिष्ठजीके सामनेही अपनपेकी अत्यन्त निन्दा करने लगे ॥ ८ ॥ राजा बोले—मेरा पुण्यसंचय नहीं है, मैं अल्पभाग्य और शोभाहीन हूं, दैवभी मेरे प्रतिकूल है और मैं सर्व लोकमें निन्दित तथा पापीहूं, मुझको धिक्कार है ॥ ९ ॥ क्योंकि मेरे निमित्तही चार ब्राह्मण मृत्युको प्राप्त हुएहैं, अतएव मेरी अपेक्षा भूमण्डलमें और अधिक पापी मनुष्य कौन है? ॥ १० ॥ इस पृथ्वीमें, मैं यदि पुरुष होकर जन्म ग्रहण नहीं करता, तो फिर मेरे भ्राताओंके पुरोहित नष्ट नहीं होते ॥ ११ ॥ मैंही ब्राह्मणोंके नाशका कारण हुआहूं, अतएव मेरे इस राज्य और महत् राजकुलमें मेरे इस जन्मको धिक्कार है ॥ १२ ॥ मेरे भ्राताओंके याजकगण प्रभुका

प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये जाकर नष्ट हुये हैं, सुतरां वह दोषी नहीं हैं, उनके विनाशका कारण होकर मैं ही दोषी हुआ ॥ १३ ॥ मैं अब क्या करूं ? कहाँ जाऊं? ब्रह्म हत्याका कारण होकर मेरे समान पापकारी पृथ्वीमें दूसरा नहींहै॥ १४ ॥ इसप्रकार महीपाल खनित्रने उद्विग्नचित्त होकर वन जानेकी इच्छासे पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त किया ॥ १५ ॥ राजा क्षुप नामक पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करके तीन पत्नियोंके संग तपस्याके लिये वनमें चलेगये ॥ १६ ॥ नृपसत्तमने वनमें उपस्थित होकर वानप्रस्थ विधानानुसार साढेतीनसौ वर्ष तपस्याकी थी ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त हे द्विजोत्तम ! राजकुलतिलक वनवासी उन राजाने तपस्याद्वारा क्षीणदेह होनेपर सर्व स्रोत (इंन्द्रिय पथ) निरोधकरके प्राणपरित्याग किया ॥ १८ ॥ अन्यान्य राजा शत शत अश्वमेध करकेभी जिस लोकको प्राप्त नहीं होसकते महाराज खनित्र मृत्युके पीछे

किंकरामिक्कगच्छामिनान्योमत्तोहिपापकृत् ॥ पृथिव्यामस्तिहेतुत्वंद्विजनाशस्ययोगतः ॥१४॥ इत्थमुद्विग्नहृदयःखनित्रःपृथिवीपतिः ॥ वनंयियासुःपुत्रस्यकृतवानभिषेचनम् ॥१५॥ अभिषिच्यसुतंराज्येक्षुपसंज्ञंमहीपतिः ॥ भार्य्याभिस्तिसृभिःसार्धंतपसेसवनंययौ ॥१६॥ तत्रागत्वातपस्तेपेवानप्रस्थविधानवित् ॥ शतानित्रीणिवर्षाणांसार्द्धानिनृपसत्तमः ॥१७॥ तपसाक्षीणदेहस्तुराजवर्य्योद्विजोत्तम ॥ निगृह्यसर्वस्रोतांसितत्याजासून्वनेचरः ॥१८॥ ततःपुण्यान्ययौलोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्यायेनराधिपैः ॥१९॥ भार्य्याश्चतस्यतास्तिस्रःसमन्तेनैवतत्यजुः॥प्राणानवापुःसालोक्यंतेनैवसुमहात्मना ॥ २० ॥ एतत्खनित्रचरितंश्रुतंकल्मषनाशनम् ॥ पठताञ्चमहाभागक्षुपस्यातोनिशामय ॥ २१ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेखनित्रचरितसमाप्तिर्नामपंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ क्षुपःखनित्रपुत्रस्तुप्राप्यराज्यंयथापिता ॥तथैवपालयामास प्रजाधर्मेणरञ्जयन् ॥ १ ॥ सदानशीलोयष्टाचयज्ञानामवनीपतिः ॥ समःशत्रौचमित्रेचव्यवहारादिवर्त्मनि ॥ २ ॥ एकदासमहीपालोनिजस्थानग तोमुने ॥ सूतैरुक्तोयथापूर्वंक्षुपोराजातथाऽभवत् ॥ ३ ॥

उसी सर्वाभीष्टप्रद अक्षय पुण्यलोकको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ उनकी तीनों भार्याभी स्वामीके संग प्राण त्याग करके उन महात्माके संगही समान लोकमें गईं ॥ २० ॥ हे महाभाग ! इसप्रकार यह खानित्रचरित्र कहा गया । इसके सुनने वा पढनेसे पाप समूह नष्ट होते हैं । अब क्षुपका चारित्र वर्णन करताहूं, सुनो ॥ २१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां खनित्रचरित्रसमाप्तिनाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११५॥ मार्कण्डेयजी बोले—खनित्र-पुत्र क्षुप ! राज्यको प्राप्त हो पिताके समान प्रजाका मन प्रसन्न करतेहुए धर्मपूर्वक प्रजापालन करने लगे॥ १ ॥ यह राजा क्षुपभी यज्ञ करनेवाले दाता और व्यवहारादि (स्मृतिमें कहे अठारह विवाद पद) मार्ग में शत्रु मित्रके प्रति समान भाववाले हुए थे ॥ २ ॥ हेमुने ! एकसमय सूतगणों ने राज्यासनमें बैठेहुए राजासे कहा—आप ठीक पूर्ववर्ती क्षुपराजाके समान हैं ॥ ३ ॥

ब्रह्माके पुत्र क्षुप पूर्वमें पृथ्वीपति हुए थे, उनके चरित्र और चेष्टा जिस प्रकार थी, आपकीभी वैसीही है ॥ ४ ॥ राजाने कहा–महात्मा क्षुपका चरित्र सुननेकी इच्छा करताहूं, यदि मैंभी उनके समान आचरण करनेमें समर्थ हूं, तो उसकी चेष्टा करूंगा ॥ ५ ॥ सूतगण बोले हे राजन् ! वह महात्मा क्षुप राजा गौ ब्राह्मणसे कर नहीं लेते थे और छठे अंशद्वारा पृथ्वीमें यज्ञकार्य सम्पादन करते थे ॥ ६ ॥ राजाने कहा–मेरे समान कौन मनुष्य उन महात्माके कार्यका अनुकरण कर सकता है ? इसकी संभावनाभी नहीं है किन्तु तोभी ऐसे महात्माओंका आचरण जिसप्रकार उत्कृष्ट है, वैसे आचरणमें उद्यम करना

ब्रह्मणस्तनयः पूर्वंक्षुपोऽभूत्पृथिवीपतिः ॥ यादृक्चरितमस्यासीत्तादृक्तस्यैवचेष्टितम् ॥ ४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ श्रोतुमिच्छामिचरितं क्षुपस्यसुमहात्मनः ॥ यदितादृङ्मयाशक्यंचेष्टितुंतत्करोम्यहम् ॥ ५ ॥ सूताऊचुः ॥ सचकाराकरान्भूपराजागोब्राह्मणान्पुरा ॥ षष्ठांशेनकृताचोर्व्यामिष्टिस्तेनमहात्मना ॥ ६ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ तेषांमहात्मनांराज्ञांकोऽनुयास्यतिमद्विधः ॥ तथाप्युत्कृष्टचेतानांचेष्टासूद्यमवान्भवेत् ॥ ७ ॥ तच्छ्रूयतां प्रतिज्ञायासाम्प्रतंक्रियतेमया ॥ क्षुपस्यानुकरिष्यामिमहाराजस्यचेष्टितम् ॥ ८ ॥ त्रींस्त्रीन्यज्ञान्करिष्यामिसस्यापातेगतागते ॥ पृथिव्यांचतुरन्तायां प्रतिज्ञेयंकृतामया ॥ ९ ॥ यच्चगोब्राह्मणाःपूर्वमदद्न्भूभृतेकरम् ॥ तमेवप्रतिदास्यामिब्राह्मणानांतथागवाम् ॥ १० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतिप्रतिज्ञायवचःक्षुपस्तत्कृतवांस्तथा ॥ सस्यापातेसयज्ञांस्त्रीनयजद्यजतांवरः ॥११ ॥ गोब्राह्मणाःपुराराज्ञामददद्यंचवैकरम् ॥ तावत्संख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणायसः ॥ १२ ॥

उचित है ॥ ७ ॥ अतएव मैं जो इस समय प्रतिज्ञा करताहूं, वह सुनो । मैं आजसे महाराज क्षुपके कार्यका अनुकरण करूंगा ॥ ८ ॥ मैंने चारों वर्ण और पृथ्वीमें यह प्रतिज्ञा करी कि, खेतीके आनेवाले उपस्थित और बीतनेके कालमें तीन तीन यज्ञ करूंगा ॥ ९ ॥ और पूर्व पूर्वकालमें गो ब्राह्मणसे राजाओंने जो कर ग्रहण किया है, वह उनको लौटा दूंगा ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजी बोले–यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ क्षुपने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वैसेही प्रतिज्ञाकी रक्षा की अर्थात् उन याज्ञिक श्रेष्ठने सस्यके उपस्थिति कालमें तीन यज्ञ संपादन किये ॥ ११ ॥ और गौ ब्राह्मणोंने पहिले जिन सब राजाओंको कर दिया था, उतना द्रव्य गौ ब्राह्मणको दे दिया ॥ १२ ॥

उनके प्रमथा नामक महिषीके गर्भसे महावीर और सुंदर एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रने अपने शौर्य वीर्यके बलसें सब राजाओंको वशीभूत किया था ॥ १३ ॥ विदर्भराजकुमारी नन्दिनी उनकी पत्नीहुई थी उस महिषीके गर्भसे उन्होंने विविंश नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ महावीर विविंश नरपतिके पृथ्वीशासन कालमें महीतल प्रजासमूहसे ऐसा व्याप्त हुआ था कि, कहींभी स्थान नहीं था ॥ १५ ॥ उस समय मेघगण यथाकालमें वर्षाकरते और पृथ्वीभी उसी प्रकार सस्यसे परिपूर्ण हुई थी। और समस्तसस्य फलशाली, फलरसयुक्त ॥ १६ ॥ रसपुष्टिकर और पुष्टि उन्माद करनेवाली नहीं थी। मनुष्य बहुत धनके अधिकारी होकर भी उन्मत्त नहीं होते थे ॥ १७ ॥ हे महामुने। शत्रु उनके प्रभावसे सदा भीत रहकर स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते थे सुहृद्वर्ग संतुष्ट चित्तसे रहते थे ॥ १८ ॥

तस्यपुत्रोऽभवद्वीरःप्रमथायामनिन्दितः ॥ यस्यप्रतापशौर्य्याभ्यांकृतावश्यामहीभृतः ॥ १३ ॥ तस्यापिनन्दिनीनामवैदर्भीदयिताऽभवत् ॥ विविंशं तनयंतस्यांजनयामाससप्रभुः ॥ १४ ॥ विविंशेशासतिमहींमहीपालेमहौजसि ॥ महीतलमभूद्व्याप्तंनिरन्तरतयानरैः ॥ १५ ॥ ववर्षकालेपर्जन्योमहीस स्यवतीतथा ॥ सुफलानिचसस्यानिरसवन्तिफलानिच ॥१६॥ रसाःपुष्टिकराश्चासन्पुष्टिर्नोन्मादकारिणी ॥ नवित्तनिचयान्नृणांप्रभूतामदहेतवः ॥१७॥ त त्प्रतापेनरिपवोभयमापुर्महामुने ॥ स्वास्थ्यंजनःसुहृद्वर्गोमुदमापसुपूजितः ॥१८॥ इष्ट्वासयज्ञान्सुवहून्सम्यक्सम्पाल्यमेदिनीम् ॥संग्रामेनिधनंप्राप्यशक्रलोक मितोगतः ॥ १९ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेविविंशचरितंनामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तस्यपुत्रः खनीनेत्रोमहाबलपराक्रमः ॥ यस्ययज्ञेष्वगायन्तगन्धर्वाविस्मयान्विताः ॥ १ ॥ खनीनेत्रसमोनान्योभुवियज्वाभविष्यति ॥ तेनयज्ञायुतेपूर्णेदत्तापृथ्वीससा गरा ॥ २ ॥ दत्त्वाचसकलांपृथ्वींब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ तपसाद्रव्यमासाद्यमोदयन्साधितेनयः ॥ ३ ॥ यतश्चप्राप्यवित्तर्द्धिमतुलांदातृसत्तमात् ॥ जगृहुर्ब्राह्मणाविप्रनान्यराज्ञःप्रतिग्रहम् ॥ ४ ॥

इसप्रकार विविंशराजा, अनेकानेक यज्ञोंका अनुष्ठान और भलीभाँति राज्यपालन करतेहुए संग्राममें मृत्यु पाय इन्द्रलोकको प्राप्त हुए थे ॥ १९ ॥ इति श्रीमार्क ण्डेयपुराणे भाषाटीकायां विविंशचरितं नाम षोडशाधिक शततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—विविंशके पुत्र महाबलवान् विक्रमशाली खनीनेत्र हुए उनका यज्ञानुष्ठान देखनेसे विस्मित होकर गंधर्वों ने इसप्रकार गाया था ॥ १ ॥ कि, "खनिनेत्रके समान भूमण्डलमें अन्य यज्ञकरनेवाला नहीं होगा क्योंकि उन्हों ने दशहजार यज्ञ संपादन करके सागरपर्यन्त पृथ्वी दान करी है" ॥ २ ॥ महाराज खनीनेत्रने महात्मा ब्राह्मणोंको सब पृथ्वी देकर तपस्या द्वारा अनेक द्रव्यलाभ करके उसको छुडायाथा ॥ ३ ॥ हे विप्र! ब्राह्मणों ने उन देनेवालोंमें श्रेष्ठ खनीनेत्रके निकटसे विपुल—धनको प्राप्त हो फिर उन्होंने दूसरे

के निकटसे दान नहीं लिया ॥ ४ ॥ उन्हों ने तिहत्तर हजार सातसौ सरसठ यज्ञ किये थे और प्रत्येक यज्ञम बहुत दक्षिणा दीथीं ॥ ५ ॥ हे महामुने ! एक समय महीपाल खनीनेत्रने अपुत्र होनेके कारण पुत्रकी कामनासे पितृयज्ञ करनेके लिये मांसकी इच्छा की थी और वह उस समय गोध और अंगुलित्राण बांधकर हाथमें धनुष बाण और खड्ग धारणपूर्वक सेनाके विनाही अकेले घोड़ेपर चढकर महावनमें मृगयाके लिये गयेथे ॥ ६ ॥ ७ ॥ जब उन्हों ने उस गहन वनसे दूसरे वनमें जानेके लिये घोड़ा दौड़ाया, उस समय एक मृगने निकल कर कहा—हे महाराज ! मुझको मारकर अपना अभीष्ट संपादन कीजिये ॥ ८ ॥ राजाने कहा—अन्यान्य मृग मेरे देखनेसे भीत होकर भागते हैं, फिर तू मृत्युके लिये आत्मप्रदान करनेकी इच्छा क्यों करता है? ॥ ९ ॥ मृग बोला—हे महाराज ! मैं अपुत्र हूं, इस कारण

सप्तषष्टिसहस्राणिसप्तषष्टिशतानिच ॥ सप्तर्षींश्चयोयज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ॥ ५ ॥ अपुत्रःसमहीपालोमृगयामुपचक्रमे ॥ पुत्रार्थीपितृयज्ञायमांसकामो महामुने ॥ ६ ॥ अश्वारूढोविनासैन्यमेकएवमहावने ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणोबाणखड्गधनुर्धरः ॥ ७ ॥ तंवाहयन्तंतुरगमन्यतोगहनाद्वनात् ॥ विनिष्क्रम्यमृगःप्राहमांहत्वाभिमतंकुरु ॥ ८ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ अन्येमृगाःपलायन्तेमहाभीत्याविलोक्यमाम् ॥ कथमात्मप्रदानंत्वंमृत्यवे कर्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥ ॥ मृगउवाच ॥ ॥ अपुत्रोऽहंमहाराजवृथाजन्मप्रयोजनम् ॥ विचारयन्नपश्यामिप्राणानामिहधारणम् ॥ १० ॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ अथाभ्येत्यमृगःप्राहतमन्योवसुधाधिपम् ॥ मृगस्यतस्यप्रत्यक्षमलमेतेनपार्थिव ॥ ११ ॥ घातयस्वेतिमांमांसैर्मंमकर्मसमाचर ॥ यथाकृतार्थतातेस्यान्ममचाप्युपकारितत् ॥ १२॥ पुत्रार्थत्वंमहाराजस्वापितॄन्यष्टुमिच्छसि ॥ अपुत्रस्यास्यमांसेनलप्स्यसेवांछितंकथम् ॥१३॥ यादृक्कर्म विनिष्पाद्यंतादृग्द्रव्यमुपाहरेत् ॥ दुर्गन्धैर्नसुगन्धानांगन्धज्ञानविनिर्णयः ॥ १४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ वैराग्यकारणंप्रोक्तमनेनापुत्रताभम ॥ कथ्यतांप्राणसंत्यागेयत्तेवैराग्यकारणम् ॥ १५ ॥ ॥ मृगउवाच ॥ ॥ बहवोमेसुताभूपबह्वयोदुहितरस्तथा ॥ यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्येवसाम्यहम् ॥ १६ ॥

अपने जीवन धारण करनेको वृथा विचारताहूं ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसीसमयमें और एक मृगने उपस्थित होकर पहिले मृगके सामनेही कहा—हे पार्थिव ! इस मृगको लेकर आप क्या करेंगे? ॥ ११ ॥ मुझको मारकर मेरे मांससे कर्मसंपादनकीजिये इससे आपका प्रयोजन सिद्ध होगा और मेराभी उपकार हो जायगा ॥ १२ ॥ हे महाराज ! आप पुत्रकी कामनासे पितृयज्ञ करेंगे । किन्तु इस अपुत्रके मांससे किस प्रकार अभिलाषा सिद्ध होगी ? ॥ १३ ॥ क्योंकि जो कर्म जैसा हो, उसके लिये वैसाही द्रव्य लाना चाहिये । देखो, दुर्गन्धद्वारा सुगंधित वस्तुका गंधज्ञान निर्णय नहीं होसकता ॥ १४ ॥ राजाने कहा—पहिले मृगने कहा है कि, अपुत्रताही मेरे वैराग्यका कारण है, किन्तु तुमको प्राण परित्याग विषयमें वैराग्य क्यों हुआ ? सो कहो ॥ १५ ॥ मृग बोला—हे राजन् ! मेरे पुत्र और कन्या बहुत हैं, उनकी

चिन्तासेही मैं दुःखदावानलमें दग्ध होता रहताहूं ॥ १६ ॥ हे नरेन्द्र ! यह कातरमृगजाति सहजमेंही सब जीवोंके आधीन होजाती है, मेरीभी सन्तानके प्रति अधिक ममता है, इस कारण मुझको सदाही दुःख भोगना पड़ता है ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, वृक, अधिक क्या सब जीवोंमें हीनें गीदड और कुत्ते आदिसे भी मैं डरता रहताहूं ॥ १८ ॥ सुतरां इन मनुष्य, सिंह इत्यादिके भयसे पृथ्वी रहितहो और मैं निर्विघ्नहूं, सदा यही कामना करता रहताहूं ॥ १९ ॥ गो, मेष, बकरी, अश्व इत्यादि पशुओंके तृण भक्षण करने पर पृथ्वीमें समस्त तृण शेषहोंगे, तो मेरे पुत्र, कन्या क्या खाकर जीवितं रहेंगे । इसी कारण उनका पोषण करनेके लिये मुझको तृणभोजी पशुओंकी मृत्युकामना करनी पड़ती है ॥ २० ॥ जब मेरे पुत्र कन्या अलग अलग निकलते हैं, तो स्नेहके वश होकर मुझको सैकडों चिन्ता उपस्थित होती हैं ॥ २१ ॥ जान पड़ता है या तो कोई पुत्र कहीं कठिन पाश या वज्र अथवा जालमें पतित हुआ है या सिंहादिके द्वारा नष्टहोगयाहै ॥ २२ ॥

सर्वसाध्यानरेन्द्रेयंमृगजातिःसुकातरा॥तेष्वपत्येषुमेचातिममत्वंतेनदुःखितः॥१७॥मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्योबिभेम्यहम्॥विहीनात्सर्वसत्त्वेभ्यःश्वशृगाला दपिप्रभो॥१८॥सोऽहंनिमित्तंबन्धूनामिमांशून्यांवसुन्धराम्॥नृसिंहादिभयात्सर्वामिच्छामिसुनृशंसकृत्॥१९॥तृणान्यन्येऽपिखादन्तिगोऽजावितुरगादिकाः॥ तांस्तेषांपोषणायाहमिच्छामिनिधनंगतान् ॥ २० ॥ निष्क्रान्तेषुततस्तेषुममापत्येषुवैपृथक् ॥भवन्तिचिन्ताःशतशोममत्वावृतचेतसः ॥२१॥ किंकूटपाशं किंवज्रंवागुरांकिंसुतोमम ॥ प्राप्तश्चरन्वनेकिंवानृसिंहादिवशंगतः ॥२२॥ प्राप्तोऽयमेकःसंप्राप्तास्तेवस्थांकीदृशींमम॥ साम्प्रतंतेचिरायंतेयेगताःसुमहावनम् ॥२३॥ दृष्ट्वाप्राप्तान्ममाभ्याशमहन्तानात्मजान्नृप ॥ ईषदुच्छ्वसितःक्षेममिच्छामिरजनींपुनः ॥२४॥ प्रभातेदिवसंक्षेममस्तगेऽर्केनिशामपि ॥ वांच्छाम्यहंकदा क्षेमंसर्वकालंभविष्यति ॥२५॥ एतत्तेकथितंभूपमहोद्वेगस्यकारणम् ॥ अतःप्रसादंकुरुमेबाणोऽयंपात्यतांमयि ॥२६॥ इतिदुःखशताविष्टःप्राणान्नाहंत्यजामि यत् ॥ तत्कारणंनिबोधत्वंब्रुवतोममपार्थिव ॥ २७ ॥ असूर्य्यानामतेलोकायान्गच्छन्त्यात्मघातकाः ॥ यज्ञोपयुक्ताःपशवःसम्प्रयान्त्युच्छ्रितीःप्रभो ॥२८॥

और जो एक आता है तो दूसरोंकी चिन्ता होती है जो महावनमें चरने गये हैं, नहीं जानता कि, उनकी वहां कैसी अवस्था होरही है ? ॥ २३ ॥ हे नृप ! पुत्र गण जब मेरे समीप आते हैं, तब उनको देखकर कुछेक संतोष प्राप्त होता है, किन्तु उस समयभी समस्तरात्रिके लिये मंगलचिन्ता करताहूं ॥ २४ ॥ और फिर प्रभात होने पर दिनकी और सूर्यास्त होनेपर रात्रिकी मंगलचिन्ता करताहूं कि, वह सर्वकाल निरापद अवस्थामें रहें, प्रतिक्षण इसीकी चिन्ता करता रहताहूं ॥ २५ ॥ हे भूप ! यह मैंने अपने उद्वेगका कारण कहा, अब अनुग्रह करके मेरेही बाणमारिये ॥ २६ ॥ हे पार्थिव ! जिसकारण मैं इस प्रकार सैकडों दुःखसे आक्रान्त होकर प्राण परित्याग करनेकी इच्छा करताहूं, वह आप समझिये ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! आत्मघाती असूर्य नामक नरकको प्राप्त होते हैं, और यज्ञार्थमें नियुक्त समस्त पशु सद्गतिलाभ

करते हैं ॥ २८ ॥ पूर्वकालमें अग्नि, वरुण और सूय पशुत्व ग्रहण करके यज्ञकार्यमेंनियुक्त हुएथे, इसी कारण सद्गति प्राप्त की है॥ २९ ॥ अतएव हे नृप ! मेरे ऊपर कृपा करके मुझको सद्गति प्रदान कीजिये । ऐसा करनेसे आपको पुत्रलाभमें अभीष्टप्राप्तिहोगी ॥ ३० ॥ पूर्वमृगने कहा—हे राजेन्द्र ! यह मृग हत्याके उपयुक्त नहीं है, क्योंकि जिसके बहुत संतान है, वह सुकृती (पुण्यवान्) और धन्य हैं। मैं अपुत्र हूं अतएव मुझको मारना चाहिये ॥ ३१ ॥ उत्तरमृग बोला—एकमात्र देहके कारण जिसको एकमात्र दुःख उत्पन्न होता है, वह तुम्हारे समान धन्य हैकिन्तु जिसके देह बहुत हैं; उसको दुःख भी अनेकानेक होते हैं ॥ ३२ ॥ प्रथम जब मैं एक था, तब मुझको दुःखभी एक देहका था फिर जब भार्या हुई, तब स्नेहवश यही दुःख दो भागमें विभक्त हुआ ॥ ३३ ॥

अग्निःपशुरभूत्पूर्वंपशुरासीज्जलाधिपः ॥ भास्वानथोच्छ्रितीःप्राप्तायज्ञेनिष्ठामुपागताः ॥२९॥ तन्ममैतांकृपांकृत्वानयमामुच्छ्रितिंनृप॥आत्मनश्चेप्सितंकामं पुत्रलाभादवाप्स्यसि ॥ ३० ॥ ॥ पूर्वमृग उवाच ॥ ॥ राजेन्द्रनैषहन्तव्योधन्योऽयंसुकृतीमृगः ॥ बहवस्तनयाह्यस्यहन्तव्योऽहमसन्ततिः ॥ ३१ ॥ ॥ उत्तरमृगउवाच ॥ ॥ एकदेहभवंयस्यदुःखंधन्यःसवैभवान् ॥ बहूनियस्यदेहानितस्यदुःखान्यनेकधा ॥ ३२ ॥ एकोयदाहमासंतुप्राक्तदादेहजंमम ॥ दुःखमासीन्ममत्वेतुभार्य्यायास्तदभूद्द्विधा ॥३३॥ यदाजातान्यपत्यानितदायावन्तितानिवै ॥ तावच्छरीरभूमीनिममदुःखान्यथाभवन् ॥३४ ॥ नकृतार्थोंभवाम्यस्यनातिदुःखायसम्भवः॥ इहदुःखायमत्सूतिःपरत्रचविरोधिनी॥३५॥यतोरक्षणपोषार्थमपत्यानांकरोमितत्॥ चिन्तयामिचसंभूतिस्तेनमेनरकेध्रुवम् ॥ ॥३६॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ नवेद्मिकिंसन्तातिमान्धन्योऽपुत्रोऽत्रकिंमृग ॥ पुत्रार्थश्चायमारम्भोममदोलायतेमनः॥ ३७ ॥ दुःखायसन्ततिःसत्यमैहिकामुष्मिकायतत् ॥ तथाप्यतनयान्यान्तिऋणानीतिश्रुतंमया ॥ ३८ ॥

और अब जितनी संतान उत्पन्न हुई है, देहभी उतनेही भागमें विभक्त हुआ है, इस कारण मुझको अनेक देहजनित दुःख उत्पन्न हुआ है ॥ ३४ ॥ तुमको जब अधिक दुःख भोगना नहीं पडता तब क्या तुम कृतार्थ नहीं हो ? मेरीसंतान इस लोकमेंभी दुःखका कारण और परलोकमेंभी विरोधी है । ॥ ३५ ॥ देखो मैं पुत्रोंकी रक्षा तथा उनका पोषण करनेके लिये जो कुछ करताहूं जो कुछ चिन्ता करताहूं निःसन्देह वह सब नरकमें जानेका हेतुस्वरूप हैं ॥ ३६ ॥ राजाने कहा—हे मृग! पुत्रवान् और अपुत्रमें कौन धन्य है, यह मैं नहींजानसकता, मेराभी इस कार्य में पुत्रके लियेही उद्योग है,अतएव मेरा मन अत्यन्त चंचल होता है ॥ ३७ ॥ यद्यपि सन्ततिके कारण इसलोक और परलोकमें दुःख भोगना पडता है यह बात सत्य है किन्तु तोभी मैंने ऐसी नीति सुनी है कि, अपुत्र

मनुष्य ऋणी होता है ॥३८॥ अतएव हे मृग ! मैं विनाही प्राणीका वध किये पूर्वकालके राजाओंके समान प्रचण्ड तपस्याद्वारा पुत्र प्राप्तहोनेकी चेष्टा करूंगा ॥३९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभाषाटीकायां खनीनेत्रचरितेसप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥ मार्कण्डेयजी बोले-अनन्तर राजा खनीनेत्र पापनाशिनी गोमतीके तटपर जाय संयतेन्द्रिय हो, देवपुरन्दरकी स्तुति करने लगे ॥१॥ हे महामुने ! जब महीपतिने काय मन वचनसे संयत होकर पुत्रकी कामना करके इन्द्रकी स्तुतिकी, तब भगवान् सुरेश्वरने उनकी भक्ति और स्तुतिसे संतुष्ट होकर उनसे कहा ॥२॥३॥ हे भूप ! तुम्हारे इस तप भक्ति और स्तोत्रउच्चारणके द्वारा मैं अत्यन्त संतुष्ट हुआहूं अतएव

सोऽहंयतिष्येपुत्रार्थमृतेप्राणिवधंमृग ॥ तपसैवप्रचण्डेनयथापूर्वमहीपतिः॥३९॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेखनित्रचरितेसप्तदशाधिकशततमोध्यायः॥ ॥११७॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततःसनृपतिर्गत्वागोमतींपापनाशिनीम् ॥ तत्रतुष्टावनियतोभूत्वादेवंपुरन्दरम् ॥ १ ॥ तप्यमानस्तपश्चोग्रंयतवाक्कायमानसः॥ तुष्टावप्रयतः शक्रमपत्यार्थंमहीपतिः ॥ २ ॥ तस्यस्तोत्रेणतपसाभक्त्याचापिसुरेश्वरः ॥ तुतोषभगवानिन्द्रः प्राहचैनंमहामुने ॥ ॥३ ॥ अनेनतपसाभक्त्यास्तोत्रेणोच्चारितेनच ॥ परितुष्टोऽस्मितेभूपव्रियतांभवतावरः ॥ ४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ अपुत्रस्यसुतोमेऽस्तुसर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ सदाचाव्याहतैश्वर्योधर्मकृद्धर्मवित्कृती ॥ ५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ तथेतिचोक्तः शक्रेणराजाप्राप्तमनोरथः ॥ प्रजाः पालयितुंभूपआजगामनिजंपुरम् ॥ ६ ॥ तत्रास्यकुर्वतोयज्ञंसम्यक्पालयतः प्रजाः ॥ अजायतसुतोविप्रतदाशक्रप्रसादतः ॥ ७ ॥ तस्यनामपिताचक्रेबलाश्वइतिभूपतिः ॥ अस्त्रग्राममशेषंचग्राहयामासतंसुतम् ॥ ८ ॥ पितर्युपरतेविप्रसोऽधिराज्येस्थितोनृपः ॥ सबलाश्वोवशंनिन्येभुविसर्वमहीक्षितः ॥ ९ ॥ करंचदापयामाससारग्रहणपूर्वकम् ॥ ससर्वभूमिपान्राजापालयामासचप्रजाः ॥ १० ॥

वरमांगो ॥४॥ राजाने कहा—मैं अपुत्रहूं मेरे सब शस्त्रधारियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ सदाप्रतिबंधरहित ऐश्वर्यवाला धर्मज्ञ, धर्मचारी और कृतकार्य पुत्र हो ॥५॥ मार्कण्डेयजी बोले—जब राजाकी प्रार्थना इन्द्रने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार करी, तब राजा प्रजापालनके लिये अपने पुरमें लौट आये ॥ ६ ॥ वहां यज्ञानुष्ठान और प्रजापालन करनेपर इन्द्रके प्रसादसे उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ राजाने उसका 'बलाश्व' नाम रक्खा। और उसको संपूर्ण अस्त्रविद्या प्रदानकी ॥ ८ ॥ हे विप्र ! बलाश्वने पिताकी मृत्युके उपरान्त साम्राज्येश्वर राजा होकर पृथ्वीके समस्त राजाओंको अपने वशीभूत किया ॥ ९ ॥ और सारग्रहणपूर्वक उनसे

करग्रहण और प्रजाका सम्यक् प्रकारसे पालन करने लगा ॥ १० ॥ अनन्तर उन समस्त राजा और उनकी दुर्मद ज्ञातिगणने अभ्युत्थानरूप सत्कार न देकर कर देना बंद करदिया ॥ ११ ॥ और वह अभ्युत्थानरहित होकर स्वाधीन भावसे राज्यशासन करकेही संतुष्ट नहीं हुए बरन् अन्तमें उन्होंने उन नरेन्द्र बलाश्वकी अधिकृत भूमितक ग्रहण करली ॥ १२ ॥ पृथ्वीश्वर बलाश्व अनेक राजाओंके संग युद्धमें हीनबल हो अपना राज्यमात्र ग्रहण कर अपनी राजधानीमें वास करने लगे ॥ १३ ॥ किन्तु तोभी इन सब साधन और धनसंपन्न महाबलवान् राजाओंने उनको पुरमें घेर लिया ॥ १४ ॥ तब महीपति पुर घिर जानेके कारण अत्यन्त कुपित हुए, किन्तु वह बलशाली बलाश्व तिस काल अत्यन्त अल्पकोष और अल्पदण्डयुक्त होनेसे ॥ १५ ॥ और रक्षाका दूसरा कोई उपाय न देखकर अति

अथाखिलनरेन्द्रास्तेदायादास्तस्यदुर्मदाः ॥ नचाभ्युत्थायसततंतेचास्मैप्रददुः करान् ॥ ११ ॥ व्युत्थिताः स्वेषुराष्ट्रेषुनसन्तोषपरास्ततः ॥ भुवंतस्यनरेन्द्रस्यजगृहुस्तेनराधिपाः ॥ १२ ॥ सगृहीत्वास्वकंराज्यंपृथिवीशोबलान्मुने ॥ तस्थौस्वनगरेभूपैर्विरोधोबहुभिः कृतः ॥ १३ ॥ समेत्यसुमहावीर्य्याःससाधनधनास्ततः ॥ रुरुधुस्तंमहीपालंपुरेतत्रनरेश्वराः ॥ १४ ॥ पुररोधेनतेनाथकुपितः समहीपतिः ॥ स्वल्पकोशोल्पदण्डश्चैवक्रव्यंपरमंगतः ॥ १५ ॥ अपश्यमानःशरणंसबलोद्विजसत्तम ॥ करौमुखाग्र ःकृत्वानिशश्वासार्तमानसः ॥ १६ ॥ ततोऽस्यहस्तविरवान्मुखानिलसमाहताः ॥ निर्जग्मुःशतशोयोधारथनागतुरङ्गमाः ॥ १७ ॥ ततःक्षणेनतत्सर्वंनगरंतस्यभूपतेः ॥ व्याप्तमासीद्बलौघेनसारेणातिबलान्मुने ॥१८॥ अथसोऽतिबलौघेनमहतातेनसंवृतः ॥ निर्मथ्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिपः ॥ १९ ॥ जित्वाचवशमानीयचकारकरदान्पुनः ॥ यथापूर्वंमहाभागमहाभाग्योनरेश्वरः ॥ २० ॥ धुतयोःकरयोर्जज्ञेयतस्तस्यारिदाहदम् ॥ बलंकरन्धमस्तस्मात्सबलाश्वोऽभिधीयते ॥ २१ ॥

विकल हुए और व्यथित हृदयसे दोनों हाथ मुखपर रखकर लम्बे श्वास त्यागनेलगे ॥ १६ ॥ इससे मुखकी वायु आहत होकर उसके मध्यसे शत शतयोद्धा रथ हाथी और घोडे निकले ॥ १७ ॥ हे मुने ! इसप्रकार क्षणकालमेंही बलशाली सर्वोत्तम उस सैन्यसमूहद्वारा भूपतिका संपूर्ण नगर व्याप्त होगया ॥ १८ ॥ अनन्तर उस सब महत् सेनाके सहित राजाने नगरसे निकलकर शत्रुओंको जीता ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! तब नरपति उनको पराजयपूर्वक वशीभूत और पूर्वके समान करदे अर्थात् कर देनेवाला करके सौभाग्यशाली हुए ॥ २० ॥ बलाश्वके धूत अर्थात् कम्पित दोनों हाथोंके मध्यसे जो शत्रुओंको हनन करनेवाली

सेना उत्पन्न हुई इसकारण बलाश्व 'करन्धम' नामसे विख्यात हुए थे॥ २१ ॥ करन्धम तीनों लोकमें विख्यात, धर्मात्मा, महात्मा और सब प्राणियों में मित्रभावापन्नथे॥ २२॥ वह नृप स्वयं धर्मप्रदत्त बललाभ करके परमआर्त्त मनुष्यों के शत्रुओंका नाश करदेते थे॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११८॥ मार्कण्डेयजी बोले —हे द्विजोत्तम ! स्वयंवरस्थलमें सुन्दरी शुभव्रता वीरा नाम्नी वीर्यचन्द्रकी कन्याने महाराज करन्धमको पतित्वमें वरण किया था ॥ ॥ १ ॥ उन राजेन्द्रने उसके गर्भ से अवीक्षित नामक जगद्विख्यात वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न किया ॥ २ ॥ उस पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजाने ज्योतिषियों से पूछा कि, मेरे इस पुत्रने प्रशस्त लग्न और शुभ नक्षत्रमें तो जन्मग्रहण किया है ? ॥ ३ ॥ इसके लग्नस्थानमें सब शुभग्रहोंकी दृष्टि तो है ?

सधर्मात्मामहात्माचसमैत्रःसर्वजन्तुषु ॥ करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ २२ ॥ सम्प्रातस्यपरामार्त्तिंददावरिविनाशनम् ॥ बलन्धर्मेण चाक्षिप्तमभ्युपेत्यस्वयंनृपम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकरन्धमचरितंनामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ वीर्य्यचन्द्रसुतासुभ्रूर्वीरानामशुभव्रता ॥ स्वयंवरेसाजगृहेमहाराजंकरन्धमम् ॥१॥ तस्यांपुत्रंसराजेन्द्रोजनयामासवीर्यवान् ॥ अविक्षितमितिख्यातिमुपेतंजगतीतले ॥ २ ॥ जातेतस्मिन्सुतेराजासदैवज्ञानपृच्छत ॥ कच्चित्प्रशस्तनक्षत्रेशस्तलग्नेसुतोमम ॥३॥ कच्चिच्चालोकितंजन्ममपुत्रस्यशोभनैः ॥ ग्रहैःकच्चिन्नदुष्टानांग्रहाणांदृक्पथंगतम् ॥ ४ ॥ इत्युक्तास्तेनदैवज्ञास्तमूचुर्नृपतिंततः ॥ शस्तेमुहूर्तेनक्षत्रेलग्नेचैवसुतस्तव ॥५॥ समुत्पन्नोमहावीर्योमहाभागोमहाबलः ॥ भविष्यतिमहाराजमहाराजस्तवात्मजः ॥६॥ अवेक्षतेमंदेवानांगुरुःशुक्रश्चसप्तमः ॥ सोमश्चतुर्थस्तनयंतवैनंसमवेक्षत ॥ ७॥ उपान्तसंस्थितश्चैवसोमपुत्रोप्यवेक्षत ॥ नावेक्षतेमंसवितानभौमोनशनैश्वरः ॥ ८ ॥ तवपुत्रंमहाराजधन्योऽयंतनयस्तव ॥ सर्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतोभविष्यति ॥ ९ ॥

और यह दुष्टग्रहोंकी तो दृष्टिमें पतित नहीं हुआ ? अर्थात् इसपर दुष्टग्रहोंकी तो दृष्टि नहीं पडी ॥ ४ ॥ दैवज्ञगणोंने इस प्रकार पूछे जानेपर उत्तर दिया—हे महाराज ! आपका पुत्र प्रशस्त मुहूर्त्त, प्रशस्त नक्षत्र और प्रशस्त लग्नमें उत्पन्न हुआ है ॥५॥ अतएव हे राजन् ! यह आपका पुत्र महाभाग्यवान्, अत्यन्त वीर्यवान्, असीम बलशाली और महाराज होंगे॥ ६ ॥ यह देखिये, इस पुत्रको बृहस्पति और शुक्र सप्तम हैं वा सप्तम घरपर देखते हैं और चतुर्थ स्थानको चन्द्र अवलोकन करता है॥ ७॥ और ग्यारहवें स्थानमें स्थित बुधकी भी इनपर दृष्टि है और आपके पुत्र पर रवि, मंगल तथा शनैश्वरकी दृष्टि नहीं है ॥ ८ ॥ अतएव हे महाराज !

यह आपके पुत्र धन्य और सर्व कल्याण संपत्ति युक्त होंगे ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–ज्योतिषी गणोंके इस प्रकार वचन सुनकर वसुधेश्वर प्रीति पूर्ण मनसे अपने स्थानपर बैठे हुए कहने लगे ॥ १०॥ "बृहस्पति और बुध यह पुत्रको अवलोकन करते हैं, किन्तु रवि, शनि, मंगल नहीं देखते" ॥ ११ ॥ आपने वारम्वार "अवैक्षत" शब्द कहा है, अतएव यह पुत्र 'अवीक्षित' नाम से विख्यात होगा ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–उनके वेदवेदाङ्गपारग पुत्र अवीक्षितने कण्वपुत्रसे संपूर्ण अस्त्रविद्या ग्रहण की थी ॥ १३ ॥ राजपुत्रने रूपमें देववैद्य दोनों अश्विनीकुमार, बुद्धिमें वाचस्पति, कान्तिमें शशाङ्क (चन्द्रमा) तेजमें सूर्य॥ १४॥ धैर्यमें समुद्र, और सहिष्णुतामें पृथ्वीको अतिक्रम किया था और कोई पुरुषभी उन महात्माके समान शौर्यशाली नहीं था ॥ १५ ॥ हेमधर्मकी कन्या

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतिदैवज्ञवचनंनिशम्यवसुधाधिपः ॥ हर्षपूर्णमनाःप्राहनिजस्थानगतस्तदा ॥१०॥ अवैक्षतेमंदेवानांगुरुःसोमःसितोबुधः ॥ नावैक्षतैन मादित्योनार्कसूनुर्नभूमिजः ॥ ११ ॥ अवैक्षतेतियत्प्रोक्तंभवद्भिर्बहुशोवचः ॥ अविक्षितेतितेनास्यख्यातंनामभविष्यति ॥ १२ ॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ अविक्षितःसुतस्तस्यवेदवेदाङ्गपारगः ॥ अस्त्रग्राममशेषंसकण्वपुत्रादथाग्रहीत् ॥१३॥सद्रूपेणातिभिषजौदेवानांपार्थिवात्मजः ॥ बुद्ध्यावाचस्पतिंकान्त्याश शाङ्कंतेजसारविम् ॥१४॥ धैर्येणाब्धिंतथोर्वींचसहिष्णुत्वेनवीर्यवान् ॥ शौर्येणनसमस्तस्यकश्चिदासीन्महात्मनः ॥१५॥ स्वयंवरेतंजगृहेहेमधर्मात्मजावरा ॥ सुदेवतनयागौरीसुभद्राबालिनःसुता ॥१६॥ लीलावतीवीरसुतावीरभद्रसुतानिभा॥ भीमात्मजामान्यवतीदम्भपुत्रीकुमुद्वती ॥१७॥याश्चैनंनाभिनन्दन्तिस्वयं वरकृतक्षणाः ॥ ताश्चापिसबलाद्वीरोजग्राहनृपतेःसुतः ॥ १८ ॥ निराकृत्यनृपान्सर्वांस्तासांपितृकुलानिच ॥ स्वयंहिवीर्यमाश्रित्यबलवान्सबलोद्धतः ॥१९॥ एकदातुविशालस्यविशालाधिपतेःसुताम् ॥ वैशालिनींससुदतींस्वयंवरकृतक्षणाम् ॥ २० ॥ परिभूयाखिलान्भूपान्स्वेच्छयानवृतस्तया ॥ बलाज्जग्राहविप्रर्षे यथान्याबलगर्वितः ॥ २१ ॥

वरा, सुदेवकी कन्या गौरी, बलिकी पुत्री सुभद्रा ॥ १६ ॥ वीरभद्रकी कन्या निभा, वीरकन्या लीलावती भीमपुत्री मान्यवती और दम्भ कन्या कुमुद्वतीने उनको स्वयंवरमें वरण किया था ॥ १७ ॥ और जिन राजकन्याओंने स्वयंवरमें उनको सन्मानित नहीं किया अर्थात् वरण नहीं किया, बलवान् बलोन्मत्त राजपुत्रने अपने पराक्रमसे अन्यान्य राजाओं और उनके पितृकुलको पराजय करके उनकोभी बलात्कारसे ग्रहण किया ॥१८॥१९॥ हे विप्रर्षे ! एक समय वैदेशाधिपति विशालराजाकी कन्या सुदती वैशालिनीने स्वयंवरके समय उनको ॥ २० ॥ वरनेकी इच्छा नहीं की, तब उन्होंने बलके गर्वसे जिस प्रकार अन्यान्य राजकन्याओंको ग्रहण किया था,

इसी प्रकार समस्त राजाओंको पराजित करके बलात्कारसे उसको भी ग्रहण किया ॥ २१ ॥ इससे यह सब राजा मानी अवीक्षितके द्वारा वारम्बार पराजित होकर दुःखितचित्त और व्याकुलभावसे परस्परमें कहने लगे ॥ २२ ॥ एकजातीय बलशाली समस्त इकट्ठे राजाओंके सामने एक मात्र वीरने इस ललनाको ग्रहण किया, यह देखकर भी तुम सहन कर गये, अतएव तुम्हारे जन्मको धिक्कार है ॥ २३ ॥ दुष्टमनुष्यके मारनेपरभी उसकी जो रक्षा करता है, उसीका नाम प्रकृतक्षत्रिय है, अन्य पुरुष क्षत्रिय नाम वृथा धारण करते हैं ॥ २४ ॥ दूसरेकी तो बातही क्या है, तुम लोग इस दुष्टके हाथसे अपनी रक्षा करनेका भी उद्योग नहीं करते क्षत्रियकुलमें जन्मग्रहण करके यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है ? ॥ २५ ॥ हे वीरगण ! सूत, मागध और बन्दी

ततस्तेभूभृतःसर्वेबहुशस्तेनमानिना ॥ निराकृताःसुनिर्विण्णाःप्रोचुरन्योन्यमाकुलाः ॥ २२ ॥ क्षमतांवंचनामेतामेकस्माद्बलशालिनाम् ॥ बहूनामेकवर्णानांजन्मधिग्वोमहीभृताम् ॥ २३ ॥ क्षत्रियोयःक्षतात्राणंवध्यमानस्यदुर्मदैः ॥ करोतितस्यतन्नामवृथैवान्येहिबिभ्रति ॥ २४ ॥ आत्मऽनोपिक्षतत्राणंदुष्टादस्मादकुर्वताम् ॥ भवतांक्षत्रियकुलेजातानांकीदृशीमतिः ॥२५॥ उच्चार्यतेस्तुतिर्यावः सूतमागधबन्दिभिः॥सासत्यामावृथावीराभवत्वरिविनाशनात्॥ ॥ २६ ॥ चरतांसातथैवैषाभूपाश्वारैर्दिगन्तरे ॥ पौरुषाश्रयिणःसर्वेविशिष्टकुलसम्भवाः ॥२७॥ बिभेतिकोनमरणात्कोयुद्धेनविनाऽमरः ॥ विचिन्त्यैतन्नहातव्यंपौरुषंशस्त्रवृत्तिभिः ॥२८॥ एतन्निशम्यतेभूपाविस्पष्टामर्षपूरिताः ॥ ऊचुःपरस्परंसर्वेसमुत्तस्थुश्चसायुधाः ॥२९॥ केचिद्रथानारुरुहुःकेचिन्नागांस्तथाहयान् ॥ अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताःपदातयः ॥३० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितंनामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ ॥ छ ॥

गण तुम्हारी जो स्तुति करते हैं, वह वृथा न हो, शत्रुविनाश करके उसको सत्यमें परिणत करो ॥ २६ ॥ तुम्हारा "भूप" शब्द दिगन्तरमें वृथा प्रचारित न हो, तुम सबनेही श्रेष्ठ कुलमें जन्मग्रहण किया है, अतएव सबही पौरुषशाली हो ॥ २७ ॥ कौन मनुष्य मृत्युका भय नहीं करता और युद्ध परित्याग करकेही कौन अमर होता है ? यह सब विचारकर शस्त्रधारीमात्रकोही पौरुष छोडना उचित नहीं है ॥ २८ ॥ यह सब वचन सुनकर भूपालगण अत्यन्त कुपित हो परस्पर उत्साहपूर्ण बातचीत करने लगे और फिर शस्त्रग्रहण करके उठ खडेहुए ॥२९॥ कोई रथ कोई हाथी तथा कोई घोडेपर चढगये और कोई कोई क्रोधित चित्तसे पदातिहोकर अर्थात् पैदलही अवीक्षितके समीपआये॥ ३० ॥इति श्रीमा०पु० भाषाटीकायामेकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ ११९॥

मार्कण्डेयजी बोले—उसकालभी अवीक्षितके द्वारा बहुतवार हारेहुये वह राजपुत्र और राजालोग इसप्रकार संग्राममें सुसज्जित हुए ॥ १ ॥ हेमुने! तब बहुतसे उन राजा और राजपुत्रोंके संग एकमात्र अवीक्षितका दारुण संग्राम होनेलगा ॥ २ ॥ वह संपूर्ण दुर्मद राजा असि, शक्ति, गदा, और वाण हाथमें लिये उनपर आघात करते करते युद्ध करनेलगे और अवीक्षितभी अकेले उनके संग युद्ध करनेलगे ॥ ३ ॥ अस्त्रज्ञ बलवान् नृपनन्दनने शतशत उग्र बाणों के द्वारा उनको विद्ध किया और वहभी निशित बाणोंसे उनको विद्ध करनेलगे ॥ ४ ॥ राजपुत्र अवीक्षितने किसीकी बाहु और किसीका मस्तक काट डाला किसीका हृदय विद्ध किया और किसीकी छातीमें आघात किया ॥ ५ ॥ उन्होंने हाथियोंकी सूंड घोडोंके मस्तक और

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ इतिसंग्रामसज्जास्ते भूपाभूपसुतास्तथा ॥ निराकृताःसुबहुशस्तत्कालश्चाप्यविक्षिता ॥ १ ॥ ततोबभूवसंग्रामस्तस्यतैःसहदारुणः ॥ एकस्यबहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रवरैर्मुने ॥२॥ तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणयस्तंसुदुर्मदाः ॥अभिघ्नन्तोयुयुधिरेतैःसमस्तैरसावपि ॥ ३ ॥ सताञ्छरशतैरुग्रैर्वीभेदनृपनन्दनः॥कृतास्त्रोबलवान्बाणैस्तेचतंविभिदुःशितैः ॥४॥ कस्यचिच्चिच्छेदबाहुमन्यस्यचाशिरोधराम् ॥ हृदिविव्याधचैवान्यमन्यंवक्षस्यताडयत् ॥ ॥५॥ करञ्चिच्छेदकरिणस्तुरगस्यतथाशिरः॥ रथस्येषान्तथैवाश्वान्रथस्यान्यस्यसारथिम्॥६॥बाणानापततश्चक्रेद्विधाबाणैस्तथाद्विषाम् ॥ चिच्छेदान्यस्य खड्गञ्चधनुरन्यस्यलाघवात् ॥ ७ ॥ तनुत्रेऽपहृतेतेननना़शान्योनृपात्मजः ॥ अविक्षिताहतश्चान्यःपदातिःप्रजहौरणम् ॥ ८ ॥ इत्याकुलीकृतेतस्मिन्समग्रे राजमण्डले ॥ तस्थुःसप्तशतंवीरामरणेकृतनिश्चयाः ॥ ९ ॥ आभिजात्यवयःशौर्य्यलज्जाभारसमन्विताः ॥ निर्जितेसकलेसैन्येपलायनपरायणे ॥ १० ॥ तैःसमेत्यमहीपालैःसतुपुत्रोमहीभृतः ॥ युयुधेधर्मयुद्धेनतेनतंनातिकोपितः ॥ ११ ॥ विच्छिन्नयन्त्रकवचान्सतानपिमहाबलः ॥ कर्त्तुव्यवस्थितस्तेचततः क्रुद्धा महामुने ॥ १२ ॥

किसीके रथके घोडे और किसीके सारथीको छेदन किया ॥ ६ ॥ शत्रुओंके आतेहुए सब बाणोंको अपने बाणोंसे अधबीचमेंही दोखण्ड करनेलगे और हाथकी लाघवतासे किसीका खड्ग तथा किसीका धनुष काटडाला ॥ ७ ॥ अवीक्षितके किसी राजपुत्रका वर्म (बख्तर) काटनेसे वह मृत्युको प्राप्त हुआ और किसी पदातिकने आहत होकर रणस्थल परित्याग किया ॥८ ॥ इस प्रकार जब उन्होंने समस्त राजमण्डलको व्याकुल करदिया और हारीहुई सेना भागनेमें तत्पर हुई, तब केवल सातसौ वीर अपनी कुलीनता, अवस्था और शौर्यविचार, लज्जापूर्वक मरनेमें कृतनिश्चय हो रणक्षेत्रमें स्थिति करने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ राजपुत्र अत्यन्त क्रोधित हो, उनके समीप आय, यथाविहित धर्मयुद्धद्वारा उन सब राजाओंके संग युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ हे महामुने ! जब महाबलवान् अवी

क्षित उनके अस्त्र कवचादि काटनेमें कृतसंकल्प हुए ॥ १२ ॥ तब जिनका मुख पसीनेमें भीग रहा है, ऐसे नरेन्द्रपुत्रगण धर्मत्याग कर उन धर्म योद्धाके संग युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥ कोई वाणोंसे विद्ध करने लगा किसीने धनुष छेदन किया और किसीने ध्वजा काटकर पृथ्वीमें गिरादी ॥ १४ ॥ किसीने घोडोंको मार डाला, किसीने रथ तोड डाला और किसीने उनकी पीठमें शस्त्राघातसे ताडनाकरी ॥ १५ ॥ धनुषके कटजानेपर नृपनन्दनने अत्यन्त क्रोधसे ढाल तलवार ग्रहण करी, किन्तु किसीवीरने उसको भी काटदिया ॥ १६ ॥ ढाल तलवारके छिन्न होनेपर गदायुद्धमें चतुर अवीक्षितने गदा ग्रहण करी, परन्तु लघुहस्त अपर वीरने क्षुरके समान तीक्ष्णवाणसे उसको भी काटडाला ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त धर्मयुद्धसे विमुख राजाओंने उनको घेर लिया और उनमें कितनोहीने सहस्र

धर्ममुत्सृज्ययुयुधुर्युध्यमानेनधर्मतः ॥ नरेन्द्रपुत्राःप्रस्वेदजलक्लिन्नाननाः समम् ॥ १३ ॥ विव्याधकश्चिद्बाणौघैः कश्चिच्चिच्छेदकार्मुकम् ॥ ध्वजमस्यापरोवाणैश्छित्त्वाभूमावपातयत् ॥ १४ ॥ जघ्नुरन्येतथैवाश्वानभञ्जुश्चापरेरथम् ॥ गदापातेनाथचान्येबाणैः पृष्ठमताडयन् ॥ १५ ॥ छिन्नेध नुषिसक्रोधःसतदानृपतेः सुतः ॥ जग्राहासितथाचर्मतदप्यन्योन्वपातयत् ॥ १६ ॥ च्छिन्नासिचर्माजग्राहसगदांगदिनांवरः ॥ तामप्यन्यः क्षुरप्रेणचिच्छे दकृतहस्तवत् ॥ १७ ॥ अन्येशरसहस्रेणशतेनान्येनराधिपाः ॥ विव्यधुः कोष्ठकीकृत्यधर्मयुद्धपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ सविह्वलः पपातोर्व्यामेको बहुभिरर्दितः ॥ राजपुत्रामहाभागाबबन्धुस्तेचतंततः ॥ १९ ॥ तमधर्मेणतेसर्वेगृहीत्वानृपतेःसुतम् ॥ विशालेनसमंराज्ञावैदिशंविविशुः पुरम् ॥ २० ॥ हृष्टाः प्रमुदिताबद्धंसमादायनृपात्मजम् ॥ स्वयंवराचसाकन्यान्यस्तातेनततः पुरः ॥ २१ ॥ पुनः पुनश्चपित्रोक्तातथापिचपुरोधसा ॥ आलम्ब्यता मितिवरोयस्तेराजसुरोचते ॥ २२ ॥

वाणोंके द्वारा और कितनोहीने शतवाणोंके द्वारा उनको विद्ध किया ॥ १८ ॥ अकेले राजकुमार बहुतजनोंके द्वारा इस प्रकार विद्ध होनेसे विह्वल होकर पृथ्वीमें गिरपडे तब महाभाग राजपुत्रोंने उनको बांधलिया ॥ १९ ॥ सब महीपाल उनको अधर्मयुद्धमें ग्रहण कर विशाल राजके सहित वैदिशपुरमें प्रविष्ट हुए ॥ २० ॥ उन राजपुत्रको बंधनपूर्वक ग्रहण करके वह सब हृष्ट और आह्लादित हुए थे तदनन्तर उस स्वयंवरा कन्या और राजपुत्रको उन्होंने विशाल नरपतिके सन्मुख स्थापित किया ॥ २१ ॥ इसके पीछे हे मुने ! "इन राजाओंमें जिसकी अभिलाषा हो उसकोही वरो" उसके पिता और पुरोहितोंके इस प्रकार वार

न्वार कहनेपर ॥ २२ ॥ भी उस कन्याने जब किसीको भी वररूपमें ग्रहण नहीं किया तब नरेश्वरने ज्योतिषी लोगोंसे विवाहके संबंधमें पूछा ॥ २३ ॥ "आज तो इस प्रकार विघ्नोत्पादक युद्ध उपस्थित हुआ, अतएव इसके विवाहका और कोई उत्तम दिन बताओ" ॥ २४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-जब नरेन्द्रने ज्योतिषियोंसे इस प्रकार पूछा, तब वह उस विषयकी चिन्ता करने लगे और वृत्तान्त जानकर दुःखितचित्त हो राजासे कहने लगे ॥ २५ ॥ हे पृथ्वीपते! इस विवाहका अच्छा लग्नयुक्त और सुन्दर दिन शीघ्रही उपस्थित होगा॥ २६॥ हे मानद! उस दिनके उपस्थित होनेपर विवाहकार्य सम्पादन कीजिये, इस समय विवाहकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस समय ऐसा महाविघ्न उपस्थित हुआ है ॥ २७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

यदासामानिनीकश्चिन्नजग्राहवरंमुने ॥ तदापप्रच्छदैवज्ञांविवाहार्थंनरेश्वरः ॥ २३ ॥ विशिष्टतरमेतस्याविवाहायदिनंवद ॥ अद्यैतदीदृक्संजातंयुद्धं विघ्नोपपादकम् ॥ २४ ॥ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ ॥ इतिपृष्टोनरेन्द्रेणसदैवज्ञोविमृश्यतत् ॥ दुर्मनाःप्राहविज्ञातपरमार्थोमहीपतिम् ॥ २५ ॥ भविष्यन्त्यपराणीहदिनानिपृथिवीपते ॥ प्रशस्तलग्नयुक्तानिशोभनान्यचिरेणवै ॥ २६ ॥ करिष्यसिविवाहंत्वंतेषुप्राप्तेषुमानद ॥ अलमेतेनयत्रायंमहा विघ्नउपस्थितः ॥ २७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततःशुश्रावतंबद्धं तनयंसकरन्धमः ॥ तस्यपत्नीतथावीराअन्येचापिमहीभृतः ॥ १ ॥ तमधर्मेणतनयंबद्धंश्रुत्वामहीपतिः ॥ समन्तैः पृथिवीपालैश्चिरन्दध्यौमहामुने ॥ २ ॥ केचिदूचुर्महीपालावध्याःसर्वेमहीभृतः ॥ यैरेकःसंयुगेबद्धःसमस्तैस्तैरधर्मतः ॥ ३ ॥ युज्यतांवाहिनीशीघ्रमूचुरन्येकिमास्यते ॥ विशालोवध्यतांदुष्ट स्तत्रयेऽन्येसमागताः ॥ ४ ॥ अन्येतथोचुर्धर्मोऽत्रत्यक्तःपूर्वमहीक्षिता ॥ अन्यायेनबलाद्येनगृहीतातमवांछती ॥ ५ ॥ स्वयंवरेष्वशेषेषुतेनराजसुतास्तदा ॥ खिलीकृतास्ततःसर्वैसमेत्यसवशीकृतः ॥ ६ ॥ तेषामेतद्वचःश्रुत्वावीरावीरप्रजावती ॥ वीरगोत्रसमुद्भूतावीरपत्नीप्रहर्षिता ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले-महाराज! करन्धम तथा उनकी पत्नी वीरा और अन्यान्य राजाओंने राजपुत्रके बँधनेका संवाद सुना ॥ १ ॥ हे महामुने! उनको अधर्मयुद्धम बँधा सुनकर राजा अपरापर सामन्त राजाओंके संग बहुतकालतक चिन्ता करतेरहे ॥ २ ॥ कोई कोई बोला-जिन बहुत राजाओंने एकत्रहोकर एक मात्र वीरको अधर्मयुद्धमें बांधलियाहै वह सब राजा वध्य अर्थात् मारडालने योग्यहैं ॥ ३ ॥ कोई बोला-अब निश्चिन्त क्यों बैठे हो शीघ्र सेना सजाओ दुष्ट विशाल राज और वहां आयेहुए सब राजाओंको बांधलो ॥ ४ ॥ और कोई कोई कहनेलगे पहिले राजपुत्रनेही अनभिलाषिणी कन्याको अन्यायरीतिसे बलपूर्वक ग्रहणकरके धर्म त्यागा है ॥ ५ ॥ और उन्होंने सब स्वयंवरोंमेंही इसीप्रकार राजपुत्रोंको शत्रु बनालियाहै इसकारण उन सबने मिलकर उन्हें बांधलियाहै ॥ ६ ॥ वीरवंशीयवीरपत्नी

वीरप्रसू वीरा उनके यह वचन सुनकर हर्षित अन्तःकरणसे ॥ ७ ॥ स्वामी और अन्यान्य राजाओंके सामने कहनेलगी-हे पार्थिवगण ! संपूर्ण राजाओंको पराजित करके मेरे कल्याणास्पद पुत्रने जो बलात्कारसे कन्याग्रहण की है सो उत्तमही किया है इसीलिये अधर्मयुद्धमें अकेले पुत्रको राजाओं ने बांधलियाहै ॥ ८ ॥ ९ ॥ मुझको बोध होता है कि, इससेभी मेरे पुत्रकी कोई हानि नहीं हुई यही पुरुषार्थहै जो क्रोधके वशीभूत होकर मनुष्य ॥ १० ॥ मारनेकी इच्छावाले सिंहके समान अधर्मसे मनुष्यकी नीतिको इसप्रकार नहीं गिनता है अनेकानेक सन्मानित राजाओं के सामने बलात्कारसे मेरे पुत्रने स्वयंवरके निमित्त उपस्थित की हुई बहुत कन्याओंको ग्रहण किया है कहां तो क्षत्रियकुलमें जन्मग्रहण और कहां हीनजनोचित मांगनेकाकार्य ! इन दोनोंमें वहुत अन्तर है ॥ ११ ॥ १२ ॥ अतएव क्षत्रियगण बलवानोंके सामनेही बलप्रकाश करके ग्रहण करते हैं । यदि धार्मिक राजाको कोई लोहेकी शृंखला अर्थात् जंजीरमें बांधभी ले, किन्तु तो भी वह कातरभावसे उसको वश्यता स्वीकार नहीं कर सकता ॥ १३ ॥ किन्तु पहिले वीरता प्रकाश करके फिर सहजमेंही वश्यता स्वीकार कर सकता है अतएव इसमें बुरा माननेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं पुत्रके इस बँधनेको विशेष श्लाघाका विषय विचारतीहूं ॥ १४ ॥ तुम्हारे पूर्वजोंने भी शत्रुओंका नाश करके राजाओंका पृथ्वी पुत्रादिक धन हरण किया है ॥ १५ ॥ और इस निमित्त आपके मस्तकमें अस्त्राघातका होना भी श्लाघनीय है । राजा लोग पृथ्वी,पुत्रादि धन और भार्या इत्यादिसज्जनोंके निकटसेही हरण करके संचय करते हैं और वही उनके गौरवका कारण होता है अतएव आप युद्धके लिये शीघ्रता अवलम्बन कीजिये, शीघ्र रथमें चढकर ॥ १६ ॥

उवाचभर्त्तुःप्रत्यक्षमन्येषांचमहीक्षिताम् ॥ भद्रंकृतंभद्रभुजाममपुत्रेणपार्थिवाः ॥ ८ ॥ गृहीतायद्बलात्कन्याजित्वासर्वमहीक्षितः ॥ तदर्थंयुध्यमानोऽयंबद्धएकोनधर्मतः ॥९॥ तदप्यस्मत्सुतस्याजौमन्येनापचयप्रदम् ॥ एतदेवहिपौरुष्यंयदमर्षवशान्नरः ॥१०॥ नीतिंनगणयत्येवंजिघांसुरिवकेसरी ॥ स्वयंवरायविन्यस्ताममपुत्रेणकन्यका ॥ ११ ॥ बह्वयोगृहीताभूपानांपश्यतामातिमानिनाम् ॥ क्कक्षत्रियकुलेजन्मक्कयाञ्चाहीनसेविता ॥१२॥ बलादेवसमादत्तेक्षत्रियोबलिनांपुरः॥लोहशृङ्खलबद्धावानवशंयान्तिकातराः ॥१३॥ प्रसह्यकारिणोयान्तिराजानोधर्मशालिनः॥तदलन्दौर्मनस्येनश्लाघ्यमेवास्यबन्धनम् ॥ ॥ १४ ॥ युष्माकमपियेपूर्वेकृत्वारीणांनिपातनम् ॥ हृत्वैवपृथिवीशानांपृथ्वीपुत्रादिकंवसु ॥ १५॥ भार्य्यावीर्यनिमित्तानिततोयातातिगौरवम् ॥ तत्त्वर्य्यतांरणायाशुस्यन्दनान्यधिरोहत ॥ १६ ॥

सारथी सहित हाथी और घोडोंको सज्जित कीजिये । अनेक राजाओंके संग एकजनेका युद्ध आप लोग कैसा विचारते हैं ? ॥ १७॥ शूर जन अल्प युद्धमेंही बडा पराक्रम संपादन करके अन्तमें संतोष प्राप्त करते हैं, अल्प नरेंद्रादि शत्रुसमूह और जिनसे भयकी संभावना नहीं है, ऐसे कातर शत्रुओंके ऊपर कौन सामर्थ्य प्रकाश करनेकी अभिलाषा नहीं करता ? ॥ १८॥ सूर्य जिस प्रकार दिगन्तव्याप्त अंधकारके समूहका नाश करते हैं, ऐसेही जो शूर बल वीर्यादिके द्वारा भुवन व्यापी सब शत्रुओंको पराजित करके विराजमान होते हैं,वही यथार्थ शूर हैं॥ १९॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे मुने ! राजा करन्धम इस प्रकार पत्नीके द्वारा उत्तेजित होकर पुत्रके शत्रुओंका वध करनेको सेना सजाने लगे ॥ २० ॥ अनन्तर पुत्रकेवँ धेरहतेही विशालराज और अपरापर राजाओंके संग करन्धम

सज्जीकुरुतनागाश्वमचिरेणससारथिम् ॥ मन्यध्वंकिंमहीपालैर्बहुभिःसहविग्रहम् ॥ १७ ॥ प्रभूताएवतोषायशूरस्याल्परणेक्रियाः ॥ कस्यनाल्पेषुसामर्थ्यंनरेन्द्रादिषुजायते ॥ १८ ॥ येभ्योनविद्यतेभीतिर्विक्रांतस्यापिशत्रुषु ॥ व्याप्यलोकान्समस्तान्योह्यभिभूययतोनरः ॥ व्यरो चतेतिशूरःसतमांसीवदिवाकरः ॥ १९ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ इत्थमुद्धर्षितोराजाऽनयापत्न्याकरन्धमः ॥ चकारसबलोद्योगंहन्तुंपुत्राहितान्मुने ॥ ॥ २० ॥ ततस्तस्यसमंभूपैर्विशालेनचसङ्गरः ॥ बभूवबद्धपुत्रस्यतैरशेषैर्महामुने ॥ २१ ॥ दिनत्रयमभूद्युद्धंतेनराज्ञासमंतदा॥करन्धमेनभूपानांविशालस्या नुकुर्वताम् ॥ २२ ॥ यदापराजितप्रायंतत्सर्वंभूपमण्डलम् ॥ तदाविशालोऽर्घ्यकरःकरन्धममुपस्थितः॥२३॥ करंधमोऽपिप्रीत्यातेनराज्ञाभिपूजितः ॥ वि मुक्तेतनयेतत्रनिशांतांसुखमावसत् ॥२४॥ तांचकन्यामुपादायविशालंसमुपस्थितम् ॥ अविक्षित्प्राहविप्रर्षेविवाहार्थंपितुःपुरः ॥२५॥ नाहमेतांग्रहीष्यामिन चान्यांयोषितंनृप॥पैरर्यस्यानिरीक्षन्त्याःसंग्रामेऽहंपराजितः॥२६॥अन्यस्मैसंप्रयच्छेमामियञ्चान्यंवृणोतुतम्॥अखण्डितयशोवीर्य्योयःपरैर्नापमानितः॥२७॥

का युद्ध आरंभ हुआ॥ २१ ॥उस समय विशालराजके अनुगामी राजाओंके सहित राजा करन्धमका तीन दिन युद्ध होनेपर॥ २२॥ जब वह सब विशाल राजानुगामी भूपमण्डल पराजित होगया तब विशाल उनकी पूजा करनेके लिये अर्घ्य हाथमें ले कर करन्धमके समीप उपस्थित हुए॥ २३॥ करन्धमनेभी राजाके द्वारा पूजित हो पुत्रको बंधनसे छुड़ाय, प्रीतिपूर्वक उस रात्रिको वहां सुखसे वास किया ॥ २४ ॥ हे विप्रर्षे ! इसके उपरान्त विशालराजकन्याको लेकर विवाहदानार्थ वहां उपस्थित हुए तब अवीक्षितने पिताके सामनेही उनसे कहा ॥ २५ ॥ हे नृप ! जिस कन्याके सामने मैं शत्रुओंसे परास्त होगया हूं, उसको तो कभी ग्रहण नहीं करसकता और अन्यभी किसी कामिनीको मैं ग्रहण नहीं करूंगा ॥ २६ ॥ अतएव जो कभी शत्रुओंसे अपमानित नहीं हुआ हो, ऐसे अखण्डित यश वीर्यसे

युक्त किसी और मनुष्यको आप कन्या दीजिये और यह कन्याभी उसीको वरण करै ॥ २७ ॥ इस कातर अबलाके समान मैं शत्रुओंसे पराजित होगयाहूं अतएव मेरा मनुष्यत्व क्या है ! सुतरां मुझमें और इस कन्यामें कोई भेद नहीं है ॥ २८ ॥ स्वतंत्रता सदा मनुष्यके आधीन है और ललनागण सदाही पराधीन हैं, अतएव पुरुष होकरभी जो पराधीन हो, उसकी मनुष्यता कैसी है ? ॥ २९ ॥ जिसके सन्मुख मैं समस्त राजाओंसे हारगयाहूं उसको अपना यह पूर्वदृष्ट मुख किस प्रकार दिखाऊंगा ? ॥ ३० ॥ जगतीपति विशालने राजपुत्रके यह वचन सुनकर कन्यासे कहा हे वत्से ! इन महात्माने जो कहा, वह सुना । अब हे कल्याणी ! यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो अपने आप अन्य किसीको पतित्वमें वरण करो ॥ ३१ ॥ अथवा तुम्हारे प्रति अत्यन्त स्नेहके कारण मैं जिसको उचित समझूं उसको प्रदान

पैरःपराजितोऽहंयत्कातरेयंयथाऽबला ॥ किमत्रमानुषत्वंमेनैतस्याममचान्तरम् ॥ २८ ॥ स्वतन्त्रतामनुष्याणांपरतन्त्रासदाऽबला ॥ नरोऽपिपरतन्त्रोयस्तस्यकीदृङ्मनुष्यता ॥ २९ ॥ सोऽहमस्यामुखंभूयोदृष्टंदर्शयिताकथम् ॥ योऽहमस्याःपुरोभूमौपरैर्भूपैः खिलीकृतः ॥ ३० ॥ इत्युक्तेतेन तनयामुवाचजगतीपतिः ॥ श्रुतंतेवचनंवत्सेवदतोऽस्यमहात्मनः ॥ वरयान्यंपतिंयत्रमनस्तेरमतेशुभे ॥३१॥ वयंवासंप्रयच्छामोयस्मिंस्तस्मिंस्तवाहृतिः॥ एतयोर्ह्येकमातिष्ठमार्गयो रुचिरानने ॥ ३२ ॥ ॥ कन्योवाच ॥ ॥ पराजितोऽयंबहुभिर्नसम्यक्सम्यगाचरन् ॥ संग्रामेतद्यशोवीर्य्यहानिकारिनपार्थिव ॥ ३३ ॥ एकोबहूनांयुद्धायगजानामिवकेसरी ॥ यत्संस्थितःपरंशौर्य्यं तेनास्यप्रकटीकृतम् ॥ ३४ ॥ नकेवलमयंतस्थौयुद्धेतेऽप्यखिला जिताः ॥ बहुशोऽनेनयत्नेनविक्रमोऽपिप्रकाशितः ॥ ३५ ॥ शौर्य्यविक्रमसंयुक्तमिमंसर्वमहीक्षितः ॥ धर्म्मयुद्धमधर्मेणजितवन्तोऽत्रकात्रपा ॥ ३६ ॥

करूंगा हे रुचिरानने ! इन दोनों बातोंमें एक स्वीकार करो ॥ ३२ ॥ कन्या बोली हे पार्थिव ! यह राजकुमार धर्ममार्गमें स्थित रहकर बहुत जनोंके संग संग्राम करके भी यशोवीर्य हानिकारक युद्धमें सम्यक् प्रकार पराजित नहीं हुए हैं ॥ ३३ ॥ युद्धके लिये आये हुए बहुत राजाओंमें इन्होंने जो केसरीके समान अकेलेही युद्धमें स्थिति की थी, उसके द्वाराही इनका विशेष शौर्य प्रकाशित हुआ है ॥ ३४ ॥ यह केवल युद्धस्थलमें स्थित ही नहीं थे, बरन् इन्होंने संपूर्ण राजमण्डलको बहुत वार पराजित करके यथेष्ट विक्रमभी प्रकाशित किया था ॥ ३५ ॥ शाय और विक्रमशाली धर्मयुद्धकारी इन कुमारको जो बहुत राजाओंने अधर्म

व्यवहारसे पराजित किया है, फिर इसमें लज्जाकी क्या बात है ? ॥ ३६ ॥ हे पिता ! मैं इनका केवल रूपमात्र देखकर लोभ नहीं करती वरन् इनके शौर्य विक्रम और धैर्यने मेरा मन हर लिया है ॥ ३७ ॥ अतएव अधिक और क्या कहूं हे नृप ! आप मेरे लिये इन महानुभावको ही अनुरोध कीजिये । इनके अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा पति नहीं होगा ॥ विशालने कहा—हे राजपुत्र ! मेरी कन्याने जो कहा, वह सब युक्तिसंगत है । तुम्हारे समान पृथ्वीतलमें अन्य कुमार दिखाई नहीं देता ॥ ३८ ॥ तुम्हारा शौर्य अप्रतिहत है और पराक्रमभी अधिक है ॥ ३९ ॥ हे वीर ! तुम्हीं इस मेरी कन्याको ग्रहण करके मेरे कुलको पवित्र करो ॥ ४० ॥ राजपुत्रने कहा हे नृप ! मैं इसको वा दूसरी किसी स्त्रीको ग्रहण नहीं करूंगा, हे मनुजेश्वर ! मैं स्वयंही अपनेको स्त्री समझताहूं ॥ ४१ ॥ मार्कण्डेयजी

नचापिरूपमात्रेऽहंलोभमस्यगतापितः ॥ शौर्य्यविक्रमधैर्य्याणिहरन्त्यस्यमनोमम ॥ ३७ ॥ तत्किमुक्तेनबहुनायाच्यतांमत्कृतेनृपः ॥ त्वयामहानुभावोऽयं नान्योमेभवितापतिः ॥ ३८ ॥ विशाल उवाच ॥ ॥ राजपुत्रसुताप्राहममैतच्छोभनंवचः ॥ एवंचैवत्वयातुल्यःकुमारोनमहीतले ॥ ३९ ॥ अविसंवादितेशौर्य्यमतीवचपराक्रमः ॥ पावयास्मत्कुलंवीरदुहितुर्मेपरिग्रहात् ॥ ४० ॥ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ ॥ नाहमेतांग्रहीष्यामिनचान्यांयोषितंनृप ॥ आत्मन्येवहिमेबुद्धिःस्त्रीमयीमनुजेश्वर ॥ ४१ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततःकरन्धमःप्राहपुत्रेयंगृह्यतांत्वया ॥ विशालतनयासुभ्रूस्त्वयिहार्दवतीदृढम् ॥ ४२ ॥ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ ॥ नाज्ञाभङ्गःकदाचित्तेकृतःपूर्वमयाप्रभो ॥ तथाऽऽज्ञापयमांतातयथाज्ञांकरवाणिते ॥ ४३ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अत्यन्तनिश्चितमतौतास्मिन्राजसुतेसुताम् ॥ तामुवाचविशालोऽपिव्याकुलीकृतमानसः ॥ ४४ ॥ निवर्त्यतांमनःपुत्रिएतस्मान्नप्रयोजनात् ॥ अन्यंवरयभर्त्तारंसन्त्यनेकेनृपात्मजाः ॥ ४५ ॥ ॥ कन्योवाच ॥ ॥ वरंवृणोम्यहंतातमामेषयदिनेच्छति ॥ तपसाऽन्यो नमेभर्त्ताजन्मन्यस्मिन्भविष्यति ॥ ४६ ॥

बोले—तब करन्धमभी पुत्रसे कहने लगे हे पुत्र ! तुम इस कन्याको ग्रहण करो क्योंकि यह सुंदरी विशालकन्या तुम्हारे प्रति दृढ अनुरागवती हुई है ॥ ४२ ॥ राजपुत्रने कहा—हे प्रभो ! मैंने पहले कभी आपकी आज्ञाभंग (अपालन) नहीं करी, हे तात ! इस समयभी आप मुझको वैसेही आज्ञा दीजिये जिसको मैं पालन करनेमें समर्थहूं ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—राजा विशालने राजपुत्रको इस प्रकार स्थिर बुद्धि जान व्याकुलचित्त हो कन्यासे कहा ॥ ४४ ॥ हे पुत्रि ! इनकी ओरसे मनको निवृत्त कर और अनेक राजपुत्र हैं उनमें किसीको पति वरण कर ॥ ४५ ॥ कन्या बोली—हे तात ! यदि यह राजपुत्र मेरी अभिलाषा नहीं करते, तो मैं प्रार्थना

करतीहूं कि, तपस्याके अतिरिक्त इस जन्ममें मेरा अन्य पति नहीं होगा ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-अनन्तर करन्धम विशाल राजाके सहित वहां प्रसन्नचित्तसे तीन दिन बिताकर अपने नगरको चले गये ॥ ४७ ॥ पिता और अन्यान्य राजाओंके अनेकानेक प्राचीन दृष्टांतों से समझानेपर अवीक्षितभी राजधानीमें गये ॥ ४८ ॥ और वह विशालराजाकी कन्या भी आत्मीय बांधवोंसे बिदाले, वनमें जाय, परम वैराग्यके सहित निराहार होकर तपस्या करने लगी ॥ ४९ ॥ इस प्रकार निराहार होकर तीन महीने बिताने पर उसके शरीरकी नाडी दीखने लगीं वह कृश होकर अत्यन्त दुःखित हुई ॥ ५० ॥ तब वह अत्यन्त दुबले अंगवाली मृत्युके समीप हुई बालिका राजकन्या मन्दोत्साह होकर प्राणत्याग करनेके लिये कृतनिश्चय हुई ॥ ५१ ॥ इस ओर उसको प्राणत्याग करनेमें स्थिर निश्चय जानकर

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततःकरन्धमोराजाविशालेनसमंमुदा ॥ स्थित्वादिनत्रयंतत्रानिजमभ्याययौपुरम् ॥ ४७ ॥ अविक्षितोपितेनैवपित्रान्यैश्चनराधिपैः ॥ निदर्शनैःपुरावृत्तैःसान्त्वितोऽभ्यागमत्पुरम् ॥ ४८ ॥ सापिकन्यावनंगत्वानिसृष्टानिजबान्धवैः ॥ तपस्तेपेनिराहारावैराग्यंपरमास्थिता ॥ ४९ ॥ निराहारायदासातुमासत्रयमवस्थिता ॥ संप्रापपरमामार्तिंकृशाधमनिसन्तता ॥ ५० ॥ मन्दोत्साहातितन्वङ्गीमुमूर्षुरपिबालिका ॥ देहत्यागायसाचक्रेतदाबुद्धिंनृपात्मजा ॥ ५१ ॥ आत्मत्यागायतांज्ञात्वाकृतबुद्धिंसुरास्ततः ॥ समेत्यप्रेषयामासुर्देवदूतन्तदन्तिकम् ॥ ५२ ॥ समुपेत्यसतांप्राहदूतोऽहंपार्थिवात्मजे ॥ प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यंयत्कार्यंतन्निशामय ॥ ५३ ॥ नभवत्यापरित्याज्यंशरीरमातिदुर्लभम् ॥ त्वंभविष्यसिकल्याणिजननीचक्रवर्तिनः ॥ ५४ ॥ पुत्रेणचमहाभागेभोक्तव्यानिहतारिणा ॥ अव्याहताज्ञेनचिरंसप्तद्वीपवतीमही ॥ ५५ ॥ हन्तव्यस्तेनतरुजिद्देवानांपुरतोरिपुः ॥ अयःशंकुस्तथाक्रूरोधर्मेस्थाप्यास्ततः प्रजाः ॥ ५६ ॥ परिपालनीयमखिलंचातुर्वर्ण्यंस्वधर्मतः ॥ हन्तव्यादस्यवोम्लेच्छायेचान्येदुष्टचेष्टिताः ॥ ५७ ॥

देवताओंने मिलित हो, उसके निकट देवदूतको भेजा ॥ ५२ ॥ दूतने आनकर कहा हे नृपात्मजे ! मैं देवताओंका भेजा हुआ दूत हूँ जिस कार्यके लिये देवताओंने मुझे तुम्हारे निकट भेजाहै, वह सुनो ॥ ५३ ॥ इस दुर्लभ शरीरको तुम परित्याग मत करो, हे कल्याणि ! तुम चक्रवर्त्ती राजाकी जननी होगी ॥ ५४ ॥ हे महाभागे ! तुम्हारा पुत्र शत्रुकुलका विनाश करके अप्रतिहत प्रभावसे बहुत कालतक इस सप्तद्वीपा पृथ्वीको भोग करेगा ॥ ५५ ॥ देवशत्रु तरुजित और क्रूर अयःशङ्कु देवताओंके सामने उसके द्वारा विनाशको प्राप्त होंगे, वह प्रजाको धर्माचरणमें स्थापन करेगा ॥ ५६ ॥ समस्त चातुर्वर्ण्यकोही यथाधर्ममें प्रतिपालन

करेगा,म्लेच्छ, दस्यु (तस्कर) इत्यादि दुराचारी उसके द्वारा विनाशको प्राप्तहोंगे ॥ ५७ ॥ और हे भद्रे ! वह विपुल, दक्षिणापूर्ण अश्वमेधादि अनेक प्रकारके छः हजार यज्ञ करेगा ॥ ५८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर दिव्यमालानुलेपनधारी आकाशमें स्थित उस देवदूतको देखकर राजपुत्रीने मधुर स्वरसे कहा ॥ ५९ ॥ आप सत्यही स्वर्गसे देवदूत आये हैं, इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु भर्त्ताके विना मेरे किस प्रकार पुत्र होगा ? ॥६०॥अवीक्षितके अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा इसजन्ममें भर्त्ता नहीं होगा, मैं ने पिताके निकट इस प्रकार प्रतिज्ञा की है ॥ ६१ ॥ किन्तु अवीक्षितने भी मेरे पिताके, अपने पिताके और मेरे अनुरोधसे भी मेरी अभिलाषा नहीं करी ॥ ६२ ॥ देवदूतने कहा—हे महाभाग ! अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है, निःसन्देह तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा इस कारण आत्महत्यारूप अधर्मा

यष्टव्यंविविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ वाजिमेधादिभिर्भद्रेषट्सहस्रैश्चसंख्यया ॥ ५८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तंदृष्ट्वासाऽन्तरिक्षस्थं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ देवदूतमुवाचेदंराजपुत्रीततोमृदु ॥ ५९ ॥ सत्यंत्वमागतःस्वर्गाद्देवदूतोनसंशयः ॥ किन्तुभर्त्राविनापुत्रःसकथंमेभविष्यति ॥ ६० ॥ अविक्षितमृतेभर्त्ताममनान्योऽत्रजन्मनि ॥ भवितेतिप्रतिज्ञातंमयैतत्सन्निधौपितुः ॥ ६१ ॥ सचनेच्छतिमांप्रोक्तोमत्पित्राजनकेनच ॥ कर न्धमेनाथसम्यग्याचितश्चमयातथा ॥ ६२ ॥ ॥ देवदूतउवाच ॥ ॥ किमनेनमहाभागेबहुनोक्तेनतेसुतः ॥ समुत्पत्स्यतिमात्याक्षीस्त्वमात्मा नमधर्मतः ॥ ६३ ॥ अत्रैवकाननेतिष्ठतनुंक्षीणांचपोषय ॥ तपःप्रभावादेतत्तेसर्वंसाधुभविष्यति ॥ ६४ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वादेवदूतोऽ सौयथागतमगच्छत ॥ चकारानुदिनंसुभ्रूःसाप्यात्मतनुपोषणम् ॥६५॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेऽविक्षिच्चरितंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ अथसाऽविक्षितोमातावीरावीरप्रजावती ॥ पुण्येऽहनिसमाहूयप्राहपुत्रमविक्षितम् ॥ १ ॥ पुत्राहमभ्यनुज्ञातातवपित्रामहात्मना ॥ उपवासंकरिष्यामिदुष्करोऽयंकिमिच्छकः ॥ २ ॥ सचायत्तस्तवपितुस्त्वयासाध्योमयापिच ॥ प्रतिज्ञातेत्वयापुत्रततस्तत्रयताम्यहम् ॥ ३ ॥

चरण मत करो ॥६३ ॥ इसी वनमें रहकर क्षीणदेहका पोषण करो । तपस्याके प्रभावसे अवश्य तुमको सब भाँतिसे मंगल उपस्थित होगा ॥ ६४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—देवदूत इस प्रकार कहकर जहांसे आया था वहींको चलागया और सुन्दरी राजकन्याभी नित्य शरीरपोषण करने लगी ॥६५॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरितेभाषाटीकायामेकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२१ ॥मार्कण्डेयजी बोले—एकसमय पवित्रदिनमें अवीक्षितकी माता वीरप्रसूवीराने पुत्र अवीक्षितको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ हे पुत्र ! मैं किमिच्छक नामक उपवासके पीछे एक दुष्कर व्रत करूंगी, तुम्हारे महात्मा पिताने भी उसे करनेकी आज्ञा देदी है॥ २॥वह व्रत तुम्हारे पिता,तुम और मैं इन तीन जनोंके अधीन है अतएव हे पुत्र ! जब तुम उसकी प्रतिज्ञा करलोगे, तब मैं व्रतकार्यमें यत्नवती हूंगी ॥ ३ ॥

तुम्हारे पिताके राजकोषका आधा धन दान करूंगी, सुतरां धन तुम्हारे पिताके अधीन है, किन्तु उनसे आज्ञा प्राप्त करलीहै ॥ ४ ॥ क्लेशसाध्य विषय मेरे आधीन है वह मेरे-द्वारा भलीभाँति सम्पन्नभी होगा और जो कुछ बल तथा पराक्रमसाध्य है, वह सब तुम्हारे आधीन है ॥ ५ ॥ वह तुमको सुसाध्य, दुःखसाध्य अथवा असाध्य भी हो सकता है, अतएव हे पुत्र ! यदि अपने साध्यविषयमें तुम अंगीकार करो; तो इस व्रतका उद्योग करूं अब तुम्हारा जो अभिप्राय हो, उसको प्रकाश करो॥ ६ ॥ अवीक्षितने कहा—धन पिताके आधीन है उसमें मेरी कुछ प्रभुता नहीं है, मेरे शरीरसे जो कार्य सिद्ध होगा, तुम्हारी आज्ञानुसार मैं उसके संपादन करनेको प्रस्तुत हूं ॥ ७ ॥ यदि वित्तेश्वर पिताही इसमें आज्ञा देते हैं तो हे माता ! तुम निश्चिन्त होकर संतुष्ट हृदयसे किमिच्छक व्रत अवलम्बन करो ॥ ८ ॥

द्रव्यस्यार्द्धमहाकोशात्तवदास्याम्यहंपितुः ॥ धनंतेपितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मितेनच ॥ ४ ॥ क्लेशसाध्योमदायत्तःसहिश्रेयोभविष्यति ॥ साध्योभवेद्वायदि तेकश्चिद्बलपराक्रमैः ॥५॥ सतेऽसाध्योह्यन्यथावादुःखसाध्योभविष्यति ॥ तत्त्वंप्रतिज्ञांकुरुषेयदिपुत्रात्रचैवते ॥ तदेतदहमावाप्स्येकथ्यतांयन्मतंतव ॥६॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ वित्तंमेपितुरायत्तंमत्स्वामित्वंनतत्रवै ॥ यन्मच्छरीरनिष्पाद्यंतत्करिष्येत्वयोदितम् ॥ ७ ॥ किमिच्छकंव्रतंमातर्निश्चिन्ताभवनिर्व्यथा ॥ राज्ञापित्राऽभ्यनुज्ञातंयदिवित्तेश्वरेणमे ॥ ८ ॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ततःसाराजमहिषीतद्व्रतंसमुपोषिता ॥ यथोक्तंसाऽकरोत्पूजांराजराजस्यसंयता ॥ ९ ॥ निधीनामप्यशेषाणांनिधिपालगणस्यच ॥ लक्ष्म्याश्चपरयाभक्त्यायतवाक्कायमानसा ॥ १० ॥ विविक्तेतुगृहस्थोऽयमथराजाकरन्धमः ॥ आसीनउक्तः सचिवैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ॥ ११ ॥ ॥ सचिवाऊचुः ॥ ॥ राजन्वयःप[illegible]वैतच्छासतोमहीम् ॥ एकस्तेतनयोऽविक्षित्त्यक्तदारपरिग्रहः ॥ १२ ॥ अपुत्रःसचतेनिष्ठांयदाभूपगमिष्यति ॥ तदारिपक्षंपृथिवीनिश्चितंतवयास्यति ॥ १३ ॥ वंशक्षयस्तेभवितापितृपिण्डोदकक्षयः ॥ एतन्महतेऽरिभयंकि याहान्याभविष्यति ॥ १४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर संयमपरायण राजमहिषी उस व्रतमें उपवासपूर्वक काय, मन, वचनसे संयत हो अत्यन्त भक्तिसहित यथोक्तविधानसे निधि समूह निधिपालगण और लक्ष्मी देवीकी पूजा करने लगी ॥ ९ ॥ १० ॥ इस ओर राजा करन्धम नीतिशास्त्रविशारद मंत्रियोंके सहित मंत्रणागृहमें विराज मान रहे ॥ ११ ॥ मंत्री बोले—हे राजन् ! पृथ्वीपालन करतेहुए आपकी अवस्था बीतचली और आपके एक मात्र पुत्रने दारपरिग्रह त्याग किया अर्थात् विवाह नहीं किया है ॥ १२ ॥ हे भूप ! वह भी जब अपुत्रही रहैंगे दारसंग्रहन करैंगे तब निःसन्देह पृथ्वी आपके शत्रुओंका आश्रय करेगी ॥ १३ ॥ आपकाभी वंशक्षय और

पितरोंका श्राद्ध, तर्पण नष्ट होगा। फिर क्रियाहानिके कारण यह समस्त महत् शत्रुभय उपस्थित होगा ॥ १४ ॥ अतएव हे भूपाल ! जिससे आपका पुत्र फिर सदा पितरोंका उपकार करनेवाली बुद्धि अवलम्बन करे, उसका उपाय कीजिये ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसी समय राजमहिषी वीराके संबंधमें पुरोहित अर्थीगणोंसे जो कहते थे राजाने उन वचनोंका शब्द सुना ॥ १६ ॥ पुरोहित कहते थे "करन्धमकी महिषी किमिच्छक व्रत करती हैं. तुम क्या क्या इच्छा करते हो ? किसका क्या दुःसाध्य कार्य साधन करना होगा ! सो प्रकाश करो" ॥ १७ ॥ जब राजपुत्र अवीक्षितने पुरोहितोंका वचन सुना तब वह भी राजद्वारपर आनकर सब आर्थियोंसे कहने लगे ॥ १८ ॥ हे अर्थीगणो ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो—मेरी भाग्यवती माता किमिच्छकव्रतमें स्थित हो रहा है, इस

तस्मात्कुरुतथाभूपयथातेतनयः पुनः ॥ करोतिसततंबुद्धिंपितॄणामुपकारिणीम् ॥ १५ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ एतस्मिन्नन्तरेशब्दंशुश्रावजगतीपतिः ॥ पुरोहितस्यवीरायागदतोह्यर्थिनंप्रति ॥ १६ ॥ कःकिमिच्छतिदुःसाध्यंकस्यकिंसाध्यतामिति ॥ करन्धमस्यमहिषीकिमिच्छिकमुपोषिता ॥ १७ ॥ राजपुत्रोऽप्यविक्षित्तुश्रुत्वापौरोहितंवचः ॥ प्रत्युवाचार्थिनः सर्वान्राजद्वारमुपागतान् ॥ १८ ॥ ॥ मयासाध्यंशरीरेणयस्याकिंचिद्ब्रवीतुसः ॥ ममभातामहाभागाकिमिच्छिकमुपोषिता ॥ १९ ॥ शृण्वन्तुमेऽर्थिनः सर्वेप्रतिज्ञातंमयातदा ॥ किमिच्छथददाम्येषाक्रियमाणेकिमिच्छके ॥ ॥ २० ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततोराजानिशम्यैतद्वाक्यंपुत्रमुखाच्छ्रुतम् ॥ समुत्पत्याब्रवीत्पुत्रमहमर्थीप्रयच्छमे ॥ २१ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ दातव्यंयन्मयातात भवतेतद्ब्रवीहिमाम् ॥ कर्तव्यंदुष्करंवातेसाध्यंदुःसाध्यमेववा ॥ २२ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ यदिसत्यप्रतिज्ञस्त्वंददासिचकिमिच्छकम् ॥ पौत्रस्यदर्शयमुखंममोत्सङ्गगतस्यतत् ॥ २३ ॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ अहन्तवैकस्तनयोब्रह्मचर्य्यंचमेनृप ॥ नमेपुत्रोऽस्तिपौत्रस्यदर्शयामिकथंमुखम् ॥ २४ ॥

समयमें मेरे शरीरसे जो कुछ साधित होसके, उसे कहो ॥ १९ ॥ इस किमिच्छकव्रतके समय तुम क्या क्या प्रार्थना करते हो सो कहो मैं वही देनेको प्रस्तुत हूं यह मेरी प्रतिज्ञा है॥ २०॥ मार्कण्डेयजी बोले इसके उपरान्त राजाकरन्धमने पुत्रके मुखसे निकलेहुए यह वचन सुन उसके समीप जाकर कहा॥ २१॥ 'हे पुत्र! मैं अर्थी हूं मुझको अभिलाषित वस्तु दो' अवीक्षितने कहा—"हे तात! मैं आपको क्या दूं? आज्ञा कीजिये आपकी माँगी वस्तु साध्य दुःसाध्य वा असाध्यही क्यों न हो, मैं वह दूंगा" ॥२२॥ राजाने कहा "यदि तुमने किमिच्छकमें दान करनेकी सत्यप्रतिज्ञा कीहै तो मेरीगोदीमें बैठालकर पौत्रकामुख दिखाओ" ॥ २३ ॥ अवीक्षितने कहा-हे नृप! मैं ही आपका एक-मात्र पुत्रहूं, सो मैं ने ब्रह्मचर्य अवलम्बन किया है और मेरे पुत्रभी नहीं है, अतएव किस प्रकार आपको पौत्रका मुखदिखाऊं ! ॥ २४ ॥

राजाने कहा 'यह जो तुमने ब्रह्मचर्य धारण कियाहै, सो यह पापका हेतुहै सुतरां इसको परित्याग करके उससे आत्माको मुक्त करो और मुझकोभी पौत्रका मुख दिखाओ' ॥ २५ ॥ अवीक्षितने कहा यह कार्य अत्यन्त विषम अर्थात् ब्रह्मचर्यका विरोधी है। हे महाराज! मैंने वैराग्यके निमित्तही स्त्रीसंभोग परित्याग किया है जिससे वह वैराग्य खंडित न हो आप मुझे वैसीही कोई दूसरी आज्ञा दीजिये॥२६॥ राजाने कहा "मैं ने देखा है कि, बृहत् सेनासे युक्त वैरियोंको तुमने युद्धमें परास्त किया है, इसपरभी यदि तुम वैराग्य अवलम्बन करते हो तो तुम अपण्डित (मूर्ख) हो ॥ २७ ॥ अब मेरे अधिक कहनेका क्या प्रयोजन है? तुम अपनी माताकी इच्छा नुसार ब्रह्मचर्यपरित्याग करो और मुझको पौत्रका मुख दिखावो" ॥ २८॥ मार्कण्डेयजी बोले—राजपुत्रके वारंवार अनुरोध करनेपरभी जब राजाने दूसरी,

॥ राजोवाच ॥ ॥ पापायब्रह्मचर्य्यन्तेयदिदंधार्य्यतेत्वया ॥ तस्मात्त्वंमोचयात्मानंममपौत्रंचदर्शय ॥ २५ ॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ विषमंस्यान्महाराजयदन्यत्तत्समादिश ॥ वैराग्येणमयात्यक्तःस्त्रीसंभोगस्तथास्तुसः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ बहुभिर्युध्यमानानांदृष्टोवैवैरिणांजयः ॥ तत्रापियदिवैराग्यमुपैषितदपण्डितः ॥ २७॥ किंवानोबहुनोक्तेनब्रह्मचर्य्यंपरित्यज ॥ मातुस्त्वमिच्छयावक्रंपौत्रस्यममदर्शय ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ यदासबहुशस्तेनप्रोक्तःपुत्रेणपार्थिवः ॥ नान्यत्प्रार्थयतेकिंचित्तदापुत्रोऽब्रवीत्पुनः ॥ २९ ॥ दत्त्वाकिमिच्छकंतुभ्यंप्राप्तोऽहंतातसङ्कटम् ॥ तत्करिष्यामिनिर्लज्जोभूयोदारपरिग्रहम् ॥ ३० ॥ स्त्रियाःसमक्षंविजितः पतितोधरणीतले ॥ स्त्रीपतिर्भविताभूयस्तातैतदतिदुष्करम् ॥ ३१ ॥ तथापिकिंकरोम्येषसत्यपाशवशङ्गतः ॥ करिष्यामियथाऽऽत्थत्वंभुज्यतांनिजशासनम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितंद्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कदाचिद्राजपुत्रोऽसौमृगयामचरद्वने ॥ मृगान्विध्यन्वराहांश्चशार्दूलादींश्चदंष्ट्रिणः ॥ १ ॥ शुश्रावसहसाशब्दंत्राहित्राहीतियोषितः ॥ विक्रोशन्त्याः सुबहुशोभयगद्गदमुच्चकैः ॥ २ ॥

कोई प्रार्थना नहीं करी, तब राजपुत्रने फिर कहा ॥ २९ ॥ हे तात! आपसे किमिच्छकप्रदानविषयमें अंगीकार करके मैं संकटमें पड़गया हूं इसकारण निर्लज्ज होकर फिर स्त्री, ग्रहण करनीही पड़ेगी ॥ ३० ॥ मैं स्त्रीके सामने पराजित होकर पृथ्वीमें गिर गया था, अतएव स्त्री मेरे पक्षमें पतिके समान होगी, हे तात! यह बड़ाही कठिन कार्य है ॥ ३१ ॥ किन्तु तो भी क्या करूं? जब कि, सत्यपाशमें बँधगयाहूं, तब आप जो कहते हैं वह अवश्य करूंगा। अब आप निश्चिन्त चित्तसे राज्यशासन कीजिये ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरितेभाषाटीकायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—किसी समय राजपुत्र वनमें मृग, वराह, शार्दूल, सिंह, इत्यादि दंष्ट्री जन्तुओंको विद्ध करके मृगया करतेथे ॥ १ ॥ उसी समय सहसा

रोतीहुई कामिनीके कंठका निकलाहुआ भयसे गद्गद अत्युच्च 'त्राहि त्राहि' शब्द वारंवार सुना ॥ २ ॥ राजपुत्रने वह शब्द सुनतेही तत्काल 'भय नहीं, भय नहीं' कहकर जिस ओरसे शब्द आता था, उसी ओरको वेगसहित घोड़ा दौड़ाया ॥ ३ ॥ तदनन्तर दनुपुत्र दृढकेशके द्वारा पकड़ीहुई वह मानिनी कन्या विजनवनमें ऊंचेस्वरसे इसप्रकार विलाप करनेलगी ॥ ४ ॥ कि, "मैं करन्धमके पुत्र बुद्धिमान् पृथिवीश्वर अवीक्षितकी भार्या हूं यह दुराचारी मुझको वनमें हरण करता है" ॥ ५ ॥ जिनके सन्मुख संपूर्ण महीपाल और गुह्यक गंधर्वभी नहीं ठहर सकते, मैं उनकीही भार्या होकर हरीजाती हूं ॥ ६ ॥ जिनका क्रोध मृत्युके समान औ पराक्रम इन्द्रके समान है, मैं उन्हीं करन्धमके पुत्रकी भार्या हूं यह मुझको हरण करता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले

माभैर्माभैरितिवदन्राजपुत्रःसवेगितः ॥ चोदयामासतुरगंयतःशब्दःसमागतः ॥ ३ ॥ ततश्चसापिचुक्रोशकन्यकाविजनेवने ॥ गृहीतादनुपुत्रेणदृढकेशेनमानिनी ॥ ४ ॥ करन्धमसुतस्याहंभार्य्याचाहमविक्षितः ॥ हरत्यनार्य्योविपिनेपृथिवीशस्यधीमतः ॥५॥ यस्यसर्वेमहीपालास्तथागन्धर्वगुह्यकाः ॥ नसमर्थाःपुरःस्थातुंतस्यभार्य्याहृतास्म्यहम् ॥ ६ ॥ यस्यमृत्योरिवक्रोधःशक्रस्येवपराक्रमः ॥ करन्धमसुतस्यैषातस्यभार्य्याहृतास्म्यहम् ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्याकर्ण्यमहीपालतनयःसशरासनी ॥ चिन्तयामासकिमिदंममभार्य्यात्रकानने ॥ ८ ॥ मायेयंरक्षसांनूनंदुष्टानांकाननौकसाम् ॥ अथवागतएवाहंसर्वं वेत्स्यामिकारणम् ॥९॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ त्वरितःसततोगत्वाददर्शातिमनोरमाम् ॥ काननेकन्यकामेकांसर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ १० ॥ गृहीतांदनुपुत्रेणदृढकेशेनदण्डिना ॥ त्राहित्राहीतिकरुणंविक्रोशन्तींपुनःपुनः ॥ ११ ॥ माभैरितिसतामाहहतोऽसीतिचतंवदन् ॥ शासतीमांमहींदुष्टःको दूयेतकरंधमे ॥ १२ ॥

धनुष हाथमें लिये राजाने यह बात सुनकर विचार किया कि, इस वनमें मेरी भार्या यह कैसी बातहै॥८॥यह निःसन्देह वनमें विहार करनेवाले राक्षसोंकी माया है। जो हो निकट जानेपर सब बात ज्ञात होजायगी ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले इसके उपरान्त राजपुत्रने शीघ्र वहां पहुँचकर देखा कि, उस वनमें समस्त गहनों से विभूषित अत्यन्त मनोहर एक कन्या ॥ १०॥ दंड हाथमें लिये दानव दृढकेशके द्वारा पकड़ी जाकर "त्राहि त्राहि" शब्दसे वारंवार रोदन करती है ॥ ११ ॥ उन्हों ने उस कन्यासे "भय नहीं" यह कहकर दानवसे कहा—तेरी मृत्यु अत्यन्त निकट है करन्धमके पृथ्वी पालनेके समय कौन दुःखी हो सकता है ॥ १२ ॥

जिनकरन्धम राजाके प्रतापसे पृथ्वीके संपूर्ण महीपाल अवनत रहते हैं, उनके शासन कालमें कौन दुष्ट मनुष्य जीवित रहसकता है ? प्रचण्ड धनुर्धारी उन राजपुत्रको आया हुआ देखकर ॥ १३ ॥ वह कृशाङ्गी वारंवार कहनेलगी 'मेरी रक्षा करो, यह मुझको हरण करता है, मैं करन्धमराजाकी पुत्रवधू अवीक्षितकी भार्या हूं; अतएव सनाथ होकर भी अनाथके समान इस वनमें दुष्टके द्वारा हरीजाती हूं" ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—कन्याका यह वचन सुनकर राजपुत्र चिन्ता करने लगे कि, यह कन्या मेरी भार्या और मेरे पिताकी पुत्रवधू किस प्रकार हुई ॥ १५ ॥ जो हो, पहिले इस कन्याको छुडालूं, पीछे सब बात जानलूंगा, क्यों कि, आर्त्त मनुष्योंकी रक्षाकेलियेही क्षत्रिय शस्त्र धारण करते हैं ॥ १६ ॥ अनन्तर महावीर राजकुमारने क्रोधित होकर दुर्मति दानवसे, कहा यदि जीवनकी इच्छा हो तो इसको छोडकर भाग जा; नहीं तो अवश्यही तेरी मृत्यु होनहार है॥ १७॥ दानव राजपुत्रके वचनसे कन्याको छोडकर दण्ड हाथमें लिये उनकी ओर

यस्यप्रतापावनताभुविसर्वेमहीक्षितः ॥ ततस्तमागतंदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् ॥ १३ ॥ मांत्राहीत्याहतन्वङ्गीहृतास्म्येषेतिचासकृत् ॥ राज्ञः करन्धमस्याहंस्नुषाभार्य्याप्यवीक्षितः ॥ हृतास्म्येतेनदुष्टेनसनाथाऽनाथवद्वने ॥ १४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोविममृशेवाक्यमविक्षित्सतथोदितम् ॥ कथमेषाहिमेभार्य्यास्नुषातातस्यवाकथम् ॥१५॥ अथवामोचयाम्येतांतन्वीं वेत्स्यामितत्पुनः ॥ क्षत्रियैर्धार्य्यतेशस्त्रमार्त्तानांत्राणकारणात् ॥१६॥ ततःक्रुद्धोऽब्रवीद्वीरोदानवंतंसुदुर्मतिम् ॥ जीवन्गच्छविमुच्यैनामन्यथानभविष्यसि ॥१७॥ ततःसतांविहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्यदानवः॥तमभ्यधावत्सोऽप्येनंशरवर्षैरवाकिरत् ॥१८॥ सवार्य्यमाणोबाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वितः ॥ राजपुत्रायचिक्षेपदण्डंशंकुशतावृतम् ॥१९॥ तमापतन्तंचिच्छेदशरैर्भूपसुतस्ततः ॥ सोऽप्यासन्नंगृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौव्यवस्थितः ॥२०॥ सृजतःशरवर्षाणितंचिक्षेपततोद्रुमम् ॥ सचतंतिलशश्चक्रेभल्लैःकार्मुकमोचितैः ॥२१॥ ततश्चिक्षेपचशिलांराजपुत्रायदानवः ॥ सापिमोघापपातोर्व्यामुज्झितातेनलाघवात् ॥ २२ ॥ राजपुत्रायकुपितोयद्यच्चिक्षेपदानवः ॥ तत्तच्चिच्छेदबाणौघैर्भूभृत्सूनुःसलीलया ॥२३॥

दौडा, तब उन्होंने भी बाणोंकी वर्षा करके उसको आच्छन्न कर डाला ॥ १८ ॥ दानवने राजपुत्रके बाणोंको निवारण करके अत्यन्त अहंकार सहित राजपुत्रके ऊपर (सैकडों कीलोंसे व्याप्त) दण्ड चलाया ॥ १९ ॥ किन्तु राजपुत्रने अधबीचमें ही उसको बाणोंसे काटडाला, तब दानव समीपका एक बड़ा भारी वृक्ष हाथमें लेकर युद्धस्थलमें उपस्थित हुआ ॥ २० ॥ और बाणोंकी वर्षा करतेहुए उसे राजपुत्रके ऊपर चलाया. किन्तु राजपुत्रने उसको भी धनुषसे छुटेहुए भाले समूह द्वारा तिल तिल परिमाण खण्डित किया ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त दानव राजपुत्रके ऊपर शिला चलाने लगा और वह लघुहस्तसे उसको भी व्यर्थ करके पृथ्वीतलमें गिराने लगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार दानवने क्रोधपूर्वक राजपुत्रके ऊपर जो कुछ चलाया उन्होंनेभी बाणोंके द्वारा उन सबको

सहजमें ही काटडाला ॥ २३ ॥ इस प्रकार दण्ड और संपूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके कटजानेपर दानव क्रोधितचित्तसे घूँसा उठाकर राजपुत्रकी ओर दौडा ॥ २४ ॥ किन्तु उसके आते आतेही करन्धमकुमारने उसीसमय वेतसपत्र बाणद्वारा उसका मस्तक काटकर भूमिमें गिरादिया ॥ २५ ॥ दुराचारी दानवके इसप्रकार मरनेपर देवता करन्धमपुत्रको "साधु साधु" कहनेलगे ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त "वर मागो" देवताओं के इसप्रकार आज्ञा देनेपर राजपुत्रने पिताका प्रियकार्य साधनके अर्थ महावीर पुत्रकी प्रार्थना करी ॥ २७ ॥ देवता बोले हेपापरहित ! तुमने जिसको छुडाया है इस कन्याके गर्भसेही तुम्हारे बलवान् चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २८ ॥

ततोविच्छिन्नदंडौसाविच्छिन्नसकलायुधः ॥ मुष्टिमुद्यम्यसक्रोधोराजपुत्रमधावत ॥२४॥ तस्यापततएवासौकरन्धमसुतःशिरः ॥ छित्त्वावेतसपत्रेणपातयामास वैभुवि ॥२५॥ तस्मिन्विनिहतेदेवैर्दानवेदुष्टचेष्टिते ॥ करन्धमसुतः सर्वैःसाधुसाध्वितिभाषितः ॥२६॥ वरंवृणीष्वेतितदादेवैरुक्तोनृपात्मजः ॥ वव्रेपुत्रंमहावीर्यंपितुःप्रियचिकीर्षया ॥ २७ ॥ देवाऊचुः ॥ भविष्यतिहितेपुत्रश्चक्रवर्त्तीमहाबलः ॥ अस्यामेवहिकन्यायांमोक्षितायांत्वयानघ ॥२८॥ राजपुत्र उवाच ॥ पित्राहंसत्यपाशेनबद्धइच्छाम्यहंसुतम् ॥ राजभिर्निर्जितेनाजौत्यक्तोमेदारसंग्रहः ॥ २९ ॥ साचमेयावतात्यक्ताविशालनृपतेःसुता ॥ तयाचमत्कृतेत्यक्तो मामृतेनरसङ्गमः ॥ ३० ॥ तत्कथंतामपास्याद्यविशालतनयामहम् ॥ नृशंसात्माकरिष्यामिअन्यनारीपरिग्रहम् ॥ ३१ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥ इयमेवहि तेभार्य्याश्लाघ्यतेयात्वयासदा ॥ विशालस्यसुतासुभ्रूस्त्वत्कृतेयाऽऽश्रितातपः ॥ ३२ ॥ अस्यामुत्पत्स्यतेवीरःसप्तद्वीपप्रसाधकः ॥ यष्टायज्ञसहस्राणां चक्रवर्त्तीसुतस्तव ॥ ३३ ॥

राजपुत्रने कहा—मैं पिताके निकट सत्यपाशमें बँधकरही पुत्रकी इच्छा करता हूं नहीं तो युद्धस्थलमें राजाओंसे हारकर स्त्रीग्रहण करनेकी इच्छा त्यागदी थी ॥ २९ ॥ मेरे विशालराजाकी कन्याको परित्याग करनेपर उस कन्यानेभी तबसे मेरेही कारण मेरे अतिरिक्त दूसरे पुरुषसे संगमकी इच्छा परित्याग करी है ॥ ३० ॥ आज उस विशालकन्याको छोडकर किसप्रकार नृशंसके समान अन्य नारी ग्रहण करूं ? ॥ ३१ ॥ देवता बोले—जिसकी तुम सदा प्रशंसा करते हो, यह तुम्हारी वही भार्या है । इस सुन्दरी विशालकन्यानेही तुम्हारे लिये तपस्या अवलम्बन करी है ॥ ३२ ॥ इसके गर्भसे तुम्हारे सप्तद्वीपप्रशासक, सहस्र सहस्र यज्ञकर्त्ता चक्रवर्ती वीर पुत्र

जन्मग्रहण करेगा ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विज ! देवता करन्धमपुत्रसे यह बात कहकर अन्तर्धान होगये ! तब राजपुत्रने पत्नीसे पूछा—हे भीरु ! किस प्रकार यह घटना उपस्थित हुई सो कहो ॥ ३४॥ कन्या उनसे कहनेलगी 'जब आप मुझे छोडकर चलेगये,तब मैं अत्यन्त दुःखी हो बांधवोंको त्यागकर इस वन में चलीआई ॥ ३५ ॥ हे वीर ! यहां तपस्यासे देह अत्यन्त क्षीण होनेपर मैंने एक दिन देहत्याग करनेकी इच्छा करी, उसी समय एक देवदूतने आनकर मुझको निवारण किया॥ ३६॥ उसने कहा "तुम्हारे महाबलवान् चक्रवर्त्ती पुत्र होगा। वह पुत्र असुरोंको हनन करेगा और देवताओंकी प्रीति संपादन करेगा । अतएव देवताओंकी आज्ञासे तुम प्राणत्याग मत करो " ॥ ३७ ॥ इसप्रकार निवारित होकर मैं भी उस काल आपके संग मिलनेकी आशासे जीवन त्याग नहीं करसकी ॥

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युच्चार्य्ययुर्देवाःकरन्धमसुतंद्विज ॥ सोऽप्याहतांतदापत्नींकथ्यतांभीरुकिंत्विदम् ॥ ३४ ॥ साचास्मैकथयामासत्यक्ताहंभवतायदा ॥ त्यक्तबन्धुजनाऽरण्यंनिर्वेदात्समुपागता ॥ ३५ ॥ अत्राहंतपसावीरक्षीणप्रायंकलेवरम् ॥ त्यक्तुकामासमभ्येत्यदेवदूतेनवारिता ॥ ३६ ॥ भविष्यतिचपुत्रस्तेचक्रवर्त्तीमहाबलः ॥ प्रीणयिष्यतियोदेवानसुरांश्चहनिष्यति ॥ ३७ ॥ इतिदेवाज्ञयातेनदेवदूतेनवारिता ॥ नसंत्यक्तवतीदेहंत्वत्सङ्गममनारथा ॥३८॥ परश्वश्वमहाभागस्नातुंगङ्गाह्रदंगता ॥ अवतीर्णाविकृष्टास्मिवृद्धनागेनकेनचित् ॥३९॥ ततोरसातलंनीतातेनतत्रचमेपुरः ॥ नागाःसहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यःकुमारकाः ॥ ४० ॥ तुष्टुवुर्मांसमभ्येत्यमामन्येऽपूजयंस्तथा ॥ ययाचिरेसविनयंनागामामङ्गनास्तथा ॥४१॥ प्रसादंकुरुसर्वेषांत्वमस्माकंसुतस्त्वया ॥ अपराधमुपेतानांसंनिवार्य्योवधोन्मुखः ॥४२॥ अपराधंकरिष्यन्तित्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ॥ तन्निमित्तंनिवार्योऽसौप्रसादःक्रियतामिति ॥४३॥ तथेतिचमयाप्रोक्तेदिव्यैःपातालभूषणैः ॥ भूषिताहंतथापुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः ॥ ४४ ॥

॥ ३८ ॥ परसोंके दिन मैं गंगाह्रदमें जाकर वहां स्नान करनेको उतरी थी, उसी समय कोई बूढा नाग मुझको खैंचकर रसातलमें लेगया ॥ ३९ ॥ जब मैं रसातलमें पहुँची तो वहां सहस्र सहस्र नाग, नागपत्नी और कुमार गण मेरे सन्मुख स्थित हो ॥४०॥ कोई पूजा और कोई स्तुति करनेलगा। इसके पीछे नाग और नागपत्नियोंने विनयसहित मुझसे प्रार्थना करी ॥ ४१ ॥ "आप हम सबके ऊपर अनुग्रह कीजिये ! तुम्हारे पुत्रके निकट यदि हम अपराधी हों और वह हमको वध करनेका उद्योग करे तो तुम उनको निवारण करना ॥ ४२ ॥ अनिलाशन अर्थात् वायुभोजी नागगण जब तुम्हारे पुत्रका अपराध करैं तो तुम इस निमित्त उनको निवारण करो अनुग्रहपूर्वक यह बात अंगीकार कीजिये" ॥ ४३ ॥ जब मैंने "यही हो" कहकर स्वीकार किया तब दिव्य पातालभूषण, मनोहर, गंध

वस्त्र और पुष्पादि द्वारा मुझको भूषित करके ॥ ४४ ॥ सर्पगण पृथ्वीमें रखगये तब मैं पूर्वके समान कान्तिमती और रूपवती होगई ॥ ४५ ॥ मुझको इसप्रकार सब गहनोंसे विभूषित रूपवती देखकर दुर्मति दृढकेशने हरणकी इच्छासे मुझको पकडा था ॥ ४६ ॥ हे राजपुत्र ! मैंने आपकेही बाहुबलसे इससमय छुटकारा पाया है अतएव हे महाबाहो ! अनुग्रहकरके मुझको ग्रहण कीजिये । मैं सत्यही कहतीहूं कि, पृथ्वीतलमें आपके समान गुणशाली अन्य-राजपुत्र नहीं है ॥ ४७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरिते भाषाटीकायां त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-राजकुमार अवीक्षितने कुमारीके इसप्रकार वचन सुनकर किमिच्छक व्रतके समय पिताके निकट प्रतिज्ञा करनेपर महाराज करन्धमने जोकहा था वह पिताका वचन स्मरण किया ॥ १ ॥ अपनेही लिये कन्याको

समानीतातथालोकमिमन्तेनानिलाशिना ॥ पुरायथाकान्तिमतीपूर्ववद्रूपशालिनी ॥ ४५ ॥ इतिरूपवतींदृष्ट्वासर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ जग्राहदृढकेशोऽयंहर्तुकामः सुदुर्मतिः ॥ ४६ ॥ युष्मद्बाहुबलेनाहंराजपुत्रविमोक्षिता ॥ तत्प्रसीदमहाबाहोमाप्रतीच्छत्वयासमः ॥ भूलोकेराजपुत्रोऽन्योना स्तिसत्यंब्रवीम्यहम् ॥ ४७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिचरितंनामत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥ मार्कंडेयउवाच ॥ इतितस्यावचः श्रुत्वास्मृत्वापितृवचःशुभम् ॥ किमिच्छकेप्रतिज्ञातेयदुक्तंतेनभूभृता ॥ १ ॥ प्रत्युवाचसतांकन्यामविक्षिन्नृपतेःसुतः ॥ सानुरागमनाःकन्यांत्यक्तभोगाभ्रत त्कृते ॥ २ ॥ यदाहंत्यक्तवांस्तन्वींत्वामरातिपराजितः ॥ विजित्यशत्रून्संप्राप्तात्वंमयात्रकरोमिकिम् ॥ ३ ॥ ॥ कन्योवाच ॥ ॥ ममपा णिंगृहाणत्वंरमणीयेऽत्रकानने ॥ सकामायाःसकामेनसङ्गमोगुणवान्भवेत् ॥ ४ ॥ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ ॥ एवंभवतुभद्रन्तेविधिरेवात्रकारणम् ॥ अन्यथाकथमन्यत्रत्वामहञ्चसमागतः ॥५॥ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोगन्धर्वतनयोमुने ॥ वराप्सरोभिःसहितोगन्धर्वैरपरैर्वृतः ॥ ६ ॥ ॥ गन्धर्व उवाच ॥ ॥ राजपुत्रसुतेयम्मेभामिनीनाममानिनी ॥ अभिशापादगस्त्यस्यविशालतनयाऽभवत् ॥ ७ ॥

भोगकी इच्छा त्यागकिये देखकर तब सानुरागचित्तसे नृपनन्दन अवीक्षितने उसको उत्तर दिया ॥ २ ॥ हे कृशाङ्गी ! मैंने शत्रुओंसे हारकरही तुम्हें त्याग दिया था, और अब शत्रुको जीतकरही फिर तुमको प्राप्त हुआहूं इससमय मुझको क्या करना चाहिये ? ॥ ३ ॥ कन्या बोली-इस रमणीय वनमेंही आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये तो सकामा कामिनीका सकाम पुरुषके सहित संगम गुणवान् होगा अर्थात् सुखशान्ति विधान करेगा ॥ ४ ॥ राजपुत्रने कहा-यही हो तुम्हारा मंगल हो । दैवही इस विषयमें कारण है, नहीं तो तुम और मैं पृथक् २ स्थानमें रहकरभी आज किस प्रकार एकत्रित हुए ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे मुने ! उसी समयमें तनय नामक गंधर्व अनेक गंधर्व और अप्सराओंके सहित वहां उपस्थित हुआ ॥ ६ ॥ गन्धर्वने कहा-हे राजपुत्र ! यह मानिनी मेरीही

कन्या है । भामिनी इसका नाम है । अगस्त्यजीके शापसे ही यह कन्या राजा विशालकी पुत्री हुई है ॥ ७ ॥ एक समय भामिनीने क्रीडा करते करते बाल्य स्वभावसे महर्षि अगस्त्यजीको कोप उत्पन्न कराया था इस कारण अगस्त्यजीने उससमय "तू मानुषी होगी" यह कहकर शाप दिया ॥ ८ ॥ हे विप्रर्षे ! यह कन्या अबोध बालिका है इसीसे आपका अपराध किया है अतएव इसका अपराध ग्रहण न करके अनुग्रह प्रकाशे कीजिये ॥ ९ ॥ मैंने उस समय इसप्रकार कह उनको प्रसन्न किया । तब महामुनि अगस्त्यजीने मेरी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर कहा—'बालिका जानकरही इसको सामान्य शाप दिया है किन्तु यह अन्यथा होनेवाला नहीं है' ॥ १० ॥ मेरी कन्या कल्याणी सुभ्रू भामिनीने अगस्त्यजीके इस शापसेही विशालके घर जन्मग्रहण कियाहै ॥ ११ ॥ मैं इसीके लिये यहा आयाहूं, अब राजकन्या इस मेरी कन्याको ग्रहण करो । इसके गर्भसे तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—

बालभावेनयोऽगस्त्यःकोपितःक्रीडमानया ॥ ततस्तेनतदाशप्तामानुषीत्वंभविष्यसि ॥ ८ ॥ प्रसादितःसचास्माभिर्बालेयमविवेकिनी ॥ तवापराद्धा विप्रर्षेप्रसादःक्रियतामिति ॥ ९ ॥ प्रसाद्यमानःसोऽस्माभिरिदमाहमहामुनिः ॥ बालेतिमत्वाशापोऽल्पोदत्तोऽस्यानान्यथैवतत् ॥ १० ॥ इतिशापादग स्त्यस्यविशालभवनेशुभा ॥ जातेयंमत्सुतासुभ्रूर्भामिनीनामनामतः ॥ ११ ॥ तदस्याहंकृतेप्राप्तोगृहाणेमांनृपात्मजाम् ॥ ममात्मजांसुतस्ते ऽत्रचक्रवर्तीभविष्यति ॥ १२ ॥ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ ॥ तथेत्युक्तेतितस्याश्चसपाणिंपार्थिवात्मजः ॥ जग्राहविधिवद्धोमंचक्रेतत्रचतुम्बुरुः ॥ १३ ॥ प्रजगुर्देवगन्धर्वाननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ पुष्पाणिससृजुर्मेघादेववाद्यानिसस्वनुः ॥ १४ ॥ विवाहेराजपुत्रस्यतयातत्रसमेयुषः ॥ समस्तवसुधात्राणकर्तृकार णभूतया ॥ १५ ॥ ततोगन्धर्वलोकन्तेसहतेनमहात्मना ॥ निःशेषेणययुःसाचसचराजसुतोमुने ॥ १६ ॥ भामिन्यामुमुदेसार्द्धमविक्षिन्नृपनन्दनः ॥ साचतेनसमंतत्रभोगसम्पत्समन्विता ॥ १७ ॥ कदाचिदतिरम्येऽसौगगनोपवनेतया ॥ विक्रीडतिसमंतन्व्याकदाचिदुपपर्वते ॥ १८ ॥

गंधर्वका वचन राजपुत्रने 'तथास्तु' कहकर स्वीकारपूर्वक उस कन्याका पाणिग्रहण किया और गंधर्वोंके पुरोहित तुम्बुरुने यथाविधि होमकार्य संपादन किया ॥ ॥ १३ ॥ तिसकाल देवता गंधर्वोंने संगीत और अप्सराओंने नाचना आरंभ किया । मेघोंने पुष्पोंकी वर्षा करी और देवताओंके बाजे बजने लगे ॥ १४ ॥ हे मुने । अनन्तर संपूर्ण पृथ्वीमण्डलके पालनकर्त्ताओंकी कारण स्वरूप (जननी) इस कुमारीके संग राजपुत्रके विवाहकालमें ॥ १५ ॥ आयेहुए सब गंधर्व उस महा त्मा तुनयके सहित गंधर्व लोकमें चलेगये और वह राजकन्या तथा राजपुत्रभी उन्हींके संग गये ॥ १६ ॥ वहां नृपनंदन अवीक्षित भामिनीके सहवाससे जिस प्रकार आनन्दित हुए, भोगसम्पत्शालिनी भामिनीभी अवीक्षितके सहवाससे उसी प्रकार संतोषको प्राप्त हुई ॥ १७ ॥ वह वहां उस कृशाङ्गीके सहित कभी अत्यन्त

मनोहर नगरके उपवनमें और कभी उपपर्वतोंमें क्रीडा करने लगे ॥ १८ ॥ कभी हंस सारस शोभित नदीके पुलिनमें, कभी मन्दिरोंमें मनोहर ऊंचे महलोंपर ॥ ॥ १९ ॥ और कभी अन्यान्य रमणीय विहार प्रदेशमें तन्वीके संग राजपुत्र और महानुभव राजपुत्रके संग भामिनी, इस प्रकार वह परस्पर दिनरात रमण करनेलगे ॥ २० ॥ मुनि, गंधर्व और किन्नरगण उनको उत्तम उत्तम भक्ष्य पानीय, वस्त्र, माल्य और अनुलेपनइत्यादि उपहार प्रदान करने लगे ॥ २१ ॥ उस दुर्लभ गंधर्वलोकमें भामिनीके संग महावीर राजकुमारके इस प्रकार विहार करनेपर कालक्रमसे कल्याणीने एक पुत्र प्रसव किया ॥ २२ ॥ हे मनुजव्याघ्र ! महावीर्यशाली इस पुत्रके उत्पन्न होनेपर उसके द्वारा भविष्यत् प्रयोजन सिद्ध होनेकी आशासे गंधर्वों में महाउत्सव उपस्थित हुआ था ॥ २३ ॥ उनमें कोई गान करनेलगा तथा कोई

कदाचित्पुलिनेनद्याहंससारसशोभिते ॥ कदाचिद्भवनस्यान्तेप्रासादेचातिशोभने॥१९॥विहारदेशेष्वन्येषुरमणीयेष्वहर्निशम् ॥ सरेमेसहितस्तन्व्यासाचतेनम हात्मना ॥ २० ॥ भक्ष्यानुलेपनंवस्त्रंस्रक्पानादिकमुत्तमम् ॥ उपाजह्रुस्तयोस्तत्रमुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥ २१ ॥ तथाचरमतस्तस्यभामिन्यासहदुर्लभे ॥ गन्धर्वलोकेवीरस्यपुत्रंसासुषुवेशुभा ॥ २२ ॥ तस्मिञ्जातेमहावीर्येगन्धर्वाणांमहोत्सवः ॥ बभूवमनुजव्याघ्रतेनकार्य्यमवेक्षताम् ॥ २३ ॥ जगुःकेचि त्तथैवान्येमृदङ्गपटहानकान् ॥ अवादयन्तचैवान्येवेणुवीणादिकांस्तथा ॥ २४ ॥ ननृतुश्चतथातत्रबहवोऽप्सरसांगणाः ॥ पुष्पवृष्टिमुचोमेघाजगर्जुर्मृदुनि स्वनाः ॥ २५ ॥ तथाकोलाहलेतस्मिन्वर्तमानेऽथतुम्बुरुः ॥ प्रणयेनस्मृतोभ्येत्यजातकर्माकरोन्मुनिः ॥ २६ ॥ देवाःसमाययुःसर्वेतथादेवर्षयोऽमलाः ॥ पातालात्पन्नगेन्द्राश्चशेषवासुकितक्षकाः ॥ २७ ॥ तथादेवासुराणांचयेप्रधानाद्विजोत्तम ॥ यक्षाणांगुह्यकानांचवायवश्चतथाऽखिलाः ॥२८ ॥ तदाऽऽगतैरशे षर्षिदेवदानवपन्नगैः ॥ मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्वाणांमहत्पुरम् ॥ २९ ॥

मृदंग पटह (बाजे) आनक ढोलादि और कोई वेणु वीणादि बजानेलगा ॥ २४ ॥ उस काल अप्सरायें नाचने लगीं और संपूर्ण मेघ फूलोंकी वर्षा करते करते मृदु मन्द शब्दसे गर्जने लगे ॥ २५ ॥ हे मुने ! इस प्रकार पूर्ण कोलाहलकी अवस्थामें तुनयके स्मरण करतेही तुम्बुरुने वहां आनकर जातकर्म संपादन किया ॥ २६ ॥ हे द्विजोत्तम ! क्रमानुसार संपूर्ण देवता, निष्पाप देवर्षिगण, पातालसे शेष, वासुकि, तक्षक इत्यादि पन्नग ॥ २७ ॥ राजगण, देव, असुर, यक्ष और गुह्यकोंमें प्रधान प्रधान व्यक्तिगण और समस्त वायुकुल आनकर उपस्थित हुआ ॥ २८ ॥ उसकाल आयेहुए संपूर्ण ऋषि, देव, दानव, पन्नग और मुनियों से गंधर्वोंका महानगर व्याप्त ॥

होगया ॥ २९ ॥ तदनन्तर जातकर्मादि कार्यसंपादनके पीछे उन तुम्बुरुने स्तुतिपूर्वक इस प्रकार बालकका स्वस्त्ययन किया ॥ ३० ॥ हे वीर ! तुम महाबल, महा वीर्य और महाबाहु सार्वभौम होकर बहुत कालतक संपूर्ण पृथ्वीका आधिपत्य करो ॥ ३१ ॥ यह समस्त इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मंगलसाधक और शत्रुविनाशक वीर्य विधान करैं ॥ ३२ ॥ पूर्वदिशासे बहतीहुई धूलि रहित मरुत् (वायु) तुम्हारा मंगल विधान करै । अक्षीण विमल दक्षिणका पवन तुम्हारे ऊपर अनुकूलतामें स्थितहो ॥ ३३ ॥ और पश्चिमका मरुत् तुमको महावीर्य और उत्तरका पवन तुमको उत्कृष्ट बल प्रदान करै ॥ ३४ ॥ इस प्रकार स्वस्त्ययन कार्य के समाप्त होनेपर आकाशवाणी हुई कि " गुरुने वारंवार 'मरुत्' इस प्रकार उच्चारण किया है, ॥ ३५ ॥ इस कारण यह बालक 'मरुत्त' नामसे भूमण्डलमें

ततःसतुम्बुरुःकृत्वाजातकर्मादिकाःक्रियाः ॥ चक्रेस्वस्त्ययनंतस्यबालस्यस्तुतिपूर्वकम् ॥ ३० ॥ चक्रवर्त्तीमहावीर्य्योमहाबाहुर्महाबलः ॥ महान्तं कालमीशित्वमशेषायाःक्षितेःकुरु ॥ ३१ ॥ इमेशक्रादयःसर्वेलोकपालास्तथर्षयः ॥ स्वस्तिकुर्वन्तुतेवीरवीर्यंचारिविनाशनम् ॥ ३२ ॥ मरुत्तवशि वायास्तुवातिपूर्वेणयोऽरजाः ॥ मरुत्तेविमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तुदक्षिणः ॥ ३३ ॥ पश्चिमस्तेमरुद्वीर्य्यमुत्तमंतेप्रयच्छतु ॥ बलंयच्छतुचोत्कृष्टंमरुत्ते चतथोत्तरः ॥ ३४ ॥ इतिस्वस्त्ययनस्यान्तेवागुवाचाशरीरिणी ॥ मरुत्तवेतिबहुशोयदिदंगुरुरब्रवीत् ॥ ३५ ॥ मरुत्तइतितेनायंभुविख्यातोभविष्यति ॥ भुविचास्यमहीपालायास्यन्त्याज्ञावशायतः ॥३६॥ एषसर्वक्षितीशानांवीरःस्थास्यतिमूर्द्धनि ॥ चक्रवर्त्तीमहावीर्य्यःसप्तद्वीपवतींमहीम् ॥ ३७ ॥ आक्रम्यपृ थिवीपालानयंभोक्ष्यत्यवारितः ॥ प्रधानःपृथिवीशानांभविष्यत्यषयाज्वनाम् ॥ आधिक्यंशौर्य्यवीर्य्येणभविष्यत्यस्यराजसु ॥३८॥ ॥मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचःसर्वेकेनाप्युक्तंदिवौकसाम् ॥ तुतुषुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्यमातातथापिता ॥३९॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितेऽविक्षितो मरुत्तपुत्रोत्पत्ति वर्णनंनामचतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२४॥ ॥मार्कण्डेयउवाच॥ ॥ततःसराजपुत्रस्तमादायदयितंसुतम्॥पत्नीश्चानुगतोविप्रगन्धर्वैराययौपुरम् ॥१॥

विख्यात होगा और संपूर्ण महीपाल इसके आज्ञावर्त्ती होंगे ! ॥ ३६ ॥ अतएव यह बालक सब राजाओंका शीर्षस्थानीय होगा और महावीर्य चक्रवर्त्ती होकर सदा पृथ्वीपालगणोंपर आक्रमण करके इस सप्तद्वीपवती पृथ्वीको भोग करेगा । यह बालक पृथ्वीश्वरोंमें और यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ होगा और सब राजाओंकी अपेक्षा शौर्य वीर्यमें अधिकता लाभ करेगा " ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले—किसी देवताके उच्चारित यह वचन (देववाणी) सुनकर संपूर्ण विप्र, गंधर्व और बालकके माता पिता परमसंतोषको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षितचरिते भाषाटीकायां चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ मार्कण्डे यजी बोले—हे विप्र ! इसके उपरान्त राजपुत्र प्रियपुत्रको लेकर स्त्रीसहित अपने नगरमें आये ! आनेके समय गन्धर्वोंने पैदलही उनका अनुगमन कियाथा ॥ १ ॥

उन्होंने पिताके भवनमें पहुँचकर भक्तिसहित पिताके चरणोंकी वंदना करी और फिर कृशाङ्गी राजकन्याने भी लज्जितभावसे मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ २ ॥ तदनन्तर राजपुत्रने बालक पुत्रको ग्रहण करके राजाओंके मध्य धर्मासनमें बैठेहुए पिता करन्धमसे कहा॥ ३॥ "मैंने पूर्वमें जननीके कारण किमिच्छकव्रतके समय आपसे जो प्रतिज्ञा करी थी, यह उसी पौत्रको गोदीमें लेकर पौत्रमुख देखिये" ॥ ४ ॥ यह कहकर पिताकी गोदीमें पुत्रको दे उनसे यथावत् सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥५ ॥ राजा आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे पौत्रको आलिंगन करके "सौभाग्यवान् हुआहूं" इस प्रकार कहतेहुए वारंवार अपनी प्रशंसा करने लगे ॥ ६ ॥ इसके पीछे हर्षके कारण अन्यान्य कार्य भूलकर आयेहुए गंधर्वोंका अर्घ्यादिके द्वारा सन्मान किया ॥ ७ ॥ हे महामुने! उस समय नगरमें समस्त पौर

सापितुर्भवनंप्राप्यववन्देपितुरादरात् ॥ चरणौसाचतन्वङ्गीह्रीमतीनृपतेः सुता ॥ २ ॥ तथाहराजपुत्रोऽसौगृहीत्वाबालकंसुतम् ॥ धर्मासनगतंभूपंराज्ञांमध्ये करन्धमम् ॥ ३ ॥ मुखंपौत्रस्यपश्यैतदुत्सङ्गस्थस्ययन्मया ॥ किमिच्छकेप्रतिज्ञातंतुभ्यंमातुःकृतेपुरा ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वापितुरुत्सङ्गेतंकृत्वातनयंततः ॥ यथावृत्तमशेषंसकथयामासतस्यतत् ॥ ५ ॥ सपरिष्वज्यतंपौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः ॥ सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानंप्रशशंसपुनःपुनः ॥ ६ ॥ ततःसोर्घ्यादिनासम्यग्गन्धर्वान्समुपागतान् ॥ संमानयामाससुदाविस्मृतान्यप्रयोजनः ॥७॥ ततःपुरेमहानासीदानन्दःपौरवेश्मसु ॥ अस्माकंसन्ततिर्जातानाथस्येतिमहामुने ॥ ८॥ हृष्टपुष्टेपुरेतस्मिन्गीतवाद्यैर्वराङ्गनाः ॥ विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्योननृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥ राजाचद्विजमुख्येभ्योरत्नानिचवसूनिच ॥ गावोवस्त्राण्यलङ्कारानददाद्धृष्टमानसः ॥ १० ॥ ततःसबालोववृधेशुक्लपक्षेयथाशशी ॥ पितॄणांप्रीतिजनकोजनस्येष्टश्चसोऽभवत् ॥ ११ ॥ आचार्य्याणांसकाशात्सप्राग्वेदाञ्जगृहेमुने ॥ ततःशास्त्राण्यशेषाणिधनुर्वेदंततःपरम् ॥ १२ ॥ कृतोद्योगोयदासोऽभूत्खड्गकार्मुककर्मणि ॥ अन्येषुचतथावीरःशस्त्रेषुविजितश्रमः ॥ १३ ॥

जनोंके घर "हमारे रक्षा–कर्त्ता राजाके सन्तान हुई है" यह कहकर महान् आनन्द उत्सव होने लगा ॥ ८ ॥ उस आनंदपूर्ण पुरके विशाल आंगनोंमें सुन्दरी विलासिनीगण गीत वाद्य सहित उत्तम नृत्य करने लगीं ॥ ९ ॥ राजा हर्षित चित्तसे गुणशाली ब्राह्मणोंको धन, रत्न, वस्त्र, गहने और गायें दान करने लगे ॥ १० ॥ तदनन्तर वह बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढकर पिताको प्रीतिप्रद और साधारण मनुष्योंका प्रियतम होगया ॥ ११ ॥ हे मुने! उस बालकने यथाकालमें आचार्यके निकटसे प्रथम वेद फिर अन्यान्य सब शास्त्र और इसके पीछे धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करी ॥ १२ ॥ अन्तमें वह वीरबालक

जब शास्त्रोंमें श्रम करचुका तब खड्ग, धनुष और अन्यान्यशस्त्रकी प्रयोगशिक्षामें उद्योगी हुआ ॥ १३ ॥ हे विप्र ! तब उसने विनयसे नम्र ओर गुरु को प्रीतिपरायण होकर भृगुवंशीय भार्गवके निकटसे संपूर्ण अस्त्रग्रहण किये॥ १४ ॥ इसी प्रकार वह अस्त्रग्रहण कर धनुर्वेदका पारगामी हो कृतकार्य हुआ धनुर्विद्यामें पारग तथा और भी सब विद्यामें पारदर्शी होगया । उस काल इसकी अपेक्षा इन सब विषयोंमें और कोई श्रेष्ठ नहीं था ॥ १५ ॥ अपनी कन्याकी समस्त वार्त्ता जानकर और दौहित्रकी योग्यता उपलब्धकरके विशालराजाका भी चित्त हर्षसे परिपूर्ण होगया ॥ १६ ॥ पौत्रमुख देखनेसे प्राप्त मनोरथ, शत्रु-विजयी और बलबुद्धिमान् राजा करन्धमने अनेकानेक यज्ञ संपादन कर अर्थियोंको बहुतसे दान ॥ १७ ॥ और सब भाँति सत्कार्य हो बलबुद्धिपूर्वक यथाधर्म

ततोऽस्त्राणिसजग्राहभार्गवाद्भृगुसंभवात् ॥ विनयावनतोविप्रगुरोःप्रीतिपरायणः ॥ १४ ॥ गृहीतास्त्रःकृतीवेदेधनुर्वेदस्यपारगः ॥ निष्णातः सर्वविद्यासुनत्रभूवततःपरः ॥ १५ ॥ विशालोऽपिसुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम् ॥ हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्यचयोग्यताम् ॥ १६ ॥ अथराजासुतसुतं दृष्ट्वाप्राप्तमनोरथः॥यज्ञाननेकान्निष्पाद्यदत्त्वादानानिचार्थिनाम् ॥१७॥ कृतशेषक्रियोयुक्तःसवर्णैर्धर्मतोमहीम्॥परिपाल्यारिविजयीबलबुद्धिसमन्वितः ॥१८॥ सयियासुर्वनंपुत्रमविक्षितमभाषत ॥ पुत्रवृद्धोऽस्मिगच्छामिवनंराज्यंगृहाणमे॥ १९ ॥ कृतकृत्योऽस्मिनास्त्यन्यत्किञ्चित्त्वदभिषेचनात्॥सुनिष्पन्नमतोराज्यं त्वंगृहाणमयार्पितम् ॥ २० ॥ इत्युक्तःपितरंप्राहसोऽविक्षिन्नृपनन्दनः ॥ प्रश्रयावनतोभूत्वायियासुस्तपसेवनम् ॥२१॥ नाहंतातकरिष्यामिपृथिव्याःपरिपालनम् ॥ नापैतिव्रीडामेमनसिराज्येऽन्यंत्वंनियोजय ॥ २२ ॥ तातेनमोक्षितोबद्धोनस्ववीर्य्याद्दहंयतः ॥ ततःकियत्पौरुषंमेपुरुषैःपाल्यतेमहीम् ॥ २३ ॥ योऽहंनपालनायालमात्मनोऽपिवसुन्धराम् ॥ सकथंपालयिष्यामिराज्यमन्यत्रविक्षिप ॥ २४ ॥

पृथ्वीपालन करते हुए ॥ १८ ॥ कुछ काल पीछे वन जानेकी इच्छा करके पुत्र अवीक्षितसे कहा "हे पुत्र ! मैं बूढा होगया हूं अब वनमें जानेकी अभिलाषा करताहूं तुम मुझसे यह राज्य ग्रहण करो॥ १९ ॥ मैं समस्त विषयोंमेंही कृतार्थ होगयाहूं, अब तुम्हारे अभिषेकके अतिरिक्त ओर कुछ शेष नहीं है, अतएव तुम यह मेरा दिया सब भाँति सम्पन्न राज्य ग्रहण करो " ॥ २० ॥ नृपनन्दन अवीक्षितने पिताका वचन सुन, उन्होंने भी वन जानेकी इच्छाकर विनयसहित पितासे कहा ॥ २१ ॥ हे पिता ! मैं पृथ्वीपालन नहीं करूंगा, अबतक मेरी यह लज्जा दूर नहीं हुई है, अतएव आप अन्य किसीको राज्यमें नियोजित कीजिये ॥ २२ ॥ मैं बद्ध होकर पिताके द्वारा छुडाया गयाथा; अपने वीर्यसे नहीं छूटसका; सुतरां मेरा पौरुष कितनाहै ? पुरुषही पृथ्वीपालन करते हैं ॥ २३ ॥ मैं जब आत्मा अर्थात् अपनीही

रक्षा करनेमें असमर्थ हूं, ! तो किस प्रकार पृथ्वीपालन करूंगा? इस कारण किसी दूसरके हाथमें राज्यभार सौंपिये ॥ २४ ॥ मंत्रणशील और धर्मशील होकर भी जो पुरुष शत्रुओंसे पराजित होगया है और जो कभी मोहके वशीभूत होने योग्य नहीं है; उस आत्माको जिस पुरुषने आपके (पिताके) यत्नसे बंधनमुक्त किया है वह स्त्रीजातिके समान धर्मवाला मैं किस प्रकार महीपतिहूंगा?॥ २५॥ २६॥ पिताने कहा—हे वीर! पिता पुत्रसे और पुत्र पितासे पृथक् नहीं है, अतएव मेरे द्वारा छूटना परायेद्वारा छूटनेमें नहीं है॥ २७॥ पुत्रने कहा हे नरेश्वर! मैं अब हृदयके वेगको नहीं फिरा सकता आपके द्वारा छूटनेसे मेरे हृदयमें अत्यन्त लज्जा जागरित रहती है ॥ ॥ २८ ॥ जो पुरुष पिताकी उपार्जन की हुई सम्पत्ति भोगता है, विपदमें पिताके द्वारा छुटकारा पाताहै और पिताकेही नामसे परिचित होता है, वंशमें ऐसे

सस्त्रीसधर्मापुरुषोयश्चान्येनावबद्धुह्यते ॥ आत्माऽमोहायभवताबन्धनाद्येनमोक्षितः ॥ २५ ॥ सोऽहंकथंभविष्यामिस्त्रीसधर्मोमहीपतिः ॥ स्त्रियःपुमान्भवेद्भर्तायःशूरःसमहीपतिः ॥ २६ ॥ ॥ पितोवाच ॥ ॥ नभिन्नएवपुत्रस्यपितापुत्रस्तथापितुः ॥ नान्येनमोक्षितोवीरयस्त्वंपित्राविमोक्षितः ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ हृदयंनान्यथानेतुंमयाशक्यंनरेश्वर ॥ २७ ॥ हृदयेह्रीर्ममातीवयस्त्वहंमोक्षितस्त्वया ॥ २८ ॥ पित्रोपात्तांश्रियंभुङ्क्तेपित्राकृच्छ्रात्समुद्धृतः ॥ विज्ञायतेचयःपित्रामानवःसोऽस्तुनोकुले ॥ २९ ॥ स्वयमर्जितवित्तानांख्यातिंस्वयमुपेयुषाम् ॥ स्वयंनिस्तीर्णकृच्छ्राणांयागतिःसाऽस्तुमेगतिः ॥ ३० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्याहबहुशःपित्रायदाप्युक्तोऽप्यसौमुने ॥ तदातस्यसुतंराज्येमरुत्तमकरोन्नृपः ॥ ३१ ॥ सपित्रासमनुज्ञातंराज्यंप्राप्यपितामहात् ॥ चकारसम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥ ३२ ॥ राजाकरन्धमश्चापिवीरामादायतान्तथा ॥ वनंजगामतपसेयतवाक्कायमानसः ॥ ३३ ॥ तत्रवर्षसहस्रंसतपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ॥ विहायदेहंनृपतिःशक्रस्यापसलोकताम् ॥ ३४ ॥

पुत्रका जन्म न होनाही उत्तम है ॥ २९ ॥ जो स्वयं धन उपार्जित करताहै, स्वयं ख्याति लाभ करता है और स्वयंही दुःखसे छूटसकता है, उसकी जो गति होती है मेरी भी वही गति हो ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले। हेमुने! पिताके वारंवार अनुरोध करनेपर भी जब राजपुत्रने यही उत्तर दिया, तब राजा करन्धमने उनके पुत्र मरुत्त को राज्यमें राजा किया॥ ३१ ॥ मरुत्त पिताका अनुमोदित राज्य पितामहसे प्राप्तकर सुहृद्गणोंका आनन्द सम्पादनपूर्वक सम्यक् प्रकार उसको शासन करनेलगे ॥ ॥ ३२ ॥ काय, मन, वचनसे संयत होकर तपस्या करनेके लिये राजाकरन्धम अपनी पत्नी वीराको संग लेकर वनमें चलेगये ॥ ३३ ॥ वहां राजा करन्धम हजार

वर्ष पर्यन्त कठिन तपस्याकरके देहपरित्यागपूर्वक इन्द्रलोकको प्राप्तहुए ॥ ३४॥ और वह इनकी पत्नी वीरा और भी सौ वर्षपर्यन्त जटा बढायेहुए तप करती रही ॥ ३५ ॥ और स्वर्गमें प्राप्त हुए महात्मा भर्त्ताके सालोक्यकी इच्छा करने लगी और फल मूल आहार करके भार्गवके आश्रममें रहनेलगी द्विजातिप त्नियोंके मध्यमें स्थित हुई उनकी शुश्रूषा और आदरको प्राप्तहुई ॥ ३६ ॥ इति श्रीमार्कंण्डेयपुराणे मरुत्तचरितेभाषाटीकायां पंचविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने करन्धम और अवीक्षितका संपूर्ण चरित्र विस्तार सहित वर्णन किया ॥ १ ॥ अब अवीक्षितके पुत्र महात्मा मरुत्तराजाका चरित्र सुननेकी इच्छा करताहूँ । सुना है कि, वह अत्यन्त उद्यमशील, प्रतिष्ठित ॥ २ ॥ चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, कमनीय, महामति, धर्मवित्, धर्मचारी और सम्यक्

सास्यपत्नीतदावीरावर्षाणामपरंशतम् ॥ तपश्चचारविप्रर्षेजटिलामलपंकिनी ॥ ३५ ॥ सालोक्यमिच्छतीभर्त्तुःस्वर्गतस्यमहात्मनः ॥ फलमूलकृताहाराभार्गवाश्रमसंश्रया ॥ द्विजातिपत्नीमध्यस्थाद्विजशुश्रूषणादृता ॥ ३६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितेपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवन्विस्तरात्सर्वममैतत्कथितंत्वया ॥ करन्धमस्यचरितमविक्षिच्चरितंचयत् ॥ १ ॥ आविक्षितस्यनृपतेर्मरुत्तस्यमहात्मनः ॥ श्रोतुमिच्छामिचरितंश्रूयतेसोऽतेचेष्टितः ॥ २ ॥ चक्रवर्त्तीमहाभागःशूरःकान्तोमहामतिः ॥ धर्मविद्धर्मकृच्चैवसम्यक्पालयिताभुवः ॥ ३ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ सपित्रासमनुज्ञातंराज्यंप्राप्यापितामहात् ॥ धर्मतःपालयामासपितापुत्रानिवौरसान् ॥ ४ ॥ इयाजसुबहून्यज्ञान्यथावत्स्वाप्तदक्षिणान् ॥ ऋत्विक्पुरोहितादेशादनिर्विण्णोमहीपतिः ॥५ ॥ तस्याप्रतिहतंचक्रमासीद्द्वीपेषुसप्तसु ॥ गतिश्चाप्यनवच्छिन्नास्वःपातालजलादिषु ॥ ६ ॥ ततःप्राप्यधनंविप्र यथावत्स्वक्रियापरः ॥ अयजत्समहायज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७॥ इतरेचयथावर्णाःस्वेस्वेकर्मण्यतन्द्रिताः ॥ तदुपात्तधनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाःक्रियाः॥८॥

पृथ्वीपालक थे ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—मरुत्त पिताकी अनुज्ञासे पितामहसे राज्यको प्राप्त हो पिता जिसप्रकार औरसपुत्रका प्रतिपालन करता है. यावतीय प्रजाको वैसेही धर्मानुसार पालन करने लगे ॥ ४ ॥ याज्ञिक और पुरोहितोंकी आज्ञापालनमें मन लगाकर उन महीपतिने महादक्षिणायुक्त यथाविधानसे अनेकानेक यज्ञ संपादन किये थे ॥ ५ ॥ सप्तद्वीपमें उनका रथचक्र अप्रतिहत था और आकाश, पाताल और जलादिके स्थानमें भी उनकी गति नहीं रुकती थी ॥ ६ ॥ हे विप्र ! उन स्वकर्मपरायण मरुत्तने धनको प्राप्त हो संपूर्ण महायज्ञोंके अनुष्ठान द्वारा इन्द्र इत्यादि देवताओंका यजन किया था ॥७॥ अन्यान्य समस्त

वर्णभी अपने अपने कर्ममें तत्पर रहकर उनकेही निकटसे प्राप्त किये धनद्वारा इष्टापूर्त्तादि क्रिया संपादन करते थे ॥ ८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! पृथ्वी महात्मा मरुत्तसे प्रतिपालित होकर देवताओंके सहित भी स्पर्द्धा करती थी ॥ ९ ॥ मरुत्त केवल महीपालोंमेंही प्रधानताको प्राप्त नहीं हुए थे, वरन् सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान करके वह देवराज इन्द्रकी अपेक्षा भी प्रधान हुए थे ॥ १० ॥ हे विप्र ! अंगिराके पुत्र, बृहस्पतिके भ्राता तपोनिधि महात्मा संवर्त्त उनके ऋत्विक् थे ॥ ११ ॥ हे द्विज ! देव-सेवित मुञ्जवान नामक सुवर्णमय एक पर्वत है, ऋत्विक् तपोबलसे उसका शृंग उखाड़कर राजाके लिये लाये थे ॥ १२ ॥ राजाका यज्ञीय समस्त भूभाग और भलीभाँतिसे कांचनमय निर्मल महलासे युक्त इस शृंगके द्वारा तपोबलसे निर्मित हुई थी ॥ १३ ॥ ऋषिगण इन मरुत्तका चरित अवलम्बन करके सदा इस प्रकार गाथा गान और अध्ययन करते थे ॥ १४ ॥ कि "जिनके यज्ञमें समस्त सभा और प्रासाद कांचनमय किये

पाल्यमानामहीतेनमरुत्तेनमहात्मना ॥ योस्पर्द्धेत्रिदशावासवासिभिर्द्विजसत्तम॥९॥तेनातिशयिताःसर्वेकेवलंनमहीक्षितः ॥ यज्विनादेवराजोऽपिशतयज्ञाभिसन्धिना ॥ १० ॥ ऋत्विक्तस्यतुसंवर्त्तोबभूवाङ्गिरसःसुतः ॥ भ्राताबृहस्पतेर्विप्रमहात्मातपसांनिधिः ॥ ११ ॥ सौवर्णोमुञ्जवान्नामपर्वतःसुरसेवितः ॥ पातितंतेनतच्छृङ्गंकृतेतस्यमहीपतेः ॥१२॥ तेनयस्याखिलंयज्ञेभूमिभागादिकंद्विज ॥ प्रासादाश्चकृताःशुभ्रास्तपसासर्वकाञ्चनाः॥१३॥गाथाश्चाप्यत्रगायन्तिमरुत्तचरिताश्रयाः ॥ सातत्येनर्षयःसर्वेकुर्वन्तोऽध्ययनंयथा ॥१४॥ मरुत्तेनसमोनाभूद्यजमानोमहीतले ॥ सदःसमस्तंयद्यज्ञेप्रासादाश्चैवकांचनाः ॥१५॥ अमाद्यदिन्द्रःसोमेनदक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ विप्राणांपरिवेष्टारःशक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ॥१६॥ यथायज्ञेमरुत्तस्यतृप्ताःसर्वेमहीपतेः ॥ सुवर्णमखिलंत्यक्तंरत्नपूर्णगृहेद्विजैः ॥१७॥ प्रासादादिसमस्तंचसौवर्णंतस्ययत्कृतौ॥त्रयोवर्णाह्यलभ्यन्ततस्मात्केचित्तथाददुः ॥१८॥ (तेनत्यक्तेनशिष्टायेजनाःपूर्णमनोरथाः॥ तेपियज्ञान्यजंतेस्मदेशेदेशेपृथक्पृथक् ॥) तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक्पालयतःप्रजाः ॥ तपस्वीकश्चिदभ्येत्यतमाहमुनिसत्तम ॥ १९ ॥

गये थे । इन्द्र सोमपीनेसे और ब्राह्मणगण दक्षिणा पानेसे मत्त हो उठे थे तथा इन्द्रादिप्रधान प्रधान देवता ब्राह्मणोंको घेरे हुए थे, उन मरुत्तके समान यज्ञशील किसीमनुष्यने पृथ्वीमें जन्मग्रहण नहीं किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ महीपति मरुत्तके समान और किसके यज्ञमें ब्राह्मणगण सब रत्नपूर्ण घरोंमें सुवर्ण राशिको त्यागसके थे ? ॥ ॥ १७ ॥ उनके यज्ञकालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण सुवर्णमय प्रासादादि समस्त वस्तुको प्राप्त हुए थे । उनके अतिरिक्त और किसने ऐसा दान किया था ? ॥ १८ ॥ (उनका दिया हुआ धन पाकर जो शिष्टपुरुष उनके यज्ञमें पूर्णमनोरथ हुए थे, उन्होंने भी पृथक् पृथक् देशमें पृथक् पृथक् सब यज्ञ संपादन किये थे) हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार उनके सम्यक् राज्यशासन और प्रजापालन कालमें एक समय किसी तपस्वीने आनकर उनसे कहा ॥ १९ ॥

हे नरेश्वर ! तापसमण्डलीको मदोन्मत्त सर्पोंके विषद्वारा पीडित होता देखकर तुम्हारी पितामही दादीने यह बात कहलाभेजी है ॥ २० ॥ "कि, तुम्हारे पितामह सम्यक् प्रकार पृथ्वीका पालन करके स्वर्गमें गये हैं और तुम्हारे पिताभी ग्राम छोडकर वनको गये हैं (मैंभी इस समय तपस्यामें आसक्त होकर और्वाश्रममें वास करती हूं ॥ २१ ॥ हे नृप ! तुम्हारे पितामह वा तुम्हारे अन्यान्य पूर्वपुरुषोंके राज्यसमयमें जो घटना कभी नहीं हुई, तुम्हारे शासनकालमें वही विकलता देखतीहूं ॥ २२ ॥ तुम निस्सन्देह प्रमत्त अथवा अजितेन्द्रिय होकर भोगमें आसक्त हुएहो और तुमको दूतोंका नरखना उपस्थित हुआ है इसी कारण तुम दुष्टादुष्ट जाननेमें असमर्थ हो ॥ २३ ॥ दंशनशाली भुजङ्गगणोंने पातालसे आनकर सात मुनि पुत्रोंको डसा है और स्वेद, मूत्र तथा पुरीषद्वारा समस्त जलाशय और होमकी

पितुर्मातातवाहेदंदृष्ट्वातापसमण्डलम् ॥ विषाभिभूतमुरगैर्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर ॥ २० ॥ पितामहस्तेस्वर्यातःसम्यक्संपाल्यमेदिनीम् ॥ पितातवतथाशक्तोहित्वा ग्रामंवनंगतः ॥ (तपश्चरणशक्ताऽहमिहचौर्वाश्रमेस्थिता) ॥ २१ ॥ साऽहंपश्यामिवैकल्यंतवराज्यंप्रशासतः ॥ पितामहस्यतेनाभूद्यत्पूर्वेषांचतेनृप ॥ २२ ॥ नूनंप्रमत्तोभोगेषुसक्तोवाऽविजितेन्द्रियः ॥ चारान्धतायतोस्तीयंदुष्टादुष्टंनवेत्सियत् ॥२३॥ पातालादभ्युपेतैस्तुभुजगैर्दंशशालिभिः॥दष्टामुनिसुताःसप्तदूषिताश्चजलाशयाः ॥ २४ ॥ स्वेदमूत्रपुरीषेणदूषितंसुशृतंहविः ॥ अपराधंसमुद्दिश्यदत्तोनागबलिश्चिरात् ॥ २५ ॥ एतेसमर्थामुनयोभस्मीकर्तुंभुजंगमान् ॥ किन्त्वेषांनाधिकारोऽत्रत्वमेवात्राधिकारवान् ॥ २६ ॥ तावत्सुखंभूपतिजैर्भोगजंप्राप्यतेनृप ॥ अभिषेकजलंयावन्नमूर्ध्निविनिपात्यते ॥ २७ ॥ कानिमित्राणिकःशत्रुर्मम्शत्रोर्बलंकियत् ॥ कोऽहंकेमन्त्रिणःपक्षेकेवाभूपतयोमम ॥ २८ ॥ (कियान्कोशोबलंकिंवाकोनुरक्तोजनोमम) ॥ विरक्तोवापरैर्भिन्नःपरेषामपिकीदृशः॥कःसम्यगत्रनगरेविषयेवाजनोमम ॥ २९ ॥

हविको दूषित करडालाहै । इस कारण मुनिगण अपराधहुआ समझकर नागोंको बलि देते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ यह समस्तमुनि सर्पोंको भस्म करनेमें समर्थ हैं किन्तु इसमें (शासनविषयमें) उनका अधिकार नहीं है, तुम्हीं उसकार्यमें अधिकारी हो ॥ २६ ॥ हे भूप ! राजपुत्रगण तबतकही भोगजनित सुख भोग सकतेहैं जब तक उनके मस्तकमें अभिषेकका जल नहीं गिरता ॥ २७ ॥ "कौन मित्र है ? कौन शत्रु है ? कितना शत्रुका बलहै ? मैं कौनहूं ? कौनमंत्री है ? कौन कौन राजा अपने पक्षमें हैं ॥२८॥ (मेरे पास कितना कोष और बलहै? मुझमें कौन जन अनुरक्त है ?) कौन विरक्त है ! कौन शत्रुके द्वारा भेदको प्राप्तहुआ है ? शत्रुओं में कौन

किसप्रकार है ? अपने नगर वा राज्यमें कौन भलीभाँति धर्मकर्माश्रयी है ! ॥ २९ ॥ और कौन मूर्खवास करता है ? कौन दण्डनीय अर्थात् दण्ड देने योग्य है ? कौन पालन करने योग्य है ? कौन उपेक्षाके योग्य है ? ॥ ३० ॥ संधिभेदके भयसे देशकालका विचारकर किसके प्रति दृष्टि रखनी उचीत है ?" यह सब वृत्तान्त जाननेके लिये राजा अन्यचर (दूत) के अपरिचित चरको नियुक्त करे ॥ ३१ ॥ महीपति समस्त सचिवादिके प्रतिभी दूतको नियुक्त करें । भूपति इस प्रकार कार्यमें सदा आसक्तचित्त हो ॥ ३२ ॥ दिन रात बितावें कभी भोगपरायण होना राजाको उचित नहीं है । हे महीपते ! राजाओंका शरीर धारण करना भोगके निमित्त नहीं है ॥ ३३ ॥ पृथ्वी और अपना धर्म पालनके कारण महाक्लेशही उनको भोगना होता है । राजाओंको स्वधर्म और पृथ्वीपालन करनेसे ॥ ३४ ॥ इस जन्ममें अत्यन्त क्लेश भोगनेपरभी परकालमें स्वर्ग जानेपर उनको अक्षय सुख प्राप्त होता है हे नरेश्वर ! यह सब विचार कर भोग परित्यागपूर्वक ॥ ३५ ॥

धर्मकर्माश्रयोमूढः कःसम्यगपिवर्त्तते ॥ कोदण्ड्यःपरिपाल्यःकःकेचोपेक्ष्यानरामया ॥ ३० ॥ सामभेदतयादम्यादेशकालमवेक्षता ॥ चारांश्चचारयेदन्यै रज्ञातान्भूपतिश्चरैः ॥ ३१ ॥ सचिवादिषुसर्वेषुचरान्दद्यान्महीपतिः ॥ इत्यादौभूपतिर्नित्यंकर्मण्यासक्तमानसः ॥ ३२ ॥ नयेद्दिनंतथारात्रिंनतुभोगपरा यणः ॥ राज्ञांशरीरग्रहणंनभोगायमहीपते ॥ ३३ ॥ क्लेशायमहतेपृथ्वीस्वधर्मपरिपालने ॥ सम्यक्पालयतःपृथ्वींस्वधर्मंचमहीपतेः ॥ ३४ ॥ इहक्लेशो महान्स्वर्गेपरमंसुखमक्षयम् ॥ तदेतदवबुध्यस्वहित्वाभोगान्नरेश्वर ॥ ३५ ॥ पालनायक्षितेःक्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि ॥ इतिवृत्तमृषीणांयद्व्यसनंत्वयिशास ति ॥ ३६ ॥ भुजङ्गहेतुकंभूपचारान्धोनापिवेत्सितत् ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनदुष्टेदण्डोनिपात्यताम् ॥ ३७ ॥ शिष्टान्पालयराजंस्त्वंधर्मषड्भागमाप्स्यसि ॥ अरक्षन्पापमखिलंदुष्टैरविनयात्कृतम् ॥ ३८ ॥ समवाप्स्यस्यसन्दिग्धंयदिच्छसिकुरुष्वतत् ॥ एतन्मयोक्तंसकलंयत्तवाहंपितामहः ॥ कुरुष्वैवंस्थिते यत्तेरोचतेवसुधाधिप ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितेषड्विंशत्याधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतितापस वाक्यंसश्रुत्वालज्जापरोनृपः ॥ धिङ्मांचारान्धमित्युक्त्वानिःश्वस्यजगृहेधनुः ॥ १ ॥

तुमको पृथ्वीपालनके कारण क्लेश अंगीकार करना उचित है । हे भूप ! तुम्हारे शासनकालमें यह जो ऋषियोंको सर्पोंसे दुःख उपस्थित हुआ है ॥ ३६ ॥ तुम दूतोंके न रखनेके कारणही उसको नहीं जानसके, अधिक और क्या कहूं ? हे राजन् ! तुम दुष्टोंको दंड ॥ ३७ ॥ और शिष्ट पुरुषोंका प्रतिपालन करो । इससे धर्मफलका छठाभाग प्राप्त होगा । दुष्टगण उद्धतताके सहित जो करते हैं उससे रक्षा न करनेपर ॥ ३८ ॥ तुम निस्संन्देह पापके भागी होंगे । अब जो कर्त्तव्य विचारो, वह करो । हे वसुधाधिप ! मैं ही तुम्हारी पितामही हूं इसी कारण मैंने यह सब कहा । इस स्थलमें जो तुम्हें अच्छा लगे उसीके अनुसार कार्य करो ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते भाषाटीकायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—राजाने तापसके यह वचन सुननेसे लज्जित हो " मैं चारा

न्ध हूँ, मुझको धिक्कार है" यह कह, लम्बी श्वास छोड़, धनुषको ग्रहण किया ॥ १ ॥ और अत्यन्त शीघ्र और्वाश्रममें जाय मस्तक झुकाकर पितामही वीराको ॥ २ ॥ और तापसगणोंको यथाविहित प्रणाम किया। उन्होंने भी उनकी सम्यक् प्रकार आशीर्वाद वचनोंसे स्तुति करी । इसके उपरान्त राजाने सर्पदष्ट सात तापसोंको मृतक होकर भूमिमें पडा देख ॥ ३ ॥ मुनियोंके सामने वारंवार अपनी निन्दा करके कहा—यह दुष्ट भुजंग मेरे (बलका तिरस्कार) करके ॥ ४ ॥ ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, मैं उनकी अब जो अवस्था करता हूँ, वह देव, दैत्य और नरलोकके सहित संपूर्ण जगत् देखे ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—राजाने इस प्रकार कहकर पाताल और महीतलवासी संपूर्ण नागकुलके विनाशार्थ क्रोधपूर्वक संवर्त्तक अस्त्र ग्रहण किया ॥ ६ ॥ हे विप्र! उस काल संपूर्ण नागलोक उस महाअस्त्रके

ततःसत्वरितंगत्वातैर्मावस्याश्रमंप्रति ॥ ववन्देशिरसावीरांमातरंपितुरात्मनः ॥ २ ॥ तापसांश्चयथान्यायंतैश्चाशीर्भिरभिष्टुतः ॥ दृष्ट्वाचतापसान्सप्तनागै दृष्टान्मृतान्भुवि ॥ ३ ॥ निनिन्दात्मानमसकृत्पुरस्तेषांमहीपतिः ॥ उवाचचैतदद्याहंमद्वीर्य्यमवमन्यताम् ॥ ४ ॥ यत्करोमिभुजङ्गानांदुष्टानांब्राह्मण द्विषाम् ॥ तत्पश्यतुजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ ५ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वाजगृहेकोपादस्त्रंसंवर्तकंनृपः ॥ नाशायाशेषनागानांपा तालोर्व्वीविचारिणाम् ॥ ६ ॥ ततोजज्वालसहसानागलोकःसमन्ततः ॥ महास्त्रतेजसाविप्रदह्यमानोनिवारितः ॥ ७ ॥ हाहातातेतिहामातर्हाहावत्सेतिसंभ्रमे ॥ तस्मिन्नस्त्रकृतेवाचःपन्नगानामथाभवन् ॥ ८ ॥ केचिज्ज्वलद्भिःपुच्छाग्रैःफणैरन्येभुजङ्गमाः ॥ गृहीतपुत्रदाराश्चत्यक्ताभरणवाससः ॥ ९ ॥ पाताल मुत्सृज्यययुःशरणंभामिनींतदा ॥ मरुत्तमातरंपूर्वंययादत्तंतदाभयम् ॥ १० ॥ तामुपेत्योरगाःसर्वेसप्रणामंभयातुराः ॥ सगद्गदमिदंप्रोचुःस्मर्यतांनःपुरोदि तम् ॥ ११ ॥ प्रणम्याभ्यर्थितंपूर्वंयदस्माभीरसातले ॥ तस्यकालोऽयमायातस्त्राहिवीरप्रजायिनि ॥ १२ ॥ पुत्रोनिवार्य्यतांराज्ञिप्राणैःसंयो ज्यमस्तुनः ॥ दह्यतेसकलोलोकोनागानामस्त्रवह्निना ॥ १३ ॥

तेजसे सहसा जाज्वल्यमान होगया और अनिवारित दग्ध होनेलगा ॥ ७ ॥ इस अस्त्रकाण्डमें भयसे उद्विग्न पन्नगगण "हा माता! हा तात! हा वत्स" कह कर आर्त्तनाद करने लगे ॥ ८ ॥ किसीकी पूंछ और किसीका फण जलने लगा। तथा किसी किसीने वस्त्र आभरणादि संपूर्ण परित्यागपूर्वक स्त्री पुत्र समेत ॥ ९ ॥ पाताल छोड़कर मरुत्तकी माता भामिनीका आश्रय ग्रहण किया। क्योंकि उसने पहिले अभयप्रदान किया था ॥ १० ॥ भयातुर समस्त उरगगणोंने उसके निकट उपस्थित होकर प्रणामपूर्वक गद्गद वचनोंसे कहा। पहिले रसातलमें प्रणाम और अर्चनापूर्वक आपके निकट हमने जो प्रार्थना करी थी उसको स्मरण कीजिये। हे वीरप्रसू! यह उसका समय उपस्थित हुआ है, इससे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राज्ञि! पुत्रको निवारणकरके हमको प्राणदान दो संपूर्ण

नागलोग अस्त्राग्निसे दग्ध हुआ जाताहै ॥ १३ ॥ हे यशस्विनी ! तुम्हारा पुत्र हमको इसप्रकार दग्ध करता है, अतएव तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोईभी शरण देनेवाला नहीं है हमारे ऊपर तुम कृपा करो ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–साध्वी भामिनीने उन सर्पों के इसप्रकार वचन सुननेसे पूर्वोक्त अपना अभयवाक्य स्मरणकर स्वामीके निकट संभ्रमसहित यह वचन कहे ॥ १५ ॥ भामिनी बोली–पातालमें भुजङ्गमगणोंने प्रार्थनाके सहित मेरे पुत्रके संबंधमें जो कहा था, वह मैंने पहिलेही आपसे कहा है ॥ १६ ॥ वही भुजङ्गमगण इससमय पुत्रके तेजसे जले जाते हैं, सुतरां यह भीत होकर मेरी शरणमें आये हैं मैंने भी पूर्वमें इनको अभयप्रदान किया

एवंसंदह्यमानानामस्माकंतनयेनते ॥ त्वामृतेशरणंनान्यत्कृपांकुरुयशस्विनि ॥ १४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तेषांसं स्मृत्यादौचभाषितम् ॥ भर्त्तारमाहसासाध्वीससंभ्रममिदंवचः ॥ १५ ॥ पूर्वमेवतवाख्यातंपातालेयद्भुजङ्गमैः ॥ प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वममासीत्तनयंप्रति ॥ ॥ १६ ॥ तइमेऽभ्यागताभीतादह्यन्तेतस्यतेजसा ॥ मामेतेशरणंपूर्वंदत्तमेभ्योमयाऽभयम् ॥ १७ ॥ येमांशरणमापन्नास्तेत्वांशरणमागताः ॥ अ पृथग्धर्मचरणायाताहंशरणंतव ॥ १८ ॥ तन्निवारयपुत्रंत्वंमरुत्तंवचनात्तव ॥ मयाचाभ्यर्थितोऽवश्यंशममभ्युपयास्यति ॥ १९ ॥ ॥ राजोवाच ॥ महा पराधेनियतंमरुत्तःक्रोधमागतः ॥ दुर्निवर्त्यमहंमन्येतस्यक्रोधंसुतस्यते ॥ २० ॥ ॥ नागाऊचुः ॥ शरणागतास्त्ववयंप्रसादःक्रियतांनृप ॥ क्षत्रस्या र्तपरित्राणनिमित्तंशस्त्रधारणम् ॥ २१ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ नागानांतद्वचःश्रुत्वाभूतानांशरणैषिणाम् ॥ तयाचाभ्यर्थितःपत्न्याप्राहावी क्षिन्महायशाः ॥ २२ ॥

है ॥ १७ ॥ देखो, जो मेरी शरणागत हैं वह अवश्य आपकेभी शरणागत हैं, क्योंकि मैं एकधर्मका आचरण करके आपकी शरणमें प्राप्त हुईहूं ॥ १८ ॥ अतएव तुम पुत्र मरुत्तको निवारणकरो । आपके वचन और मेरे अनुरोधसे वह अवश्यही शान्त होगा ॥ १९ ॥ अवीक्षितने कहा–इनके सदा अपराधकरनेके कारणही मरुत्तको क्रोध उपस्थित हुआ है सुतरां तुम्हारे पुत्रका क्रोध सहजमें ही निवारित होगा ऐसा बोध नहीं होता ॥ २० ॥ नागों ने कहा हे नृप ! हम आपकी शर णमें आये हैं, हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिये, क्षत्रियगण आर्तमनुष्योंकी रक्षाके लियेही अस्त्रधारण करतेहैं ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–महायशा अविक्षितने शर

णेच्छु नागोंके यह वचन सुनकर और पत्नीके द्वारा इसप्रकार प्रार्थित होकर उत्तरदिशा ॥ २२ ॥ हे भद्रे ! मैं अभी तुम्हारे पुत्रके समीप जाकर नागोंकी रक्षाके लिये उससे कहता हूं, शरणागतको त्याग करना कभी उचित नहीं है ॥ २३ ॥ यदि तुम्हारा पुत्र मरुत्त राजा मेरे वचनसे अस्त्रसंहार नहीं करेगा तो मैं अस्त्रद्वारा उसका अस्त्रनिवारण करूंगा ॥ २४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर क्षत्रियश्रेष्ठ अवीक्षित धनुष ग्रहण करके भार्याके सहित शीघ्र भार्गवाश्रममें गये ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरितेभाषाटीकायांसप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२७॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन्होंने वहां आकर धनुषधारी धनुषपर शस्त्रचढाये पुत्रको देखा कि उनके उग्रशस्त्रकी ज्वालासे सब दिशामण्डल व्याप्त होरहा है॥ १ ॥ जिसमस महाअग्नि निकल रही है पृथ्वी प्रदीत होरही है और वह असह्य घोर भीषण अग्नि

गत्वाब्रवीमितंभद्रेतनयंत्वरयातव ॥ परित्राणायनागानांनत्याज्याःशरणागताः ॥ २३ ॥ नोपसंहरतेसोस्त्रंयदिमद्वचनान्नृपः तदास्त्रैर्वारयिष्यामि तस्यास्त्रंतनयस्यते ॥ २४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोगृहीत्वासधनुरविक्षित्क्षत्रियोत्तमः ॥ भार्य्ययासहितःप्रायात्त्वरावान्भार्गवाश्रमम् ॥ ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितेसप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सतुतत्रसुतंदृष्ट्वागृही तवरकार्मुकम् ॥ धनुःशस्त्रंचतस्योग्रंज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १ ॥ उद्गिरन्तंमहावह्निंदीपिताखिलभूतलम् ॥ पातालान्तर्गतंप्राप्तमसह्यंघोरभीषणम् ॥ ॥ २ ॥ सतंदृष्ट्वामहीपालंभ्रुकुटीकुटिलाननम् ॥ माक्रुधस्त्वंमरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति ॥ ३ ॥ प्राहासकृच्चानुलुप्तवर्णक्रममुदारधीः ॥ सनिश म्यगुरोर्वाक्यंदृष्ट्वातंचपुनःपुनः ॥ ४ ॥ गृहीतकार्मुकःपित्रोःप्रणिपत्यसगौरवम् ॥ प्रत्युवाचापराद्धामेसुभृशंपन्नगाःपितः ॥५॥ शासतीमांमयि मर्हींपरिभूयबलंमम ॥ सप्ताश्रमसुपागम्यदष्टामुनिकुमारकाः ॥ ६ ॥ ऋषीणामाश्रमस्थानाममीषामवनीपते ॥ मयिशासतिदुर्वृत्तैर्दूषितानिहवींषिच ॥ ७ ॥

पातालतक पहुँचगई है ॥२॥ उन्होंने देखा कि, राजा मरुतका मुख भृकुटीसे कुटिल होरहा है तब उन्हों ने कहा हे मरुत्त! अस्त्रसंहार करो क्रोध मतकरो ॥ ३॥ वारंवार यह कहनेसे उनके वचनमें वर्णक्रम लुप्त होनेलगे तब उस उदारबुद्धिने पिताके वचन सुन और उन्हें देख ॥ ४ ॥ पितामाताको हाथमें धनुष लिये ही प्रणाम कर सन्मानपूर्वक कहा—हे पिता ! यह पन्नगगण मेरे अत्यन्त अपराधी हैं ॥५॥ मेरे शासनकालमें मेरे बलकी अवज्ञा करके इन्होंने आश्रममें आय सात मुनिकुमा रोंको काटा है ॥ ६ ॥ और हे अवनीपते ! मेरे शासनकालमें इन दुर्वृत्त सर्पगणोंने इन समस्त आश्रमवासी ऋषियोंको हवि और समस्त जलाशयोंको दूषितकियाहै ॥ ७ ॥

अतएव हे पिता ! आप इनके संबंधमें कुछ न कहें और ब्रह्मघाती पन्नगोंके निधनकार्यमें निवारण भी न करें ॥८॥ अवीक्षितने कहा—यदि इन्होंने ब्रह्महत्या करी हो तो मृत्युके उपरान्त नरकको प्राप्त होंगे, तुम अस्त्रप्रयोगसे विरत होकर मेरे वचनकी रक्षा करो ॥ ९ ॥ मरुत्तने कहा—यदि इन पापियोंके निग्रहमें यत्न न करूँ, तो मैंही नरकगामी हूँगा, अतएव हे पिता ! मुझको निवारण न कीजिये मैं इन दुष्ट अपराधियोंको क्षमा नहीं करूंगा ॥ १० ॥ अवीक्षितने कहा—यह पन्नगगण मेरी शरणमें आये हैं, इस कारण हे नृप ! मेरे गौरवकी रक्षाके लिये तुम क्रोध रोककर अस्त्रसंहार करो ॥ ११ ॥ मरुत्तने कहा—मैं इन दुष्ट अपराधियोंको क्षमा नहीं करूंगा अपना धर्म उल्लंघनकरके किसप्रकार आपके वचनकी रक्षाकरूं ?॥ १२ ॥ दण्डनीय पुरुषोंको दण्डप्रदान और शिष्ट पुरुषोंका पालन करके

जलाशयास्तथाप्येतैःसर्वएवहिदूषिताः ॥ तदेत्कारणंकिञ्चिन्नवक्तव्यंत्वयापितः ॥ ननिवारयितव्योऽहंब्रह्मघ्नान्प्रतिपन्नगान् ॥ ८ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ यद्येभिर्निहताविप्रायास्यन्तिनरकंमृताः ॥ ममैतत्क्रियतांवाक्यंविरमास्त्रप्रयोगतः ॥ ९ ॥ ॥ मरुत्तउवाच ॥ ॥ नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ॥ अहमेवगमिष्यामिनरकंयदिशपिनाम् ॥ ननिग्रहेयताम्येषांमांनिवारयमापितः ॥ १० ॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ मामेतेशरणंप्राप्ताः पन्नगाममगौरवात् ॥ उपसंह्रियतामस्त्रमलंकोपेनतेनृप ॥ ११ ॥ ॥ मरुत्तउवाच ॥ ॥ नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ॥ स्वधर्ममुल्लंघ्यकथं करिष्यामिवचस्तव ॥ १२ ॥ दण्ड्येनिपातयन्दण्डंभूपःशिष्टांश्चपालयन् ॥ पुण्यलोकानवाप्नोतिनरकांश्चाप्युपेक्षणात् ॥१३॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंसबहुशःपित्रावार्य्यमाणोम्बयासह ॥ नोपसंहरतेसोऽस्त्रंततोऽसौपुनरब्रवीत् ॥१४॥ हिंससेपन्नगान्भीतान्ममैताञ्छरणंगतान् ॥ वार्यमाणोऽपितस्मात्तेकरिष्यामिप्रतिक्रियाम् ॥ १५ ॥ मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानिनत्वमेकोऽस्त्रविद्भुवि ॥ ममाग्रतःसुदुर्वृत्तपौरुषञ्चकियत्तव ॥ १६ ॥ ततःकार्मुकमारोप्यकोपताम्रविलोचनः ॥ अविक्षिदस्त्रंजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गवः ॥ १७॥

राजा समस्त पुण्य लोकोंको प्राप्त होते हैं, किन्तु इसमें उपेक्षा करनेसेही नरकगामी होते हैं ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—पिताके इस प्रकार वारंवार निषेध करनेपर भी जब पुत्र मरुत्तने अस्त्रसंहार नहीं किया, तब अवीक्षितने फिर उनसे कहा ॥ १४ ॥ यह पन्नगगण भीत होकर मेरी शरणमें आये हैं, इस कारण मेरे वारंवार निवारण करनेपर भी तुम इनकी हिंसा करते हो, अतएव मैं इसका प्रतिकार करूँगा ॥ १५ ॥ भूमण्डलमें केवल एक मात्र तुम्हीं अस्त्रवेत्ता नहीं हो, मैंने भी अनेक अस्त्रलाभ किये हैं हे दुर्वृत्त ! मेरे सन्मुख तेरा पौरुष कुछ नहीं है ॥ १६ ॥ हे मुनिपुंगव ! अवी

क्षितने इस वचनके पीछे क्रोधसे ताम्रलोचन हो, धनुषपर रौदा चढाय कालास्त्र ग्रहणकिया ॥ १७ ॥ और ज्वालापरिवृत, शत्रुविनाशक महावीर्य वह उत्तम कालास्त्र धनुषपर चढ़ाया ॥ १८ ॥ हे विप्र ! मरुत्तके संवर्त्तकास्त्रसे तापित पर्वत समुद्रयुक्त संपूर्ण जगत् इस समय कालास्त्रके छूटनेसे क्षुब्ध होगया ॥ १९ ॥ मरुत्तने भी उस चढाये हुए कालास्त्रको देखकर उच्चस्वरसे कहा—मेरा संवर्त्तक अस्त्र दुष्टोंकी शान्तिविधानके लिये उद्यत हुआ है ॥ २० ॥ तुम्हारे वधके लिये नहीं है, तो फिर सत्पथावलम्बी और सर्वदा अपनी आज्ञा प्रतिपालन करनेवाले पुत्रके प्रति आप किस किस निमित्त कालास्त्र त्याग करते हैं ? ॥ २१ ॥ हे महाभाग ! प्रजा का पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है, आप मेरे विनाशार्थ क्यों इस प्रकार अस्त्र उद्यत करते हो ? ॥ २२ ॥ अवीक्षितने कहा—मैं शरणागत पुरुषोंकी रक्षा कर

ततोऽज्वालापरीवारमरिसंवघ्नमुत्तमम् ॥ कालास्त्रंतुमहावीर्य्ययोजयामासकार्मुके ॥ १८ ॥ ततश्चुक्षोभजगतीसवर्त्तास्त्रप्रतापिता ॥ साब्धिशैलाऽखिला विप्रकालस्यास्त्रेसमुद्यते ॥ १९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कालास्त्रमुद्यतंपित्रामरुत्तःसोऽपिवीक्ष्यतत् ॥ प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मेदुष्टशास्तिसमुद्यतम् ॥ २० ॥ नत्वद्वधायकालास्त्रंमयिमुंचतिकिंभवान् ॥स्वधर्मचारिणिसुतेसदैवाज्ञाकरेतव ॥ २१ ॥ मयाकार्यमहाभागप्रजानांपरिपालनम् ॥ त्वयैवंक्रियतेकस्मान्मद्वधा यास्त्रमुद्यतम् ॥२२॥ अविक्षिदुवाच ॥ शरणागतसंत्राणंकर्तुव्यवसितावयम् ॥ तस्यव्याघातकर्त्तात्वंनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥ २३ ॥ मांवाहत्वास्त्रवीर्येणजहि दुष्टानिहोरगान् ॥ त्वांवाहत्वाऽहमस्त्रेणरक्षिष्यामिमहोरगान् ॥ २४ ॥ धिक्तस्यजीवितंपुंसःशरणार्थिनमागतम् ॥ योनार्तमनुगृह्णातिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ॥ २५ ॥ क्ष[illegible]योऽहमिमेभीताःशरणंमामुपागताः ॥ अपकर्त्तात्वमेवैषांकथंवध्योनमेभवान् ॥ २६ ॥ मरुत्तउवाच ॥ ॥ मित्रंवाबान्धवोवाऽपिपितावायदिवागुरुः ॥ प्रज[illegible]ालनविघ्नाययोहन्तव्यःसभूभृता ॥ २७ ॥ सोऽहन्तेप्रहरिष्यामिनक्रोद्धव्यंत्वयापितः ॥ स्वधर्मःपरिपाल्योमेनमेक्रोधस्तवोपरि ॥ २८ ॥ ॥

नेके [illegible]लये कृतसंकल्प हूं, तुम उस कार्यमें बाधा करते हो, इस कारण तुम जीवित रहते मेरे निकटसे रक्षा नहीं पासकोगे ॥ २३ ॥ इस समय या तो तुम्हीं अस्त्रबलसे मुझको विनाश करके दुष्ट उरगकुलका वध करो अथवा मैंही तुमको अस्त्रकी सहायतासे मारकर सर्पोंकी रक्षा करूंगा ॥ ॥ २४ ॥ शत्रुपक्षीय मनुष्यके भी आर्त्त होकर शरणमें आनेपर जो मनुष्य उसकी रक्षा नहीं करता उस मनुष्यके जीवनको धिक्कार है ॥ २५ ॥ मैं क्षत्रिय हूं इन्होंने भीतहोकर मेरी शरण ग्रहण की है और तुम्हीं इनके अपकारी हो अतएव फिर किस निमित्त तुम मेरेद्वारा वधके योग्य नहींहो? ॥ २६ ॥ मरुत्तने कहा-मित्र, बांधव, पिता अथवा गुरु जो प्रजापालनमें विघ्नकारी हो, वह अवश्यही राजाके द्वारा वध होनेकेयोग्य है ॥ २७ ॥ इसकारण हे पिता! मैं आपपर प्रहार करूंगा किन्तु आप इससे क्रोध न

कीजिये स्वधर्मका पालनकरनाही मेरा उद्देश्यहै आपके ऊपर मेरा क्रोध नहींहै॥ २८॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन दोनोंकोही परस्परके वध करनेमें कृतनिश्चय देखकर भार्गवादि मुनियोंने शीघ्रआय दोनोंके मध्यमें खडे हो ॥ २९ ॥ मरुत्तसे कहा—पिताके ऊपर अस्त्र चलाना तुमको उचित नहींहै और अवीक्षितसे कहा—तुमको भी इस विख्यात कर्मा पुत्रका विनाश नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥ मरुत्तने कहा—हे द्विजगण ! मैं राजा हूं दुष्टोंका हनन और शिष्टपुरुषोंका पालन करना मेरा सम्यक् प्रकार कर्त्तव्य है, यह भुजंगगण भी दुष्ट हैं, अतएव इस विषयमें मेरा क्या अपराधहै ? ॥ ३१ ॥ अवीक्षितने कहा हेविप्रगण ! शरणागतपुरुषोंकी रक्षा करना ही मेरा कर्त्तव्य है, जो पुत्र मेरे उन शरणागतजनोंको नष्ट करता है वह मेरा अपराधी है ॥ ३२॥ ऋषियोंने कहा—डरसे चंचलनेत्र हो भुजङ्गगण कहते हैं जिन ब्राह्मणोंको दुष्ट

मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तौनिश्चितौदृष्ट्वापरस्परवधंप्रति ॥ समुत्पत्यान्तरेतस्थुर्मुनयोभार्गवादयः ॥ २९ ॥ ऊचुश्चैनंनमोक्तव्यंत्वयास्त्रंपितरंप्रति ॥ त्वया चनायंहन्तव्यःपुत्रः प्रख्यातचेष्टितः ॥ ३० ॥ ॥ मरुत्तउवाच ॥ ॥ मयादुष्टानिहन्तव्याःसन्तोरक्ष्यामहीक्षिता ॥ इमेचदुष्टाभुजगाःकोऽपराधोऽत्रमेद्विजाः ॥ ॥ ३१ ॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ शरणागतसन्त्राणंमयाकार्यमयंक्रमे ॥ अपराध्यःसुतोविप्रायोहन्तिशरणागतान् ॥ ३२ ॥ ॥ ऋषयऊचुः ॥ इमेवदन्तिभुजगास्त्रासलोलविलोचनाः ॥ संजीवयामस्तान्विप्रान्येदष्टादुष्टपन्नगैः ॥ ३३ ॥ तदलंविग्रहेणेभौराजवर्यौप्रसीदताम् ॥ उभावपिविनिर्व्यूढप्रतिज्ञै धर्मकोविदौ ॥ ३४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सातुवीरासमभ्येत्यपुत्रमेतदभाषत ॥ मद्वाक्यादेपतेपुत्रोहन्तुंनागान्कृतोद्यमः ॥ ३५ ॥ तन्निष्पन्नंयदा विप्रास्तेजीवन्तितथामृताः ॥ संजीवन्तश्चमुच्यन्तेयद्युष्मच्छरणंगताः ॥ ३६ ॥ ॥ भामिन्युवाच ॥ ॥ अहमभ्यर्थितापूर्वमेभिःपातालसंश्रयैः ॥ तन्निमि त्तमयंभर्त्तामयात्रविनियोजितः ॥ ३७ ॥

पन्नगगणोंने डसा है, हम उनको जीवित करते हैं ॥३३॥ अतएव अब युद्धकी आवश्यकता नहीं है, प्रसन्न हूजिये, आप दोनों ही राजश्रेष्ठ और दोनों ही जिसप्रकार धर्मवेत्ता हैं, इसीप्रकार प्रतिज्ञापालक हैं ॥ ३४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसी समयमें वीराने वहां उपस्थित होकर पुत्र अवीक्षितसे कहा—मेरे वचनानुसार ही तुम्हारा पुत्र सर्पोंके विनाशकरनेमें उद्यत हुआ था ॥ ३५॥ और जब मरेहुये ब्राह्मण जीवित होते हैं तब वह कार्य संपन्नभी होगया है अतएव तुम्हारे यह शरणागत भी मुक्त हुए ॥ ३६ ॥ भामिनीने कहा पातालवासी इन सब सर्पों ने पूर्व में मुझसे इसप्रकार अभय प्रार्थना कीथी, इसी कारण मैंने भर्त्ताको इसविषयमें

अनुरोध किया है ॥ ३७ ॥ इस समय मेरे स्वामी और पुत्रका एवं तुम्हारे पुत्र और पौत्रका यह कार्य सुन्दर रीतिसे ही सम्पन्न हुआहै ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर सर्पोंने दिव्य औषधियोंके द्वारा विष हरण करके उन ब्राह्मणोंको जीवित कर दिया ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महीपति मरुत्तने भी मातापिताके चरणोंमें प्रणाम किया और अवीक्षितने भी मरुत्तको प्रीतिसहित आलिंगन करके इसप्रकार आशीर्वादवचन कहे ॥४०॥ "शत्रुओंके मान नष्टकरनेवाले होओ। सदा पृथ्वी पालन करो। पुत्रपौत्रके सहित सुखपूर्वक समय बिताओ। और तुम्हारे शत्रु विनाशको प्राप्त हो" ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त ब्राह्मणगण और वीराकी आज्ञा ग्रहण कर दोनों राजा और भामिनी रथपर चढकर अपने नगरमें चलेगये ॥ ४२ ॥ तत्पश्चात् धार्मिकश्रेष्ठ महाभागवती पतिव्रता वीरा महात

तदेतदार्यैर्निर्वृत्तमुभयोरपिशोभनम् ॥ ममभर्तुश्चपुत्रस्यत्वत्पौत्रस्यात्मजस्यच ॥ ३८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसंजीवयामासुस्तान्विप्रांस्तेभुजङ्गमाः ॥ दिव्यैरोषधिजातैश्चविषसंहरणेनच ॥ ३९ ॥ पित्रोर्ननामचरणौसततोजगतीपतिः ॥ मरुत्तश्चसतंप्रीत्यापरिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ ४० ॥ मानहाभवशत्रूणांचिरंपालयमेदिनीम् ॥ पुत्रपौत्रैश्चमोदस्वमाचतेसन्तुविद्विषः ॥ ४१ ॥ ततोद्विजैरनुज्ञातौवीरयाचनरेश्वरौ ॥ समारूढौरथंसाचभामिनीस्वपुरङ्गता ॥ ४२ ॥ वीराऽपिकृत्वासुमहत्तपोधर्मभृतांवरा ॥ भर्तुःसलोकतांप्रातामहाभागापतिव्रता ॥ ४३ ॥ मरुत्तोऽपिचकारोर्व्यांधर्मतःपरिपालनम् ॥ विनिर्जितारिषड्वर्गोभोगांश्चबुभुजेनृपः ॥ ४४ ॥ तस्यपत्नीमहाभागाविदर्भतनयातथा ॥ प्रभावतीसुवीरस्यसौवीरीचाभवत्सुता ॥४५॥ सुकेशीकेतुवीर्य्यस्यमागधस्यात्मजाऽभवत् ॥ सुताचसिन्धुवीर्य्यस्यमद्रराजस्यकेकयी ॥ ४६ ॥ केकयस्यचसैरन्ध्रीसिन्धुभर्तुर्वपुष्मती ॥ चेदिराजसुताचाभूद्भार्य्यातस्यसुशोभना ॥४७॥ तासांपुत्रास्तस्यचासन्भूभृतोऽष्टादशद्विज ॥ तेषां प्रधानोज्येष्ठश्चनरिष्यंतः सुतोऽभवत् ॥४८॥ एवंवीर्य्योमरुत्तोऽभून्महाराजोमहाबलः ॥ तस्याप्रतिहतंचक्रमासीद्द्वीपेषुसप्तसु ॥ ४९ ॥ यस्यतुल्योऽपरोराजानभूतोनभविष्यति ॥ सत्वविक्रमयुक्तस्यराजर्षेरमितौजसः ॥ ५० ॥

पस्याचरण करके स्वामीके सालोक्यको प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥ राजा मरुत्तने भी छहों शत्रु पराजित करके धर्मानुसार पृथ्वीपालन और नानाप्रकारके भोगसुख अनुभव किये ॥ ४४ ॥ विदर्भकन्या महाभागा प्रभावती, सुवीरकी कन्या सौवीरी ॥ ४५ ॥ मगधेश्वर केतुवीर्यकी कन्या सुकेशा, मद्रराज सिन्धुवीर्यकी कन्या, केकयकी दुहिता केकयी ॥ ४६ ॥ सिन्धुराजकी पुत्री सैन्धवी और चेदिराजकी कन्या वपुष्मती, यह सुन्दरी ललना उनकी भार्या थीं ॥ ४७ ॥ हे द्विज ! इन सब भार्याओंके गर्भसे राजाके अठारह पुत्र उत्पन्न हुए थे उनमें "नरिष्यन्त" नामक पुत्रही ज्येष्ठ प्रधानथे ॥ ४८ ॥ महाराज महाबलवान् मरुत्त ऐसे वीर्यवान् थे। सात द्वीपोंमें उनका चक्र अप्रतिहत था ॥ ४९ ॥ बलविक्रमशाली अमिततेजा जिन राजर्षिके समान और कोई राजा आविर्भूत नहीं

हुआ और होगा भी नहीं ॥ ५० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उन महात्मा मरुत्तके यह चरित्र सुनने पर संपूर्ण पापोंसे मुक्ति और मृत्युके पीछे श्रेष्ठ जन्म प्राप्त होता है॥५१॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे मरुत्तचरिते भाषाटीकायामष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२८॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने मरुत्तचारित्र संपूर्ण वर्णन किया। अब उनकी सन्ततिका समस्त वृत्तान्त सुननेकी इच्छा हुई है ॥१॥ हे महामुने उनकी सन्तानमें जो पृथ्वीपति राज्ययोग्य और वीर्यशाली थे आपके मुखसे उन्हींका वृत्तान्त सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—मरुत्तके अठारह पुत्रोंमें नरिष्यन्तही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ थे ॥ ३ ॥ क्षत्रियश्रेष्ठ मरुत्तने सत्तरसहस्र पन्द्रह वर्ष संपूर्ण पृथ्वी भोगकरी थी ॥ ४ ॥ वह धर्मानुसार राज्यशासन और उत्तमोत्तम यज्ञानुष्ठानपूर्वक पुत्र नरिष्यन्तको राज्याभिषिक्त कर अन्तमें वनको चलेगये ॥

तस्यैतच्चरितंश्रुत्वामरुत्तस्यमहात्मनः ॥ जन्मचाग्र्यंद्विजश्रेष्ठमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितेष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ मरुत्तचरितंकृत्स्नंभगवन्कथितंत्वया ॥ तत्संततिमशेषेणश्रोतुमिच्छाप्रवर्तते ॥ १ ॥ तत्संततौक्षितीशायेराज्यार्हा वीर्यशालिनः ॥ तानहंश्रोतुमिच्छामित्वयाख्यातान्महामुने ॥२॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ नरिष्यंतइतिख्यातोमरुत्तस्याभवत्सुतः ॥ अष्टादशानां पुत्राणांसज्येष्ठःश्रेष्ठएवच॥३॥वर्षाणांचसहस्राणिसप्ततिंदशपंचच ॥ बुभुजेपृथिवींकृत्स्नांमरुत्तःक्षत्रियर्षभः ॥४॥ कृत्वाराज्यंस्वधर्मेणइष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् ॥ नरिष्यंतसुतंज्येष्ठमभिषिच्यययौवनम् ॥ ५ ॥ एकाग्रचित्तःसनृपस्तप्त्वातत्रतपोमहत् ॥ आरुरोहदिवंविप्रयशसावृत्यरोदसी ॥ ६ ॥ नरिष्यंतः सुतः सोऽस्यचिंतयामासबुद्धिमान् ॥ पितुर्वृत्तंसमालोक्यतथान्येषांचभूभृताम् ॥ ७ ॥ अत्रवंशेमहात्मानोराजानोममपूर्वजाः ॥ यज्विनोधर्मतःपृथ्वींपालयामासुरूर्जिताः ॥ ८ ॥ दातारश्चापिवित्तानांसंग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ तेषांकश्चरितंशक्तस्त्वनुयातुंमहात्मनाम् ॥ ९ ॥ किन्तुतैर्यत्कृतंकर्मधर्म्यमाहवनादिभिः ॥ तदहंकर्तुमिच्छामितच्चनास्तिकरोमिकिम् ॥ १० ॥ धर्मात्पालयतःपृथ्वींकोगुणोत्रमहीपतेः ॥ असम्यक्पालनात्पापीनरेन्द्रोनरकंव्रजेत् ॥ ११ ॥

॥५॥ हेविप्र ! इसके उपरान्त राजामरुत्तने वनमें एकाग्रचित्तसे महा तपस्या करके स्वर्गलोक मृत्युलोक यशसे पूर्णकर स्वर्गारोहण किया ॥ ६ ॥ उनके पुत्र बुद्धिमान् नरिष्यन्तनें पिता और अन्यान्य राजाओंका व्यवहार देखकर विचार किया॥७॥ कि इस वंशमें मेरे सब पूर्वपुरुष महात्मा राजागण यज्ञानुष्ठान करनेवाले प्रबल पराक्रमी, धनदाता और संग्राममें अपराङ्मुख अर्थात् विमुख नहीं थे और सबनेही धर्मानुसार पृथ्वीका पालन किया है उन महात्माओंके चारित्रका अनुकरण करनेमें कौन समर्थ होगा ? ॥८॥९॥ उन्होंने आहवनादिद्वारा जो धर्मकार्य संपन्न किये मैं वही करनेकी इच्छा करताहूं किन्तु वहभी तो अकृत नहीं हैं अतएव मैं क्या करूं ॥ १० ॥ यदि राजा धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करे, तो इसमें राजाका गुण क्याहै ? वह उसके गुणमें परिगणित नहीं है, क्योंकि सम्यक् प्रकार पृथ्वीपालन न करनेसे

नरेन्द्र पापभागी होकर नरकमें जाते हैं ॥ ११ ॥ धन होनेपर राजाको महायज्ञ संपादन और दान करना चाहिये। किन्तु इसमें भी फिर विचित्रता क्या है! इस प्रकार राजाके अवसन्न होनेपर ईश्वर ही उसको एक मात्र गति है ॥ १२ ॥ राजाके स्वधर्ममें रहनेसेही वह जातिश्रेष्ठता लज्जा शत्रुके प्रति कोप और युद्धसे पलायन नहीं करता है ॥ १३ ॥ यह समस्त कार्य मेरे पूर्वपुरुषगण और पिता मरुत्तने जिस प्रकार संपादन किये हैं दूसरा और कौन उस प्रकार करनेमें समर्थ होगा ॥ १४ ॥ मेरे सब पूर्वपुरुषगण श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले दाता दमगुणशाली संग्राममें अपराङ्मुख ॥ १५ ॥ और महासंग्राम उपस्थित होने पर शत्रुओंके निकट पराक्रम प्रकाश करनेवाले थे मैं इस समय ऐसा क्या कार्य करूं, जो उन्होंने नहीं किया है! अतएव मैं कर्मद्वारा निष्काम कर्मका अनुष्ठान करूंगा ॥ १६ ॥

सतिवित्तेमहायज्ञाःकर्तव्याएवभूभृता॥दातव्यंचात्रकिंचित्रंसीदतामीश्वरोगतिः॥१२॥आभिजात्यंतथालज्जाकोपश्चारिजनाश्रयः॥कार्यंतिस्वधर्मश्चसंग्रामाद पलायनम् ॥ १३ ॥ एतत्सर्वंयथासम्यङ्गत्पूर्वैःपुरुषैःकृतम् ॥ पित्राचमेमरुत्तेनतथातत्केनशक्यते ॥ १४ ॥ तदहंकिंकरिष्यामियत्तुतैःपूर्वजैःकृतम् ॥ ये यज्विनोवरादांताःसंग्रामाच्चानिवर्तिनः ॥१५॥ महत्संग्रामसंमर्देष्वविसंवादिपौरुषाः ॥ क्रमेणाहंयतिष्यामिकस्मैतानभिसंधितुम्॥१६॥अथवातैःस्वयंयज्ञाः कृताःपूर्वजनेश्वरैः ॥ अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तुकारितास्तत्करोम्यहम् ॥ १७ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ इतिसंचिंत्ययज्ञंसचकारैकंनरेश्वरः ॥ यादृशंनचकारान्योवित्तोत्सर्गोपशोभितम् ॥ १८ ॥ द्विजानांजीवनायालंदत्त्वातुसुमहाधनम् ॥ ततःशतगुणंतेषांयज्ञार्थमददान्नृपः ॥ १९ ॥ गावोवस्त्राण्यलं कारंधान्यागारादिकंतथा ॥ प्रत्येकमददात्तेषांसर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥ २० ॥ ततस्तेनयदायज्ञःप्रारब्धोभूभुजापुनः ॥ प्रारब्धेसमखेयष्टुंततोनाल भतद्विजान् ॥ २१ ॥

अथवा मेरे पूर्वपुरुषोंनें स्वयंही अविरत यज्ञ किये थे, अपर किसीको भी वह नहीं कराये, मैं उन्हींका अनुष्ठान करूंगा ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—नरेश्वर ने इस प्रकार चिन्ता करके विपुल धन दानकर एक यज्ञ किया, वैसा यज्ञ पहिले अन्य कोई नहींकर सका था ॥ १८ ॥ उन्होंने उस यज्ञमें ब्राह्मणोंको जीविका निर्वाहके लिये बहुत धन दिया उसकी अपेक्षा शतगुण अन्न दान किया था ॥ १९ ॥ पृथ्वीवासी ब्राह्मणोंमें प्रत्येकको ही उन्होंने गाय, वस्त्र, अलंकार, धान्य, गृह इत्यादि बहुत दिये थे ॥ २० ॥ उसके पीछे जब राजाने फिर यज्ञका अनुष्ठान किया, तब फिर याजक करनेके लिये कोई ब्राह्मण प्राप्त नहीं हुआ ॥ २१ ॥

जिस जिस ब्राह्मणकोही उन्होंने ऋत्विक्कार्यमें वरण करना चाहा, उसीने कहा, मैं यज्ञके लिये अन्यत्र दीक्षित हुआहूं ॥ २२ ॥ आप अन्यको वरण कीजिये ! हे नृपते ! आपने यज्ञकालमें दान करके हमको जितना धन दिया है हमारे अनेकाक यज्ञाम भी वह निःशेष नहीं हुआ ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–संपूर्ण पृथ्वीके ईश्वर होकर भी जब उन्होंने ऋत्विक् करनेके लिये किसी ब्राह्मणको नहीं पाया तब बहिर्वेदीमें दान करनेका यत्न किया ॥ २४ ॥ किन्तु तो भी धनपूर्ण गृहका ब्राह्मणों ने दान ग्रहण नहीं किया ! जब राजा ब्राह्मणोंको दान करनेके निमित्त प्रवृत्त हो, उसमें विफलश्रम हुए अर्थात् ब्राह्मणोंके दान नहीं लेनेसे उनका श्रम व्यर्थ हुआ, तब वह अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगे॥ २५॥ कि अहो ! पृथ्वीके किसी स्थानमें इस समय निर्धन ब्राह्मण नहीं हैं यह अवश्यही सुखका विषय है, किन्तु

यान्यान्वृणोतिसनृपोविप्रानार्त्विज्यकर्मणि ॥ तेतेतमूचुर्यज्ञायवयमप्यत्रदीक्षिताः ॥ २२ ॥ अन्यंवरययद्वित्तंत्वयास्माकंविसर्जितम् ॥ तस्यां तोनास्तियज्ञेषुदद्यास्त्वंनृपतेकथम् ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ नचापऋत्विजोविप्रांस्तदाशेषक्षितीश्वरः ॥ बहिर्वेद्यांतदादानंसदातुमु पचक्रमे ॥ २४ ॥ तथापिजगृहुर्नैवधनसंपूर्णमंदिराः ॥ द्विजायदातुंभूयोऽसौनिर्विण्णइदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ अहोतिशोभनंपृथ्व्यांयद्विप्रोनाधनःक्वचित् ॥ अशोभनंचयत्कोशोविफलोयमयज्विनः ॥ २६ ॥ नार्त्विज्यंकुरुतेकश्चिद्यजमानोखिलोजनः ॥ द्विजानांनचनोदानंददतांसंप्रतीच्छते ॥ २७ ॥ मा र्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःकांश्चिद्द्विजान्भक्त्याप्रणिपत्यपुनःपुनः ॥ स्वयज्ञेऋत्विजश्चक्रेतेप्रचक्रुर्महामखम् ॥ २८ ॥ अत्यद्भुतमिदंचासीद्यदातस्यमही पतेः ॥ सयज्ञोभूत्तदापृथ्व्यांयजमानोऽखिलोजनः ॥ २९ ॥ द्विजन्मनामभून्नासीत्सदस्यस्तत्रकश्चन ॥ यजमानाद्विजाःकेचित्केचित्तेषांतुयाजकाः ॥ ३० ॥

यज्ञके विना मेरा राजकोष विफल होता है, यह अत्यन्त कष्टका कारण है ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंमें इस समय सबही स्वयं यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, इस कारण कोई ऋत्विक् होनेमें सम्मत नहीं है और वह स्वयं ही दान करते हैं, अत एव मेरा दिया दान ग्रहण नहीं करते ॥ २७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले– अनन्तर बारंबार भक्तिसहित प्रणामपूर्वक कई ब्राह्मणोंको उन्हों ने अपने यज्ञमें ऋत्विक् किया और उन्हीं ब्राह्मणों ने वह महायज्ञ संपादन किया ॥ २८ ॥ यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात हुई थी कि, जब राजाका वह महायज्ञ आरंभ हुआ, तब पृथ्वीके मध्य ब्राह्मणोंमें सबही स्वयं यजमान हुए थे ॥ २९ ॥ सुतरां उस यज्ञ

में कोई सभासद नहीं हुआ ! तब ब्राह्मणोंमें कोई स्वयं यजमान हुआ था और कोई उसका याजक हुआ था ॥ ३० ॥ राजा नरिष्यन्तने जिस समय यज्ञ किया था, तब उनके दिये धनद्वाराही पृथ्वीमें ब्राह्मणगण अनेक यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए थे हे मुने ! महाराज नरिष्यन्त जब यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए थे तब पूर्व दिशामें अठारह करोडसे भी अधिक यज्ञ संपादित हुए थे । और पश्चिम दिशामें सात करोड दक्षिण दिशामें चौदह करोड॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और उत्तरदिशामें पचास कोटि यज्ञ हुए । ब्राह्मणोंके यह समस्त यज्ञ एकही समयमें संपादित हुएथे ॥ ३३ ॥ हे विप्र ! पूर्वकालमें मरुत्तके पुत्र विख्यातबलपौरुष राजा नरिष्यन्त ऐसे धर्मात्मा थे॥ ३४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नरिष्यन्तचरितंनामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—नरिष्यन्तके पुत्र दम हुए। वह दुर्वृत्त शत्रुओंको दमन करते

नरिष्यंतोनरपतिरियाजसयदातदा ॥ तत्प्रदातुर्धनैर्यागंकुर्युःपृथ्व्यामशेषतः ॥ ३१ ॥ प्राच्यांकोट्यस्तुयज्ञानामासन्नष्टादशाधिकाः ॥ प्रतीच्यांसप्तैवकोट्योदक्षिणस्यांचतुर्दश ॥ ३२ ॥ उत्तरस्यांचपंचाशदेककालंतदाभवन् ॥ मुनेब्राह्मणयज्ञानांनरिष्यंतोयदाऽयजत् ॥ ३३ ॥ एवंसराजाधर्मात्मानरिष्यंतोऽभवत्पुरा ॥ मरुत्ततनयोविप्रविख्यातबलपौरुषः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनरिष्यंतचरितंनामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ नरिष्यंतस्यतनयोदुष्टारिदमनोदमः ॥ शक्रस्येवबलंतस्यदयाशीलंमुनेरिव ॥ १ ॥ बाभ्रव्यामिंद्रसेनायांसजज्ञेतस्यभूभृतः ॥ नववर्षाणिजठरेस्थितवामातुर्महायशाः ॥ २ ॥ यद्दाहयामासदमंमातरंजठरेस्थितः ॥ दमशीलश्चभवितायतश्चायंनृपात्मजः ॥ ३ ॥ ततस्त्रिकालविज्ञानैःसहितस्यपुरोहितैः ॥ दमइत्यकरोन्नामनरिष्यंतसुतस्यतु ॥ ४ ॥ सदत्तोराजपुत्रस्तुधनुर्वेदमशेषतः ॥ जगृहेसुरराजस्यसकाशाद्वृषपर्वणः ॥ ५ ॥ दुन्दुभेर्दैत्यवर्य्यस्यतपोवननिवासिनः ॥ सकाशाज्जगृहेकृत्स्नमस्त्रग्रामश्चतत्त्वतः ॥ ६ ॥ शक्तेःसकाशाद्वेदांश्चवेदाङ्गान्यखिलानिच ॥ तथार्ष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहेयोगमात्मवान् ॥ ७ ॥

थे उनका इन्द्रकी समान बल और मुनिके समान दया और शीलता थी ॥ १ ॥ दमने बभ्रुकी कन्या इन्द्रसेनाके गर्भसे नरिष्यन्तके डरसे जन्मग्रहण किया । यह महायशा नौ वर्ष माताके जठरमें स्थित रहे थे ॥ २ ॥ इन राजपुत्रके इसप्रकार जठरमें रहनेके समय इनकी माताको दम गुण (इन्द्रियनिग्रह) अवलम्बन करना पडा था और यह राजपुत्र स्वयं भी दमशीलही होंगे ॥ ३ ॥ ऐसा देखकर त्रिकालज्ञ राजपुरोहितों ने उन नरिष्यंतके पुत्रका नाम दम रक्खा राजपुत्र दमने नरराज वृषपर्वा के निकटसे संपूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहणकरी ॥ ४ ॥ ५ ॥ और तपोवननिवासी दैत्यश्रेष्ठ दुन्दुभिके निकटसे सब अस्त्रग्राम प्रयोग और संहारके सहित ग्रहण किये ॥ ६ ॥ उन्होंने शक्ति

मुनिके निकटसे संपूर्ण वेद वेदाङ्ग और आत्मवान् होकर आर्ष्टिषेणके निकट योगशिक्षा ग्रहण करी थी ॥ ७ ॥ दशार्णाधिपति महाबलवान् चारुकर्माकी कन्या सुमनाने पिताके द्वारा स्वयंवरमें नियोजित होकर अपनी अभिलाषासे आये हुए संपूर्ण राजाओंके सामनेही महाबली अस्त्रधारी अपने अनुरूप महात्मा दमको पतित्व में वरण किया था ॥ ८ ॥ ९ ॥ मद्रराजके पुत्र महाबलवान् महानन्द विदर्भाधिपति संक्रन्दनके पुत्र वपुष्मान् और महाधनु नामक उदारचेता राजपुत्र उस सुमनाके प्रति अनुरागी हुए थे ॥ १० ॥ ११ ॥ दुष्ट वैरियोंको दमन करनेवाले, उन दमको राजकन्याने वरण किया । यह देखकर वह कामबाणसे मोहितचित्त हो परस्पर इस प्रकार परामर्श करने लगे ॥ १२ ॥ हम इस रूपशालिनी कन्याको इसके निकटसे बलपूर्वक ग्रहण करके घरको जाँयगे ॥ १३ ॥ इसके पीछे यह वरारोहा स्वयं

तंसुरूपंमहात्मानंगृहीतास्त्रंमहाबलम् ॥ स्वयंवरेकृतापित्राजगृहेसुमनापतिम् ॥८॥सुतादशार्णाधिपतेर्बलिनश्चारुवर्मणः॥पश्यतांसर्वभूतानांयेतदर्थमुपागताः ॥९॥तस्यांचसानुरागोऽभून्मद्रराजस्यवैसुतः॥सुमनायांमहानादोमहाबलपराक्रमः ॥१०॥ तथाविदर्भाधिपतेःपुत्रःसंक्रन्दनस्यच॥वपुष्मान्राजपुत्रश्चमहाधनुरुदारधीः॥११॥तेतदातंवृतंदृष्ट्वादुष्टारिदमनंदमम्॥ मन्त्रयामासुरन्योऽन्यंतत्रानङ्गविमोहिताः॥१२॥एतामस्यबलात्कन्यांगृहीत्वारूपशालिनीम् ॥ गृहंप्रयामस्तस्येयमस्माकंयंग्रहीष्यति ॥१३॥ भर्तृबुद्ध्यावरारोहास्वयंवरविधानतः ॥ तस्येच्छयानोभवित्रीभार्य्याधर्मोपपादिता ॥१४॥ अथनेच्छतिसाकञ्चिदस्माकंमदिरेक्षणा ॥ ततस्तस्यभवित्रीसायोदमंघातयिष्यति ॥ १५ ॥ ॥मार्कण्डेयउवाच॥ ॥इतितेनिश्चयंकृत्वात्रयःपार्थिवनन्दनाः ॥ जगृहुस्तांसुचार्वङ्गीं दमपार्श्वानुवर्त्तिनीम् ॥ १६ ॥ ततःकेचिन्नृपास्तेषांयेतत्पक्षाविचुक्रुशुः॥ चुक्रुशुश्चापरेभूपाःकेचिन्मध्यस्थतांगताः ॥१७॥ततोदमस्तान्भूपालानवलोक्यसमन्ततः ॥ अनाकुलमनावाक्यमिदमाहमहामुने ॥१८॥ ॥दमउवाच॥ ॥ भोभूपाधर्मकृत्येषुयद्वदन्तिस्वयंवरम्॥ दशार्णपतिनाभूपाः कृतेधर्म्येस्वयंवरे ॥ अधर्मोवाऽथवाधर्मोयदेभिर्गृह्यतेबलात् ॥ १९ ॥

वरके विधानानुसार हममें जिसको इच्छानुसार स्वामिबुद्धिसे ग्रहण करे, यह कन्या उसीकी धर्मोपपादिता भार्या होगी ॥ १४ ॥ और यदि यह मदिरेक्षणा हममें से किसीको भी अपनी इच्छानुसार ग्रहण न करे तो जो दमको मारडाले, यह कन्या उसीकी भार्या होगी ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--उन तीन राजपुत्रोंने इसप्रकार निश्चय करके दमके पार्श्ववर्त्ती उस सुन्दरीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस अवसरमें दमकी ओरके कितनेही राजा उनकी निन्दा और भर्त्सना करने लगे और अपर कितनेही राजा क्रोधमें भरगये तथा अन्य किसीने मध्यस्थता अवलम्बन करी ॥ १७ ॥ हे महामुने ! इसके उपरान्त दम उन सब राजाओंको चारों ओर स्थित देखकर अनाकुलचित्तसे कहने लगे ॥ १८ ॥ दमने कहा—हे भूपालगण ! स्वयंवरको जो सब धर्मकार्यमें गिनते हैं, वास्तवमें वह अधर्म है वा

धर्म है ? इन्होंने जो इस स्वयंवरमें प्राप्त हुई कन्याको बलपूर्वक ग्रहण किया है ॥ १९ ॥ यदि स्वयंवर अधर्ममें गिना जाय तो इससे मेरा कार्य नहीं है, यह अन्यकी भार्या हो और यदि उसको आप धर्म कहकर निश्चय करते हैं, तो इस शत्रुलांछित प्राण धारणकी क्या आवश्यकता है ? ॥ २० ॥ हे महामुने ! अनन्तर दशार्णाधिपति महाराज चारुकर्माने सभास्थल निःशब्द कराकर कहा ॥ २१ ॥ हे नृपगण ! दमने धर्माधर्मके संबंधमें जो बात उठाई है, आप लोग इसके संबंधमें ऐसी सम्मति प्रकाश कीजिये जिससे आपका धर्मलोप न हो ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तब कितने ही महीपाल उन राजासे कहने लगे परस्परके अनुरागसे गांधर्वविवाह संपन्न होता है ॥ २३. ॥ यह विवाह क्षत्रियोंके पक्षमेंही श्रेष्ठ है. ब्राह्मण वैश्य वा शूद्रके पक्षमें नहीं है, दमके संगही आपकी इस कन्याका गांधर्व विवाह संपन्न हुआ है ॥ २४ ॥ अतएव हे पार्थिव ! आपकी कन्या उक्त धर्मानुसार दमकी ही भार्या हुई है । जो कामात्मा

यद्यधर्मोनमेकार्यमन्यभार्य्याभविष्यति ॥ धर्मोवातदलंप्राणैर्यैरक्ष्यन्तेऽरिलंघने ॥२०॥ ततोदशार्णाधिपतिश्चारुवर्मानराधिपः॥निःशब्दंकारयित्वाततसदः प्राहमहामुने ॥ २१ ॥ दमेनयदिदंप्रोक्तंधर्माधर्माश्रितंनृपाः ॥ तद्वदध्वंयथाधर्मोममास्यचनलुप्यते ॥ २२ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःकेचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम् ॥ परस्परानुरागेणगान्धर्वोविहितोविधिः ॥ २३ ॥ क्षत्रियाणांपरमयंनविट्शूद्रद्विजन्मनाम् ॥ दममाश्रित्यनिष्पन्नःसचास्यादुहितुस्तव ॥ २४ ॥ इतिधर्माद्दमस्यैषादुहितातवपार्थिव ॥ योऽन्यथा वर्त्ततेमोहात्कामात्मासम्प्रवर्त्तते ॥ २५ ॥ तथाऽपरेतदाप्रोचुर्महात्मानोहिभूभृताम् ॥ पक्षे येभूभृतोविप्रदशार्णाधिपतेर्वचः ॥ २६ ॥ मोहात्किमाहुर्धर्मोऽयंगान्धर्वक्षत्रजन्मनः ॥ नत्वेषशास्तानान्योहिराक्षसःशस्त्रजीविनाम् ॥ २७ ॥ बलाद्विमांयोहरतिहत्वातुपरिपन्थिनः ॥ तस्यैषास्याद्राक्षसेनविवाहेनावनीश्वराः ॥ २८ ॥ प्रधानतरएषोऽत्रविवाहद्वितयेमतः ॥ क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभिःकृतः ॥ २९ ॥ ॥मार्कण्डेयउवाच॥ ॥ अथप्रोचुःपुनर्भूपायैः पूर्वमुदितोनृपः ॥ परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितंवचः ॥ ३० ॥

हैं, वही मोहके वश होकर इसके विरोधी होते हैं ॥ २५ ॥ हे विप्र ! इसके उपरान्त विपक्ष राजाओंकी ओर जो भूपाल थे, वह सब महात्मा दशार्णाधिपतिसे इस प्रकार कहने लगे ॥ २६ ॥ यह मोहके वश होकर क्या कहते हैं, यह गांधर्व विवाह क्षत्रियके पक्षमें तो प्रशस्त हैही नहीं इसके अतिरिक्त अन्य विवाह भी प्रशस्त नहीं हैं शस्त्रजीवियोंका एकमात्र राक्षसविवाह ही प्रशस्त है ॥ २७ ॥ हे अवनीश्वरगण ! जो पुरुष विपक्षका विनाश करके बलात्कारसे इस कन्याको ग्रहण करसकेगा राक्षसविवाहके विधानानुसार यह पत्नी उसीको प्राप्त होगी ॥ २८ ॥ क्षत्रियोंके संबंधमें इन दोनों विवाहके मध्य जब राक्षसविवाहही प्रधान है तब महानन्द इत्यादि राजपुत्रोंने धर्मव्यवहार ही किया है ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—जिन्होंने पहिले राजाओंके सामने परस्प

रानुराग और जातिधर्मविषयक वचन कहे थे, वह सब राजा फिर कहने लगे ॥ ३० ॥ सत्य है. क्षत्रियोंके पक्षमें राक्षसविवाह प्रशस्त और श्रेष्ठ विधि है. किन्तु इस राजकन्याने पिताके अधीन रहकर कमारी अवस्थामें दमको वरा है॥ ३१ ॥ पितृपक्षको हत और आहत करके यदि कन्या हरणकरीजाय उसीको राक्षस विवाह कहते हैं, किन्तु पतिके हस्तगत कन्याको हरण करनेसे वह राक्षस विवाह नहीं होगा ॥ ३२ ॥ सब राजाओंके देखते हुए जब इस सुमनाने दमकोही वरा है, तो यह विवाह गान्धर्वविधानसे संपन्न हुआ है, इसमें फिर राक्षस विधी क्या है ?॥ ३३ ॥ विवाहिता कन्याका कन्यात्व नहीं रहता हे नृपतिगण ! विवाहके संगही कन्याका संबंध जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ जो दमके हाथसे इसको बलपूर्वक ग्रहण करनेमें उद्यत हुए हैं वह बलके गौरवसे ऐसा करसकते हैं, किन्तु यह

सत्यंशस्तोराक्षसोऽपिक्षत्रियाणांपरोविधिः ॥ किन्त्वसौजनकस्वाम्येकुमार्य्यांतुमतोवरः ॥ ३१ ॥ हत्वातुपितृसम्बन्धंबलेनह्रियतेहिया ॥ सराक्षसो विधिःप्रोक्तोनात्रभर्तृकरेस्थिता ॥३२॥ पश्यतांसर्वभूपानामनयायद्वृतोदमः ॥ गान्धर्वस्त्येहनिष्पत्तौविवाहोराक्षसोऽत्रकः ॥ ३३ ॥ विवाहितायाःकन्यायाः यान्यात्वंनैवविद्यते ॥ कन्यायाश्चविवाहेनसम्बन्धःपृथिवीश्वराः ॥ ३४ ॥ तइमेयेबलाद्देनांदमादादातुमुद्यताः ॥ बलिनस्तेयदिततःकुर्वन्तुनतुसाधुतत् ॥ ॥ ३५ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ तच्छ्रुत्वाऽसौदमःकोपकषायीकृतलोचनः ॥ आरोपयामासधनुर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥३६॥ ममापिभार्य्यांबलिभिःप श्यतोह्रियतेयदि ॥ तत्कुलेनभुजाभ्यांवाकोगुणःक्लीबजन्मनः ॥३७॥ धिङ्मास्त्राणिधिक्छौर्य्यंधिक्छरान्धिक्छरासनम् ॥ धिग्व्यर्थमेकुलेजन्ममरुत्तस्यमहा त्मनः ॥३८॥ यदिभार्य्याममिमेमूढाःसमादायबलान्विताः ॥ प्रयान्तिजीवतोधिक्तांममव्यर्थमनुष्यताम् ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दमुखान्ब ली ॥ अथाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदमः ॥ ४० ॥ एषातिशोभनाबालाचार्वङ्गीमदिरेक्षणा ॥ किन्तस्यजन्मनाभार्य्यानयस्येयंकुलोद्भवा ॥ ४१ ॥

सत्कार्य नहीं है ॥ ३५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—दमने यह वचन सुनकर कोपसे लाल नेत्रकरके धनुष्यपर ज्यारोपण पूर्वक कहा ॥ ३६ ॥ मेरे देखते हुए बलवान् यदि बलात्कारसे मेरी भार्याको हरण करते हैं, तब तो मैंने क्लीब (नपुंसक) होकरही जन्मग्रहण किया है फिर मेरे कुल गौरव और दोनों भुजामें ही क्या गुण रहा॥ ॥ ३७ ॥ यदि मेरे जीवित रहते यह मूढ बलयुक्त होकर मेरी भार्या हरण करके चले जाय तो मेरे सब अस्त्र, शौर्य, शरसमूह और शरासनको धिक्कार है और महात्मा मरुत्तके वंशमें मेरे जन्मग्रहण व्यर्थ तथा मेरी व्यर्थ मनुष्यताको भी धिक्कार है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बलवान् महाशत्रुदमनकारी दमने यह बात कहकर फिर महा नन्द इत्यादि सब राजाओं से कहा ॥ ४० ॥ हे सन्मानित भूपालो ! "यह अत्यन्तमनोहर मदिरेक्षणा सत्कुलोत्पन्न सुन्दरी बालिका जिसकी भार्या नहीं हुई, उसका

जन्मही वृथा है" ॥ ४१ ॥ तुम इस प्रकार विचारकर जिससे मुझको पराजयपूर्वक इसको पत्नी करसकोगे संग्राममें वैसाही यत्न करो॥ ४२॥ दम यह कहकर उस काल अन्धकारद्वारा वृक्षराजिके समान राजाओंको आच्छादन करके बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४३॥ उन सब महावीर राजाओंने भी शर, शक्ति, ऋष्टि और मुद्गर इत्यादि परित्याग किये, किन्तु दमने लीलापूर्वकही उन सब अस्त्रोंको काट डाला ॥ ४४॥ हे मुने! उससमय वह महीपालगण दमके छोडे अस्त्र और नरिष्यन्तपुत्र दमभी उनके समस्त अस्त्र छेदन करने लगे॥ ४५॥ राजपुत्रोंके सहित दमका इस प्रकार युद्धहो रहा था इसी अवसरमें खड्ग हाथमें लिये महानन्द दमके सन्मुख आया॥ ४६॥ दमने उस महा युद्धस्थलमें खड्गपाणि उसको आयाहुआ देखकर इन्द्र जिसप्रकार जलकी वर्षा करते हैं, इसी प्रकार बाणोंकी वर्षा आरम्भ करी ॥ ४७ ॥

इतिसञ्चिन्त्यभूपालास्तथायततसंयुगे ॥ यथानिर्जित्यमामेतांपत्नींकुरुतमानिनः॥४२॥इत्याभाष्यततस्तत्रशरवर्षममुंचत ॥ छादयन्पृथिवीपालांस्तमसेवम हीरुहान् ॥४३॥ तेऽपिवीरामहीपालाःशरशक्त्यृष्टिमुद्गरान् ॥ मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्चदमश्चिच्छेदलीलया ॥४४॥ तेऽपितत्प्रहितान्बाणांस्तेषांचासौशरोत्करा न् ॥ चिच्छेदपृथिवीशानांनरिष्यन्तात्मजोमुने ॥ ४५॥ वर्त्तमानेतदायुद्धेदमस्यक्षितिपात्मजैः ॥ प्रविवेशमहानन्दःखड्गपाणिर्यतोदमः॥४६॥ तमायान्तंद मोदृष्ट्वाखड्गपाणिंमहामृधे॥मुमोचशरवर्षाणिवर्षाणीवपुरन्दरः॥४७॥तदस्त्राणिततस्तानिशरजालानितत्क्षणात् ॥ महानन्दःप्रचिच्छेदखड्गेनान्यानवंचयत् ॥ ॥४८॥ततोरोषात्समारुह्यतंदमस्यतदारथम् ॥ महानन्दोमहावीर्योदमेनयुयुधेसह ॥४९॥ बहुधायुध्यमानस्यमहानन्दस्यलाघवात् ॥ दमोमुमोचहृदयेशरं कालानलप्रभम् ॥ ५०॥ तंलग्नमात्मनोत्कृष्यविभिन्नेनततोहृदा ॥ दमंप्रतिविचिक्षेपमहानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥५१॥ पतन्तंचैनमुल्काभंशक्त्याचिक्षेपतंद मः ॥ शिरोवेतसपत्रेणमहानन्दस्यचाच्छिनत् ॥ ५२ ॥ तस्मिन्हतेमहानन्देप्राचुर्य्येणपराङ्मुखाः ॥ बभूवुःपार्थिवास्तस्थौवपुष्मान्कुण्डिनाधिपः ॥ ५३ ॥

महानन्दने तत्काल खड्गद्वारा उनके अस्त्र समूह और शरजालको छेदन किया। हाथकी लाघवतासे यह कार्य इतनी शीघ्र संपन्न किया कि अन्यान्य राजा उसको देख भी नहीं सके) ॥ ४८ ॥ अनन्तर महावीर्यवान् महानन्द क्रोधमें भराहुआ दमके रथपर चढकर उनके संग युद्ध करने लगा ॥ ४९ ॥ महानन्दके बहुत काल पर्यन्त युद्ध करनेपर फिर दमने अत्यन्त लघुहस्तसे उसके हृदयमें कालाग्निकी समान प्रभायुक्त बाण छोडा ॥ ५० ॥ महानन्दने हृदयमें लगे हुए उस बाणको स्वयंही हृदयसे निकालकर विभिन्न हृदयसेही दमके ऊपर उज्ज्वल असि चलाई॥ ५१॥ दमने उस उल्काकी समान असिके गिरते गिरतेही शक्तिद्वारा छेदन करके तत्काल वेतस पत्र बाणसे महानन्दका मस्तक काट डाला॥ ५२॥ महानन्दके मरतेही अधिकांश राजा युद्धसे पराङ्मुख हुए, केवल कुण्डिनाधिपति वपुष्मान् स्थिति करने लगा॥ ५३॥

वह दाक्षिणात्य–भूपालतनय बलके गर्वसे मत्त वपुष्मान् रणका आश्रय लेकर दमके सहित युद्ध करने लगा ॥ ५४ ॥ रणस्थलमें दमने तत्काल उस युद्ध करतेहुए वपुष्मान्की उग्र तलवार व सारथी मस्तक और ध्वजा काट डाली ॥ ५५ ॥ तब वपुष्मानने खड्गके कट जानेपर बहुत कांटोंसे युक्त गदा ग्रहण करी, किन्तु दमने यह गदा उसके हाथमें रहते रहतेही काट डाली ॥ ५६ ॥ फिर वपुष्मान्ने अन्य उत्कृष्ट अस्त्र ग्रहण किया, परन्तु दमने उसको उसी समय बाणोंसे विद्ध करके भूमिमें गिरादिया ॥ ५७ ॥ राजपुत्र वपुष्मान्ने भूमिमें गिर विह्वलाङ्ग और कम्पितकलेवर होनेसे युद्धकी इच्छा छोडदी ॥ ५८ ॥ मनस्वी दमने उसको इस अवस्था और युद्धमें अनिच्छुक देखकर छोडदिया और सुमनाको लेकर प्रसन्नचित्तसे चले गये ॥ ५९ ॥ अनन्तर दशार्णाधिपतिने

दमेनयुधेचासौबलगर्वमदान्वितः ॥ दाक्षिणात्यमहीपालतनयोरणगोचरः ॥५४॥ युध्यमानस्यतस्योग्रंकरवालंसवेलघु ॥ चिच्छेदसारथेश्चैवशिरःसंख्येतथा ध्वजम् ॥५५॥ छिन्नखड्गोगदांसोऽथजग्राहबहुकण्टकाम् ॥ तामप्यस्यसचिच्छेदकरस्थामेवसत्वरः ॥ ५६ ॥ यावदन्यत्समादत्तेसवपुष्मान्वरायुधम् ॥ तावच्छरेणतंविद्ध्वादमोभूमावपातयत् ॥ ५७ ॥ सपातितस्ततोभूमौविह्वलाङ्गःसवेपथुः ॥ विनिवृत्तमतिर्युद्धाद्बभूवक्षितिपात्मजः ॥५८॥ तमालोक्यतथाभूतमयुद्धमतिमात्मवान् ॥ उत्सृज्यादायसुमनांसुमनाःप्रययौदमः ॥ ५९ ॥ ततोदशार्णाधिपतिःप्रीतिमानकरोत्तयोः ॥ दमस्यसुमनायाश्चविवाहंविधिपूर्वकम् ॥ ॥६०॥कृतदारोदमस्तत्रदशार्णाधिपतेःपुरे ॥ स्थित्वाऽल्पकालंप्रययौसभार्योनिजमन्दिरम् ॥ ६१ ॥ दशार्णाधिपतिश्चासौदत्त्वानागांस्तुरङ्गमान् ॥ रथगोऽश्वखरोष्ट्रांश्चदासीदासांस्तथाबहून् ॥ ६२ ॥ वस्त्रालङ्कारचापादिवरोपस्करमासनम् ॥ अन्यैस्तैश्चतथाभाण्डैः परिपूर्णंव्यसर्जयत् ॥ ६३ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरितेत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सतांलब्ध्वातथापत्नींसुमनांसुमहामुने ॥ प्रणम्यसपितुः पादौमातुश्चक्षितिपात्मजः ॥ १ ॥ साचतौश्वशुरौसुभ्रूर्नाममसुमनातदा ॥ ताभ्यांतौचतदाविप्रआशीर्भिरभिनन्दितौ ॥ २ ॥

प्रसन्नचित्तसे दम और सुमनाका विवाहकार्य विधिपूर्वक संपादन किया ॥ ६० ॥ दम स्त्री ग्रहण कर दशार्णाधिपतिके पुरमें कुछ काल रहे और फिर भार्याके सहित अपने घरको चलेगये ॥ ६१ ॥ दशार्णाधिपतिने उस समय अनेक हाथी, घोडे, रथ, गौ, खर, ऊंट, दास, दासी ॥ ६२ ॥ वस्त्र, अलंकार, धनुष इत्यादि अनेक प्रकारकी बहुमूल्य सामग्री यौतुकरूपसे दानपूर्वक धन रत्ना दिपूर्ण करके उनको विदा किया ॥ ६३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायां त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे महामुने ! क्षितिपालनंदन दमने सुमनाको पत्नीरूपमें लाभ कर फिर माता पिताके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १ ॥ और सुन्दरी सुमनाने भी सास और श्वशुरको प्रणाम किया । हे विप्र ! तब उन्होंने भी दोनोंको आशीर्वाद वचनोंके द्वारा अभिनन्दन किया ॥ २ ॥

जब स्त्री ग्रहण करके दम दशार्णाधिपतिके पुरसे आगये, तब नरिष्यन्तके पुरमें महोत्सव आरंभ हुआ ॥ ३ ॥ महीपति नरिष्यन्त दशार्णेश्वरके सहित वैवाहिक संबंध और पुत्रके द्वारा अनेक राजाओंके हारनेका संवादे सुनकर परमसंतोषको प्राप्तहुए ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त राजपुत्र दम विचित्र उद्यान वनप्रदेश प्रासाद और पर्वत इत्यादि स्थानोंमें सुमनाके संग विहार करनेलगे ॥ ५ ॥ दमके संग इसप्रकार विहार करते करते कुछ काल पीछे दशार्ण राजाकी कन्या सुमनाने गर्भ धारण किया ॥ ६ ॥ इसीसमय राजा नरिष्यन्त भोगसमूह उपभोगपूर्वक वयसकी परिणति अवस्था अर्थात् वृद्धावस्था देख दमको राज्यमें अभिषिक्तकर ॥ ७ ॥ यशस्विनी पत्नी इन्द्रसेनाके सहित वनमें चलेगये और वहां वानप्रस्थ विधानानुसार वास करनेलगे ॥ ८ ॥ एकसमय दुराचार दाक्षि

महोत्सवश्चसंजज्ञेनरिष्यन्तस्यवैपुरे ॥ कृतदारेचसंप्राप्तेदशार्णाधिपते पुरात् ॥ ३ ॥ सम्बन्धिनंदशार्णेशंजितांश्चपृथिवीश्वरान् ॥ श्रुत्वापुत्रेणमुमुदेनरिष्यं तोमहीपतिः ॥ ४ ॥ सोऽपिरेमेसुमनयामहाराजसुतोदमः ॥ वरोद्यानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु ॥ ५ ॥ अथकालेनमहतारममाणाद्मेनसा ॥ अ वापगर्भंसुमनादशार्णाधिपतेः सुता ॥ ६ ॥ सोऽपिराजानरिष्यन्तोभुक्तभोगोमहीपतिः ॥ वयःपरिणतिंप्राप्यदमंराज्येऽभिषिच्यच ॥ ७ ॥ वनंज गामेन्द्रसेनापत्नीचास्यतपस्विनी ॥ वानप्रस्थविधानेनसतत्रसमतिष्ठत ॥ ८ ॥ दाक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तः संक्रन्दनसुतोवने ॥ वपुष्मान्समृगान्हन्तु यथावल्पपदानुगः ॥ ९ ॥ सतंदृष्ट्वानरिष्यन्तंतापसंमलपङ्किनम् ॥ इन्द्रसेनांचतत्पत्नींतपसातिसुदुर्बलाम् ॥ १० ॥ पप्रच्छकस्त्वंभोविप्रः क्षत्रियो वावनेचरः ॥ वानप्रस्थमनुप्राप्तोवैश्योवाममकथ्यताम् ॥ ११ ॥ ततोमौनव्रतीभूपोनहितस्योत्तरंददौ ॥ इन्द्रसेनाचतत्सर्वमाचष्टास्मैयथातथम् ॥ १२ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ज्ञात्वातश्चनरिष्यन्तंवपुष्मान्पितरंरिपोः ॥ प्राप्तोऽसीतिवदन्कोपाज्जटासुपरिगृह्यच ॥ १३ ॥

णात्य राजा संक्रन्दनका पुत्र वपुष्मान् अल्प अनुगामी मनुष्योंके सहित उस वनमें मृगयाके लिये उपस्थितहुआ ॥ ९ ॥ वहां मैलसे युक्त शरीरवाले तपस्वी रिष्यन्त और उनकी पत्नी तपसे दुबलेअंग हुई इन्द्रसेनाको देखकर ॥ १० ॥ पूछा कि, तुम कौन हो ? ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य, कौन जाति तुम वान प्रस्थ अवलम्बन करके वनवासी हुए हो ? सो मुझसे कहो ॥ ११ ॥ राजा मौनव्रती होनेसे इस बातका उत्तर नहीं देसके, किन्तु इन्द्रसेनाने उससे सब वृत्तान्त यथावत् कहदिया ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उनको शत्रुका पिता नरिष्यन्त जानकर वपुष्मान्‌ने "पाया है" शब्द उच्चारणपूर्वक क्रोधसे उनकी जटा पकडली ॥ १३ ॥

उस काल इन्द्रसेना हाहाकार शब्द और बाष्पगद्गद स्वरसे रोनेलगी । तब दुराचारीने उसीसमय म्यानसे तलवार खैंचकर कहा ॥ १४ ॥ " जिसने मुझको समरमें परास्त किया था जो मेरी सुमनाको हरकर लेगया है, आज उस दमके पिताको नष्ट करता हूं, दम आनकर रक्षाकरै ॥ १५॥ कन्याके अर्थ आयेहुए सब राजपुत्रोंको जिसने अपमानित किया है, उस दुर्मति दमके पिताका आज मैं वध करताहूं ॥ १६ ॥ जो दुरात्मा स्वभावसे ही योद्धाओंको दमन करनेवाला है, आज उसी शत्रुके पिताको निहत करताहूं, दम आनकर निवारण करै " ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--यह कहकर दुरात्मा राजा वपुष्मान्ने रोतीहुई इन्द्रसेनाके सामनेही नरिष्यन्तका शिर काटडाला ॥ १८ ॥ तब मुनिगण और अपरापर वनवासी सब उसको धिक्कार देनेलगे फिर वह भी नरिष्यन्तको

हाहेतिचन्द्रसेनायांरुदयांबाष्पगद्गदम् ॥ चकर्षकोपात्खड्गंचवाक्यंचेदमुवाचह॥ १४॥निर्जितःसमरेयेनयेनमेसुमनाहृता॥दमस्यतस्यपितरंहानिष्येऽवतुतन्दमः ॥१५॥येनाखिलमहीपालपुत्राःकन्यार्थमागताः॥अवधूताहानिष्येऽहंपितरंतस्यदुर्मतेः॥१६॥यौवनास्त्रस्वरूपेषुमदोयस्यदुरात्मनः ॥ सदमोवारयत्वेषहन्मित स्यारिपोगुरुम् ॥१७॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वासदुराचारोवपुष्मानवनीपतिः ॥ क्रंदन्त्यामिन्द्रसेनायांशिरश्छिच्छेदतस्यच॥१८॥ततोधिग्धिङ्ङ्घ निजनाअन्येचवनवासिनः ॥ तमूचुःसचतंहत्वाजगामस्वपुरंवनात् ॥१९॥ गतेतस्मिन्विनिश्वस्यसेन्द्रसेनावपुष्मति ॥ प्रेषयामासपुत्रस्यसमीपंशूद्रतापसम् ॥२०॥ गच्छैथाआशुमेपुत्रंदमंब्रूहिवचोमम ॥ अभिज्ञोह्यासिमद्भर्तृवृत्तान्तंप्रोच्यतेऽत्रकिम् ॥ २१ ॥ तथापिवाच्यःपुत्रोमेयद्ब्रवीम्यातिदुःखिता ॥ लंघनाक्षी दृशींप्राप्तांविलोक्यैतांमहीपतेः ॥ २२ ॥ मद्भर्त्राऽधिकृतोराजाचतुर्णांपरिपालकः ॥ त्वमाश्रमाणांकिंयुक्तंतापसान्यन्नरक्षसि ॥२३॥ भर्तांममनारिष्यन्तस्ता पसस्तपासिसंस्थितः ॥ विलपन्त्यास्तथानाथोयथानासितथात्वयि ॥ २४ ॥

इस अवस्थामें देखकर वनसे अपने पुरमें चलागया ॥ १९ ॥ वपुष्मानके चले जानेपर इन्द्रसेनाने लम्बे श्वास छोड़कर एक शूद्रतापसको पुत्रके पास भेजा ॥ २० ॥ उससे कह दिया कि, तुम शीघ्र जाकर हमारे पुत्र दमसे हमारा वृत्तान्त कहो । तुम मेरे स्वामीका वृत्तान्त समस्तही जानतेहो । अतएव तुमसे और इस विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २१ ॥ किन्तु तो भी महीपतिका उपस्थित ऐसा अपमान देखनेसे अत्यन्त दुःखित होकर मैं जो कहतीहूं मेरे पुत्रसे वह सब कहो ॥ २२ ॥ तुम राजा हो, तुम चारों आश्रमोंके प्रतिपालक भर्त्ता नियुक्त हुए हो, किन्तु तुम जो तपस्वीलोगोंकी रक्षा नहीं करते, यह क्या तुमको उचित है ? ॥ २३ ॥ मेरे स्वामी नरिष्यन्त तपस्वी होकर तपस्या करते थे ! किन्तु तुम रक्षा कर्त्ताके वर्त्तमान होते भी अनाथकी समान विना अपराध उनके केश खेंचकर

मेरे विलाप करते करते वपुष्मान्‌ने उनको मार डाला है। तुम्हारे संबंधमें यह हुआ कि, तुमने राजा होकर इस प्रकार ख्याति लाभ करी ॥ २४ ॥ २५ ॥ इस अवस्थामें जिससे धर्मलोप न हो उसीके उपयुक्त कार्य करो। मैं तापसी हूं, इससे अधिक और मुझको कहना उचित नहीं है॥ २६ ॥ तुम्हारे पिता एक तो वृद्ध थे, इसपर भी तपस्वी और फिर वह किसी अपराधमें अपराधी भी नहीं थे ऐसी अवस्थामें जो उनका वध किया है, अब इसके संबंधमें जो कर्त्तव्य हो, उस विषयकी भलीभाँति चिन्ताकरो ॥ २७ ॥ तुम्हारे शास्त्रवेत्ता वीरमंत्री विद्यमान हैं उनसे परामर्श करके इस अवस्थामें जो कर्तव्य हो, वह करो ॥ २८ ॥ हे नराधिप ! तुम्हारे पिता महाराज नरिष्यन्तने मृत्युके समय कहा है कि, "मैं तापस हूं, इन विषयमें मेरा कुछ अधिकार नहीं है तुम्ही इसका प्रतिकार करना" ॥ २९ ॥ विदूरथके पिता जिसप्रकार यवनके

आकृष्यकेशेषुबलादपराधंविनाततः ॥ हतोवपुष्मताख्यातिमितितेभूपतिर्गता ॥ २५ ॥ एवंस्थितेतत्क्रियतांयथाधर्मोनलुप्यते ॥ तथाचनैववक्तव्यंमातापसीयतः ॥ २६ ॥ पितावृद्धस्तपस्वीचनापराधनेदूषितः ॥ निहतोयेनयत्तस्यकर्तव्यंतद्विचिन्त्यताम् ॥२७ ॥ सन्तितेमन्त्रिणोवीराःसर्वशास्त्रार्थवेदिनः॥ तैः सहालोच्ययत्कार्य्यमेवंभूतेकुरुष्वतत् ॥ २८॥ नास्माकमधिकारोऽत्रतापसांनराधिप ॥ कुरुष्वैतदितीत्थंत्वमेवंभूपतिभाषितम् ॥ २९ ॥ विदूरथस्य जनकोयवनेनयथाहतः ॥ तथायंतवपुत्रस्यकुलंतेनविनाशितम् ॥ ३० ॥ जम्भस्यासुरराजस्यपितादष्टोभुजङ्गमैः ॥ तेनाप्यखिलपातालवासिनः पन्नगाहताः ॥ ३१ ॥ पराशरेणपितरंशक्तितंरक्षसाऽऽहतम् ॥ श्रुत्वाऽग्नौपातितंकृत्स्नंरक्षसामभवत्कुलम् ॥३२॥ अन्यस्यापिस्ववंशस्यलंघनाक्रियतेहिया॥ तांनालंक्षत्रियःसोढुंकिंपुनःपितृमारणम् ॥ ३३ ॥ नायंपितातेनिहतोनास्मिंश्छस्त्रंनिपातितम् ॥ त्वामत्रनिहतंमन्येत्वयिशस्त्रंनिपातितम् ॥ ३४ ॥ बिभेत्यस्यहिकःशस्त्रंन्यस्तंयेनवनौकसाम् ॥ तवभूपस्यपुत्रस्यमाबिभेतुबिभेतुवा ॥ ३५ ॥

द्वारा निहत हुएथे उसीप्रकार हे पुत्र ! तुम्हारे पिताकाभी वध करके वपुष्मान्‌ने तुम्हारे कुलको नष्ट किया है ॥ ३० ॥ असुरराज जम्भके पिताको जब सर्पोंने काटा था, तब जंभने संपूर्ण पातालवासी पन्नगोंको नियत किया था ॥ ३१ ॥ और राक्षसके द्वारा पिता शक्तिको निहत हुआ सुनकर पराशरने संपूर्ण राक्षसकुलको अग्निमें पातित अर्थात् दग्ध किया था॥ ३२॥ अपने वंशके अन्य किसीका अपमान होनेपर क्षत्रिय जब उसको भी सहन नहीं करसकते, तो फिर पिताके वधकी बात क्या कहूं ? ॥ ३३ ॥ मेरे विचारसे तुम्हारे पिता निहत नहीं हुए हैं, उनके प्रति शस्त्रपातभी नहीं हुआ है इसमें तुम्ही निहत हुए हो और तुम्हारे ऊपरही शस्त्र निपतित हुआ है ॥ ३४ ॥ जो व्यक्ति वनवासियों के ऊपर शस्त्र चलाता है उसका कौन भय करता है और उसका पौरुष क्या है ?

वह पापी है, तुम उनके पुत्र और राजा हो, तुम यदि शत्रुका विनाश करो तो सब तुमसे भय करेंगे। इसके अन्यथा होनेसे कोई भी तुमसे भय नहीं करेगा इसकारण तुम्हारे राज्यशासनमेंभी विघ्न होगा॥ ३५॥ यह अपमान तुम्हाराही हुआ है अतएव हे महाराज ! भृत्यज्ञाति और बान्धवोंके सहित वपुष्मान्‌के संबंधमें जो कर्त्तव्य है वह करो॥ ३६॥ मार्कण्डेयजी बोले—मनस्विनी इन्द्रसेनाने; तापससे यह सब बात कही और फिर उसको बिदा दे—पतिके देहको आलिंगनपूर्वक अनलमें प्रवेश किया॥ ३७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायामेकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—शूद्रतापसने इन्द्रसेनाकी इसप्रकार आज्ञा पाय, दमके समीप जाय, उनके पिताकी मृत्युका संवाद और रानी इन्द्रसेनाने जिसप्रकार आज्ञा दी थी, वह सब कहा ॥ १ ॥ जब तापसने पिताके वध होनेका वृत्तान्त आदिसे

तवेयंलंघनायुक्तायदस्मिंस्तत्समाचर॥वपुष्मतिमहाराजसभृत्यज्ञातिबान्धवे ॥ ३६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतिसंक्रान्तसन्देशमिन्द्रसेनाविसृज्यतम् ॥ पतिदेहमुपाश्लिष्यविवेशाग्निंमनास्विनी ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरितएकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच॥ इन्द्रसेनासमाज्ञप्तःसगत्वाशूद्रतापसः ॥ समाचष्टयथापूर्वंदमायनिधनंपितुः॥१॥ तापसेनसमाख्यातेदमस्तेनपितुर्वधे ॥ क्रोधेनातीवजज्वालहविषेवाग्निरुद्धत ॥२॥सतुक्रोधाग्निनाधीरोदह्यमानोमहामुने॥करंकरेणनिष्पिष्यवाक्यमेतदुवाचह॥३॥अनाथइवमेतातोमयिपुत्रेतुजीवति॥घातितःसुनृशंसेनपरिभूयकुलंमम॥ ॥ ४ ॥ तापंकरोम्यहंकिंवाप्येषक्लैब्यात्क्षमाम्यहम् ॥ दुर्वृत्तशान्तौशिष्टानांपालनेऽधिकृतावयम् ॥ ५ ॥ पितरंचापिनिहतंदृष्ट्वाजीवन्तिशत्रवः॥तत्किमेतेन हुनाहातातेतिचकिंपुनः॥६॥विलापेनात्रयत्कृत्यंतदेषोऽत्रकरोम्यहम् ॥ यद्यहंतस्यरक्तेनदेहोत्थेनवपुष्मतः॥नकरोमिगुरोस्तृप्तिंतत्प्रवेक्ष्येहुताशनम् ॥ ७ ॥

अन्ततक वर्णन किया, तब राजा दम घृताहुतिसे उठीहुई अग्निके समान क्रोधसे जल उठे ॥ २ ॥ हे महामुने ! वह स्वभावसे धीर होनेपर भी उस काल क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो हाथसे हाथ मलकर कहने लगे ॥ ३॥ मुझ पुत्रके जीवित रहते वंशका अपमान करके नृशंसने मेरे पिताको अनाथ की समान वध किया है ॥ ४ ॥ मैं तापकरूं या नपुंसकतासे क्षमाकरू मैं दुष्टोंका दमन और शिष्ट पुरुषोंके पालन करनेमें नियुक्त हुआहूं॥ ५॥ किन्तु पिताको निहत देखकर भी मेरे शत्रु अभीतक जीवित हैं, (सुतरां मैं नपुंसकके समान उनको क्षमा करता हूं, इस प्रकार जनापवाद अवश्य उपयुक्तही कहना चाहिये।) अतएव अधिक बातचीतका क्या प्रयोजन है अथवा 'हा तात !' इस भाँति विलाप करनेसेही क्या होगा ॥ ६ ॥ अब जो कर्त्तव्यहै, वह मैं करता हूं यदि मैं वपुष्मान्‌के देहसे निकले रक्तद्वारा पिताका तर्पण न करूं तो

अनलमें प्रवेश करूंगा ॥ ७ ॥ यदि युद्धमें उसको मारकर उसके शोणितसे मृतपिताका उदक कर्म और मांसद्वारा (राक्षसकुलोत्पन्न) ब्राह्मणोंको भोजन न करासकूं और उसके मांससे पितरोंको पिंडदान न करूं, तो मैं अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ ८ ॥ असुर, देव, यक्ष, गंधर्व, विद्याधर और सिद्धगण भी यदि उसकी सहायता करें तो तत्काल उनको भी मैं क्रोधसहित अस्त्राग्निद्वारा भस्म करूंगा ॥ ९ ॥ उस शौर्यहीन, अधार्मिक, निन्दित दाक्षिणात्यको समरमें निहत करके फिर मैं संपूर्ण पृथ्वीको भोग करूंगा अथवा उसके मारनेमें असमर्थ होकर अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ १० ॥ मेरे वनवासी मौनव्रती, तपोनिरत वृद्ध पिताके उद्विग्न होकर शान्तिवचन कहनेपर भी जिस दुर्मतिने उनका वध किया है, मैं अभी समस्त बन्धु, मित्र, पदाति, हस्ती और सेनासहित उसको संहार करूँगा ॥ ११ ॥ मैं अब खड्ग और धनुषको ग्रहण कर, रथपर चढ शत्रुकी सेनामें उपस्थित हो,उनके जिस प्रकार संहारकार्यमें प्रवृत्त होता हूं, वह सब देवगण देखें ॥ १२ ॥ आज

तच्छोणितेनोदककर्मतस्यमांसेनसम्यग्द्विजभोजनंच ॥ कुर्यांपितुस्तस्यचपिंडदानंनचेत्प्रवेक्ष्यामिहुताशनंतत् ॥ ८ ॥ साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरासिद्धसंघाः ॥ कुर्वन्तिचेत्तानपिचास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येषरुषासमेतः ॥ ९ ॥ निःशूरमाधार्मिकमप्रशस्तंतंदाक्षिणात्यंसमरे निहत्य ॥ भोक्ष्ये ततोऽहंपृथिवींचकृत्स्नांवह्निंप्रवेक्ष्याम्यनिहत्यतंवा ॥ १० ॥ सुदुर्मतिंतापसवृद्धघातिनंवनस्थगंसाधुविधिंविदग्धगम् ॥ हन्ताहमद्याखिलबन्धुमित्रपदातिहस्त्यश्वबलैःसमेतम् ॥ ११ ॥ एषोऽहमादायधनुःसखड्गोरथीतथैवारिबलंसमेत्य ॥ करोमिवैयत्कदनंसमस्ताःपश्यन्तुमेदेवगणाःसमेताः ॥ १२ ॥ योयःसहायोभवितायतस्यमयासमेतस्यरणायभूयः ॥ तस्यैवनिःशेषकुलक्षयायसमुद्यतोऽहंनिजबाहुसैन्यः ॥१३॥ यदिकुलशिखरोऽस्मिन्संयुगेदेवराजः पितृपतिरथचोग्रंदण्डमुद्यम्यकोपात्॥धनपतिवरुणार्कारक्षितुन्तंयतन्तेनिशितशरवरौघैर्घातयिष्येतथापि ॥१४॥ नियतमतिरदोषःकाननाखण्डलोकानिपतितफलभक्षःसर्वभूतेषुमैत्रः॥प्रभवतिमयिपुत्रेहिंसितोयेनतातःपिशितरुधिरतृप्तास्तस्यसन्त्वद्यगृध्राः॥१५॥इतिश्रीमार्कंडेयपुराणेदमचरितेद्वात्रिंशदधिकेशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतिप्रतिज्ञायतदानरिष्यंतसुतोदमः ॥ कोपामर्षविवृत्ताक्षःश्मश्रुमावृत्यपाणिना ॥ १ ॥

वह मेरे संग संग्राममें प्रवृत्त होनेपर जो जो उसका सहायक होगा, अपनी इन स्वीय बाहुरूप सेनाके द्वारा तत्काल उनका भी समस्त कुलक्षय करनेकेलिये मैं उद्यत हुआ हूं ॥ १३ ॥ इस युद्धमें वज्रहस्त इन्द्र, क्रोधसहित उग्र दण्ड उद्यत करके यम, अथवा कुवेर वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा करनेका यत्न करें तो भी मैं शाणित श्रेष्ठ बाणोंके द्वारा उनका विनाश करूंगा ॥ १४ ॥ मुझ प्रभावशाली पुत्रके वर्त्तमान रहतेभी जिसने मेरे संयतचित्त, निर्दोष, वनवासी, गिरेहुए फलमात्रसे जीविका निर्वाह करनेवाले और सर्व प्राणियोंमें मैत्रीपरायण पिताको वध किया है आज उसके मांस और रुधिरसे गृध्रकुल तृप्ति लाभ करें ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायां द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३२॥ मार्कण्डेयजी बोले—नारिष्यन्तपुत्र दमने इसप्रकार प्रतिज्ञा करके कोप और अमर्षमें

भर घूर्णित नेत्रोंसे हाथसे श्मश्रुआवरणपूर्वक मूछोंको चढाया॥ १॥ "हा हतोस्मि" कह कर पिताकी चिन्ता और दैवकी निन्दा करनेलगे। इसके पीछे पुरोहितोंको बुलाकर सब मंत्रियों के सामने कहा ॥ २ ॥ दम बोले पिताजी स्वर्गमें चलेगये हैं, शूद्र तपस्वीने जो कहा वह आप जानही चुके हैं अब इससमय जो करना चाहिये, वह आप कहिये ॥ ३ ॥ सबके शासनकर्ता वह नृप वृद्धावस्थामें वानप्रस्थ व्रत अवलम्बनपूर्वक तपस्वी होकर मौनव्रती थे, वपुष्मानूके पूछनेपर मेरी माता इन्द्रसेनाने ॥ ४ ॥ वपुष्मानूको सब सत्य परिचय दिया। तब उस दुष्टात्माने खड्ग खैंचकर बायें हाथसे ॥ ५ ॥ लोकनाथको अनाथकी समान पकडकर मारडाला है। मेरी सती माता मुझ मन्दभागी और श्रीहीनको धिक्कार देतीहुई मेरे पिता उन नीरष्यन्तको आलिंगनपूर्वक अग्निमें प्रवेश करके स्वर्गको चलीगई है ॥ ६ ॥ ७ ॥

हाहतोऽस्मीतिपितरंध्यात्वादैवंविनिंद्यच ॥ प्रोवाचमंत्रिणःसर्वानानिनायपुरोहितम् ॥ २ ॥ ॥ दमउवाच ॥ ॥ यदत्रकृत्यंतद्भूततातेप्राप्तेसुरालयम् ॥ श्रुतंभवद्भिर्यत्प्रोक्तंतेनशूद्रतपस्विना ॥ ३ ॥ वृद्धस्तपस्वीसनृपोवानप्रस्थव्रतेस्थितः ॥ मौनव्रतधरोऽशस्त्रोमन्मात्राचेंद्रसेनया ॥ ४ ॥ प्रोक्तंसंसृष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यंवपुष्मते ॥ तेनापिखड्गमाकृष्यजटांसव्येनपाणिना ॥ ५ ॥ धृत्वाजघानदुष्टात्मालोकनाथमनाथवत् ॥ माताचसंदिश्यहिमांधिक्छब्दंब्रुवतीसती ॥६॥ मंदभाग्यंचनिःश्रीकंप्रविष्टाहव्यवाहनम् ॥ तमालिंग्यनरिष्यंतंप्रयातात्रिदशालयम् ॥ ७ ॥ सोऽहमद्यकरिष्यामियन्मेमातुरुदीरितम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातंसैन्यंचपरिकल्प्यताम् ॥८॥ अनिर्याप्यपितुर्वैरमहत्वापितृघातकम् ॥ अकृत्वाचवचोमातुर्जीवितुंकिमिहोत्सहे ॥९॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच॥ मंत्रिणस्तद्वचःश्रुत्वाहाहेत्युक्तातथाचतत् ॥ कृतवंतोविमनसःसभृत्यबलवाहनाः ॥ १० ॥ निर्ययुःसपरीवाराःपुरस्कृत्यदमंनृपम् ॥ गृहीत्वाचाशिषोविप्रात्रिकालज्ञात्पुरोधसः ॥ ११ ॥ अहिराडिवनिःश्वस्यदमःप्रायाद्वपुष्मतम् ॥ सीमापालादिसामंतान्निघ्नन्याम्यांदिशंत्वरा ॥ १२ ॥

माताने मुझको जिसप्रकार आज्ञा कहलाभेजी है, मैं अब उसीके अनुसार कार्य करूंगा हाथी, घोड़े, रथ, और पैदल यह चतुरङ्ग सेना सज्जितहो॥८॥पिताका वैर लेनेके निमित्त पितृघातकको विना वध किये और माताकी आज्ञा विना पालन किये मैं जीवन धारणमें किसप्रकार उत्साही हूंगा॥९॥मार्कण्डेयजी बोले मंत्रियोंने उनके यह वचन सुन हाहाकार शब्दद्वारा शोक प्रकाश कर उदासमनसे राजाकी आज्ञानुसार कार्य किया और वह भृत्य, सैन्य तथा बल वाहनके सहित ॥ १० ॥ (खड्ग शक्ति और ऋष्टि हाथमें लिये) सपरिवार निकले। तब दम भी त्रिकालज्ञ विप्र पुरोहितोंका आशीर्वाद ग्रहण कर ॥ ११ ॥ उरगराजके समान श्वास छोड़ते

हुए सीमापालादि सामन्तगणोंको विनाश करते करते शीघ्रतासे दक्षिणदिशामें वपुष्मान्के लिये गये ॥ १२ ॥ परिवार कुटुम्ब और आमात्यगणोंके सहित योद्धाके देशमें दम आये हैं, यह संवाद पाकर संक्रन्दनके पुत्र वपुष्मान्ने भी अमर्षमें पूर्ण हो ॥ १३ ॥ अविचलितचित्तसे अपनी सेनाको युद्धके लिये आज्ञा दी और नगरसे बाहर जाय यह कहकर दूत भेजा ॥ १४ ॥ कि रे क्षत्रियाधम ! तू अत्यन्त शीघ्र आ भार्याके सहित नरिष्यन्त तेरी प्रतीक्षा करते हैं, इस कारण तू शीघ्र मेरे निकट आगमन कर ॥ १५ ॥ यह सब रुधिरके प्यासे शिलापर पैनाये बाण मेरी भुजाओंके द्वारा छूट संग्रामस्थलमें तेरे शरीरको भेदन कर रुधिर पान करेंगे ॥ १६ ॥ दम दूतके यह सब वचन सुन और पहिली प्रतिज्ञा स्मरण कर सर्पके समान श्वास छोड़ते छोड़ते शीघ्रतासहित गये ॥ १७ ॥ और उसको

निरीक्ष्यतंसमायांतंवपुष्मान्मर्षपूरितः ॥ संक्रंदनसुतेनापिदमोज्ञातोवपुष्मता ॥ आयातःसपरीवारःसामात्यःसपरिच्छदः ॥ १३ ॥ अकंपितेनमनसासैन्यानिदिदेशह ॥ दूतंचप्रेषयामासनिर्गम्यनगराद्बहिः ॥ १४ ॥ त्वंशीघ्रतरमागच्छनरिष्यंतःप्रतीक्षते ॥ सभार्यक्षत्रबंधोत्वंसमायाहिममांतिकम् ॥ १५ ॥ इमेमद्बाहुनिर्मुक्ताःशितांबाणाःपिपासिताः ॥ भित्त्वाशरीरंसंग्रामेपास्यंतिरुधिरंतव ॥ १६ ॥ श्रुत्वादमस्तुतत्सर्वंदूतप्रोक्तंययौत्वरन् ॥ स्मृत्वाप्रतिज्ञापूर्वोक्तांनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥ १७ ॥ आहूतसमरेचैवपुमान्सेनाविकत्थनः ॥ ततोयुद्धमतीवासीद्दमस्यचवपुष्मतः ॥१८॥ रथीचरथिनानागीनागिनाहयिनाहयी ॥ अयुध्यंतचविप्रर्षेतद्युद्धंतुमुलंह्यभूत् ॥ १९ ॥ पश्यतांसर्वदेवानांसिद्धगंधर्वरक्षसाम् ॥ चकंपेवसुधाब्रह्मन्युध्यमानेदमेयुधि ॥ २० ॥ नगजोनरथीनाश्वस्तस्यवाणसहस्तुयः ॥ ततोदमेनयुयुधेसेनाध्यःक्षोवपुष्मतः ॥ २१ ॥ हृदिविव्याधचदमइषुणागाद्यमांतिकम् ॥ तस्मिन्निपतितेसैन्यंपलायनपरंह्यभूत् ॥२२॥ सस्वामिनंततःप्राहदमःशत्रुंदमस्तथा ॥ क्वयासिदुष्टपितरंघातयित्वातपस्विनम् ॥ २३ ॥

समरमें बुलाकर कहा "जो प्रकृत पुरुष हैं, वह कभी आत्मश्लाघा नहीं करते।" अनन्तर दम और वपुष्मान्का घोरतर युद्ध उपस्थित हुआ ॥ १८ ॥ रथीके संग रथी, हाथीके संग हाथी और अश्वारोहीके संग अश्वारोही युद्ध करनेलगे। वह तुमुल संग्राम होनेलगा ॥ १९ ॥ हे विप्रर्षे ! संपूर्ण देवगण, सिद्ध, गंधर्व और यागशीलगण देखने लगे। उनके सामने इसप्रकार युद्ध होनेलगा। हेब्राह्मण ! जिस काल दम क्रोधपूर्वक युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुये, उस समय पृथ्वी काँपने लगी ॥ २० ॥ ऐसा कोई हाथी, घोडा वा रथी नहीं था, जो उनके बाण सहन करसकता। वपुष्मान्का सेनापति दमके संग युद्ध करता था ॥ २१ ॥ दमने बाणद्वारा उसका हृदय गाढरीतिसे विद्ध किया। सेनापतिके गिरतेही वपुष्मान्सहित सब सेना भागनेमें तत्पर होकर प्रस्थान करने लगी ॥ २२ ॥ तब शत्रुदमनकारी दमने कहा—रेदुष्ट !

मेरे तपस्वी पिताको मारकर तू कहां जाता है ॥ २३ ॥ तैंने मेरे शस्त्रहीन तपस्वी पिताको निहत किया है, तू क्षत्रिय है, अतएव निवृत्त हो । अनन्तर वपुष्मान्ने अनुज, पुत्र संबंधी और बांधवोंके सहित निवृत्त होकर रथारोहणपूर्वक युद्ध आरम्भ किया । तब वपुष्मान्ने धनुषसे छोडे हुए बाणोंके द्वारा आकाश और संपूर्ण दिशा आच्छन्न करदीं ॥ २४ ॥ २५ ॥ और बाणजालद्वारा अश्व तथा रथसहित दमको ढक दिया । तब दमने भी पिताके वधसे उत्पन्न हुए कोप द्वारा ॥ २६ ॥ उसके बाणोंको छेदन करके शत्रुओंका अंग बाणोंसे विद्ध किया और एक एक बाणसे उसके सात पुत्र ॥ २७ ॥ अनुज संबंधी और मित्रोंको यम सदनमें भेज दिया । तब रथी वपुष्मान् भी आत्मज बांधवोंके मरनेसे अत्यन्त क्रोधित होकर ॥ २८ ॥ सर्पके समान बाणोंसे दमके सहित युद्ध करने लगा । किन्तु हे महामुने ! दमने उन सब बाणोंको काट डाला ॥ २९ ॥ इस प्रकार अत्यन्त क्रोधसहित परस्पर परस्परके वधकी इच्छा करके दारुण युद्ध करने लगे ।

अशस्त्रंचतपस्यंतंक्षत्रियोसिनिवर्तताम् ॥ ततोनिवृत्यसदमंयोधयामाससानुजः ॥ २४ ॥ सपुत्रःसहसंबंधिबांधवैर्युयुधेरथी ॥ ततःशरासनान्मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततोदिशः ॥ २५ ॥ दमंचसरथंचाशुशरजालैरपूरयत् ॥ ततःपितृवधोत्थेनकोपेनसदमस्तथा ॥ २६ ॥ चिच्छेदताञ्छरांस्तेषांविव्याधान्यैश्चतानपि ॥ एकेनैकेनबाणेनसप्तपुत्रांस्तथाद्विज ॥ २७ ॥ संबंधिबांधवान्मित्रान्निनाययमसादनम् ॥ वपुष्मान्सरथीक्रोधान्निहतात्मजबांधवः ॥ २८ ॥ युयुधेचसतेनाजौशरैराशीविषोपमैः ॥ चिच्छेदतस्यतान्बाणान्सदमश्चमहामुने ॥ २९ ॥ युयुधातेचसंरब्धौपरस्परजयैषिणौ ॥ परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषौत्वरा ॥ ॥ ३० ॥ गृहीतखड्गावुत्तीर्यचिक्रीडातेमहाबलौ ॥ दमःक्षणंनृपंध्यात्वापितरंनिहतंवने ॥ ३१ ॥ केशेष्वाकृष्यचाक्रम्यनिपात्यधरणीतले ॥ शिरोधरायां पादेनभुजमुद्यम्यचाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ पश्यंतुदेवताःसर्वामानुषाःपन्नगाःखगाः ॥ पाट्यमानंचहृदयंक्षत्रबंधोर्वपुष्मतः ॥ ३३ ॥ एवमुक्त्वाचसदमोहृदयं चव्यदारयत् ॥ पातुकामश्चससुरैःक्षतजेननिवारितः ॥ ३४ ॥ ततश्चकारतातस्यरक्तेनैवोदकक्रियाम् ॥ आनृण्यंप्राप्यसपितुःपुनःप्रायात्स्वमंदिरम् ॥३५॥

दोनोंही महा बलवान् और दोनोंही क्रमशः परस्परके शराघातसे छिन्नधनुहो, दोनोंही खड्गग्रहणपूर्वक उठकर युद्धक्रीडा करने लगे वनमें निहत पिताकी क्षण काल चिन्ता करके दमने उसके ॥ ३० ॥ ३१ ॥ केश खैंचकर उसको धरणीतलमें गिरादिया आर उसकी गर्दन पैरोंसे दबाकर भुजा उठाकर इसप्रकार कहने लगे ॥ ३२ ॥ इस क्षत्रियाधम वपुष्मान्का हृदय विदीर्ण करता हूं संपूर्ण देवता मनुष्य सिद्ध और पन्नगगण यह वार्त्ता अवलोकन करें ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कहकर दमने असिद्वारा उसका हृदय विदीर्ण किया और उसका रक्तपान करनेमें उद्यत हुए तब देवताओंने उनको निवारण किया ॥ ३४ ॥ उन्होंने उस रक्तसे अपने पिताकी उदकक्रिया सम्पन्न कराई । दमने वपुष्मान्के मांसद्वारा पितृपिंड प्रदान किये और राक्षसकुलोत्पन्न ब्राह्मणोंको भोजन कराया । इसप्र

कार पिताके ऋणसे मुक्त होकर फिर अपने राज्यमें लौटआये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसप्रकारके पराक्रमीराजा सूर्यवंशमें प्रगट हुए हैं और भी अनेक बुद्धिमान् शूर यज्ञ करनेवाले धर्मात्मा और पंडित हुए हैं ॥ ३७ ॥ वह ऐसे वेदान्तपारगामी हुए हैं जो कहनेमें नहीं आते न उनकी कोई संख्या कर सकता है इनका चरित्र श्रवणकर मनुष्य सब पापोंसे छूटता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायां वपुष्मद्वधोनाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ पक्षी बोले हे जैमिने ! महामुनि मार्कण्डेयजीने इसप्रकार कीर्त्तन कर, क्रौष्टुकिमुनिको बिदादे मध्याह्नक्रिया समापन करी ॥ १ ॥ हे महामुने ! जो आपके निकट वर्णन किया, यह अनादिसिद्ध पुराण स्वयंभूने मार्कण्डेयमुनिसे कहा था, हमने उन्हींके निकटसे इसको सुना है ॥ २ ॥ हमने जो आपसे कहा,

वपुष्मतश्चमांसेनपिंडदानंचकारह ॥ ब्राह्मणान्भोजयामासरक्षःकुलसमुद्भवान् ॥३६॥ एवंविधाहिराजानोबभूवुःसूर्यवंशजाः ॥ अन्येपिसुधियःशूरायज्विनोधर्मकोविदाः ॥ ३७ ॥ वेदांतपारगास्तांश्चनसंख्यातुमिहोत्सहे ॥ एतेषांचरितंश्रुत्वानरःपापैःप्रमुच्यते ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरितेवपुष्मद्वधोनाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ एवमुक्काजैमिनेयंमार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ विसृज्यक्रौष्टुकिमुनिंचक्रेमाध्याह्निकींक्रियाम् ॥ १ ॥ अस्माभिश्चश्रुतंतस्माद्यत्तेप्रोक्तंमहामुने ॥ अनादिसिद्धमेतद्धिपुराप्रोक्तंस्वयंभुवा ॥२॥ मार्कण्डेयायमुनयेयत्तेस्माभिरुदाहृतम् ॥ पुण्यंपवित्रमायुष्यंधर्मकामार्थसिद्धिदम् ॥३॥ पठतांशृण्वतांसद्यःसर्वपापप्रमोचनम् ॥ आदावेवकृतायेचप्रश्नाश्चत्वारएवहि ॥४॥ पितुःपुत्रस्यसंवादस्तथासृष्टिःस्वयंभुवः ॥ तथामनूनांस्थितयोराज्ञांचचरितंमुने ॥ ५ ॥ अस्माभिरेतत्तेप्रोक्तंकिमद्यश्रोतुमिच्छसि ॥ एतान्सर्वान्नरःश्रुत्वापठतेवासभासुच ॥ ६ ॥ विधूयसर्वपापानिब्रह्मणोतेलयंव्रजेत् ॥ अष्टादशपुराणानियानिप्राहपितामहः ॥७॥ तेषांतुसप्तमंज्ञेयंमार्कंडेयंसुविश्रुतम् ॥ ब्राह्मंपाद्मंवैष्णवंचशैवंभागवतंतथा ॥ ८ ॥ तथान्यन्नारदीयंचमार्कंडेयचसप्तमम् ॥ आग्नेयमष्टमंप्रोक्तंभविष्यंनवमंतथा ॥९॥ दशमंब्रह्मवैवर्त्तंलैंगमेकादशंस्मृतम्॥वाराहंद्वादशंप्रोक्तंस्कांदमत्रत्रयोदशम् ॥ १० ॥

यह मार्कण्डेयका कहाहुआ मनोहर पुराण पुण्य पवित्र कहा है इसके पाठ करने अथवा सुननेसे आयुर्वृद्धि और सर्व कामार्थकी सिद्धि होती है ॥ ३ ॥ तथा इसके पढने सुननेसे मनुष्य संपूर्णपापोंसे छूट जाता है। आपने पूर्वमें मुझसे जो चार प्रश्न किये थे उन्हींका उत्तर ॥ ४ ॥ और पितापुत्रका संवाद स्वयम्भूकी सृष्टि मनुगणों की उत्पत्ति और राजाओंका चरित्र भी ॥ ५ ॥ मैंने आपसे वर्णन किया। अब और क्या सुननेकी इच्छा करते हो ! मनुष्य यह सब श्रवण करने और सभास्थल में पाठ करानेपर ॥६॥ समस्तपापोंसे छूटकर ब्रह्ममें लीन होताहै। पितामह ब्रह्माने अष्टादश पुराण कीर्त्तन किये थे ॥७॥ तिनमें यह विख्यात मार्कण्डेयपुराण सप्तम है। (१) ब्राह्म, (२) पाद्म, (३) वैष्णव, (४) शैव, (५) भागवत, ॥८॥ (६) नारदीय, (७) मार्कण्डेय (८) आग्नेय (९) भविष्य ॥९॥ (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) लिंग, (१२) वाराह,

(१३) स्कन्द, ॥ १० ॥ (१४) वामन, (१५) कौर्म, (१६) मत्स्य, (१७) गरुड, और इसके पीछे (१८) अठारहवां ब्रह्माण्ड है ॥ ११ ॥ इन अठारह पुराणोंके नाम जो मनुष्य पाठ करता है और तीनों संध्यामें जप करता है, उसको अश्वमेधयज्ञके फलके समान फल प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश वर्णन, मन्वन्तर और वंशानुचरित, यह पुराणके पांच लक्षण हैं ॥ १३ ॥ चार प्रश्न युक्त यह उत्तम मार्कण्डेयपुराण श्रवण करनेसे सौ करोड कल्पके किये पाप नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥ और ब्रह्महत्यादि संपूर्ण महापाप तथा अन्यान्य सब अमंगल वायुसे हतहुये तृणके समान इसके पाठसे नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥

चतुर्दशंवामनंचकौर्मंपंचदशंतथा ॥ मात्स्यंचगारुडंचैवब्रह्मांडंचततःपरम् ॥११॥ अष्टादशपुराणानांनामधेयानियः पठेत् ॥ त्रिसंध्यंजपतेनित्यंसोऽश्वमेधफलंलभेत् ॥ १२ ॥ सर्गश्चप्रतिसर्गश्चवंशोमन्वंतराणिच ॥ वंशानुचरितंचैवपुराणंपंचलक्षणम् ॥ १३ ॥ चतुःप्रश्नसमोपेतंपुराणंह्येतदुत्तमम् ॥ श्रुत्वा पुनश्चतेपापंकल्पकोटिशतैःकृतम् ॥ १४ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानियान्यन्यान्यशुभानिच ॥ तानिसर्वाणिनश्यंतितृणंवातहतंयथा ॥ १५ ॥ पुष्करेदानजंपुण्यंश्रवणादस्यजायते ॥ सर्ववेदाधिकफलंसमाप्त्याचाधिगच्छति ॥ १६ ॥ यःश्रावयेत्पूजयेत्तंयथादेवंपितामहम् ॥ गंधपुष्पैस्तथावस्त्रैर्ब्राह्मणानांचतर्पणैः ॥ १७ ॥ यथाशक्त्याचदातव्यंनृपैर्ग्रामादिवाहनम् ॥ एतत्पुराणमखिलंवेदार्थैरुपबृंहितम् ॥ धर्मशास्त्रैकनिलयंश्रुत्वासर्वार्थमाप्नुयात् ॥ १८ ॥ श्रुत्वापुराणमखिलंव्यासंसंपूजयेद्बुधः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयथोक्तफलहेतवे ॥ १९ ॥ दद्याद्गांगुरवेस्वर्णवस्त्रालंकारसंयुताम् ॥ श्रवणस्यफलावाप्त्यैदानैःसंतोषयेद्गुरुम् ॥ २० ॥

पुष्करमें दान करनेसे जो पुण्य होता है, इसके सुननेसे भी वैसाही पुण्यलाभ होता है इसकी समाप्तिमें सम्पूर्ण वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जो इस पुराणको सुनावै ब्रह्माके समान उसका पूजन करना चाहिये, गंध पुष्प वस्त्रादिसे पूजन कर ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ १७ ॥ राजोंको यथाशक्ति ग्राम और वाहन देने चाहिये यह पुराण सम्पूर्णही वेदार्थसे युक्त है. धर्मशास्त्रका स्थानहै इसको सुनकर सब अर्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥ यह सम्पूर्ण पुराण सुनकर बुद्धिमान् को व्यासका पूजन करना चाहिये, तो धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ सुवर्ण वस्त्र अलंकारसे युक्त गुरुके निमित्त गौ देनी चाहिये श्रवणका फल

शक्तिके निमित्त दानसे गुरुको सन्तुष्ट करे ॥ २० ॥ जो मनुष्य विना वाचककी पूजा किये एक श्लोक भी सुनते हैं वह पुण्यलाभ नहीं कर सकते वरन् पण्डित उनको शास्त्र-चोर कहते हैं ॥ २१ ॥ देवता उनके प्रति अप्रसन्न होते हैं, पितृगण भी ऐसे पुत्रोंपर प्रसन्न नहीं होते, वह उनकादिया श्राद्धभी ग्रहण नहीं करते तथा उनको तीर्थस्नानका फल भी नहीं मिलता है ॥ २२ ॥ शास्त्रचोरकी सज्जनोंकी सभामें निन्दा होती है, बुद्धिमानोंको यह शास्त्र अवज्ञा करके न सुनना चाहिये ॥ २३ ॥ जो साधुओंके शास्त्र पढनेमें अवज्ञा करते हैं वह कई जन्म मूक होकर सात जन्मतक बहरे होते हैं ॥ २४ ॥ जो इस सप्तम पुराणको सुनकर पूजन करते हैं वह सब पाप से रहित हो अपने कुलको पवित्र करते हैं ॥ २५ ॥ इसमें सन्देह नहीं वह पवित्र होकर विष्णुलोकको जाते हैं. जहांसे फिर इस संसारमें नहीं आते ॥

अपूज्यपाठकर्तारंश्लोकमेकंशृणोतियः ॥ नासौपुण्यमवाप्नोतिशास्त्रचोरःस्मृतोहिसः ॥ २१ ॥ नतस्यदेवाःप्रीणंतिपितरौनैवपुत्रकान् ॥ दत्तंश्राद्धंतथेच्छंतितीर्थस्नानफलंनच ॥ २२ ॥ लभतेशास्त्रचोरश्चनिंदांसज्जनसंसदि ॥ अवज्ञयानश्रोतव्यंशास्त्रमेतद्विचक्षणैः ॥ २३ ॥ पठ्यमानेत्ववज्ञातेसाधुभिः शास्त्रउत्तमे ॥ मूकोभवतिजन्मानिसप्तमूर्खःप्रजायते ॥ २४ ॥ श्रुत्वातत्पूजयेद्यस्तुपुराणंसप्तमंपुनः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्येव निजंकुलम् ॥ २५ ॥ पूतोयातिनसंदेहोविष्णुलोकंसनातनम् ॥ च्युतस्ततःपुनर्नैवसभविष्यतिमानवः ॥ २६ ॥ पुराणश्रवणादेवपरंयोगमवाप्नुयात् ॥ नास्तिकायनदातव्यंवृषलेवेदनिंदके ॥ २७ ॥ गुरुद्विजातिनिंदायतथाभग्नव्रतायच ॥ मातापित्रोर्निंदकायवेदशास्त्रादिनिंदिने ॥२८॥ भिन्नमर्यादिनेचैवतथावैज्ञातिकोपिने ॥ एतेषांनैवदातव्यंप्राणैःकंठगतैरपि ॥ २९ ॥ लोभाद्वायदिवामोहाद्भयाद्वापिविशेषतः ॥ पठेद्वापाठयेद्वापिसगच्छेन्नरकंध्रुवम् ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एतत्सर्वमुपाख्यानंधर्म्यंस्वर्गापवर्गदम् ॥ यःशृणोतिपठेद्वापिसिद्धंतस्यसमीहितम् ॥ ३१ ॥

॥ २६ ॥ एकमात्र इस पुराणके सुननेसेही उत्कृष्ट योगलाभ होता है। किन्तु यह पुराण नास्तिक, शूद्र, वेदनिन्दक ॥ २७ ॥ गुरुद्वेषी भग्नव्रत, मातापिताके त्यागी निन्दक तथा वेदशास्त्रकी निन्दाकरनेवालेको न दे ॥ २८ ॥ मर्यादा भंगकरनेवाले और ज्ञातिदूषक मनुष्योंको प्रदान न करे, यही क्या, ऐसोंको प्राण-कंठगत होनेपर भी न दे ॥ २९ ॥ इन सब मनुष्योंमें यदि कोई लोभ, मोह वा भयसे इस पुराणका पाठ करता है, अथवा पाठ कराकर सुनता है, वा उक्त कारणोंसे यदि कोई उसके निकट पाठकरता है, तो उसकी निस्सन्देह नरकमें गति होती है ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले-यह संपूर्ण उपाख्यान

धर्म, स्वर्ग और अपवर्गका देनेवाला है, जो पढता और सुनता है, उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ उसको कभी आधिव्याधिके दुःख नहीं होते, इसमें सन्देह नहीं; वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूटजाता है ॥ ३२ ॥ उसके स्वजन और मित्र हितकारी होते हैं, उसका कोई शत्रु नहीं होता, तथा उसको चोरोंकी बाधा नहीं होती ॥ ३३ ॥ उसके यहां अच्छा धन रहता है, वह मिष्टान्नभोजी होकर कभी दुर्भिक्षसे पीडित नहीं होता, पराई स्त्री, पराया द्रव्य, पराई हिंसाके पापोंसे ॥ ३४ ॥ तथा और भी अनेक प्रकारके दुःखोंसे छूट जाता है, हे द्विज ! ऋद्धि, वृद्धि, स्मृति, शान्ति, लक्ष्मी, पुष्टि, तुष्टि उसको नित्यप्रति होती हैं जो इस

आधिव्याधिजदुःखेनकदाचिन्नाभियुज्यते ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ३२ ॥ संतःस्वजनमित्राणिभवंतिहितबुद्धयः ॥ नारयःसंभविष्यंति दस्यवोवाकदाचन ॥ ३३ ॥ सदर्थोमिष्टभोगीचदुर्भिक्षर्नावसीदति ॥ परदारपरद्रव्यपरहिंसादिकिल्बिषैः ॥ ३४ ॥ मुच्यतेनेकदुःखेभ्योनित्यंचैवद्विजो त्तम ॥ ऋद्धिर्वृद्धिःस्मृतिःशांतिःश्रीःपुष्टिस्तुष्टिरेवच ॥ नित्यंतस्यभवेद्विप्रयःशृणोतिकथामिमाम् ॥ ३५ ॥ मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलंशृण्वन्नशोच्यः पुमान्योवासम्यगुदीरयेद्द्रसमयंशोच्योनसोपिद्विज ॥ योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहितःस्वर्गादिलोकेप्यसौशक्राद्यैश्चसुरादिभिःपरिवृतःस्वर्गेसदापूज्यते ॥ ३६ ॥ पुराणमेतच्छ्रुत्वाचज्ञानविज्ञानसंयुतम् ॥ विमानवरमारुह्यस्वर्गलोकेमहीयते ॥ ३७ ॥ पुराणाक्षरसंख्याचप्रख्याताततत्त्वबुद्धिना ॥ श्लोकानांषट्सहस्राणि तथाचाष्टशतानिच ॥ ३८ ॥ श्लोकास्तत्रनवाशीतिरेकादशसमाहिताः ॥ कथितामुनिनापूर्वंमार्कण्डेयेनधीमता ॥ ३९ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ ॥ भारते नाभवद्यन्मेसंशयस्फोटनंद्विजाः ॥ तद्भवद्भिःकृतंयन्नकश्चिदद्यकरिष्यति ॥ ४० ॥

कथाको सुनता है ॥ ३५ ॥ इस संपूर्ण "मार्कण्डेयपुराण" को सुनकर फिर शोचकेयोग्य नहीं रहता है। और जो ब्राह्मण इसको कहते हैं, वहभी शोचके योग्य नहीं होते, वह योग ज्ञान और विशुद्ध सिद्धिके साहित स्वर्गादिलोकको जाते हैं और इन्द्रादि देवताओंसे युक्तहोकर स्वर्ग में सदा पूजित होते हैं ॥ ३६ ॥ इस ज्ञान विज्ञानसे संयुक्त पुराणको सुनकर पुरुष अच्छे विमानमें बैठ स्वर्गलोकको जाता है ॥ ३७ ॥ सूक्ष्मदर्शी महाबुद्धिमान् उन मार्कण्डेयजीने प्रथम इस पुराणके अक्षरोंकी संख्यासे इस पुराणमें छः हजार नौसे श्लोक वर्णन किये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जैमिनि बोले हे पक्षिगण ! महाभारतमें जो सन्देह नष्ट नहीं हुआ तुमने सख्य (मित्र)

भावसे मेरा वह संशय दूर किया और कौन इसप्रकार करसकता है ? ॥ ४० ॥ तुमअत्यन्त दीर्घायु, रोगरहित और बुद्धिविशारद होओ, तुम्हारी बुद्धि साख्ययोगमें अव्यभिचारिणी हो ॥ ४१ ॥ तुम पिताके दिये शापसे दुःखको नहीं प्राप्त हुए उनसे यह वचन कहकर और उन परमोदार पक्षियोंके वचन स्मरण करतेहुए मुनि

यूयंदीर्घायुषःस्यातप्रज्ञाबुद्धिविशारदाः ॥ सांख्ययोगेतथाचास्तुबुद्धिरव्यभिचारिणी ॥ ४१ ॥ पितृशापकृताद्दुःखाद्दौर्मनस्यंव्यपेतुवः ॥ एतावदुक्त्वावचनंजगामस्वाश्रमंमुनिः ॥ चिंतयन्परमोदारंपक्षिणांवाक्यमीरितम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणेएतत्पुराणमाहात्म्यश्रवणफठनफलंनामचतुर्स्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ सम्पूर्णमिदंमार्कण्डेयमहापुराणम् ॥ श्रीशःपायात् ॥ ॥ छ ॥

अपने आश्रममें आये ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनविख्यात पण्डितकुलतिलकमिश्रसुखानन्दसूरीसूनुमुरादाबादनिवासि पण्डितकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां पुराणश्रवणपठनफलं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ ॥ श्रीमज्जगदीश्वरार्पणमस्तु ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

दोहा—श्रीगणेश पदपद्मगहि, व्यासमुनिहि शिरनाय । मार्कण्डेय पुराणकी, टीका लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढहिं सुनहिं कर प्रेम जे, लहहिं पदारथचार । सकल कामना सिद्धिप्रद, देवनचरित उदार ॥ २ ॥
बसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद । भजन करत हरिको तहां, बुधज्वालापरसाद ॥ ३ ॥
तिनको मैं लघुभ्रात हूं, नाम कन्हैयालाल । प्रतिपदको टीका कियो, भाषा ललित रसाल ॥ ४ ॥
जगद्विदित महिमा अतुल, खेमराज सुखदान । वेङ्कटेश्वर यंत्रपति, राखत गुणियनमान ॥ ५ ॥
तिनहित यह टीकाकियो, निजमतिके अनुसार । है पूरण विश्वास वह, करिहैं अंगीकार ॥ ६ ॥
सम्वत् वसु शर अंक विधु, भाद्र पूर्णिमा पाय । पूर्णकियो भाषा सरल, टीका सब सुखदाय ॥ ७ ॥

॥ समाप्तोऽयंग्रन्थः ॥

इति सभाषाटीकं श्रीमार्कण्डेयपुराणम्।